प्रकाशकीय

जैन प्रतिमाविज्ञान पर हिन्दी भाषा मे अद्यावधि दो-तीन लघुकाय कृतिया ही प्रकाशित हुई हैं। डॉ० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी की यह विशालकाय कृति न केवल गवेषणापूर्ण अध्ययन पर आधारित है, अपितु विषय को काफी गहराई से एवं व्यापक परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत करती है। आशा है विद्वत् जगत् मे इस कृति को समुचित स्थान प्राप्त होगा।

भारतीय मूर्तिकला के क्षेत्र मे जैन प्रतिमाओ का ऐतिहासिकता एवं कला-पक्ष दोनो दृष्टियो से महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जैन प्रतिमाविज्ञान मे जिन प्रतिमाओ के साथ-साथ यक्ष-यक्षी युगलों, विद्यादेवियो और सरस्वती आदि की प्रतिमाओ का भी विशिष्ट स्थान रहा है। डॉ० तिवारी ने इन सबको अपने ग्रन्थ मे समाहित किया है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि डॉ० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी पार्श्वनाथ विद्याश्रम के शोध छात्र रहे हैं और उनको अपने शोध-प्रबन्ध 'उत्तर भारत मे जैन प्रतिमाविज्ञान' पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा ई० सन् १९७७ में पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गयी। प्रस्तुत कृति उनकी उक्त गवेषणा का सशोधित रूप है जिसको प्रकाशित कर पाठको के हाथो मे प्रस्तुत करते हुए मुझे अति प्रसन्नता हो रही है।

प्रस्तुत कृति के प्रकाशन हेतु भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद, नई दिल्ली एव जीवन जगन् चैरिटेबल ट्रस्ट, फरीदाबाद ने आर्थिक सहयोग प्रदान किया है, इस हेतु मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं। इस सहायता के कारण ही प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हो सका है। मैं लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद, जैन जर्नल, कलकत्ता तथा भारत कला भवन, वाराणसी का भी आभारी हू, जिन्होने प्रस्तुत कृति के प्रकाशन हेतु कुछ चित्रों के ब्लाक्स उपलब्ध कराकर सहयोग प्रदान किया है।

मैं संस्थान के निदेशक, डॉ० सागरमल जैन, डॉ० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी एवं डॉ० हरिहर सिंह का भी आभारी हू जिन्होंने ग्रन्थ के मुद्रण एवं प्रूफरीडिंग सम्बन्धी उत्तरदायित्वो का निर्वाह कर इस प्रकाशन को सम्भव बनाया है।

अन्त मे मैं संस्थान के मानद मन्त्री भाई भूपेन्द्रनाथ के प्रति आभार व्यक्त करता हूं जिनके प्रयत्नो के कारण ही संस्थान के प्रकाशन कार्यों मे अपेक्षित प्रगति हो रही है।

शादीलाल जैन
अध्यक्ष
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान,
वाराणसी–२२१००५
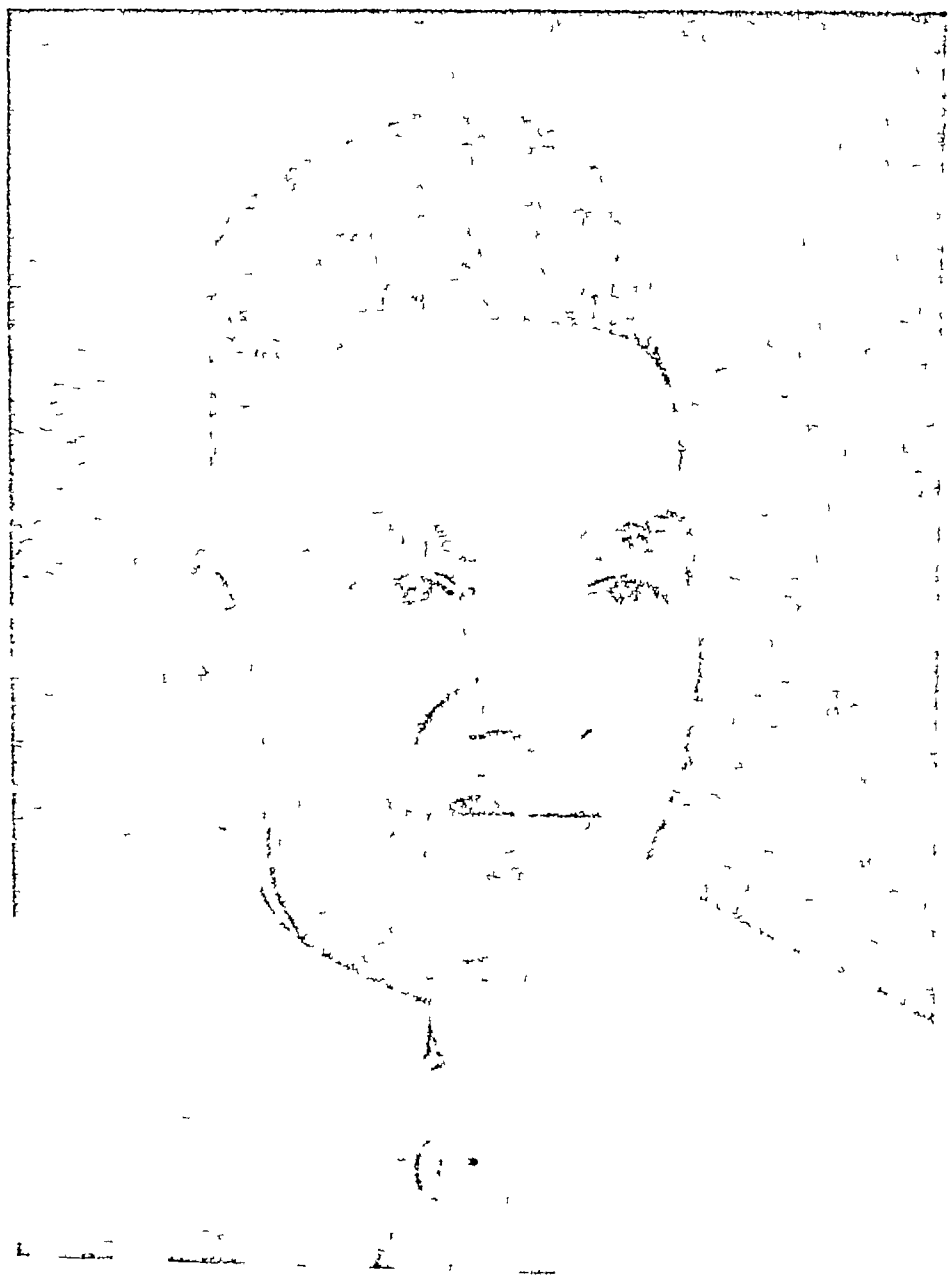
जैन विद्या के निष्काम सेवक
एव
पार्श्वनाथ विद्याश्रम
के
मानद् मन्त्री
लाला हरजसरायजी
को
सादर समर्पित

जिन्हें यह ग्रन्थ समर्पित है—

जैनविद्या के निष्काम सेवक लाला हरजसरायजी जैन : एक परिचय

भगवान् पार्श्वनाथ की जन्म स्थली एव विद्यानगरी काशी मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के समीप जैन धर्म और दर्शन के उच्चतम अध्ययन केन्द्र के रूप मे पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध सस्थान को मूर्तरूप देने एवं विकसित करने का श्रेय यदि किसी व्यक्ति को है, तो वह लाला हरजसरायजो जैन को है जिनके अथक परिश्रम से इस संस्थान के प्रेरक पं सुखलालजी का चिर प्रतीक्षित सुन्दर स्वप्न साकार हो सका।

लाला हरजसरायजी का जन्म अमृतसर के प्रसिद्ध एव सम्मानित लाला उत्तमचन्दजी जैन के परिवार मे हुआ, जो अपनी दानशीलता तथा मर्यादा की रक्षा के लिए प्रसिद्ध रहा है। आपका जन्म अमृतसर मे आसोज शुदी ७ मंगलवार सम्वत् १९५३, तदनुसार दिनाक १३ अक्तूवर १८९६ ई० को हुआ। आपके पिता का नाम लाला जगन्नाथजी जैन था। ये अपने पिता के द्वितीय पुत्र है। इनके अन्य भ्राता स्व० लाला रतनचन्दजी जैन तथा लाला हंसराजजी जैन थे।

सन् १९११ मे १५ वर्ष की आयु मे इनका विवाह-सस्कार श्रीमती लाभदेवी से सम्पन्न हुआ, जो स्यालकोट (अब पाकिस्तान मे) के प्रसिद्ध हकीम लाला वेलीरामजी जैन की पुत्री थी। यह परिवार भी अपने मानवीय एव उदार गुणो के लिए प्रसिद्ध रहा है। श्रीमती लाभदेवो के भाई लाला गोपालचन्द्रजी जैन विभाजन के पश्चात् भी पाकिस्तान मे ही रहे तथा अपनी योग्यता के कारण पाकिस्तान सरकार से सम्मानित भी हुए।

आपने सन् १९१९ मे गवर्नमेन्ट कालेज, लाहौर से बी० ए० को शिक्षा पूर्ण की। वह युग राष्ट्रीय आन्दोलनो का युग था। गाधीजी के आह्वान पर सम्पूर्ण देश मे सामाजिक व राजनीतिक पुनर्जागरण की हवा फैल रही थी। पराधीन भारत मे देशभक्ति को प्रोत्साहन देने के लिए देश मे निर्मित वस्तुओ के उपभोग पर वल दिया जा रहा था तथा विदेशी वस्तुओ का वहिष्कार किया जा रहा था। इन सवका प्रभाव युवक हरजसराय पर भी पड़ा। वे उसी समय से खद्दरधारी हो गए एव देश में धार्मिक तथा सामाजिक कुरीतियो को मिटाने और राजनैतिक चैतन्यता लाने के कार्य मे जुट गये। राष्ट्रीय पद्धति पर शिक्षा देने के लिए १९२९ मे अमृतसर मे श्रीराम आश्रम हाई स्कूल की स्थापना हुई। वावू हरजसरायजी इसके प्रथम मत्री वने। समाज के अग्रगण्य व्यक्तियो द्वारा मुक्तहस्त से दिये गये दान से यह सस्था पुष्पित तथा पल्लवित हुई। इसकी सवसे प्रमुख विशेषता सहशिक्षा थी। सामाजिक तथा धार्मिक अन्धविश्वास को जड से समाप्त करने का सबसे सुन्दर उपाय यही था कि नर और नारी दोनो को समान शिक्षा दी जाय। यह सस्था अव भी वहुत ही सुचारु रूप से चल रही है।

१९२९ मे सम्पूर्ण आजादी का नारा देने के लिए आहूत लाहौर काग्रेस मे आपने एक सदस्य के रूप मे सक्रिय भाग लिया। इसके अतिरिक्त आप कई प्रमुख समितियो के सदस्य रहे, जैसे सेवा समिति, अमृतसर स्काउट एसोशिएशन आदि।

१९३५ मे पूज्य श्री सोहनलालजी म० मा० के देहावसान पर समाज ने उनका स्मारक वनाने के लिए २५०००) रु० एकत्र किया तथा हरजसरायजी को इसकी व्यवस्था का कार्यभार सौंपा। आपने इस कार्य को वहुत सुन्दर ढंग से पूर्ण किया। १९४१ मे ये वम्बई जैन युवक काग्रेस के प्रधान वने तथा अखिल स्थानकवासी जैन कांफ्रेन्स मे खुलकर भाग लिया। समग्र क्रान्ति के प्रणेता श्री जयप्रकाश नारायण से भी आपका घनिष्ठ सम्पर्क रहा तथा कई अवसरो पर उन्हे सामाजिक कार्यों के लिए आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया।

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध सस्थान के निर्माण मे भी आपका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। १९३६ मे श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति की स्थापना के उपरान्त इसके कार्यक्षेत्र को विस्तृत रूप देने के लिए आपने कुछ मित्रो की सलाह तथा शतावधानी मुनि श्री रत्नचन्द्रजी म० सा० के आदेश से प० सुखलालजी से बनारस मे सम्पर्क स्थापित किया। पण्डितजी के निर्देशन के आधार पर समिति ने जैनविद्या के विकास एव प्रचार-प्रसार को अपना मुख्य लक्ष्य बनाया तथा उन्हीं उद्देश्यो की पूर्ति हेतु विद्यानगरी काशी मे १९३७ मे पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान की नींव डाली। समिति को प्राप्त दान के अतिरिक्त भी हरजसरायजी ने इस पुण्य कार्य मे व्यक्तिगत रूप से काफी आर्थिक सहयोग प्रदान किया।

बाबू हरजसरायजी से मेरा प्रथम परिचय उन्ही के सुयोग्य भतीजे लाला शादीलालजी के माध्यम से स्व० व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म० के सान्निध्य मे दिल्ली मे हुआ था। दिनो-दिन यह सम्बन्ध प्रगाढ होता गया, फिर तो उनके साथ पार्श्वनाथ विद्याश्रम के कोषाध्यक्ष के रूप मे वर्षों कार्य करना पड़ा। मैंने पाया कि लालाजी स्वभाव मे अत्यन्त मृदु, अल्पभाषी और संकोची है। किन्तु कर्तव्यनिष्ठा और लगन उनमे कूट-कूट कर भरी हुई है। आपने समाज सेवा तो की, किन्तु नाम की कोई कामना नही रखी, सेवा का ढोल कभी नही पीटा। अलिप्त और निष्काम भाव से सेवा करना ही उनके जीवन का मूल मन्त्र रहा है। सामाजिक सस्थाओ मे कार्य करते हुए भी आर्थिक मामलो मे सदैव सजग और प्रामाणिक रहना उनकी सबसे बडो विशेषता है। सस्था का एक कागज भी अपने निजी उपयोग मे न आये इसके लिए न केवल स्वय सजग रहते किन्तु परिवार के लोगो को भी सावधान रखते। लालाजी केवल विद्या-प्रेमी ही नही है, अपितु स्वय विद्वान् भी हैं। यह बात सम्भवत: बहुत कम ही लोग जानते हैं कि शतावधानी पं० रत्नचन्द्र जी म० सा० द्वारा निर्मित अर्धमागधी कोश के अंग्रेजी अनुवाद का कार्य स्वय लालाजी ने किया था।

यह उन्ही के परिश्रम का मीठा फल है कि पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध सस्थान जैन धर्म और जैनविद्या की निर्मल ज्योति फैला रहा है।

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध सस्थान परिवार लाला हरजसरायजी जैन के उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन की कामना करता है, ताकि उनकी तपस्विता एव निष्काम सेवावृत्ति से हमलोगो को सतत् प्रेरणा मिलती रहे।

—गुलाबचंद्र जैन

आमुख

जैन धर्म पर देश-विदेश मे पर्याप्त शोध कार्य हुए हैं, पर जैन प्रतिमाविज्ञान पर अभी तक समुचित विस्तार से कोई कार्य नही हुआ है। जैन प्रतिमाविज्ञान पर उपलब्ध सामग्री के एक क्रमवद्ध एव सम्यक् अध्ययन के आकर्षण ने ही मुझे इस विषय पर कार्य करने के लिए प्रेरित किया।

किसी भी ऐतिहासिक अध्ययन के लिए क्षेत्र तथा काल की सीमा का निर्धारण एक अनिवार्य आवश्यकता है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे जैन प्रतिमाविज्ञान के विकास को क्षेत्रीय दृष्टि से मुख्यतः उत्तर भारत की परिधि मे रखा गया है और इसमे प्रारम्भ से लगभग वारहवी शती ई० तक के विकास का निरूपण किया गया है। तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से दक्षिण भारत की भी स्थान-स्थान पर चर्चा की गई है।

जैन देवकुल यथेष्ट विस्तृत है तथा विभिन्न देवी-देवताओ के अंकन की दृष्टि से जैनकला प्रचुर मात्रा मे समृद्ध भी है। अतः एक ही ग्रन्थ मे जैन देवकुल के सभी देवी-देवताओ का स्वतन्त्र एवं विस्तृत प्रतिमानिरूपण अनेक कारणो से कठिन प्रतीत हुआ। तीर्थंकर (या जिन) ही जैन देवकुल के केन्द्र विन्दु है और सभी दृष्टियो से उन्ही का सर्वाधिक महत्व है, अस्तु प्रस्तुत ग्रन्थ मे केवल जिनो और उनसे संश्लिष्ट यक्ष और यक्षियो के ही स्वतन्त्र एवं विस्तृत प्रतिमानिरूपण किये गये हैं। जैन देवकुल के अन्य देवी-देवताओ का केवल सामान्य निरूपण किया गया है।

उपर्युक्त काल और क्षेत्र के चौखट मे ग्रन्थ मे आद्यन्त ऐतिहासिक के साथ-साथ तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है। यह तुलनात्मक विवेचन उत्पत्ति-विकास, प्राचीन तथा अपेक्षाकृत अर्वाचीन ग्रन्थो एव मूर्ति अवशेषो, श्वेतावर तथा दिगंवर मान्यताओ आदि के अध्ययन तक विस्तृत है। श्वेतावर और दिगंबर ग्रन्थो तथा पुरातात्विक स्थलो की सामग्रियो का अलग-अलग अध्ययन कर प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से दोनो के समान तत्वो और भिन्नताओ को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। प्रतिमानिरूपण से सम्वन्धित सभी उपलब्ध जैन ग्रन्थो का यथासभव अध्ययन और उनकी सामग्री का समुचित उपयोग किया गया है। प्रकाशित ग्रन्थो के अतिरिक्त कुछ महत्वपूर्ण पाण्डुलिपियो का भी उपयोग किया गया है। इसी सदर्भ मे कई महत्वपूर्ण श्वेतावर एवं दिगंवर पुरातात्विक स्थलो की यात्रा कर वहा की मूर्ति सम्पदा का विस्तृत अध्ययन भी प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे कुल सात अध्याय हैं। प्रथम दो अध्याय पृष्ठभूमि-सामग्री प्रस्तुत करते हैं और अगले अध्यायो मे जैन देवकुल के विकास तथा प्रतिमाविज्ञान विषयक अध्ययन हैं। प्रथम अध्याय मे विषय से सम्वन्धित विस्तृत प्रस्तावना दी गयी है, जिसमे क्षेत्र-सीमा, काल-निर्धारण, पूर्ववर्ती शोधकार्य, अध्ययन-स्रोत एवं शोध-प्रणाली आदि पर विस्तार से चर्चा है। द्वितीय अध्याय मे जैन प्रतिमाविज्ञान की राजनीतिक एवं सास्कृतिक पृष्ठभूमि का ऐतिहासिक अध्ययन है। इसमे जैन धर्म एव कला को विभिन्न युगो मे प्राप्त होनेवाले राजकीय और राजेतर लोगो के प्रोत्साहन और संरक्षण तथा धार्मिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि पर विचार किया गया है।

तृतीय अध्याय में जैन देवकुल के विकास का अध्ययन है। इसमे आवश्यकतानुसार मूर्तियो के उदाहरण भी दिये गये हैं और जैन देवकुल पर हिन्दू एव वौद्ध देवकुलो तथा तान्त्रिक प्रभाव को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। एक स्थल पर सम्पूर्ण जैन देवकुल के विकास के निरूपण का सम्भवत. यह प्रथम प्रयास है।

चतुर्थ अध्याय मे उत्तर भारत के जैन मूर्ति अवशेषो का ऐतिहासिक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न प्रकाशित स्रोतो से प्राप्त सामग्रियो के उपयोग के साथ ही खजुराहो, देवगढ़, ग्यारसपुर, ओसिया, आवू, जालोर, कुम्भारिया, तारंगा, राज्य संग्रहालय, लखनऊ, पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा और राजपूताना संग्रहालय, अजमेर जैसे पुरातात्विक स्थलों

एव सग्रहालयो की यात्रा कर वहा की जैन मूर्तियो का विस्तार से अध्ययन और उपयोग भी किया गया है। ग्रन्थ के लिए यह ऐतिहासिक सर्वेक्षण अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। ओसिया की विद्याओ एव जीवन्तस्वामी की मूर्तिया और जिनो के जीवनदृश्यो के अंकन, खजुराहो की विद्या (?), बाहुबली और द्वितीर्थी जिन मूर्तिया, देवगढ की २४ यक्षी, भरत, बाहुबली, द्वितीर्थी, त्रितीर्थी एव चौमुखी जिन मूर्तिया, कुम्भारिया के वितानो के जिनो के जीवनदृश्य तथा जिनो के माता-पिता एव विद्याओ की मूर्तिया प्रस्तुत अध्ययन की कुछ उपलब्धिया हैं। इसी अध्ययन के क्रम मे कतिपय ऐसे जैन देवताओ का भी सम्भवतः इसी ग्रन्थ मे पहली बार विवेचन है जिनका जैन परम्परा मे तो कोई उल्लेख नही प्राप्त होता परन्तु जो पुरातात्विक सामग्री के आधार पर यथेष्ट लोकप्रिय ज्ञात होते हैं।

पचम अध्याय मे जिन-प्रतिमाविज्ञान का विस्तार से अध्ययन है। प्रारम्भ मे जिन मूर्तियो के विकास की सक्षिप्त रूपरेखा दी गयी है और उसके बाद २४ जिनो के मूर्तिवैज्ञानिक विकास को व्यक्तिश. निरूपित किया गया है। इस अध्याय में प्रारम्भ से सातवी शती ई० तक के उदाहरणो का अध्ययन कालक्रम मे तथा उसके बाद का क्षेत्र के सन्दर्भ मे और स्थानीय विशेषताओ को दृष्टिगत करते हुए किया गया है। यक्ष-यक्षी से सम्बन्धित षष्ठ अध्याय मे भी यही पद्धति अपनायी गयी है। २४ जिनो के स्वतन्त्र मूर्तिविज्ञानपरक अध्ययन के बाद जिनो की द्वितीर्थी, त्रितीर्थी एव चौमुखी मूर्तियो और चतुर्विंशति-जिन-पट्टो तथा जिन-समवसरणो का भी अलग-अलग अध्ययन किया गया है। जिनो के प्रतिमा-निरूपण मे उनके जीवनदृश्यों के मूर्त अकनो तथा द्वितीर्थी और त्रितीर्थी मूर्तियो के विस्तृत उल्लेख सम्भवतः यही पर पहली बार किये गये हैं।

षष्ठ अध्याय मे जिनो के यक्षो एव यक्षियो के प्रतिमाविज्ञान का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यक्षो एव यक्षियो के उल्लेख युगलशः एव जिनो के पारम्परिक क्रम के अनुसार हैं। पहले यक्ष और उसके बाद सहयोगिनी यक्षी का प्रतिमानिरूपण किया गया है। प्रारम्भ मे यक्षो एव यक्षियो के मूर्तिवैज्ञानिक विकास को समग्र दृष्टि से आकलित किया गया है और उसके बाद उनका अलग-अलग अध्ययन प्रस्तुत है। यक्षो एव यक्षियो के प्रतिमानिरूपण मे स्वतन्त्र मूर्तियो के साथ ही सर्वप्रथम जिन-संयुक्त मूर्तियो के भी विस्तृत अध्ययन का प्रयास किया गया है।

सप्तम अध्याय निष्कर्ष के रूप मे है जिसमे समग्र अध्ययन की प्राप्तियों को क्रमबद्ध रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

ग्रन्थ मे परिशिष्ट के रूप मे चार तालिकाए दी गयी है, जिनमे २४ जिनो, यक्ष-यक्षियो एव महाविद्याओ की सूचिया तथा पारिभाषिक शब्दो की व्याख्या दी गयी है। अन्त मे विस्तृत सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची, चित्र-सूची, शब्दानुक्रमणिका और चित्रावली दी गई है। चित्रो के चयन मे मूर्तियो के केवल प्रतिमाविज्ञानपरक विशेषताओ का ही ध्यान रखा गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखन एव प्रकाशन मे जिन कृपालु व्यक्तियो एवं सस्थाओ से सहायता मिली है, उनके प्रति यहा दो शब्द कहना अपना कर्तव्य समझता हूं।

प्रस्तुत विषय पर कार्य के आरम्भ से समापन तक सतत उत्साहवर्धन एव विभिन्न समस्याओ के समाधान मे कृपापूर्ण सहायता और मार्गदर्शन के लिए मैं अपने गुरुवर डा० लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (का० हि० वि० वि०), का आजीवन ऋणी रहूंगा।

प्रो० दलसुख मालवणिया, भूतपूर्व अध्यक्ष, एल० डी० इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डोलाजी, अहमदाबाद, डा० यू०पी० शाह, भूतपूर्व उपनिदेशक, ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट, बडौदा, श्री मधुसूदन ढाकी, सहनिदेशक (शोध), अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, डा० जे० एन० तिवारी, रीडर, प्रा० भा० इ० सं० एव पुरातत्व विभाग, का० हि० वि० वि० और डा० हरिहर सिंह, व्याख्याता, सान्ध्य महाविद्यालय, का० हि० वि० वि० के प्रति भी मैं अपने को कृतज्ञ पाता हू, जिन्होंने अनेक अवसरो पर तत्परतापूर्वक अपनी सहायता एवं परामर्शों से मुझे लाभ पहुचाया है।

इस प्रसंग मे मैं अपने मित्र श्री पिनाकपाणि प्रसाद शर्मा, आई० पी० एस०, सहायक पुलिस अधीक्षक, नान्देड (महाराष्ट्र), को विशेष रूप से धन्यवाद देना चाहता हू, जिनसे मुझे निरतर परामर्श, सहायता और उत्साहवर्धन मिला है। यहा मैं अनुज श्री दुर्गानन्दन तिवारी और अपने विद्यार्थी श्री चन्द्रदेव सिंह को भी समय-समय पर उनसे प्राप्त सहायता के लिए धन्यवाद देता हू।

ग्रन्थ के प्रकाशन मे दी गयी बहुविध सहायता के लिए मैं डा० (श्रीमती) कमल गिरि, प्राध्यापिका, कला-इतिहास विभाग, का० हि० वि०वि०, का भी हृदय से आभारी हू।

ग्रन्थ के प्रकाशन के निमित्त वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए मै भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद, नई दिल्ली तथा जीवन जगन चैरिटेबल ट्रस्ट, फरीदाबाद का भी आभारी हू। ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध सस्थान, वाराणसी को मैं हृदय से धन्यवाद देता हू। सस्थान के अध्यक्ष डा० सागरमल जैन ने जिस तत्परता से ग्रन्थ के प्रकाशन की व्यवस्था की उसके लिए मैं विशेषरूप से उनके प्रति आभार प्रकट करता हू। तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी के व्यवस्थापक, श्री रमाशंकर पण्ड्या और खण्डेलवाल प्रेस, वाराणसी के व्यवस्थापक भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होने क्रमश पाठ और चित्रो का मुद्रण कार्य सुरुचिपूर्ण ढग से किया है। चित्रो एव ब्लाक्स को व्यवस्था के लिए मैं अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली तथा जैन जर्नल, कलकत्ता का विशेष रूप से आभारी हू।

राष्ट्रभाषा हिन्दी मे भारतीय प्रतिमाविज्ञान पर प्रकाशित ग्रन्थो की संख्या अत्यन्त सीमित है। जैन प्रतिमा-विज्ञान पर तो हिन्दी मे सम्भवत. कोई समुचित ग्रन्थ है ही नही। मातृभाषा हिन्दी मे इस विषय पर ग्रन्थ लेखन की मेरी प्रबल इच्छा थी। प्रस्तुत ग्रन्थ के माध्यम से मैंने इस दिशा मे एक विनम्र प्रयास किया है। इस दृष्टि से हिन्दी जगत मे भी प्रस्तुत ग्रन्थ का स्वागत होगा, ऐसी आशा करता हूं।

श्रावण पूर्णिमा (रक्षाबन्धन), २०३८,
१५ अगस्त, १९८१

—मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी

विषय-सूची

संकेत-सूची

अ०ला०बु०	दि अड्यार लाइब्रेरी बुलेटिन
आ०स०इं०ऐ०रि०	आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, ऐनुअल रिपोर्ट
इण्डि०एण्टि०	इण्डियन एन्टिक्वेरी
इण्डि०क०	इण्डियन कल्चर
इं०हि०क्वा०	इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली
ईस्ट वे०	ईस्ट ऐण्ड वेस्ट
उ०हि०रि०ज०	उडीसा हिस्टारिकल रिसर्च जर्नल
एपि०इण्डि०	एपिग्राफिया इण्डिका
ऐंशि०इं०	*ऐन्शियण्ट इण्डिया · बुलेटिन ऑव दि आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया*
ओ०आर्ट०	ओरियण्टल आर्ट
का०इ०इ०	कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम
क्वा०ज०मि०सो०	क्वार्टर्ली जर्नल ऑव दि मिथिक सोसाइटी
क्वा०ज०मै०स्टे०	क्वार्टर्ली जर्नल ऑव दि मैसूर स्टेट
छवि०	छवि : गोल्डेन जुबिली वाल्यूम ऑव दि भारत कला भवन, वाराणसी (स० आनन्द कृष्ण)
ज०आं०हि०रि०सो०	जर्नल ऑव दि आन्ध्र हिस्टारिकल रिसर्च सोसाइटी
ज०इं०म्यू०	जर्नल ऑव दि इण्डियन म्यूज़ियम्स, बबई
ज०इं०सो०ओ०आ०	जर्नल ऑव दि इण्डियन सोसाइटी ऑव ओरियण्टल आर्ट
ज०इं०हि०	जर्नल ऑव इण्डियन हिस्ट्री
ज०एम०एस०यू०ब०	जर्नल ऑव दि एम० एस० यूनिवर्सिटी ऑव बडौदा
ज०ए०सो०	जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता
ज०ए०सो०बं०	जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बगाल
ज०ओ०इं०	जर्नल ऑव दि ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट ऑव बडौदा
ज०गु०रि०सो०	जर्नल ऑव दि गुजरात रिसर्च सोसाइटी
ज०बा०ब्रां०रा०ए०सो०	जर्नल ऑव दि बाम्बे ब्राच ऑव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी
ज०बि०उ०रि०सो०	जर्नल ऑव दि बिहार, उडीसा रिसर्च सोसाइटी
ज०बि०रि०सो०	जर्नल ऑव दि बिहार रिसर्च सोसाइटी
ज०यू०पी०हि०सो०	जर्नल ऑव दि यू०पी० हिस्टारिकल सोसाइटी
ज०यू०बां०	जर्नल ऑव दि यूनिवर्सिटी ऑव बाम्बे
ज०रा०ए०सो०	जर्नल ऑव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन
जि०इ०दे०	दि जिन इमेजेज ऑव देवगढ (ले० क्लाज़ ब्रून)
जै०क०स्था०	जैन कला एव स्थापत्य (३ खण्ड, सं० अमलानंद घोष, भारतीय ज्ञानपीठ)
जैन एण्टि०	जैन एण्टिक्वेरी
जै०शि०सं०	जैन शिलालेख संग्रह (भाग १–५–क्रमश · सं० हीरालाल जैन, विजयमूर्ति, विजयमूर्ति, विद्याधर जोहरापुरकर, विद्याधर जोहरापुरकर)

जै०स०प्र०	जैन सत्यप्रकाश
जै०सि०भा०	जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा
त्रि०श०पु०च०	त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (हेमचन्द्रकृत)
पा०टि०	पाद टिप्पणी
पु०मु०	पुनर्मुद्रित
पू०नि०	पूर्वनिर्दिष्ट
प्रो०ट्रां०ओ०कां०	प्रोसिडिंग्स ऐण्ड ट्रान्जेक्शन्स ऑव दि आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फरेन्स
प्रो०रि०आ०स०इ०वे०स०	प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑव दि आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल
बु०ड०का०रि०इं०	बुलेटिन ऑव दि डॅकन कालेज रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना
बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०	बुलेटिन ऑव दि प्रिंस ऑव वेल्स म्यूज़ियम ऑव वेस्टर्न इण्डिया, बम्बई
बु०ब०म्यू०	बुलेटिन ऑव दि बडौदा म्यूज़ियम
बु०म०ग०म्यू०न्यू०सि०	बुलेटिन ऑव दि मद्रास गवर्नमेन्ट म्यूज़ियम, न्यू सिरीज
बु०म्यू०पि०गै०	बुलेटिन म्यूज़ियम ऐण्ड पिक्चर गैलरी, बडौदा
म०जै०वि०गो०जु०वा०	महावीर जैन विद्यालय गोल्डेन जुबिली वाल्यूम, बबई (भाग १, स० ए०एन०उपाध्ये आदि)
मे०आ०स०इं०	मेम्वायर्स ऑव दि आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया
वा०अहिं०	दि वायस ऑव अहिंसा
वि०इ०ज०	विश्वेश्वरानन्द इण्डोलाजिकल जर्नल, होशियारपुर
स०पु०प०	सग्रहालय पुरातत्व पत्रिका, लखनऊ
स्ट०जै०आ०	स्टडीज इन जैन आर्ट (ले० यू०पी०शाह)

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

जैन कला एव प्रतिमाविज्ञान पर पर्याप्त सामग्री सुलभ है । लेकिन अभी तक इस विषय पर अपेक्षित विस्तार से कार्य नही हुआ है । इसी दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ मे मुख्यत उत्तर भारत मे जैन प्रतिमाविज्ञान के विस्तृत अध्ययन का प्रयास किया गया है । यद्यपि तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से ग्रन्थ मे यथासभव दक्षिण भारत के जैन प्रतिमविज्ञान की भी स्थान-स्थान पर चर्चा की गई है । उत्तर भारत से तात्पर्य विन्ध्यपर्वत श्रेणियो के उत्तर के भारतीय उपमहाद्वीप के क्षेत्र से है जो पश्चिम मे गुजरात एव पूर्व मे उडीसा तक विस्तीर्ण है । जैन प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से उत्तर भारत का सम्पूर्ण क्षेत्र किन्ही विशेषताओ के सन्दर्भ मे एक सूत्र मे बँधा है, और जैन प्रतिमाविज्ञान के विकास की प्रारम्भिक और परवर्ती अवस्थाओ तथा उनमे होने वाले परिवर्तनो की दृष्टि से यह क्षेत्र महत्वपूर्ण भी है । जैन धर्म की दृष्टि से भी इसका महत्व है । इसी क्षेत्र मे वर्तमान अवसर्पिणी युग के सभी चौवीस जिनो ने जन्म लिया, यही उनकी कार्य-स्थली थी, तथा यही उन्होने निर्वाण भी प्राप्त किया । सम्भवत इसी कारण प्रारम्भिक जैन ग्रंथो की रचना एव कलात्मक अभिव्यक्तियो का मुख्य क्षेत्र भी उत्तर भारत ही रहा है । जैन आगमो का प्रारम्भिक सकलन एव लेखन यही हुआ तथा प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रारम्भिक ग्रन्थ **कल्पसूत्र, पउमचरिय, अगविज्जा, वसुदेवहिण्डी, आवश्यक निर्युक्ति** आदि भी इसी क्षेत्र मे लिखे गये ।

प्रतिमा लक्षणो के विकास की दृष्टि से भी उत्तर भारत का विविधतापूर्ण अग्रगामी योगदान है । इस विकास के तीन सन्दर्भ हैं . पारम्परिक, अपारम्परिक और अन्य धर्मों की कला परम्पराओ का प्रभाव ।

जैन प्रतिमाविज्ञान के पारम्परिक विकास का हर चरण सर्वप्रथम इसी क्षेत्र मे परिलक्षित होता है । जैन कला का उदय भी इसी क्षेत्र मे हुआ । महावीर की जीवन्तस्वामी मूर्ति इसी क्षेत्र से मिली है, जिसके निर्माण की परम्परा साहित्यिक साक्ष्यो के अनुसार महावीर के जीवनकाल (छठी शती ई० पू०) से ही थी ।[1] प्रारम्भिक जिन मूर्तियाँ लोहानीपुर (पटना) एवं चौसा (भोजपुर) से मिली हैं । मथुरा मे शुग-कुषाण युग मे प्रचुर सख्या मे जैन मूर्तियाँ निर्मित हुईं । ऋषभ की लटकती जटा, पार्श्व के सात सर्पफण, जिनो के वक्ष स्थल मे श्रीवत्स चिह्न और शीर्ष भाग मे उष्णीष[2] एव जिन मूर्तियो मे अष्ट-प्रातिहार्यों[3] और ध्यानमुद्रा[4] के प्रदर्शन की परम्परा मथुरा मे ही प्रारम्भ हुई ।

जिन मूर्तियो मे लाछनो एव यक्ष-यक्षी युगलो का चित्रण भी सर्वप्रथम इसी क्षेत्र मे प्रारम्भ हुआ । जिनो के जीवनदृश्यो, विद्याओ, २४ यक्ष-यक्षियो, १४ या १६ मागलिक स्वप्नो, भरत, बाहुबली, सरस्वती, क्षेत्रपाल, २४ जिनो के

---

१ शाह, यू० पी०, 'ए यूनीक जैन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी', ज०ओ०इं०, खं० १, अ० १, पृ० ७२–७९

२ दक्षिण भारत की जिन मूर्तियो मे उष्णीष नही प्रदर्शित हैं । श्रीवत्स चिह्न भी वक्ष स्थल के मध्य मे न होकर सामान्यत दाहिनी ओर उत्कीर्ण है । दक्षिण भारत की जिन मूर्तियो मे श्रीवत्स चिह्न का अभाव भी दृष्टिगत होता है । उन्निथन, एन० जी०, 'रेलिक्स ऑव जैनिजम-आलतूर', ज०इ०हि०, ख० ४४, भाग १, पृ० ५४२, जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ५५६

३ सिंहासन, अशोकवृक्ष, प्रभामण्डल, छत्रत्रयी, देवदुन्दुभि, सुरपुष्प-वृष्टि, चामरधर, दिव्यध्वनि ।

४ मथुरा के आयागपटो पर सर्वप्रथम ध्यानमुद्रा मे आसीन जिन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हुईं । इसके पूर्व की मूर्तियो (लोहानीपुर, चौसा) मे जिन कायोत्सर्ग-मुद्रा मे खडे हैं ।

माता पिता, अष्ट-दिक्पालो, नवग्रहो, एवं अन्य देवो के प्रतिमा-निरूपण से सम्बन्धित उल्लेख और उनकी पदार्थगत अभिव्यक्ति भी सर्वप्रथम इसी क्षेत्र मे हुई ।[1]

उत्तर भारत का क्षेत्र परम्परा-विरुद्ध और परम्परा मे अप्राप्य प्रकार के चित्रणो की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था ।[2] देवगढ एव खजुराहो की द्वितीर्थी, त्रितीर्थी जिन मूर्तियाँ, कुछ जिन मूर्तियो मे परम्परा सम्मत यक्ष-यक्षियो की अनुपस्थिति,[3] देवगढ एव खजुराहो की बाहुबली मूर्तियो मे जिन मूर्तियो के समान अष्ट-प्रातिहार्यों एवं यक्ष-यक्षी का अंकन, देवगढ़ की त्रितीर्थी जिन मूर्तियो मे जिनो के साथ बाहुबली, सरस्वती एव भरत चक्रवर्ती का अकन इस कोटि के कुछ प्रमुख उदाहरण है । कुछ स्थलो (जालोर एव कुम्भारिया) की मूर्तियो मे चक्रेश्वरी एवं अम्बिका यक्षियो और सर्वानुभूति यक्ष के मस्तक पर सर्पफण प्रदर्शित हैं । कुम्भारिया, विमलवसही, तारगा, लूणवसही आदि श्वेताम्बर स्थलो पर ऐसे कई देवो की मूर्तियाँ हैं जिनके उल्लेख किसी जैन ग्रन्थ मे नही प्राप्त होते ।

जैन शिल्प मे एकरसता के परिहार के लिए, स्थापत्य के विशाल आयामो को तदनुरूप शिल्पगत वैविध्य से सयोजित करने के लिए एव अन्य धर्मावलम्बियो को आकर्षित करने के लिए अन्य सम्प्रदायो के कुछ देवो को भी विभिन्न स्थलो पर आकलित किया गया । खजुराहो का पार्श्वनाथ जैन मन्दिर इसका एक प्रमुख उदाहरण है । मन्दिर के मण्डोवर पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम एव बलराम आदि की स्वतन्त्र एव शक्तियो के साथ आलिंगन मूर्तियाँ है ।[4] मथुरा की एक अम्बिका मूर्ति मे बलराम, कृष्ण, कुबेर एव गणेश का, मथुरा एव देवगढ की नेमि मूर्तियो मे बलराम-कृष्ण का, विमलवसही की एक रोहिणी मूर्ति मे शिव और गणेश का, ओसिया की देवकुलिकाओ और कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर पर गणेश का,[5] विमलवसही और लूणवसही मे कृष्ण के जीवनदृश्यो का एव विमलवसही मे षोडश-भुज नरसिंह का अकन ऐसे कुछ अन्य उदाहरण हैं ।

जटामुकुट से शोभित वृषभवाहना देवी का निरूपण श्वेताम्बर स्थलो पर विशेष लोकप्रिय था । देवी की दो भुजाओ मे सर्प एव त्रिशूल है । देवी का लाक्षणिक स्वरूप पूर्णत. हिन्दू शिवा से प्रभावित है ।[6] कुछ श्वेताम्बर स्थलो पर प्रज्ञप्ति महाविद्या की एक भुजा मे कुक्कुट प्रदर्शित है, जो हिन्दू कौमारी का प्रभाव है ।[7] कुछ उदाहरणो मे गौरी महाविद्या का वाहन गोधा के स्थान पर वृषभ है । यह हिन्दू माहेश्वरी का प्रभाव है ।[8] राज्य सग्रहालय, लखनऊ (६६ २२५, जी ३१२) की दो अम्बिका मूर्तियो मे देवी के हाथो मे दर्पण, त्रिशूल-घण्टा और पुस्तक प्रदर्शित हैं, जो उमा और शिवा का प्रभाव है ।[9]

---

१ दक्षिण भारत के मूर्ति अवशेषो मे विद्याओ, २४ यक्षियो, आयागपट, जीवन्तस्वामी महावीर, जैन युगल एवं जिनो के माता-पिता की मूर्तियाँ नही हैं ।

२ उत्तर भारत मे होने वाले परिवर्तनो से दक्षिण भारत के कलाकार अपरिचित थे ।

३ गुजरात-राजस्थान की जिन मूर्तियों मे सभी जिनो के साथ सर्वानुभूति एव अम्बिका निरूपित है जो जैन परम्परा मे नेमि के यक्ष-यक्षी हैं । ऋषभ एव पार्श्व की कुछ मूर्तियो मे पारम्परिक यक्ष-यक्षी भी अकित हैं ।

४ ब्रुन, क्लाज, 'दि फिगर ऑव दि टू लोअर रिलीफ्स ऑन दि पार्श्वनाथ टेम्पल् ऐट खजुराहो', 'आचार्य श्रीविजयवल्लभ सूरि स्मारक ग्रन्थ, बम्बई, १९५६, पृ० ७–३५

५ उल्लेखनीय है कि गणेश की लाक्षणिक विशेषताएँ सर्वप्रथम १४१२ ई० के जैन ग्रन्थ आचारदिनकर मे ही निरूपित हुई ।

६ राव, टी० ए० गोपीनाथ, एलिमेण्ट्स ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, खण्ड १, भाग २, वाराणसी, १९७१ (पु० मु०), पृ० ३६६

७ वही, पृ० ३८७–८८

८ वही, पृ० ३६६, ३८७

९ वही, पृ० ३६०, ३६६, ३८७

इस क्षेत्र मे श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो परम्परा के ग्रन्थ एव महत्वपूर्ण कला केन्द्र है ।[1] इस प्रकार इस क्षेत्र की सामग्री के अध्ययन से श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो के ही प्रतिमाविज्ञान के तुलनात्मक एव क्रमिक विकास का निरूपण सम्भव है । इससे उनके आपसी सम्बन्धो पर भी प्रकाश पड सकता है । इस क्षेत्र मे एक ओर उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, उडीसा एव बगाल मे दिगम्बर सम्प्रदाय के कलावशेष और दूसरी ओर गुजरात एव राजस्थान मे श्वेताम्बर कलाकेन्द्र स्वतन्त्र रूप से पल्लवित और पुष्पित हुए । गुजरात और राजस्थान मे दिगम्बर सम्प्रदाय की भी कलाकृतियाँ मिली हैं, जो दोनो सम्प्रदायो के सहअस्तित्व की सूचक है । गुजरात और राजस्थान मे हरिवशपुराण, प्रतिष्ठासारसंग्रह, प्रतिष्ठासारोद्धार आदि कई महत्वपूर्ण दिगम्बर जैन ग्रन्थो की भी रचना हुई । इस क्षेत्र मे ऐसे अनेक समृद्ध जैन कला केन्द्र भी स्थित हैं, जहाँ कई शताब्दियो की मूर्ति सम्पदा सुरक्षित है । इनमे मथुरा, चौसा, देवगढ, राजगिर, अकोटा, कुम्भारिया, तारगा, ओसिया, विमलवसही, लूणवसही, जालोर, खजुराहो एव उदयगिरि-खण्डगिरि उल्लेखनीय हैं ।

प्रस्तुत ग्रन्थ की समय-सीमा प्रारम्भिक काल से बारहवी शती ई० तक है ।

पूर्वगामी शोधकार्य

सर्वप्रथम कनिंघम की रिपोर्ट्स मे उत्तर भारत के कई स्थलो की जैन मूर्तियो के उल्लेख मिलते है । इन रिपोर्ट्स मे ग्वालियर, बूढी चादेरी, खजुराहो एव मथुरा आदि की जैन मूर्तियो के उल्लेख हैं ।[2] खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर के वि० स० १०११ (=९५४ ई०) और शान्तिनाथ मन्दिर की विशाल शान्ति प्रतिमा के वि० स० १०८५ (=१०२८ ई०) के लेखो का उल्लेख सर्वप्रथम कनिंघम की रिपोर्ट्स मे हुआ है । कनिंघम ने ऋषभ, शान्ति, पार्श्व एव महावीर की कुछ मूर्तियो की पहचान भी की है ।

प्रारम्भिक विद्वानो के कार्य मुख्यत. जैन प्रतिमाविज्ञान के सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रारम्भिक स्थल ककाली टीला (मथुरा) की शिल्प सामग्री पर है । यहाँ से ल० १५० ई० पू० से १०२३ ई० के मध्य की सामग्री मिली है । ककाली टीले की जैन मूर्तियो को प्रकाश मे लाने और राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे सुरक्षित कराने का श्रेय फ्यूरर को है । फ्यूरर ने प्राविन्शियल म्यूजियम, लखनऊ के १८८९ एव १८९०-९१ की वार्षिक रिपोर्ट्स मे ककाली टीला की जैन मूर्तियो का उल्लेख किया है ।[3] फ्यूरर ने ही सर्वप्रथम मूर्ति लेखो के आधार पर मथुरा की जैन शिल्प सामग्री की समय-सीमा १५० ई० पू० से १०२३ ई० बतायी और १५० ई० पू० से भी पहले मथुरा मे एक जैन मन्दिर की विद्यमानता का उल्लेख किया ।[4] ब्यूहलर ने मथुरा की कुछ विशिष्ट जैन मूर्तियो के अभिप्रायो की विद्वत्तापूर्ण विवेचना की है । इनमे आयागपटो एव महावीर के गर्भापहरण के दृश्य से सम्बन्धित फलक प्रमुख है ।[5] ब्यूहलर ने मथुरा के जैन अभिलेखो को भी प्रकाशित किया है, जिनसे मथुरा मे जैन धर्म और सघ की स्थिति पर प्रकाश पडता है और यह भी ज्ञात होता है कि किस सीमा तक शासक वर्ग, व्यापारी, विदेशी एव सामान्य जनो का जैन धर्म एव कला को समर्थन मिला ।[6] वी० ए० स्मिथ ने मथुरा के जैन स्तूप और अन्य सामग्री पर एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमे उन्होने साहित्यिक साक्ष्यो को विश्वसनीय मानते हुए मथुरा के जैन स्तूप को भारत का प्राचीनतम स्थापत्यगत अवशेष माना है ।[7] स्मिथ ने जैन आयागपटो, विशिष्ट फलको एव कुछ

---

१ दक्षिण भारत की जैन मूर्तिकला दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बद्ध है ।

२ कनिंघम, ए०, आ०स०इ०रि०, १८६४-६५, ख० २, पृ० ३६२-६५, ४०१-०४, ४१२-१४, ४३१-३५, १८७१-७२, ख० ३, पृ० १९-२०, ४५-४६

३ स्मिथ, वी० ए०, दि जैन स्तूप ऐण्ड अदर एण्टिक्विटीज ऑव मथुरा, वाराणसी, १९६९ (पु० मु०), पृ० २-४

४ वही, पृ० ३

५ ब्यूहलर, जी०, 'स्पेसिमेन्स ऑव जैन स्कल्पचर्स फ्राम मथुरा', एपि० इण्डि०, ख० २, पृ० ३११-२३

६ ब्यूहलर, जी०, 'न्यू जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', एपि० इण्डि०, ख० १, पृ० ३७१, ९३; 'फर्दर जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', एपि० इण्डि०, खं० १, पृ० ३९३-९७; खं० २, पृ० १९५-२१२

७ स्मिथ, वी० ए०, पू० नि०, पृ० १२-१३

माता पिता, अष्ट-दिक्पालो, नवग्रहो, एवं अन्य देवो के प्रतिमा-निरूपण से सम्बन्धित उल्लेख और उनकी पदार्थगत अभिव्यक्ति भी सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में हुई।[1]

उत्तर भारत का क्षेत्र परम्परा-विरुद्ध और परम्परा मे अप्राप्य प्रकार के चित्रणों की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था।[2] देवगढ एव खजुराहो की द्वितीर्थी, त्रितीर्थी जिन मूर्तियां, कुछ जिन मूर्तियो मे परम्परा सम्मत यक्ष-यक्षियो की अनुपस्थिति,[3] देवगढ एव खजुराहो की बाहुबली मूर्तियो में जिन मूर्तियों के समान अष्ट-प्रातिहार्यों एवं यक्ष-यक्षी का अकन, देवगढ की त्रितीर्थी जिन मूर्तियो मे जिनो के साथ बाहुबली, सरस्वती एव भरत चक्रवर्ती का अंकन इस कोटि के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं। कुछ स्थलों (जालोर एव कुम्भारिया) की मूर्तियो मे चक्रेश्वरी एव अम्बिका यक्षियो और सर्वानुभूति यक्ष के मस्तक पर सर्पफण प्रदर्शित हैं। कुम्भारिया, विमलवसही, तारंगा, लूणवसही आदि श्वेताम्बर स्थलों पर ऐसे कई देवों की मूर्तियाँ हैं जिनके उल्लेख किसी जैन ग्रन्थ मे नहीं प्राप्त होते।

जैन शिल्प मे एकरसता के परिहार के लिए, स्थापत्य के विशाल आयामो को तदनुरूप शिल्पगत वैविध्य में सयोजित करने के लिए एव अन्य धर्मावलम्बियों को आकर्षित करने के लिए अन्य सम्प्रदायो के कुछ देवो को भी विभिन्न स्थलों पर आकलित किया गया। खजुराहो का पार्श्वनाथ जैन मन्दिर इसका एक प्रमुख उदाहरण है। मन्दिर के मण्डोवर पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम एव बलराम आदि की स्वतन्त्र एव शक्तियो के साथ आलिंगन मूर्तियाँ हैं।[4] मथुरा की एक अम्बिका मूर्ति मे बलराम, कृष्ण, कुबेर एव गणेश का, मथुरा एव देवगढ की नेमि मूर्तियो मे बलराम-कृष्ण का, विमलवसही की एक रोहिणी मूर्ति मे शिव और गणेश का, ओसिया की देवकुलिकाओं और कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर पर गणेश का,[5] विमलवसही और लूणवसही मे कृष्ण के जीवनदृश्यो का एव विमलवसही में षोडश-भुज नरसिंह का अंकन ऐसे कुछ अन्य उदाहरण हैं।

जटामुकुट से शोभित वृषभवाहना देवी का निरूपण श्वेताम्बर स्थलों पर विशेष लोकप्रिय था। देवी की दो भुजाओं मे सर्प एव त्रिशूल हैं। देवी का लाक्षणिक स्वरूप पूर्णत हिन्दू शिवा से प्रभावित है।[6] कुछ श्वेताम्बर स्थलो पर प्रज्ञप्ति महाविद्या की एक भुजा मे कुक्कुट प्रदर्शित है, जो हिन्दू कौमारी का प्रभाव है।[7] कुछ उदाहरणो मे गौरी महाविद्या का वाहन गोधा के स्थान पर वृषभ है। यह हिन्दू माहेश्वरी का प्रभाव है।[8] राज्य सग्रहालय, लखनऊ (६६ २२५, जी ३१२) की दो अम्बिका मूर्तियो मे देवी के हाथो मे दर्पण, त्रिशूल-घण्टा और पुस्तक प्रदर्शित हैं, जो उमा और शिवा का प्रभाव है।[9]

---

१ दक्षिण भारत के मूर्ति अवशेषो मे विद्याओ, २४ यक्षियो, आयागपट, जीवन्तस्वामी महावीर, जैन युगल एव जिनो के माता-पिता की मूर्तियाँ नहीं हैं।

२ उत्तर भारत मे होने वाले परिवर्तनो से दक्षिण भारत के कलाकार अपरिचित थे।

३ गुजरात-राजस्थान की जिन मूर्तियों में सभी जिनो के साथ सर्वानुभूति एव अम्बिका निरूपित हैं जो जैन परम्परा में नेमि के यक्ष-यक्षी हैं। ऋषभ एवं पार्श्व की कुछ मूर्तियों मे पारम्परिक यक्ष-यक्षी भी अंकित हैं।

४ ब्रुन, क्लाउ, 'दि फिगर ऑव दि टू लोअर रिलीफ्स ऑन दि पार्श्वनाथ टेम्पल् ऐट खजुराहो', 'आचार्य श्रीविजयवल्लभ सूरि स्मारक ग्रन्थ, बम्बई, १९५६, पृ० ७–३५

५ उल्लेखनीय है कि गणेश की लाक्षणिक विशेषताएँ सर्वप्रथम १४१२ ई० के जैन ग्रन्थ आचारदिनकर मे ही निरूपित हुई।

६ राव, टी० ए० गोपीनाथ, एलिमेण्ट्स ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, खण्ड १, भाग २, वाराणसी, १९७१ (पु० मु०), पृ० ३६६

७ वही, पृ० ३८७–८८

८ वही, पृ० ३६६, ३८७

९ वही, पृ० ३६०, ३६६, ३८७

इस क्षेत्र मे श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो परम्परा के ग्रन्थ एव महत्वपूर्ण कला केन्द्र है।[1] इस प्रकार इस क्षेत्र की सामग्री के अध्ययन से श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो के ही प्रतिमाविज्ञान के तुलनात्मक एव क्रमिक विकास का निरूपण सम्भव है। इससे उनके आपसी सम्बन्धो पर भी प्रकाश पड सकता है। इस क्षेत्र मे एक ओर उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, उडीसा एव बगाल मे दिगम्बर सम्प्रदाय के कलावशेष और दूसरी ओर गुजरात एव राजस्थान मे श्वेताम्बर कलाकेन्द्र स्वतन्त्र रूप से पल्लवित और पुष्पित हुए। गुजरात और राजस्थान मे दिगम्बर सम्प्रदाय की भी कलाकृतियाँ मिली हैं, जो दोनो सम्प्रदायो के सहअस्तित्व की सूचक हैं। गुजरात और राजस्थान मे **हरिवंशपुराण, प्रतिष्ठासारसंग्रह, प्रतिष्ठासारोद्धार** आदि कई महत्वपूर्ण दिगम्बर जैन ग्रन्थो की भी रचना हुई। इस क्षेत्र मे ऐसे अनेक समृद्ध जैन कला केन्द्र भी स्थित है, जहाँ कई शताब्दियो की मूर्ति सम्पदा सुरक्षित है। इनमे मथुरा, चौसा, देवगढ, राजगिर, अकोटा, कुम्भारिया, तारगा, ओसिया, विमलवसही, लूणवसही, जालोर, खजुराहो एव उदयगिरि-खण्डगिरि उल्लेखनीय हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ की समय-सीमा प्रारम्भिक काल से बारहवी शती ई० तक है।

पूर्वगामी शोधकार्य

सर्वप्रथम कनिंघम की रिपोर्ट्‌स मे उत्तर भारत के कई स्थलो की जैन मूर्तियो के उल्लेख मिलते है। इन रिपोर्ट्‌स मे ग्वालियर, बूढी चादेरी, खजुराहो एव मथुरा आदि की जैन मूर्तियो के उल्लेख हैं।[2] खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर के वि० सं० १०११ (=९५४ ई०) और शान्तिनाथ मन्दिर की विशाल शान्ति प्रतिमा के वि० स० १०८५ (=१०२८ ई०) के लेखो का उल्लेख सर्वप्रथम कनिंघम की रिपोर्ट्‌स मे हुआ है। कनिंघम ने ऋषभ, शान्ति, पार्श्व एव महावीर की कुछ मूर्तियो की पहचान भी की है।

प्रारम्भिक विद्वानो के कार्य मुख्यत. जैन प्रतिमाविज्ञान के सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रारम्भिक स्थल ककाली टीला (मथुरा) की शिल्प सामग्री पर है। यहाँ से ल० १५० ई० पू० से १०२३ ई० के मध्य की सामग्री मिली है। ककाली टीले की जैन मूर्तियो को प्रकाश मे लाने और राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे सुरक्षित कराने का श्रेय फ्यूरर को है। फ्यूरर ने प्राविन्शियल म्यूजियम, लखनऊ के १८८९ एव १८९०-९१ की वार्षिक रिपोर्ट्‌स मे ककाली टीला की जैन मूर्तियो का उल्लेख किया है।[3] फ्यूरर ने ही सर्वप्रथम मूर्ति लेखो के आधार पर मथुरा की जैन शिल्प सामग्री की समय-सीमा १५० ई० पू० से १०२३ ई० बतायी और १५० ई० पू० से भी पहले मथुरा मे एक जैन मन्दिर की विद्यमानता का उल्लेख किया।[4] ब्यूहलर ने मथुरा की कुछ विशिष्ट जैन मूर्तियो के अभिप्रायो की विद्वत्तापूर्ण विवेचना की है। इनमे आयागपटो एव महावीर के गर्भापहरण के दृश्य से सम्बन्धित फलक प्रमुख है।[5] ब्यूहलर ने मथुरा के जैन अभिलेखो को भी प्रकाशित किया है, जिनसे मथुरा मे जैन धर्म और सघ की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है और यह भी ज्ञात होता है कि किस सीमा तक शासक वर्ग, व्यापारी, विदेशी एव सामान्य जनो का जैन धर्म एव कला को समर्थन मिला।[6] वी० ए० स्मिथ ने मथुरा के जैन स्तूप और अन्य सामग्री पर एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमे उन्होंने साहित्यिक साक्ष्यो को विश्वसनीय मानते हुए मथुरा के जैन स्तूप को भारत का प्राचीनतम स्थापत्यगत अवशेष माना है।[7] स्मिथ ने जैन आयागपटो, विशिष्ट फलको एव कुछ

---

१ दक्षिण भारत की जैन मूर्तिकला दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बद्ध है।

२ कनिंघम, ए०, आ०स०इं०रि०, १८६४-६५, ख० २, पृ० ३६२-६५, ४०१-०४, ४१२-१४, ४३१-३५, १८७१-७२, ख० ३, पृ० १९-२०, ४५-४६

३ स्मिथ, वी० ए०, **दि जैन स्तूप ऐण्ड अदर एण्टिक्विटीज ऑव मथुरा**, वाराणसी, १९६९ (पु० मु०), पृ० २-४

४ वही, पृ० ३

५ ब्यूहलर, जी०, 'स्पेसिमेन्स ऑव जैन स्कल्पचर्स फ्राम मथुरा', **एपि० इण्डि०**, ख० २, पृ० ३११-२३

६ ब्यूहलर, जी०, 'न्यू जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', **एपि० इण्डि०**, ख० १, पृ० ३७१, ९३, 'फर्दर जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', **एपि० इण्डि०**, ख० १, पृ० ३९३-९७, खं० २, पृ० १९५-२१२

७ स्मिथ, वी० ए०, पू० नि०, पृ० १२-१३

जिन मूर्तियों के उल्लेख किये है जिनमे आयागपटो के उल्लेख विशेष महत्वपूर्ण हैं। इन्होने कुछ जिन मूर्तियों की महावीर मे गलत पहचान की है। स्मिथ ने सिंहासन के सूचक सिंहों को महावीर का सिंह लाछन मान लिया है।[१]

डी० आर० भण्डारकर पहले भारतीय विद्वान् है जिन्होने जैन प्रतिमाविज्ञान पर कुछ कार्य किया है। ओसिया[२] के मन्दिरो पर लिखे लेख मे उस स्थल के जैन मन्दिर का भी उल्लेख है। दो अन्य लेखो मे भण्डारकर ने जैन ग्रन्थो के आधार पर मुनिसुव्रत के जीवन की दो महत्वपूर्ण घटनाओ (अश्वावबोध और शकुनिका विहार) का चित्रण करनेवाले पट्ट एव जिन-समवसरण की विस्तृत व्याख्या की है।[३] ए० के० कुमारस्वामी ने जैन कला पर एक लेख लिखा है, जिसमे जैन कल्पसूत्र के कुछ चित्रो के विवरण भी हैं।[४] यक्षो पर लिखी पुस्तक मे कुमारस्वामी ने सक्षेप मे जैन धर्म मे भी यक्ष पूजा के प्रारम्भिक स्वरूप की विवेचना की है।[५] यह अध्ययन जैन धर्म मे यक्ष पूजा की प्राचीनता और उसके प्रारम्भिक स्वरूप के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। एफ० कीलहार्न[६] और एन० सी० मेहता[७] ने क्रमश नेमि और अजित की विदेशी सग्रहालयो मे सुरक्षित मूर्तियो पर लेख लिखे है।

जैन कला पर आर० पी० चन्दा के भी कुछ महत्वपूर्ण कार्य हैं। इनमे पहला राजगिर के जैन कलावशेष से सम्बन्धित है।[८] लेख मे नेमि की एक लाछनयुक्त गुप्तकालीन मूर्ति का उल्लेख है। यह मूर्ति लाछनयुक्त प्राचीनतम जिन मूर्ति है। एक अन्य लेख मे मोहनजोदडो की मुहरो और हडप्पा की एक नग्न मूर्तिका के उत्कीर्णन मे प्राप्त मुद्रा (जो कायोत्सर्ग के समान है) के आधार पर सैंधव सभ्यता मे जैन धर्म की विद्यमानता की सम्भावना व्यक्त की गई है।[९] यह सम्भावना कायोत्सर्ग-मुद्रा के केवल जैन धर्म और कला मे ही प्राप्त होने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। चदा की ब्रिटिश सग्रहालय की मूर्तियो पर प्रकाशित पुस्तक मे सग्रहालय की जैन मूर्तियो के भी उल्लेख हैं।[१०] इनमे उडीसा से मिली कुछ जैन मूर्तियाँ महत्वपूर्ण हैं।

एच० एम० जानसन ने एक लेख मे त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र के आधार पर २४ यक्ष-यक्षियो के लाक्षणिक स्वरूपो का निरूपण किया है।[११] मुहम्मद हमीद कुरेशी ने बिहार और उडीसा के प्राचीन वास्तु अवशेषो पर एक पुस्तक लिखी है।[१२] इसमे उडीसा की उदयगिरि-खण्डगिरि जैन गुफाओ की सामग्री का विस्तृत विवरण है। जैन मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से नवमुनि एव बारभुजी गुफाओ की जिन एव यक्षी मूर्तियो के विवरण विशेष महत्व के हैं।

---

१ वही, पृ० ४९, ५१-५२

२ भण्डारकर, डी० आर०, 'दि टेम्पल्स ऑव ओसिया', आ०स०इ०ऐ०रि०, १९०८-०९, पृ० १००-१५

३ भण्डारकर, डी० आर०, 'जैन आइकानोग्राफी', आ०स०इ०ऐ०रि०, १९०५-०६, पृ० १४१-४९, इण्डि० एण्टि०, ख० ४०, पृ० १२५-३०

४ कुमारस्वामी, ए० के०, 'नोट्स ऑन जैन आर्ट', जर्नल ऑव दि इण्डियन आर्ट ऐण्ड इण्डस्ट्री, ख० १६, अ० १२०, पृ० ८१-९७

५ कुमारस्वामी, ए० के०, यक्षज, दिल्ली, १९७१ (पु० मु०)

६ कीलहार्न, एफ०, 'ऑन ए जैन स्टैचू इन दि हार्निमन म्यूजियम', ज०रा०ए०सो०, १८९८, पृ० १०१-०२

७ मेहता, एन० सी०, 'ए मेडिवल जैन इमेज ऑव अजितनाथ–१०५३ ए० डी०', इण्डि० एण्टि०, ख० ५६, पृ० ७२–७४

८ चदा, आर० पी०, 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', आ०स०इ०ऐ०रि०, १९२५–२६, पृ० १२१–२७

९ चदा, आर० पी०, 'सिन्ध फाइव थाऊजण्ड इयर्स एगो', माडर्न रिव्यू, ख० ५२, अ० २, पृ० १५१–६०

१० चदा, आर० पी०, मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर इन दि ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन, १९३६

११ जानसन, एच० एम०, 'श्वेताम्बर जैन आइकानोग्राफी', इण्डि० एण्टि०, ख० ५६, पृ० २३–२६

१२ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, लिस्ट ऑव ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्राविन्स ऑव बिहार ऐण्ड उडीसा, कलकत्ता, १९३१

टी० एन० रामचन्द्रन ने तिरूपरुत्तिकुणरम (तमिलनाडु) के मन्दिरो पर एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक मे उस स्थल की जैन सामग्री के विस्तृत उल्लेख हैं और साथ ही जैन देवकुल और प्रतिमाविज्ञान के विभिन्न पक्षो की विवेचना भी की गई है।[१] उल्लेखनीय है कि रामचन्द्रन के पूर्व के सभी कार्य किसी स्थल विशेष की जैन मूर्ति सामग्री, स्वतन्त्र जिन मूर्तियो एव जैन प्रतिमाविज्ञान के किसी पक्ष विशेष के अध्ययन से सम्बन्धित हैं। सर्वप्रथम रामचन्द्रन ने ही समग्र दृष्टि से जैन प्रतिमाविज्ञान पर कार्य किया। इस ग्रन्थ के लेखन मे मुख्यत दक्षिण भारत के ग्रन्थो एवं मूर्ति अवशेषो से सहायता ली गई है। अत दक्षिण भारत के जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से इस ग्रन्थ का विशेष महत्व है। ग्रन्थ मे जिनो एव अन्य शलाका-पुरुषो, २४ यक्ष-यक्षियो एव अन्य देवो के लाक्षणिक स्वरूपो के उल्लेख हैं। लेकिन विद्याओ एवम् जीवन्तस्वामी महावीर की कोई चर्चा नही है। रामचन्द्रन की एक अन्य पुस्तक मे उत्तर और दक्षिण भारत के कुछ प्रमुख जैन स्थलो की मूर्तियो के उल्लेख हैं।[२] प्रारम्भ मे जैन प्रतिमाविज्ञान का सक्षिप्त परिचय भी दिया गया है, जिसमे जैन देवकुल पर हिन्दू देवकुल के प्रभाव की चर्चा से सम्बन्धित अश विशेष महत्वपूर्ण है। एक लेख मे रामचन्द्रन ने मोहनजोदडो की मुहरो एवं हडप्पा की मूर्ति की नग्नता एव खडे होने की मुद्रा (कायोत्सर्ग के समान) के आधार पर सैन्धव सभ्यता मे जैन धर्म एव जिन मूर्ति की विद्यमानता की सम्भावना व्यक्त की है।[3] उन्होने सैन्धव सभ्यता मे प्रथम जिन ऋषभनाथ की विद्यमानता स्वीकार की है, जो ऐतिहासिक प्रमाणो के अभाव मे स्वीकार्य नही है।

डब्ल्यू० नार्मन ब्राउन ने जैन कल्पसूत्र के चित्रो पर एक पुस्तक लिखी है।[४] के० पी० जैन[५] और त्रिवेणीप्रसाद[६] ने जिन प्रतिमाविज्ञान पर सक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण लेख लिखे हैं। इनमे जिन मूर्तियो से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण पक्षो, यथा मुद्राओ, अष्ट-प्रातिहार्यों, श्रीवत्स आदि की साहित्यिक सामग्री के आधार पर विवेचना की गई है। के० पी० जायसवाल[७] एव ए० बनर्जी-शास्त्री[८] ने लोहानीपुर की जिन मूर्ति पर लेख लिखे हैं। इन लोगो ने विभिन्न प्रमाणो के आधार पर लोहानीपुर जिन मूर्ति का समय मौर्यकाल माना है। आज सभी विद्वान् इसे प्राचीनतम जिन मूर्ति मानते हैं। बी० भट्टाचार्य ने जैन प्रतिमाविज्ञान पर एक सक्षिप्त लेख लिखा है, जिसमे जैन देवकुल की विभिन्न देवियो की सूची विशेष महत्व की है।[९]

टी० एन० रामचन्द्रन के बाद जैन प्रतिमाविज्ञान पर दूसरा महत्वपूर्ण कार्य बी० सी० भट्टाचार्य का है, जिन्होंने जैन प्रतिमाविज्ञान पर एक पुस्तक लिखी है।[१०] भट्टाचार्य ने ग्रन्थ मे केवल उत्तर भारत की स्रोत सामग्री का उपयोग

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन, **तिरूपरुत्तिकुणरम ऐण्ड इट्स टेम्पल्स**, बु०म०ग०म्यू०, न्यू०सि०, ख० १, भाग ३, मद्रास, १९३४

२ रामचन्द्रन, टी० एन०, **जैन मान्युमेण्ट्स ऐण्ड प्लेसेज ऑव फर्स्ट क्लास इम्पार्टेन्स**, कलकत्ता, १९४४

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, 'हडप्पा ऐण्ड जैनिजम', (हिन्दी अनुवाद), अनेकान्त, वर्ष १४, जनवरी १९५७, पृ० १५७–६१

४ ब्राउन, डब्ल्यू० एन, **ए डेस्क्रिप्टिव ऐण्ड इलस्ट्रेटेड केटलॉग ऑव मिनियेचर पेण्टिंग्स ऑव दि जैन कल्पसूत्र**, वाशिंगटन, १९३४

५ जैन, कामताप्रसाद, 'जैन मूर्तियाँ', जैन एण्टि०, ख० २, अ० १, पृ० ६–१७

६ प्रसाद, त्रिवेणी, 'जैन प्रतिमा-विधान', जैन एण्टि०, खं० ४, अ० १, पृ० १६–२३

७ जायसवाल, के० पी०, 'जैन इमेज ऑव मौर्य पिरियड', ज०वि०उ०रि०सो०, ख० २३, भाग १, पृ० १३०-३२

८ बनर्जी-शास्त्री, ए०, 'मौर्यन स्कल्पचर्स फ्राम लोहानीपुर, पटना', ज०वि०उ०रि०सो०, ख० २६, भाग २, पृ० १२०–२४

९ भट्टाचार्य, बी०, 'जैन आइकानोग्राफी', **जैनाचार्य श्रीआत्मानन्द जन्म शताब्दी स्मारक ग्रन्थ**, बम्बई, १९३६, पृ० ११४–२१

१० भट्टाचार्य, बी० सी०, **दि जैन आइकानोग्राफी**, लाहौर, १९३९

किया है। लेखक ने २४ जिनो एव यक्ष-यक्षियो के साथ ही १६ विद्याओ, सरस्वती, अष्ट-दिक्पालो, नवग्रहो एव जैन देवकुल के अन्य देवो के प्रतिमा लक्षणों की विस्तृत चर्चा की है। सर्वप्रथम उन्होने ही उत्तर भारत के कई महत्वपूर्ण श्वेताम्बर एव दिगम्बर लाक्षणिक ग्रन्थो तथा मथुरा की जैन मूर्तियो का समुचित उपयोग किया है। किन्तु पुस्तक मे मथुरा के अतिरिक्त अन्य स्थलो से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री का उपयोग नगण्य है, अत इस पुरातात्विक साक्ष्य के तुलनात्मक अध्ययन का भी अभाव है। भट्टाचार्य ने जैनेतर एव प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो का भी उपयोग नही किया है। पुस्तक मे जैन धर्म के प्रचलित प्रतीको, समवसरण, बाहुबली, भरत चक्रवर्ती, ब्रह्मशान्ति यक्ष, जीवन्तस्वामी महावीर एव कुछ अन्य विपयो की चर्चा ही नही है। गुप्त युग मे यक्ष-यक्षियो के चित्रण की नियमितता, यक्षियो के स्वरूप निर्धारण के बाद विद्याओ का स्वरूप निर्धारण, कल्पसूत्र मे जिन-लाछनो का उल्लेख एव मथुरा की गुप्तकालीन जैन मूर्तियो मे जिनो के लाछनो का प्रदर्शन—ये भट्टाचार्य की कुछ ऐसी स्थापनाएँ हैं जो साहित्यिक और पुरातात्विक प्रमाणो के परिप्रेक्ष्य मे स्वीकार्य नही है। जैन प्रतिमा-विज्ञान पर अब तक का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ होने के बाद भी उपर्युक्त कारणो से इसकी उपयोगिता सीमित है।

एच० डी० सकलिया ने जैन प्रतिमाविज्ञान एव सम्बन्धित पक्षो पर कई लेख लिखे हैं। इनमे 'जैन आइकानो-ग्राफी' शीर्षक लेख विशेष महत्वपूर्ण है।[1] इसमे प्रारम्भ मे जैन देवकुल के सदस्यो का प्रतिमा-निरूपण किया गया है, तदुपरान्त बम्बई के सेण्ट ज़ेवियर सग्रहालय की जैन धातु मूर्तियो का विवरण दिया गया है। सकलिया के अन्य महत्वपूर्ण लेख जैन यक्ष-यक्षियो, देवगढ के जैन अवशेषो एव गुजरात-काठियावाड की प्रारम्भिक जैन मूर्तियो से सम्बन्धित हैं।[2] इनमे विभिन्न स्थलो की जैन मूर्ति-सामग्री का उल्लेख है। काठियावाड की धाक गुफा की दिगम्बर जैन मूर्तियाँ यक्ष-यक्षी युगलो से युक्त प्रारम्भिक जिन मूर्तियाँ हैं।

जैन प्रतिमाविज्ञान पर सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य यू० पी० शाह ने किया है।[3] पिछले ३० वर्षो से अधिक समय मे वे मुख्यत जैन प्रतिमाविज्ञान पर ही कार्य कर रहे हैं। शाह ने प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो और विभिन्न पुरातात्विक स्थलो की सामग्री एव उत्तर और दक्षिण भारत के जैन ग्रन्थो और शिल्प सामग्री का समुचित उपयोग किया है। अब तक का उनका अध्ययन उनकी दो पुस्तको एव ३० से अधिक लेखो मे प्रकाशित हैं। उनकी पहली पुस्तक 'स्टडीज इन जैन आर्ट' मे जैन कला मे प्रचलित प्रमुख प्रतीको, यथा अष्टमागलिक चिह्नो, समवसरण, मागलिक स्वप्नो, स्तूप, चैत्यवृक्ष, आयागपटो, के विकास की मीमासा की गई है।[4] साथ ही प्रारम्भ मे उत्तर भारत के जैन मूर्ति अवशेषो का सक्षिप्त सर्वेक्षण भी प्रस्तुत किया गया है। दूसरी पुस्तक 'अकोटा ब्रोन्जेज' मे उन्होने अकोटा से प्राप्त जैन कास्य मूर्तियो (लगभग ५वी से ११वी शती ई०) का विवरण दिया है।[5] अकोटा की मूर्तियाँ प्रारम्भिकतम श्वेताम्बर जैन मूर्तियाँ हैं। जीवन्तस्वामी महावीर एव यक्ष-यक्षी से युक्त जिन मूर्ति के प्रारम्भिकतम उदाहरण भी अकोटा से ही मिले हैं। जैन प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से इन मूर्तियो का विशेष महत्व है।

---

१ सकलिया, एच० डी०, 'जैन आइकानोग्राफी', **न्यू इण्डियन एन्टिक्वेरी**, ख० २, १९३९–४०, पृ० ४९७–५२०

२ संकलिया, एच० डी०, 'जैन यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', बु०ड०का०रि०इ०, ख० १, अ० २–४, पृ० १५७–६८, 'जैन मान्युमेण्ट्स फ्राम देवगढ', ज०इ०सो०ओ०आ०, ख० ९, १९४१, पृ० ९७–१०४, 'दि, अर्लिएस्ट जैन स्कलपचर्स इन काठियावाड', ज०रा०ए०सो०, जुलाई १९३८, पृ० ४२६–३०

३ जैन प्रतिमाविज्ञान पर शाह का शोध प्रबन्ध भी है, किन्तु अप्रकाशित होने के कारण हम उससे लाभ नही उठा सके।

४ शाह, यू० पी०, **स्टडीज इन जैन आर्ट**, बनारस, १९५५

५ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, बम्बई, १९५९

विभिन्न जैन देवो के प्रतिमा लक्षण पर लिखे शाह के कुछ प्रमुख लेख अम्बिका, सरस्वती, १६ महाविद्याओ, हरिनैगमेषिन्, ब्रह्मशान्ति, कपर्दि यक्ष, चक्रेश्वरी एवं सिद्धायिका से सम्बन्धित हैं।[1] इन लेखो मे श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थो एव पदार्थगत अभिव्यक्ति के आधार पर देवो की प्रतिमा लाक्षणिक विशेषताएँ निरूपित हैं। शाह ने विभिन्न देवो की मूर्ति के वैज्ञानिक विकास का अध्ययन काल और क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य मे करने के स्थान पर सामान्यत भुजाओ की सख्या के आधार पर देवो को वर्गीकृत करके किया है। ऐसे अध्ययन से वास्तविक विकास का आकलन सम्भव नही है।

शाह ने जैन प्रतिमाविज्ञान के कुछ दूसरे महत्वपूर्ण पक्षो पर भी लेख लिखे हैं, जिनमे जीवन्तस्वामी की मूर्ति, प्रारम्भिक जैन साहित्य मे यक्ष पूजन, जैन धर्म मे शासनदेवताओ के पूजन का आविर्भाव एव जैन प्रतिमाविज्ञान का प्रारम्भ प्रमुख हैं।[2] जीवन्तस्वामी विषयक लेखो मे जीवन्तस्वामी महावीर मूर्ति की साहित्यिक परम्परा की विस्तृत चर्चा की गई है, और अकोटा की गुप्तकालीन जीवन्तस्वामी मूर्ति के आधार पर साहित्यिक साक्ष्यो की विश्वसनीयता प्रमाणित की गई है। यक्ष पूजन और शासनदेवताओ से सम्बन्धित लेख यक्ष-यक्षी पूजन की प्राचीनता, उनके मूर्त अकन एवं २४ यक्ष-यक्षी युगलो की धारणा एव उनके विकास और स्वरूप निरूपण के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं।

जैन प्रतिमाविज्ञान से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण पक्षो की विवेचना मे साहित्यिक साक्ष्यो के यथेष्ट उपयोग और विश्लेषण मे शाह ने नियमितता वरती है। प्रारम्भिक एवं मध्ययुगीन प्रतिमा लाक्षणिक ग्रन्थो के समुचित एव सुव्यवस्थित उपयोग का उनका प्रयास प्रशसनीय है। जैन प्रतिमाविज्ञान के कई विषयो पर उनकी स्थापनाएँ महत्वपूर्ण हैं। उन्होने ही प्रतिपादित किया कि महाविद्याओ की कल्पना यक्ष-यक्षियो की अपेक्षा प्राचीन है और उनके मूर्तिविज्ञानपरक तत्व भी यक्ष-यक्षियो से पूर्व ही निर्धारित हुए। यक्ष पूजा ई० पू० मे भी लोकप्रिय थी और माणिभद्र-पूर्णभद्र यक्ष एव बहुपुत्रिका यक्षी सर्वाधिक लोकप्रिय थे। इन्ही से कालान्तर मे जैन देवकुल के प्रारम्भिक यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति (कुवेर या मातग) और अम्बिका विकसित हुए। गुप्त युग मे सर्वानुभूति यक्ष और अम्बिका यक्षी का प्रथम निरूपण एव आठवी-नवी शती ई० तक २४ यक्ष-यक्षी युगलो की कल्पना उनकी अन्य महत्वपूर्ण स्थापनाएँ हैं। जीवन्तस्वामी महावीर, ब्रह्मशान्ति यक्ष, कपर्दि यक्ष एव अन्य कई महत्वपूर्ण विषयो पर सर्वप्रथम शाह ने ही कुछ लिखा है।

जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन मे शाह का निश्चित ही सर्वप्रमुख योगदान है। किन्तु विभिन्न स्थलो की पुरातात्विक सामग्री के उपयोग मे उन्होंने अपेक्षित नियमितता नही वरती है। उन्होंने सामग्री के प्राप्तिस्थल के सम्बन्ध मे विस्तृत सन्दर्भ प्राय नही दिये हैं, जिससे सामग्री का पुनर्परीक्षण दु साध्य हो जाता है। किसी स्थल के कुछ उदाहरणो का उल्लेख करते हुए भी उसी स्थल के दूसरे उदाहरणो का वे विवेचन नही करते। इसका कारण सम्भवत यह है कि इन स्थलो की सम्पूर्ण मूर्ति सम्पदा का उन्होंने अध्ययन नही किया है। ओसिया, कुभारिया, देवगढ, खजुराहो जैसे महत्वपूर्ण स्थलो

---

१ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका', ज०यू०बा०, ख० ९, पृ० १४७–६९, 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस सरस्वती', ज०यू०बा०, ख० १० (न्यू सिरीज), पृ० १९५–२१८, 'आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज', ज०इ०सो०ओ०आ०, ख० १५, १९४७, पृ० ११४–७७, 'हरिनैगमेषिन्', ज०इ०सो०ओ०आ०, खं० १९, १९५२–५३, पृ० १९–४१, 'ब्रह्मशान्ति ऐण्ड कपर्दि यक्षज', ज०एम०एस०यू०व०, ख० ७, अ० १, पृ० ५९–७२, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', ज०ओ०इ०, ख० २०, अ० ३, पृ० २८०–३११, 'यक्षिणी ऑव दि ट्वेन्टीफोर्थ जिन महावीर', ज०ओ०इ० ख० २२, अ० १–२, पृ० ७०–७८

२ शाह, यू० पी०, 'ए यूनीक जैन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी', ज०ओ०इ०, खं० १, अ० १, पृ० ७२–७९, 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इ०, ख० ३, अ० १, पृ० ५४–७१, 'इण्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज इन जैन वरशिप', प्रो०ट्रा०ओ०का०, २० वाँ अधिवेशन, भुवनेश्वर, पृ० १४१–५२, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', स०पु०प०, अं० ९, पृ० १–१४

की मूर्ति सामग्री का नही के बराबर उपयोग किया गया है। अत बहुत सी महत्वपूर्ण जानकारियाँ उनके लेखो मे समाविष्ट नही हो सकी हैं। उनके महाविद्या सम्बन्धित लेख मे कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की १६ महाविद्याओ के सामूहिक अकन का उल्लेख नही है, जो महाविद्याओ के सामूहिक चित्रण का प्रारम्भिकतम उदाहरण है। इसी प्रकार जीवन्तस्वामी मूर्ति विषयक लेख मे ओसिया की विशिष्ट जीवन्तस्वामी मूर्तियो का भी कोई उल्लेख नही है। ओसिया की जीवन्तस्वामी मूर्तियो मे अन्यत्र दुर्लभ कुछ विशेषताएँ प्रदर्शित हैं। जिन मूर्तियो के समान इन जीवन्तस्वामी मूर्तियो मे अष्ट-प्रातिहार्य, यक्ष-यक्षी एव महाविद्या निरूपित हैं। शाह के मूर्त उदाहरण मुख्यत. राजस्थान और गुजरात के मन्दिरो से ही लिये गये हैं। शाह ने साहित्यिक साक्ष्यो और पुरातात्विक सामग्री के तुलनात्मक अध्ययन मे स्थान एव काल की दृष्टि से क्रम, संगति एव सामञ्जस्य पर भी सतर्क दृष्टि नही रखी है।

के० डी० बाजपेयी ने मथुरा की जैन मूर्तियो पर कुछ लेख लिखे हैं, जिनमे कुषाणकालीन सरस्वती मूर्ति से सम्बन्धित लेख विशेष महत्वपूर्ण है,[1] क्योकि जैन शिल्प मे सरस्वती की यह प्राचीनतम मूर्ति है। एक अन्य लेख मे बाजपेयी ने मध्यप्रदेश के जैन मूर्ति अवशेषो का सक्षेप मे सर्वेक्षण किया है।[2] वी० एस० अग्रवाल ने भी जैन कला पर पर्याप्त कार्य किया है, जो मुख्यत मथुरा के जैन शिल्प से सम्बन्धित है। उन्होने मथुरा सग्रहालय की जैन मूर्तियो की सूची प्रकाशित की है[3], जो प्रारम्भिक जैन मूर्तिविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्व की है। इसके अतिरिक्त आयागपटो एव नैगमेषी पर भी उनके महत्वपूर्ण लेख हैं।[4] एक अन्य लेख मे उन्होंने लखनऊ सग्रहालय के एक पट्ट की दृश्यावली की पहचान महावीर के जन्म से की है।[5] अधिकाश विद्वान् दृश्यावली को ऋषभ के जीवन से सम्बन्धित करते हैं। जे० ई० वान ल्यूजे-डे-ल्यू की 'सीथियन पिरियड' पुस्तक मे कुषाणकालीन जिन एव बुद्ध मूर्तियो के समान मूर्तिवैज्ञानिक तत्वो की व्याख्या, उनके मूल स्रोत एव इस दृष्टि से एक के दूसरे पर प्रभाव की विवेचना की गयी है।[6] इस अध्ययनसे यह स्थापित किया गया है कि प्रारम्भिक स्थिति मे कोई भी कला साम्प्रदायिक नही होती, विषय वस्तु अवश्य ही विभिन्न सम्प्रदायो से अलग-अलग प्राप्त किये जाते हैं, किन्तु उनके मूर्त अकन मे प्रयुक्त विभिन्न तत्वो का मूल स्रोत वस्तुत एक होता है। देवला मित्रा ने दो महत्वपूर्ण लेख लिखे हैं। एक लेख मे बाकुडा (बगाल) से मिली प्राचीन जैन मूर्तियो का उल्लेख है।[7] दूसरा लेख खण्डगिरि (उडीसा) की बारभुजी और नवमुनि गुफाओ की यक्षी मूर्तियो से सम्बन्धित है।[8] लेखिका ने बारभुजी गुफा की २४ एव नवमुनि गुफा की ७ यक्षी मूर्तियो का विस्तृत विवरण देते हुए दिगम्बर ग्रन्थो के आधार पर यक्षियो की पहचान तथा सम्भावित हिन्दू प्रभाव के आकलन का प्रयास किया है।

---

१ बाजपेयी, के० डी०, 'जैन इमेज ऑव सरस्वती इन दि लखनऊ म्यूजियम', जैन एण्टि०, ख० ११, अ० २, पृ० १–४

२ बाजपेयी, के० डी०, 'मध्यप्रदेश की प्राचीन जैन कला', अनेकान्त, वर्ष १७, अ० ३, पृ० ९८-९९, वर्ष २८, १९७५, पृ० ११५-१६, १२०

३ अग्रवाल, वी० एस०, केटलाग ऑव दि मथुरा म्यूजियम, भाग ३, ज०यू०पी०हि०सो०, खं० २३, पृ० ३५–१४७

४ अग्रवाल, वी० एस०, 'मथुरा आयागपटज', ज०यू०पी०हि०सो०, ख० १६, भाग १, पृ० ५८-६१, 'ए नोट आन दि गाड नैगमेष', ज०यू०पी०हि०सो०, ख० २०, भाग १-२, १९४७, पृ० ६८-७३

५ अग्रवाल, वी० एस०, 'दि नेटिविटी सीन ऑन ए जैन रिलीफ फ्राम मथुरा', जैन एण्टि०, ख० १०, पृ० १-४

६ ल्यूजे-डे-ल्यू, जे० ई० वान, दि सीथियन पिरियड, लिडेन, १९४९, पृ० १४५-२२२

७ मित्रा, देवला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बाकुडा, वेस्ट बगाल', ज०ए०सो०ब०, खं० २४, अं० २, पृ० १३१–३४

८ मित्रा, देवला, 'शासन देवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, ख० १, अ० २, पृ० १२७-३३

आर० सी० अग्रवाल ने जैन प्रतिमाविज्ञान के विभिन्न पक्षो पर कई लेख लिखे है। इनमे जैन देवी सच्चिका के प्रतिमा लक्षण से सम्बन्धित लेख महत्वपूर्ण है।[1] लेख मे सच्चिका देवी पर हिन्दू महिषमर्दिनी का प्रभाव आकलित किया गया है। एक अन्य महत्वपूर्ण लेख मे अग्रवाल ने विदिशा की तीन गुप्तकालीन जिन मूर्तियो का उल्लेख किया हैं।[2] दो मूर्तियो के लेखो मे क्रमश पुष्पदन्त एव चन्द्रप्रभ के नाम हैं। ये मूर्तिया गुप्तकाल मे कुषाणकाल की मूर्ति लेखो मे जिनो के नामोल्लेख की परम्परा की अनवरतता की साक्षी हैं। कुछ अन्य लेखो मे अग्रवाल ने राजस्थान के विभिन्न स्थलो की कुबेर, अम्बिका एव जीवन्तस्वामी महावीर मूर्तियो के उल्लेख किये हैं।[3]

क्लाज ब्रुन ने जैन शिल्प पर चार लेख एव एक पुस्तक लिखी हैं। एक लेख खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर की वाह्य भित्ति की मूर्तियो से सम्बन्धित है।[4] लेख मे भित्ति की मूर्तियो पर हिन्दू प्रभाव की सीमा निर्धारित करने का सराहनीय प्रयास किया गया है। पर किन्ही मूर्तियो के पहचान मे लेखक ने कुछ भूलें की है, जैसे उत्तर भित्ति की राम-सीता मूर्ति को कुमार की मूर्ति से पहचाना गया है। एक लेख महावीर के प्रतिमानिरूपण से सम्बन्धित है।[5] दो अन्य लेखो मे ब्रुन ने दुदही एव चाँदपुर की जैन मूर्तियो का उल्लेख किया है।[6] ब्रुन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य देवगढ की जिन मूर्तियो पर उनकी पुस्तक है।[7] ब्रुन ने देवगढ की जिन मूर्तियो को कई वर्गो मे विभाजित किया है, पर यह विभाजन प्रतिमा लाक्षणिक आधार पर नही किया गया है, जिसकी वजह से देवगढ की जिन मूर्तियो के प्रतिमा लाक्षणिक अध्ययन की दृष्टि से यह पुस्तक वहुत उपयोगी नही है। जिन मूर्तियो मे लाछनो, अष्ट-प्रातिहार्यो एव यक्ष-यक्षी युगलो के महत्व को नही आकलित किया गया है। जिन मूर्तियो के कुछ विशिष्ट प्रकारो (द्वितीर्थी, त्रितीर्थी, चौमुख) एव वाहुवली, भरत चक्रवर्ती, क्षेत्रपाल, कुबेर, सरस्वती आदि की मूर्तियो के भी उल्लेख नही है। पुस्तक मे मन्दिर १२ की भित्ति की २४ यक्षी मूर्तियो के विस्तृत उल्लेख हैं, जो जैन मूर्तिविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से पुस्तक की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामग्री है। ब्रुन ने इन यक्षियो मे से कुछ पर श्वेताम्बर महाविद्याओ के प्रभाव को भी स्पष्ट किया है।

उपर्युक्त महत्वपूर्ण कार्यो के अतिरिक्त १९४५ से १९७९ के मध्य अन्य कई विद्वानो ने भी जैन प्रतिमाविज्ञान या सम्बन्धित पक्षो पर विभिन्न लेख लिखे हैं। इनमे विभिन्न पुरातात्विक स्थलो एव सग्रहालयो से सम्बन्धित लेख भी है।

---

१ अग्रवाल, आर०सी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस सच्चिका', जैन एण्टि०, खं०२१, अ० १, पृ० १३-२०

२ अग्रवाल, आर० सी०, 'न्यूली डिस्कवर्ड स्कल्पचर्स फ्राम विदिशा', ज०ओ०इ०, ख० १८, अ० ३, पृ० २५२-५३

३ अग्रवाल, आर० सी०, 'सम इण्टरेस्टिंग स्कल्पचर्स ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका फ्राम मारवाड', इं०हि०क्वा०, ख०३२, अ०४, पृ० ४३४-३८, 'सम इन्टरेस्टिंग स्कल्पचर्स ऑव यक्षज ऐण्ड कुबेर फ्राम राजस्थान', इ०हि०क्वा०, ख० ३३, अ० ३, पृ० २००-०७, 'ऐन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी फ्राम राजस्थान', अ०ला०बु०, ख० २२, भाग १-२, पृ० ३२-३४, 'गाडेस अम्बिका इन दि स्कल्पचर्स ऑव राजस्थान', क्वा०ज०मि०सो०, ख०४९, अ०२, पृ० ८७-९१

४ ब्रुन, क्लाज, 'दि फिगर ऑव दि टू लोअर रिलीफ्स ऑन दि पार्श्वनाथ टेम्पल ऐट खजुराहो', आचार्य श्रीविजय-वल्लभ सूरि स्मारक ग्रन्थ, बम्बई, १९५६, पृ० ७-३५

५ ब्रुन, क्लाज, 'आइकानोग्राफी ऑव दि लास्ट तीर्थंकर महावीर', जैनयुग, वर्ष १, अप्रैल १९५८, पृ० ३६-३७

६ ब्रुन, क्लाज, 'जैन तीर्थज इन मध्यदेश : दुदही', जैनयुग, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० २९-३३, 'जैन तीर्थज इन मध्यदेश चाँदपुर', जैनयुग, वर्ष २, अप्रैल १९५९, पृ० ६७-७०

७ ब्रुन, क्लाज, दि जिन इमेजेज ऑव देवगढ, लिडेन १९६९

इनमे ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा[1], मधुसूदन ढाकी[2], कृष्णदेव[3] एव बालचन्द्र जैन[4] आदि मुख्य हैं। भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा 'जैन कला एव स्थापत्य' शीर्षक से तीन खण्डो मे प्रकाशित ग्रन्थ (१९७५) जैन कला, स्थापत्य एव प्रतिमाविज्ञान पर अब तक का सबसे विस्तृत और महत्वपूर्ण कार्य है।[5]

अध्ययन-स्रोत

प्रस्तुत अध्ययन मे तीन प्रकार के स्रोतो का उपयोग किया गया है—अनुगामी, साहित्यिक और पुरातात्विक।

अनुगामी स्रोत के रूप मे आधुनिक विद्वानो द्वारा जैन प्रतिमाविज्ञान पर १९७९ तक किये गये शोध कार्यों का, जिनकी ऊपर विवेचना की गयी है, समुचित उपयोग किया गया है। आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया की ऐनुअल रिपोर्ट्स, वेस्टर्न सर्किल की प्रोग्रेस रिपोर्ट्स एव अन्य उपलब्ध प्रकाशनो का भी यथासम्भव उपयोग किया गया है। विभिन्न सग्रहालयों की जैन सामग्री पर प्रकाशित पुस्तको एव लेखो से भी पूरा लाभ उठाया गया है। उत्तर भारत के जैन प्रतिमाविज्ञान मे सीधे सम्बन्धित सामग्री के अतिरिक्त अनुगामी स्रोत के रूप मे अन्य कई प्रकार की सामग्री का भी उपयोग किया गया है जो आधुनिक ग्रन्थ एव लेख सूची मे उल्लिखित हैं। जैन धर्म, साहित्य और देवकुल के अध्ययन की दृष्टि मे जैन धर्म की महत्वपूर्ण पुस्तको एव लेखो से लाभ उठाया गया है। तिथि एव कुछ अन्य विवरणो की दृष्टि मे स्थापत्य से सम्बन्धित, जैन प्रतिमाविज्ञान के विकास मे राजनीतिक, सास्कृतिक एव आर्थिक पृष्ठभूमि के अध्ययन की दृष्टि से भारतीय इतिहास मे सम्बन्धित, एव दक्षिण भारत के जैन प्रतिमाविज्ञान से तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से दक्षिण भारत के जैन मूर्तिविज्ञान से सम्बन्धित महत्वपूर्ण ग्रन्थो एव लेखो मे भी आवश्यकतानुसार सहायता ली गयी है। इसी प्रकार हिन्दू एवं बौद्ध प्रतिमाविज्ञान से तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से हिन्दू एव बौद्ध मूर्तिविज्ञान पर लिखी पुस्तको का भी समुचित उपयोग किया गया है।

मूल स्रोत के रूप मे यथासम्भव सभी उपलब्ध साहित्यिक ग्रन्थो के समुचित उपयोग का प्रयास किया गया है। सम्पूर्ण साहित्यिक ग्रन्थो को सुविधानुसार हम चार वर्गों मे विभाजित कर सकते है।

पहले वर्ग मे ऐसे प्रारम्भिक जैन ग्रन्थ है, जिनमे प्रसगवश प्रतिमाविज्ञान से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त होती है। जिनो, विद्याओ, यक्ष-यक्षियों एव कुछ अन्य देवो के प्रारम्भिक स्वरूप के अध्ययन की दृष्टि मे ये ग्रन्थ अतीव महत्व के हैं। प्रारम्भिक जैन कला मे अभिव्यक्ति की सामग्री इन्ही ग्रन्थो से प्राप्त की गई। इस वर्ग मे महावीर के समय से सातवी शती ई० तक के ग्रन्थ हैं। इनमे आगम ग्रन्थ, कल्पसूत्र, अगविज्जा पउमचरियम, वसुदेवहिण्डी, आवश्यक चूर्णि, आवश्यक निर्युक्ति आदि प्रमुख हैं।

दूसरे वर्ग मे ल० आठवी से सोलहवी शती ई० के मध्य के श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन ग्रन्थ हैं। इनमे मूर्तिविज्ञान से सम्बन्धित विस्तृत सामग्री है। इन ग्रन्थो मे २४ जिनो एव अन्य शलाका-पुरुषो, २४ यक्ष-यक्षी युगलो, १६ महाविद्याओ, सरस्वती, अष्ट-दिक्पालो, नवग्रहो, गणेश, क्षेत्रपाल, शातिदेवी, ब्रह्मशान्ति यक्ष आदि के लाक्षणिक स्वरूप निरूपित हैं। इन व्यवस्थापक ग्रन्थो के आधार पर ही शिल्प मे जैन देवो को अभिव्यक्ति मिली। श्वेताम्बर परम्परा के

---

१ शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, 'अन्पब्लिश्ड जैन ब्रोन्जेज इन दि नेशनल म्यूजियम', ज०ओ०इ०, ख० १९, अ० ३, पृ० २७५-७८, **जैन प्रतिमाए**, दिल्ली, १९७९

२ ढाकी, मधुसूदन, 'सम अर्ली जैन टेम्पल्स इन वेस्टर्न इण्डिया', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बम्बई, १९६८, पृ० २९०-३४७

३ कृष्ण देव, 'दि टेम्पल्स ऑव खजुराहो इन सेन्ट्रल इण्डिया', एशि०इ०, अ० १५, १९५९, पृ० ४३-६५'-,माला देवी टेम्पल् एट ग्यारसपुर', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बम्बई, १९६८, पृ० २६०-६९

४ जैन, बालचन्द्र, **जैन प्रतिमाविज्ञान**, जबलपुर, १९७४

५ घोष, अमलानन्द (सपादक), **जैन कला एव स्थापत्य** (३ खण्ड), भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, १९७५

मुख्य ग्रन्थ **चतुर्विंशतिका** (बप्पभट्टिसूरिकृत), **चतुर्विंशति स्तोत्र** (शोभनमुनिकृत), **निर्वाणकलिका, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, मंत्राधिराजकल्प, चतुर्विंशतिजिन-चरित्र** (या पद्मानन्द महाकाव्य), **प्रवचनसारोद्धार, आचारदिनकर** एवं **विविधतीर्थकल्प** हैं। दिगम्बर परम्परा के प्रमुख ग्रन्थ **हरिवंशपुराण, आदिपुराण, उत्तरपुराण, प्रतिष्ठासारसंग्रह, प्रतिष्ठासारोद्धार** और **प्रतिष्ठातिलकम्** हैं।

तीसरे वर्ग मे जैनेतर प्रतिमा लाक्षणिक ग्रन्थ है। ऐसे ग्रन्थो मे हिन्दू देवकुल के सदस्यो के साथ ही जैन देवकुल के सदस्यो की भी लाक्षणिक विशेषताएँ विवेचित हैं। इनमे **अपराजितपृच्छा, देवतामूर्तिप्रकरण** और **रूपमण्डन** मुख्य है।

चौथे वर्ग मे दक्षिण भारत के जैन ग्रन्थ हैं, जिनका उपयोग तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से किया गया है। इनमे **मानसार** और टी० एन० रामचन्द्रन की पुस्तक 'तिरुपरुत्तिकुणरम ऐण्ड इट्स टेम्पल्स' प्रमुख हैं।

ग्रन्थ की तीसरी महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री पुरातात्विक स्थलो की जैन मूर्तियाँ हैं। पुरातात्विक सामग्री के सकलन हेतु कुछ मुख्य जैन स्थलो की यात्रा एव वहाँ की मूर्ति सम्पदा का एकैकश विशद अध्ययन भी किया गया है। ग्रन्थो मे निरूपित विवरणो के वस्तुगत परीक्षण की दृष्टि से पुरातात्विक स्थलो की सामग्री का विशेष महत्व है, क्योकि मूर्त धरोहर कलात्मक एव मूर्तिवैज्ञानिक वृत्तियो के स्पष्ट साक्षी होते है। अध्ययन की दृष्टि से सामान्यत ऐसे स्थलो को चुना गया है जहाँ कई शताब्दी की प्रभूत मूर्ति सम्पदा सुरक्षित है। इस चयन मे श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो ही सम्प्रदायो के स्थल सम्मिलित हैं। जिन स्थलो की यात्रा की गई है उनमे अधिकाश ऐसे है जिनकी मूर्ति सम्पदा का या तो अध्ययन नहीं किया गया है, या फिर कुछ विशेष दृष्टि से किये गये अध्ययन की उपयोगिता प्रस्तुत ग्रन्थ की दृष्टि से सीमित है। इनमे राजस्थान मे ओसिया, घाणेराव, सादरी, नाडोल, नाडलाई, जालोर, चन्द्रावती, विमलवसही, लूणवसही और गुजरात मे कुभारिया एव तारगा के श्वेताम्बर स्थल, तथा उत्तरप्रदेश मे देवगढ एव राज्य सग्रहालय, लखनऊ और पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा (जहाँ मथुरा के ककाली टीले की जैन मूर्तियाँ सुरक्षित है) एव मध्यप्रदेश मे ग्यारसपुर और खजुराहो के दिगम्बर स्थल मुख्य हैं।

उत्तर भारत के कुछ प्रमुख पुरातात्विक सग्रहालयो की जैन मूर्तियो का भी विस्तृत अध्ययन किया गया है। उल्लेखनीय है कि जहाँ किसी पुरातात्विक स्थल की सामग्री काल एव क्षेत्र की दृष्टि मे सीमावद्ध होती है, वही सग्रहालय की सामग्री इस प्रकार का सीमा से सर्वथा मुक्त होती है। राज्य सग्रहालय, लखनऊ एव पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा के अतिरिक्त राष्ट्रीय सग्रहालय, दिल्ली, राजपूताना सग्रहालय, अजमेर, भारत कला भवन, वाराणसी एव पुरातात्विक सग्रहालय, खजुराहो के जैन सग्रहो का भी अध्ययन किया गया है। कल्पसूत्र के चित्रो पर प्रकाशित कुछ सामग्री का भी उपयोग हुआ है। विभिन्न पुरातात्विक स्थलो एवं सग्रहालयो की जैन मूर्तियो के प्रकाशित चित्रो को भी दृष्टिगत किया गया है। साथ ही आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली एव अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी के चित्र सग्रहो से भी आवश्यकतानुसार लाभ उठाया गया है।

कार्य-प्रणाली

ग्रथ के लेखन मे दो दृष्टियो से कार्य किया गया है। प्रथम, सभी प्रकार के साक्ष्यो के समन्वय एव तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास है। यह दृष्टि न केवल साहित्यिक और पुरातात्विक साक्ष्यो के मध्य, वरन् दो साहित्यिक या कला परम्पराओं के मध्य भी अपनायी गयी है। द्वितीय, ग्रन्थो एव पुरातात्विक स्थलो की सामग्री के स्वतन्त्र अध्ययन मे उनका एकश., विशद और समग्र अध्ययन किया गया है। समूचा अध्ययन क्षेत्र एव काल के चौखट मे प्रतिपादित है।

आरम्भिक स्थिति मे मूर्त अभिव्यक्ति के विषयवस्तु के प्रतिपादन की दृष्टि से ग्रन्थो का महत्व सीमित था। ग्रन्थो से केवल विषयवस्तु या देवो की धारणा ग्रहण की जाती थी। इस अवस्था मे विभिन्न सम्प्रदायो की कला के मध्य क्षेत्र एव काल के सन्दर्भ मे परस्पर आदान-प्रदान हुआ।[1] प्रारम्भिक जैन कला के अध्ययन मे विषयवस्तु की पहचान हेतु

१ ल्यूजे-डे-ल्यू, जे०ई०वान, पू०नि०, पृ०१५१–५२

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो मे सहायता ली गई है और साथ ही मूर्त अकन मे समकालीन एवं पूर्ववर्ती साहित्यिक एव कला परम्पराओ के प्रभाव निर्धारण का भी यत्न किया गया है ।

कुषाण शिल्प मे ऋषभ एव पार्श्व की मूर्तियो के लक्षणो और ऋषभ एव महावीर के जीवनदृश्यो की विषय सामग्री ग्रन्थो से प्राप्त की गई । जिन मूर्ति के निर्माण की प्राचीन परम्परा (ल०तीसरी शती ई०पू०) होने के बाद भी मथुरा मे शुग-कुषाण युग मे बौद्ध कला के समान ही जैन कला भी सर्वप्रथम प्रतीक रूप मे अभिव्यक्त हुई । जैन आयागपटो के स्तूप, स्वस्तिक, धर्मचक्र, त्रिरत्न, पद्म, श्रीवत्स आदि चिह्न प्रतीक पूजन की लोकप्रियता के साक्षी हैं । मथुरा की प्राचीनतम जिन मूर्ति भी आयागपट (ल०पहली शती ई०पू०)[1] पर ही उत्कीर्ण है । इन आयागपटो के अष्टमागलिक चिह्न पूर्ववर्ती साहित्यिक और कला परम्पराओ से प्रभावित हैं, क्योकि जैन ग्रन्थो मे गुप्तकाल से पहले अष्टमागलिक चिह्नो की सूची नही मिलती ।[2] साथ ही जैन सूची के अष्टमागलिक चिह्नो[3] मे धर्मचक्र, पद्म, त्रिरत्न (या तिलकरत्न), वैजयती (या इन्द्रयष्टि) जैसे प्रतीक सम्मिलित नही है, जबकि आयागपटो पर इनका बहुलता से अकन हुआ है ।

ल० आठवी से बारहवी शती ई० के मध्य जैन देवकुल मे हुए विकास के कारण जैन देवकुल के सदस्यो के स्वतन्त्र लाक्षणिक स्वरूप निर्धारित हुए जिसकी वजह से साहित्य पर कला की निर्भरता विभिन्न देवताओ के पहचान और उनके मूर्त चित्रणो की दृष्टि से बढ गई । तुलनात्मक अध्ययन मे इस बात के निर्धारण का भी यत्न किया गया है कि विभिन्न क्षेत्रो और कालो मे कलाकार किस सीमा तक ग्रन्थो के निर्देशो का निर्वाह कर रहा था । इस दृष्टि के कारण यह निश्चित किया जा सका है कि जहाँ ग्रन्थो मे २४ जिनो के यक्ष-यक्षी युगलो का निरूपण आवश्यक विषयवस्तु था, वही शिल्प मे सभी यक्ष-यक्षी युगलो को स्वतन्त्र अभिव्यक्ति नही मिली । विभिन्न स्थलो पर किस सीमा तक जैन परम्परा मे अवर्णित देवो को अभिव्यक्ति प्रदान की गई, इसके निर्धारण का भी प्रयास किया गया है ।

दो या कई पुरातात्विक स्थलो के मूर्ति-अवशेषो की क्षेत्रीय वृत्तियो और समान तत्वो की दृष्टि से तुलनात्मक परीक्षा की गई है । ऐसे अध्ययन के कारण ही यह निश्चित किया जा सका है कि देवगढ के मन्दिर १२ की २४ यक्षी मूर्तियो मे से कुछ पर ओसिया के महावीर मन्दिर की महाविद्या मूर्तियो का प्रभाव है । यह प्रभाव श्वेताम्बर स्थल (ओसिया) के दिगम्बर स्थल (देवगढ) पर प्रभाव की दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है । प्रतिहार शासको के समय के दो कला केन्द्रो पर विषयवस्तु एव प्रतिमा लाक्षणिक वृत्तियो की दृष्टि से क्षेत्रीय सन्दर्भ मे प्राप्त भिन्नताओ का निर्धारण भी तुलनात्मक अध्ययन से ही हो सका है । ओसिया (राजस्थान) मे जहाँ महाविद्याओ एव जीवन्तस्वामी को प्राथमिकता दी गई, वही देवगढ (उत्तर प्रदेश) मे २४ यक्षियो, भरत, बाहुबली एव क्षेत्रपाल आदि को चित्रित किया गया । यह तुलनात्मक अध्ययन हिन्दू एव बौद्ध सम्प्रदायो और साथ ही दक्षिण भारत के मूर्तिवैज्ञानिक तत्वो तक विस्तृत है ।

जैन देवकुल के २४ जिनो एव यक्ष-यक्षी युगलो के स्वतन्त्र मूर्तिविज्ञान के अध्ययन मे साहित्यिक साक्ष्यो एव पदार्थगत अभिव्यक्तियो के आधार पर, कालक्रम के अनुसार उनके स्वरूप मे हुए क्रमिक विकास का अध्ययन किया गया है । प्रतिमा लाक्षणिक विवेचन मे, पहले सक्षेप मे जिनो एव यक्ष-यक्षियो की समूहगत सामान्य विशेषताओ का ऐतिहासिक सर्वेक्षण है । तदुपरान्त समूह के प्रत्येक देवी-देवता के प्रतिमा लक्षण की स्वतन्त्र विवेचना की गई है ।

साराशत , कार्य प्रणाली के लिए काल, क्षेत्र, साहित्य एव पुरातत्व के बीच सामजस्य, विभिन्न धर्मों की समकालीन परम्पराओ का परस्पर प्रभाव, विकास के क्रम मे होनेवाले पारपरिक और अपारम्परिक परिवर्तन आदि तथ्यो, वृत्तियो एव आयामो को आधार के रूप मे अपनाया गया है ।

• • •

---

१ राज्य सग्रहालय, लखनऊ, जे२५३, स्ट०जै०आ०, पृ० ७७–७८

२ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, स्ट०जै०आ०, पृ० १०९–१२

३ जैन सूची के अष्टमागलिक चिह्न स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, दर्पण और मत्स्य (या मत्स्ययुग्म) हैं, औपपातिक सूत्र ३१, त्रि०श०पु०च०, ख० १, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज ५१, बड़ौदा, १९३१, पृ० ११२, १९०

द्वितीय अध्याय

राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

राजनीतिक एव सास्कृतिक स्थिति किसी भी देश की कला एव स्थापत्य की नियामक होती है। कलात्मक अभिव्यक्ति अपनी विषय-वस्तु एव निर्माण-विधा मे समाज की धारणाओ एव तकनीको का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती है। ये धारणाए एव तकनीके सस्कृति का अग होती हैं। भारतीय कला, स्थापत्य एव प्रतिमाविज्ञान के प्रेरक एव पोषक तत्वो के रूप मे भी इन पक्षो का महत्वपूर्ण स्थान है। समर्थ प्रतिभाशाली शासको के काल मे कला एव स्थापत्य की नई शैलियाँ अस्तित्व मे आती हैं, पुरानी नवीन रूप ग्रहण करती हैं तथा उनका दूसरे क्षेत्रो पर प्रभाव पडता है। राजा की धार्मिक आस्था अथवा अभिरुचि ने भी धर्म प्रधान भारतीय कला के इतिहास को प्रभावित किया है।

भारतीय कला लोगो की धार्मिक मान्यताओ का ही मूर्त रूप रही है। समाज और आर्थिक स्थिति ने भी विभिन्न सन्दर्भों एवं रूपो मे भारतीय कला एव स्थापत्य की धारा को प्रभावित किया है। एक निश्चित अर्थ एव उद्देश्य से युक्त समस्त भारतीय कला पूर्व परम्पराओ के निश्चित निर्वाह के साथ ही साथ धर्म एव सामाजिक धारणाओ मे हुए परिवर्तनो से भी सदैव प्रभावित होती रही है।[1] भारतीय कला धार्मिक एव सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति रही है। अनुकूल आर्थिक परिस्थितियो मे ही कला की अबाध अभिव्यक्ति और फलत उसका सम्यक् विकास सम्भव होता है। यजमान एव कलाकार के अह एवं कल्पना की साकारता कलाकार की क्षमता से पूर्व यजमान के आर्थिक सामर्थ्य पर निर्भर करती है, यजमान चाहे राजा हो या साधारण जन। भारतीय कला को राजा से अधिक सामान्य लोगो से प्रश्रय मिला है। यह तथ्य जैन कला, स्थापत्य एव प्रतिमाविज्ञान के विकास के सन्दर्भ मे विशेष महत्वपूर्ण है।

उपर्युक्त सन्दर्भ मे इस अध्याय मे जैन मूर्ति निर्माण एवं प्रतिमाविज्ञान की राजनीतिक एवं सास्कृतिक पृष्ठभूमि का ऐतिहासिक विवेचन किया गया है। इसमे विभिन्न समयो मे जैन धर्म एव कला को प्राप्त होनेवाले राजकीय एव राजेतर लोगो के सरक्षण, प्रश्रय अथवा प्रोत्साहन का इतिहास विवेचित है। काल और क्षेत्र के सन्दर्भ मे धार्मिक एव आर्थिक स्थितियो मे होने वाले विकास या परिवर्तनो को समझने का भी प्रयास किया गया है, जिससे समय-समय पर उभरी उन नवीन सास्कृतिक प्रवृत्तियो का सकेत मिलता है, जिन्होंने समकालीन जैन कला और प्रतिमाविज्ञान के विकास को प्रभावित किया। इसके अतिरिक्त जैन धर्म मे मूर्ति निर्माण की प्राचीनता, इसकी आवश्यकता तथा इन सन्दर्भों मे कलात्मक एव सास्कृतिक पृष्ठभूमि की विवेचना भी की गई है।

उपरिनिर्दिष्ट अध्ययन प्रारम्भ से सातवी शती ई० के अन्त तक कालक्रम से तथा आठवी से बारहवी शती ई० तक क्षेत्र के सन्दर्भ मे किया गया है। गुप्त युग के अन्त (ल० ५५० ई०) तक जैन कलाकेन्द्रो की सख्या तथा उनसे प्राप्त सामग्री (मथुरा के अतिरिक्त) स्वल्प है। राजनीतिक दृष्टि से मौर्यकाल से गुप्तकाल तक उत्तर भारत एक सूत्र मे बंधा था। अत अन्य धर्मो एव उनसे सम्बद्ध कलाओ के समान ही जैन धर्म तथा कला का विकास इस क्षेत्र मे समरूप रहा। गुप्त युग के बाद से सातवी शती ई० के अन्त तक के सक्रमण काल मे भी संस्कृति एव विभिन्न धर्मों से सम्बद्ध कला के विकास मे मूल धारा का ही परवर्ती अविभक्त प्रवाह दृष्टिगत होता है, जिसके कारण पूर्व परम्पराओ की सामर्थ्य तथा उत्तर भारत के एक बडे भाग पर हर्षवर्धन के राज्य की स्थापना है। किन्तु आठवी से बारहवी शती ई० के मध्य उत्तर भारत के राजनीतिक मंच पर विभिन्न राजवशों का उदय हुआ, जिनके सीमित राज्यो मे विभिन्न आर्थिक एव धार्मिक सन्दर्भों मे जैन धर्म, कला, स्थापत्य एव प्रतिमाविज्ञान के विकास की स्वतन्त्र जनपदीय या क्षेत्रीय धाराए उद्भूत एव विकसित हुई, जिनसे जैन

१ कुमारस्वामी, ए० के०, इण्ट्रोडक्शन टू इण्डियन आर्ट, दिल्ली, १९६९, प्रस्तावना

कलाकेन्द्रो का मानचित्र पर्याप्त परिवर्तित हुआ। इन्ही सन्दर्भों मे राजनीतिक एव सास्कृतिक पृष्ठभूमि के अध्ययन मे उपर्युक्त दो दृष्टियो का प्रयोग अपेक्षित प्रतीत हुआ।

आरम्भिक काल (प्रारम्भ से ७वी शती ई० तक)

प्रारम्भ से सातवी शती ई० तक के इस अध्ययन मे पार्श्वनाथ एव महावीर जिनो और मौर्य, कुषाण, गुप्त और अन्य शासको के काल मे जैन धर्म एव कला की स्थिति और उसे प्राप्त होनेवाले राजकीय एव सामान्य समर्थन का उल्लेख है। जैन धर्म मे मूर्ति पूजन की प्राचीनता की दृष्टि से जीवन्तस्वामी मूर्ति की परम्परा एव अन्य प्रारम्भिक जैन मूर्तियो का भी सक्षेप मे उल्लेख किया गया है।

पार्श्वनाथ एवं महावीर का युग

जैनो ने सम्पूर्ण कालचक्र को उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी इन दो युगो मे विभाजित किया है, और प्रत्येक युग मे २४ तीर्थंकरो (या जिनो) की कल्पना की है। वर्तमान अवसर्पिणी युग के २४ तीर्थंकरो मे से केवल अन्तिम दो तीर्थंकरो, पार्श्वनाथ एव महावीर, की ही ऐतिहासिकता सर्वमान्य है। साहित्यिक परम्परा के अनुसार पार्श्वनाथ के समय (ल० ८वी शती ई० पू०) मे भी जैन धर्म विभिन्न राज्यो एव शासको द्वारा समर्थित था। पार्श्वनाथ वाराणसी के शासक अश्वसेन के पुत्र थे। उनका वैवाहिक सम्बन्ध प्रसेनजित के राजपरिवार मे हुआ था। जैन ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि महावीर के समय मे भी मगध के आसपास पार्श्वनाथ के अनुयायी विद्यमान थे।[१] किन्तु यह उल्लेखनीय है कि पार्श्वनाथ एव महावीर के बीच के २५० वर्षो के अन्तराल मे जैन धर्म से सम्बद्ध किसी प्रकार की प्रामाणिक ऐतिहासिक सूचना नही प्राप्त होती है।

अन्तिम तीर्थंकर महावीर भी राजपरिवार से सम्बद्ध है। पटना के समीप स्थित कुण्डग्राम के ज्ञातृवशीय शासक सिद्धार्थ उनके पिता और वैशाली के शासक चेटक की बहन त्रिशला उनकी माता थी। उनका जन्म पार्श्वनाथ के २५० वर्ष पश्चात्[२] ल० ५९९ ई० पू० मे हुआ था और निर्वाण ५२७ ई० पू० मे।[३] वैशाली के शासक लिच्छवियों के कारण ही महावीर को सर्वत्र एक निश्चित समर्थन मिला। महावीर ने मगध, अग, राजगृह, वैशाली, विदेह, काशी, कोशल, वग, अवन्ति आदि स्थलो पर विहार कर अपने उपदेशो से जैन धर्म का प्रसार किया।

साहित्यिक परम्परा के अनुसार महावीर ने अपने समकालीन मगध के शासको, बिम्बिसार एव अजातशत्रु, को अपना अनुयायी बनाया था। बिम्बिसार का महावीर के चामरधर के रूप में उल्लेख किया गया है। अजातशत्रु के उत्तराधिकारी उदय या उदायिन को भी जैन धर्म का अनुयायी बताया गया है जिसकी आज्ञा से पाटलिपुत्र मे एक जैन मन्दिर का निर्माण हुआ था।[४] किन्तु इन शासकों द्वारा जैन एव बौद्ध धर्मों को समान रूप से दिये गये सरक्षण से स्पष्ट है कि राजनीतिक दृष्टि से विभिन्न धर्मो के प्रति उनका समभाव था।

महावीर से पूर्व तीर्थंकर मूर्तियो के अस्तित्व का कोई भी साहित्यिक या पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध नही है। जैन ग्रन्थो में महावीर की यात्रा के सन्दर्भ मे उनके किसी जैन मन्दिर जाने या जिन मूर्ति के पूजन का अनुल्लेख है। इसके विपरीत यक्ष-आयतनो एवं यक्ष-चैत्यो (पूर्णभद्र और माणिभद्र) मे उनके विश्राम करने के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[५]

---

१ शाह, सी० जे०, **जैनिजम इन नार्थ इण्डिया**, लन्दन, १९३२, पृ० ८३

२ आवश्यक निर्युक्ति, गाथा १७, पृ० २४१, आवश्यक चूर्णि, गाथा १७, पृ० २१७

३ महावीर की तिथि निर्धारण का प्रश्न अभी पूर्णत स्थिर नही हो सका है। विस्तार के लिए द्रष्टव्य, जैन, के० सी०, लार्ड महावीर ऐण्ड हिज टाइम्स, दिल्ली, १९७४, पृ० ७२–८८

४ शाह, सी० जे०, पू०नि०, पृ० १२७

५ शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स आव जैन आइकानोग्राफी,' सं०पु०प०, अं० ९, पृ० २

जैन धर्म मे मूर्ति पूजन की प्राचीनता से सम्बद्ध सबसे महत्त्वपूर्ण वह उल्लेख है जिसमे महावीर के जीवनकाल मे ही उनकी मूर्ति के निर्माण का उल्लेख है। साहित्यिक परम्परा से ज्ञात होता है कि महावीर के जीवनकाल मे ही उनकी चन्दन की एक प्रतिमा का निर्माण किया गया था। इस मूर्ति मे महावीर को दीक्षा लेने के लगभग एक वर्ष पूर्व राजकुमार के रूप मे अपने महल मे ही तपस्या करते हुए अकित किया गया है। चूँकि यह प्रतिमा महावीर के जीवनकाल मे ही निर्मित हुई, अतः उसे जीवन्तस्वामी या जीवितस्वामी सज्ञा दी गई। साहित्य और शिल्प दोनो ही मे जीवन्तस्वामी को मुकुट, मेखला आदि अलंकरणो से युक्त एक राजकुमार के रूप मे निरूपित किया गया है। महावीर के समय के बाद की भी ऐसी मूर्तियो के लिए जीवन्तस्वामी शब्द का ही प्रयोग होता रहा।

जीवन्तस्वामी मूर्तियो को सर्वप्रथम प्रकाश मे लाने का श्रेय यू० पी० शाह को है।[१] साहित्यिक परम्परा को विश्वसनीय मानते हुए शाह ने महावीर के जीवनकाल से ही जीवन्तस्वामी मूर्ति की परम्परा को स्वीकार किया है।[२] उन्होने साहित्यिक परम्परा की पुष्टि मे अकोटा (गुजरात) से प्राप्त जीवन्तस्वामी की दो गुप्तयुगीन कास्य प्रतिमाओ का भी उल्लेख किया है।[३] इन प्रतिमाओ मे जीवन्तस्वामी को कायोत्सर्ग-मुद्रा मे खड़ा और वस्त्राभूषणो से सज्जित दरशाया गया है। पहली मूर्ति ल० पाँचवी शती ई० की है और दूसरी लेखयुक्त मूर्ति ल० छठी शती ई० की है। दूसरी मूर्ति के लेख मे 'जिवतसामी' खुदा है।[४]

जैन धर्म मे मूर्ति-निर्माण एव पूजन की प्राचीनता के निर्धारण के लिए जीवन्तस्वामी मूर्ति की परम्परा की प्राचीनता का निर्धारण अपेक्षित है। आगम साहित्य एव कल्पसूत्र जैसे प्रारम्भिक ग्रन्थो मे जीवन्तस्वामी मूर्ति का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। जीवन्तस्वामी मूर्ति के प्राचीनतम उल्लेख आगम ग्रन्थो से सम्बन्धित छठी शती ई० के बाद की उत्तर-कालीन रचनाओ, यथा—निर्युक्तियो, टीकाओ, भाष्यो, चूर्णियो आदि मे ही प्राप्त होते है।[५] इन ग्रन्थो से कोशल, उज्जैन, दशपुर (मदसोर), विदिशा, पुरी, एव वीतभयपट्टन मे जीवन्तस्वामी मूर्तियो की विद्यमानता की सूचना प्राप्त होती है।[६]

जीवन्तस्वामी मूर्ति का उल्लेख सर्वप्रथम वाचक सघदासगणि कृत वसुदेवहिन्डी (६१० ई० या ल० एक या दो शताब्दी पूर्व की कृति)[७] मे प्राप्त होता है। ग्रन्थ मे आर्या सुव्रता नाम की एक गणिनी के जीवन्तस्वामी मूर्ति के पूजनार्थ उज्जैन जाने का उल्लेख है।[८] जिनदासकृत आवश्यक चूर्णि (६७६ ई०) मे जीवन्तस्वामी की प्रथम मूर्ति की कथा प्राप्त होती है। इसमे अच्युत इन्द्र द्वारा पूर्वजन्म के मित्र विद्युन्माली को महावीर की मूर्ति के पूजन की सलाह देने, विद्युन्माली के गोशीर्ष चन्दन की मूर्ति बनाने एव प्रतिष्ठा करने, विद्युन्माली के पास से मूर्ति के एक वणिक के हाथ लगने, कालान्तर मे महावीर के समकालीन सिन्धु सौवीर मे वीतभयपत्तन के शासक उदायन एव उसकी रानी प्रभावती द्वारा उसी मूर्ति के

---

१ शाह, यू० पी०, 'ए यूनीक जैन इमेज आव जीवन्तस्वामी,' ज०ओ०इ०, ख० १, अ० १, पृ० ७२–७९, शाह, 'साइड लाइट्स ऑन दि लाइफ-टाइम-सेण्डलवुड इमज ऑव महावीर', ज०ओ०इ०, ख० १, अ० ४, पृ० ३५८–६८, शाह, 'श्रीजीवन्तस्वामी' (गुजराती), जै०स०प्र०, वर्ष १७, अ०५–६, पृ०९८–१०९, शाह, **अकोटा ब्रोन्जेज**, बंबई, १९५९, पृ० २६–२८

२ शाह, 'श्रीजीवन्तस्वामी,' जै०स०प्र०, वर्ष १७, अ० ५–६, पृ० १०४

३ शाह, 'ए यूनीक जैन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी,' ज०ओ०इ०, ख० १, अ० १, पृ० ७९

४ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, पृ० २६–२८, फलक ९ ए, बी, १२ ए

५ जैन, हीरालाल, **भारतीय सस्कृति में जैन धर्म का योगदान**, भोपाल, १९६२, पृ० ७२

६ जैन, जे० सी०, **लाईफ इन ऐन्शण्ट इण्डिया : ऐज डेपिक्टेड इन दि जैन केनन्स्**, बबई, १९४७, पृ० २५२, ३००, ३२५

७ शाह, यू० पी०, 'श्रीजीवन्तस्वामी,' जै०स०प्र०, वर्ष १७, अ० ५–६, पृ० ९८

८ **वसुदेवहिण्डी**, ख० १, भाग १, पृ० ६१

वणिक से प्राप्त करने एव रानी प्रभावती द्वारा मूर्ति की भक्तिभाव ने पूजा करने का उल्लेख है। यही कथा हरिभद्रसूरि की आवश्यक वृत्ति मे भी वर्णित है।

इसी कथा का उल्लेख हेमचन्द्र (११६९–७२ ई०) ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (पर्व १०, सर्ग ११) मे कुछ नवीन तथ्यो के साथ किया है। हेमचन्द्र ने स्वय महावीर के मुख से जीवतस्वामी मूर्ति के निर्माण का उल्लेख कराते हुए लिखा है कि क्षत्रियकुण्ड ग्राम मे दीक्षा लेने के पूर्व छद्मस्थ काल मे महावीर का दर्शन विद्युन्माली ने किया था। उस समय उनके आभूषणो से सुसज्जित होने के कारण ही विद्युन्माली ने महावीर की अलकरण युक्त प्रतिमा का निर्माण किया।[1] अन्य स्रोतो मे भी ज्ञात होता है कि दीक्षा लेने का विचार होते हुए भी अपने ज्येष्ठ भ्राता के आग्रह के कारण महावीर को कुछ समय तक महल मे ही धर्म-ध्यान मे समय व्यतीत करना पडा था। हेमचन्द्र के अनुसार विद्युन्माली द्वारा निर्मित मूल प्रतिमा विदिशा मे थी। हेमचन्द्र ने यह भी उल्लेख किया है कि चौलुक्य शासक कुमारपाल ने वीतभयपट्टन मे उत्खनन करवाकर जीवतस्वामी की प्रतिमा प्राप्त की थी। जीवतस्वामी मूर्ति के लक्षणो का उल्लेख हेमचन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी भी जैन आचार्य ने नही किया है। क्षमाश्रमण सघदास रचित बृहत्कल्पभाष्य के भाष्य गाथा २७५३ पर टीका करते हुए क्षेमकीर्ति (१२७५ ई०) ने लिखा है कि मौर्य शासक सम्प्रति को जैन धर्म मे दीक्षित करनेवाले आर्य सुहस्ति जीवतस्वामी मूर्ति के पूजनार्थ उज्जैन गये थे। उल्लेखनीय है कि किसी दिगम्बर ग्रन्थ मे जीवतस्वामी मूर्ति की परम्परा का उल्लेख नही प्राप्त होता।[2] इसका एक सम्भावित कारण प्रतिमा का वस्त्राभूषणो मे युक्त होना हो सकता है।

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि पाँचवी-छठी शती ई० के पूर्व जीवतस्वामी के सम्बन्ध मे हमे किसी प्रकार की ऐतिहासिक सूचना नही प्राप्त होती है। इस सन्दर्भ मे महावीर के गणधरो द्वारा रचित आगम साहित्य मे जीवतस्वामी मूर्ति के उल्लेख का पूर्ण अभाव जीवतस्वामी मूर्ति की धारणा की परवर्ती ग्रन्थो द्वारा प्रतिपादित महावीर की समकालिकता पर एक स्वाभाविक सन्देह उत्पन्न करता है। कल्पसूत्र एव ई० पू० के अन्य ग्रन्थो मे भी जीवतस्वामी मूर्ति का अनुल्लेख इसी सन्देह की पुष्टि करता है। वर्तमान स्थिति मे जीवतस्वामी मूर्ति की धारणा को महावीर के समय तक ले जाने का हमारे पास कोई ऐतिहासिक प्रमाण नही है।

मौर्य-युग

बिहार जैन धर्म की जन्मस्थली होने के साथ-साथ भद्रबाहु, स्थूलभद्र, यशोभद्र, सुधर्मन, गौतमगणधर एव उमास्वाति जैसे जैन आचार्यों की मुख्य कार्यस्थली भी रही है। जैन परम्परा के अनुसार जैन धर्म को लगभग सभ समर्थ मौर्य शासको का समर्थन प्राप्त था। चन्द्रगुप्त मौर्य का जैन धर्मानुयायी होना तथा जीवन के अन्तिम वर्षों मे भद्रबाहु के साथ दक्षिण भारत जाना सुविदित है।[3] अर्थशास्त्र मे जयन्त, वैजयन्त, अपराजित एव अन्य जैन देवो की मूर्तियो का उल्लेख है।[4] अशोक बौद्ध धर्मानुयायी होते हुए भी जैन धर्म के प्रति उदार था। उसने निर्ग्रन्थो एव आजीविको को दान दिए थे।[5] सम्प्रति को भी जैन धर्म का अनुयायी कहा गया है।[6] किन्तु मौर्य शासको से सम्बद्ध इन परम्पराओ के विपरीत पुरातात्विक साक्ष्य के रूप मे लोहानीपुर मे प्राप्त केवल एक जिन मूर्ति ही है, जिसे मौर्य युग का माना जा सकता है।

---

१ त्रि०श०पु०च० १० ११ ३७९–८०

२ शाह, यू०पी०, पू०नि०, पृ० १०९ जैन ग्रन्थो के आधार पर लिया गया यू० पी० शाह का निष्कर्ष दिगम्बर कलाकेन्द्रो मे जीवतस्वामी के मूर्त चित्रणाभाव से भी समर्थित होता है।

३ मुखर्जी, आर० के०, चन्द्रगुप्त मौर्य ऐण्ड हिज टाइम्स, दिल्ली, १९६६ (पु०मु०), पृ० ३९–४१

४ भट्टाचार्य, बी० सी०, दि जैन आइकानोग्राफी, लाहौर, १९३९, पृ० ३३

५ थापर, रोमिला, अशोक ऐण्ड दि डिक्लाइन आव दि मौर्यज, आक्सफोर्ड, १९६३ (पु०मु०), पृ० १३७–८१, मुखर्जी, आर० के०, अशोक, दिल्ली, १९७४, पृ० ५४–५५

६ परिशिष्टपर्वन ९ ५४ थापर, रोमिला, पू०नि०, पृ० १८७

पटना के समीपस्थ लोहानीपुर से मौर्ययुगीन चमकदार आलेप से युक्त ल० तीसरी शती ई० पू० का एक नग्न कवन्ध प्राप्त हुआ है, जो सम्प्रति पटना सग्रहालय मे है। कवन्ध की दिगम्वरता एवं कायोत्सर्ग-मुद्रा इसके तीर्थंकर मूर्ति होने के प्रमाण हैं। चमकदार आलेप के अतिरिक्त उसी स्थल से उत्खनन मे प्राप्त होनेवाली मौर्ययुगीन ईंटें एव एक रजत आहतमुद्रा भी मूर्ति के मौर्यकालीन होने के समर्थक साक्ष्य है।[1] इस मूर्ति के निरूपण मे यक्ष मूर्तियो का प्रभाव दृष्टिगत होता है। यक्ष मूर्तियो की तुलना मे मूर्ति की शरीर रचना मे भारीपन के स्थान पर सन्तुलन है, जिसे जैन धर्म मे योग के विशेष महत्व का परिणाम स्वीकार किया जा सकता है। शरीर रचना मे प्राप्त सतुलन, मूर्ति के मौर्य युग के उपरान्त निर्मित होने का[2] नही वरन् उसके तीर्थंकर मूर्ति होने का सूचक है। मौर्य शासको द्वारा जैन धर्म को समर्थन प्रदान करना और अर्थशास्त्र एव कलिंग शासक खारवेल के लेख के उल्लेख लोहानीपुर मूर्ति के मौर्ययुगीन मानने के अनुमोदक तथ्य हैं।

शुग-कुषाण युग

उदयगिरि-खण्डगिरि की पहाडियो (पुरी, उडीसा) पर दूसरी-पहली शती ई० पू० की जैन गुफाएँ प्राप्त होती हैं। उदयगिरि की हाथीगुम्फा मे खारवेल का ल० पहली शती ई० पू० का लेख उत्कीर्ण है।[3] यह लेख अरहतो एव सिद्धो को नमस्कार से प्रारम्भ होता है और अरहंतो के स्मारिका अवशेषा का उल्लेख करता है। लेख मे इस वात का भी उल्लेख है कि खारवेल ने अपनी रानी के साथ कुमारी (उदयगिरि) स्थित अर्हतो के स्मारक अवशेषो पर जैन साधुओ को निवास की सुविधा प्रदान की थी।[4] लेख मे उल्लेख है कि कलिंग की जिस जिन प्रतिमा को नन्दराज 'तिवससत' वर्ष पूर्व कलिंग से मगध ले गया था, उसे खारवेल पुन वापस ले आया। 'तिवससत' शव्द का अर्थ अधिकाश विद्वान् ३०० वर्ष मानते हैं।[5] इस प्रकार लेख के आधार पर जिन मूर्ति की प्राचीनता ल० चौथी शती ई० पू० तक जाती है।

ल० दूसरी-पहली शती ई० पू० मे जैन धर्म गुजरात मे भी प्रवेश कर चुका था। इसकी पुष्टि कालकाचार्य कथा से होती है। कथा मे उल्लेख है कि कालक ने भडौंच जाकर लोगो को जैन धर्म की शिक्षा दी। साहित्यिक स्रोतो मे ऋषभनाथ और नेमिनाथ के क्रमश शत्रुजय एव गिरनार पहाडियो पर तपस्या करने तथा नेमिनाथ के गिरनार पर ही कैवल्य प्राप्त करने का उल्लेख प्राप्त होता है। गुजरात मे ये दोनो ही पहाडिया सर्वाधिक धार्मिक महत्व की स्थलिया रही हैं।[6]

लोहानीपुर जिन मूर्ति के वाद की पार्श्वनाथ की दूसरी जिन मूर्ति प्रिंस आव वेल्स सग्रहालय, बम्बई मे सगृहीत है, जो ल० प्रथम शती ई० पू० की कृति है। लगभग उसी समय की पार्श्वनाथ की दूसरी जिन मूर्ति वक्सर जिले के चौसा ग्राम से प्राप्त हुई है। वक्सर की गगा के तट पर स्थिति के कारण उसका व्यापारिक महत्व था।[7]

ल० दूसरी शती ई० पू० के मध्य मे जैन कला को प्रथम पूर्ण अभिव्यक्ति मथुरा मे मिली। यहा शुग युग से मध्ययुग (१०२३ ई०) तक की जैन मूर्ति सम्पदा का वैविध्यपूर्ण भण्डार प्राप्त होता है, जिसमे जैन प्रतिमाविज्ञान के विकास की प्रारम्भिक अवस्थाए प्राप्त होती हैं। जैन परम्परा मे मथुरा की प्राचीनता सुपार्श्वनाथ के समय तक प्रतिपादित की गई है जहा कुवेरा देवी ने सुपार्श्व की स्मृति मे एक स्तूप वनवाया था। विविधतीर्थकल्प (१४ वी शती ई०) मे उल्लेख है कि पार्श्वनाथ के समय मे सुपार्श्व के स्तूप का विस्तार और पुनरुद्धार हुआ था, तथा वप्पभट्टिसूरि ने वि० स० ८२६

---

१ जायसवाल के० पी०, 'जैन इमेज ऑव मौर्य पिरियड', ज०वि०उ०रि०सो०, खं० २३, भाग १, पृ० १३०–३२
२ रे, निहाररजन, मौर्य ऐण्ड शुग आर्ट, कलकत्ता, १९६५, पृ० ११५
३ सरकार, डी० सी०, सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, ख० १, कलकत्ता, १९६५, पृ० २१३
४ वही, पृ० २१३–२१
५ वही, पृ० २१५, पा० टि० ७
६ विविधतीर्थकल्प, पृ० १-१०
७ मोती चन्द्र, सार्थवाह, पटना, १९५३, पृ० १५

(=७६९ ई०) मे पुन उसका जीर्णोद्धार करवाया।[1] इस परवर्ती साहित्यिक परम्परा की एक कुषाणकालीन तीर्थंकर मूर्ति से पुष्टि होती है, जिसकी पीठिका पर यह लेख (१६७ ई०) है कि यह मूर्ति देवनिर्मित स्तूप मे स्थापित की गयी।[2]

मथुरा मे तीनो प्रमुख धर्मों (ब्राह्मण, बौद्ध एव जैन) मे आराध्य देवो के मूर्त अकनो के मूल मे भक्ति आन्दोलन ही था। जिन मूर्ति का निर्माण मौर्य युग मे ही प्रारम्भ हो चुका था पर उनके निर्माण की क्रमवद्ध परम्परा मथुरा मे शुग-कुषाण युग से प्रारम्भ हुई। तात्पर्य यह कि जैन धर्म मे मूर्ति पूजा का प्रारम्भ जैन धर्म की जन्मस्थली विहार मे न होकर भक्ति की जन्मस्थली मथुरा मे हुआ। ईसा के कई शताब्दी पूर्व ही मथुरा वासुदेव-कृष्ण पूजन से सम्बद्ध भक्ति सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र वन चुका था।[3] जैन धर्म मे मूर्ति निर्माण पर भागवत सम्प्रदाय के प्रभाव की पुष्टि कुछ कुषाणकालीन जिन मूर्तियो मे कृष्ण-वासुदेव एव वलराम के उत्कीर्णन से भी होती है।

शुग शासको द्वारा जैन धर्म एव कला को समर्थन के प्रमाण नही प्राप्त होते। कुषाण युग मे भी जैन धर्म को राजकीय समर्थन के प्रमाण नही प्राप्त होते। पर शासको की धर्म सहिष्णु नीति मथुरा मे जैन धर्म एव कला के विकास मे सहायक रही है। कुषाण युग मे मथुरा मे प्रचुर सख्या मे जैन मूर्तियो का निर्माण हुआ और जैन प्रतिमाविज्ञान की कई विशेषताओ का सर्वप्रथम निरूपण एव निर्धारण हुआ।[4] जैन कला के विकास की इस पृष्ठभूमि मे मथुरा के शासक वर्ग, व्यापारियो एव सामान्य जनो का समर्थन रहा है। एक लेख मे ग्रामिक जयनाग की पत्नी सिंहदत्ता (दत्ता) के एक आयागपट दान करने का उल्लेख है।[5] एक अन्य लेख मे गोतिपुत्र की पत्नी शिवमित्रा द्वारा जैन मूर्ति निर्माण का उल्लेख है।[6] कुछ जैन मूर्ति लेखो मे ब्राह्मणो का भी उल्लेख प्राप्त होता है। मथुरा के लेखो से जैन मूर्ति निर्माण मे स्त्रियो के योगदान का भी ज्ञान होता है। जैन लेखो मे अकका, ओघा, ओखरिका और उझटिका जैसे स्त्री नाम विदेशी मूल के प्रतीत होते हैं।[7]

कुषाण शासन मे आन्तरिक शान्ति एव व्यवस्था के कारण व्यापार को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। देश मे और विशेषत विदेशो मे होने वाले व्यापार से व्यापारियो एव व्यवसायियो ने प्रभूत धन अर्जित किया, जिसे उन्होंने धार्मिक स्मारको एव मूर्तियो के निर्माण मे भी लगाया। मथुरा प्रमुख व्यापारिक केन्द्र के साथ कुषाण शासको की दूसरी राजधानी और कनिष्क के समय कला का सवसे वडा केन्द्र भी था। मथुरा से प्राप्त तीनो सम्प्रदायो की मूर्तियो के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि राजकीय सरक्षण के अभाव मे भी जैन मूर्तियो की सख्या वौद्ध एव हिन्दू मूर्तियो की तुलना मे कम नही है। ल्यूडर द्वारा प्रकाशित मथुरा के कुल १३२ लेखो मे से ८४ जैन और केवल ३३ वौद्ध मूर्तियो से सम्बद्ध हैं। शेष लेखो का इस प्रकार का निर्धारण सम्भव नही है।[8]

मथुरा अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण देश के लगभग सभी व्यापारिक महत्व के स्थलो, राजगृह; तक्षशिला, उज्जैन, भरुकच्छ, शूर्पारक, से जुडा था जो आर्थिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण था।[9] जैन ग्रन्थो मे मथुरा का प्रसिद्ध

---

१ विविधतीर्थकल्प, पृ० १८–१९

२ राज्य सग्रहालय, लखनऊ · जे२०। लेखक को देवनिर्मित शब्द का सन्दर्भ कई मध्ययुगीन मूर्ति-अभिलेखो मे भी देखने को मिला है।

३ अग्रवाल, वी० एस०, इण्डियन आर्ट, भाग १, वाराणसी, १९६५, पृ० २३०

४ इनमे जिनो की वहुसख्यक मूर्तिया, ऋषभ एव महावीर के जीवनदृश्य, चौमुख, नैगमेषी, सरस्वती आदि प्रमुख हैं।

५ विजयमूर्ति (स०), जैं०शि०सं०, भाग २, वम्बई, १९५२, पृ० ३३–३४, लेख सं० ४२

६ एपि०इण्डि०, ख० १, लेख स० ३३

७ एपि०इण्डि०, ख० १, पृ० ३७१–९७, ख० २, पृ० १९५-२१२, खं० १९, पृ० ६७

८ ल्यूज-डे-ल्यू, जे०ई०वान, दि सीथियन पिरियड, लिडेन, १९४९, पृ० १४९, पा० टि० १६

९ मोती चद्र, पू०नि०, पृ० १५–१६, २४

व्यापारिक केन्द्र के रूप मे उल्लेख किया गया है, जो वस्त्र निर्माण की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण था।[१] कुषाण काल मे मथुरा के जैन समाज मे व्यापारियो एव शिल्पकर्मियो की प्रमुखता की पुष्टि जैन मूर्तियो पर उत्कीर्ण अनेक लेखो से होती है, जिनसे जैन धर्म एव कला मे उनका योगदान स्पष्ट है। व्यूहलर के अध्ययन के अनुसार मथुरा के जैन अधिक सख्या मे, सम्भवत. सर्वाधिक संख्या मे, व्यापारी एव व्यवसायी वर्ग के थे।[२] जैन मूर्तियो के पीठिका-लेखो मे प्राप्त दानकर्ताओ की विशिष्ट उपाधिया उनके व्यवसाय की सूचक है। लेखो मे श्रेष्ठिन्, सार्थवाह, गन्धिक आदि के अतिरिक्त सुवर्णकार, वर्धकिन (बढई), लौहकर्मक शब्दो के भी उल्लेख हैं। साथ ही नाविक (प्रातारिक), वैश्याओ, नर्तको के भी उल्लेख प्राप्त होते है।[३]

पहली-दूसरी शती ई० के सोनभण्डार गुफा (राजगिर) के एक लेख मे मुनि वैरदेव (श्वेताम्बर आचार्य वज्र : ५७ ई०) द्वारा जैन मुनियो के निवास के लिए गुफाओ के निर्माण का उल्लेख है जिसमे तीर्थंकर मूर्तिया भी स्थापित की गई।[४]

दूसरी शती ई० के अन्त (ल० १७६ ई०) मे कुषाणो के पतन के उपरान्त मथुरा के राजनीतिक मच पर नागवश का उदय हुआ। दूसरी क्षेत्रीय शक्तियो का भी उदय हुआ। भिन्न राजनीतिक मानचित्र एव परिस्थिति मे व्यापार शिथिल पड गया। पूर्व की तुलना मे इस युग के कलावशेषो मे तीर्थंकर या अन्य जैन मूर्तियो की संख्या बहुत कम है तथा तीर्थंकरो के जीवनदृश्यो, नैगमेषी एव सरस्वती के अकनो का पूर्ण अभाव है, जो जैन मूर्ति निर्माण की क्षीणता का द्योतक है। तथापि पारम्परिक एव व्यापारिक पृष्ठभूमि के कारण जैन समुदाय अब भी सुसगठित और धार्मिक क्षेत्र मे क्रियाशील था, जिसकी पुष्टि चौथी शती ई० के प्रारम्भ या कुछ पूर्व आर्य स्कन्दिल के नेतृत्व मे मथुरा मे आगम साहित्य के सकलन हेतु हुए द्वितीय वाचन से होती है।[५]

गुप्त-युग

चौथी शती ई० के प्रारम्भ से छठी शती ई० के मध्य तक गुप्तो के शासन काल मे सस्कृति एवं कला का सर्वपक्षीय विकास हुआ। समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय एव स्कन्दगुप्त जैसे पराक्रमी शासको ने उत्तर भारत को एकसूत्र मे बाधे रखा। शातिपूर्ण वातावरण में व्यवसायो एव देशव्यापी व्यापार का पुनरुत्थान हुआ और आर्थिक स्थिति सुदृढ हुई। गुप्त युग में भडौंच, उज्जैनी, विदिशा, वाराणसी, पाटलिपुत्र, कौशाम्बी, मथुरा आदि व्यापारिक महत्व के प्रमुख नगर स्थल मार्ग से एक दूसरे से सम्बद्ध थे। ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक) बंगाल का प्रमुख बदरगाह था, जहा से विदेशो से व्यापार होता था।[६] इस युग मे मिस्र, ग्रीस, रोम, पर्सिया, सीरिया, सीलोन, कम्बोडिया, स्याम, चीन, सुमात्रा आदि अनेक देशो से भारत का व्यापार हो रहा था।[७]

गुप्त शासक मुख्यत. ब्राह्मण धर्मावलबी होते हुए भी अन्य धर्मों के प्रति उदार थे। तथापि अभिलेखिक एव साहित्यिक साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि इस युग मे जैन धर्म की बहुत उन्नति नही हुई। फाह्यान के यात्रा विवरण मे भी जैन धर्म का अनुल्लेख है। रामगुप्त (?) के अतिरिक्त अन्य किसी भी गुप्त शासक द्वारा जैन मूर्ति निर्माण का उल्लेख नही मिलता है। विदिशा से प्राप्त ल० चौथी शती ई० की तीन जिन मूर्तियो मे से दो के पीठिका-लेखो मे महाराजाधिराज

---

१ जैन, जे० सी०, पू०नि०, पृ० ११४-१५
२ सिंह, जे० पी०, आस्पेक्ट्स ऑव अर्ली जैनिजम, वाराणसी, १९७२, पृ० ९०, पा०टि० ३
३ एपि०इण्डि०, ख० १, लेख स० १, २, ७, २१, २९, ख० २, लेख स० ५, १६, १८, ३९
४ आ०स०इ०ऐ०रि०, १९०५-०६, पृ० ९८, १६६
५ शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', स०पु०प०, अ० ९, पृ० २
६ अल्तेकर, ए० एस०, 'ईकनामिक कण्डीशन', दि वाकाटक गुप्त एज, दिल्ली, १९६७, पृ० ३५७-५८
७ मैती, एस० के०, ईकनामिक लाईफ ऑव नार्दर्न इण्डिया इन दि गुप्त पिरियड, कलकत्ता, १९५७, पृ० १२०

श्रीरामगुप्त द्वारा उन मूर्तियो के निर्माण कराने का उल्लेख है ।[१] गुप्त सवत् तिथियो वाली कुछ मूर्तिया चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त प्रथम एव स्कन्दगुप्त के समय की हैं । मथुरा से प्राप्त एक मूर्ति लेख (गुप्त स० ११३ = ४३२ ई०) मे श्यामाढ्या नामक स्त्री द्वारा मूर्ति समर्पण अंकित है ।[२] उदयगिरि गुफा लेख गुप्त स० १०६ = ४२५ ई०) के अनुसार पार्श्वनाथ की मूर्ति शकर नाम के व्यक्ति द्वारा स्थापित की गयी थी ।[३] कहौम (गोरखपुर, उ० प्र०) लेख (गुप्त स० १४१ = ४६० ई०) के अनुसार मूर्ति के दानकर्ता मद्र के हृदय मे ब्राह्मणो एव धर्माचार्यो के प्रति विशेष सम्मान था ।[४] पहाड़पुर (राजशाही, बागला देश) से प्राप्त लेख (गुप्त स० १५९ = ४७८ ई०) मे एक ब्राह्मण युगल द्वारा अर्हत् के पूजन एव वट गोहालि के विहार मे विहारगृह बनाने के लिए भूमिदान का उल्लेख है ।[५]

मथुरा के अतिरिक्त अन्य कई स्थलो से भी गुप्तकालीन जैन मूर्तियो के अवशेष प्राप्त होते हैं । अपने बन्दरगाहो के कारण गुजरात व्यापारियो का प्रमुख कार्य क्षेत्र हो गया था । गुप्त युग मे ही ल० पाँचवी शती ई० के मध्य या छठी शती ई० के प्रारम्भ मे वलभी मे तीसरा और अन्तिम वाचन सम्पन्न हुआ जिसमे सभी उपलब्ध जैन ग्रन्थो को लिपिबद्ध किया गया ।[६] अकोटा से रोमन कास्य पात्र प्राप्त होते है, जो उस स्थल के व्यापारिक महत्व का सकेत देते हैं । गुजरात के अकोटा एव वलभी नामक स्थलो से गुप्तयुगीन जैन मूर्तिया प्राप्त हुई हैं । विहार मे राजगिर का विभिन्न स्थलो से सम्बद्ध होने के कारण विशेष व्यापारिक महत्व था । गुप्त युग से निरन्तर बारहवी शती ई० तक राजगिर (वैभार पहाडी और सोनभण्डार-गुफा) मे जैन मूर्तियो का निर्माण होता रहा । मध्यप्रदेश मे विदिशा प्राचीन काल से ही व्यापारिक महत्व की नगरी थी ।[७] व्यापार की दृष्टि से वाराणसी का भी महत्व था[८] जहा से छठी-सातवी शती ई० की कुछ जैन मूर्तिया प्राप्त होती हैं ।

सातवी शती ई० के दो गुर्जर शासको—जयभट्ट प्रथम एव दद्द द्वितीय ने तीर्थंकरो से सम्बद्ध वीतराग एव प्रशान्तराग उपाधिया धारण की थी । ह्वेनसाग के विवरण मे ज्ञात होता है कि सातवी शती ई० मे श्वेताम्बर एव दिगम्बर सम्प्रदाय के साधु पश्चिम मे तक्षशिला एव पूर्व मे विपुल तक और दिगम्बर निर्ग्रन्थ बगाल मे समतट एव पुण्ड्रवर्धन तक फैले थे ।[९]

मध्य-युग (ल० ८वी शती ई० से १२वी शती ई० तक)

हर्ष के बाद (ल० ६४६ ई०) का युग किन्ही अर्थो मे ह्रास का युग है । किसी केन्द्रीय शक्ति के अभाव मे उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रो मे स्वतन्त्र शक्तिया उठ खडी हुई । कन्नौज पर अधिकार करने के लिए इनमे से प्रमुख, पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूट राजवशो के मध्य होने वाला त्रिकोणात्मक सघर्ष इस काल की महत्वपूर्ण घटना है । ग्यारहवी शती ई० का इतिहास अनेक स्वतन्त्र राजवशो से सम्बद्ध है, जिनमे से अधिकाश ने अपना राजनीतिक जीवन प्रतिहारो के अधीन प्रारम्भ किया था । इनमे राजस्थान मे चाहमान, गुजरात मे चौलुक्य (सोलकी) और मालवा मे परमार प्रमुख हैं । साथ ही गहडवाल, चन्देल और कल्चुरि एव पूर्व मे पाल भी महत्वपूर्ण है, जिन्होने नवी से बारहवी शती ई० के मध्य शासन किया । इन राजवशो के शासको मे सत्ता एव राज्यविस्तार के लिए आपस मे निरन्तर सघर्ष होता रहा । अन्त मे ११९३ ई० मे

---

१ गाई, जी० एस०, 'थ्री इन्स्क्रिप्शन्स ऑव रामगुप्त', ज०ओ०इ०, ख० १८, अ ३, पृ० २४७–५१, अग्रवाल, आर० सी०, 'न्यूली डिस्कवर्ड स्कल्पचर्स फ्राम विदिशा', ज०ओ०इ०, ख० १८, अ० ३, पृ० २५२–५३

२ एपि०इण्डि०, ख० २, पृ० २१०-११, लेख स० ३९

३ का०इ०इ०, ख० ३, पृ० २५८-६०, लेख स० ६१

४ वही, पृ० ६५–६८, लेख स० १५

५ एपि०इण्डि०, ख० २०, पृ० ६१

६ विण्टरनित्ज, एम०, ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिट्रेचर, ख० २, कलकत्ता, १९३३, पृ० ४३२

७ मैती, एस० के०, पू०नि०, पृ० १२३, जैन, जे० सी०, पू०नि०, पृ० ११५

८ मोती चन्द्र, पू०नि०, पृ० १७

९ घटगे, ए० एम०, 'जैनिजम', दि क्लासिकल एज, बंबई, १९५४, पृ० ४०५–०६

मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज तृतीय एव जयचन्द को पराजित किया, जिसके साथ ही भारत मे हिन्दू शासन समाप्त हो गया। सन् १२०६ ई० मे मुसलमानो ने मामलुक वश की स्थापना की।

विभिन्न क्षेत्रो के शासको के मध्य निरन्तर चलनेवाले सघर्ष के परिणामस्वरूप गुप्तयुग की शान्ति एव व्यवस्था विलुप्त हो गयी। तथापि भारतीय सस्कृति के विभिन्न पक्षो का विकास अवाध गति से चलता रहा, यद्यपि उस विकास का स्वरूप एव उसकी गति विभिन्न राजवशो के अन्तर्गत भिन्न रही। मौर्य, कुषाण एव गुप्त युगो की तुलना मे इस युग मे विभिन्न राजवशो के अन्तर्गत हुए साहित्य और कला के विकास का महत्व किसी भी प्रकार कम नही है। सीमित क्षेत्र में समर्थ शासक का सरक्षण किसी भी धर्म और कला की उन्नति एव विकास मे अधिक सहायक होता है। इसका प्रमाण प्रतिहार, चदेल और चौलुक्य शासको के काल मे निर्मित जैन मन्दिरो की सख्या एव प्रतिमाविज्ञान की प्रभूत सामग्री मे निहित है। इस युग मे ही गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश मे सर्वाधिक जैन मन्दिरो का निर्माण हुआ और समस्त उत्तर भारत मे अनेक जैन कलाकेन्द्र स्थापित हुए जहाँ प्रभूत सख्या मे जैन मूर्तिया निर्मित हुईं। फलत इस काल मे प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से विषय की सर्वाधिक विविधता एव विकास भी दृष्टिगत होता है। उदयगिरि-खडगिरि (नवमुनि एवं वारभुजी गुफाए), देवगढ, मथुरा, ग्वालियर, खजुराहो, ओसिया, दिलवाडा (विमलवसही एव लूणवसही), कुंभारिया, तारगा, राजगिर आदि जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से अतीव महत्व के स्थल हैं।

प्रतिहार शासक नागभट द्वितीय[1] और चौलुक्य शासक कुमारपाल के अतिरिक्त अन्य किसी भी शासक के जैन धर्म स्वीकार करने का उल्लेख नही प्राप्त होता। पर बौद्ध धर्मावलम्बी पालवश के अतिरिक्त अन्य सभी राजवशो का जैन धर्म एव कला को किसी न किसी रूप मे समर्थन प्राप्त था। जैन देवकुल मे राम, कृष्ण, वलराम, गणेश, सरस्वती, चक्रेश्वरी, अष्ट-दिक्पाल एव नवग्रहो जैसे हिन्दू देवो को विशेष महत्व दिया गया था।[2] जैन धर्म के इस उदार स्वरूप ने निश्चितरूपेण हिन्दू शासको को जैन धर्म के समर्थन के लिए आकृष्ट किया होगा। जयसिंह सूरि (१४ वी शती ई०) कृत **कुमारपालचरित** मे उल्लेख है कि जैन आचार्य हेमचन्द्र की सलाह पर ही कुमारपाल ने हेमचन्द्र के साथ सोमनाथ जाकर शिव का पूजन किया था। वही शिव ने प्रकट होकर जैन धर्म की प्रशसा की थी।[3] हेमचन्द्र ने शिव महादेव की प्रशसा मे काव्य रचना भी की थी। **गणधरसार्द्धशतकबृहद्वृत्ति** के अनुसार एक अच्छे जैन विद्वान् के लिए ब्राह्मण और जैन दोनो ही दर्शनो का पूरा ज्ञान आवश्यक है।[4] अहिंसा पर वल देने के साथ ही जैन धर्म युद्ध विरोधी नही था। तभी कुमारपाल, सिद्धराज एव विमल जैसे शासक उसकी परिधि मे आ सके।

जैन धर्म व्यापारियो एव व्यवसायियो के मध्य विशेष लोकप्रिय था। सम्भवत· इसके हिन्दू शासको द्वारा समर्थित होने का यह भी एक कारण था। जैन धर्म मे जाति व्यवस्था को धर्म की दृष्टि से महत्व नही दिया गया था, और सम्भवत इसी कारण वैश्यो ने काफी सख्या मे जैन धर्म स्वीकार किया था, जिनका मुख्य कार्य व्यापार या व्यवसाय था। इन वैश्यो को जैन समाज मे पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त थी। दण्डनायक विमल, वास्तुपाल, तेजपाल, पाहिल्ल एव जगदु को शासन मे

---

१ अय्यगर, कृष्णस्वामी, 'दि वप्पभट्टि-चरित ऐण्ड दि अर्ली हिस्ट्री ऑव दि गुर्जर एम्पायर,' ज०वा०ब्रा०रा०ए०सो०, खं० ३, अ० १-२, पृ० ११३, पुरी,वी० एन०, **दि हिस्ट्री ऑव दि गुर्जर-प्रतिहारज**, वम्वई, १९५७, पृ०४७–४८

२ जैन स्थिति के ठीक विपरीत स्थिति बौद्धो की थी, जिन्होंने प्रमुख हिन्दू देवताओ को अपने देवकुल मे निम्न स्थान दिया द्रष्टव्य, वनर्जी, जे० एन०, **दि डिवलप्मेण्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी**, कलकत्ता, १९५६, पृ० ५४० और आगे, भट्टाचार्य, वेनायतोश, **दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकानोग्राफी**, कलकत्ता, १९६८, पृ० १३६, १७३–७४, १८५–८८, २४९–५०

३ कुमारपालचरित ५ ५, पृ० २४ और आगे, ७ ५, पृ० ५७७ और आगे

४ शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, **सोशल ऐण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया**, दिल्ली,१९७२, पृ० ४६; जै०क०स्था०, खं० २, पृ० २५४, पा० टि० २

महत्वपूर्ण पद या शासको का सम्मान प्राप्त था। व्यापारियो के जैन धर्म एव कला को सरक्षण प्रदान करने की पुष्टि खजुराहो, जालोर और ओसिया जैसे स्थलो से प्राप्त लेखो से भी होती है। गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं मध्यप्रदेश मे होनेवाले जैन कला के प्रभूत विकास के मूल मे उन क्षेत्रो की व्यापारिक पृष्ठभूमि ही थी। गुजरात के भडौच, कँबे और सोमनाथ जैसे व्यापारिक महत्व के बन्दरगाहो, राजस्थान मे पोरवाड, श्रीमाल, ओसवाल, मोढेरक जैसी व्यापारिक जैन जातियो, एव मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश मे विदिशा, उज्जैन, मथुरा, कौशाम्बी जैसे महत्वपूर्ण व्यापारिक स्थलो ने इन क्षेत्रों मे जैन मन्दिरो एव प्रचुर सख्या मे मूर्तियो के निर्माण का आधार प्रस्तुत किया।

छठी शती ई० से दसवी शती ई० के मध्य का सक्रमण काल अन्य धर्मो एव कलाओ के साथ ही जैन धर्म एव कला मे भी नवीन प्रवृत्तियो के उदय का युग था। सातवी शती ई० के बाद कला मे क्षेत्रीय वृत्तिया उभरने लगी, और तीनो प्रमुख धर्मों को तान्त्रिक प्रवृत्तियो ने किसी न किसी रूप मे प्रभावित किया। अन्य धर्मो के समान जैन धर्म मे भी देवकुल की वृद्धि हुई। बौद्ध और हिन्दू धर्मों की तुलना मे जैन धर्म मे तान्त्रिक प्रभाव कम और मुख्यत. मन्त्रवाद के रूप मे था। जैन धर्म तान्त्रिक पूजाविधि, मास, शराब और स्त्रियो से मुक्त रहा। यही कारण है कि जैन धर्म मे देवताओ को शक्ति के साथ आलिगन मुद्रा मे नही व्यक्त किया गया। जैन आचार्यों ने तान्त्रिक विद्या के घिनौने आचरणो को पूर्णत अस्वीकार करके तन्त्र मे प्राप्त केवल योग एव साधना के महत्व को स्वीकार किया।

आगम ग्रन्थो मे भूतो, डाकिनियो एव पिशाचो के उल्लेख हैं। **समराइच्चकहा, तिलकमञ्जरी** एव **बृहत्कथाकोश** मे मन्त्रवाद, विद्याधरो, विद्याओ एव कापालिको के वेताल साधनो की चर्चा है जिनकी उपासना से साधको को दिव्य शक्तियो या मनोवाछित फलो की प्राप्ति होती थी।[1] तान्त्रिक प्रभाव मे कई एक जैन ग्रन्थो की रचनाएँ हुई, जिनमे कुछ प्रमुख ग्रन्थो के नाम इस प्रकार हैं—**ज्वालिनीमाता, निर्वाणकलिका, प्रतिष्ठासारोद्धार, आचारदिनकर, भैरवपद्मावतीकल्प, अद्भुत पद्मावती** आदि। परम्परागत जैन साहित्य और शिल्प मे १६ महाविद्याए तान्त्रिक देविया मानी गई है।[2]

उत्तर भारत मे गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उडीसा, बिहार, बगाल से ही जैन कला के अवशेष प्राप्त हुए हैं।[3] इन राज्यो से प्राप्त जैन मूर्तियो के सम्यक् अध्ययन की दृष्टि से पृष्ठभूमि के रूप मे इन राज्यो के राजनीतिक एव सास्कृतिक इतिहास का अलग-अलग अध्ययन अपेक्षित है।

गुजरात

आठवी शती ई० के अन्त तक गुजरात मे जैन धर्म का प्रभाव तेजी से बढ़ने लगा।[4] प्रतिहार शासक नागभट द्वितीय (आमराय) ने जीवन के अन्तिम वर्षो मे जैन धर्म स्वीकार किया था तथा मोढेरा एव अणहिलपाटक मे जैन मन्दिरो और शत्रुन्जय एव गिरनार पर तीर्थस्थलियो का निर्माण कराया था। वनराज चापोत्कट ने ७४६ ई० मे अणहिलपाटक मे पचासर चैत्य का निर्माण कराकर उसमे पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित करवायी और जैन आचार्य शीलगुणसूरि का सम्मान किया।[5]

गुजरात मे जैन धर्म एव कला के विकास मे चौलुक्य (या सोलकी) राजवश (९६१–१३०४ ई०) का सर्वाधिक योगदान रहा। इस राजवश के शासको के सरक्षण मे कुमारिया, तारगा एव जालोर मे कई जैन मन्दिरो का निर्माण

---

१ शर्मा, बृजनारायण, **सोशल लाईफ इन नार्दर्न इण्डिया**, दिल्ली, १९६६, पृ० २१२–१३

२ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज', **ज०इ०सो०ओ०आ०**, ख० १५, पृ० ११४

३ शेष उत्तर भारत मे जम्मू-कश्मीर, पंजाब और असम से जैन मूर्तियो की प्राप्तिया सन्देहास्पद प्रकार की हैं। ८वी शती ई० की कुछ दिगम्बर तीर्थंकर मूर्तिया असम के ग्वालपाड़ा जिले के सूर्य पहाडी की गुफाओ से मिली है, **नार्दर्न इण्डिया पत्रिका**, अक्तूबर २९, १९७५, पृ० ८, **जै०क०स्था०**, खं० १, पृ० १७४

४ विरजी, के० के० जे०, **ऐन्शण्ट हिस्ट्री ऑव सौराष्ट्र**, बवई, १९५२, पृ०१८३

५ चौधरी, गुलाबचन्द्र, **पालिटिकल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेज**, अमृतसर, १९६३, पृ० २००

हुआ। जैन धर्म को अजयपाल (११७३–७६ ई०) के अतिरिक्त सभी शासको का समर्थन मिला। मूलराज प्रथम (९४२–९५ ई०) ने अण्हिलपाटक मे दिगम्बर सम्प्रदाय के लिए मूलवसतिका प्रासाद और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के लिए मूलनाथ जिनदेव मन्दिर का निर्माण कराया। प्रभावकचरित के अनुसार चामुण्डराज जैन आचार्य वीराचार्य से प्रभावित था और युवराज के रूप मे ही ९७६ ई० मे उसने वरुणशर्मक (मेहसाणा) के जैन मन्दिर को दान दिया था। भीमदेव प्रथम (१०२२–६४ ई०) ने सुराचार्य, शान्तिसूरि, बुद्धिसागर तथा जिनेश्वर जैसे जैन विद्वानो को अपने दरवार मे प्रश्रय दिया। कर्ण (१०६४–९४ ई०) ने टाकववी या टाकोवी (तकोडि) के सुमतिनाथ जिन मन्दिर को भूमिदान दिया। जयसिंह सिद्धराज (१०९४–११४४ ई०) के काल मे श्वेताम्बर धर्म गुजरात मे भलीभाति स्थापित हो चुका था। जयसिंह के ही नाम पर जैन आचार्य हेमचन्द्र ने **सिद्ध-हेम-व्याकरण** की रचना की थी। जयसिंह की ही उपस्थिति मे श्वेताम्बरो एव दिगम्बरो ने शास्त्रार्थ किया, जिसमे दिगम्बरो ने पराजय स्वीकार की। **द्वयाश्रयकाव्य** (हेमचन्द्रकृत) मे जयसिंह के सिद्धपुर मे महावीर मन्दिर के निर्माण कराने और अर्हत् सघ को स्थापित करने का उल्लेख है। ग्रन्थ मे पुत्र प्राप्ति हेतु जयसिंह के रैवतक (गिरनार) और शत्रुंजय पहाडियो पर जाने और नेमिनाथ एव ऋषभदेव के पूजन करने का भी उल्लेख है।[1]

कुमारपाल (११४४–७४ ई०) जैन धर्म एव कला का महान् समर्थक था। प्रबन्धो मे उसके जैन धर्म स्वीकार करने का उल्लेख है। मेरुतुंगकृत **प्रबन्धचिन्तामणि** (१३०६ ई०) के अनुसार इसने 'परमार्हत्' उपाधि धारण की।[2] अशोक के समान कुमारपाल ने विभिन्न स्थानो पर कुमार विहारो का निर्माण करवाया तथा इनके माध्यम से जैन धर्म का प्रचार और प्रसार किया। कुमारपाल को १४४० जैन मन्दिरो का निर्माणकर्ता कहा गया है। यह सख्या अतिशयोक्तिपूर्ण है, फिर भी इससे कुमारपाल द्वारा निर्मित जैन मन्दिरो की पर्याप्त सख्या का आभास मिलता है, जिसका पुरातात्विक प्रमाण भी समर्थन करते हैं।[3] कुमारपाल ने तारगा (मेहसाणा) मे अजितनाथ और जालोर के काचनगिरि (सुवर्णगिरि) पर पार्श्वनाथ मन्दिरो का निर्माण कराया।[4] कुमारपाल द्वारा निर्मित जैन मन्दिर (कुमार विहार) जालोर से प्रभास तक के पर्याप्त विस्तृत क्षेत्र के सभी महत्वपूर्ण जैन केन्द्रो मे निर्मित हुए।[5] कुमारपाल के उपरान्त गुजरात मे जैन धर्म को राजकीय समर्थन नही मिला।

चौलुक्य शासको के मन्त्रियो, सेनापतियो एव अन्य विशिष्ट जनो और व्यापारियो ने भी जैन धर्म और कला को समर्थन प्रदान किया। भीमदेव के दण्डनायक विमल ने शत्रुंजय और आरासण (कुमारिया) मे दो मदिरो का निर्माण कराया। कर्णदेव के प्रधान मन्त्री सान्तू ने अण्हिलपाटक एव कर्णावती मे सान्तू वसतिका का निर्माण करवाया, कर्णदेव के ही मन्त्री मुजला (जो वाद मे जयसिंह सिद्धराज के भी मन्त्री रहे) के १०९३ ई० के पूर्व अण्हिलपाटक मे मुन्जलवसती, मन्त्री उदयन के कर्णावती मे उदयन विहार (१०९३ ई०), स्तग तीर्थ मे उदयनवसती और धवलकक्क (धोल्क) मे सीमन्धर जिन मन्दिर (१११९ ई०), सोलाक मन्त्री के अण्हिलपाटक मे सोलाकवसती, दण्डनायक कपर्दी के अण्हिलपाटक मे ही जिन मन्दिर (१११९ ई०), जयसिंह के दण्डनायक सज्जन के गिरनार पर्वत पर नेमिनाथ मन्दिर (११२९ ई०), कुमारपाल के मन्त्री पृथ्वीपाल के सायणवाड्पुर मे शान्तिनाथ मन्दिर एव आवू के विमलवसही मे रगमण्डप एव देवकुलिकाए सयुक्त कराने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। उदयन के पुत्र एव मन्त्री वाग्भट्ट ने शत्रुंजय पर्वत पर प्राचीन मन्दिर के स्थान पर नवीन आदिनाथ मन्दिर (११५५–५७ ई०) का निर्माण कराया।[6] कुमारपाल के दण्डनायक के पुत्र अभयद को जैन धर्म के प्रति आस्थावान बताया गया है। गम्भूय के समृद्ध व्यापारी निन्नय ने अण्हिलपाटक मे ऋषभदेव का एक मन्दिर वनवाया।[7]

---

१ वही, पृ० २४०, २५५, २५७, ढाकी, एम० ए०, 'सम अर्ली जैन टेम्पल्स इन वेस्टर्न इण्डिया', म०जै०वि०गो०जु०वा०, पृ० २९४ २ प्रबन्धचिन्तामणि, पृ० ८६

३ मजूमदार, ए० के०, चौलुक्याज ऑव गुजरात, ववई, १९५६, पृ० ३१७–१९

४ नाहर, पी० सी०, जैन इन्स्क्रिप्शन्स, भाग १, कलकत्ता, १९१८, पृ० २३९, लेख सं० ८९९

५ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० २९४ ६ वही, पृ० २९६–९७

७ चौधरी, गुलाबचन्द्र, पू०नि०, पृ० २०१, २९५

मुसलमान यात्रियो, भौगोलिको (मार्कोपोलो) के वृत्तान्तो एव गुजरात के प्रवन्ध काव्यों में उल्लेख है कि मध्य-युग मे गुजरात मे कृषि, व्यवसाय, व्यापार एव वाणिज्य पूर्णतः विकसित था। पूर्वी एव पश्चिमी देशों के साथ गुजरात का व्यापार था। भड़ौंच, कैंबे और सोमनाथ गुजरात के तीन महत्वपूर्ण वदरगाह थे जिनके कारण इस क्षेत्र का विदेशो से होने वाले व्यापार पर प्रभाव था।[1]

राजस्थान

जैन धर्म एव कला की दृष्टि से दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र राजस्थान था, जहा जैन धर्म को अधिकाश राजवशो का समर्थन मिला। आठवीं से वारहवी शती ई० तक राजस्थान और गुजरात राजनीतिक दृष्टि से पर्याप्त सीमा तक एक दूसरे से सम्वद्ध थे। गुर्जर-प्रतिहार एव चौलुक्य शासको की राजनीतिक गतिविधिया दोनो ही राज्यो से सम्वद्ध थी। इसी कारण दोनो राज्यो का जैन धर्म एव कला को योगदान तथा दोनो क्षेत्रो मे होने वाला इनका विकास लगभग समान रहा।

गुर्जर-प्रतिहार शासको का जैन धर्म को समर्थन प्राप्त था। जैन परम्परा मे सत्यपुर (संचोर) एव कोरणट (कोर्ता) के महावीर मन्दिरो के निर्माण का श्रेय नागभट प्रथम को दिया गया है।[2] ओसिया के जैन मन्दिर के ९५६ ई० के लेख मे वत्सराज (७७०–८००ई०) का उल्लेख है, जिसके शासनकाल मे यह मन्दिर विद्यमान था।[3] मिहिरभोज ने जैन आचार्यों, नन्नसूरि एव गोविन्दसूरि, के प्रभाव मे जैन धर्म को सरक्षण प्रदान किया। मण्डोर के प्रतिहार शासक कक्कुक (८६१ ई०) ने रोहिन्सकूप मे एक जिन मन्दिर का निर्माण करवाया।[4]

प्रारम्भिक चाहमान शासको का जैन धर्म मे सम्बन्ध स्पष्ट नही है, किन्तु परवर्ती चाहमान शासक निश्चित ही जैन धर्म के प्रति उदार थे। पृथ्वीराज प्रथम ने रणथम्भोर के जैन मन्दिर पर तथा अजयराज ने अजमेर के पार्श्वनाथ मन्दिर पर कलश स्थापित कराया। अजयराज धर्मघोषसूरि (श्वेताम्बर) एव गुणचन्द्र (दिगम्बर) के मध्य हुए शास्त्रार्थ मे निर्णायक भी था। अर्णोराज ने पार्श्वनाथ के एक विशाल मन्दिर के लिए भूमि दी और जिनदत्तसूरि को सम्मानित किया।[5] बिजोलिया के लेख (११६९ ई०) मे पृथ्वीराज द्वितीय एव सोमेश्वर द्वारा पार्श्वनाथ मन्दिर के लिए दो ग्रामो के दान देने का उल्लेख है।[6]

नाडोल के चाहमान शासको के समय मे नाडोल मे नेमिनाथ, शान्तिनाथ एव पद्मप्रभ मन्दिरो का निर्माण हुआ। सेवाडी (जोधपुर) के महावीर मन्दिर के लेख (१११५ ई०) मे कटुकराज के शान्तिनाथ के पूजन हेतु वार्षिक अनुदान देने का उल्लेख है।[7] कीर्तिपाल ने नड्डुलडागिका (नाड्लई) के महावीर मन्दिर को ११६० ई० मे दान दिया।[8] कीर्तिपाल के पुत्रो, लखनपाल एवं अभयपाल, ने रानी महीवलादेवी के साथ शान्तिनाथ का महोत्सव मनाने के लिए दान दिया था।[9] नाड्लाई के आदिनाथ मन्दिर के एक लेख (११३२ ई०) मे रायपाल के दो पुत्रो, रुद्रपाल और अमृतपाल के अपनी माता

---

१ मजूमदार, ए० के०, पूर्वोनि०, पृ० २६५, गोपाल, एल०, दि ईकनामिक लाईफ ऑव नार्दर्न इण्डिया, वाराणसी, १९६५, पृ० १४२, १४८, जैन, जे० सी०, पूर्वोनि०, पृ० ३३१

२ ढाकी, एम० ए०, पूर्वोनि०, पृ० २९४–९५

३ नाहर, पी० सी०, पूर्वोनि०, पृ० १९२–९४, लेख स० ७८८, भण्डारकर, डी० आर०, 'दि टेम्पल्स ऑव ओसिया', आ०स०इ०ऐ०रि०, १९०८–०९, पृ० १०८

४ शर्मा, दशरथ, राजस्थान थ्रू दि एजेज, ख० १, बीकानेर, १९६६, पृ० ४२०

५ जैन, के० सी०, जैनिजम इन राजस्थान, शोलापुर, १९६३, पृ० १९

६ एपि०इण्डि०, ख० २६, पृ० १०२, जोहरापुरकर, विद्याधर (सं०), जै०शि०स०, भाग ४, वाराणसी, महावीर निर्वाण स० २४९१, पृ० १३६

७ चौधरी, गुलाबचन्द्र, पूर्वोनि०, पृ० १५१

८ ढाकी, एम० ए०, पूर्वोनि०, पृ० २९५–९६

९ एपि०इण्डि०, ख० ९, पृ० ४९–५१

मानलदेवी के साथ मन्दिर को दान देने का उल्लेख है ।[१] केल्हण (११६१–९२ ई०) के शासनकाल के ६ जैन अभिलेखो मे भी विभिन्न जैन मन्दिरो को दिए गए दानो का उल्लेख है । केल्हण की माता ने भी महावीर मन्दिर के लिए भूमिदान किया था ।[२]

परमार शासको ने भी जैन धर्म एव कला को सरक्षण दिया । कृष्णराज के शासनकाल मे एक गोष्ठी द्वारा वर्धमान की मूर्ति स्थापित की गई ।[३] धारावर्ष की रानी शृगार देवी ने झालोडी के महावीर मन्दिर को भूमिदान दिया । कुकण (सम्भवत आबू के परमार शासक अरण्यराज का मन्त्री) ने चन्द्रावती मे किसी जिन मन्दिर का निर्माण करवाया । गुहिल शासक अल्लट के एक मन्त्री ने आघाट (अहार) मे पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण करवाया ।[४]

जैन धर्म को हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूट शासको का भी समर्थन प्राप्त था । हरिवर्मन के पुत्र विदग्धराज ने हस्तिकुण्डी मे ऋषभदेव का मन्दिर बनवाया और उसे भूमिदान किया । उसके पुत्र एव पौत्र मम्मट तथा धवल ने भी इस मन्दिर को दान दिया ।[५] बयाना के शूरसेन शासक कुमारपाल ने शान्तिनाथ मन्दिर (११५४ई०) के शिखर पर स्वर्णकलश स्थापित किया था ।[६] शूरसेन शासको ने प्रद्युम्नसूरि, धनेश्वरसूरि एव दुर्गदेव जैसे जैन आचार्यों का सम्मान भी किया था । जैसलमेर राज्य की राजधानी लोद्रवा के शासक सागर के समय मे जिनेश्वरसूरि वहा (९९४ ई०) पधारे थे और सागर के दो पुत्रो, श्रीधर एव राजधर ने वहा एक पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण भी करवाया था ।[७]

शासको के अतिरिक्त उद्योतनसूरि, बप्पभट्टिसूरि, हरिभद्रसूरि, सिद्धर्षिसूरि, जिनेश्वरसूरि, धनेश्वरसूरि, अभयदेव, आशाधर, जिनदत्तसूरि, जिनपाल और सुमतिगणि जैसे जैन आचार्यो ने भी जैन धर्म के प्रचार और प्रसार मे महत्वपूर्ण योगदान दिया था ।

राजस्थान मे व्यापार काफी समुन्नत स्थिति मे था । राजस्थान से सम्बन्धित सभी प्रमुख वणिक वंशो ने जिनका मुख्य व्यवसाय व्यापार था, जैन धर्म स्वीकार किया था । जैन धर्म स्वीकार करनेवाले वणिक वशो मे आबू के पूर्वी क्षेत्र के प्राग्वाट् (पोरवाड), उकेश (ओसिया) के उकेशवाल (ओसवाल), भिन्नमाल (श्रीमाल) के श्रीमाली, पल्लिका (पाली) के पल्लिवाल, मोरढेरक (मोढेरा) के मोढ एव गुर्जर मुख्य है ।[८]

अभिलेखिक साक्ष्यो से व्यापारियो एव उनकी गोष्ठियो के भी जैन धर्म एव कला को सरक्षण प्रदान करने की पुष्टि होती है । ओसिया के महावीर मन्दिर के लेख मे मन्दिर की गोष्ठी का उल्लेख है । लेख मे जिनदक नाम के व्यापारी द्वारा ९३६ ई० मे बलानक के पुनरुद्धार कराने की भी चर्चा है ।[९] बीजापुर लेख (१०वी शती ई०) से हस्तिकुण्डी की गोष्ठी द्वारा स्थानीय ऋषभदेव मन्दिर के पुनरुद्धार करवाने का ज्ञान होता है ।[१०] दियाणा के शान्तिनाथ मन्दिर के लेख (९६७ई०) मे एक

---

१ एपि०इण्डि०, ख० ११, पृ० ३४, जै०शि०स०, भाग ४, पृ० १५९

२ एपि०इण्डि०, ख० ९, पृ० ४६–४९

३ जयन्तविजय (स०), अर्बुद प्राचीन जैन लेख सन्दोह, भाग ५, भावनगर, वि०स०२००५, पृ०१६८, लेख स०४८६

४ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० २९८

५ नाहर, पी० सी०, पू०नि०, लेख स० ८९८

६ जैन, के० सी०, पू०नि०, पृ० २८

७ नाहर, पी० सी०, जैन इन्स्क्रिप्शन्स, भाग ३, १९२९, पृ० १६०, लेख स० २५४३

८ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० २९८

९ भण्डारकर, डी० आर०, आ०स०इ०ऐ०रि०, १९०८–०९, पृ०१०८, नाहर, पी० सी०,जैन इन्स्क्रिप्शन्स, भाग १, पृ० १९२–९४

१० एपि०इण्डि०, ख० १०, पृ० १७ और आगे, लेख स० ५, नाहर, पी० सी०, जैन इन्स्क्रिप्शन्स, भाग १, पृ० २३३, लेख स० ८९८

गोष्ठी द्वारा वर्धमान की प्रतिमा के प्रतिष्ठित किये जाने का उल्लेख है।[1] अर्थुणा के एक लेख (११०९ ई०) मे उल्लेख है कि वहा नगर महाजन भूषण ने ऋषभनाथ के मन्दिर का निर्माण करवाया। जालोर के एक लेख (११८२ ई०) मे अपने भाई एवं गोष्ठी के सदस्यो के साथ श्रीमालवश के सेठ यशोवीर द्वारा एक मण्डप के निर्माण का उल्लेख है। जालोर के एक अन्य लेख (११८५ ई०) से ज्ञात होता है कि भण्डारि यशोवीर ने कुमारपाल निर्मित पार्श्वनाथ मन्दिर का पुनर्निर्माण करवाया।[2]

राजस्थान उत्तर भारत के विभिन्न भागो से स्थल मार्ग से सम्बद्ध था, जो व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण था।[3] राजस्थान के व्यापारी देश के विभिन्न भागो के अतिरिक्त विदेशो के साथ भी व्यापार करते थे। राजस्थान के साहित्य मे दो वन्दरगाहो, शूर्पारक (आधुनिक सोपारा) और ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक) का अनेकश उल्लेख प्राप्त होता हैं, जहा से राजस्थान के व्यापारी स्वर्णद्वीप, चीन, जावा जैसे देशो मे व्यापार के लिए जाते थे।[4]

उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश मे जैन धर्म को राजकीय समर्थन के कुछ प्रमाण केवल देवगढ से ही प्राप्त होते हैं। देवगढ के मन्दिर १२ (शान्तिनाथ मन्दिर) के अर्धमण्डप के एक स्तम्भ लेख (८६२ ई०) मे प्रतिहार शासक भोजदेव के शासन काल और लुअच्छगिरि (देवगढ) के शासक महासामन्त विष्णुराम का उल्लेख है।[5] लेख मे 'गोष्ठिक-वजुआगगाक' का भी नाम है, जो मन्दिर की व्यवस्थापक समिति का सदस्य था। ९९४ ई० एव ११५३ ई० के देवगढ के दो अन्य लेखो मे क्रमश 'श्रीउजरवट-राज्ये' एव 'महासामन्त श्रीउदयपालदेव' के उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिनके विषय मे कुछ भी जानकारी नही हैं। देवगढ के विभिन्न लेखो से स्पष्ट है कि वहा के अधिकतर मन्दिर एव मूर्तिया मध्यमवर्ग के लोगो के दान एव सहयोग के प्रतिफल हैं। व्यापार की दृष्टि से भी देवगढ का महत्व स्पष्ट नही है। किन्तु ४०० वर्षों तक लगातार प्रभूत सख्या मे निर्मित होने वाली जैन मूर्तिया क्षेत्र की अच्छी आर्थिक स्थिति और देवगढ के धार्मिक महत्व की सूचक हैं। यहा के लेखो मे दिगम्बर सम्प्रदाय के कुछ महत्वपूर्ण आचार्यो (वसन्तकीर्ति, विशालकीर्ति, शुभकीर्ति) तथा कुछ ऐसे आचार्यों के नाम जो जैन परम्परा मे अज्ञात हैं, प्राप्त होते हैं।[6]

कुछ प्रमुख जैन स्थलो की व्यापारिक पृष्ठभूमि का ज्ञान भी अपेक्षित है। प्रमुख नगर होने के अतिरिक्त कौशाम्वी, श्रावस्ती, मथुरा एव वाराणसी की स्थिति व्यापारिक मार्ग पर थी। भडौच से आनेवाले मार्ग के कारण कौशाम्वी का विशेप व्यापारिक महत्व था।[7] कौशाम्बी से कोशल और मगध तथा माहिष्मती के माध्यम से दक्षिणापथ एव विदिशा को मार्ग जाते थे। जैन परम्परा के अनुसार पार्श्वनाथ, महावीर, आर्य सुहस्ति तथा महागिरि ने कौशाम्वी (वत्स) की यात्रा की थी।[8] श्रावस्ती भी व्यापारिक महत्व की नगरी थी।[9]

मध्य प्रदेश

मध्य प्रदेश मे व्यापारिक समृद्धि के अनुकूल वातावरण के साथ ही विभिन्न राजवशो के धर्म सहिष्णु शासको द्वारा दिया गया समर्थन भी जैन धर्म को प्राप्त था। प्रतिहार शासको के काल मे ही दसवी शती ई० के प्रारम्भ मे ग्यारसपुर मे मालादेवी जैन मन्दिर निर्मित हुआ। परमार शासको के जैन धर्म के प्रश्रयदाता होने की पुष्टि धनपाल, धनेश्वर सूरि, अमितगति, प्रभाचन्द्र, शान्तिषेण, राजवल्लभ, शुभशील, महेन्द्रसूरि जैसे जैन आचार्यों के उनके दरवार मे होने से होती हैं।

---

१ जयन्तविजय (स०), अर्बुद प्राचीन जैन लेख सन्दोह, भाग ५, पृ० १६८, लेख स० ४८६

२ एपि०इण्डि०, ख० ११ पृ० ५२–५४

३ मोती चन्द्र, पू०नि०, पृ० २३

४ शर्मा, दशरथ, पू०नि०, पृ० ४९२, गोपाल, एल०, पू०नि०, पृ० ९१, शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, पू०नि०, पृ० १४९

५ एपि०इण्डि०, ख० ४, पृ० ३०९–१०

६ जि०इ०दे०, पृ० ६१

७ मोतीचन्द्र, पू०नि०, पृ० १५–१७, २४

८ जैन, जे० सी०, पू०नि०, पृ० २५४

९ मोतीचन्द्र, पू०नि०, पृ० १७–१८

शैव धर्मावलम्वी होने के वाद भी भोज (१०१०–१०६२ ई०) ने जैन धर्म एव साहित्य को संरक्षण दिया था। भोज ने जैन आचार्य प्रभाचन्द्र के चरणो की वन्दना की थी।[१] खजुराहो के जैन मन्दिरो (पार्श्वनाथ, घण्टई, आदिनाथ) के अतिरिक्त चन्देल राज्य मे सर्वत्र प्राप्त होने वाली जैन मूर्तिया एव मन्दिर भी उनके जैन धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं। धग के महाराजगुरु वासवचन्द्र जैन थे।[२]

जैन धर्म को ग्वालियर एव दुवकुण्ड के कच्छपघाट शासको का भी समर्थन प्राप्त था। वज्रदामन ने ९७७ ई० मे ग्वालियर मे एक जैन मूर्ति प्रतिष्ठित कराई। दुवकुण्ड के एक जैन लेख (१०८८ ई०) मे विक्रमसिंह द्वारा वहा के एक जैन मन्दिर को दिए गए दान का उल्लेख है।[३] कल्चुरी शासको के जैन धर्म के समर्थन से सम्वन्धित केवल एक लेख वहुरिवन्ध से प्राप्त होता है, जिसमे गयाकर्ण के राज्य मे सर्वधर के पुत्र महाभोज (?) द्वारा शान्तिनाथ के मन्दिर के निर्माण का उल्लेख है।[४]

देश के मध्य मे इस क्षेत्र की स्थिति व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण थी। लगभग सभी क्षेत्रो के व्यापारी इस क्षेत्र से होकर दूसरे प्रदेशो को जाते थे। व्यापारियो ने जैन मूर्तियो के निर्माण मे पूरा योगदान दिया था। खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर को पाच वाटिकाओ का दान देने वाला व्यापारी पाहिल्ल श्रेष्ठी देदू का पुत्र था।[५] दुवकुण्ड जैन लेख (१०८८ ई०) मे दो जैन व्यापारियो, ऋषि एव दाहद की वशावली दी है, जिन्हे विक्रमसिंह ने श्रेष्ठी की उपाधि दी थी।[६] दाहद ने विशाल जैन मन्दिर का निर्माण भी करवाया था। खजुराहो के एक मूर्ति लेख (१०७५ ई०) मे श्रेष्ठी बीवनशाह की भार्या पद्मावती द्वारा आदिनाथ की मूर्ति स्थापित कराने का उल्लेख है।[७] खजुराहो के ११४८ ई० के एक अन्य मूर्ति लेख मे श्रेष्ठी पाणिधर के पुत्रो, त्रिविक्रम, आल्हण तथा लक्ष्मीधर के नामो का[८], तथा ११५८ ई० के एक तीसरे लेख मे पाहिल्ल के वशज एवं ग्रहपति कुल के साधु साल्हे द्वारा सम्भवनाथ की मूर्ति की स्थापना का उल्लेख है।[९] परमर्दि के शासनकाल के अहाड लेख (११८० ई०) मे ग्रहपति वश के जैन व्यापारी जाहद की वशावली दी है। जाहद ने मदनेशसागरपुर के मन्दिर मे विशाल शातिनाथ प्रतिमा प्रतिष्ठित करायी थी।[१०] धुवेला सग्रहालय की एक नेमिनाथ मूर्ति (क्रमाक ७) के लेख (११४२ ई०) से ज्ञात होता है कि मूर्ति की स्थापना श्रेष्ठी कुल के मल्हण द्वारा हुई थी।

बिहार-उड़ीसा-बगाल

मध्ययुग मे जैनधर्म को बिहार मे किसी भी प्रकार का शासकीय समर्थन नही मिला, जिसका प्रमुख कारण पालो का प्रवल बौद्ध धर्मावलम्वी होना था। इसी कारण इस क्षेत्र मे राजगिर के अतिरिक्त कोई दूसरा विशिष्ट एव लम्बे इतिहास वाला कला केन्द्र स्थापित नही हुआ। जिनो की जन्मस्थली और भ्रमणस्थली होने के कारण राजगिर पवित्र माना गया।[११] पाटलिपुत्र (पटना) के समीप राजगिर की स्थिति भी व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण थी।[१२] राजगिर व्यापारिक मार्गों से वाराणसी, मथुरा, उज्जैन, चेदि, श्रावस्ती और गुजरात से सम्बद्ध था।

---

१ भाटिया, प्रतिपाल, दि परमारज, दिल्ली, १९७०, पृ० २६७–७२, चौधरी, गुलावचन्द्र, पू०नि०, पृ० ९४, ९७, १०७

२ जेनास, ई० तथा आवोयर, जे०, खजुराहो, हेग, १९६०, पृ० ६१

३ एपि०इण्डि०, ख० २, पृ० २३२–४०

४ मिराशी, वी०वी०, का०इ०इ०, ख० ४, भाग १, पृ० १६१

५ विजयमूर्ति (स०), जै०शि०स०, भाग ३, ववई, १९५७, पृ० १०८

६ एपि०इण्डि०, ख० २, पृ० २३७–४०

७ शास्त्री, परमानन्द जैन, 'मध्य भारत का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १९, अ० १–२, पृ० ५७

८ विजयमूर्ति (स०), जै०शि०सं०, भाग ३, पृ० ७९

९ वही, पृ० १०८

१० चौधरी, गुलावचन्द्र, पू०नि०, पृ० ७०

११ जैन, जे०सी०, पू०नि०, पृ० ३२६-२७

१२ गोपाल, एल०, पू०नि०, पृ० ९१

ह्वेनसाग ने कलिंग मे जैन धर्म की विद्यमानता का उल्लेख किया है, किन्तु खारवेल के पश्चात् केशरी वश के उद्योतकेशरी (१०वी–११वी शती ई०) के अतिरिक्त किसी अन्य शासक ने जैन धर्म को स्पष्ट सरक्षण या समर्थन नहीं दिया। पर प्राचीन परम्परा एव व्यापारिक पृष्ठभूमि के कारण ल० आठवी–नवी शती ई० मे बारहवी शती ई० तक जैन धर्म उडीसा मे (विशेषकर उदयगिरि-खण्डगिरि गुफाओ मे) जीवित रहा जिसकी साक्षी विभिन्न क्षेत्रो से प्राप्त होनेवाली जैन मूर्तिया हैं। उद्योत केशरी के ललितेन्दु केशरी गुफा (या सिन्धराजा गुफा) लेख से ज्ञात होता है कि उसने कुमार पर्वत (खण्डगिरि का पुराना नाम) पर खण्डित तालाबो एव मन्दिरो का पुनर्निर्माण करवा कर २४ जिनो की मूर्तिया स्थापित करवाई।[1] लेख मे यह भी ज्ञात होता है कि उस क्षेत्र मे धार्मिक नियमो का कठोरता से पालन करने वाले अनेक जैन साधु रहते थे। कटक जिले मे जाजपुर स्थित अखडलेश्वर मन्दिर एव मैत्रक मन्दिर समूह मे सुरक्षित जैन मूर्तिया प्रमाणित करती हैं कि इस शाक्त क्षेत्र मे भी जैन धर्म लोकप्रिय था। पुरी जिले मे स्थित उदयगिरि-खण्डगिरि की जैन गुफाओ के निर्माण की व्यापारिक पृष्ठभूमि भी थी। जैन ग्रथो मे पुरिमा या पुरिया (पुरी) का व्यापार के केन्द्र के रूप मे उल्लेख है।[2]

प्रस्तुत अध्ययन मे बगाल, विभाजन के पूर्व के बगाल का सूचक है। सातवी शती ई० के बाद बगाल मे जैन धर्म की स्थिति को सूचना देने वाले साहित्यिक एव अभिलेखिक साक्ष्य नही प्राप्त होते। फिर भी विभिन्न क्षेत्रो से प्राप्त होने वाली मूर्तिया जैन धर्म की विद्यमानता प्रमाणित करती हैं। बौद्ध धर्मावलबी पाल शासको के कारण बगाल मे जैन धर्म का पराभव हुआ। पर जैन ग्रथ **बप्पभट्टिचरित** मे एक स्थल पर उल्लेख है कि विद्या के महान प्रेमी धर्मपाल ने बौद्ध विद्वानो एव आचार्यो के अतिरिक्त हिन्दू एव जैन विद्वानो का भी सम्मान किया था। जैन आचार्य बप्पभट्टि का उसके दरबार मे सम्मान था।[3] बगाल का पर्याप्त व्यापारिक महत्व भी था। व्यापार के अनुकूल वातावरण के कारण ही राजकीय सरक्षण के अभाव मे भी जैन धर्म बगाल मे किसी न किसी रूप मे बारहवी शती ई० तक विद्यमान रहा। ताम्रलिप्ति प्रमुख सामुद्रिक बन्दरगाहो मे से था।[4]

• • •

१ एपि०इण्डि०, ख० १३, पृ० १६५–६६, लेख स० १६, जै०शि०स०, भाग ४, पृ० ९३
२ जैन, जे०सी०, पू०नि०, पृ० ३२५
३ प्रभावक चरित, पृ० ९४-९७, चौधरी, गुलाबचन्द्र, पू०नि०, पृ० ५६
४ जैन, जे०सी०, पू०नि०, पृ० ३४२, गोपाल, एल०, पू०नि०, पृ० १२६

तृतीय अध्याय

जैन देवकुल का विकास

भारतीय कला तत्वत धार्मिक है। अत सम्बन्धित धर्म या सम्प्रदाय मे होने वाले परिवर्तनो अथवा विकास से शिल्प की विषयवस्तु मे भी परिवर्तन हुए हैं। प्रतिमाविज्ञान धर्म से सम्बद्ध मानवेतर विशिष्ट व्यक्तियो—देवी-देवताओ, शलाका-पुरुषो (मिथको मे वर्णित जनो)—के स्वरूप एव स्वरूपगत विकास का ऐतिहासिक अध्ययन है। इस अध्ययन के दो पक्ष हैं—शास्त्र-पक्ष एव कला-पक्ष। शास्त्र-पक्ष धार्मिक एव अन्य साहित्य मे वर्णित स्वरूपो की विवेचना से, तथा कला-पक्ष कलावशेषों मे प्राप्त मूर्त्त स्वरूपो के अध्ययन से सम्बद्ध है। इसी दृष्टि से प्रतिमाविज्ञान 'धार्मिक कला के व्याख्या पक्ष' से सम्बन्धित है।[1]

जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से जैन साहित्य मे प्राप्त जैन देवकुल के क्रमिक विकास का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन मे जैन साहित्य का अवगाहन कर जैन देवकुल के क्रमिक विकास का निरूपण एव जैन देवकुल मे समय-समय पर हुए परिवर्तनो और नवीन देवो के आगमन के कारणो के उद्घाटन का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त साहित्य मे प्राप्त जैन देवकुल का विकास कला मे किस प्रकार और कहा तक समाहित किया गया, इस पर भी सक्षेप मे दृष्टिपात किया गया है। कालकम की दृष्टि से यह अध्ययन दो भागो मे विभक्त है। प्रथम भाग की स्रोतसामग्री पाचवी शती ई० तक का प्रारम्भिक जैन साहित्य है और दूसरे भाग का आधार १२ वी शती ई० तक का परवर्ती जैन साहित्य है।

(क) प्रारम्भिक काल (प्रारम्भ से पाचवी शती ई० तक)

प्रारम्भिक जैन साहित्य मे महावीर के समय (ल० छठी शती ई०पू०) से पाचवी शती ई० के अन्त तक के ग्रथ सम्मिलित हैं। प्रारम्भिक जैन ग्रथो की सीमा पाचवी शती ई० तक दो दृष्टियो से रखी गयी है। प्रथमत., जैन धर्म के सभी ग्रन्थ ल० पाचवी शती ई० के मध्य या छठी शती ई० के प्रारम्भ मे[2] देवर्द्धिगणि-क्षमाश्रमण के नेतृत्व में वलभी (गुजरात) वाचन मे लिपिवद्ध किये गये। दूसरे, इन ग्रन्थो मे जैन देवकुल की केवल सामान्य धारणा ही प्रतिपादित है।

आगम ग्रन्थ[3] जैनो के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। उपलब्ध आगम ग्रन्थो के प्राचीनतम अश ल० चौथी शती ई० पू० के अन्त और तीसरी शती ई० पू० के प्रारम्भ के हैं।[4] काफी समय तक श्रुत परम्परा मे सुरक्षित रहने के कारण कालक्रम के साथ इन प्रारम्भिक आगम ग्रन्थो मे प्रक्षेपो के रूप मे नवीन सामग्री जुडती गई। इसकी पुष्टि भगवतीसूत्र (पाचवा अग) मे पाचवी शती ई०[5], रायपसेणिय (राजप्रश्नीय-दूसरा उपाग) मे कुषाण कालीन[6] और अगविज्जा मे कुषाण-गुप्त सन्धि-

---

१ बनर्जी, जे० एन०, दि डीवेलप्मेण्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, कलकत्ता, १९५६, पृ० २

२ महावीर निर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष बाद (४५४ या ५१४ई०) : द्रष्टव्य, जैकोबी, एच०, जैन सूत्रज, भाग १, सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, ख० २२, दिल्ली, १९७३ (पु०मु०), प्रस्तावना, पृ०३७, विण्टरनित्ज, एम०, ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिट्रेचर, ख० २, कलकत्ता, १९३३, पृ० ४३२

३ इसमे द्वादश अगो के अतिरिक्त १२ उपाग, ४ छेद, ४ मूल और १ आवश्यक ग्रन्थ सम्मिलित थे। महावीर के मूल उपदेशो का संकलन द्वादश अगो मे था (समवायागसूत्र १ और १३६)।

४ जैकोबी, एच०, पू०नि०, पृ० ३७-४४, विण्टरनित्ज, एम०, पू०नि० पृ० ४३४

५ सिकदर, जे० सी०, स्टडीज इन दि भगवती सूत्र, मुजफ्फरपुर, १९६४, पृ० ३२-३८

६ शर्मा, आर० सी०, 'आर्ट डेटा इन रायपसेणिय', स०पु०प०, अ० ९, पृ० ३८

कालीन[1] सामग्रियो की प्राप्ति मे होती है। जहा श्वेताम्बरो ने आगमो को सकलित कर यथाशक्ति सुरक्षित रखने का यत्न किया वही दिगम्बर परम्परा के अनुसार महावीर निर्वाण के ६८३ वर्ष बाद (१५६ ई०) आगमो का मौलिक स्वरूप विलुप्त हो गया।[2]

आगम साहित्य के अतिरिक्त कल्पसूत्र और पउमचरिय भी प्रारम्भिक ग्रन्थ हैं। जैन परम्परा मे कल्पसूत्र के कर्ता भद्रबाहु की मृत्यु का समय महावीर निर्वाण के १७० वर्ष बाद (ई० पू० ३५७) है।[3] पर ग्रन्थ की सामग्री के आधार पर यू० पी० शाह इसे तीसरी शती ई० के कुछ पहले की रचना मानते है।[4] पउमचरिय के कर्ता विमलसूरि के अनुसार पउमचरिय की तिथि ४ ई० (महावीर निर्वाण के ५३० वर्ष बाद) है। ग्रन्थ की सामग्री के आधार पर जैकोबी इसे तीसरी शती ई० की रचना मानते हैं।[5]

चौबीस जिनो की धारणा

चौबीस जिनो की धारणा जैन धर्म की धुरी है। जैन देवकुल के अन्य देवो की कल्पना सामान्यत उन्ही जिनो से सम्बद्ध एव उनके सहायक रूप मे हुई है। जिनो को देवाधिदेव[6] और इन्द्र आदि देवो के मध्य वन्दनीय होने के कारण श्रेष्ठ कहा गया है। जिनो को ईश्वर का अवतार या अश नही माना गया है। इनका जीव भी अतीत मे सामान्य व्यक्ति की तरह ही वासना और कर्म बन्धन मे लिप्त था, पर आत्म मनन, साधना एव तपश्चर्या के परिणामस्वरूप इनने कर्मबन्धन से मुक्त होकर केवल-ज्ञान की प्राप्ति की।[7] कर्म एव वासना पर विजय प्राप्ति के कारण इन्हे 'जिन' कहा गया, जिसका शाब्दिक अर्थ विजेता है। कैवल्य प्राप्ति के पश्चात साधु-साध्वियो एव श्रावक-श्राविकाओ के सम्मिलित तीर्थ की स्थापना करने के कारण इन्हे 'तीर्थंकर' भी कहा गया। जिनो एव अन्य मुक्त आत्माओ मे आन्तरिक दृष्टि से कोई भेद नही है। सामान्य मुक्त आत्माए केवल स्वय को ही मुक्त करती हैं, वे जिनो के समान धर्म प्रचारक नही होती।

विद्वान् २४ जिनो मे केवल अन्तिम दो जिनो, पार्श्वनाथ एव महावीर (या वर्धमान) को ही ऐतिहासिक मानते है। उत्तराध्ययनसूत्र (अध्याय २३) मे पार्श्वनाथ और महावीर के दो शिष्यो, केशी और गौतम, के मध्य जैन सघ के सम्बन्ध मे हुए वार्तालाप का उल्लेख[8] तथा महावीर की यह उक्ति कि 'जो कुछ पूर्व तीर्थंकर पार्श्व ने कहा है मै वही कह रहा हू[9]', पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता सिद्ध करते हैं।

२४ जिनो की प्राचीनतम सूची सम्प्रति समवायागसूत्र (चौथा अग) मे प्राप्त होती है। इस सूची मे ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनदन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि (पुष्पदन्त), शीतल, श्रेयाश, वासुपूज्य, विमल, अनत, धर्म, शान्ति, कुथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व एव वर्धमान के नाम हैं।[10] इस सूची को ही कालान्तर मे

---

१ अगविज्जा, स० मुनिपुण्यविजय, बनारस, १९५७, पृ०५७

२ विण्टरनित्ज, एम०, पू०नि०, पृ० ४३३

३ वर्तमान कल्पसूत्र मे तीन अलग-अलग ग्रन्थो को एक साथ सकलित किया गया है, जिन सबका कर्ता भद्रबाहु को नही स्वीकार किया जा सकता—विण्टरनित्ज, एम०, पू०नि०, पृ० ४६२

४ शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', स०पु०प०, अ० ९, पृ० ३

५ पउमचरिय, भाग १, स० एच० जैकोबी, वाराणसी, १९६२, पृ० ८

६ समवायांग सूत्र १८, पउमचरिय १ १–२, ३८–४२

७ हस्तीमल, जैन धर्म का मौलिक इतिहास, ख० १, जयपुर, १९७१, पृ० ४६–४७

८ जैकोबी, एच०, जैन सूत्रज, भाग २, सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, ख० ४५, दिल्ली, १९७३ (पु०मु०), पृ०११९–२९

९ व्याख्या प्रज्ञप्ति ५ ९ २२७

१० जम्बुद्दीवे ण दीवे भारहे वासे इमीसे ण ओसप्पिणीए चउवीस तित्थगरा होत्था, तं जहा–उसम, अजिय, सम्भव, अभिनन्दण, सुमइ, पउमप्पह, सुपास, चन्दप्पह, सुविहिपुप्फदत, सीयल, सिज्जस, वासुपुज्ज, विमल, अनन्त, धम्म, सन्ति, कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्वय, णमि, णेमि, पास, वद्धमाणोय। समवायांगसूत्र १५७

इसी रूप मे स्वीकार कर लिया गया। **भगवतीसूत्र** (५वा अग),[1] **कल्पसूत्र**,[2] **चतुर्विंशतिस्तव** (या **लोगस्ससुत्त-भद्रबाहुकृत**)[3] एव **पउमचरिय** मे[4] भी २४ जिनो की सूची प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त **भगवतीसूत्र** मे मुनिसुव्रत, **नायाधम्मकहाओ** मे नारी तीर्थंकर मल्लिनाथ[5] एवं **कल्पसूत्र** मे ऋषभ, नेमि (अरिष्टनेमि), पार्श्व एव महावीर[6] के जीवन से सम्बन्धित घटनाओ के विस्तृत उल्लेख है। **स्थानांगसूत्र** (तीसरा अग) मे जिनो के वर्णों के सन्दर्भ मे पद्मप्रभ, वासुपूज्य, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, अरिष्टनेमि एव पार्श्व के उल्लेख है।[7] **समवायांग**, **भगवती** एव **कल्प सूत्रो** और **चतुर्विंशतिस्तव** जैसे प्रारम्भिक ग्रन्थो मे प्राप्त २४ जिनो की सूची के आधार पर यह कहा जा सकता है कि २४ जिनो की सूची ईसवी सन् के प्रारम्भ के पूर्व ही निर्धारित हो चुकी थी।

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो मे जहा २४ जिनो की सूची एव उनसे सम्बन्धित कुछ अन्य उल्लेख अनेकश प्राप्त होते है, वही जिन मूर्तियो से सम्बन्धित उल्लेख केवल **राजप्रश्नीय**[8] एव **पउमचरिय**[9] मे हैं। मथुरा मे कुषाण काल मे जिन मूर्तियो का निर्माण हुआ। यहा से ऋषभ,[10] सम्भव,[11] मुनिसुव्रत,[12] नेमि[13], पार्श्व[14] एव महावीर[15] जिनो की कुषाण-कालीन मूर्तिया प्राप्त होती हैं (चित्र १६, ३०, ३४)।[16]

शलाका-पुरुष

प्रारम्भिक ग्रथो मे २४ जिनो के अतिरिक्त अन्य शलाका[17] (या उत्तम) पुरुषो का भी उल्लेख है। जिनो सहित इनकी कुल सख्या तिरसठ है। **स्थानांगसूत्र** मे उल्लेख है कि जम्बूद्वीप मे प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी युग मे अर्हन्त

---

१ **भगवतीसूत्र** २० ८ ५८–५९, १६, ५

२ **कल्पसूत्र** २, १८४–२०३

३ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ३

४ **पउमचरिय** १ १-७, ५ १४५-४८ चद्रप्रभ एव सुविधिनाथ की वदना क्रमश: शशिप्रभ एव कुसुमदत नामो से है।

५ ग्रन्थ मे १९वें जिन मल्लिनाथ को नारी रूप मे निरूपित किया गया है। यह परम्परा केवल श्वेताम्बरो मे ही मान्य है, क्योंकि दिगम्बर परम्परा मे नारी को कैवल्य प्राप्ति की अधिकारिणी नही माना गया है—विण्टरनित्ज, एम०, पू०नि०, पृ० ४४७–४८

६ **कल्पसूत्र** १–१८३, २०४–२७ ज्ञातव्य है कि मथुरा के कुषाण शिल्प मे कल्पसूत्र मे विस्तार से वर्णित ऋषभ, नेमि, पार्श्व एव महावीर जिनो की ही सर्वाधिक मूर्तिया निर्मित हुईं।

७ **स्थानांगसूत्र** ५१

८ शर्मा, आर० सी०, पू०नि०, पृ० ४१

९ **पउमचरिय** ११ २–३, २८ ३८–३९, ३३ ८९

१० ऋषभ सदैव लटकती केशावलि से शोभित हैं (कल्पसूत्र १९५)। तीन उदाहरणो मे मूर्ति लेखो मे 'ऋषभ' नाम भी उत्कीर्ण है।

११ राज्य सग्रहालय, लखनऊ—जे १९, एक मूर्ति का उल्लेख यू० पी० शाह ने भी किया है, स०पु०प०, अ०९, पृ०६

१२ राज्य सग्रहालय, लखनऊ—जे २०

१३ चार उदाहरणो मे नेमि के साथ बलराम एव कृष्ण आमूर्तित हैं और एक मे (राज्य सग्रहालय, लखनऊ-जे ८) 'अरिष्टनेमि' उत्कीर्ण है।

१४ पार्श्व सप्त सर्पफणो के छत्र से युक्त हैं (**पउमचरिय** १ ६)।

१५ पीठिका लेखो मे 'वर्धमान' नाम से युक्त ६ महावीर मूर्तिया राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे सकलित है।

१६ ज्योतिप्रसाद जैन ने मथुरा से प्राप्त एव कुषाण सवत् के छठें वर्ष (=८४ ई०) मे तिथ्यकित एक सुमतिनाथ (५वें जिन) मूर्ति का भी उल्लेख किया है—जैन, ज्योतिप्रसाद, **दि जैन सोर्सेज ऑव दी हिस्ट्री ऑव ऐन्शण्ट इण्डिया**, दिल्ली, १९६४, पृ० २६८

१७ वे महान् आत्माए जिनका मोक्ष प्राप्त करना निश्चित है।

(जिन), चक्रवर्ती, वलदेव और वासुदेव उत्तम पुरुप उत्पन्न हुए ।[1] समवायागसूत्र मे २४ जिनो के साथ १२ चक्रवर्ती, ९ वलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव के उल्लेख है, पर उत्तम पुरुपो की सख्या ६३ के स्थान पर ५४ ही कही गई। ९ प्रतिवासुदेवो को उत्तम पुरुपो मे नही सम्मिलित किया गया है ।[2] कल्पसूत्र मे भी तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वलदेव एवं वासुदेव का उल्लेख है,[3] किन्तु यहा इनकी सख्या नही दी गई है ।

६३–शलाका-पुरुपो की पूरी सूची सर्वप्रथम **पउमचरिय** मे प्राप्त होती है ।[4] उसमे २४ जिनो के अतिरिक्त १२ चक्रवर्ती[5] (भरत, सागर, मघवा, सनत्कुमार, शान्ति, कुथु, अर, सुभूम, पद्म, हरिषेण, जयसेन, ब्रह्मदत्त), ९ वलदेव (अचल, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, नन्दन, पद्म या राम, वलराम), ९ वासुदेव (त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयभू, पुरुपोत्तम, पुरुपसिंह, पुरुप पुण्डरीक, दत्त, नारायण या लक्ष्मण, कृष्ण), और ९ प्रतिवासुदेव (अश्वग्रीव, तारक, मेरक, निशुम्भ, मधुकैटभ, वलि, प्रहलाद, रावण, जरासन्ध) सम्मिलित हैं । इस सूची को ही कालान्तर मे विना किसी परिवर्तन के स्वीकार किया गया । जैन शिल्प मे सभी ६३–शलाका-पुरुपो का निरूपण कभी भी लोकप्रिय नही रहा । कुषाणकालीन जैन शिल्प मे केवल कृष्ण और वलराम निरूपित हुए । इन्हे नेमिनाथ के पार्श्वों मे आमूर्तित किया गया । मध्ययुग मे कृष्ण एव वलराम के अतिरिक्त राम और भरत चक्रवर्ती (चित्र ७०) के भी मूर्त्त चित्रणो के कुछ उदाहरण प्राप्त होते हैं । **पउमचरिय** मे राम-रावण और भरत चक्रवर्ती की कथा का विस्तृत वर्णन है ।

कृष्ण-वलराम

कृष्ण-वलराम २२ वें जिन नेमिनाथ के चचेरे भाई हैं । यहा हिन्दू धर्म मे भिन्न कृष्ण-वलराम को सर्वशक्तिमान देवता के रूप मे न मानकर वल, ज्ञान एव वुद्धि मे नेमिनाथ से हीन वताया गया है ।[6] **उत्तराध्ययनसूत्र** (ल० चौथी-तीसरी शती ई० पू०)[7] के रथनेमि शीर्षक २२ वे अध्याय मे कृष्ण से सम्वन्धित कुछ उल्लेख है ।[8] सौर्यपुर नगर मे वसुदेव और समुद्रविजय दो शक्तिशाली राजकुमार थे । वसुदेव की रोहिणी और देवकी नाम की दो पत्निया थी, जिनसे क्रमश- राम (वलराम) और केशव (कृष्ण) उत्पन्न हुए । समुद्रविजय की पत्नी शिवा से अरिष्टनेमि (नेमिनाथ या रथनेमि) उत्पन्न हुए । केशव ने एक शक्तिशाली शासक की पुत्री राजीमती के साथ अरिष्टनेमि का विवाह निश्चित किया । पर विवाह के पूर्व ही रथनेमि ने रैवतक (गिरनार) पर्वत पर दीक्षा ग्रहण की, जहा राम और केशव ने अरिष्टनेमि के प्रति श्रद्धा व्यक्त की । **उत्तराध्ययनसूत्र** के विवरण को ही कालान्तर मे सातवी शती ई० के वाद के जैन ग्रन्थो (**हरिवशपुराण, महापुराण**—पुष्पदतकृत, **त्रिपष्टिशलाकापुरुषचरित्र**) मे विस्तार से प्रस्तुत किया गया । **नायाधम्मकहाओ** मे भी कृष्ण से सम्वन्धित उल्लेख हैं, जो मुख्यत पाण्डवो की कथा से सम्वन्धित हैं ।[9] **अन्तगड्दसाओ** (८वा अग) मे कृष्ण से सम्वन्धित उल्लेख द्वारवती

---

१ **स्थानागसूत्र** २२

२ ग्रन्थ मे केवल २४ जिनो एव १२ चक्रवर्तियो की ही सूची है । अन्य के लिए मात्र इतना उल्लेख है कि त्रिपृष्ठ से कृष्ण तक ९ वासुदेव और अचल से राम तक नौ वलदेव होंगे । **समवायागसूत्र** १३२, १५८, २०७

३ **कल्पसूत्र** १७ अरहन्ता वा चक्कवट्टी वा वलदेवा वा वासुदेवा'

४ **पउमचरिय** ५ १४५–५७

५ १२ चक्रवर्तियो की सूची मे तीन (शान्ति, कुथु, अर) जिन भी सम्मिलित हैं । ये जिन एक ही भव मे जिन और चक्रवर्ती दोनो हुए ।

६ वैशालीय, महेन्द्रकुमार, 'कृष्ण इन दि जैन केनन,' **भारतीय विद्या**, ख० ८, अ० ९–१०, पृ० १२३

७ दोशी, वेचरदास, **जैन साहित्य का वृहद् इतिहास**, भाग १, वाराणसी, १९६६, पृ० ५५

८ जैकोवी, एच०, **जैन सूत्रज**, भा० २, पृ० ११२–१९, विण्टरनिट्ज, एम०, पू०नि०, पृ० ४६९

९ **नायाधम्मकहाओ** ६८

(द्वारका) नगर के विवरण के सन्दर्भ मे प्राप्त होता है, जहा के शासक कृष्ण-वासुदेव थे ।[1] ग्रन्थ मे कृष्ण द्वारा अरिष्टनेमि के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने और अरिष्टनेमि की उपस्थिति मे ही दीक्षा लेने के उल्लेख है ।

इन प्रारम्भिक उल्लेखो से स्पष्ट है कि ईसवी सन् के पूर्व ही कृष्ण-वलराम को जैन धर्म मे सम्मिलित कर लिया गया था ।[2] जैसा पूर्व मे उल्लेख है मथुरा की कुछ कुषाणकालीन नेमिनाथ मूर्तियो मे भी कृष्ण-वलराम आमूर्तित है ।[3]

लक्ष्मी

जिनो की माताओ द्वारा देखे शुभ स्वप्नो के उल्लेख के सन्दर्भ मे **कल्पसूत्र** में श्री लक्ष्मी का उल्लेख है । शीर्ष भाग मे दो गजो से अभिषिक्त श्री लक्ष्मी को पद्मासीन और दोनो करो मे पद्म धारण किये निरूपित किया गया है ।[4] **भगवतीसूत्र** मे एक स्थल पर लक्ष्मी की मूर्ति का उल्लेख है ।[5] जैन शिल्प मे लक्ष्मी का मूर्त चित्रण ल० नवी शती ई० के बाद ही लोकप्रिय हुआ जिसके उदाहरण खजुराहो, देवगढ, ओसिया, कुमारिया, दिलवाड़ा आदि स्थलो मे प्राप्त होते है ।

सरस्वती

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो मे सरस्वती का उल्लेख मेधा एव बुद्धि के देवता या श्रुत देवता के रूप मे प्राप्त होता है । **भगवतीसूत्र**[6] एव **पउमचरिय**[7] मे बुद्धि देवी का उल्लेख श्री, ह्री, धृति, कीर्ति और लक्ष्मी के साथ किया गया है । **अंगविज्जा** मे मेधा एव बुद्धि के देवता के रूप मे सरस्वती का उल्लेख है ।[8] जिनो की शिक्षाए जिनवाणी आगम या श्रुत के रूप मे जानी जाती थी, और सम्भवत इसी कारण जैन आगमिक ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की भुजा मे पुस्तक के प्रदर्शन की परम्परा प्रारम्भ हुई ।[9] जैन शिल्प मे सरस्वती की प्राचीनतम ज्ञात मूर्ति कुषाण काल (१३२ ई०) की है,[10] जिसमे देवी की एक भुजा मे पुस्तक प्रदर्शित है । सरस्वती का लाक्षणिक स्वरूप आठवी शती ई० के बाद के जैन ग्रन्थो मे विवेचित है । जैन शिल्प मे यक्षी अम्बिका एव चक्रेश्वरी के बाद सरस्वती ही सर्वाधिक लोकप्रिय रही ।

इन्द्र

जैन परम्परा मे इन्द्र[11] को जिनो का प्रधान सेवक स्वीकार किया गया है । **स्थानांगसूत्र** मे नामेन्द्र, स्थापनेन्द्र, द्रव्येन्द्र, ज्ञानेन्द्र, दर्शनेन्द्र, चारित्रेन्द्र, देवेन्द्र, असुरेन्द्र और मनुष्येन्द्र आदि कई इन्द्रो के उल्लेख हैं ।[12] ग्रन्थ मे यह भी उल्लेख है कि जिनो के जन्म, दीक्षा और कैवल्य प्राप्ति के अवसरो पर देवेन्द्र का शीघ्रता से पृथ्वी पर आगमन होता है ।[13] **कल्पसूत्र** मे वज्र धारण करनेवाले और ऐरावत गज पर आरूढ शक्र का देवताओ के राजा के रूप मे उल्लेख है ।[14] **पउमचरिय** मे

---

१ विण्टरनित्ज, एम०, **पू०नि०**, पृ० ४५०–५१, **अन्तगडदसाओ**, स० एल० डी० वर्नेट, वाराणसी, १९७३ (पु० मु०), पृ० १२ और आगे

२ जैकोबी, एच, **जैन सूत्रज**, भाग १, प्रस्तावना, पृ० ३१, पा० टि० २

३ श्रीवास्तव, वी० एन०, 'सम इन्टरेस्टिंग जैन स्कल्पचर्स इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ,' स०पु०प०, अ० ९, पृ० ४५–५२

४ **कल्पसूत्र** ३७

५ **भगवतीसूत्र** ११ ११ ४३०

६ वही, ११ ११ ४३०

७ **पउमचरिय** ३ ५९

८ अगविज्जा—एकाणसा सिरी बुद्धी मेधा कित्ती सरस्मती एवमादीयाओ उवलद्धव्वाओ भवन्ति - अध्याय ५८, पृ० २२३ और ८२

९ जैन, ज्योतिप्रसाद, 'जेनिसिस ऑव जैन लिट्रेचर ऐण्ड दि सरस्वती मूवमेण्ट', सं०पु०प०, अ० ९, पृ० ३०–३३

१० राज्य संग्रहालय, लखनऊ—जे२४

११ जैन ग्रन्थो मे इन्द्र का देवेन्द्र और शक्र नामो से भी उल्लेख है ।

१२ **स्थानांगसूत्र** ११ ५

१३ वही, सू० १३

१४ कल्पसूत्र १८

इन्द्र द्वारा जिनो के जन्म अभिषेक और समवसरण के निर्माण के उल्लेख हैं।[1] जिनो के जीवनवृत्तो[2] के अकन मे ग्यारहवीं-बारहवी शती ई० मे इन्द्र को आमूर्तित किया गया। इसके उदाहरण ओसिया, कुंभारिया और दिलवाडा के जैन मन्दिरों मे प्राप्त होते हैं।

नैगमेषी

जैन देवकुल मे अजमुख नैगमेषी (या हरिनैगमेषी या हरिणैगमेषी) इन्द्र के पदाति सेना के सेनापति हैं।[3] अन्तगड्दसाओ एव कल्पसूत्र मे नैगमेषी को बालको के जन्म से भी सम्बन्धित बताया गया है। कल्पसूत्र मे उल्लेख है कि शक्रेन्द्र ने महावीर के भ्रूण को ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ से क्षत्रियाणी त्रिशला के गर्भ मे स्थापित करने का कार्य अपनी पदाति सेना के अधिपति हरिणैगमेषी देव को दिया।[4] अन्तगड्दसाओ मे पुत्र प्राप्ति के लिए हरिणैगमेषी के पूजन और प्रसन्न होकर देवता द्वारा गले का हार देने के उल्लेख है।[5] उपर्युक्त परम्परा के कारण ही जैन शिल्प मे नैगमेषी के साथ लम्बा हार एव बालक प्रदर्शित हुए। मथुरा से नैगमेषी की कई कुषाण कालीन स्वतन्त्र मूर्तिया मिली हैं। मथुरा से प्राप्त महावीर के गर्भापहरण के दृश्य का चित्रण करने वाले एक कुषाण कालीन फलक[6] पर भी अजमुख नैगमेषी निरूपित है (चित्र ३९)। लेख मे 'भगवा नेमेसो' उत्कीर्ण हैं। कुषाण युग के बाद नैगमेषी की स्वतन्त्र मूर्तिया नही प्राप्त होती। पर जिनो के जन्म से सम्बन्धित दृश्यो मे नैगमेषी का अकन श्वेताम्बर स्थलो पर आगे भी लोकप्रिय रहा।

यक्ष

प्राचीन भारतीय साहित्य मे यक्षो के अनेक उल्लेख हैं। ये उपकार और अपकार के कर्ता माने गये हैं। कुमारस्वामी के अनुसार यक्षो और देवो के बीच कोई विशेष भेद नही था और यक्ष शब्द देव का समानार्थी था।[7] पवाया की माणिभद्र यक्ष मूर्ति (पहली शती ई० पू०) भगवान् के रूप मे पूजित थी। जैन ग्रन्थो मे भी यक्षो का अधिकाशत देव के रूप मे उल्लेख है।[8] उत्तराध्ययनसूत्र मे उल्लेख है कि सचित सत्कर्मो के प्रभाव को भोगने के बाद यक्ष पुन मनुष्य रूप मे जन्म लेते है।[9]

जैन साहित्य मे भी यक्षो के प्रचुर उल्लेख है।[10] भगवतीसूत्र मे वैश्रमण के प्रति पुत्र के समान आज्ञाकारी १३ यक्षो की सूची दी है।[11] ये पुन्नभद्द, माणिभद्द, शालिभद्द, सुमणभद्द, चक्क, रक्ख, पुण्णरक्ख, सव्वन (सर्वण्ह ?), सव्वजस, समिद्ध, अमोह, असग और सव्वकाम हैं। तत्त्वार्थसूत्र[12] (उमास्वातिकृत) मे भी एक स्थल पर १३ यक्षो की सूची है।[13] इसमे पूर्णभद्र, माणिभद्र, सुमनोभद्र, श्वेतभद्र, हरिभद्र, व्यतिपातिकभद्र, सुभद्र, सर्वतोभद्र, मनुष्ययक्ष, वनाधिपति, वनाहार, रूपयक्ष और यक्षोत्तम के नाम हैं।[14]

---

१ पउमचरिय ३ ७६–८८ २ जन्म, दीक्षा एव कैवल्य प्राप्ति से सम्बन्धित दृश्याकन।

३ हिन्दू देवकुल मे स्कन्द देवताओ के सेनापति हैं—विस्तार के लिए द्रष्टव्य, अग्रवाल, वी० एस०, 'ए नोट आन दि गाड नैगमेष', ज०यू०पी०हि०सो०, ख० २०, भाग १–२, पृ० ६८–७३, शाह, यू० पी०, 'हरिनैगमेषिन्', ज०इ०सो०ओ०आ०, ख० १९, पृ० १९–४१

४ कल्पसूत्र २०–२८ ५ अन्तगड्दसाओ, पृ०६६–६७

६ राज्य सग्रहालय, लखनऊ–जे ६२६ ७ कुमारस्वामी, यक्षज, भाग १, दिल्ली, १९७१ (पु० मु०), पृ०३६-३७

८ वही, पृ० ११, २८ ९ उत्तराध्ययनसूत्र ३ १४–१८

१० शाह, यू० पी०, 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इ०, ख० ३, अ० १, पृ० ५४-७१

११ भगवतीसूत्र ३ ७ १६८, कुमारस्वामी, पू०नि०, पृ० १०-११

१२ तत्त्वार्थसूत्र, सं० सुखलाल सघवी, बनारस, १९५२, पृ० ११९ १३ वही, पृ० १४६

१४ तत्त्वार्थसूत्र की सूची के प्रथम तीन यक्षो के नाम भगवतीसूत्र मे भी हैं।

जैन आगमो मे विभिन्न स्थलो के चैत्यो के उल्लेख हैं जहाँ अपने भ्रमण के दौरान महावीर विश्राम करते थे।[1] इनमे द्रुतिपलाश, कोष्ठक, चन्द्रावतरन, पूर्णभद्र, जम्बूक, बहुपुत्रिका, गुणशिल, बहुशालक, कुण्डियायन, नन्दन, पुष्पवती, अगमन्दिर, प्राप्तकाल, शखवन, छत्रपलाश आदि प्रमुख है।[2] इस सूची मे आये पूर्णभद्र, बहुपुत्रिका एवं गुणशिल जैसे चैत्य निश्चित ही यक्ष चैत्य थे क्योकि आगम ग्रन्थो में ही अन्यत्र इनका यक्षो के रूप मे उल्लेख है। जैन ग्रन्थो मे यक्ष जिनो के चामरधर सेवको के रूप मे भी निरूपित हैं।[3]

जैन ग्रन्थो मे माणिभद्र और पूर्णभद्र यक्षो एव बहुपुत्रिका यक्षी को विशेष महत्व दिया गया। माणिभद्र और पूर्णभद्र यक्षो को व्यतर देवो के यक्ष वर्ग का इन्द्र बताया गया है। इन यक्षो ने चम्पा मे महावीर के प्रति श्रद्धा व्यक्त की थी।[4] अतगड्दसाओ और औपपातिकसूत्र मे चम्पानगर के पुण्णभद्द (पूर्णभद्र) चैत्य का उल्लेख है।[5] पिण्डनिर्युक्ति मे सामिल्लनगर के बाहर स्थित माणिभद्र यक्ष के आयतन का उल्लेख है।[6] पउमचरिय मे पूर्णभद्र और माणिभद्र यक्षो का शान्तिनाथ के सेवक रूप मे उल्लेख है।[7] भगवतीसूत्र मे विशला (उज्जैन या वैशाली)[8] के समीप स्थित बहुपुत्रिका के मन्दिर का उल्लेख है। ग्रन्थ मे बहुपुत्रिका को माणिभद्र और पूर्णभद्र यक्षेन्द्रो की चार प्रमुख रानियो मे एक बताया गया है।[9] यू० पी० शाह की धारणा है कि जैन देवकुल के प्राचीनतम यक्ष-यक्षी, सर्वानुभूति (या मातग या गोमेध)[10] और अम्बिका की कल्पना निश्चित रूप से माणिभद्र-पूर्णभद्र यक्ष और बहुपुत्रिका यक्षी के पूजन की प्राचीन परम्परा पर आधारित है।[11] जहा बौद्ध धर्म मे जभल (कुबेर) और हारिती की मूर्तिया कुषाण काल मे निर्मित हुईं, वही जैन धर्म मे सर्वानुभूति और अम्बिका का चित्रण गुप्त युग के बाद ही लोकप्रिय हुआ। शिल्प मे सर्वानुभूति यक्ष का तुन्दीलापन प्रारम्भिक यक्ष मूर्तियो की तुन्दीली आकृतियो से सम्बन्धित रहा है।[12] जैन यक्षी अम्बिका के साथ दो पुत्रों का प्रदर्शन बहुपुत्रिका यक्षी के नाम से प्रभावित रहा हो सकता है।[13]

विद्यादेविया

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो मे विद्याओ से सम्बन्धित अनेक उल्लेख हैं।[14] पर जैन शिल्प मे ल० आठवी-नवी शती ई० से ही इनका चित्रण प्राप्त होता है। पूर्ण विकसित विद्याओ के नामो एव लाक्षणिक स्वरूपो की धारणा प्रारम्भिक ग्रन्थो मे ही प्राप्त होती है। आगम ग्रन्थो मे विद्याओ का आचरण जैन आचार्यों के लिए वर्जित था। पर कालान्तर मे विद्यादेविया ग्रन्थ एव शिल्प की सर्वाधिक लोकप्रिय विषयवस्तु बन गईं। जैन परम्परा मे इन विद्याओं की सख्या ४८ हजार तक बतायी गयी है।[15]

बौद्ध एव जैन साहित्य बुद्ध एव महावीर के समय मे जादू, चमत्कार, मन्त्रो एव विद्याओ का उल्लेख करते हैं।[16] औपपातिकसूत्र के अनुसार महावीर के अनुयायी थेरो (स्थविरो) को विज्जा (विद्या) और मत (मन्त्र) का ज्ञान

---

१ आगम ग्रन्थो मे कही भी महावीर द्वारा जिन मूर्ति के पूजन या जिन मन्दिर मे विश्राम का उल्लेख नही है—शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', स०पु०प०, अ० ९, पृ० २

२ शाह, यू० पी०, 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इ०, ख० ३, अ० १, पृ० ६२-६३

३ वही, पृ० ६०-६४

४ वही, पृ० ६०-६१

५ अंतगड्दसाओ, पृ० १, पा० टि० २, औपपातिकसूत्र २

६ पिण्डनिर्युक्ति ५ २४५

७ पउमचरिय ६७.२८-४९

८ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ६१, पा० टि० ४३

९ भगवतीसूत्र १८ २, १० ५

१० प्रारम्भ मे यक्ष का कोई एक नाम पूर्णत स्थिर नही हो सका था।

११ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ६१-६२

१२ सर्वानुभूति यक्ष की भुजा मे धन के थैले का प्रदर्शन सम्भवत प्रारम्भिक यक्षो के व्यापारियो के मध्य लोकप्रियता (पवाया मूर्ति) से सम्बन्धित हो सकता है—कुमारस्वामी, ए० के०, पू०नि०, पृ० २८

१३ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ६५-६६

१४ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज', ज०इं०सो०ओ०आ०, ख० १५, पृ० ११४-७७

१५ वही, पृ० ११४-११७

१६ वही, पृ० ११४

था ।[1] नायाधम्मकहाओ मे उत्पतनी (उप्पयनी) एव चोरो की सहायक विद्याओ का उल्लेख है । ग्रन्थ मे महावीर के प्रमुख शिष्य सुधर्मा को मत्र एव विद्या का ज्ञाता बताया गया है ।[2] स्थानागसूत्र मे जागोलि एव मातग विद्याओ के उल्लेख हैं ।[3] सूत्रकृतागसूत्र के पापश्रुतो मे वैताली, अर्धवैताली, अवस्वपनी, तालुग्घादणी, श्वापाकी, सोवारी, कलिगी, गौरी, गान्धारी, अवेदनी, उत्पतनी एव स्तम्भनी आदि विद्याओ के उल्लेख हैं ।[4] सूत्रकृताग के गौरी और गान्धारी विद्याओ को कालान्तर मे १६ महाविद्याओ की सूची मे सम्मिलित किया गया ।

पउमचरिय मे ऋषभदेव के पौत्र नमि और विनमि को धरणेन्द्र द्वारा बल एव समृद्धि की अनेक विद्याए प्रदान किये जाने का उल्लेख है ।[5] ग्रन्थ में विभिन्न स्थलो पर प्रज्ञप्ति, कौमारी, लघिमा, वज्रोदरी, वरुणी, विजया, जया, वाराही, कौवेरी, योगेश्वरी, चण्डाली, शकरी, बहुरूपा, सर्वकामा आदि विद्याओ के नामोल्लेख हैं ।[6] एक स्थल पर महालोचन देव द्वारा पद्म (राम) को सिंहवाहिनी विद्या और लक्ष्मण को गरुडा विद्या दिये जाने का उल्लेख है ।[7] कालान्तर मे उपर्युक्त विद्याओ से गरुडवाहिनी अप्रतिचक्रा और सिंहवाहिनी महामानसी महाविद्याओ की धारणा विकसित हुई ।

लोकपाल

पउमचरिय मे लोकपालो से घिरे इन्द्र के ऐरावत गज पर आरूढ होने का उल्लेख है ।[8] इन्द्र ने ही शशि (सोम) की पूर्व, वरुण की पश्चिम, कुवेर की उत्तर और यम की दक्षिण दिशा मे स्थापना की ।[9]

अन्य देवता

आगम ग्रन्थो मे देवताओ को भवनवासी (एक स्थल पर निवास करनेवाले), व्यतर या वाणमन्तर (भ्रमणशील), ज्योतिष्क (आकाशीय नक्षत्र से सम्बन्धित) एव वैमानिक या विमानवासी (स्वर्ग के देव), इन चार वर्गो मे विभाजित किया गया है ।[10] पहले वर्ग मे १०, दूसरे मे ८, तीसरे मे ५ और चौथे मे ३० देवता हैं । देवताओ का यह विभाजन निरन्तर मान्य रहा । पर शिल्प मे इन्द्र, यक्ष, अग्नि, नवग्रह एव कुछ अन्य का ही चित्रण प्राप्त होता है ।

जैन ग्रन्थो मे ऐसे देवो के भी उल्लेख है जिनकी पूजा लोक परम्परा मे प्रचलित थी, और जो हिन्दू एव बौद्ध धर्मों मे भी लोकप्रिय थे ।[11] इनमे रुद्र, शिव, स्कन्द, मुकुन्द, वासुदेव, वैश्रमण (या कुवेर), गन्धर्व, पितर, नाग, भूत, पिशाच, लोकपाल (सोम, यम, वरुण, कुवेर), वैशवानर (अग्निदेव) आदि देव, और श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, अज्जा (पार्वती या आर्या या चण्डिका), कोट्टकिरिया (महिषासुरवधिका) आदि देविया प्रमुख हैं ।[12]

प्रारम्भिक ग्रन्थो के अध्ययन से स्पष्ट है कि पाचवी शती ई० के अन्त तक जैन देवकुल के मूल स्वरूप का निर्धारण काफी कुछ पूरा हो चुका था । इन ग्रन्थो मे जिनो, शलाका-पुरुषो, यक्षो, विद्याओ, सरस्वती, लक्ष्मी, कृष्ण-बलराम, नैगमेषी एव लोक धर्म मे प्रचलित देवो की स्पष्ट धारणा प्राप्त होती है ।

---

१ औपपातिकसूत्र १६

२ नायाधम्मकहाओ, स० पी० एल० वैद्य, १ ४, पृ० १, १४ १०८, पृ० १५२, १६ १२९, पृ० १८९, १८ १४१, पृ० २०९

३ स्थानागसूत्र ८ ३ ६११, ९ ३ ६७८, पउमचरिय ७ १४२

४ सूत्रकृतागसूत्र २ २ १५

५ पउमचरिय ३ १४४–४९

६ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ११७

७ पउमचरिय ५९ ८३–८४

८ पउमचरिय ७ २२

९ पउमचरिय ७ ४७

१० समवायांगसूत्र १५०, तत्त्वार्थसूत्र, पृ० १३७–३८, आचारागसूत्र २ १५ १८

११ शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, अ० ९, पृ० १०

१२ भगवतीसूत्र ३ १ १३४, अगविज्जा, अध्याय ५१ (भूमिका—वी० एस० अग्रवाल, पृ० ७८)

(ख) परवर्ती काल (छठी से १२ वी शती ई० तक)

परवर्ती काल मे विवरणो एवं लाक्षणिक विशेषताओ की दृष्टि से जैन देवकुल का विकास हुआ। इस काल मे जैन देवकुल के विकास के अध्ययन के लिए छठी से वारहवी शती ई० या आवश्यकतानुसार उसके वाद[1] की सामग्री का उपयोग किया गया है। आगम ग्रन्थो मे प्रतिपादित विषयो को सक्षेप या विस्तार से समझाने के लिए छठी-सातवी शती ई० मे निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका ग्रन्थो की रचना की गई जिन्हे आगम का अग माना गया।[2]

आठवी से वारहवी शती ई० के मध्य ६३-शलाका-पुरुषो के जीवन से सम्बन्धित कई श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थो की रचना की गई। कहावली (भद्रेश्वरकृत-श्वेताम्बर) और तिलोयपण्णत्ति (यतिवृषभकृत-दिगम्बर) ६३-शलाका-पुरुषो के जीवन से सम्बन्धित ल० आठवी शती० ई० के दो प्रारम्भिक ग्रन्थ है। ६३-शलाका-पुरुषो से सम्बन्धित अन्य प्रमुख ग्रन्थ **महापुराण** (जिनसेन एव गुणभद्र कृत–९ वी शती ई०), **तिसट्ठि-महापुरिसगुणलकारु** (पुष्पदन्तकृत–९६५ ई०) एव **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र**[3] (हेमचन्द्रकृत–१२ वी शती ई० का उत्तरार्ध) है।[4]

ल० छठी शती ई० मे चरित एव पुराण ग्रन्थो की रचना भी प्रारम्भ हुई। श्वेताम्बर रचनाओ को 'चरित' और दिगम्बर रचनाओ को 'पुराण' एव 'चरित' दोनो की सज्ञा दी गई। इनमे किसी जिन या शलाका-पुरुष का जीवन चरित विस्तार से वर्णित है। मुख्यत ऋषभ, सुमति, सुपार्श्व, विमल, धर्म, वासुपूज्य, शान्ति, नेमि, पार्श्व एव महावीर जिनो के चरित ग्रन्थ प्राप्त होते है।[5] इनके अतिरिक्त **चतुर्विंशतिका** (वप्पभट्टिसूरिकृत–७४३–८३८ ई०), **निर्वाणकलिका** (ल०११ वी-१२वी शती ई०),**प्रतिष्ठासारसग्रह** (१२वी शती ई०),**मन्त्राधिराजकल्प** (ल०१२ वी शती ई०), **त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित्र, चतुर्विंशति-जिन-चरित्र** (अमरचन्दसूरि–१२४१ ई०), **प्रतिष्ठासारोद्धार** (१३ वी शती ई० का पूर्वार्ध), **प्रतिष्ठा-तिलकम्** (१५४३ ई०) एवं **आचारदिनकर** (१४१२ ई०) जैसे प्रतिमा-लाक्षणिक ग्रन्थो की भी रचना हुई, जिनमे प्रतिमा-निरूपण से सम्बन्धित विस्तृत उल्लेख हैं। सभी उपलब्ध जैन लाक्षणिक ग्रन्थो की रचना गुजरात और राजस्थान मे हुई।

देवकुल मे वृद्धि और उसका स्वरूप

ल० छठी से दसवी शती ई० के मध्य का सक्रमण काल अन्य धर्मों एवं सम्बधित कलाओ के समान जैन धर्म एवं कला मे भी नवीन प्रवृत्तियो एव तान्त्रिक प्रभाव का युग रहा है। तान्त्रिक प्रभाव के परिणामस्वरूप जैन धर्म मे देवकुल के देवो की सख्या और उनके धार्मिक कृत्यो मे तीव्रगति से वृद्धि और परिवर्तन हुआ। विभिन्न लाक्षणिक ग्रन्थो की रचना के कारण कला मे परम्परा के निश्चित निर्वाह की वाध्यता से एक यान्त्रिकता सी आ गई।[6] श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो सम्प्रदायो मे जैन देवकुल का विकास मूलत समरूप रहा।[7] परवर्ती युग मे जैन देवकुल मे २४ जिन एव उनके यक्ष-यक्षी युगल, ६३-शलाका-पुरुष, १६ महाविद्या, अष्ट-दिक्पाल, नवग्रह, क्षेत्रपाल, गणेश, ब्रह्मशान्ति एव कपर्दि यक्ष, ६४-योगिनी, शान्तिदेवी, जिनो के माता-पिता एव वाहुवली आदि सम्मिलित थे। इसी समय इन देवा की स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषताएं भी निर्धारित हुईं।

जैन धर्म प्रारम्भ से ही व्यापारियो एव व्यवसायियो मे विशेष लोकप्रिय था। जिनो के पूजन से भौतिक या सासारिक सुख-समृद्धि की प्राप्ति सम्भव न थी, जव कि व्यापारियो एव सामान्य जनो में इसकी आकाक्षा वढती जा रही

---

१ इनमे आचारदिनकर (१४१२ ई०), रूपमण्डन और देवतामूर्तिप्रकरण (१५ वी शती ई०), तथा **प्रतिष्ठातिलकम्** (१५४३ ई०) प्रमुख है।

२ जैन, हीरालाल, भारतीय सस्कृति मे जैन धर्म का योगदान, भोपाल, १९६२, पृ० ७२–७३

३ ग्रन्थ की रचना ११६० मे ११७२ ई० के मध्य हुई–विण्टरनित्ज, एम०, पू०नि०, पृ० ५०५

४ ८६८ ई० के चउपन्नमहापुरिसचरिय (शीलाकाचार्यकृत) में ५४ महापुरुषो का ही चरित्र वर्णित है।

५ विण्टरनित्ज, एम०, पू०नि०, पृ० ५१०–१७

६ स्ट०जै०आ०, पृ० १६

७ केवल देवों के प्रतिमा लाक्षणिक स्वरूपो के सन्दर्भ मे भिन्नता प्राप्त होती है।

थी। उपर्युक्त स्थिति मे व्यापारियों एव सामान्यजनो मे जैन धर्म की लोकप्रियता बनाये रखने के लिए ही सम्भवत. जैन देवकुल मे यक्ष-यक्षी युगलो एवं महाविद्याओं को महत्ता प्राप्त हुई जिनकी आराधना मे भौतिक सुख की प्राप्ति सम्भव थी।

जिन या तीर्थंकर

धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर उपास्य देवो मे सर्वोच्च है। हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणि मे उन्हे देवाधिदेव कहा है।[1] विभिन्न पुराणो एव चरित ग्रन्थो मे जिनो के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का विस्तार से उल्लेख है।[2] गुजरात और राजस्थान[3] के ग्यारहवी-बारहवी शती ई० के मन्दिरो के वितानो, वेदिकाबन्धो एव स्वतन्त्र पट्टो पर ऋषभ, शान्ति, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व एव महावीर जिनो के जीवन की घटनाओं, मुख्यत· पंचकल्याणको[4] को विस्तार से उत्कीर्ण किया गया (चित्र १२-१४, २२, २९, ३९-४१)।

ल० आठवी-नवी शती ई० तक जिनो के लाछनो का निर्धारण पूर्ण हो गया। तिलोयपण्णत्ति[5] एव प्रवचनसारोद्धार[6] मे जिन लाछनो की प्राचीनतम सूची प्राप्त होती है।[7] लाछन-युक्त प्राचीनतम जिन मूर्तिया गुप्तकाल की हैं। ये मूर्तिया राजगिर (नेमिनाथ)[8] और भारत कला भवन, वाराणसी (क्र० १६१-महावीर)[9] की हैं (चित्र ३५)। आठवी शती ई० के बाद की जिन मूर्तियो मे लाछनो का नियमित अकन प्राप्त होता है।

यक्ष-यक्षी

ल० छठी शती ई० मे जिनो के साथ यक्ष-यक्षी युगलो (शासनदेवताओ) को सम्बद्ध करने की धारणा विकसित हुई।[10] ये यक्ष-यक्षी जिनो के सेवक देव के रूप मे सघ की रक्षा करते हैं।[11] यक्ष-यक्षी युगल मे युक्त प्राचीनतम जिन मूर्ति छठी शती ई० की है।[12] अकोटा (गुजरात) मे प्राप्त इस ऋषभ मूर्ति मे यक्ष सर्वानुभूति (या कुबेर) और यक्षी अम्बिका है। ल० आठवी-नवी शती ई० तक २४ जिनो के स्वतन्त्र यक्ष-यक्षी युगलो की सूची निर्धारित हो गयी।[13] यक्ष-यक्षी युगलो की प्रारम्भिक सूची तिलोयपण्णत्ति[14] (दिगम्बर), कहावली[15] (श्वेताम्बर) एव प्रवचनसारोद्धार (पवयणसारुद्धार-श्वेताम्बर)[16] मे प्राप्त होती है। तिलोयपण्णत्ति की २४-यक्ष-यक्षियो की सूची इस प्रकार है·

---

१ अभिधानचिन्तामणि देवाधिदेवकाण्ड २४-२५

२ विण्टरनित्ज, एम०, पू०नि०, पृ० ५१०-१७

३ ये चित्रण ओसिया की देवकुलिकाओं, जालोर के पार्श्वनाथ मन्दिर, विमलवसही, लूणवसही और कुंभारिया के शान्तिनाथ एव महावीर मन्दिरो पर हैं।

४ च्यवन (जन्म के पूर्व), जन्म, दीक्षा, कैवल्य और निर्वाण।

५ तिलोयपण्णत्ति ४ ६०४-६०५

६ प्रवचनसारोद्धार ३८१-८२

७ इसके पूर्व केवल आवश्यक निर्युक्ति मे ही ऋषभ के शरीर पर वृषभ चिह्न का उल्लेख है-शाह,यू०पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', स०पु०प०, अं ९, पृ० ६

८ चन्दा, आर० पी०, 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', आ०स०इ०ऐ०रि०, १९२५-२६, पृ० १२५-२६

९ शाह, यू० पी०, 'ए फ्यू जैन इमेजेज़ इन दि भारत कला भवन, वाराणसी', छवि, १९७१, वाराणसी, पृ० २३४

१० शाह, यू० पी०, 'इण्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज़ इन जैन वरशिप', प्रो०ट्रा०ओ०कां०, २०वा अधिवेशन, १९५९, पृ० १४१-४३

११ हरिवंशपुराण ६५ ४३-४५, तिलोयपण्णत्ति ४ ९३६

१२ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, बम्बई, १९५९, पृ० २८-२९, फलक १०-११

१३ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', ज०ओ०इ०, ख० २०, अं० ३, पृ० ३०६

१४ वही, पृ० ३०४, जैन, ज्योतिप्रसाद, पू०नि०, पृ० १३८

१५ शाह, यू० पी०, 'इण्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज इन जैन वरशिप', पृ० १४७-४८

१६ मेहता, मोहनलाल तथा कापडिया, हीरालाल, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ४, वाराणसी, १९६८, पृ० १७४-७९

यक्ष—गोवदन, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षेश्वर, तुम्बुरव, मातग, विजय, अजित, ब्रह्म, ब्रह्मेश्वर, कुमार, षण्मुख, पाताल, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गन्धर्व, कुवेर, वरुण, भृकुटि, गोमेघ, पार्श्व, मातंग और गुह्यक।[1]

यक्षियां—चक्रेश्वरी, रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रश्रृंखला, वज्राकुशा, अप्रतिचक्रेश्वरी, पुरुषदत्ता, मनोवेगा, काली, ज्वालामालिनी, महाकाली, गौरी, गाधारी, वैरोटी, सोलसा, अनन्तमती, मानसी, महामानसी, जया, विजया, अपराजिता, वहुरूपिणी, कुष्माण्डी, पद्मा और सिद्धायिनी।[2]

प्रवचनसारोद्धार मे प्राप्त २४ यक्ष-यक्षियो की सूची निम्नलिखित है

यक्ष—गोमुख, महायक्ष, त्रिमुख, ईश्वर, तुवरु, कुसुम, मातग, विजय, अजित, ब्रह्मा, मनुज (ईश्वर), सुरकुमार, षण्मुख, पाताल, किन्नर, गरुड, गन्धर्व, यक्षेन्द्र, कूवर, वरुण, भृकुटि, गोमेध, वामन (पार्श्व) और मातग।[3]

यक्षिया—चक्रेश्वरी, अजिता, दुरितारि, काली, महाकाली, अच्युता, शान्ता, ज्वाला, सुतारा, अशोका, श्रीवत्सा (मानवी), प्रवरा (चडा), विजया (विदिता), अकुशा, पन्नगा (कन्दर्पा), निर्वाणी, अच्युता (वला), धारणी, वैरोट्या, अच्छुप्ता (नरदत्ता), गाधारी, अम्वा, पद्मावती और सिद्धायिका।[4]

२४—यक्ष-यक्षी युगलो के लाक्षणिक स्वरूपो का विस्तृत निरूपण सर्वप्रथम ग्यारहवी-वारहवी शती ई० के ग्रन्थो, निर्वाणकलिका, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र एव प्रतिष्ठासारसग्रह मे प्राप्त होता है।[5] जैन शिल्प मे केवल यक्षियो के ही सामूहिक उत्कीर्णन के प्रयास किये गये जिसका प्रथम उदाहरण देवगढ (ललितपुर, उ० प्र०) के शान्तिनाथ मन्दिर

---

१ गोवदणमहाजक्खा तिमुहो जक्खेसरो य तुवुरओ।
मादंगविजयअजिओ वम्हो वम्हेसरो य कोमारो॥
छम्मुहओ पादालो किण्णरकिंपुरुसगरुडगधव्वा।
तह य कुवेरो वरुणो भिउडीगोमेधपासमातगा॥
गुज्झकओ इदि एदे जक्खा चउवीस उसहपहुदीण।
तित्थयराण पासे चेट्ठते भत्तिसजुत्ता॥ तिलोयपण्णत्ति ४ ९३४–३६

२ जक्खीओ चक्केसरिरोहिणीपण्णत्तिवज्जसिखलया।
वज्जकुसा य अप्पदिचक्केसरिपुरिसदत्ता य॥
मणवेगाकालीओ तह जालामालिणी महाकाली।
गउरीगंधारीओ वेरोटी सोलसा अणतमदी॥
माणसिमहमाणसिया जया य विजयापराजिदाओ य।
वहुरुपिणि कुम्मडी पउमासिद्धायिणीओ त्ति॥ तिलोयपण्णत्ति ४ ९३७–३९

३ जक्खो गोमुह महजक्ख तिमुह ईसरतुवरु कुसुमो।
मायगो विजया जिय वभो मणुओ य सुर कुमारो॥
छमुह पायाल किन्नर गरुडो गधव्व तह य जक्खिदो।
कूवर वरुणो भिउडो गोमेहो वामण मायगो॥ प्रवचनसारोद्धार ३७५–७६

४ देवी च चक्केसरी। अजिया दुरियारि काली महाकाली।
अच्युत सता जाला। सुतारयाऽसोय सिरिवच्छा॥
पवर विजया कुसा। पणत्ति निव्वाणी अच्युता धरणी।
वइरोट्ट दुत्त गधारि। अव पउमावई सिद्धा॥ प्रवचनसारोद्धार ३७७–७८

५ श्वेताम्वर और दिगम्वर ग्रन्थो मे इन यक्ष-यक्षियो के नामो एव लाक्षणिक विशेषताओ के सन्दर्भ मे पर्याप्त अन्तर है।

(मन्दिर १२, ८६२ ई०) से प्राप्त होता है। दूसरा उदाहरण (११ वीं–१२ वीं शती ई०) खण्डगिरि (पुरी, उड़ीसा) की बारभुजी गुफा मे है। दोनो उदाहरण दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित है।

विद्यादेविया

विद्यादेवियों से सम्बन्धित उल्लेख वसुदेवहिण्डी (ल०छठी शती ई०), आवश्यकचूर्णि (ल०६७७ ई०), आवश्यक निर्युक्ति (८ वी शती ई०), हरिवंशपुराण (७८३ ई०), चउपन्नमहापुरुषचरियम् (८६८ ई०) एवं त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र मे हैं। इनमे पउमचरिय की कथा का ही विस्तार है।[1] हरिवशपुराण[2] एव त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र[3] मे उल्लेख है कि धरण ने नमि और विनमि को विद्याधरो पर स्वामित्व और ४८ हजार विद्याओ का वरदान दिया।

वसुदेवहिण्डी (सघदासकृत) मे विद्याओ को गन्धर्व एव पन्नगो से सम्बद्ध कहा गया है और महारोहिणी, प्रज्ञप्ति, गौरी, महाज्वाला, बहुरूपा, विद्युन्मुखी एव वेयाल आदि विद्याओ का उल्लेख किया गया है। आवश्यकचूर्णि (जिनदासकृत) एव आवश्यक निर्युक्ति (हरिभद्रसूरिकृत) मे गौरी, गाधारी, रोहिणी और प्रज्ञप्ति का प्रमुख विद्याओ के रूप मे उल्लेख है।[4] नवी शती ई० के अन्त मे निश्चित १६ महाविद्याओं की सूची मे[5] उपर्युक्त चार विद्याए भी सम्मिलित हैं। पद्मचरित (रविषेणकृत–६७६ ई०) मे नमि-विनमि की कथा और प्रज्ञप्ति विद्या का उल्लेख है। हरिवशपुराण मे प्रज्ञप्ति, रोहिणी, अगारिणी, महागौरी, गौरी, सर्वविद्याप्रकर्षिणी, महाश्वेता, मायूरी, हारी, निर्वज्ञशाड्वला, तिरस्कारिणी, छायासंक्रामिणी, कूष्माण्ड गणमाता, सर्वविद्याविराजिता, आर्यकूष्माण्ड देवी, अच्युता, आर्यवती, गान्धारी, निर्वृति, दण्डाध्यक्षगण, दण्डभूत-सहस्रक, भद्रकाली, महाकाली, काली और कालमुखी आदि विद्याओ का उल्लेख है।[6]

चतुर्विंशतिका (वप्पभट्टिसूरिकृत–७४३-८३८ ई०) मे २४ जिनो के साथ २४ यक्षियो के स्थान पर महा-विद्याओ[7], वाग्देवी सरस्वती एव कुछ यक्षियों और अन्य देवो के उल्लेख हैं।[8] ग्रन्थ मे १६ के स्थान पर केवल १५ महा-विद्याओ का ही स्वरूप विवेचित है।[9] १६ महाविद्याओं की सूची ल० नवी शती ई० के अन्त तक निश्चित हुई। १६ महाविद्याओ की सूची मे अधिकांशत पूर्ववर्ती ग्रन्थो मे उल्लिखित विद्याए ही सम्मिलित है। तिजयपहुत्त (मानवदेवसूरि-कृत–९वी शती ई०), सहितासार (इन्द्रनन्दिकृत–९३९ ई०) एव स्तुति चतुर्विंशतिका (या शोभन स्तुति–शोभनमुनिकृत–

---

१ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव सिक्सटिन जैन महाविद्याज', ज०इ०सो०ओ०आ०, ख० १५, पृ० ११५

२ हरिवशपुराण २२ ५४–७३

३ त्रि०श०पु०च० १ ३ १२४-२२६ ग्रन्थ मे गौरी, प्रज्ञप्ति, मनुस, गान्धारी, मानवी, कौशिकी, भूमितुण्ड, मूलवीर्य, सकुका, पाण्डुकी, काली, श्वपाकी, मातगी, पार्वती, वशालया, पाम्शुमूल एव वृक्षमूल विद्याओ के उल्लेख हैं।

४ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ११६-१७

५ जैन ग्रन्थो मे अनेक विद्यादेवियो के उल्लेख हैं। ल० नवी शती ई० मे १६ विद्यादेवियों की सूची तैयार हुई। विभिन्न लाक्षणिक ग्रन्थो मे इन्ही १६ विद्यादेवियो का निरूपण हुआ एव पुरातात्विक स्थलो पर भी इन्ही को मूर्त अभिव्यक्ति मिली। जैन विद्यादेविया के समूह मे इनकी लोकप्रियता के कारण इन्हे महाविद्या कहा गया।

६ हरिवशपुराण २२ ६१-६६

७ जिनो की प्रशसा मे लिखे स्तोत्रो मे यक्ष-यक्षी युगलो के स्थान पर महाविद्याओ का निरूपण इस सम्भावना की ओर सकेत देता है कि १६ महाविद्याओं की सूची २४-यक्ष-यक्षियो की अपेक्षा कुछ प्राचीन थी। दिगम्बर परम्परा की २४ यक्षियो मे से अधिकांश के नाम भी महाविद्याओ से ग्रहण किये गये।

८ नेमि और पार्श्व दोनो ही के साथ यक्षी के रूप मे अम्बिका निरूपित है। अजित के साथ सर्पफणो से युक्त यक्षी, और ऋषभ, मल्लि एव मुनिसुव्रत के साथ वाग्देवी सरस्वती निरूपित हैं।

९ सर्वास्त्र-महाज्वाला का अनुल्लेख है। मानसी के नाम से वर्णित देवी मे महाज्वाला एव मानसी दोनो की विशेषताएं सयुक्त हैं।

ल० ९७३ ई०) मे १६ महाविद्याओ की प्रारम्भिक सूची प्राप्त होती है[1] जिसे वाद मे उसी रूप मे स्वीकार कर लिया गया। १६ महाविद्याओ की अन्तिम सूची मे निम्नलिखित नाम हैं

रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला, वज्रांकुशा, चक्रेश्वरी या अप्रतिचक्रा (जाम्बुनदा-दिगम्बर), नरदत्ता या पुरुषदत्ता, काली या कालिका, महाकाली, गौरी, गान्धारी, सर्वास्त्र-महाज्वाला या ज्वाला (ज्वालामालिनी-दिगम्बर), मानवी, वैरोटया (वैरोटी-दिगम्बर), अच्छुप्ता (अच्युता-दिगम्बर), मानसी एव महामानसी।

महाविद्याओ के लाक्षणिक स्वरूपो का निरूपण सर्वप्रथम बप्पभट्टि की चतुर्विंशतिका एव शोभनमुनि की स्तुति चतुर्विंशतिका मे किया गया है। जैन शिल्प मे महाविद्याओ के स्वतन्त्र उत्कीर्णन का प्राचीनतम उदाहरण ओसिया (जोधपुर, राजस्थान) के महावीर मन्दिर (ल०८ वी-९ वीशती ई०) से प्राप्त होता है। नवी शती ई० के वाद गुजरात एव राजस्थान के श्वेताम्बर जैन मन्दिरो पर महाविद्याओ का नियमित चित्रण प्राप्त होता है। गुजरात एव राजस्थान के वाहर महाविद्याओ का निरूपण लोकप्रिय नही था।[2] १६ महाविद्याओ के सामूहिक चित्रण के उदाहरण कुम्भारिया (बनासकाठा, गुजरात) के शान्तिनाथ मन्दिर (११वी शतीई०), विमलवसही (दो समूह . रगमण्डप एव देवकुलिका ४१,१२वी शती ई०) एव लूणवसही (रंगमण्डप, १२३० ई०) से प्राप्त होते हैं (चित्र ७८)।[3]

राम और कृष्ण

राम और कृष्ण-बलराम को जैन ग्रन्थकारो ने विशेष महत्व दिया। इसी कारण इनके जीवन की घटनाओ का विस्तार से उल्लेख करने वाले स्वतन्त्र ग्रन्थो की रचना की गई। वसुदेवहिण्डी, पद्मपुराण, कहावली, उत्तरपुराण (गुणभद्र-कृत–९ वी शती ई०), महापुराण (पुष्पदन्तकृत–९६५ ई०), पउमचरिउ (स्वयम्भूदेवकृत–९७७ ई०) और त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित्र आदि ग्रन्थो मे रामकथा, और हरिवंशपुराण (जिनसेनकृत), हरिवंशपुराण (धवलकृत–११ वी-१२ वी शती ई०) एव त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र आदि मे कृष्ण-बलराम से सम्बन्धित विस्तृत उल्लेख हैं। जैन शिल्प मे राम का चित्रण केवल खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर पर प्राप्त होता है।[4] कृष्ण-बलराम का निरूपण देवगढ (मन्दिर २) एव राज्य संग्रहालय, लखनऊ (क्र० ६६ ५३) को नेमिनाथ मूर्तियो मे प्राप्त होता है (चित्र २७,२८)। विमलवसही, लूणवसही और कुमारिया के महावीर मन्दिर के वितानो पर भी नेमिनाथ के जीवनदृश्यो मे और स्वतन्त्र रूप मे कृष्ण-बलराम के चित्रण हैं (चित्र २२,२९)।[5]

भरत और वाहुवली

जैन ग्रन्थो मे ऋषभनाथ के दो पुत्रो, भरत और वाहुवली के युद्ध के विस्तृत उल्लेख हैं।[6] युद्ध मे विजय के पश्चात् वाहुवली ने ससार त्याग कर कठोर तपस्या की और भरत ने चक्रवर्ती के रूप मे शासन किया। जीवन के अन्तिम वर्षो मे भरत ने भी दीक्षा ग्रहण की।[7] दोनो ने कैवल्य प्राप्त किया। जैन शिल्प मे भरत–वाहुवली के युद्ध का चित्रण

---

१ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ११९–२०

२ गुजरात और राजस्थान के वाहर १६ महाविद्याओ के सामूहिक शिल्पाकन का एकमात्र सम्भावित उदाहरण खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर (११ वी शती ई०) के मण्डोवर पर है।

३ तिवारी, एम० एन० पी०, 'दि आइकानोग्राफी आॅव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज ऐज डेपिक्टेड इन दि शातिनाथ टेम्पल्, कुमारिया', सवोधि, ख० २, अ० ३, पृ० १५–२२

४ तिवारी, एम० एन० पी०, 'ए नोट आन ऐन इमेज आॅव राम ऐण्ड सीता आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल्, खजुराहो', जैन जर्नल, ख० ८, अ० १, पृ० ३०-३२

५ तिवारी, एम० एन० पी०, 'जैन साहित्य और शिल्प मे कृष्ण', जै०सि०भा०, भाग २६, अ० २, पृ० ५–११, तिवारी, एम०एन०पी०, 'ऐन अन्पब्लिश्ड इमेज आॅव नेमिनाथ फ्राम देवगढ',जैन जर्नल, ख०८, अ०२, पृ०८४-८५

६ पउमचरिय ४.५४-५५, हरिवंशपुराण ११ ९८-१०२, आदिपुराण ३६ १०६-८५, त्रि०श०पु०च० ५ ७४०-९८

७ हरिवंशपुराण १३.१-६

विमलवसही एव कुंभारिया के शान्तिनाथ मन्दिर मे है (चित्र १४)। भरत की स्वतन्त्र मूर्तिया केवल देवगढ (१० वी-१२ वी शती ई०)[1] मे और वाहुवली की स्वतन्त्र मूर्तिया (९ वी–१२ वी शती ई०) जूनागढ सग्रहालय, देवगढ (मन्दिर २; ११ एव साहू जैन सग्रहालय, देवगढ), खजुराहो (पार्श्वनाथ मन्दिर), विल्हरी (म०प्र०) एव राज्य सग्रहालय, लखनऊ (क्र० ९४०) मे हैं (चित्र ७०, ७१–७५)।[2] देवगढ मे वाहुवली को विशेष प्रतिष्ठा प्रदान की गई। इसी कारण एक त्रितीर्थी मूर्ति मे वाहुवली दो जिनो (मन्दिर २, चित्र ७५) एव एक अन्य मे यक्ष-यक्षी युगल (मन्दिर ११) के साथ निरूपित ह।

जिनो के माता-पिता

जिनो के माता-पिता की गणना महान् आत्माओ मे की गई है।[3] **समवायागसूत्र** मे वर्णित माता-पिता की सूची ही कालान्तर मे स्वीकृत हुई।[4] ग्रन्थो मे जिनो की माताओ की उपासना से सम्वन्धित उल्लेख पिताओं की तुलना मे अधिक है। जैन शिल्प एव चित्रो मे भी जिनो की माताओ के चित्रण की परम्परा ही विशेष लोकप्रिय थी, जिसका प्राचीनतम उदाहरण ओसिया (१०१८ ई०) से प्राप्त होता है। अन्य उदाहरण पाटण, आवू, गिरनार, कुभारिया (महावीर मन्दिर) एव देवगढ से प्राप्त होते हैं। इनमे प्रत्येक स्त्री आकृति की गोद मे एक बालक अवस्थित है। २४ जिनो के माता-पिता के सामूहिक चित्रण के प्रारम्भिक उदाहरण (११वी शती ई०) कुभारिया के शान्तिनाथ एव महावीर मन्दिरो के वितानो पर उत्कीर्ण हैं। इनमे आकृतियो के नीचे उनके नाम भी उल्लिखित हैं।

पच परमेष्ठि

जैन देवकुल के पचपरमेष्ठियो मे अर्हन्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु सम्मिलित थे।[5] पचपरमेष्ठियो मे मे प्रथम दो मुक्त आत्माए है, जिनमे अर्हत् शरीर युक्त और सिद्ध निराकार हैं। तीर्थों की स्थापना कर कुछ अर्हन् तीर्थंकर कहलाते हैं। पचपरमेष्ठियो के पूजन की परम्परा काफी प्राचीन है। परवर्ती युग मे सिद्धचक्र या नवदेवता के रूप मे इनके पूजन की धारणा विकसित हुई।[6] पचपरमेष्ठियो मे आचार्य, उपाध्याय एव साधु की मूर्तिया (१०वी-१२वी शती ई०) विमलवसही, लूणवसही, कुभारिया, ओसिया (देवकुलिका), देवगढ, खजुराहो एव ग्वालियर से प्राप्त होती हैं।

दिक्पाल

दिशाओ के स्वामी दिक्पालो या लोकपालो का पूजन वास्तुदेवताओ के रूप मे भी लोकप्रिय था।[7] ल० आठवी-नवी शती ई० मे जैन देवकुल मे दिक्पालो की धारणा विकसित हुई। दिक्पालो के प्रतिमानिरूपण से सम्वन्धित प्रारभिक उल्लेख **निर्वाणकलिका** एव **प्रतिष्ठासारसग्रह** मे हैं। पर जैन मन्दिरो पर इनका उत्कीर्णन ल० नवी शती० ई० मे ही प्रारम्भ हो गया जिसका एक उदाहरण ओसिया के महावीर मन्दिर पर है। जैन शिल्प मे अष्ट-दिक्पालो का उत्कीर्णन ही लोकप्रिय

१ मन्दिर २ एव मन्दिर १२ की चहारदीवारी
२ तिवारी, एम० एन० पी०, 'ए नोट आन सम वाहुवली इमेजेज फ्राम नार्थ इण्डिया', ईस्ट वे०, ख०२३, अ०३-४, पृ० ३४७-५३
३ शाह, यू० पी०, 'पेरेण्ट्स ऑव दि तीर्थंकरज', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इ०, अ० ५, १९५५-५७, पृ० २४-३२
४ समवायागसूत्र १५७
५ पचपरमेष्ठि जैन देवकुल के पाच सर्वोच्च देव हैं। इन्हे जिनो के समान महत्व प्राप्त था–शाह, यू० पी०, 'विगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', स०पु०प०, अ० ९, पृ० ८-९
६ ल० नवी शती ई० मे पंचपरमेष्ठिन् की सूची मे चार पूजित पदो के रूप मे श्वेतावर सम्प्रदाय मे ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप को, एवं दिगवर सम्प्रदाय मे चैत्य (जिन प्रतिमा), चैत्यालय (जिन मन्दिर), धर्मचक्र और श्रुत (जिनो की शिक्षा) को सम्मिलित किया गया।
७ भट्टाचार्य, बी० सी०, जैन आइकानोग्राफी, लाहौर, १९३९, पृ० १४८

था[1] पर जैन ग्रन्थो मे दस दिक्पालो के उल्लेख मिलते है। ये दस दिक्पाल इन्द्र (पूर्व), अग्नि (दक्षिण-पूर्व), यम (दक्षिण), निर्ऋत (दक्षिण-पश्चिम), वरुण (पश्चिम), वायु पश्चिम-उत्तर), कुबेर (उत्तर), ईशान् (उत्तर-पूर्व), ब्रह्मा (आकाश) एव नागदेव (या धरणेन्द्र-पाताल) हैं। जैन दिक्पालो की लाक्षणिक विशेषताए काफी कुछ हिन्दू दिक्पालो से प्रभावित हैं।

नवग्रह

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो की सूर्य, चन्द्र, ग्रह आदि ज्योतिष्क देवो की धारणा ही पूर्वमध्य युग मे नवग्रहो के रूप मे विकसित हुई। दसवी शती ई० के बाद के लगभग सभी प्रतिमा लाक्षणिक ग्रन्थों मे नवग्रहो (सूर्य, चन्द्र, मगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु) के लाक्षणिक स्वरूपो का निरूपण किया गया। पर जैन शिल्प में दसवी शती ई०[2] मे ही नव-ग्रहो का चित्रण प्रारम्भ हुआ जो दिगम्बर स्थलो पर अधिक लोकप्रिय था (चित्र ५७)।[3] जिन मूर्तियो की पीठिका या परिकर मे भी नवग्रहो का उत्कीर्णन लोकप्रिय था।

क्षेत्रपाल

ल० ग्यारहवी शती ई० मे क्षेत्रपाल को जैन देवकुल मे सम्मिलित किया गया।[4] क्षेत्रपाल की लाक्षणिक विशेषताए जैन दिक्पाल निर्ऋत एव हिन्दू देव भैरव से प्रभावित है। क्षेत्रपाल की मूर्तिया (११वी-१२वी शती ई०) केवल खजुराहो एव देवगढ जैसे दिगम्बर स्थलो से ही मिली हैं।

६४-योगिनिया

मध्य-युग मे हिन्दू देवकुल के समान ही जैन देवकुल मे भी ६४-योगिनियो की कल्पना की गयी। ये योगिनिया क्षेत्रपाल की सहायक देविया है। जैन देवकुल के योगिनियो की दो सूचियां बी० सी० भट्टाचार्य ने दी हैं।[5] इन सूचियो के कुछ नाम जहा हिन्दू योगिनियो मे मेल खाते हैं, वही कुछ अन्य केवल जैन धर्म मे ही प्राप्त होते हैं। जैन शिल्प मे इन्हे कभी लोकप्रियता नहीं प्राप्त हुई।

शान्तिदेवी

जैन धर्म एव सघ की उन्नतिकारिणी शान्तिदेवी की धारणा दसवी-ग्यारहवी शती ई० मे विकसित हुई। देवी के प्रतिमा-निरूपण से सम्बन्धित प्रारम्भिक उल्लेख **स्तुति चतुर्विशतिका**[6] (शोभनसूरिकृत) एव **निर्वाणकलिका**[7] मे है। जैन शिल्प मे शान्तिदेवी श्वेताम्बर स्थलो पर ही लोकप्रिय थी।[8] गुजरात एव राजस्थान के श्वेताम्बर स्थलो पर स्वतन्त्र मूर्तियों मे और जिन मूर्तियो के सिंहासन के मध्य[9] मे शान्तिदेवी आमूर्तित हैं। देवी की दो भुजाओ मे या तो पद्म है, या फिर एक मे पद्म और दूसरी मे पुस्तक है।

---

१ शिल्प मे नवें-दसवें दिक्पालो, ब्रह्मा एव धरणेन्द्र के उत्कीर्णन का एकमात्र ज्ञात उदाहरण घाणेराव (१० वी शती ई०) के महावीर मन्दिर पर है।

२ खजुराहो के पार्श्वनाथ, देवगढ के शान्तिनाथ एवं घाणेराव के महावीर मन्दिरो के प्रवेश-द्वारो पर नवग्रह निरूपित हैं।

३ नवग्रहो के चित्रण का एकमात्र श्वेताम्बर उदाहरण घाणेराव के महावीर मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर है।

४ **निर्वाणकलिका** २१ २, **आचारदिनकर**—भाग २, क्षेत्रपाल, पृ० १८०

५ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० १८३-८४

६ **स्तुति चतुर्विशतिका** १२ ४, पृ० १३७

७ **निर्वाणकलिका** २१, पृ० ३७

८ खजुराहो की भी कुछ जिन मूर्तियो मे सिंहासन के मध्य मे शान्तिदेवी निरूपित है।

९ **वास्तुविद्या** (११वी-१२वी शती ई०) मे सिंहासन के मध्य मे वरदमुद्रा एवं पद्म धारण करनेवाली आदिशक्ति की द्विभुज आकृति के उत्कीर्णन का विधान है (२२ १०)।

गणेश

हिन्दू देवकुल के लोकप्रिय देवता गणेश या गणपति को ल० ग्यारहवी-बारहवी शती ई० मे जैन देवकुल मे सम्मिलित किया गया।[१] यद्यपि **अभिधान-चिन्तामणि** (१२वी शती ई०) मे गणेश का उल्लेख है[२] पर उनकी लाक्षणिक विशेषताए सर्वप्रथम **आचारदिनकर** मे विवेचित है।[३] जैन ग्रन्थो मे निरूपण के पूर्व ही ग्यारहवी शती ई० मे ओसिया की जैन देव-कुलिकाओ के प्रवेश-द्वारो एव भित्तियो पर गणेश का मूर्त अकन देखा जा सकता है। यह तथ्य एव जैन गणेश की लाक्षणिक विशेषताए[४] स्पष्टत हिन्दू गणेश के प्रभाव का सकेत देती हैं। पुरातात्विक सग्रहालय, मथुरा की ल० दसवी शती ई० की एक अम्बिका मूर्ति (क्र० ०० डी ७) मे गणेश की मूर्ति भी अकित है। बारहवी शती ई० की कुछ स्वतन्त्र मूर्तिया कुमारिया (नेमिनाथ मन्दिर) एव नाडलई से प्राप्त होती हैं (चित्र ७७)। गणेश की लोकप्रियता श्वेताम्बरो तक सीमित थी।

ब्रह्मशान्ति यक्ष

स्तुति चतुर्विंशतिका (शोभनसूरिकृत)[५] एव **निर्वाणकलिका**[६] मे ही सर्वप्रथम ब्रह्मशान्ति यक्ष की लाक्षणिक विशेषताए वर्णित है। **विविधतीर्थकल्प** (जिनप्रभसूरिकृत) के सत्यपुर तीर्थकल्प मे ब्रह्मशान्ति यक्ष के पूर्व जन्म की कथा दी है।[७] दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की ब्रह्मशान्ति यक्ष की मूर्तिया घाणेराव के महावीर, कुमारिया के शान्तिनाथ, महावीर एव पार्श्वनाथ मन्दिरो और विमलवसही से प्राप्त होती हैं। ब्रह्मशान्ति यक्ष केवल श्वेताम्बरो के मध्य ही लोकप्रिय थे। जटा-मुकुट, छत्र, अक्षमाला, कमण्डलु और कभी-कभी हसवाहन का प्रदर्शन ब्रह्मशान्ति पर हिन्दू ब्रह्मा का प्रभाव दर्शाता है।

कपर्दी यक्ष

स्तुति चतुर्विंशतिका मे कपर्दी यक्ष का यक्षराज के रूप मे उल्लेख है।[८] **विविधतीर्थकल्प** एव **शत्रुजय-माहात्म्य** (धनेश्वरसूरिकृत—ल० ११०० ई०) मे कपर्दी यक्ष से सम्बन्धित विस्तृत उल्लेख हैं।[९] शत्रुजय पहाडी एव विमलवसही से कपर्दी यक्ष के मूर्त चित्रण प्राप्त होते है। कपर्दी यक्ष की लोकप्रियता श्वेताम्बरो तक सीमित थी। यू० पी० शाह ने कपर्दी यक्ष को शिव से प्रभावित माना है।[१०]

• ● •

---

१ तिवारी, एम० एन० पी०, 'सम अनपब्लिश्ड जैन स्कल्पचर्स ऑव गणेश फ्राम वेस्टर्न इण्डिया', **जैन जर्नल**, ख०९, अ० ३, पृ० ९०-९२ २ **अभिधानचिन्तामणि** २ १२१

३ **आचारदिनकर**, भाग २, गणपतिप्रतिष्ठा १-२, पृ० २१०

४ हिन्दू गणेश के समान ही जैन गणेश भी गजमुख एव लम्बोदर और मूषक पर आरूढ हैं। उनके करो मे स्वदत, परशु, मोदकपात्र, पद्म, अकुश, एव अभय-या-वरद-मुद्रा प्रदर्शित हैं।

५ **स्तुति चतुर्विंशतिका** १६ ४, पृ० १७९ ६ **निर्वाणकलिका** २१, पृ० ३८

७ **विविधतीर्थकल्प**, पृ० २८-३० ८ **स्तुति चतुर्विंशतिका** १९ ४, पृ० २१५

९ शाह, यू० पी०, 'ब्रह्मशान्ति ऐण्ड कपर्दी यक्षज', ज०एम०एस०यू०ब०, ख० ७, अ० १, पृ० ६५-६८

१० वही, पृ० ६८

चतुर्थ अध्याय

उत्तर भारत के जैन मूर्ति अवशेषों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

इस अध्याय मे उत्तर भारत के जैन मूर्ति अवशेपो का ऐतिहासिक सर्वेक्षण किया गया है। इसमे विपय एव लक्षणो के विकास के अध्ययन की दृष्टि से क्षेत्र तथा काल दोनो की पृष्ठभूमि का ध्यान रखते हुए सभी उपलब्ध स्रोतो का उपयोग किया गया है। कई स्थलो एव सग्रहालयो की अप्रकाशित सामग्री का निजी अध्ययन भी इसमे समाविष्ट है। इस प्रकार यहा देश और काल के प्रभावो का विश्लेषण करते हुए उत्तर भारतीय जैन मूर्ति अवशेपो का एक यथासम्भव पूर्ण एव तुलनात्मक अध्ययन कर जैन प्रतिमा-निरूपण का क्रमवद्ध इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। द्वितीय अध्याय के समान ही यह अध्याय भी दो भागो मे विभक्त है। प्रथम भाग मे प्रारम्भ से सातवी शती ई० तक और द्वितीय मे आठवी से वारहवी शती ई० तक के जैन मूर्ति अवशेपो का सर्वेक्षण है। दूसरे भाग मे स्थलगत वैशिष्ट्य एव मौलिक लाक्षणिक वृत्तियो पर अधिक वल दिया गया है।

(१)

आरम्भिक काल (प्रारम्भ से ७ वीं शती ई० तक)

मोहनजोदडो से प्राप्त ५ मुहरो पर कायोत्सर्ग-मुद्रा के समान ही दोनो हाथ नीचे लटका कर सीधी खडी पुरुप आकृतिया[1] और हडप्पा से प्राप्त एक पुरुप आकृति[2] (चित्र १) सिन्धु सभ्यता के ऐसे अवशेप हैं जो अपनी नग्नता और मुद्रा (कायोत्सर्ग के समान) के सन्दर्भ मे परवर्ती जिन मूर्तियो का स्मरण दिलाते हैं।[3] किन्तु सिन्धु लिपि के अन्तिम रूप से पढे जाने तक सम्भवत. इस सम्बन्ध मे कुछ भी निश्चय से नही कहा जा सकता है।

मौर्य-शुग काल

प्राचीनतम जिन मूर्ति मौर्यकाल की है जो पटना के समीप लोहानीपुर से मिली है और सम्प्रति पटना सग्रहालय में सुरक्षित है (चित्र २)।[4] नग्नता और कायोत्सर्ग-मुद्रा[5] इसके जिन मूर्ति होने की सूचना देते है। मूर्ति के सिर, भुजा और जानु के नीचे का भाग खण्डित हैं। मूर्ति पर मौर्ययुगीन चमकदार आलेप है। लोहानीपुर से शुग काल या कुछ बाद की एक अन्य जिन मूर्ति भी मिली है जिसमे नीचे लटकती दोनो भुजाए सुरक्षित है।[6]

---

१ मार्शल, जान, मोहनजोदडो ऐण्ड दि इण्डस सिविलिजेशन, ख० १, लदन, १९३१, फलक १२, चित्र १३, १४, १८, १९, २२

२ वही, पृ० ४५, फलक १०

३ चदा, आर० पी०, 'सिन्ध फाइव थाऊजण्ड इयर्स एगो', माडर्न रिव्यू, ख०५२, अक २, पृ० १५१-६०, रामचन्द्रन, टी० एन०,'हरप्पा ऐण्ड जैनिजम' (हिन्दी अनु०), अनेकान्त, वर्प १४, जनवरी १९५७, पृ० १५७-६१, स्ट०जै०आ०, पृ० ३-४

४ जायसवाल, के० पी०, 'जैन इमेज ऑव मौर्य पिरियड', ज०वि०उ०रि०सो०, ख० २३, भाग १, पृ० १३०-३२, वनर्जी-शास्त्री, ए०, 'मौर्यन स्कल्पचर्स फ्राम लोहानीपुर, पटना', ज०वि०उ०रि०सो०, ख० २६, भाग २, पृ० १२०-२४

५ कायोत्सर्ग-मुद्रा मे जिन समभग मे सीधे खडे होते हैं और उनकी दोनो भुजाए लववत घुटनो तक प्रसारित होती हैं। यह मुद्रा केवल जिनो के मूर्त अकन मे ही प्रयुक्त हुई है।

६ जायसवाल, के० पी०, पू०नि०, पृ० १३१

उडीसा की उदयगिरि-खण्डगिरि पहाडियो की रानी गुफा, गणेश गुफा, हाथी गुफा एव अनन्त गुफा मे ई० पू० की दूसरी-पहली शती के जैन कलावशेष हैं।[1] इन गुफाओ मे वर्धमानक, स्वस्तिक एव त्रिरत्न जैसे जैन प्रतीक चित्रित हैं। रानी एव गणेश गुफाओ मे अकित दृश्यो की पहचान सामान्यत पार्श्व के जीवन-दृश्यो से की गई है।[2] वी० एस० अग्रवाल इसे वासवदत्ता और शकुन्तला की कथा का चित्रण मानते हैं।[3]

ल० दूसरी-पहली शती ई० पू० की पार्श्वनाथ की एक कास्य मूर्ति प्रिंस ऑव वेल्स सग्रहालय, बम्बई मे सुरक्षित है[4] जिसमे मस्तक पर पाच सर्पफणो के छत्र से युक्त पार्श्व निर्वस्त्र और कायोत्सर्ग-मुद्रा मे खडे हैं।[5] ल० पहली शती ई०पू० की एक पार्श्वनाथ मूर्ति बक्सर (भोजपुर, बिहार) के चौसा ग्राम से भी मिली है, जो पटना सग्रहालय (६५३१) मे सगृहीत है।[6] मूर्ति मे पार्श्व सात सर्पफणो के छत्र से शोभित और उपर्युक्त मूर्ति के समान ही निर्वस्त्र एव कायोत्सर्ग-मुद्रा में हैं। इन प्रारम्भिक मूर्तियो मे वक्ष स्थल मे श्रीवत्स चिह्न नहीं उत्कीर्ण है।[7] जिन मूर्तियो के वक्ष स्थल पर श्रीवत्स चिह्न का उत्कीर्णन ल० पहली शती ई०पू० मे मथुरा मे ही प्रारम्भ हुआ। लगभग इसी समय मथुरा मे जिनो के निरूपण मे ध्यानमुद्रा भी प्रदर्शित हुई।

चौसा से शुगकालीन धर्मचक्र एव कल्पवृक्ष के चित्रण भी मिले है, जो पटना सग्रहालय (६५४०, ६५५०) मे सुरक्षित हैं।[8] यू० पी० शाह इन अवशेषो को कुषाणकालीन मानते हैं।[9] इन प्रतीको से मथुरा के समान ही चौसा मे भी शुग-कुषाणकाल मे प्रतीक पूजन की लोकप्रियता सिद्ध होती है।

कुषाण काल

चौसा—चौसा से नौ कुषाणकालीन जिन मूर्तिया मिली हैं, जो पटना सग्रहालय मे हैं। इनमे से ६ उदाहरणो मे जिनों की पहचान सम्भव नही है। दो उदाहरणो मे लटकती जटा (६५३८, ६५३९) एव एक मे सात सर्पफणो के छत्र (६५३३) के आधार पर जिनो की पहचान क्रमश ऋषभ और पार्श्व से की गई है।[10] सभी जिन मूर्तिया निर्वस्त्र और कायोत्सर्ग-मुद्रा मे हैं।

मथुरा—साहित्यिक और आभिलेखिक साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि मथुरा का ककाली टीला एक प्राचीन जैन स्तूप था।[11] ककाली टीले से एक विशाल जैन स्तूप के अवशेष और विपुल शिल्प सामग्री मिली है।[12] यह शिल्प सामग्री

---

१ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, लिस्ट ऑव ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्राविन्स ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा कलकत्ता, १९३१, पृ० २४७ २ स्ट०जै०आ०, पृ० ७–८

३ अग्रवाल, वी० एस०, 'वासवदत्ता ऐण्ड शकुन्तला सीन्स इन दि रानीगुफा केव इन उडीसा', ज०इं०सो०ओ०आ०, ख० १४, १९४६, पृ० १०२–१०९ ४ स्ट०जै०आ०, पृ० ८–९

५ शाह, यू० पी०, 'एन अर्ली ब्रोन्ज इमेज ऑव पार्श्वनाथ इन दि प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम, बबई', बु०प्रिं०वे०-म्यू०वे०इ०, अं० ३, १९५२–५३, पृ० ६३–६५

६ प्रसाद, एच० के०, 'जैन ब्रोन्जेज इन दि पटना म्यूजियम', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बबई, १९६८, पृ० २७५–८०, शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, बबई, १९५९, फलक १ बी

७ वक्ष स्थल में श्रीवत्स चिह्न का उत्कीर्णन जिन मूर्तियो की अभिन्न विशेषता है।

८ प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २८० - चौसा से कुषाण एव गुप्तकाल की मूर्तिया भी मिली हैं।

९ शाह, यू० पी०, पू०नि०, फलक ३ १० प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २८०–८२

११ विविधतीर्थकल्प, पृ० १७, स्मिथ, वी० ए०, दि जैन स्तूप ऐण्ड अदर एन्टिक्विटीज ऑव मथुरा, वाराणसी, १९६९, पृ० १२–१३

१२ कनिंघम, ए०, आ०स०इ०रि०, १८७१–७२, ख० ३, वाराणसी, १९६६ (पु०मु०), पृ० ४५–४६

ल० १५० ई० पू० से १०२३ ई० के मध्य की है।[1] इस प्रकार मथुरा की जैन मूर्तिया आरम्भ से मध्ययुग तक के प्रतिमाविज्ञान की विकास शृङ्खला उपस्थित करती हैं। मथुरा की शिल्प सामग्री मे आयागपट (चित्र ३), जिन मूर्तिया, सर्वतोभद्रिका प्रतिमा (चित्र ६६), जिनो के जीवन से सम्बन्धित दृश्य (चित्र १२, ३९) एव कुछ अन्य मूर्तिया प्रमुख हैं।[2]

आयागपट—आयागपट मथुरा की प्राचीनतम जैन शिल्प सामग्री है। इनका निर्माण शुग-कुषाण युग मे प्रारम्भ हुआ। मथुरा के अतिरिक्त और कही से आयागपटो के उदाहरण नही मिले हैं। मथुरा मे भी कुषाण युग के बाद इनका निर्माण बन्द हो गया। आयागपट वर्गाकार प्रस्तर पट्ट हैं जिन्हे लेखो मे आयागपट या पूजाशिलापट कहा गया है। आयागपट जिनो (अर्हतो) के पूजन के लिए स्थापित किये गये थे।[3] एक आयागपट के महावीर के पूजन के लिए स्थापित किये जाने का उल्लेख है।[4] आयागपट उस सक्रमण काल की शिल्प सामग्री हैं जब उपास्य देवो का पूजन प्रतीक और मानवरूप मे साथ-साथ हो रहा था।[5] आयागपटो पर जैन प्रतीक या प्रतीको के साथ जिन मूर्ति भी उत्कीर्ण है। आयागपटो की जिन मूर्तिया श्रीवत्स से युक्त और ध्यानमुद्रा मे निरूपित हैं। एक उदाहरण (राज्य सग्रहालय, लखनऊ–जे २५३) मे मध्य मे सप्त सर्पफणो के छत्र से युक्त पार्श्वनाथ हैं।

मथुरा से कम से कम १० आयागपट मिले है (चित्र ३)।[6] इनमे अमोहिनि (राज्य सग्रहालय, लखनऊ–जे १) एव स्तूप (राज्य संग्रहालय, लखनऊ–जे २५५) का चित्रण करने वाले पट प्राचीनतम हैं।[7] दो आयागपटो पर स्तूप[8] एव अन्य पर पद्म, धर्मचक्र, स्वस्तिक, श्रीवत्स, त्रिरत्न, मत्स्ययुगल, वैजयन्ती, मगलकलश, भद्रासन, रत्नपात्र, देवगृह जैसे मागलिक चिह्न उत्कीर्ण है।

अमोहिनि द्वारा स्थापित आर्यवती पट[9] पर आर्यवती देवी (?) निरूपित है। लेख मे 'नमो अर्हतो वर्धमानस' उत्कीर्ण है। छत्र से शोभित आर्यवती देवी की वाम भुजा कटि पर है और दक्षिण अभयमुद्रा मे है। यू०पी० शाह ने लेख मे आये वर्धमान नाम के आधार पर आकृति की पहचान वर्धमान की माता से की है।[10] आर्यवती की पहचान कल्पसूत्र की आर्य यक्षिणी[11] और भगवतीसूत्र की अज्जा या आर्या देवी[12] से भी की जा सकती है। हरिवशपुराण मे महाविद्याओ की सूची मे भी आर्यवती का नामोल्लेख है।[13] ल्यूजे-डे-ल्यू ने आर्यवती शब्द को आयागपट का समानार्थी माना है।[14]

जिन मूर्तिया—मथुरा की कुषाण कला मे जिनो को चार प्रकार से अभिव्यक्ति मिली है। ये अकन आयागपटो पर ध्यान-मुद्रा मे, जिन चौमुखी (सर्वतोभद्रिका) मूर्तियो मे कायोत्सर्ग-मुद्रा मे[15], स्वतन्त्र मूर्तियो के रूप मे, और जीवन-दृश्यो

---

१ स्ट०जै०आ०, पृ० ९

२ मथुरा की जैन मूर्तियो का अधिकाश भाग राज्य सग्रहालय, लखनऊ एव पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा मे सुरक्षित हैं।

३ एपि०इण्डि०, ख० २, पृ० ३१४

४ स्मिथ, वी० ए०, पू०नि०, पृ० १५, फलक ८

५ शर्मा, आर०सी०, 'प्रि-कनिष्क बुद्धिस्ट आइकानोग्राफी ऐट मथुरा', आर्किअलाजिकल काग्रेस ऐण्ड सेमिनार पेपर्स, नागपुर, १९७२, पृ० १९३–९४

६ मथुरा से प्राप्त तीन आयागपट क्रमश पटना सग्रहालय, राष्ट्रीय सग्रहालय, दिल्ली एव बुडापेस्ट (हगरी) सग्रहालय मे सुरक्षित है। अन्य आयागपट पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा एव राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे है।

७ स्मिथ, वी०ए०, पू०नि०, पृ० १९, २१

८ पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा-क्यू २, राज्य सग्रहालय, लखनऊ-जे २५५

९ ल्यूजे-डे-ल्यू, जे०ई० वान, दि सीथियन पिरियड, लिडेन, १९४९, पृ० १४७, स्मिथ, वी०ए०, पू०नि०, पृ० २१, फलक १४, एपि०इण्डि०, ख० २, पृ० १९९, लेख स० २

१० स्ट०जै०आ०, पृ० ७९

११ कल्पसूत्र १६६

१२ भगवतीसूत्र ३ १ १३४

१३ हरिवंशपुराण २२ ६१–६६

१४ ल्यूजे-डे-ल्यू, जे०ई०वान, पू०नि०, पृ० १४७

१५ जिन चौमुखी के १० से अधिक उदाहरण राज्य सग्रहालय, लखनऊ और पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा मे हैं।

के अकन के रूप मे है। आयागपटो की जिन मूर्तियों का उल्लेख आयागपटो के अध्ययन मे किया जा चुका है। अत्र शेष तीन प्रकार के जिन अकनो का उल्लेख किया जायगा।

प्रतिमा-सर्वतोभद्रिका या जिन चौमुखी—मथुरा मे जिन चौमुखी मूर्तियो का उत्कीर्णन पहली-दूसरी शती ई० मे विशेष लोकप्रिय था (चित्र ६६)। लेखो मे ऐसी मूर्तियो को 'प्रतिमा सर्वतोभद्रिका',[1] 'सर्वतोभद्र प्रतिमा',[2] 'शवदोभद्रिक'[3] एव 'चतुर्विम्ब'[4] कहा गया है। प्रतिमा–सर्वतोभद्रिका या सर्वतोभद्र-प्रतिमा ऐसी मूर्ति है जो सभी ओर से शुभ या मगलकारी है।[5] इन मूर्तियो मे चारो दिशाओ मे कायोत्सर्ग-मुद्रा मे चार जिन आकृतिया उत्कीर्ण रहती हैं। इन चार मे से केवल दो ही जिनो की पहचान सम्भव है। ये जिन लटकती केशावलियो एव सप्त सर्पफणो के छत्र से युक्त ऋषभ और पार्श्व हैं। गुप्त युग मे जिन चौमुखी की लोकप्रियता कम हो गई थी।

स्वतन्त्र जिन मूर्तिया—मथुरा की कुषाणकालीन जिन मूर्तिया सवत् ५ से स० ९५ (८३–१७३ ई०) के मध्य की हैं (चित्र १६, ३०, ३४)। श्रीवत्स से युक्त जिन या तो कायोत्सर्ग-मुद्रा मे खडे हैं या ध्यानमुद्रा मे आसीन हैं।[6] इनके साथ अष्ट-प्रातिहार्यो मे से केवल ६ प्रातिहार्य–सिंहासन[7], भामण्डल[8], चैत्य वृक्ष, चामरधर सेवक, उड्डीयमान मालाधर एव छत्र उत्कीर्ण हैं। इनमे भी सिंहासन, भामण्डल एव चैत्यवृक्ष का ही चित्रण नियमित है। सभी आठ प्रातिहार्य गुप्त युग के अन्त मे निरूपित हुए।[9]

ध्यानमुद्रा मे आसीन मूर्तियो मे पार्श्ववर्ती चामरधर सेवक सामान्यत नही उत्कीर्ण हैं। कुछ उदाहरणो मे चामरधरो के स्थान पर दानकर्ताओ (राज्य सग्रहालय, लखनऊ-जे ८, १९) या जैन साधुओ की आकृतिया बनी है। जिनो के केश गुच्छको के रूप मे हैं या पीछे की ओर सवारे हैं, या फिर मुण्डित हैं। सिंहासन के मध्य मे हाथ जोड या पुष्प लिये हुए साधु-साध्वियो, श्रावक-श्राविकाओ एव बालको की आकृतियो से वेष्टित धर्मचक्र उत्कीर्ण है। जिनो की हथेलियो, तलुओ एव उगलियो पर त्रिरत्न, धर्मचक्र, स्वस्तिक और श्रीवत्स जैसे मगल-चिह्न बने है। सभी जिन मूर्तिया निर्वस्त्र हैं।[10]

इन मूर्तियो मे लटकती जटाओ और सप्त सर्पफणो के छत्र के आधार पर क्रमश ऋषभ[11] और पार्श्व की पहचान सम्भव है (चित्र ३०)। मथुरा से इन्ही दो जिनो की सर्वाधिक कुषाणकालीन मूर्तिया मिली है। बलराम-कृष्ण की पार्श्ववर्ती आकृतियो के आधार पर कुछ मूर्तियो (राज्य सग्रहालय, लखनऊ-जे ४७, ६०, ११७) की पहचान नेमि से की गई है।[12]

---

१ एपि०इण्डि०, खं० १, पृ० ३८२, लेख स० २, ख० २, पृ० २०३, लेख स० १६
२ वही, ख० २, पृ० २०२, लेख स० १३ ३ वही, ख० २, पृ० २०९–१०, लेख स० ३७
४ वही, ख० २, पृ० २११, लेख स० ४१
५ वही, ख० २, पृ० २०२–०३, २१०, भट्टाचार्य, बी०सी०, **दि जैन आइकानोग्राफी**, लाहौर, १९३९, पृ० ४८, अग्रवाल, वी०एस०, **मथुरा म्यूजियम केटलाग**, भाग ३, वाराणसी, १९६३, पृ० २७
६ ध्यानमुद्रा मे आसीन जिन मूर्तिया तुलनात्मक दृष्टि से अधिक हैं।
७ कुछ कायोत्सर्ग मूर्तियो (राज्य सग्रहालय, लखनऊ-जे २, ८) मे सिंहासन नही उत्कीर्ण है।
८ भामण्डल हस्तिनख (या अर्धचन्द्रावलि) एव पूर्ण विकसित पद्म के अलकरण से युक्त है।
९ शाह, यू०पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, अ० ९, पृ० ६
१० महावीर के गर्भापहरण का दृश्याकन जिसका उल्लेख केवल श्वेताम्बर परम्परा मे ही हुआ है (राज्य सग्रहालय, लखनऊ-जे ६२६), एव कुछ नग्न साधु आकृतियो (राज्य सग्रहालय, लखनऊ-जे १७५) की भुजा मे वस्त्र का प्रदर्शन मथुरा की कुषाणकला मे श्वेताम्बरो और दिगम्बरो के सहअस्तित्व के सूचक हैं।
११ लटकती जटा मे युक्त दो मूर्तियो (राज्य सग्रहालय, लखनऊ-जे २६, ६९) मे ऋषभ का नाम भी उत्कीर्ण है।
१२ श्रीवास्तव, वी० एन०, पू०नि०, पृ० ४९–५२

एक मूर्ति (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ८) में 'अरिष्टनेमि' का नाम भी उत्कीर्ण है। संभव,[1] मुनिसुव्रत[2] एवं महावीर[3] की पहचान पीठिका लेखों में उत्कीर्ण नामों से हुई है (चित्र ३४)। इस प्रकार मथुरा की कुषाण कला में ऋषभ, संभव, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व एवं महावीर की मूर्तियां निर्मित हुईं।

जिनों के जीवनदृश्य—कुषाण काल में जिनों के जीवनदृश्य भी उत्कीर्ण हुए। राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सुरक्षित एक पट्ट (जे ६२६) पर महावीर के गर्भापहरण का दृश्य है (चित्र ३९)।[4] राज्य संग्रहालय, लखनऊ के एक अन्य पट्ट (जे ३५४) पर इन्द्र सभा की नर्तकी नीलांजना ऋषभ के समक्ष नृत्य कर रही है (चित्र १२)। ज्ञातव्य है कि नीलांजना के नृत्य के कारण ही ऋषभ को वैराग्य उत्पन्न हुआ था।[5] राज्य संग्रहालय, लखनऊ के एक और पट्ट (बी २०७) पर स्तूप और जिन मूर्ति के पूजन का दृश्य उत्कीर्ण है।[6]

सरस्वती एवं नैगमेषी मूर्तियां—सरस्वती की प्राचीनतम मूर्ति (१३२ ई०) जैन परम्परा की है और मथुरा (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे २४) से मिली है।[7] द्विभुज देवी की वाम भुजा में पुस्तक है और अभयमुद्रा प्रदर्शित करती दक्षिण भुजा में अक्षमाला है।[8] अजमुख नैगमेषी एवं उसकी शक्ति की ६ से अधिक मूर्तियां मिली हैं। लम्बे हार से सज्जित देवता की गोद में या कन्धों पर बालक प्रदर्शित हैं। एक पट्ट (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ६२३) पर सम्भवतः कृष्ण वासुदेव के जीवन का कोई दृश्य उत्कीर्ण है।[9] पट्ट पर ऊपर की ओर एक स्तूप और चार ध्यानस्थ जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इनमें एक जिन मूर्ति पार्श्वनाथ की है। नीचे, दाहिनी भुजा से अभयमुद्रा व्यक्त करती एक स्त्री आकृति खड़ी है जिसे लेख में 'अनघश्रेष्ठी विद्या' कहा गया है। बायीं ओर की साधु आकृति को लेख में 'कण्ह श्रमण' कहा गया है जिसके समीप नमस्कार मुद्रा में सात सर्पफणों के छत्र से युक्त एक पुरुष आकृति चित्रित है। **अंतगड्दसाओ** में कृष्ण का 'कण्ह वासुदेव' के नाम से उल्लेख है। साथ ही यह भी उल्लेख है कि कण्ह वासुदेव ने दीक्षा ली थी।[10] पट्ट की कण्ह श्रमण की आकृति दीक्षा ग्रहण करने के बाद कृष्ण का अंकन है। समीप की सात सर्पफणों के छत्र वाली आकृति बलराम की हो सकती है।

गुजरात की जूनागढ़ गुफा (ल० दूसरी शती ई०) में मंगलकलश, श्रीवत्स, स्वस्तिक, भद्रासन, मत्स्ययुगल आदि मांगलिक चिह्न उत्कीर्ण हैं।[11]

गुप्तकाल

गुप्तकाल में जैन मूर्तियों की प्राप्ति का क्षेत्र कुछ विस्तृत हो गया। कुषाणकालीन कलावशेष जहां केवल मथुरा एवं चौसा से ही मिले हैं, वहीं गुप्तकाल की जैन मूर्तियां मथुरा एवं चौसा के अतिरिक्त राजगिर, विदिशा, उदयगिरि, अकोटा, कहौम और वाराणसी से भी मिली हैं। कुषाणकाल की तुलना में मथुरा में गुप्तकाल में कम जैन मूर्तियां उत्कीर्ण

---

१ १२६ ई० की एक मूर्ति (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे १९) में संभवनाथ का नाम उत्कीर्ण है।

२ १५७ ई० की एक मूर्ति (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे २०) 'अर्हत नन्द्यावर्त' को समर्पित है। के० डी० वाजपेयी ने इसकी पहचान मुनिसुव्रत से की है। फ्यूरर ने नन्द्यावर्त को प्रतीक का सूचक मानकर जिन की पहचान अरनाथ से की है—शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ७, स्मिथ, वी० ए०, पू०नि०, पृ० १२-१३

३ छ उदाहरणों में 'वर्धमान' का नाम उत्कीर्ण है। एक उदाहरण (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे २) में 'महावीर' का नाम भी उत्कीर्ण है।

४ ब्यूह्लर, जी०, 'स्पेसिमेन्स ऑव जैन स्कल्पचर्स फ्राम मथुरा', एपि०इण्डि०, ख० २, पृ० ३१४-१८

५ **पउमचरिय** ३ १२२-२६

६ श्रीवास्तव, वी० एन०, पू०नि०, पृ० ४८-४९

७ वाजपेयी, के० डी०, 'जैन इमेज ऑव सरस्वती इन दि लखनऊ म्यूजियम', जैन एण्टि०, खं० ११, अं० २, पृ० १-४

८ अक्षमाला के केवल आठ ही मनके सम्प्रति अवशिष्ट हैं।

९ स्मिथ, वी० ए०, पू०नि०, पृ० २४, फलक १७, चित्र २

१० **अंतगड्दसाओ** (अनु० एल० डी० बर्नेट), पृ० ६१ और आगे

११ ह०जैं०आ०, पृ० १३

हुईं। इनमे कुपाणकालीन विषय वैविध्य का भी अभाव है। गुप्तकाल मे मथुरा मे केवल जिनो की स्वतन्त्र एव कुछ जिन चौमुखी मूर्तिया ही निर्मित हुईं। जिनो के साथ लाछनो[1] एव यक्ष-यक्षी युगलो[2] के निरूपण की परम्परा भी गुप्तयुग मे ही प्रारम्भ हुई।

मथुरा

मथुरा मे गुप्तकाल मे पार्श्व की अपेक्षा ऋषभ की अधिक मूर्तिया उत्कीर्ण हुईं। ऋषभ एव पार्श्व की पहचान पहले ही की तरह लटकती जटाओ एव सात सर्पफणो के छत्र के आधार पर की गई है। ऋषभ की जटाए पहले से अधिक लम्बी हो गईं (चित्र ४)। एक खण्डित मूर्ति (राज्य सग्रहालय, लखनऊ-जे ८९) मे दाहिनी ओर की वनमाला, तथा सर्पफणो एव हल से युक्त बलराम की मूर्ति के आधार पर जिन की पहचान नेमि से की गई है। एक दूसरी नेमि मूर्ति मे भी (राज्य सग्रहालय, लखनऊ-जे १२१) बलराम एव कृष्ण आमूर्तित हैं (चित्र २५)।[3] इस प्रकार गुप्तकाल मे मथुरा मे केवल ऋषभ, नेमि और पार्श्व की ही मूर्तिया उत्कीर्ण हुईं। पीठिका लेखो मे जिनो के नामोल्लेख की कुपाणकालीन परम्परा गुप्तकाल मे समाप्त हो गई। जिन मूर्तिया निर्वस्त्र हैं। जिनो की ध्यानस्थ मूर्तिया तुलनात्मक दृष्टि से सख्या में अधिक है। गुप्तकाल मे पार्श्ववर्ती चामरधर सेवको एव उड्डीयमान मालाधरो के चित्रण मे नियमितता आ गई। अष्ट-प्रातिहार्यों मे त्रिछत्र[4] एव दिव्यध्वनि के अतिरिक्त अन्य का नियमित चित्रण होने लगा। प्रभामण्डल के अलकरण पर विशेष ध्यान दिया गया।[5] पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा (बी ६८) मे एक जिन चौमुखी भी सुरक्षित है। गुप्तकालीन जिन चौमुखी का यह अकेला उदाहरण है। कुषाणकालीन चौमुखी मूर्ति के समान ही यहा भी केवल ऋषभ एव पार्श्व की ही पहचान सम्भव है।

राजगिर

राजगिर (बिहार) से ल० चौथी शती ई० की चार जिन मूर्तिया मिली है। एक मूर्ति की पीठिका पर गुप्त लिपि मे लिखे एक लेख मे चन्द्रगुप्त (द्वितीय) का नाम है।[6] ध्यानमुद्रा मे सिंहासन पर विराजमान जिन की पीठिका के मध्य मे चक्रपुरुष और उसके दोनो ओर शंख उत्कीर्ण हैं। शख नेमि का लाछन है। अत मूर्ति नेमि की है। जिन-लाछन का प्रदर्शन करने वाली यह प्राचीनतम ज्ञात मूर्ति है। शख लाछन के समीप ही ध्यानस्थ जिनो की दो लघु मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं।[7] राजगिर की तीन अन्य मूर्तियो मे जिन कायोत्सर्ग मे निर्वस्त्र खडे हैं।[8]

विदिशा

विदिशा (म० प्र०) से तीन गुप्तकालीन जिन मूर्तिया मिली है, जो सम्प्रति विदिशा सग्रहालय मे हैं।[9] इन मूर्तियो के पीठिका-लेखो मे महाराजाधिराज रामगुप्त का उल्लेख है जो सम्भवत गुप्त शासक था। मूर्तियो की निर्माण शैली, लेख की लिपि एवम् 'महाराजाधिराज' उपाधि के साथ रामगुप्त का नामोल्लेख मूर्तियो के चौथी शती ई० मे निर्मित होने के समर्थक प्रमाण हैं। ध्यानमुद्रा मे सिंहासन पर आसीन जिन आकृतिया पार्श्ववर्ती चामरधरो से वेष्टित हैं। दो मूर्तियो के पीठिका-लेखो मे उनके नाम (पुष्पदन्त एव चन्द्रप्रभ) उत्कीर्ण है। इन मूर्ति लेखो से स्पष्ट है कि पीठिका लेखो

---

१ राजगिर की नेमिनाथ एव भारत कला भवन, वाराणसी (१६१) की महावीर मूर्तिया

२ अकोटा की ऋषभनाथ मूर्ति ३ श्रीवास्तव, वी० एन०, पू०नि०, पृ० ४९-५२

४ केवल राजगिर की एक जिन मूर्ति मे त्रिछत्र उत्कीर्ण है—स्ट०जै०आ०, चित्र ३३

५ इसमे हस्तिनख की पक्ति, विकसित पद्म, पुष्पलता, पद्मकलिकाए, मनके एव रज्जु आदि अभिप्राय प्रदर्शित है।

६ चन्दा, आर० पी०, 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', आ०स०इ०ऐ०रि०, १९२५–२६, पृ० १२५–२६, फलक ५६, चित्र ६

७ सिंहासन छोरो या धर्मचक्र के दोनो ओर दो ध्यानस्थ जिनो के चित्रण गुप्तकालीन मूर्तियो मे लोकप्रिय थे।

८ चन्दा, आर० पी०, पू०नि०, पृ० १२६, स्ट०जै०आ०, पृ० १४

९ अग्रवाल, आर० सी०, 'न्यूली डिस्कवर्ड स्कल्पचर्स फ्राम विदिशा', ज०ओ०इ०, ख १८, अ० ३, पृ० २५२–५३

मे जिनो के नामोल्लेख की कुषाणकालीन परम्परा गुप्त युग मे मथुरा मे तो नही, पर विदिशा मे अवश्य लोकप्रिय थी। मध्य प्रदेश के सिरा पहाडी (पन्ना जिला)[1] एवं वेसनगर (ग्वालियर)[2] से भी कुछ गुप्तकालीन जिन मूर्तिया मिली है।

कहौम

कहौम (देवरिया, उ० प्र०) के ४६१ ई० के एक स्तम्भ लेख मे पाच जिन मूर्तियो के स्थापित किये जाने का उल्लेख है।[3] स्तम्भ की पाच कायोत्सर्ग एवं दिगम्बर जिन मूर्तियो की पहचान ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व एव महावीर से की गई है।[4] सीतापुर (उ० प्र०) से भी एक जिन मूर्ति मिली है।[5]

वाराणसी

वाराणसी से मिलो ल० छठी शती ई० की एक ध्यानस्थ महावीर मूर्ति भारत कला भवन, वाराणसी (१६१) मे सगृहीत है (चित्र ३५)।[6] राजगिर को नेमि मूर्ति के समान ही इसमे भी धर्मचक्र के दोनो ओर महावीर के सिंह लाछन उत्कीर्ण हैं। वाराणसी से मिली और राज्य सग्रहालय, लखनऊ (४९-१९९) मे सुरक्षित ल० छठी-सातवी शती ई० की एक अजितनाथ की मूर्ति मे भी पीठिका पर गज लाछन की दो आकृतिया उत्कीर्ण हैं।[7]

अकोटा

अकोटा (बडौदा, गुजरात) से चार गुप्तकालीन कास्य मूर्तिया मिली है।[8] पाचवी-छठी शती ई० की इन श्वेतावर मूर्तियो में दो ऋषभ की और दो जीवन्तस्वामी महावीर की हैं (चित्र ५, ३६)। सभी मे मूलनायक कायोत्सर्ग मे खडे हैं। एक ऋषभ मूर्ति मे धर्मचक्र के दोनो ओर दो मृग और पीठिका छोरो पर यक्ष-यक्षी निरूपित है।[9] यक्ष-यक्षी के निरूपण का यह प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण है। द्विभुज यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं।[10] खेड्ब्रह्मा एव वलभो से भी छठी शती ई० की कुछ जैन मूर्तिया मिली हैं।[11]

चौसा

चौसा से ६ गुप्तकालीन जिन मूर्तिया मिली हैं, जो सम्प्रति पटना सग्रहालय मे हैं।[12] दो उदाहरणो मे (पटना सग्रहालय ६५५३, ६५५४) लटकती केश वल्लरियो से युक्त जिन ऋषभ है। दो अन्य जिनो (पटना सग्रहालय ६५५१,

---

१ वाजपेयी, के० डी०, 'मध्यप्रदेश की प्राचीन जैन कला', अनेकान्त, वर्ष १७, अ० ३, पृ० ११५-१६

२ स्ट०जै०आ०, पृ० १४

३ का०इ०इ०, खं० ३, पृ० ६५-६८

४ शाह, सी० जे०, जैनिज्म इन नार्थ इण्डिया, लन्दन, १९३२, पृ० २०९

५ निगम, एम० एल०, 'ग्लिम्प्सेस ऑव जैनिज़्म थ्रू आर्किअलाजी इन उत्तर प्रदेश', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बबई, १९६८, पृ० २१८

६ शाह, यू० पी०, 'ए फ्यू जैन इमेजेज इन दि भारत कला भवन, वाराणसी', छवि, पृ० २३४, तिवारी, एम० एन० पी०, 'ऐन अनपब्लिश्ड जिन इमेज इन दि भारत कला भवन, वाराणसी', वि०इ०ज०, ख० १३, अ० १-२, पृ० ३७३-७५

७ शर्मा, आर० सी०, 'जैन स्कल्पचर्स ऑव दि गुप्त एज इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बम्बई, १९६८, पृ० १५५

८ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, बम्बई, १९५९, पृ० २६-२९-अकोटा की जैन मूर्तिया श्वेताम्बर परम्परा की प्राचीनतम जैन मूर्तिया हैं।

९ वही, पृ० २८-२९, फलक १० ए, बी०, ११

१० देवताओ के आयुधो की गणना यहा एव अन्यत्र निचली दाहिनी भुजा से प्रारम्भ कर घडी की सुई की गति के अनुसार की गई है।

११ स्ट०जै०आ०, पृ० १६-१७

१२ प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २८२-८३

६५५२) की पहचान एच० के० प्रसाद ने भामण्डल के ऊपर अंकित अर्धचन्द्र के आधार पर चन्द्रप्रभ से की है[1] जो दो कारणो से ठीक नही प्रतीत होती। प्रथम, शीर्षभाग मे जिन-लाञ्छन के अकन की परम्परा अन्यत्र कही नहीं प्राप्त होती। दूसरे, जिनो के साथ लटकती जटाए प्रदर्शित हैं जो उनके ऋषभ होने की सूचक है।

गुप्तोत्तर काल

राजघाट (वाराणसी) से ल० सातवी शती ई० की एक ध्यानस्थ जिन मूर्ति मिली है, जो भारत कला भवन, वाराणसी (२१२) मे सगृहीत है (चित्र २६)।[2] मूर्ति के सिंहासन के नीचे एक वृक्ष (कल्पवृक्ष) उत्कीर्ण है जिसके दोनो ओर द्विभुज यक्ष-यक्षी की मूर्तिया हैं। वाम भुजा मे बालक से युक्त यक्षी अम्बिका है।[3] यक्षी अम्बिका की उपस्थिति के आधार पर जिन की सम्भावित पहचान नेमि से की जा सकती है। देवगढ के मन्दिर २० के समीप से ल० सातवीं शती ई० की एक जिन मूर्ति मिली है।[4] राजस्थान के सिरोही जिले के वसतगढ, नदिय मन्दिर (महावीर मन्दिर) एवं भटेवा (पार्श्व मूर्ति) से भी सातवी शती ई० की जैन मूर्तिया मिली हैं। रोहतक (दिल्ली के समीप) से मिली पार्श्व की श्वेताम्बर मूर्ति भी ल० सातवी शती ई० की है।[5]

(२)

मध्य-युग (ल० ८वीं शती ई० से १२वीं शती ई० तक)

द्वितीय अध्याय के समान प्रस्तुत अध्याय मे भी जैन मूर्ति अवशेषो का अध्ययन आधुनिक राज्यों के अनुसार किया गया है।

गुजरात

गुजरात के सभी क्षेत्रो मे जैन स्थापत्य एव मूर्तिविज्ञान के अवशेष प्राप्त होते हैं। कुम्भारिया एवं तारगा के जैन मन्दिरो की शिल्प सामग्री प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्व की है। गुजरात की जैन शिल्प सामग्री श्वेताम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। दिगम्बर मूर्तिया केवल धाक से ही मिली हैं। गुजरात की जैन मूर्तियों मे जिन मूर्तियो की सख्या सबसे अधिक है। ऋषभ एव पार्श्व की मूर्तिया सर्वाधिक है। मन्दिरो मे २४ देवकुलिकाओ को सयुक्त करने की परम्परा थी जो निश्चित ही २४ जिनो की अवधारणा से प्रभावित थी। जिनो के जीवनदृश्यो एव समवसरणो का चित्रण विशेष लोकप्रिय था। जिनो के बाद लोकप्रियता के क्रम मे महाविद्याओ का दूसरा स्थान है। यक्ष-यक्षी युगलो मे सर्वानुभूति एव अम्बिका सर्वाधिक लोकप्रिय थे। अधिकाश जिनो के साथ यही यक्ष-यक्षी युगल निरूपित है। गोमुख-चक्रेश्वरी एव धरणेन्द्र-पद्मावती यक्ष-यक्षी युगलो की भी कुछ मूर्तिया मिली हैं। सरस्वती, शान्तिदेवी, ब्रह्मशान्ति यक्ष, गणेश (चित्र ७७) अष्ट-दिक्पाल, क्षेत्रपाल एव २४ जिनो के माता-पिता की भी मूर्तिया प्राप्त हुई हैं।

धाक (सौराष्ट्र) की जैन गुफाओ मे ल० आठवी शती ई० की ऋषभ, शान्ति, पार्श्व एव महावीर जिनो की दिगम्बर मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।[6] पार्श्व के साथ यक्ष-यक्षी कुबेर एव अम्बिका हैं।[7] अकोटा की जैन कास्य मूर्तियो (ल० छठी

---

१ वही, पृ० २८३

२ तिवारी, एम० एन० पी०, 'ए नोट आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ए तीर्थंकर इमेज ऐट भारत कला भवन, वाराणसी', जैन जर्नल, ख० ६, अ० १, पृ० ४१-४३

३ अम्बिका की भुजा मे आम्रलुम्बि नही प्रदर्शित है। ज्ञातव्य है कि अम्बिका की भुजा मे आम्रलुम्बि ८ वी-९ वी शती ई० की कुछ अन्य मूर्तियो मे भी नही प्रदर्शित है।

४ जि०इ०दे०, पृ० ५२

५ स्ट०जै०आ०, पृ० १६-१७, ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० २९३

६ सकलिया, एच०डी०,'दि अर्लिएस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड',ज०रा०ए०सो०,जुलाई १९३८, पृ० ४२६-३०

७ स्ट०जै०आ०, पृ० १७

मे ११ वीं शती ई०) मे ऋषभ एव पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तिया हैं। अकोटा से अम्बिका, सर्वानुभूति, सरस्वती एवं अच्छुप्ता विद्या की भी मूर्तिया मिली हैं।[1] थान (सौराष्ट्र) मे दसवी-ग्यारहवी शती ई० के दो जैन मन्दिर एव जिन और अम्बिका की मूर्तिया हैं। घोघा (भावनगर) से ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की कई जैन मूर्तिया मिली हैं।[2] अहमदाबाद से भी कुछ जैन मूर्तिया मिली है जिनमे थराद (थारापद्र) की १०५३ ई० की अजित मूर्ति मुख्य है।[3] वड्नगर और सेजकपुर मे दसवी-ग्यारहवी शती ई० के जैन मन्दिर हैं। कुंभारिया एव तारगा मे ग्यारहवी से तेरहवी शती ई० के जैन मन्दिर हैं, जिनकी शिल्प सामग्री का यहा कुछ विस्तार से उल्लेख किया जायगा। गिरनार एव शत्रुंजय पहाडियो पर कुमारपाल के काल के नेमिनाथ एवं आदिनाथ मन्दिर हैं। भद्रेश्वर (कच्छ) मे जगडु शाह के काल का बारहवी शती ई० का एक जैन मन्दिर है।

कुंभारिया

कुंभारिया गुजरात के बनासकाठा जिले मे स्थित है। यहा चौलुक्य शासको के काल के ५ श्वेताम्बर जैन मंदिर हैं। ये मन्दिर (११ वी–१३ वी शती ई०) सम्भव, शान्ति, नेमि, पार्श्व एव महावीर को समर्पित हैं।[4] यहा महाविद्याओ, सरस्वती, महालक्ष्मी एव शान्तिदेवी का चित्रण सर्वाधिक लोकप्रिय था। महाविद्याओ मे रोहिणी, अप्रतिचक्रा, अच्छुप्ता एवं वैरोट्या सर्वाधिक, और मानवी, गान्धारी, काली, सर्वास्त्रमहाज्वाला एव मानसी अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय थी। सर्वानुभूति-अम्बिका सर्वाधिक लोकप्रिय यक्ष-यक्षी युगल था। गोमुख-चक्रेश्वरी एव धरणेन्द्र-पद्मावती की भी कुछ मूर्तिया है। इनके अतिरिक्त ब्रह्मशान्ति यक्ष, गणेश, जिनो के जीवनदृश्य और २४ जिनो के माता-पिता भी निरूपित हुए।[5] प्रत्येक मन्दिर की शिल्प सामग्री सक्षेप मे इस प्रकार है :

शान्तिनाथ मन्दिर—देवकुलिका ९ की जिन मूर्ति के वि० स० १११० (=१०५३ ई०) के लेख से शातिनाथ मन्दिर कुमारिया का सबसे प्राचीन मन्दिर सिद्ध होता है। पर इस मन्दिर की चार जिन मूर्तियो के वि० स० ११३३ के लेख के आधार पर इसे १०७७ ई० मे निर्मित माना गया है।[6] १६ देवकुलिकाओ और ८ रथिकाओ सहित मन्दिर चतुर्विंशति जिनालय है। अधिकाश देवकुलिकाओ की जिन मूर्तियो मे मूलनायक की मूर्ति खण्डित है। जिन मूर्तियो मे परिकर की आकृतियो एव यक्ष-यक्षी के चित्रण मे विविधता का अभाव और एकरसता दृष्टिगत होती है।

मूलनायक के पार्श्वों मे चामरधर सेवक या कायोत्सर्ग मे दो जिन आमूर्तित हैं। पार्श्ववर्ती जिन आकृतिया या तो लाछन रहित है, या फिर पाच और सात सर्पफणो के छत्र से युक्त सुपार्श्व और पार्श्व की हैं। परिकर मे भी कुछ लघु जिन आकृतिया उत्कीर्ण है। पार्श्ववर्ती आकृतियो के ऊपर वेणु और वीणा वादन करती दो आकृतिया हैं। मूलनायक के शीर्ष भाग मे त्रिछत्र, कलश और नमस्कार-मुद्रा मे एक मानव आकृति है। मानव आकृति के दोनो ओर वाद्य-वादन करती (मुख्यत दुन्दुभि) और गोमुख आकृतिया निरूपित है। परिकर मे दो गज भी उत्कीर्ण हैं जिनके शुण्ड मे कभी-कभी अभिषेक हेतु कलश प्रदर्शित हैं। सिहासन के मध्य मे चतुर्भुज शान्तिदेवी निरूपित हैं[7] जिसके दोनो ओर दो गज और सिंहासन की सूचक दो सिंह आकृतिया उत्कीर्ण हैं।[8] शान्तिदेवी की आकृति के नीचे दो मृगो से वेष्टित धर्मचक्र उत्कीर्ण है।[9]

---

१ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, पृ० ३०-३१, ३३-३४, ३६-३७, ४३, ४६, ४८, ४९, ५२

२ **इण्डियन आर्किअलाजी–ए रिव्यू**, १९६१-६२, पृ० ९७

३ मेहता, एन० सी०, 'ए मेडिवल जैन इमेज ऑव अजितनाथ–१०५३ ए० डी०', इण्डि०एन्टि०, ख०५६, पृ०७२-७४

४ तिवारी, एम०एन०पी०, 'ए ब्रीफ सर्वे ऑव दि आइकानोग्राफिक डेटा ऐट कुमारिया, नार्थ गुजरात', **संबोधि**, ख २, अ० १, पृ० ७–१४

५ जिनो के जीवनदृश्यो एव माता-पिता के सामूहिक अकन के प्राचीनतम उदाहरण कुमारिया मन्दिर मे हैं।

६ सोमपुरा, कान्तिलाल फूलचन्द, **दि स्ट्रक्चरल टेम्पल्स ऑव गुजरात**, अहमदाबाद, १९६८, पृ० १२९

७ शान्तिदेवी वरदमुद्रा, पद्म, पद्म (या पुस्तक) और फल (या कमण्डलु) से युक्त हैं।

८ खजुराहो की दो जिन मूर्तियो (मन्दिर १ और २) मे भी सिंहासन के मध्य मे शान्तिदेवी निरूपित हैं।

९ सिंहासन पर दो गजो, मृगो एव शान्तिदेवी, तथा परिकर मे वाद्य-वादन करती और गोमुख आकृतियो के **चित्रण** गुजरात-राजस्थान की श्वेताम्बर जिन मूर्तियो मे ही प्राप्त होते हैं।

मूर्तियो में सामान्यत जिनो के लाछन नही प्रदर्शित हैं। केवल लटकती जटाओ एव पाच और सात सर्पफणो के छत्रो के आधार पर क्रमश. ऋषभ, सुपार्श्व एव पार्श्व की पहचान सम्भव है। लाछनो के चित्रण के स्थान पर पीठिका लेखो मे जिनो के नामोल्लेख की परम्परा लोकप्रिय थी।[1] सिंहासन छोरो पर अधिकाशत यक्ष-यक्षी के रूप मे सर्वानुभूति एव अम्बिका आमूर्तित हैं। कुछ उदाहरणो मे ऋषभ एव पार्श्व के साथ पारम्परिक यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं। गुजरात-राजस्थान के अन्य क्षेत्रो की श्वेताम्बर जिन मूर्तियो मे भी यही सामान्य विशेषताए प्रदर्शित हैं। मन्दिर की भ्रमिका के वितानो पर जिनो के जीवनदृश्यो,मुख्यत पचकल्याणको के विशद चित्रण हैं। इनमे ऋषभ, अर (?)[2], शान्ति,नेमि,पार्श्व एव महावीर के जीवनदृश्य हैं (चित्र १४, २९, ४१)। दक्षिण-पूर्वी कोने की देवकुलिका मे १२०९ ई० का एक जिन समवसरण है। पश्चिमी भ्रमिका के वितान पर २४ जिनो के माता-पिता भी आमूर्तित हैं। आकृतियो के नीचे उनके नाम खुदे हैं। माता की गोद मे एक बालक (जिन) आकृति बैठी है। कुमारिया के महावीर मन्दिर के वितान पर भी जिनो के माता-पिता चित्रित हैं।

मन्दिर के विभिन्न भागो पर रोहिणी, वज्राकुशा, वज्रशृखला, अप्रतिचक्रा, पुरुषदत्ता, वैरोट्या, अच्छुप्ता, मानसी और महामानसी महाविद्याओ की अनेक मूर्तिया हैं। महाविद्या मानवी की एक भी मूर्ति नही है। पूर्वी भ्रमिका के वितान पर १६ महाविद्याओ का सामूहिक चित्रण है (चित्र ७८)। १६ महाविद्याओ के सामूहिक चित्रण का यह प्राचीनतम, और गुजरात के सन्दर्भ मे एकमात्र उदाहरण है।[3] ललितमुद्रा मे आसीन इन महाविद्याओ के साथ वाहन नही प्रदर्शित हैं। उनके निरूपण मे पारम्परिक क्रम का भी निर्वाह नही किया गया है। मानसी एव महामानसी के अतिरिक्त महाविद्या समूह की अन्य सभी आकृतियो की पहचान सम्भव है।

महाविद्याओ के अतिरिक्त सरस्वती[4] एव शान्तिदेवी[5] की भी कई मूर्तिया हैं। पश्चिमी शिखर के समीप द्विभुज अम्बिका की एक मूर्ति है। त्रिकमण्डप के वितान पर ब्रह्मशान्ति यक्ष, क्षेत्रपाल और अग्नि निरूपित हैं। त्रिकमण्डप के सोपान की दीवार पर भी ब्रह्मशान्ति यक्ष की एक मूर्ति है।[6] मन्दिर मे ऐसी भी दो देवियां है जिनकी पहचान सभव नहीं है। एक देवी की भुजाओ मे अकुश एव पाश है और वाहन गज या सिंह है। देवी सर्वानुभूति यक्ष की मूर्तिवैज्ञानिक विशेषताओ से प्रभावित प्रतीत होती है। दूसरी देवी की भुजाओ मे त्रिशूल एव सर्प है और वाहन वृषभ है।[7] देवी हिन्दू शिवा के लाक्षणिक स्वरूप से प्रभावित है। ये देविया न केवल कुमारिया वरन् गुजरात-राजस्थान के अन्य श्वेताम्बर स्थलो पर भी लोकप्रिय थी।

महावीर मदिर—१०६२ ई० का महावीर मन्दिर भी चतुर्विंशति जिनालय है।[8] देवकुलिकाओ की जिन मूर्तिया १०८२ ई० से ११२९ ई० के मध्य की हैं। देवकुलिका ७ और १५ की पाच और सात सर्पफणों के छत्रो से युक्त सुपार्श्व

---

१ पीठिका लेखों के आधार पर शान्ति (देवकुलिका १) और पद्मप्रभ (देवकुलिका ७) की पहचान सम्भव है।

२ अर के जीवनदृश्य की सम्भावित पहचान केवल लेख के 'सुदर्शन' एव 'देवी' नामो के आधार पर की जा सकती है जिनका जैन परम्परा मे अर के पिता और माता के रूप मे उल्लेख है।

३ तिवारी, एम०एन०पी०, 'दि आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज ऐज रिप्रेजेन्टेड इन दि सीलिंग ऑव दि शान्तिनाथ टेम्पल, कुम्भारिया', संबोधि, खं० २, अ० ३, पृ० १५–२२

४ पद्म, पुस्तक, वीणा एव स्रुक मे से कोई दो सामग्री ऊपरी भुजाओ मे और अभय-(या वरद-) मुद्रा एव कमण्डलु निचली भुजाओं में हैं।

५ शान्तिदेवी की ऊपरी दो भुजाओ मे पद्म हैं।

६ ब्रह्मशान्ति यक्ष के करों मे वरदाक्ष, छत्र, पुस्तक एव कमण्डलु प्रदर्शित हैं।

७ त्रिशूल, सर्प एवं वृषभ वाहन से युक्त देवी की एक मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर के मूलप्रासाद की भित्ति पर भी है।

८ सोमपुरा, कान्तिलाल फूलचन्द, पू०नि०, पृ० १२७

एवं पार्श्व की मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। पश्चिमी भ्रमिका के वितानो पर ऋषभ, शाति, नेमि, पार्श्व और महावीर के जीवनदृश्य उत्कीर्ण है (चित्र १३, २२, ४०)। एक वितान पर २४ जिनो के माता-पिता की मूर्तिया अकित हैं। मन्दिर के पश्चिमी और उत्तरी प्रवेश-द्वारो के समीप २४ जिनो की माताओ का चित्रण करने वाले दो पट्ट भी सुरक्षित हैं। प्रत्येक स्त्री आकृति की दाहिनी भुजा मे फल और बायी मे बालक स्थित हैं। १२८१ई० के एक पट्ट पर मुनि-सुव्रत के जीवन की शकुनिका विहार की कथा उत्कीर्ण है।[1] शान्तिनाथ मन्दिर के समान ही यहा भी महाविद्याओ, शान्ति-देवी, सरस्वती, अम्बिका, सर्वानुभूति एव ब्रह्मशान्ति की अनेक मूर्तिया हैं (चित्र ८९)। यहा मानवी महाविद्या की भी मूर्तिया मिली है।

पार्श्वनाथ मन्दिर—पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण बारहवी शती ई० मे हुआ।[2] देवकुलिकाओ मे ११७९ ई० से १२०२ई० के मध्य की २४ जिन मूर्तिया सुरक्षित हैं। गूढमण्डप की दो पार्श्व मूर्तियो मे यक्ष और यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं, पर यहा उनके सिरो पर सर्पफणो के छत्र प्रदर्शित हैं। गूढमण्डप ही मे अजित और शान्ति (१११९–२० ई०) की भी दो मूर्तिया है (चित्र २०)। महाविद्याओ मे ज्वालापात्र से युक्त ज्वालामालिनी विशेष लोकप्रिय थी। मानवी, गान्धारी[3] एव मानसी[4] की केवल एक-एक मूर्ति है। सरस्वती, अम्बिका एव शान्तिदेवी की भी कई मूर्तिया हैं। मन्दिर मे चार ऐसी भी चतुर्भुज देवियां हैं जिनकी पहचान सम्भव नही है।[5] देवकुलिका ५ की ऐसी एक मयूरवाहना देवी की भुजाओ मे वरदमुद्रा, त्रिशूल, स्रुक एव फल हैं। दूसरी वृषभवाहना देवी के करो मे वरदमुद्रा, पाश, ध्वज एव फल हैं। तीसरी देवी की ऊपरी भुजाओ मे त्रिशूल, एव चौथी देवी की ऊपरी भुजाओ मे शूल एव अकुश प्रदर्शित है।

नेमिनाथ मन्दिर—नेमिनाथ मन्दिर भी बारहवी शती ई० मे बना। यह भी चतुर्विंशति जिनालय है।[6] यह कुमारिया का विशालतम जैन मन्दिर है। गूढमण्डप के एक पट्ट (१२५३ ई०) पर १७२ जिनो की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। गूढमण्डप मे पाच और सात सर्पफणो के छत्रो वाली सुपार्श्व (स्वस्तिक लाछन सहित) एव पार्श्व (११५७ ई०) की दो मूर्तिया हैं। दोनो उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं। जटाओ से शोभित गूढमण्डप की दो ऋषभ मूर्तियो (१२५७ ई०) मे यक्षी चक्रेश्वरी है पर यक्ष सर्वानुभूति ही है। त्रिकमण्डप की रथिका मे १२६५ ई० का एक नन्दीश्वर पट्ट है।

मन्दिर की भीति पर महाविद्याओ, यक्षियो, चतुर्भुज दिक्पालो एव गणेश की आकृतिया उत्कीर्ण हैं। महा-विद्याओ मे केवल रोहिणी, प्रज्ञप्ति, गाधारी, मानसी एव महामानसी की मूर्तिया नही उत्कीर्ण हैं। ऊपरी भुजाओ मे त्रिशूल या पाश धारण करने वाली मन्दिर की कुछ देवियो की पहचान सम्भव नही है। कुछ मूर्तियो मे देवी की दो भुजाओ मे धन का थैला प्रदर्शित है। देवी का स्वरूप सर्वानुभूति यक्ष से प्रभावित प्रतीत होता है। अधिष्ठान पर चतुर्भुज गणेश की भी एक मूर्ति है। कुमारिया मे गणेश की मूर्ति का यह अकेला उदाहरण है (चित्र ७७)। मूषकारूढ गणेश के करो मे स्वदत, परशु, सनालपद्म और मोदकपात्र हैं। मुखमण्डप की पूर्वी भित्ति पर चतुर्भुज महालक्ष्मी की ध्यानमुद्रा मे आसीन मूर्ति है। मूर्ति-लेख मे देवी को 'महालक्ष्मी' कहा गया है। देवकुलिकाओ की पश्चिमी भित्ति पर मयूरवाहना सरस्वती[7] और पद्मावती यक्षी (२)[8] निरूपित हैं (चित्र ५६, ७६)।

---

१ दो पूर्ववर्ती उदाहरण जालोर के पार्श्वनाथ मन्दिर और लूणवसही मे हैं।

२ मन्दिर का प्राचीनतम लेख ११०४ ई० का है।

३ देवकुलिका १८—मुसल और वज्र से युक्त।

४ देवकुलिका ५—हंसवाहना एव वज्र और पाश से युक्त।

५ इन चतुर्भुज मूर्तियो मे देवियो की निचली भुजाओ मे अभय-(या वरद-) मुद्रा और फल (या कलश) प्रदर्शित हैं।

६ मन्दिर का प्राचीनतम लेख वि०स० ११९१ (=११३४ ई०) का है—सोमपुरा, कान्तिलाल फूलचन्द, पू०नि०, पृ० १५८

७ सरस्वती के साथ मयूर वाहन का उल्लेख केवल दिगम्बर परम्परा मे है।

८ कोष्ठ की सख्या यहा और अन्यत्र मूर्ति-सख्या की सूचक है।

सम्भवनाथ मन्दिर—सम्भवनाथ मन्दिर का निर्माण तेरहवी शती ई० मे हुआ ।[1] मन्दिर की भित्ति पर महाविद्याओ, सरस्वती एव शान्तिदेवी की मूर्तिया है ।[2] महाविद्याओ मे केवल रोहिणी, चक्रेश्वरी(२), वज्राकुशा(३), महाकाली एव सर्वास्त्रमहाज्वाला (मेषवाहना) ही आमूर्तित हैं । जघा और अधिष्ठान की दो देवियो की पहचान सम्भव नही है । एक की ऊपरी भुजाओ मे गदा और वज्र, तथा दूसरी की भुजाओ मे धन का थैला और अकुश प्रदर्शित है ।

तारंगा

अजितनाथ मन्दिर—मेहसाणा जिले की तारगा पहाडी पर चौलुक्य शासक कुमारपाल (११४३–७२ ई०) के शासनकाल मे निर्मित अजितनाथ का विशाल श्वेताम्बर जैन मन्दिर है (चित्र ७९) ।[3] गर्भगृह एव गूढमण्डप मे तेरहवी-चौदहवी शती ई० की जिन मूर्तिया हैं । मन्दिर की मूर्तिया चार से दस भुजाओ वाली हैं । मन्दिर मे महाविद्याओ की सर्वाधिक मूर्तिया है । महाविद्याओ के साथ वाहनो का नियमित प्रदर्शन नही हुआ है । महाविद्याओ के निरूपण मे सामान्यत. निर्वाणकलिका एव आचारदिनकर के निर्देशो का पालन किया गया है । मन्दिर की महाविद्या मूर्तियो की सख्या के आधार पर उनकी लोकप्रियता का क्रम इस प्रकार है–अप्रतिचक्रा (१७), रोहिणी (८), वज्रशृखला (८), महाकाली (६), वज्राकुशा (४), प्रज्ञप्ति(३), गौरी(३), नरदत्ता(३), महामानसी (३), काली (२), वैरोट्या (२) एव सर्वास्त्रमहाज्वाला (१) । अन्यत्र विशेष लोकप्रिय गाधारी, मानवी, अच्छुप्ता एव मानसी की एक भी मूर्ति नही उत्कीर्ण है । सरस्वती (१४) और शान्तिदेवी (२१) की भी मूर्तिया है ।

अन्य श्वेताम्बर स्थलो के समान यहा भी यक्षी चक्रेश्वरी और महाविद्या अप्रतिचक्रा के मध्य स्वरूपगत भेद कर पाना कठिन है ।[4] अम्बिका यक्षी की केवल दो मूर्तिया हैं । सिंहवाहना अम्बिका के करो मे वरदमुद्रा, आम्रलुम्बि, पाश एव बालक है । मन्दिर मे गोमुख (१) एव सर्वानुभूति (३) यक्षो और क्षेत्रपाल (१) की भी मूर्तिया है । श्मश्रु युक्त क्षेत्रपाल की दो भुजाओ मे गदा और सर्प हैं । भित्ति पर अष्ट-दिक्पाल मूर्तियो के तीन समूह उत्कीर्ण हैं । मन्दिर पर ऐसे कई देवो की भी मूर्तिया हैं जिनकी पहचान सम्भव नही है । ऐसी एक महिषारूढ देवता(३) की मूर्ति मे अवशिष्ट भुजाओ मे वरदमुद्रा, पाश और फल है । देवियो मे दो ऊपरी भुजाओ मे त्रिशूल एव सर्प,या अकुश एव पाश धारण करने वाली देविया विशेष लोकप्रिय थी । इनकी निचली भुजाओ मे वरदमुद्रा एव फल (या कलश) हैं । स्मरणीय है कि ये देविया गुजरात एव राजस्थान के अन्य मन्दिरो मे भी लोकप्रिय थी । एक कुक्कुटवाहना देवी (दक्षिणी भित्ति) को अवशिष्ट भुजाओ मे वरदमुद्रा, पद्म एव दण्ड हैं । सिंहवाहना एक देवी (पश्चिमी जघा) की भुजाओ मे वरदमुद्रा, परशु, पाश और फल हैं । एक मयूरवाहना देवी (उत्तरी भित्ति) की सुरक्षित भुजा मे त्रिशूल-घण्ट है । वृषभवाहना एक देवी (पश्चिमी भित्ति) की अवशिष्ट भुजाओ मे वज्र और जलपात्र हैं । उत्तरी भित्ति की एक हसवाहना (?) देवी के हाथो मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, पद्म, सर्प, त्रिशूल और कमण्डलु हैं । मन्दिर के अधिष्ठान पर भी ऐसी तीन देविया उत्कीर्ण हैं जिनकी पहचान सम्भव नही है । पहली देवी (उत्तरी) की भुजाओ मे वरदमुद्रा, अकुश, सनालपद्म, कमण्डलु, दूसरी देवी (दक्षिण) की भुजाओ मे वरदमुद्रा, पाश, वज्र एव फल, और तीसरी देवी (उत्तरी) की भुजाओ मे वरदमुद्रा, परशु, घण्ट एव फल हैं ।

राजस्थान

ल० आठवी से बारहवी शती ई० के मध्य राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रो मे विपुल सख्या मे जैन मन्दिरो एव

---

१ सोमपुरा, कान्तिलाल फूलचन्द, पू०नि०, पृ० १५८

२ तिवारी, एम०एन०पी०, 'कुमारिया के सम्भवनाथ मन्दिर की जैन देविया', अनेकान्त,वर्ष २५,अ०३, पृ० १०१-०३

३ सोमपुरा, कान्तिलाल फूलचन्द, 'दि आर्किटेक्चरल ट्रीटमेन्ट ऑव दि अजितनाथ टेम्पल् ऐट तारगा', विद्या, ख० १४, अ० २, पृ० ५०–५७

४ गरुडवाहना देवी के करो मे वरद-(या अभय-)मुद्रा, शख, चक्र एव गदा प्रदर्शित है ।

मूर्तियों का निर्माण हुआ ।[1] राजस्थान मे भी महाविद्याओ का चित्रण ही सर्वाधिक लोकप्रिय था। महाविद्याओ की प्राचीनतम मूर्तिया इसी क्षेत्र मे उत्कीर्ण हुई ।[2] इस क्षेत्र के भी सर्वाधिक लोकप्रिय यक्ष-यक्षी युगल सर्वानुभूति एव अम्बिका ही थे। जिनो के जीवनदृश्यो, सर्वानुभूति एवं ब्रह्मशान्ति यक्षो, चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती, सिद्धायिका यक्षियो और सरस्वती, शान्तिदेवी, जीवन्तस्वामी महावीर, गणेश एव कृष्ण की भी इस क्षेत्र मे प्रचुर सख्या मे मूर्तिया उत्कीर्ण हुई। जिनो के लाछनो के चित्रण के स्थान पर पीठिका लेखो मे जिनो के नामोल्लेख की परम्परा ही लोकप्रिय थी। केवल ऋषभ एव पार्श्व के साथ क्रमश. जटाओ एव सर्पफणो का प्रदर्शन हुआ है। राजस्थान मे इन्ही दो जिनो की सर्वाधिक मूर्तिया उत्कीर्ण हुई। इस क्षेत्र मे श्वेताम्बर स्थलो का प्राधान्य है। केवल भरतपुर, कोटा, वासवाडा, अलवर एव बिजौलिया आदि स्थलो से दिगम्बर मूर्तिया मिली है।

ओसिया

महावीर मन्दिर—ओसिया (जोधपुर) का महावीर मन्दिर (श्वेतांबर) राजस्थान का प्राचीनतम सुरक्षित जैन मन्दिर है।[3] महावीर मन्दिर के समक्ष एक तोरण और वलानक (या नालमण्डप) है। वलानक के पूर्वी भाग मे एक देवकुलिका सयुक्त है। महावीर मन्दिर के पूर्व और पश्चिम मे चार अन्य देवकुलिकाए भी हैं। वलानक मे ९५६ ई० (वि०स०१०१३) का एक लेख है।[4] लेख, स्थापत्य एव शिल्प के आधार पर विद्वानो ने महावीर मन्दिर को आठवी[5] और नवीं[6] शती ई० का निर्माण माना है। ९५६ ई० के कुछ बाद ही वलानक से जुडी पूर्वी देवकुलिका (१० वी शती ई०) निर्मित हुई। महावीर मन्दिर के समीप की पूर्वी और पश्चिमी देवकुलिकाए एव तोरण (१०१८ ई०) ग्यारहवी शती ई० मे बने।[7] जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से महावीर मन्दिर की महाविद्या मूर्तिया विशेष महत्व की हैं। ये महाविद्या की आरम्भिक मूर्तिया हैं। महाविद्याओ के अतिरिक्त सर्वानुभूति एव पार्श्व यक्षो, और अम्बिका एव पद्मावती यक्षियो की भी मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। साथ ही द्विभुज अष्ट-दिक्पालो, सरस्वती, महालक्ष्मी और जैन युगलो की भी मूर्तिया मिली हैं। महावीर मन्दिर के समान ही देवकुलिकाओ पर भी महाविद्याओ, सर्वानुभूति यक्ष, अम्बिका यक्षी, गणेश और जीवन्तस्वामी महावीर की मूर्तिया है।

महावीर मन्दिर की द्विभुज एव चतुर्भुज महाविद्याए वाहनो से युक्त हैं। यहा प्रज्ञप्ति, नरदत्ता, गाधारी, महाज्वाला, मानवी एवं मानसी महाविद्याओ के अतिरिक्त अन्य सभी महाविद्याओ की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। महाविद्याओ के निरूपण मे सामान्यत बप्पभट्टि की चतुर्विंशतिका के निर्देशो का पालन किया गया है।[8] मन्दिर मे महालक्ष्मी (१), पद्मावती (१),

---

१ जैन, के० सी०, **जैनिज्म इन राजस्थान**, शोलापुर, १९६३, पृ० १११ हमने अपने अध्ययन मे लूणवसही (१२३०ई०) की शिल्प सामग्री का भी उल्लेख किया है क्योकि विषयवस्तु एवम् लाक्षणिक विशेषताओ की दृष्टि से लूणवसही की सामग्री पूर्ववर्ती विमलवसही (१०३१ ई०) की अनुगामिनी है।

२ ये मूर्तिया ओसिया के महावीर मन्दिर पर है।

३ ढाकी, एम० ए०, 'सम अर्ली जैन टेम्पलस इन वेस्टर्न इण्डिया', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बबई, १९६८, पृ० ३१२

४ नाहर, पी० सी०, **जैन इन्स्क्रिप्शन्स**, भाग १, कलकत्ता, १९१८, पृ० १९२-९४, लेख स० ७८८

५ भण्डारकर, डी० आर०, 'दि टेम्पलस ऑव ओसिया', **आ०स०इ०ऐ०रि०**, १९०८-०९, पृ० १०८, **प्रो०रि०आ०स०इं०,वे०स०**, १९०७, पृ० ३६-३७, ब्राउन, पर्सी, **इण्डियन आर्किटेक्चर**, बम्बई, १९७१ (पु० मु०), पृ०१३५, कृष्ण देव, **टेम्पलस ऑव नार्थ इण्डिया**, दिल्ली, १९६९, पृ० ३१, ढाकी, एम० ए०, **पू०नि०**, पृ० ३२४-२५

६ त्रिपाठी, एल० के०, **एवोल्यूशन ऑव टेम्पल् आर्किटेक्चर इन नार्दर्न इण्डिया**, पीएच्० डी० को अप्रकाशित थीसिस, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, १९६८, पृ० १५४, १९९-२०३

७ भण्डारकर, डी० आर०, **पू०नि०**, पृ० १०८, ढाकी, एम० ए०, **पू०नि०**, पृ० ३२५-२६

८ पर गौरी गोधा के स्थान पर वृषभवाहना है। गजारूढ वज्राकुशी की भुजाओ मे ग्रन्थ के निर्देशो के विरुद्ध जलपात्र एव मुद्रा प्रदर्शित हैं। ग्रन्थ मे वज्र एव अकुश के प्रद०

८

सरस्वती (४), सर्पफणो के छत्र से युक्त पार्श्व यक्ष, तथा अर्द्धमण्डप के पूर्वी छज्जे पर मुनिसुव्रत के वरुण यक्ष की भी मूर्तियां दृष्टिगत होती हैं।[1] मन्दिर पर तीन ऐसी भी मूर्तिया है जिनकी पहचान सम्भव नहीं है। अर्द्धमण्डप के उत्तरी छज्जे पर सर्वानुभूति एव अम्बिका से युक्त ऋषभ की एक मूर्ति है।[2] गूढमण्डप के प्रवेश-द्वार के दहलीज पर भी सर्वानुभूति और अम्बिका निरूपित है। सर्वानुभूति की दो अन्य मूर्तिया गूढमण्डप की पश्चिमी भित्ति पर हैं। मन्दिर की भित्ति पर त्रिभग मे खडी द्विभुज अष्ट-दिक्पालो की सवाहन मूर्तिया भी है।[3] गूढमण्डप मे सुपार्श्व एव पार्श्व की दो मूर्तिया हैं।

देवकुलिकाओं[4] की सवाहन महाविद्या मूर्तिया द्विभुज, चतुर्भुज एव षड्भुज[5] है। इनमे मानवी और महाज्वाला महाविद्याओ की एक भी मूर्ति नही है। हसवाहना मानसी की केवल एक ही मूर्ति (देवकुलिका ४) है। देवकुलिकाओ की महाविद्या मूर्तियो के निरूपण मे महावीर मन्दिर की पूर्ववर्ती मूर्तियो एव चतुर्विंशतिका के प्रभाव स्पष्ट हैं। देवकुलिकाओ पर सरस्वती (६), अम्बिका यक्षी (२),[6] सर्वानुभूति यक्ष, अष्ट-दिक्पालो, गणेश (३) एव जीवन्तस्वामी महावीर की मूर्तिया हैं। सरस्वती की भुजाओ मे पद्म और पुस्तक प्रदर्शित है। एक मूर्ति (देवकुलिका १) मे सरस्वती के दोनो हाथों में वीणा हैं। देवकुलिकाओ की गणेश मूर्तिया जैन शिल्प मे गणेश की प्राचीनतम ज्ञात मूर्तिया हैं। इनमें चतुर्भुज एव गजमुख गणेश परशु (या शूल), स्वदंत (या अकुश), पद्म एव मोदकपात्र से युक्त है।[7] पाश और शंख से युक्त एक द्विभुज देवी की पहचान सम्भव नही है। देवकुलिका १ के दक्षिणी अधिष्ठान पर श्मश्रु एव जटामुकुट से शोभित और ललितमुद्रा मे आसीन ब्रह्मशान्ति यक्ष की एक चतुर्भुज मूर्ति उत्कीर्ण है। ब्रह्मशान्ति की भुजाओं मे वरदमुद्रा, स्रुव, पुस्तक एवं जलपात्र है। वलानक मे १०१९ ई० की एक विशाल पार्श्वनाथ मूर्ति रखी है।

देवकुलिकाओ और तोरणद्वार पर जीवन्तस्वामी महावीर की कुल आठ मूर्तिया है (चित्र ३७)। इनमे मुकुट एव हार आदि आभूषणो से सज्जित जीवन्तस्वामी महावीर कायोत्सर्ग मे खडे हैं। जीवन्तस्वामी की तीन स्वतन्त्र मूर्तिया (११वी शती ई०) वलानक मे भी सुरक्षित हैं।[8] इन मूर्तियो मे जीवन्तस्वामी के साथ अष्ट-प्रातिहार्य,[9] यक्ष-यक्षी युगल, महाविद्याए एव लघु जिन आकृतिया भी निरूपित हैं। देवकुलिका १ और ३ के वेदिकाबन्धो पर जिनो के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। ये जीवनदृश्य सम्भवत. ऋषभ और पार्श्व से सम्बन्धित है। देवकुलिका २ के वेदिकाबन्ध पर किसी जिन के जन्म अभिषेक का दृश्य है। वलानक के एक पट्ट (१२०२ ई०) पर २२ जिनो की माताओं की मूर्तिया उत्कीर्ण है जिनकी गोद मे एक-एक बालक बैठा है। ओसिया के हिन्दू मन्दिरो पर भी दो जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं जो उस स्थल पर हिन्दुओ एव जैनो के मध्य की सौमनस्यता की साक्षी हैं। एक मूर्ति (पार्श्वनाथ) सूर्य मन्दिर की पूर्वी भित्ति पर है और दूसरी पूर्वी समूह के पचरथ मन्दिर पर है।

---

१ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३१७

२ सर्वानुभूति धन के थैले और अम्बिका आम्रलुम्बि एव बालक से युक्त है।

३ दो भुजाओ मे शूल एव सर्प से युक्त ईशान् चतुर्भुज है, और कुबेर एव यम की दो दो मूर्तिया है।

४ पूर्वी और पश्चिमी समूहो की उत्तरी (प्रथम) देवकुलिकाओ को क्रमश १ और २ एव उसी क्रम मे दूसरी देवकुलिकाओ को ३ और ४ की सख्याए देकर अभिव्यक्त किया गया है। वलानक की पूर्वी देवकुलिका की सख्या ५ है।

५ केवल महामानसी ही षड्भुज है।

६ देवकुलिकाओ (१ और २) पर अम्बिका को लाक्षणिक विशेषताओ से प्रभावित ५ द्विभुज स्त्री मूर्तिया हैं जो सम्भवत मातृदेवियो की मूर्तिया है। इन आकृतियो की एक भुजा मे बालक और दूसरी मे फल या जलपात्र है। देवकुलिका १ की दक्षिण जघा की एक मूर्ति मे बालक के स्थान पर आम्रलुम्बि भी प्रदर्शित है।

७ एक उदाहरण मे वाहन गज है।

८ तिवारी, एम० एन० पी०, 'ओसिया से प्राप्त जीवन्तस्वामी की अप्रकाशित मूर्तिया', **विश्वभारती,** ख० १४, अ० ३, पृ० २१५–१८

९ यहा अष्ट-प्रातिहार्यों मे सिंहासन नही उत्कीर्ण है।

मण्डोर मे नाहडराओ गुफा के समीप दसवी शती ई० का एक जैन मन्दिर है।[1] नदसर (सुरपुर) मे भी प्राचीन जैन मन्दिर हैं।[2] नाणा (बाली) मे ९६० ई० का एक महावीर मन्दिर है।[3] आहाड (उदयपुर) मे ल० दसवी शती ई० का आदिनाथ मन्दिर है। मन्दिर की भित्तियो पर भरत, सरस्वती, चक्रेश्वरी एव अन्य जैन देवियो की मूर्तिया है। भद्रेसर एव उथमण मे ग्यारहवी शती ई० के जैन मन्दिर हैं।[4] बीकानेर, तारानगर (९५२ ई०), राणी, नोहर एव पालू मे दसवी-ग्यारहवी शती ई० के कई जैन मन्दिर हैं।[5] पल्लू से कई चतुर्भुज सरस्वती मूर्तिया मिली है जो कलात्मक अभिव्यक्ति एव मूर्तिवैज्ञानिक दृष्टि से मध्यकाल की सर्वोत्कृष्ट सरस्वती मूर्तिया है। इनमे हसवाहना सरस्वती सामान्यतः वरदाक्ष, पद्म, पुस्तक एव कमण्डलु से युक्त हैं।[6]

नागदा (मेवाड़) मे ९४६ ई० का एक पद्मावती मन्दिर (दिगवर) है।[7] प्रतापगढ के समीप वीरपुर से नवी-दसवी शती ई० के जैन मन्दिरो के अवशेष मिले है। रामगढ (कोटा) के समीप आठवी-नवी शती ई० की जैन गुफाएं हैं। कृष्णविलाम या विलास (कोटा) मे आठवी से दसवी शती ई० के मध्य के जैन मन्दिरो (दिगवर) के अवशेष हैं। जयपुर (चाट्सु) एव अलवर के आसपास के क्षेत्रो मे दसवी-ग्यारहवी शती ई० के कुछ जैन मन्दिर है।[8] जगत (उदयपुर) मे भी दसवी शती ई० का एक अम्बिका मन्दिर है।[9] पाली मे ग्यारहवी शती ई० का नवलखा पार्श्वनाथ मन्दिर है।[10]

घाणेराव

महावीर मन्दिर—घाणेराव (पाली) का महावीर मन्दिर दसवी शती ई० का श्वेताम्बर जैन मन्दिर है।[11] ११५६ ई० मे मन्दिर मे २४ देवकुलिकाओ का निर्माण किया गया। मन्दिर मे १४ महाविद्याओ, दिक्पालो, गोमुख (१), सर्वानुभूति (५), ब्रह्मशान्ति (१), चक्रेश्वरी (२), अम्बिका (२), गणेश और नवग्रहो की मूर्तिया है। मन्दिर की जघा पर द्विभुज दिक्पालो की मूर्तिया उत्कीर्ण है। दिक्पालो के अतिरिक्त मन्दिर की अन्य सभी मूर्तिया चतुर्भुज है। जैन परम्परा के अनुरूप यहा दस दिक्पालो की मूर्तिया हैं। नवें और दसवें दिक्पाल क्रमश ब्रह्मा एव अनन्त है। त्रिमुख ब्रह्मा जटामुकुट एव श्मश्रु, और अनन्त पाच सर्पफणो के छत्र से युक्त हैं। जटामुकुट से युक्त चतुर्भुज ब्रह्मशान्ति (अधिष्ठान) की भुजाओ मे वरदाक्ष, पद्म, छत्र एवं जलपात्र हैं। अधिष्ठान पर महालक्ष्मी और वैरोट्या की भी मूर्तिया है।

अर्धमण्डप की सीढियो के समीप ऐसी दो देविया उत्कीर्ण है जिनकी पहचान सम्भव नही है। एक देवी की भुजाओ मे पद्म, अकुश, पाश एव फल हैं।[12] दूसरी देवी के पार्श्व मे एक घट (वाहन) और भुजाओ मे फल, पद्म, दण्ड (?) एवं जलपात्र हैं। गूढमण्डप की द्वारशाखा की कूर्मवाहना देवी की पहचान भी सम्भव नही है। देवी के करो मे अभयमुद्रा, पाश, दण्ड (?) एव कमल हैं। गूढमण्डप एव गर्भगृह के प्रवेश-द्वारो पर द्विभुज एव चतुर्भुज महाविद्याओ की सवाहन मूर्तिया उत्कीर्ण है। इनमे मानवी एव सर्वास्त्रमहाज्वाला के अतिरिक्त अन्य सभी महाविद्याओ की मूर्तिया है। इनके

---

१ प्रो०रि०आ०स०इ०, वे०स०, १९०६-०७, पृ० ३१
२ वही, १९११-१२, पृ० ५३ ३ वही, १९०७-०८, पृ० ४८-४९
४ जैन, के० सी०, पू०नि०, पृ० ११३
५ वही, पृ० ११३-१४, गोयतज, एच०, दि आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर ऑव बीकानेर स्टेट, आक्सफोर्ड, १९५०, पृ० ५८
६ शर्मा, व्रजेन्द्रनाथ, जैन प्रतिमाए, दिल्ली, १९७९, पृ० १०-१९
७ प्रो०रि०आ०स०इं०, वे०स०, १९०४-०५, पृ० ६१
८ जैन, के० सी०, पू०नि०, पृ० ११४-१५ ९ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३०५
१० प्रो०रि०आ०स०ई०,वे०स०, १९०७-०८, पृ० ४३, ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३३३-३४
११ प्रो०रि०आ०स०इं०,वे०स०, १९०७-०८, पृ० ५९, कृष्ण देव, पू०नि०, पृ० ३६, ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३२८-३२
१२ मन्दिर के गूढमण्डप की द्वारशाखा पर भी इस देवी की एक मूर्ति है।

चित्रण मे निर्वाणकलिका के निर्देशो का पालन किया गया है। गूढमण्डप के उत्तरग पर स्थानक मुद्रा मे द्विभुज नवग्रहों की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।[1] गूढमण्डप के एक स्तम्भ पर चतुर्भुज गणेश एवं ललाट-बिम्ब पर सुपार्श्वनाथ की मूर्तिया हैं। देवकुलिकाओ की भित्तियो पर वैरोट्या, चक्रेश्वरी, वज्राकुशी एव सरस्वती की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।

सादरी

पार्श्वनाथ मन्दिर—सादरी (पाली) का पार्श्वनाथ मन्दिर ग्यारहवी शती ई० का है।[2] मन्दिर पर चतुर्भुज महाविद्याओ, सरस्वती, दिक्पालो, अप्सराओ एव जैन ग्रन्थो मे अवर्णित देवियो की मूर्तिया है। सर्वानुभूति एव अम्बिका या किसी अन्य यक्ष-यक्षी की एक भी मूर्ति नही उत्कीर्ण है। मन्दिर पर केवल ११ महाविद्याएं निरूपित हुई। ये रोहिणी, वज्राकुशी, वज्रश्रृखला, अप्रतिचक्रा, गौरी, पुरुषदत्ता, काली, महाकाली, महाज्वाला, वैरोट्या एव महामानसी हैं।[3]

पूर्वी वरण्ड पर एक चतुर्भुज देवता की मूर्ति है। देवता के हाथो मे छल्ला, पद्म, पद्म और कमण्डलु हैं। देवता की पहचान सम्भव नही है। महाविद्याओ के बाद सर्वाधिक मूर्तिया शान्तिदेवी की हैं। शान्तिदेवी के दो हाथो मे पद्म हैं। मन्दिर पर जैन परम्परा मे अनुल्लिखित नौ चतुर्भुज देविया भी उत्कीर्ण है। इनकी निचली भुजाओ मे सर्वदा अभय-(या वरद-) मुद्रा एव फल (या जलपात्र) हैं। पहली गजवाहना देवी की ऊपरी भुजाओ मे त्रिशूल एव शूल, दूसरी देवी की भुजाओ में सनालपद्म एव खेटक, तीसरी देवी की भुजाओ मे त्रिशूल, चौथी देवी की भुजाओ मे खड्ग एव अभयमुद्रा, पाचवी देवी की भुजाओ मे पाश एव पद्म, छठी सिंहवाहना देवी की भुजाओ मे अकुश एवं धनुष, सातवी गजवाहना देवी की भुजाओ मे शूल एव पाश, आठवी देवी की भुजाओ मे गदा एव पाश, और नवी सिंहवाहना देवी की भुजाओ मे अकुश एव पाश प्रदर्शित है। ल० ग्यारहवी शती ई० का एक नन्दीश्वर द्वीप पट्ट मन्दिर की चहारदीवारी के समीप की दीवार पर उत्कीर्ण है। नन्दीश्वर द्वीप पट्ट का सम्भवत यह प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण है।[4]

वर्माण

महावीर मन्दिर—वर्माण (पाली) मे परवर्ती नवी शती ई० का एक महावीर मन्दिर है।[5] इस श्वेताम्बर मन्दिर मे २४ देवकुलिकाए सयुक्त हैं। मन्दिर मे महावीर, अम्बिका एव महालक्ष्मी की मूर्तिया हैं।

सेवडी

महावीर मन्दिर—सेवडी (पाली) का महावीर मन्दिर (श्वेताम्बर) ग्यारहवी शती ई० का चतुर्विंशति जिनालय है।[6] मन्दिर की भीत्तियो पर द्विभुज अप्रतिचक्रा एव वैरोट्या महाविद्याओ, जीवन्तस्वामी महावीर, क्षेत्रपाल, ब्रह्मशान्ति यक्ष एव महावीर की मूर्तिया है। द्विभुज क्षेत्रपाल निर्वस्त्र है और गदा एवं सर्प से युक्त है। श्मश्रु एव पादुका से युक्त ब्रह्मशान्ति के हाथो मे अक्षमाला एव जलपात्र हैं। गूढमण्डप के द्वारशाखाओ पर चक्रेश्वरी, निर्वाणी एव पद्मावती यक्षियो की मूर्तिया हैं। गर्भगृह के प्रवेश-द्वार पर यक्षियो एव महाविद्याओ की मूर्तिया हैं। महाविद्याओ मे रोहिणी, वज्राकुशा, गाधारी, वैरोट्या, अच्छुप्ता, प्रज्ञप्ति एव महामानसी की पहचान सम्भव है। उत्तरग की जिन आकृति के पार्श्वों मे पुरुषदत्ता, चक्रेश्वरी एव काली महाविद्याओ की मूर्तिया हैं। तीन देवियो की पहचान सम्भव नहीं है। पहली नरवाहना

---

१ श्वेताम्बर मन्दिरो मे नवग्रहो का चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है।

२ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३४५-४६

३ अन्यत्र विशेष लोकप्रिय प्रज्ञप्ति, अच्छुप्ता एव मानसी महाविद्याओ की एक भी मूर्ति नही है।

४ १३वी-१४वी शती ई० के दो अन्य उदाहरण कुंभारिया के नेमिनाथ एव राणकपुर के आदिनाथ (चौमुखी) मंदिरो मे हैं—स्ट०जै०आ०, पृ० ११९-२१

५ ढाकी, एम०ए०, पू०नि०, पृ० ३२७-२८

६ प्रो०रि०आ०स०इं०,वे०स०, १९०७-०८, पृ० ५३, ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३३७-४०

देवी की दो भुजाओ मे पुस्तक, दूसरी नागवाहना देवी की भुजाओ मे पात्र एव दण्ड, और तीसरी अजवाहना देवी की भुजाओ मे खड्ग एवं फलक है।

नाडोल

नाडोल या नड्डुल (पाली) मे पद्मप्रभ, नेमिनाथ एव शान्तिनाथ को समर्पित ग्यारहवी शती ई० के तीन श्वेताम्बर जैन मन्दिर है।[1]

नेमिनाथ मन्दिर—नेमिनाथ मन्दिर के शिखर पर चक्रेश्वरी एव शान्तिदेवी की चतुर्भुज मूर्तिया है। दक्षिणी शिखर पर किसी जिन के जन्म-कल्याणक का दृश्य है जिसमे एक बालक (जिन) चतुर्भुज इन्द्र की गोद मे बैठा है। इन्द्र ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं और उनकी निचली भुजायें गोद मे हैं तथा ऊपरी मे अकुश एव वज्र हैं। जगती की एक वृषभवाहना (?) देवी की भुजाओ मे गदा प्रदर्शित है। देवी की पहचान सम्भव नही है। गूढमण्डप की पश्चिमी भित्ति पर चतुर्भुज कृष्ण निरूपित हैं। कृष्ण समभग मे खडे हैं और किरीटमुकुट, छन्नवीर और वनमाला से अलकृत है। उनकी ऊपरी भुजाओ मे गदा और चक्र हैं। सम्भवत नेमिनाथ मन्दिर होने के कारण ही कृष्ण को यहा आमूर्तित किया गया।

शान्तिनाथ मन्दिर—मन्दिर की भित्ति पर स्त्री दिक्पालो की आकृतिया हैं।[2] जघा की मूर्तियो मे केवल गौरी महाविद्या की ही पहचान सम्भव है। भित्ति की गजवाहना और भुजाओ मे वरदमुद्रा, परशु, मुद्गर एव जलपात्र, तथा वरदाक्ष, त्रिशूल, नाग एव फल मे युक्त, दो देवियो की पहचान सम्भव नही है।

पद्मप्रभ मन्दिर—पद्मप्रभ मन्दिर नाडोल का विशालतम जैन मन्दिर है। मन्दिर की भित्तियो पर अप्रतिचक्रा, वैरोट्या एव वज्रशृखला महाविद्याओ एव अष्ट-दिक्पालो की मूर्तिया हैं। अधिष्ठान पर सर्वानुभूति यक्ष एव अम्बिका यक्षी की भी मूर्तियां हैं। अधिष्ठान की पद्म, खड्ग और जलपात्र से युक्त एक यक्ष की पहचान सम्भव नही है। यहा शान्तिदेवी की सर्वाधिक स्वतन्त्र मूर्तियां (११) है। शान्तिदेवी की ऊपरी भुजाओ मे सनाल पद्म और निचली मे वरदमुद्रा एव फल (या जलपात्र) प्रदर्शित हैं। वीणा और पुस्तक धारिणी सरस्वती की भी चार मूर्तिया है। अधिष्ठान पर वज्राकुशा (१), वज्रशृखला (१), अप्रतिचक्रा (३), महाकाली[3] (१), काली (१)[4] महाविद्याओ एव महालक्ष्मी की भी मूर्तिया हैं। त्रिशूल, सर्प, फल, दो ऊपरी भुजाओ मे स्रुक, और गदा एव धनुष धारण करने वाली तीन देवियो की पहचान सम्भव नही है।

नाड्लाई

नाड्लाई (पाली) मे दसवी-ग्यारहवी शती ई० के श्वेताम्बर जैन मन्दिर हैं।[5] यहा के मुख्य मन्दिर आदिनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ एव पार्श्वनाथ को समर्पित हैं। इनमे आदिनाथ मन्दिर विशालतम एव प्राचीन हैं। मन्दिर के लेख से ज्ञात होता है कि मन्दिर मूलत महावीर को समर्पित था। इसका निर्माण दसवी शती ई० के अन्त मे हुआ।[6] मन्दिर के गर्भगृह की दहलीज पर सर्वानुभूति एव अम्बिका की द्विभुज मूर्तिया हैं। नेमिनाथ एव पार्श्वनाथ मन्दिरो का निर्माण ग्यारहवी शती ई० मे हुआ। इन पर मूर्तिया नही उत्कीर्ण हैं। केवल शान्तिनाथ मन्दिर (११वी शती ई०) पर ही जैन देवो की मूर्तिया हैं।

---

१ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३४३-४५ २ वही, पृ० ३४३

३ देवी वरदमुद्रा, अकुश, त्रिशूल-घण्टा एवं कुण्डिका से युक्त हैं।

४ काली की ऊपरी भुजाओ मे गदा एव सनाल पद्म है। विमलवसही के रगमण्डप की मूर्ति मे भी काली की भुजाओ मे गदा एवं सनाल पद्म प्रदर्शित है।

५ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३४१–४२। शान्तिनाथ मन्दिर के अतिरिक्त अन्य मन्दिरो पर मूर्तिया नही उत्कीर्ण हैं।

६ साहित्यिक परम्परा मे इस मन्दिर के निर्माण की तिथि ९०८ ई० है—ढाकी, एम०ए०, पू०नि०,पृ० ३४१

शान्तिनाथ मन्दिर की मूर्तिया केवल अधिष्ठान पर उत्कीर्ण हैं। इनमे चतुर्भुज महाविद्याओ, शान्तिदेवी, सरस्वती एव यक्षो की मूर्तिया हैं। वरदमुद्रा, त्रिशूल, सर्प एव जलपात्र, और वरदमुद्रा, दण्ड, पद्म एव जलपात्र मे युक्त दो देवताओ की सम्भावित पहचान क्रमश ईश्वर और ब्रह्मशान्ति यक्षो से की जा सकती है। महाविद्याओ मे केवल रोहिणी, वज्राकुशी[1] एव अप्रतिचक्रा[2] की ही मूर्तिया हैं। दो उदाहरणो मे देवियो की पहचान सम्भव नहीं है। पहली देवी वरदमुद्रा, अकुश एवं जलपात्र, और दूसरी वरदमुद्रा, पाश, पद्म एव धनुष (?) से युक्त है। वेदिकाबन्ध पर काम-क्रिया मे रत ५० युगलो की मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं।[3]

आबू

विमलवसही—आबू (सिरोही) स्थित विमलवसही आदिनाथ को समर्पित है। यह श्वेताम्बर मन्दिर अपने शिल्प वैभव के लिए विश्व प्रसिद्ध है। विमलवसही के मूलप्रासाद और गूढमण्डप चौलुक्य शासक भीमदेव प्रथम के दण्डनायक विमल द्वारा ग्यारहवी शती ई० के प्रारम्भ (१०३१ई०) मे बनवाये गये। रंगमण्डप, भ्रमिका और ५४ देवकुलिकाओ का निर्माण कुमारपाल के मन्त्री पृथ्वीपाल एव पृथ्वीपाल के पुत्र धनपाल के काल (११४५–८९ ई०) मे हुआ।[4]

कुमारिया के जैन मन्दिरो की भाति विमलवसही की जिन मूर्तिया भी मूलप्रासाद, गूढमण्डप एव देवकुलिकाओ मे स्थापित है। देवकुलिकाओ की जिन मूर्तियो पर १०६२ ई० से ११८८ ई० के लेख हैं। विमलवसही की जिन मूर्तियो की सामान्य विशेषताए कुमारिया की जिन मूर्तियो के समान हैं।[5] अधिकाशत जिन ध्यानमुद्रा मे आसीन हैं। सिंहासन के मध्य की शान्तिदेवी की भुजाओ मे वरदमुद्रा, पद्म, पद्म (या पुस्तक) एव कमण्डलु है।[6] सुपार्श्व और पार्श्व के साथ क्रमश पाच और सात सर्पफणो के छत्र प्रदर्शित हैं। अन्य जिनो की पहचान के आधार पीठिका लेखो मे उत्कीर्ण उनके नाम हैं। पार्श्ववर्ती चामरधरो की एक भुजा मे चामर है और दूसरी मे घट है या जानु पर स्थित है। मूलनायक के पार्श्वो मे जिन मूर्तियो के उत्कीर्ण होने पर चामरधरो की मूर्तिया मूर्ति छोरो पर बनी हैं। मूलनायक के पार्श्वो मे सामान्यत. सुपार्श्व या पार्श्व निरूपित हैं। ऊपर दो ध्यानस्थ जिन भी आमूर्तित हैं। सिंहासन छोरो पर यक्ष-यक्षी युगल निरूपित हैं। ऋषभ, सुपार्श्व एव पार्श्व की कुछ मूर्तियो के अतिरिक्त अन्य उदाहरणो मे सभी जिनो के साथ यक्ष-यक्षी रूप मे सर्वानुभूति एव अम्बिका निरूपित हैं। देवकुलिकाओ एव गूढमण्डप के दहलीजो पर भी सर्वानुभूति एव अम्बिका ही हैं।[7] गर्भगृह एव देवकुलिका २१ की दो ऋषभ मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी गोमुख एव चक्रेश्वरी हैं। देवकुलिका १९ की सुपार्श्व मूर्ति में गजारूढ यक्ष सर्वानुभूति है पर यक्षी पारम्परिक है। देवकुलिका ४ की पार्श्व मूर्ति (११८८ ई०) मे यक्ष-यक्षी धरणेन्द्र एव पद्मावती हैं।

देवकुलिका १७ मे एक जिन चौमुखी है। पीठिका लेखो के आधार पर चौमुखी के तीन जिनो की पहचान क्रमश. ऋषभ, चन्द्रप्रभ एव महावीर से सम्भव है। तीन जिनो के साथ यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका है, पर ऋषभ के साथ

---

१ गजारूढ एव वरदमुद्रा, अकुश (?), पाश और जलपात्र से युक्त।

२ वरदमुद्रा, चक्र, चक्र एव जलपात्र से युक्त।

३ पूर्व-मध्यकालीन कुछ जैन ग्रन्थो मे भी ऐसे उल्लेख हैं जिनसे कलाकारो ने काम-क्रिया से सम्बन्धित मूर्तियो के जैन मन्दिरो पर अकन की प्रेरणा प्राप्त की होगी—हरिवंशपुराण (जिनसेन कृत) २९ १–५।

४ जयन्तविजय, मुनिश्री, होली आबू (अनु० यू० पी० शाह), भावनगर, १९५४, पृ० २८–२९, ढाकी, एम० ए०, 'विमलवसही की डेट की समस्या' (गुजराती), स्वाध्याय, ख० ९, अ० ३, पृ० ३४९–६४

५ मूलनायक की मूर्तिया अधिकाश उदाहरणो मे गायब हैं।

६ एक जिन चौमुखी (देवकुलिका १७) मे वज्राकुशी भी उत्कीर्ण है।

७ गूढमण्डप के दक्षिणी प्रवेश-द्वार पर चक्रेश्वरी उत्कीर्ण है।

गोमुख एव चक्रेश्वरी निरूपित हैं। देवकुलिका २० मे एक जिन समवसरण भी सुरक्षित है। भ्रमिका के वितानो पर जिनो के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। देवकुलिका ९ और १६ के वितानो पर जिनो के पचकल्याणको के अकन हैं। पर इनमे जिनो की पहचान सम्भव नही है। देवकुलिका १० के वितान पर नेमि और देवकुलिका १२ के वितान पर शान्ति के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। बारहवीं शती ई० के एक पट्ट पर १७० जिन आकृतिया बनी हैं।

अन्य श्वेताम्बर स्थलो के समान ही विमलवसही मे भी महाविद्याओ का चित्रण ही सर्वाधिक लोकप्रिय था। यहा १६ महाविद्याओ के सामूहिक अकन के दो उदाहरण है। एक उदाहरण रगमण्डप मे और दूसरा देवकुलिका ४१ के वितान पर है। रगमण्डप के १६ महाविद्याओ के निरूपण मे पारम्परिक वाहन एव आयुध प्रदर्शित हैं।[1] महाविद्याएं दोनो उदाहरणो मे त्रिभग मे खडी है। रगमण्डप के उदाहरण मे महाविद्याए चतुर्भुज और देवकुलिका ४१ के उदाहरण मे षड्भुज हैं। रगमण्डप की कुछ महाविद्याओ के निरूपण मे हिन्दू देवकुल के मूर्ति-वैज्ञानिक-तत्वो का अनुकरण किया गया है। प्रज्ञप्ति की भुजा मे शक्ति के स्थान पर कुक्कुट का प्रदर्शन हिन्दू कौमारी का प्रभाव है।[2] गौरी का वाहन गोधा के स्थान पर वृषभ है जो हिन्दू शिवा का प्रभाव है। अप्रतिचक्रा की केवल दो भुजाओ मे चक्र, महाकाली के वाहन के रूप मे नर के स्थान पर हंस, महाज्वाला के साथ विडाल या शूकर के स्थान पर सिंहवाहन, काली की भुजा मे पुस्तक, गाधारी की भुजा मे पाश, और मानसी के वाहन के रूप मे हस के स्थान पर मेष के चित्रण कुछ ऐसी विशेषताए है जिनका जैन ग्रन्थो मे उल्लेख नही मिलता। अच्छुप्ता की भुजाओ मे खड्ग और फलक भी नही प्रदर्शित हैं।

देवकुलिका ४१ की षड्भुज महाविद्याओ की मध्य की दो भुजाओ से सामान्यत ज्ञानमुद्रा व्यक्त है, और उनकी निचली भुजाओ मे वरदमुद्रा और फल (या कमण्डलु) है। इस प्रकार महाविद्याओ के विशिष्ट आयुध केवल दो ऊपरी भुजाओ मे ही प्रदर्शित है। इनमे वाहन भी नही उत्कीर्ण हैं। रगमडप की महाविद्याओ और देवकुलिका४१ की महाविद्याओ के मूर्ति लक्षणो मे पर्याप्त अन्तर दृष्टिगत होता है। यहा अप्रतिचक्रा की दो मूर्तिया है। एक मे ऊपरी भुजाओ मे चक्र, एव दूसरे मे गदा और चक्र हैं। अकुश-पाश, त्रिशूल-चक्र, वीणा-पुस्तक एव स्रुक-पुस्तक धारण करने वाली चार महाविद्याओ की पहचान सम्भव नही है। केवल रोहिणी, वज्राकुशा, अप्रतिचक्रा, प्रज्ञप्ति, वज्रशृखला, पुरुषदत्ता, गौरी, मानवी एवं महाकाली महाविद्याओ की ही पहचान सम्भव है। महाविद्याओ के सामूहिक अकनो के अतिरिक्त उनकी अनेक स्वतन्त्र मूर्तिया भी है। इनमे मुख्यत रोहिणी, अप्रतिचक्रा,वज्राकुशा, वज्रशृङ्खला, वैरोट्या,[3] पुरुषदत्ता, अच्छुप्ता[4] एव महामानसी की मूर्तिया हैं। मानवी, गौरी, गाधारी एव मानसी की केवल कुछ ही मूर्तिया हैं। षोडशभुज रोहिणी (देवकुलिका ११), अच्छुप्ता (देवकुलिका ४३), वैरोट्या (देवकुलिका ४९) एव विशतिभुज महामानसी (देवकुलिका ३९) की मूर्तिया लाक्षणिक दृष्टि मे विशेष महत्वपूर्ण हैं।

महाविद्याओ के अतिरिक्त अम्बिका, सरस्वती, शान्तिदेवी[5] एव महालक्ष्मी की भी अनेक मूर्तिया हैं। सिंहवाहना अम्बिका की द्विभुज और चतुर्भुज मूर्तिया हैं (चित्र ५४)। हसवाहना सरस्वती की भुजाओ मे वरदाक्ष (कमण्डलु), सनाल-पद्म, पुस्तक और वीणा (या स्रुक) है। सरस्वती की एक षोडशभुज मूर्ति देवकुलिका ४४ के वितान पर है। महालक्ष्मी सर्वदा ध्यानमुद्रा मे विराजमान है और उसके शीर्ष भाग मे दो गजो की मूर्तिया उत्कीर्ण है। देवी की निचली भुजाएं गोद मे हैं और ऊपरी भुजाओ मे पद्म प्रदर्शित है। देवी के पद्मासन पर कभी-कभी नवनिधि के सूचक नौ घट उत्कीर्ण हैं।

---

१ रंगमण्डप की महाविद्याओ के निरूपण मे मुख्यत निर्वाणकलिका के निर्देशो का पालन किया गया है।

२ विमलवसही की ही कुछ मूर्तियो मे प्रज्ञप्ति के दोनो हाथो मे शूल भी प्रदर्शित है।

३ रगमण्डप से सटे वितान पर वैरोट्या की एक विशिष्ट मूर्ति है। सप्तफण पार्श्व मूर्ति के समान ही इसमे भी वैरोट्या चारो ओर सर्प की कुण्डलियों से वेष्टित है। उसके हाथो मे खड्ग, सर्प, खेटक और सर्प हैं।

४ अच्छुप्ता की भुजाओ मे खड्ग और खेटक के स्थान पर धनुष और बाण हैं।

५ शान्तिदेवी की सर्वाधिक मूर्तियां है।

सर्वानुभूति[1] एव ब्रह्मशान्ति यक्षो और अष्ट-दिक्पालो की भी कई मूर्तिया है। एक षड्भुज मूर्ति मे ब्रह्मशान्ति यक्ष का वाहन हस है और उसकी भुजाओ मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, छत्र, सनालपद्म, पुस्तक एव कमण्डलु है। रगमण्डप से सटे वितान पर इन्द्र की दशभुज मूर्तिया हैं। रगमण्डप के उत्तर और दक्षिण के छज्जो पर १० ऐसी मूर्तिया हैं जिनकी पहचान सम्भव नही है। देवकुलिका ४० के वितान पर महालक्ष्मी की एक मूर्ति है जिसके चारो ओर षड्भुज अष्ट-दिक्पालो की स्थानक आकृतिया बनी हैं।

विमलवसही मे १६ ऐसी देविया हैं जिनकी पहचान सम्भव नही है। प्रारम्भ की तीन देविया विमलवसही के अतिरिक्त कुमारिया, तारगा एव अन्य श्वेताम्बर स्थलो पर भी लोकप्रिय थी।[2] अधिकाश देविया चतुर्भुज हैं और उनकी निचली भुजाओ मे कोई मुद्रा (अभय या वरद) एव कमण्डलु (या फल) प्रदर्शित हैं। अत यहा हम केवल ऊपरी भुजाओ की ही सामग्री का उल्लेख करेंगे। पहली वृषभवाहना देवी की भुजाओ मे त्रिशूल एव सर्प हैं। दूसरी देवी की भुजाओ मे त्रिशूल हैं। दोनो देवियो पर हिन्दू शिवा का प्रभाव है। तीसरी सिंहवाहना देवी की भुजाओ मे अकुश एवं पाश हैं। चौथी देवी ने पद्मकलिका एव पाश धारण किया है। पाचवी देवी गदा एव पुस्तक[3], और छठी देवी पुस्तक एव त्रिशूल से युक्त हैं। सातवी गजवाहना देवी की भुजाओ मे अकुश है। आठवी देवी के हाथो मे गदा और पाश, और नवी देवी के हाथो मे कलश हैं। दसवी गोवाहना देवी की भुजाओ मे ध्वज है। ग्यारहवी देवी की भुजाओ मे त्रिशूल-घंट, और बारहवी देवी की भुजाओ मे धन का थैला है। तेरहवी सिंहवाहना देवी की भुजाओ मे पाश हैं। चौदहवी सिंहवाहना देवी वज्र एवं मुसल से युक्त हैं। पन्द्रहवी षड्भुज देवी का वाहन मृग है, और उसके करो मे शख एव धनुष हैं। सोलहवी गजवाहना देवी ने शख एव चक्र धारण किया है।

रगमण्डप के समीप के अर्धमण्डप के वितान पर भरत एव बाहुबली के युद्ध, और बाहुबली की तपश्चर्या के अकन हैं। समीप ही आर्द्रकुमार की कथा भी उत्कीर्ण है।[4] देवकुलिका २९ के वितान पर कृष्ण के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओ, जैसे कालियदमन, चाणूर-युद्ध, कन्दुकक्रीडा के दृश्य भी उत्कीर्ण हैं। देवकुलिका ४६ के वितान पर षोडशभुज नरसिंह की मूर्ति है। नरसिंह को हिरण्यकश्यपु का उदर विदीर्ण करते हुए दिखाया गया है।

लूणवसही—आबू (सिरोही) स्थित लूणवसही का निर्माण चौलुक्य शासक वीरधवल के महामन्त्री तेजपाल ने १२३० ई० (वि० स० १२८७) मे कराया।[5] यह श्वेताम्बर मन्दिर नेमिनाथ को समर्पित है। लूणवसही की भ्रमन्तिका मे कुल ४८ देवकुलिकाए हैं, जिनमे १२३० ई० से १२३६ ई० के मध्य की जैन मूर्तिया सुरक्षित हैं। कुछ रथिकाओ मे १२४० ई० की भी मूर्तिया हैं। विमलवसही के समान ही लूणवसही मे भी जिनो, महाविद्याओ, अम्बिका यक्षी एव शान्तिदेवी की मूर्तिया और जिनो एव कृष्ण के जीवनदृश्य है।

जिन मूर्तियो की सामान्य विशेषताए विमलवसही और कुमारिया की जिन मूर्तियो के समान है। मूलनायक के पार्श्वो मे कायोत्सर्ग मे जिनो के उत्कीर्णन की परम्परा यहा लोकप्रिय नही थी। गर्भगृह की नेमि-मूर्ति के अतिरिक्त अन्य किसी उदाहरण मे लाछन नही उत्कीर्ण है। केवल सुपार्श्व एव पार्श्व के साथ सर्पफणो के छत्र प्रदर्शित है। अन्य जिनो की पहचान केवल पीठिका लेखो मे उत्कीर्ण नामो के आधार पर की गई है। सभी जिनो के साथ यक्ष-यक्षी रूप मे सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। रगमण्डप के वितान पर ध्यानस्थ जिनो की ७२ मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। यह वर्तमान, भूत एव भविष्य के जिनो का सामूहिक अकन प्रतीत होता है। ऐसा ही एक पट्ट देवकुलिका ४१ मे भी सुरक्षित हैं। हस्तिशाला मे तीन मजिली नेमि की एक जिन चौमुखी सुरक्षित है। देवकुलिकाओ के वितानो पर जिनो के जीवनदृश्य हैं। देवकुलिका ९ और

१ सर्वानुभूति यक्ष की सर्वाधिक मूर्तिया हैं।

२ प्रथम दो देवियो के अतिरिक्त अन्य देवियो की मूर्तिया केवल प्रवेश-द्वारो पर ही हैं।

३ रगमण्डप की काली-मूर्ति से तुलना के आधार पर इसे काली से पहचाना जा सकता है।

४ जयन्तविजय, मुनिश्री, पू०नि०, पृ० ५६–६३

५ वही, पृ० ९१–९२

११ के वितानो पर नेमि के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। देवकुलिका १६ के वितान पर पार्श्व के जीवनदृश्य हैं। देवकुलिका १९ मे एक पट्ट है जिस पर मुनिसुव्रत के जीवन से सम्बन्धित अश्वावबोध एव शकुनिका विहार की कथाए उत्कीर्ण है।

रगमण्डप के वितान पर १६ महाविद्याओ की चतुर्भुज मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। व्रजाकुशी, काली, पुरुषदत्ता, मानवी, वैरोट्या, अच्छुप्ता, मानसी एवं महामानसी महाविद्याओ के अतिरिक्त अन्य सभी महाविद्याओ की मूर्तिया नवीन है। महाविद्याओ की लाक्षणिक विशेषताएं विमलवसही के रगमण्डप की १६ महाविद्या मूर्तियो के समान हैं। विमलवसही से भिन्न यहा मानवी की ऊपरी भुजाओ मे अंकुश और पाश प्रदर्शित हैं। रोहिणी, पुरुषदत्ता, गौरी, काली, वज्रशृखला एव अच्छुप्ता महाविद्याओ की कई स्वतन्त्र मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं।

अम्बिका (७), महालक्ष्मी (५) और शान्तिदेवी की भी कई मूर्तिया है। देवकुलिका २४ की अम्बिका मूर्ति के परिकर मे रोहिणी, मानवी, पुरुषदत्ता, अप्रतिचक्रा आदि महाविद्याओ एव ब्रह्मशान्ति यक्ष की लघु आकृतिया उत्कीर्ण हैं। रंगमण्डप के समीप के वितान पर अष्टभुज महालक्ष्मी की चार मूर्तिया है। इनमे देवी की पाच भुजाओ मे पद्म और शेष मे पाश, अभयमुद्रा और कलश हैं। हंसवाहना सरस्वती की कई चतुर्भुज एव षड्भुज मूर्तिया है। इनमे देवी वीणा, पद्म एव पुस्तक से युक्त है। चक्रेश्वरी यक्षी की केवल एक मूर्ति (देवकुलिका १०) है। गरुडवाहना यक्षी अष्टभुज है और उसके करो मे वरदमुद्रा, चक्र, व्याख्यानमुद्रा, छल्ला, छल्ला, पद्मकलिका, चक्र एव फल हैं। गूढमण्डप के प्रवेश-द्वार पर पद्मावती की दो मूर्तिया हैं। चतुर्भुजा पद्मावती वरदाक्ष, सर्प, पाश एव फल से युक्त है और उसका वाहन सम्भवत नक्र है। ब्रह्मशान्ति यक्ष की एक षड्भुज मूर्ति रंगमण्डप से सटे वितान पर है। श्मश्रु एव जटामुकुट से शोभित ब्रह्मशान्ति का वाहन हस है और उसकी भुजाओ मे वरदाक्ष, अभयमुद्रा, पद्म, स्रुक, वज्र और कमण्डलु प्रदर्शित हैं। धरणेन्द्र यक्ष की एक चतुर्भुज मूर्ति गूढमण्डप के प्रवेश-द्वार (दक्षिणी) के चौखट पर है। धरणेन्द्र की तीन अवशिष्ट भुजाओ मे वरदाक्ष, सर्प एव सर्प हैं।

लूणवसही मे चार ऐसी भी देविया है जिनकी पहचान सम्भव नही है। पहली देवी की ऊपरी भुजाओ में पाश एव अंकुश, दूसरी की भुजाओ मे धन का थैला, तीसरी की भुजाओ मे गदा एव अकुश, और चौथी की भुजाओ मे दण्ड हैं। रंगमण्डप से सटे वितान पर त्रिशूल एव शूल से युक्त एक षड्भुज देवता निरूपित है। देवता के दोनो पार्श्वों मे सिंह और शूकर की आकृतिया हैं। यह सम्भव कपर्दि यक्ष है। गूढमण्डप के पश्चिमी प्रवेश-द्वार की चौखट पर सर्पवाहन से युक्त एक चतुर्भुज देवता की मूर्ति है। देवता की भुजाओ मे बाण, गदा एव शख है। देवता की पहचान सम्भव नही है। सर्वानुभूति यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही है। अजमुख नैगमेषी की कई मूर्तिया है। नैगमेषी की एक भुजा मे सदैव एक बालक प्रदर्शित है। रगमण्डप के समीप के वितान पर कृष्ण-जन्म एव उनकी बाल-क्रीडा के कुछ दृश्य उत्कीर्ण हैं।

जालोर

जालोर की पहाडियो पर बारहवी-तेरहवी शती ई० के तीन श्वेताबर जैन मन्दिर है, जो आदिनाथ, पार्श्वनाथ एव महावीर को समर्पित है।[1] महावीर मन्दिर चौलुक्य शासक कुमारपाल के शासनकाल का है।[2] महावीर मन्दिर जालोर के जैन मन्दिरो मे विशालतम और शिल्प सामग्री की दृष्टि से समृद्ध भी है। आदिनाथ और पार्श्वनाथ मन्दिर तेरहवी शती ई० के हैं। सभी मन्दिरो की मूर्तिया खण्डित हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर के गूढमण्डप की दीवार मे बारहवी शती ई० का एक पट्ट है जिस पर मुनिसुव्रत के जीवन की अश्वावबोध एव शकुनिका विहार की कथाए उत्कीर्ण हैं। यहा केवल महावीर मन्दिर की मूर्तिवैज्ञानिक सामग्री का ही उल्लेख किया जायगा।

---

१ प्रो०रि०आ०स०इ०,वे०स०, १९०८-०८, पृ० ३४-३५, जैन, के० सी०, पू०नि०, पृ० १२०

२ जालोर लेख (११६४ ई०) से ज्ञात होता है कि महावीर मन्दिर मूलत पार्श्वनाथ को समर्पित था। मन्दिर के गर्भगृह में आज १७ वी शती ई० की महावीर मूर्ति है—नाहर, पी० सी०, जैन इन्स्क्रिप्शन्स, भाग १, कलकत्ता, १९१८, पृ० २३९, लेख स० ८९९

मन्दिर पर शान्तिदेवी (४०), महालक्ष्मी (७), महाविद्याओ, अम्बिका, सरस्वती एव दिक्पालो की चतुर्भुज मूर्तिया हैं। शान्तिदेवी की भुजाओ मे वरदमुद्रा, पद्म, पद्म और जलपात्र है। दो गजो से अभिषिक्त महालक्ष्मी के करो मे अभयाक्ष (या वरदाक्ष), पद्म, पद्म एव जलपात्र हैं। पद्मासन मे विराजमान महालक्ष्मी के आसन के नीचे नौ घट (नवनिधि के सूचक) उत्कीर्ण हैं। जघा पर महाविद्याओ की सवाहन मूर्तिया हैं। इनमे केवल रोहिणी (३), वज्राकुशी (७), अप्रतिचक्रा (३), महाकाली (२), गौरी (३), मानवी (२), अच्छुप्ता (१) एवं मानसी (५) की ही मूर्तिया हैं। महाकाली का वाहन मानव के स्थान पर पद्म है। गौरी के साथ वाहन रूप मे गोधा और वृषभ दोनो ही प्रदर्शित हैं। हंसवाहना मानसी की ऊपरी भुजाओ मे वज्र के स्थान पर खड्ग एव पुस्तक प्रदर्शित हैं।

मन्दिर पर अष्ट-दिक्पालो के दो समूह उत्कीर्ण हैं। इनमे सामान्य पारम्परिक विशेषताए प्रदर्शित हैं। गूढमण्डप की दक्षिणी भित्ति पर जटामुकुट एव मेषवाहन (?) से युक्त ब्रह्मशान्ति यक्ष (?) की एक मूर्ति है। यक्ष की तीन अवशिष्ट भुजाओ मे स्रुक, पुस्तक एव पद्म हैं। अम्बिका की दो मूर्तिया हैं। अधिष्ठान की एक मूर्ति में सिंहवाहना अम्बिका की निचली भुजाओं मे आम्रलुंबि एव बालक और ऊपरी भुजाओ मे दो चक्र प्रदर्शित हैं। गूढमण्डप की पूर्वी देवकुलिका के प्रवेश-द्वार की अप्रतिचक्रा एव वज्राकुशी महाविद्याओ की मूर्तियो मे तीन और पाच सर्पफणो के छत्र भी प्रदर्शित हैं। सम्भव है देवकुलिकाओ की सुपार्श्व या पार्श्व की मूर्तियो के कारण महाविद्याओ के मस्तक पर सर्पफणो के छत्र प्रदर्शित हुए हो। सम्प्रति इन देवकुलिकाओ मे सत्रहवी शती ई० की जिन मूर्तिया हैं।

मन्दिर मे कुछ ऐसी भी देविया हैं जिनकी पहचान सम्भव नही है। गूढमण्डप की पश्चिमी भित्ति की वृषभ-वाहना (?) देवी की ऊपरी भुजाओ मे दो वज्र हैं। गूढमण्डप की दक्षिणी जघा की दूसरी वृषभवाहना देवी वरदाक्ष, शूल, पद्मकलिका एव जलपात्र से युक्त है। गूढमण्डप एव मूलप्रासाद की पश्चिमी भित्तियो पर ऊपरी भुजाओं मे बाण और खेटक धारण करनेवाली दो देविया उत्कीर्ण हैं। एक उदाहरण मे वाहन पद्म है और दूसरे मे नर। गूढमण्डप की पूर्वी जघा की सिंहवाहना देवी की तीन अवशिष्ट भुजाओ मे वरदाक्ष, घण्टा और घण्टा प्रदर्शित हैं। गूढमण्डप की पूर्वी देवकुलिका की गजवाहना देवी वरदमुद्रा, अकुश, पाश एव जलपात्र से युक्त है।

आबू रोड स्टेशन से लगभग ६ किलोमीटर दूर स्थित चन्द्रावती (सिरोही) से ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की दस जैन मूर्तिया मिली हैं। इनमे द्विभुज अम्बिका एव जिनो की मूर्तिया हैं।[1] सिरोही जिले के आसपास के अन्य कई क्षेत्रो से भी जैन मूर्तिया मिली हैं। झरोला का शान्तिनाथ मन्दिर, नडियाद का महावीर मन्दिर एव झाडोली और मूगथला के जैन मन्दिर ग्यारहवी-बारहवी शती ई० के हैं। चित्तौड जिले का सम्मिधेश्वर मन्दिर बारहवी शती ई० का है। इस मन्दिर पर अप्रतिचक्रा, वज्राकुशी और वज्रशृखला महाविद्याओ एव दिक्पालो की मूर्तिया हैं। कोजरा, वाघिण, पाल्धी, फलोदी, मुग्थुर, सागानेर, झालरापाटन, अटरू, लोद्रवा, कृष्णविलास, नागोर, बघेरा एव मारोठ आदि स्थलो से भी ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की जैन मूर्तिया मिली हैं।[2] भरतपुर मे भरतपुर, कटरा, बयाना, जघीना, कोटा मे शेरगढ, बासवाडा मे तलवर एव अर्थुणा और अलवर मे परानगर एव बहादुरपुर से ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की अनेक दिगबर जैन मूर्तिया मिली है। बिजोलिया मे चाहमान शासको के काल मे निर्मित पार्श्वनाथ के पाच मन्दिरो के भग्नावशेष है।[3]

उत्तर प्रदेश

देवगढ (ललितपुर) एव मथुरा उत्तर प्रदेश के सर्वाधिक महत्वपूर्ण मध्ययुगीन जैन स्थल हैं। यहा से आठवी से बारहवीं शती ई० के मध्य की प्रचुर शिल्प सामग्री मिली है। उत्तर प्रदेश की जैन मूर्तिया दिगंबर सम्प्रदाय से सम्बद्ध

---

१ तिवारी, एम० एन० पी०, 'चन्द्रावती का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १५, अ० ४-५, पृ० १४५-४७

२ प्रो०रि०आ०स०इ०,वे०स०,१९०९, पृ० ६०,१९०९-१०, पृ० ४७,१९११-१२, पृ०५३, जैन, के०सी०, पू०नि०, पृ० ११७-१८, १२०-२२, १३२

३ टाड, जेम्स, एन्नाल्स ऐण्ड ऐंटिक्विटीज ऑव राजस्थान, ख० २, लन्दन, १९५७, पृ० ५९५

हैं।[1] इस क्षेत्र मे जिनो की सर्वाधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। जिनो मे ऋषभ[2] और पार्श्व सबसे अधिक लोकप्रिय थे। लोकप्रियता के क्रम मे ऋषभ और पार्श्व के बाद महावीर एव नेमि की मूर्तियां हैं। अजित, सम्भव, सुपार्श्व, विमल, चन्द्रप्रभ, सुविधि, शान्ति, मल्लि[3] एव मुनिसुव्रत की भी कई मूर्तिया मिली हैं। जिन मूर्तियो मे अष्ट-प्रातिहार्यों, लाछनो एव यक्ष-यक्षी युगलो का नियमित चित्रण हुआ है। ऋषभ, नेमि एव कुछ उदाहरणो मे पार्श्व, महावीर और शान्ति के साथ वैयक्तिक विशिष्टताओ वाले पारम्परिक या अपारम्परिक यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। अन्य जिनो के साथ सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी या सर्वानुभूति एव अम्बिका आमूर्तित हैं। नेमि के साथ देवगढ, मथुरा एव वटेश्वर की कुछ मूर्तियो मे बलराम और कृष्ण भी आमूर्तित हैं (चित्र २७, २८)।[4] चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती एव सिद्धायिका यक्षियो की स्वतन्त्र मूर्तिया भी मिली हैं। सर्वानुभूति यक्ष, बाहुबली, भरत चक्रवर्ती, सरस्वती, क्षेत्रपाल, जैन युगल, जिन चौमुखी एव जिन चौबीसी की भी अनेक मूर्तिया प्राप्त हुई हैं। ल० नवी शती ई० तक इस क्षेत्र की सभी जिन मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा (डी७) की ल० दसवी शती ई० की एक द्विभुज अम्बिका मूर्ति मे बलराम, कृष्ण, गणेश एव कुबेर की भी मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।

राज्य सग्रहालय, लखनऊ की दो ऋषभ (जे ७८) और मुनिसुव्रत (जे ७७६) मूर्तियों मे बलराम और कृष्ण की भी मूर्तिया बनी हैं। इसी सग्रहालय की १००६ ई० की एक मुनिसुव्रत मूर्ति (जे ७७६) के परिकर मे वस्त्राभूषणो से सज्जित जीवन्तस्वामी की दो लघु मूर्तिया चित्रित हैं। जीवन्तस्वामी की दो आकृतिया इस बात का सकेत देती हैं कि महावीर के अतिरिक्त भी अन्य जिनो के जीवन्तस्वामी स्वरूप की कल्पना की गई थी। इलाहाबाद सग्रहालय मे कौशाम्बी, पभोसा एव लच्छगिरि आदि स्थलो से प्राप्त दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की ९ जैन मूर्तिया सुरक्षित हैं। इनमे चन्द्रप्रभ, शान्ति एव जिन चौमुखी मूर्तिया हैं (चित्र १७, १९)।[5] सारनाथ संग्रहालय मे विमल की एक मूर्ति (२३६) है (चित्र १८)।

देवगढ

देवगढ (ललितपुर) मे नवी (८६२ ई०) से बारहवी शती ई० के मध्य की वैविध्यपूर्ण एव प्रचुर जैन मूर्ति सम्पदा सुरक्षित है। किसी समय इस स्थल पर ३५ से ४० जैन मन्दिर थे। सम्प्रति यहा ३१ जैन मन्दिर हैं। यहा लगभग १०००–११०० जैन मूर्तिया हैं। इनमे स्तम्भो, प्रवेश-द्वारो आदि की लघु आकृतिया सम्मिलित नही हैं।[6] देवगढ की जैन शिल्प सामग्री दिगबर सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। मन्दिर १२ (शान्तिनाथ मन्दिर) एव मन्दिर १५ नवी शती ई० के हैं।[7]

जैन मूर्तिविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से मन्दिर १२ की भित्ति की २४ यक्षिया सर्वाधिक महत्वपूर्ण है (चित्र ४८)।[8] २४ यक्षियो के सामूहिक चित्रण का यह प्राचीनतम उदाहरण है। मन्दिर की भित्ति पर कुल २५ देविया हैं। इनमे दो देवियो की मूर्तिया पश्चिम की देवकुलिकाओ की दीवारो के पीछे छिपी हैं।[9] भित्ति की यक्षिया त्रिभग मे हैं और उनके शीर्ष भाग मे ध्यानस्थ जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। जिनो एव यक्षियो के नाम उनकी आकृतियों के नीचे लिखे हैं। जिनो के साथ लाछन नही उत्कीर्ण है। यहा तक कि ऋषभ की जटाए और सुपार्श्व एव पार्श्व के सर्पफण भी नही प्रदर्शित हैं। २४ जिनो की सूची मे तीन जिनो (अजित, सम्भव, सुमति) के नाम नही है। दो उदाहरणो मे नाम स्पष्ट

---

१ राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे कुछ श्वेताबर मूर्तिया भी हैं–जे १४२, १४३, १४४, १४५, ७७६, ८८५, ९४९

२ ऋषभ की लोकप्रियता की पुष्टि न केवल मूर्तियो की सख्या वरन् ऋषभ के साथ अम्बिका एव लक्ष्मी जैसी लोकप्रिय देवियो के निरूपण से भी होती है।

३ राज्य सग्रहालय, लखनऊ–जे ८८५

४ राज्य सग्रहालय, लखनऊ-जे ७९३, ६५ ५३, पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा ३७ २७३८, देवगढ (मन्दिर २)

५ चद्र, प्रमोद, स्टोन स्कल्पचर इन दि एलाहाबाद म्यूजियम, बम्बई, १९७०, पृ० १३८, १४२-४४, १४७, १५३, १५८

६ जि०इ०दे०, पृ० १

७ कृष्ण देव, पू०नि०, पृ० २५

८ जि०इ०दे०, पृ० ९८–१०७

९ दोनो आकृतिया स्तन से युक्त हैं। अत. उनका देविया होना निश्चित है।

नहीं है और पश्चिमी देवकुलिका के पीछे की जिन मूर्ति के नाम की जानकारी सम्भव नही है। पहले जिन ऋषभ मे सातवें जिन सुपार्श्व की मूर्तिया पारम्परिक क्रम मे भी नही उत्कीर्ण हैं।[१]

यक्षियो मे केवल चक्रेश्वरी, अनन्तवीर्या, ज्वालामालिनी, वहुरूपिणी, अपराजिता, तारादेवी, अम्बिका, पद्मावती एव सिद्धायि के ही नाम दिगम्बर परम्परासम्मत हैं।[२] अन्य यक्षियो के नाम किसी साहित्यिक परम्परा मे नही प्राप्त होते। यह भी उल्लेखनीय है कि केवल चक्रेश्वरी, अम्बिका एव पद्मावती ही परम्परा के अनुसार सम्बन्धित जिनो (ऋषभ नेमि, पार्श्व) के साथ निरूपित है। लाक्षणिक विशेषताओ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि केवल अम्बिका का ही लाक्षणिक स्वरूप नियत हो सका था।[3] कुछ यक्षियो के निरूपण मे जैन महाविद्याओ की लाक्षणिक विशेषताओ का अनुकरण किया गया है। पर उनके नाम महाविद्याओ से भिन्न हैं। साहित्यिक साक्ष्य मे परिचित कुछ यक्षियो के अंकन करने, मयूरवाहिनी एव सरस्वती नामो मे सरस्वती और भिन्न नामो से महाविद्याओ के स्वरूप का अनुकरण करने के बाद भी चौवीस की सख्या पूरी न होने पर अन्य यक्षिया सादी, समरूप एव व्यक्तिगत विशिष्टताओ से रहित हैं। इस प्रकार देवगढ मे प्रत्येक जिन के साथ एक यक्षी की कल्पना तो की गई पर अम्बिका के अतिरिक्त अन्य किसी यक्षी की मूर्तिवैज्ञानिक विशेपताए सुनिश्चित नही हुई।

देवगढ की स्वतन्त्र जिन मूर्तिया अष्ट-प्रातिहार्यों, लाछनो एव यक्ष-यक्षी युगलो से युक्त हैं (चित्र ८,१५,३८)।[४] जिन मूर्तियो मे लघु जिन आकृतियो एवं नवग्रहो के चित्रण विशेष लोकप्रिय थे। कभी-कभी परिकर की २३ लघु जिन मूर्तिया मूलनायक के साथ मिलकर जिन चौवीसी का चित्रण करती हैं। ऋषभ की कुछ मूर्तियो मे स्कन्धो के नीचे तक लटकती लम्बी जटाए प्रदर्शित हैं। पार्श्व की सर्पकुण्डलिया भी घुटनो या चरणो तक प्रसारित हैं। एक उदाहरण मे (मन्दिर ६) पार्श्व के दोनो ओर नाग आकृतिया और दूसरे (मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी) मे पार्श्व के आसन पर लाछन रूप मे कुक्कुट-सर्प अंकित हैं (चित्र ३१, ३२)। देवगढ मे केवल ११ जिनो की मूर्तिया मिली हैं। ये जिन ऋषभ (७० से अधिक), अजित (६), सम्भव (१०), अभिनन्दन (१), पद्मप्रभ (१), सुपार्श्व (४), चन्द्रप्रभ (१०), शान्ति (६), नेमि (२६), पार्श्व (५० से अधिक) एव महावीर (९) हैं (चित्र ८, १५, २७, ३१, ३२, ३८)।[५] पारम्परिक यक्ष-यक्षी केवल ऋषभ,[६] नेमि एव पार्श्व के साथ निरूपित है। चन्द्रप्रभ, शान्ति एव महावीर के साथ स्वतन्त्र किन्तु परम्परा में अवर्णित यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। अन्य जिनो के साथ सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण है। कुछ उदाहरणो मे ऋषभ एव महावीर के साथ भी यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं।[७] सर्वानुभूति एव अम्बिका देवगढ के सर्वाधिक लोकप्रिय यक्ष-यक्षी हैं। लोकप्रियता के क्रम मे गोमुख-चक्रेश्वरी का दूसरा स्थान है।[८] मन्दिर २ की ल० दसवी शती ई० की एक नेमि मूर्ति मे वलराम और कृष्ण भी आमूर्तित हैं (चित्र २७)।

जिनो की स्वतन्त्र मूर्तियो के अतिरिक्त देवगढ मे द्वितीर्थी (५०), त्रितीर्थी (१५), चौमुखी (५०) मूर्तिया एव चौवीसी पट्ट भी हैं (चित्र ६२, ६४, ६५, ७५)। द्वितीर्थी एव त्रितीर्थी जिन मूर्तियो मे दो या तीन जिन कायोत्सर्ग-

---

१ ऋषभ के पूर्व अभिनन्दन और बाद मे वर्धमान का उल्लेख हुआ है। २ तिलोयपण्णत्ति ४ ९३७-३९

३ यक्षियो की विस्तृत लाक्षणिक विशेषताएं छठें अध्याय मे विवेचित हैं।

४ ऋषभ एव पार्श्व की कुछ विशाल मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी नही निरूपित हैं। पार्श्व के साथ लाछन एक ही उदाहरण मे उत्कीर्ण है।

५ एक त्रितीर्थी जिन मूर्ति मे कुंथु और शीतल की भी मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।

६ मन्दिर ४ की १०वी शती ई० की एक ऋषभ मूर्ति मे यक्ष अनुपस्थित है और सिंहासन छोरो पर अम्बिका एव चक्रेश्वरी निरूपित हैं।

७ मन्दिर ४, ८ और ११ की ऋषभ, शान्ति एवं महावीर मूर्तियो में यक्षी अम्बिका है। एक मे अम्बिका के मस्तक पर सर्पफण का छत्र भी प्रदर्शित है।

८ मन्दिर १ की चन्द्रप्रभ मूर्ति मे यक्ष गोमुख है। मन्दिर १६ की नेमि मूर्ति मे यक्ष-यक्षी गोमुख एव चक्रेश्वरी हैं।

मुद्रा मे साधारण पीठिका या सिंहासन पर प्रातिहार्यों एव लाछनो के साथ खडे है। कुछ उदाहरणो मे (मन्दिर १,१९,२८, ल० ११वी-१२वी शती ई०) मे यक्ष-यक्षी युगल भी चित्रित है। मन्दिर १ और २ की ल० ग्यारहवी शती ई० की दो त्रितीर्थी मूर्तियो मे जिनो के साथ क्रमश· सरस्वती और बाहुबली की मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं (चित्र ६५, ७५)।[1] जिन चौमुखी मूर्तियो मे सामान्यत केवल दो ही जिनो की पहचान क्रमश ऋषभ एव पार्श्व (या सुपार्श्व) से सम्भव है। केवल एक चौमुखी (मन्दिर २६) मे वृषभ, कपि, अर्धचन्द्र एव मृग लाछनो के आधार पर सभी जिनो की पहचान सम्भव है। दो उदाहरणो (मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी) मे चारो जिनो के साथ यक्ष-यक्षी भी आमूर्तित हैं। स्थानीय साहू जैन सग्रहालय में एक जिन चौबीसी पट्ट भी है। पट्ट की २४ जिन मूर्तिया लाछनो, अष्ट-प्रातिहार्यों एव यक्ष-यक्षी युगलो से युक्त है। मन्दिर ५ मे १००८ जिनो का चित्रण करने वाली एक विशाल प्रतिमा (११वी शती ई०) है।

देवगढ मे ऋषभ पुत्र बाहुबली की छह मूर्तिया (१० वी–१२ वी शती ई०) हैं (चित्र ७४, ७५)।[2] बाहुबली कायोत्सर्ग-मुद्रा मे खडे हैं और उनकी भुजाओ, चरणो एव वक्षस्थल से माधवी लिपटी है। शरीर पर वृश्चिक एव सर्प आदि जन्तु भी उत्कीर्ण हैं।[3] ऋषभ पुत्र भरत चक्रवर्ती की भी चार (१० वी–१२ वी शती ई०) मूर्तिया हैं (चित्र ७०)। इनमे भरत कायोत्सर्ग मे खडे हैं और उनके आसन पर गज एव अश्व आकृतिया, और पार्श्वो मे कुवेर, नवनिधि के सूचक नवघट एव चक्रवर्ती के अन्य लक्षण (चक्र, वज्र, खड्ग) चित्रित हैं।[4]

यक्षियो मे अम्बिका सर्वाधिक लोकप्रिय थी। उसकी ५० से भी अधिक मूर्तिया मिली हैं (चित्र ५१)। अम्बिका के बाद सर्वाधिक मूर्तिया चक्रेश्वरी की हैं। चक्रेश्वरी की चतुर्भुज मे विशतिभुज मूर्तिया हैं (चित्र ४५, ४६)। रोहिणी, पद्मावती एवं सिद्धायिका (मन्दिर ५, उत्तरग) यक्षियो और सरस्वती एवं लक्ष्मी की भी कई मूर्तिया हैं (चित्र ४७, ६५)। मन्दिर १२ के अर्धमण्डप के स्तम्भ (९वी शती ई०) पर ब्रह्मशान्ति यक्ष (या अग्नि) की एक चतुर्भुज मूर्ति है। देवता की भुजाओ मे अभयमुद्रा, स्रुक, पुस्तक एव कलश प्रदर्शित है। यहा क्षेत्रपाल (६) और कुवेर (? मन्दिर ८) की भी मूर्तिया हैं। मन्दिर १२ के प्रवेश-द्वार पर १६ मागलिक स्वप्न उत्कीर्ण हैं। मन्दिर ५, १२ और ३१ के प्रवेश-द्वारो, स्वतन्त्र उत्तरंगो एवं जिन मूर्तियो पर नवग्रहो की आकृतिया बनी है। द्वारशाखाओ पर मकरवाहिनी गगा और कूर्म-वाहिनी यमुना की मूर्तिया हैं। जैन युगलो की ४० मूर्तिया है, जिनमे पुरुष एव स्त्री दोनो की एक भुजा मे बालक, और दूसरे मे पुष्प (या फल या कोई मुद्रा) प्रदर्शित हैं। मन्दिर ४ और ३० मे जिनो की माताओ की दो मूर्तिया (११ वी शती ई०) हैं। देवगढ मे जैन आचार्यों का चित्रण विशेष लोकप्रिय था। स्थापना के समीप विराजमान जैन आचार्यों की दाहिनी भुजा से व्याख्यान-(या ज्ञान-या-अभय-) मुद्रा व्यक्त है और बायी मे पुस्तक है।

देवगढ के मन्दिर १८ की द्वारशाखाओ पर जैन-परम्परा-विरुद्ध कुछ चित्रण हैं। मयूर पीचिका से युक्त एक नग्न जैन साधु को एक स्त्री के साथ आलिंगन की मुद्रा मे दिखाया गया है।

देवगढ़ के अतिरिक्त मदनपुर, दुदही, चादपुर एव सिरोनी खुर्द आदि स्थलो से भी ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की जैन मूर्तिया मिली हैं। इन स्थलो से मुख्यत ऋषभ, पार्श्व, शान्ति, सम्भव, चन्द्रप्रभ, चक्रेश्वरी, अम्बिका, सरस्वती एव क्षेत्रपाल की मूर्तिया मिली हैं।[5]

---

१ तिवारी, एम० एन० पी०, 'ए यूनीक त्रि-तीर्थिक जिन इमेज फ्राम देवगढ', ललितकला, अ० १७, पृ० ४१–४२, 'ए नोट आन सम बाहुबली इमेजेज फ्राम नार्थ इण्डिया', ईस्ट वे०, ख० २३, अ० ३–४, पृ० ३५२–५३

२ तिवारी, एम०एन०पी०, 'बाहुबली', पू०नि०, पृ० ३५२–५३

३ जिन मूर्तियो के समान ही बाहुबली के साथ भी अष्ट-प्रातिहार्य और यक्ष-यक्षी युगल (मन्दिर २, ११) प्रदर्शित हैं।

४ १०वी–११वी शती ई० की दो मूर्तिया मन्दिर २ और १, एव एक मूर्ति मन्दिर १२ की चहारदीवारी पर हैं।

५ शास्त्री, परमानन्द जैन, 'मध्य भारत का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १९, अ०१–२, पृ० ५७–५८, ब्रुन, क्लाज, 'जैन तीर्थज इन मध्य देश दुदही, चादपुर', जैनयुग, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० २९–३३, वर्ष २, अप्रैल १९५९, पृ० ६७–७०

मध्य प्रदेश

मध्य प्रदेश मे लगभग सभी क्षेत्रो मे आठवी से बारहवी शती ई० के मध्य के जैन मन्दिर एव मूर्ति अवशेष मिले हैं। ये अवशेष मुख्यत ग्यारसपुर, खजुराहो, गधावल, अहाड, पधावली, नरवर, ऊन, नवागढ, ग्वालियर, सतना (पतियानदाई मन्दिर), अजयगढ, चन्देरी, उज्जैन, गुना, शिवपुर, शहडोल, तेरही, दमोह, बानपुर आदि स्थलो पर हैं। मध्य प्रदेश का जैन शिल्प दिगबर सम्प्रदाय मे सम्बद्ध है।

मध्य प्रदेश मे जिन मूर्तिया सर्वाधिक हैं। इनमे ऋषभ, पार्श्व एव महावीर की मूर्तिया सबसे अधिक हैं। अजित, सम्भव, सुपार्श्व, पद्मप्रभ, शान्ति, मुनिसुव्रत एवं नेमि की भी पर्याप्त मूर्तिया हैं। जिन मूर्तियो मे लाछनो, अष्ट-प्रातिहार्यो[1] एव यक्ष-यक्षी युगलो का नियमित अकन हुआ है। कुछ उदाहरणो मे नवग्रह भी उत्कीर्ण हैं। पारम्परिक यक्ष-यक्षी केवल ऋषभ, नेमि, पार्श्व एव कुछ उदाहरणो मे महावीर के साथ निरूपित है। अन्य जिना के साथ सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी हैं। जिनो की द्वितीर्थी, त्रितीर्थी, चौमुखी एव चौवीसी मूर्तिया भी मिली हैं। ७२ और १०८ जिनो का अकन करने वाले पट्ट भी मिले हैं।

यक्षियो मे केवल चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती एव सिद्धायिका की ही स्वतन्त्र मूर्तिया मिली है। इनमे अम्बिका एव चक्रेश्वरी की सर्वाधिक मूर्तिया हैं। पतियानदाई मन्दिर (सतना) की ग्यारहवी शती ई० की एक अम्बिका मूर्ति के परिकर मे अन्य २३ यक्षिया भी निरूपित हैं (चित्र ५३)। यह मूर्ति सम्प्रति इलाहाबाद सगहालय (ए०एम० २९३) मे है।[2] यक्षो मे केवल गोमुख एव सर्वानुभूति की ही स्वतन्त्र मूर्तिया मिली हैं। महाविद्याओ के चित्रण का एकमात्र सम्भावित उदाहरण खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर के मण्डोवर पर देखा जा सकता है।[3] सरस्वती, लक्ष्मी, जैन युगलो, बाहुबली, जैन आचार्यो, १६ मागलिक स्वप्नो आदि के भी अनेक उदाहरण हैं।

सतना के समीप का पतियानदाई मन्दिर ल० सातवी-आठवी शती ई० का है।[4] बटोह का गाडरमल जैन मन्दिर ल० नवी-दसवी शती ई० का है। ग्वालियर किले एव समीप के स्थलो से गुप्तकाल से आधुनिक युग तक की जैन मूर्तिया मिली हैं। ग्वालियर स्थित तेली के मन्दिर से ल० नवी शती ई० की एक ऋषभ मूर्ति मिली है।[5] ग्यारसपुर एव खजुराहो के जैन मूर्ति अवशेषो का यहा विस्तार मे उल्लेख किया गया है।

ग्यारसपुर

ग्यारसपुर (विदिशा) का मालादेवी मन्दिर दिगबर जैन मन्दिर है। कुछ जैन मूर्तिया ग्यारसपुर के हिन्दू मन्दिर बजरामठ के प्रकोष्ठो मे भी सुरक्षित हैं।

मालादेवी मन्दिर—मालादेवी मन्दिर का निर्माण नवी शती ई० के उत्तरार्ध[6] या दसवी शती ई० के प्रारम्भ[7] मे हुआ। कुछ समय पूर्व तक इसे हिन्दू मन्दिर समझा जाता था।[8] गर्भगृह एवं भित्ति की जिन एव चक्रेश्वरी और अम्बिका

---

१ अष्ट-प्रातिहार्यो मे सामान्यत अशोक वृक्ष नही उत्कीर्ण है।

२ कनिंघम, ए०, आ०स०इ०रि०, ख० ९, पृ० ३१–३३, प्रो०रि०आ०स०इ०, वे०स०, १९१९–२०, पृ० १०८–०९ स्ट०जै०आ०, पृ० १८

३ द्रष्टव्य, तिवारी, एम० एन० पी०, 'ए नोट ऑन दि फिगर्स ऑव सिक्सटीन जैन गॉडेसेस ऑन दि आदिनाथ टेम्पल् ऐट खजुराहो', ईस्ट वे० (स्वीकृत)

४ कनिंघम, ए०, पू०नि०, पृ० ३१–३३

५ कनिंघम, ए०, आ०स०इ०रि०, १८६४–६५, ख० २, पृ० ३६२–६५, स्ट०जै०आ०, पृ० २३–२४

६ कृष्ण देव, 'मालादेवी टेम्पल् ऐट ग्यारसपुर', म०जै०वि०गो०जु०वा, बम्बई, १९६८, पृ० २६०

७ ब्राउन, पर्सी, पू०नि०, पृ० ११५   ८ कृष्ण देव, पू०नि०, पृ० २६९

मूर्तियों के आधार पर इसका जैन मन्दिर होना निर्विवाद है ।[1] गर्भगृह मे ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की पाच जिन मूर्तिया हैं । गर्भगृह की दक्षिणी भित्ति पर सिंह-लाछन से युक्त महावीर की एक ध्यानस्थ मूर्ति (१० वी शती ई०) है । शान्ति एव नेमि की दसवी शती ई० की दो मूर्तिया मण्डप की उत्तरी और दक्षिणी रथिकाओ मे सुरक्षित है । मन्दिर की जघा की रथिकाओ मे दिक्पाल[2] एव जैन यक्ष और यक्षियो की मूर्तिया है ।

मन्दिर के मण्डोवर की रथिकाओ मे द्विभुज से द्वादशभुज देवियो की मूर्तिया है । अधिकाश देवियो की निश्चित पहचान सम्भव नही है ।[3] केवल चक्रेश्वरी (३),अम्बिका (२),पद्मावती (४) यक्षियो, पार्श्व यक्ष (१) और सरस्वती की ही पहचान समव है । उत्तरी अधिष्ठान की एक चतुर्भुज देवी की तीन अवशिष्ट भुजाओ मे अभयमुद्रा, पद्म और पद्म प्रदर्शित है । देवी लक्ष्मी या शान्तिदेवी है । गर्भगृह की भित्ति पर भी पद्म धारण करनेवाली द्विभुज देवी की आठ मूर्तिया है । जघा की बहुभुजी देविया द्विपद्मासन पर ललितमुद्रा मे विराजमान है ।

पूर्वी भित्ति की अष्टभुजा देवी के आसन के नीचे दो मुखो वाला मयूर जैसा कोई पक्षी (सम्भवत कुक्कुट-सर्प) है । देवी की अवशिष्ट भुजाओ मे तूणीर, पद्म, चामर, चामर, ध्वज, सर्प और धनुष प्रदर्शित हैं । कृष्णदेव ने वाहन को कुक्कुट-सर्प माना है और उसी आधार पर देवी की सम्भावित पहचान पद्मावती मे की है ।[4] पर उसी स्थल की अन्य पद्मावती मूर्तियो के शीर्षभाग मे सर्पफणो का प्रदर्शन, जो इस मूर्ति मे अनुपस्थित हैं, इस पहचान मे बाधक है । यह देवी दूसरी यक्षी प्रज्ञप्ति, या तेरहवी यक्षी वैरोट्या भी हो सकती है ।

दक्षिणी जघा की गजवाहना एव चतुर्भुजा देवी के करो मे खड्ग, चक्र, खेटक और शख हैं । गजवाहन एवं चक्र के आधार पर देवी की समावित पहचान पाचवी यक्षी पुरुषदत्ता से की जा सकती है । दक्षिणी जघा की दूसरी देवी अष्टभुज है और उसका वाहन अश्व है । देवी की अवशिष्ट भुजाओ मे खड्ग, पद्म (जिसका निचला भाग शृखला के समान है), कलश, घण्टा, फलक, आम्रलुम्बि और फल प्रदर्शित हैं । अश्ववाहन और खड्ग के आधार पर देवी की सम्भावित पहचान छठी यक्षी मनोवेगा से की जा सकती हैं । दक्षिणी जघा की तीसरी मृगवाहना देवी चतुर्भुजा है । देवी की भुजाओ मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, नीलोत्पल एव फल है । मृगवाहन और पद्म एवं वरदमुद्रा के आधार पर देवी की सम्भावित पहचान ग्यारहवी यक्षी मानवी से की जा सकती है ।

पश्चिमी जघा की चतुर्भुजा देवी के पद्मासन के समीप मकरमुख (वाहन) उत्कीर्ण है । आसन के नीचे एक पक्ति मे नवनिधि के सूचक नौ घट है । देवी की अवशिष्ट भुजाओ मे पद्म एव दर्पण है । मकरवाहन और पद्म के आधार पर देवी की सम्भावित पहचान बारहवीं यक्षी गाधारी से की जा सकती है । पर नौ घटो का चित्रण इस पहचान मे बाधक है ।

उत्तरी अधिष्ठान की एक द्वादशभुज देवी लोहासन पर विराजमान है । लोहासन के नीचे सम्भवत गजमस्तक उत्कीर्ण है । देवी की सुरक्षित भुजाओ मे पद्म, वज्र, चक्र, शख, पुष्प और पद्म हैं । लोहासन और शख एव चक्र के आधार पर देवी की पहचान दूसरी यक्षी रोहिणी मे की जा सकती है । उत्तरी जघा पर झषवाहना चतुर्भुजा देवी निरूपित है । देवी के करो मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, पद्म और फल है। वाहन के आधार पर देवी की पहचान किसी दिगबर यक्षी से सम्भव नही है । श्वेताबर परम्परा मे झषवाहन और पद्म पन्द्रहवी यक्षी कन्दर्पा से सम्बन्धित हैं ।

पूर्वी जंघा पर अश्ववाहना चतुर्भुजा देवी आमूर्तित है । देवी के करो मे वज्र,दड (शीर्ष भाग पर पखयुक्त मानव आकृति), चामर और छत्र हैं । कृष्णदेव ने देवी की पहचान हिन्दू देव रेवन्त की शक्ति से की है ।[5] जैन मूर्तियो के सन्दर्भ मे यह पहचान उचित नही प्रतीत होती है । सम्भवत यह सातवी यक्षी मनोवेगा है । गर्भगृह की जघा पर द्विभुज सरस्वती

---

१ मूर्तियो के शीर्ष भाग मे लघु जिन आकृतिया भी उत्कीर्ण हैं ।

२ उत्तरी जंघा पर कुबेर एव इन्द्र दिक्पालो की द्विभुज मूर्तिया है । कुबेर का वाहन गज के स्थान पर मेष है ।

३ हमने दिगबर ग्रन्थो के आधार पर देवियो की सम्भावित पहचान के प्रयास किये हैं ।

४ कृष्ण देव, पू०नि०, पृ० २६२–६३

५ कृष्ण देव, पू०नि०, पृ० २६५

की तीन स्थानक मूर्तिया है। दो उदाहरणो मे सरस्वती की भुजाओ मे पुस्तक एव पद्म (या व्याख्यान-मुद्रा) हैं। उत्तरी जंघा की तीसरी मूर्ति मे दोनो भुजाओ मे वीणा है।

वजरामठ—यह दसवी शती ई० के प्रारम्भ का हिन्दू मन्दिर है।[१] पर इसके प्रकोष्ठो मे ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की जैन मूर्तिया रखी हैं। मन्दिर के मण्डोवर पर सूर्य, विष्णु, नरसिंह, गणेश, वराह आदि हिन्दू देवो की मूर्तिया हैं। बायी ओर के पहले प्रकोष्ठ मे लाछनरहित किन्तु जटाओ से शोभित ऋषभ की एक विशाल मूर्ति (चौ १२) है। मध्य के प्रकोष्ठ मे भी लाछन, जटाओ एव पारम्परिक यक्ष-यक्षी से युक्त ऋषभ की एक मूर्ति है। अन्तिम प्रकोष्ठ मे ऋषभ, नेमि, सुपार्श्व एव पार्श्व की चार कायोत्सर्ग मूर्तिया हैं।

खजुराहो

खजुराहो (छतरपुर) के मन्दिर अपनी वास्तुकला एव शिल्प वैभव के लिए विश्व प्रसिद्ध हैं। हिन्दू मन्दिरो के साथ ही यहा चन्देल शासको के काल के कई जैन मन्दिर भी हैं।[२] सम्प्रति यहा तीन प्राचीन (पार्श्वनाथ, आदिनाथ, घटई) और ३२ नवीन जैन मन्दिर है।[3] वर्तमान मे पार्श्वनाथ और आदिनाथ मन्दिर ही पूर्णत: सुरक्षित हैं। खजुराहो की जैन शिल्प सामग्री दिगबर सम्प्रदाय से सम्बद्ध है[४] और उसकी समय-सीमा ल० ९५० ई० से ११५० ई० है।

पार्श्वनाथ मन्दिर—पार्श्वनाथ मन्दिर जैन मन्दिरो मे प्राचीनतम और स्थापत्यगत योजना एव मूर्त अलकरणो की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट एव विशालतम है। कृष्णदेव ने पार्श्वनाथ मन्दिर को धग के शासनकाल के प्रारम्भिक दिनों (९५०–७० ई०) मे निर्मित माना है।[५] पार्श्वनाथ मन्दिर मूलत प्रथम तीर्थंकर ऋषभ को समर्पित था। गर्भगृह मे स्थापित १८६० ई० को काले प्रस्तर की पार्श्वनाथ मूर्ति के कारण ही कालान्तर मे इसे पार्श्वनाथ मन्दिर के नाम से जाना जाने लगा। गर्भगृह मे मूल प्रतिमा के सिंहासन और परिकर सुरक्षित हैं। मूल प्रतिमा की पीठिका पर ऋषभ के लाछन (वृषभ) और यक्ष-यक्षी (गोमुख एव चक्रेश्वरी) उत्कीर्ण हैं। साथ ही मूलनायक के पार्श्वों की सुपार्श्व और पार्श्व मूर्तिया भी सुरक्षित हैं। मण्डप के ललाट-बिम्ब पर भी चक्रेश्वरी की ही मूर्ति है।

मन्दिर की बाह्य भित्तियो पर तीन पक्तियो मे देव मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।[६] मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से केवल निचली दो पक्तियो की मूर्तिया ही महत्वपूर्ण हैं। ऊपरी पक्ति मे केवल पुष्पमाल से युक्त विद्याधर युगल, गन्धर्व एव किन्नर-किन्नरियो की उड्डीयमान आकृतिया उत्कीर्णित है। मध्य की पक्ति मे विभिन्न देव युगलो, लक्ष्मी एव जिनो (लाछन रहित) आदि की मूर्तिया है। निचली पक्ति मे जिनो, अष्ट-दिक्पालो, देवयुगलो (शक्ति के साथ आलिंगन-मुद्रा मे), अम्बिका यक्षी, शिव, विष्णु, ब्रह्मा एव विश्वप्रसिद्ध अप्सराओ[७] की मूर्तिया हैं।

---

१ ब्राउन, पर्सी, पू०नि०, पृ० ११५

२ कनिंघम, ए०, आ०स०इ०रि०, १८६४–६५, ख० २, पृ० ४३१–३५, ब्राउन, पर्सी, पू०नि०, पृ० ११२–१३

३ नवीन जैन मन्दिरो मे भी चन्देलकालीन जैन मूर्तिया रखी है। नवीन जैन मन्दिरो की सख्या का उल्लेख हमने १९७० मे उन मन्दिरो पर अकित स्थानीय सख्या के अनुसार किया है।

४ जिनो की निर्वस्त्र मूर्तिया और १६ मागलिक स्वप्नो के चित्रण दिगबर सप्रदाय की विशेषताए हैं। ज्ञातव्य है कि श्वेतांबर सम्प्रदाय मे मागलिक स्वप्नो की सख्या १४ है।

५ कृष्ण देव, 'दि टेम्पल्स ऑव खजुराहो इन सेन्ट्रल इण्डिया', ऐं०शि०इ०, अ० १५, पृ० ५५

६ ब्रुन, क्लाज, 'दि फिगर ऑव द्व लोअर रिलीफ्स आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल् ऐट खजुराहो', **आचार्य श्री विजयवल्लभसूरि स्मारक ग्रन्थ**, बबई, १९५६, पृ० ७–३५

७ पार्श्वनाथ मन्दिर की दर्पण देखती, पत्र लिखती, पैर से काटा निकालती, पैर मे पायजेब बाधती कुछ अप्सरा मूर्तिया अपनी भावभगिमाओ एवम् शिल्पगत विशेषताओ के कारण विश्वप्रसिद्ध है।

निचली दोनो पंक्तियो की देव युगल[1] एव स्वतन्त्र मूर्तियो मे देवता सदैव चतुर्भुज है। पर देवताओ की शक्तिया द्विभुजा हैं। सभी मूर्तिया त्रिभग मे खडी हैं। इन मूर्तियो मे शक्ति की एक भुजा आलिगन-मुद्रा मे है और दूसरी मे दर्पण या पद्म है।[2] तात्पर्य यह कि विभिन्न देवो के साथ पारम्परिक शक्तियो, यथा विष्णु के साथ लक्ष्मी, ब्रह्मा के साथ ब्रह्माणी, के स्थान पर सामान्य एव व्यक्तिगत विशेषताओ से रहित देवियां निरूपित हैं। स्वतन्त्र देव मूर्तियो मे शिव (१९), विष्णु (१०) एव ब्रह्मा (१) की मूर्तियां हैं। देवयुगलो मे शिव (९), विष्णु (७), ब्रह्मा (१), अग्नि (१), कुबेर (१), राम (१)[3] एव बलराम (१) की मूर्तिया है। अम्बिका (२), चक्रेश्वरी (१),सरस्वती (६),लक्ष्मी (५) एव त्रिमुख ब्रह्माणी (३) की भी मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। जिन, अम्बिका एव चक्रेश्वरी की मूर्तियो के अतिरिक्त मण्डोवर की अन्य सभी मूर्तिया हिन्दू देवकुल से सम्बन्धित और प्रभावित है। उत्तरी एव दक्षिणी शिखर पर काम-क्रिया मे रत दो युगल चित्रित हैं।[4] उल्लेखनीय है कि खजुराहो के दुलादेव, लक्ष्मण, कन्दरिया महादेव, देवी जगदम्बी एव विश्वनाथ मन्दिरो पर उत्कीर्ण काम-क्रिया से सम्बन्धित विभिन्न मूर्तियो मे अनेकश मुण्डित-मस्तक, निर्वस्त्र एव मयूरपीचिका लिए जैन साधुओ को रतिक्रिया की विभिन्न मुद्राओं मे दरशाया गया है। लक्ष्मण मन्दिर की उत्तरी भित्ति की ऐसी एक दिगम्बर मूर्ति मे जैन साधु के वक्ष स्थल मे श्रीवत्स चिह्न भी उत्कीर्ण है। हरिवशपुराण (२९ १–५) मे एक स्थान पर जिन मन्दिर मे सम्पूर्ण प्रजा के कौतुक के लिए कामदेव और रति की मूर्ति बनवाने और मन्दिर के कामदेव मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध होने के उल्लेख है। ये बाते जैन धर्म मे आये शिथिलन का संकेत देती हैं।

गर्भगृह की भीत्ति पर अष्ट-दिक्पाल, जिनो, बाहुबली एवं शिव (८) की मूर्तिया है। उत्तरगो पर द्विभुज नवग्रहो (३ समूह) और द्वार-शाखाओ पर मकरवाहिनी गगा और कूर्मवाहिनी यमुना की मूर्तिया हैं।

मण्डप की भित्ति की जिन मूर्तियो मे लाछन और यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण हैं। पर गर्भगृह की भित्ति की जिन मूर्तियो (९) मे लाछन[5], अष्ट-प्रातिहार्य एव यक्ष-यक्षी आमूर्तित है। यक्ष-यक्षी सामान्यत. अभयमुद्रा एव फल (या जल-पात्र) से युक्त है। लाछनो के आधार पर अभिनन्दन, सुमति (?), चन्द्रप्रभ एव महावीर की पहचान सम्भव है। मन्दिर की जिन मूर्तिया मूर्तिवैज्ञानिक दृष्टि से प्रारम्भिक कोटि की हैं। जिनो के स्वतन्त्र यक्ष-यक्षी युगलो के स्वरूप का निर्धारण अभी नहीं हो पाया था। गर्भगृह की दक्षिणी भित्ति पर बाहुबली की एक मूर्ति है।[6] सिंहासन पर कायोत्सर्ग मे निर्वस्त्र खडे बाहुबली के साथ जिन मूर्तियो की विशेषताए (सिंहासन, चामरधर, उड्डीयमान गन्धर्व) प्रदर्शित है। बाहुबली के पार्श्वों मे विद्याधरियो की दो आकृतिया भी उत्कीर्ण है।[7]

घण्टई मन्दिर—कृष्ण देव ने स्थापत्य, मूर्तिकला और लिपि सम्बन्धी साक्ष्यो के आधार पर घण्टई मन्दिर को दसवीं शती ई० के अन्त का निर्माण माना है।[8] मन्दिर के अर्धमण्डप के उत्तरग पर ललाट-बिम्ब के रूप मे अष्टभुज चक्रेश्वरी की मूर्ति उत्कीर्ण है जो मन्दिर के ऋषभदेव को समर्पित होने की सूचक है। उत्तरग पर द्विभुज नवग्रहो एव

---

१ देवयुगलो की कुछ मूर्तिया मन्दिर के अन्य भागो पर भी हैं।

२ विभिन्न देवताओ का शक्तियो के साथ आलिंगन-मुद्रा मे अकन जैन परम्परा के विरुद्ध है। जैन परम्परा मे कोई भी देवता अपनी शक्ति के साथ नही निरूपित है, फिर शक्ति के साथ और वह भी आलिगन-मुद्रा मे चित्रण का प्रश्न ही नही उठता।

३ मन्दिर के दक्षिणी शिखर पर रामकथा से सम्बन्धित एक दृश्य भी उत्कीर्ण है। क्लातमुख सीता अशोक वाटिका मे बैठी है और हनुमान उन्हे राम की अगूठी दे रहे हैं—तिवारी, एम०एन०पी०, 'ए नोट आन ऐन इमेज ऑव राम ऐण्ड सीता आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल, खजुराहो', जैन जर्नल, ख० ८, अ० १, पृ० ३०–३२

४ द्रष्टव्य, त्रिपाठी,एल०के०,'दि एराटिक स्कलपचर्स ऑव खजुराहो ऐण्ड देयर प्राबेबल एक्सप्लानेशन', भारती, अ० ३, पृ० ८२-१०४

५ केवल चार उदाहरणो मे लाछन स्पष्ट हैं।

६ प्राचीनतम मूर्ति जूनागढ सग्रहालय मे है।

७ हरिवशपुराण ११ १०१

८ कृष्ण देव, पू०नि०, पृ० ६०

गोमुख (८) की भी मूर्तिया हैं। गोमुख आकृतियो की भुजाओ मे पद्म और घट है। प्रवेश-द्वार पर १६ मागलिक स्वप्न और गंगा-यमुना की मूर्तिया भी अंकित है। छतो और स्तम्भो पर जिनो एव जैनाचार्यो की लघु मूर्तिया हैं।

आदिनाथ मन्दिर—योजना, निर्माण शैली एव मूर्तिकला की दृष्टि से आदिनाथ मन्दिर खजुराहो के वामन मन्दिर (ल० १०५०-७५ ई०) के निकट है। कृष्णदेव ने इसी आधार पर मन्दिर को ग्यारहवी शती ई० के उत्तरार्ध मे निर्मित माना है।[1] गर्भगृह मे ११५८ ई० की काले प्रस्तर की एक आदिनाथ मूर्ति है। ललाट-बिम्ब पर चक्रेश्वरी आमूर्तित है। मन्दिर के मण्डोवर पर मूर्तियो की तीन समानान्तर पक्तिया हैं। ऊपर की पक्ति मे गन्धर्व, किन्नर एव विद्याधर मूर्तिया हैं। मध्य की पक्ति मे चार कोनो पर त्रिभग मे आठ चतुर्भुज गोमुख आकृतिया उत्कीर्ण है। आठ गोमुख आकृतिया सम्भवत अष्ट-वासुकियो का चित्रण है।[2] इनके करो मे वरदमुद्रा, चक्राकार सनाल पद्म (या परशु), चक्राकार सनाल पद्म एव जलपात्र हैं। निचली पक्ति मे अष्ट-दिक्पालो की चतुर्भुज मूर्तिया हैं। दक्षिणी अधिष्ठान पर ललितमुद्रा मे आसीन चतुर्भुज क्षेत्रपाल की मूर्ति है। क्षेत्रपाल का वाहन श्वान् है और करो मे गदा, नकुलक, सर्प एव फल प्रदर्शित हैं। सिंहवाहना अम्बिका की तीन और गरुडवाहना चक्रेश्वरी की दो मूर्तिया हैं।

आदिनाथ मन्दिर के मण्डोवर की १६ रथिकाओ मे १६ देवियो की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। ये मूर्तिया मूर्ति-वैज्ञानिक दृष्टि से विशेष महत्व की हैं। भिन्न आयुधो एव वाहनो वाली स्वतन्त्र देवियो की सम्भावित पहचान १६ महाविद्याओ से की जा सकती है।[3] ललितमुद्रा मे आसीन या त्रिभग मे खडी देविया चार से आठ भुजाओ वाली हैं। उत्तर और दक्षिण की भित्तियो पर ७-७ और पश्चिम की भित्ति पर दो देविया उत्कीर्ण हैं।[4] सभी उदाहरणो मे रथिका-बिम्ब काफी विरूप हैं, जिसकी वजह से उनकी पहचान कठिन हो गई है। केवल कुछ ही देवियो के निरूपण मे पश्चिम भारत के लाक्षणिक ग्रन्थो के निर्देशो का आशिक अनुकरण किया गया है। सभी देविया वाहन से युक्त हैं और उनके शीर्ष भाग मे लघु जिन आकृतिया उत्कीर्ण हैं। देवियो के स्कन्धो के ऊपर सामान्यत. अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एव जलपात्र से युक्त देवियो की दो छोटी मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। दिगबर ग्रन्थो से तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर कुछ देवियो की सम्भावित पहचान के प्रयास किये गये हैं। वाहनो या कुछ विशिष्ट आयुधो या फिर दोनो के आधार पर जाबूनदा, गौरी, काली, महाकाली, गाधारी, अच्छुप्ता एव वैरोट्या महाविद्याओ की पहचान की गई है।

मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर वाहन से युक्त चतुर्भुज देविया निरूपित हैं। इनमे केवल लक्ष्मी, चक्रेश्वरी, अम्बिका एव पद्मावती की ही निश्चित पहचान सम्भव है।[5] दहलीज पर दो चतुर्भुज पुरुष आकृतिया ललितमुद्रा मे उत्कीर्ण हैं। इनकी तीन अवशिष्ट भुजाओ मे अभयमुद्रा, परशु एव चक्राकार पद्म हैं। देवता की पहचान सम्भव नही है। दहलीज के बाये छोर पर महालक्ष्मी की मूर्ति है। दाहिने छोर पर त्रिसर्पफणा और पद्मासना देवी की मूर्ति है। देवी की पहचान सम्भव नही है। प्रवेश-द्वार पर मकरवाहिनी गगा एव कूर्मवाहिनी यमुना और १६ मागलिक स्वप्न उत्कीर्ण हैं।

शान्तिनाथ मन्दिर—शान्तिनाथ मन्दिर (मन्दिर १) मे शान्ति की एक विशाल कायोत्सर्ग प्रतिमा है। कनिंघम ने इस मूर्ति पर १०२८ ई० का लेख देखा था, जो सम्प्रति प्लास्टर के अन्दर छिप गया है।[6]

---

१ वही, पृ० ५८

२ खजुराहो के चतुर्भुज एव दूलादेव हिन्दू मन्दिरो पर भी समान विवरणो वाली आठ गोमुख आकृतिया उत्कीर्ण हैं। इनकी भुजाओ मे वरदमुद्रा (या वरदाक्ष), त्रिशूल (या स्रुक), पुस्तक-पद्म एव जलपात्र प्रदर्शित हैं।

३ मध्य भारत मे १६ महाविद्याओ के सामूहिक चित्रण का यह एकमात्र सम्भावित उदाहरण है।

४ उत्तरी भित्ति की दो रथिकाओ के बिम्ब सम्प्रति गायब हैं।

५ तिवारी, एम० एन० पी०, 'खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर के प्रवेश-द्वार की मूर्तिया', अनेकान्त, वर्ष २४, अ० ५, पृ० २१८–२१

६ कनिंघम, ए०, आ०स०इं०रि०, १८६४–६५, ख० २, पृ० ४३४

प्राचीन जैन मन्दिरो के अतिरिक्त स्थानीय सग्रहालयो[1] एव नवीन जैन मन्दिरो मे भी जैन मूर्तिया सुरक्षित है। उनका भी सक्षेप मे उल्लेख अपेक्षित है। खजुराहो की प्राचीनतम जिन मूर्तिया पार्श्वनाथ मन्दिर की हैं। खजुराहो से दसवी से बारहवी शतीई० के मध्य की लगभग २५०जिन मूर्तिया मिली है (चित्र४२)।[2] ये मूर्तिया श्रीवत्स एव लाछनो से युक्त हैं। यहा जिनो की ध्यानस्थ मूर्तिया अपेक्षाकृत अधिक है। सुपार्श्व एव पार्श्व अधिकाशत कायोत्सर्ग मे निरूपित है। अष्ट-प्रातिहार्यो एव यक्ष-यक्षी युगलो से युक्त[3] जिन मूर्तियो के परिकर मे नवग्रहो एव जिनो की छोटी मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं। सभी जिनो के साथ स्वतन्त्र यक्ष-यक्षी नही निरूपित हैं। केवल ऋषभ (गोमुख-चक्रेश्वरी), नेमि (सर्वानुभूति-अम्बिका),पार्श्व (धरणेन्द्र-पद्मावती) एव महावीर (मातग-सिद्धायिका) के साथ ही पारम्परिक या स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। अन्य जिनो के साथ वैयक्तिक विशिष्टताओ से रहित सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी आमूर्तित है। खजुराहो मे केवल ऋषभ (६०), अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, शान्ति, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व (११) एव महावीर (९) की ही मूर्तिया हैं। यहा द्वितीर्थी (९), त्रितीर्थी (१, मन्दिर ८) और चौमुखी (१, पुरातात्विक सग्रहालय, खजुराहो १५८८) जिन मूर्तिया भी हैं (चित्र ६१, ६३)। मन्दिर १८ के उत्तरग पर किसी जिन के दीक्षा-कल्याणक का दृश्य है। जैन युगलो (७) एव आचार्यो की भी कई मूर्तिया हैं। जैन युगलो के शीर्ष भाग मे वृक्ष एव लघु जिन मूर्ति उत्कीर्ण है। स्त्री की वायी भुजा मे सदैव एक बालक प्रदर्शित है।

अम्बिका (११) एव चक्रेश्वरी (१३) खजुराहो की सर्वाधिक लोकप्रिय यक्षिया है (चित्र५७)। पार्श्वनाथ मन्दिर की दक्षिणी जघा की एक द्विभुज मूर्ति के अतिरिक्त अम्बिका सदैव चतुर्भुज है। चक्रेश्वरी चार से दस भुजाओ वाली है। पद्मावती की भी तीन मूर्तिया है। मन्दिर २४ के उत्तरग पर सिद्धायिका की भी एक मूर्ति है। अश्ववाहना मनोवेगा की एक मूर्ति पुरातात्विक सग्रहालय, खजुराहो (९४०) मे है। यक्षो मे केवल कुबेर की ही स्वतन्त्र मूर्तिया (४) मिली है।

अन्य स्थल

जबलपुर-मेंडाघाट मार्ग के समीप त्रिपुरी के अवशेष हैं जिसमे चक्रेश्वरी, पद्मावती, ऋषभ एव नेमि की मूर्तिया हैं।[4] बिल्हारी (जबलपुर) मे ल० दसवी शती ई० का जैन मन्दिर एव मूर्ति अवशेष है। मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर पार्श्व और बाहुबली की मूर्तिया हैं। यहा से चक्रेश्वरी एव बाहुबली की भी मूर्तिया मिली है। जबलपुर से अर की एक मूर्ति मिली है। शहडोल से ऋषभ, पार्श्व, पद्मावती, जैन युगल एवं जिन चौमुखी मूर्तिया (११वी शती ई०) प्राप्त हुई है (चित्र५५)। ऊन (इन्दौर) और अहाड (टीकमगढ) से ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की जैन मूर्तिया मिली हैं (चित्र ६७)।[5] अहाड से शान्ति (११८० ई०), कुथु, अर एव महावीर की मूर्तिया उपलब्ध हुई हैं। अहाड मे कुछ दूर बानपुर एव जतरा से भी जैन मूर्तिया (१२ वी–१३ वी शती ई०) मिली हैं। टीकमगढ स्थित नवागढ से बारहवी शती ई० के जैन मन्दिर एव मूर्ति अवशेष मिले हैं। यहा से अर (११४५ ई०) और पार्श्व की मूर्तिया मिली है।[6] विदिशा के बडोह एव पठारी से दसवी-ग्यारहवी शती ई० के जैन मन्दिर एवं मूर्तिया प्राप्त हुई हैं। पठारी से अम्बिका एवं महावीर की मूर्तिया मिली हैं। रीवा एव गुर्गी से जिनो एवं जैन युगलो की मूर्तिया (११ वी शती ई०) मिली हैं। देवास और गधावल से प्राप्त जैन मूर्तियो (११ वी–१२ वी शती ई०) मे पार्श्व एव विंशतिभुज चक्रेश्वरी की मूर्तिया उल्लेखनीय हैं।[7]

---

१ जैन मूर्तिया आदिनाथ मन्दिर के पीछे (शान्तिनाथ सग्रहालय), पुरातात्विक सग्रहालय एव जार्डिन सग्रहालय मे सुरक्षित है।

२ इस सख्या मे उत्तरगो, प्रवेश-द्वारो एव मन्दिरो के अन्य भागो की लघु जिन आकृतिया नही सम्मिलित हैं।

३ कुछ उदाहरणो मे ऋषभ, अजित, सुपार्श्व, पार्श्व, मुनिसुव्रत एव महावीर के साथ यक्ष-यक्षी नही निरूपित हैं।

४ शास्त्री, अजयमित्र, 'त्रिपुरी का जैन पुरातत्व', जैन मिलन, वर्ष १२, अ० २, पृ० ६९–७२

५ स्ट०जै०आ०, पृ० २३, जैन, नीरज, 'अतिशय क्षेत्र अहार', अनेकान्त, वर्ष १८, अ० ४, पृ० १७७–७९

६ जैन, नीरज, 'नवागढ : एक महत्वपूर्ण मध्ययुगीन जैन तीर्थ', अनेकान्त, वर्ष १५, अ० ६, पृ० २७७–७८

७ गुप्ता, एस०पी० तथा शर्मा, बी०एन०, 'गन्धावल और जैन मूर्तिया', अनेकान्त, ख० १९, अ० १-२, पृ०१२९-३०

विहार

विहार मे मुख्यत राजगिर (वैभार, सोनभण्डार, मनियार मठ), मानभूम एव वक्सर के विभिन्न स्थलो से जैन शिल्प सामग्री मिली है। इस क्षेत्र की मूर्तिया दिगवर सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं। जिन मूर्तियों की संख्या सबसे अधिक है। इनमे ऋषभ और पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तिया ह। साथ ही अजित, सम्भव, अभिनन्दन, नेमि एव महावीर की भी मूर्तिया मिली हैं। जिन मूर्तियो मे लाछन सदैव प्रदर्शित हैं पर श्रीवत्स, सिंहासन एव धर्मचक्र के चित्रण मे नियमितता नही प्राप्त होती है। जिन मूर्तियो मे दुन्दुभिवादक, गजो और यक्ष-यक्षी[1] की आकृतिया नही प्रदर्शित हैं। शीर्ष भाग मे अशोक वृक्ष का चित्रण विशेष लोकप्रिय था। अम्बिका, पद्मावती (?), जिन चौमुखी और जैन युगलो की भी कुछ मूर्तिया मिली हैं।

राजगिर की सभी पाच पहाडियो से प्राचीन जैन मूर्तिया मिली हैं।[2] इनमे वैभार पहाडी पर सर्वाधिक मूर्तिया हैं। उदयगिरि पहाडी के आधुनिक जैन मन्दिर मे पार्श्व की एक मूर्ति (९वी शतीई०) सुरक्षित है। वैभार पहाडी के आधुनिक जैन मन्दिर मे ऋषभ, सम्भव, पार्श्व, महावीर एव जैन युगलो की मूर्तिया हैं।[3] मनियार मठ से भी जैन मूर्तिया मिली हैं।[4] वैभार पहाडी की सोनभण्डार गुफाओ मे भी नवी-दसवी शती ई० की जिन मूर्तिया हैं।

मानभूम जिले के विभिन्न स्थलो से दसवी-बारहवी शती ई० की जैन मूर्तिया मिली है। अलुआरा ग्राम से २९ जैन कास्य मूर्तिया मिली हैं।[5] बोरम ग्राम के जैन मन्दिर और चन्दनक्यारी से ५ मील दूर कुम्हारी और कुमर्दग ग्रामों मे ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की जैन मूर्तिया हैं। बुधपुर, दारिका, पवनपुर, मानगढ, दुलमी, वेगलर, अनई, कतरासगढ एव अरसा से भी जैन मूर्तिया मिली हैं।[6] चौसा (शाहाबाद) से नवी शतीई० तक की जैन मूर्तिया मिली हैं। चौसा ग्राम के समीप मसाढ (आरा से ६मील) से भी कुछ जैन अवशेष मिले हैं। आरा के आसपास कई जैन मन्दिर हैं जिनमे से कुछ प्राचीन है।[7] सिंहभूम मे वेणुसागर मे प्राचीन जैन मन्दिर एव मूर्तिया है।[8] वैशाली से काले प्रस्तर की एक पालयुगीन महावीर मूर्ति मिली है।[9] चम्पा (भागलपुर) से भी कुछ प्राचीन जैन अवशेष मिले है।[10]

उड़ीसा

उडीसा मे पुरी जिले की उदयगिरि-खण्डगिरि पहाडियो (पुरी) की जैन गुफाओ से सर्वाधिक मूर्तिया मिली है। इनमे आठवी-नवीं से बारहवी शती ई० तक की मूर्तिया हैं। जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से इन गुफाओ की चौवीस जिनो एव यक्षियो की मूर्तिया विशेष महत्व की है। जेयपुर, नन्दपुर, काकटपुर, तथा कोरापुट के भैरवसिंहपुर, क्योझर के पोट्टासिंगीदो, मयूरभज के वडशाही, बालेश्वर के चरपा और कटक के जाजपुर आदि स्थलो से भी जैन मूर्ति अवशेष मिले है। कटक के जाजपुर स्थित अखण्डलेश्वर एव मैत्रक मन्दिरो के समूहो मे भी जैन मूर्तिया सुरक्षित हैं।[11]

---

१ केवल भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता की एक चन्द्रप्रभ मूर्ति (ल० ११ वी शती ई०) मे ही यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। राजगिर के समीप से मिली एक ऋषभ मूर्ति (१२ वी शती ई०) मे सिंहासन के मध्य मे चक्रेश्वरी उत्कीर्ण है— स्ट०जै०आ०, फलक १६, चित्र ४४, आ०स०इ०ऐ०रि०, १९२५–२६, फलक ५७, चित्र वी

२ ये मूर्तिया राजगिर की पहाडियों के आधुनिक जैन मन्दिरो मे सुरक्षित है।

३ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, राजगिर, दिल्ली, १९६०, पृ० १६–१७

४ चन्दा, आर०पी०, 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', आ०स०इ०ऐ०रि०, १९२५–२६, पृ० १२१–२७

५ प्रसाद, एच०के०, पू०नि०, पृ० २८३–८९

६ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, पाटिल, डी० आर०, दि एन्टिक्वेरियन रिमेन्स इन विहार, पटना, १९६३ · पाटिल की पुस्तक मे १८वी-१९वीं शती ई० तक की सामग्रियो के उल्लेख हैं।

७ प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २७५

८ रायचौधरी, पी० सी०, जैनिज्म इन विहार, पटना, १९५६, पृ० ६४

९ ठाकुर, उपेन्द्र, 'ए हिस्टारिकल सर्वे ऑव जैनिज्म इन नार्थ विहार', ज०वि०रि०सो०, ख०४५, भाग १–४, पृ०२०२

१० वही, पृ० १९८

११ जैन जर्नल, ख० ३, अ० ४, पृ० १७१–७४

उडीसा की जैन मूर्तिकला दिगंबर सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। यहा भी जिन मूर्तिया ही सर्वाधिक है (चित्र५८)। जिनो मे क्रमश पार्श्व, ऋषभ, शान्ति एव महावीर की सबसे अधिक मूर्तिया मिली हैं। जिनो के साथ लाछन उत्कीर्ण है। इस क्षेत्र की जिन मूर्तियो मे सिंहासन के सूचक सिंहो का चित्रण नियमित नही था। धर्मचक्र, देवदुन्दुभि एवं गजो के चित्रण भी नही प्राप्त होते। जिनो के साथ यक्ष-यक्षी युगलो के निरूपण की परम्परा नहीं थी। द्वितीर्थी, जिन चौबीसी, चक्रेश्वरी, अम्बिका, रोहिणी, सरस्वती एव गणेश की भी स्वतन्त्र मूर्तिया मिली हैं। यक्षो एव महाविद्याओ की एक भी मूर्ति नही मिली है।

उदयगिरि-खण्डगिरि की ललाटेन्दुकेसरी (या सिंहराजा गुफा), नवमुनि, बारभुजी एव त्रिशूल (या हनुमान) गुफाओ मे पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तिया हैं। बारभुजी एव नवमुनि गुफाओ मे जिन मूर्तियो के नीचे स्वतन्त्र रथिकाओ मे यक्षिया निरूपित हैं। बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओ (ल० ११वी-१२वी शती ई०) मे २४ जिनो की लाछनयुक्त मूर्तिया है। त्रिशूल गुफा की मूर्तियो मे शीतल,अनन्त और नमि की पहचान परम्परागत लाछनो के अभाव मे सम्भव नही है।[१] चन्द्रप्रभ के बाद जिनो की मूर्तिया पारम्परिक क्रम मे भी नही उत्कीर्ण है।[२]

बारभुजी गुफा के सामूहिक चित्रण मे जिन केवल ध्यानमुद्रा मे निरूपित हैं। जिन मूर्तियो के नीचे स्वतन्त्र रथिकाओ मे सम्बन्धित जिनो की यक्षिया आमूर्तित हैं (चित्र ५९)। श्रीवत्स से रहित जिन मूर्तियो मे त्रिछत्र, भामण्डल, दुन्दुभि, चामरधर सेवक एव उड्डीयमान मालाधर चित्रित हैं। सम्भव, सुमति, सुपार्श्व, अनन्त एव नेमि[३] के लाछन या तो अस्पष्ट हैं, या फिर परम्परा के विरुद्ध हैं।[४] जिनो की मूर्तिया पारम्परिक क्रम मे उत्कीर्ण हैं।

नवमुनि गुफा (११ वी शती ई०) मे जिनो की सात ध्यानस्थ मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। ये मूर्तिया ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, वासुपूज्य, पार्श्व और नेमि की हैं।[५] जिनो के साथ भामण्डल, श्रीवत्स एव सिंहासन नही उत्कीर्ण हैं। जिन मूर्तियो के नीचे उनकी यक्षिया आमूर्तित है। ललितमुद्रा मे विराजमान[६] यक्षिया वाहन से युक्त और दो से दस भुजाओ वाली हैं। अजित एव वासुपूज्य की यक्षियो के अकन मे हिन्दू देवी इन्द्राणी एव कौमारी की लाक्षणिक विशेषताए प्रदर्शित हैं। अभिनन्दन एव वासुपूज्य की यक्षियो की गोद मे परम्परा के विरुद्ध बालक प्रदर्शित है। अजित एव अभिनन्दन की यक्षियो के वाहन क्रमश गज और कपि हैं, जो सम्बन्धित जिनो के लाछन है। गुफा मे गजमुख गणेश की भी एक मूर्ति है जो मोदकपात्र, परशु, अक्षमाला और पद्मनलिका से युक्त है।[७] ललाटेन्दु गुफा मे जिनो की आठ कायोत्सर्ग मूर्तिया हैं। पाच उदाहरणो मे पार्श्व उत्कीर्ण है।[८] खण्डगिरि पहाडी की कुछ पार्श्व, ऋषभ एव महावीर की द्वितीर्थी तथा अम्बिका मूर्तिया ब्रिटिश सग्रहालय मे भी हैं।[९]

यहा हम बारभुजी गुफा (खण्डगिरि, पुरी) की २४ यक्षी मूर्तियो का कुछ विस्तार से उल्लेख करेंगे। स्मरणीय है कि २४ यक्षियो के सामूहिक चित्रण का यह दूसरा ज्ञात उदाहरण है।[१०] गुफा की द्विभुज से विंशतिभुज यक्षिया वाहन से युक्त

---

१ दो जिनो के साथ लाछन मयूर और कोई पौधा है। वज्र लाछन दो जिनो के साथ उत्कीर्ण है।

२ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, **लिस्ट ऑव ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्राविन्स ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा**, पृ० २८०–८२

३ नेमि के साथ अम्बिका यक्षी निरूपित है।

४ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २७९–८० एक उदाहरण मे लाछन श्वान् है और अन्य दो मे शूकर एव वज्र। शूकर एव वज्र दो जिनो के साथ उत्कीर्ण हैं।

५ गुफा मे ऋषभ, चन्द्रप्रभ एव पार्श्व की तीन अन्य मूर्तिया भी हैं। पार्श्व के आसन पर लाछन रूप मे दो नाग उत्कीर्ण हैं।

६ जटामुकुट से शोभित गरुडवाहना चक्रेश्वरी योगासन मे बैठी है।

७ मित्रा, देवला, 'शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, ख० १, अ० २, पृ० १२७–२८

८ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८३

९ चदा, आर० पी०, **मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर इन दि ब्रिटिश म्यूजियम**, लदन, १९३६, पृ० ७१

१० प्रारम्भिकतम उदाहरण देवगढ के मन्दिर १२ पर है।

हैं। चक्रेश्वरी, अम्बिका एव पद्मावती यक्षियो के अतिरिक अन्य के निरूपण में सामान्यत परम्परा का निर्वाह नही किया गया है। चक्रेश्वरी एव पद्मावती के निरूपण मे भी परम्परा का निर्वाह कुछ विशिष्ट लक्षणो तक ही सीमित हैं। शान्ति एवं मुनिसुव्रत की यक्षिया क्रमश ध्यानमुद्रा (योगासन) मे और लेटी हैं। अन्य यक्षिया ललितमुद्रा मे हैं। बीस देविया पायोवाले आसन पर और शेष चार पद्म पर विराजमान हैं। कुछ यक्षियो के निरूपण मे ब्राह्मण एव बौद्ध देवकुलो की देवियो के लाक्षणिक स्वरूपो के अनुकरण किये गये हैं। शान्ति, अर एव नेमि की यक्षियो के निरूपण मे क्रमश. गजलक्ष्मी, तारा (बौद्ध देवी) और त्रिमुख ब्रह्माणी के प्रभाव स्पष्ट हैं।[1] २४ यक्षियो के अतिरिक्त इस गुफा मे चक्रेश्वरी एव रोहिणी की दो अन्य मूर्तिया (द्वादशभुज) भी हैं।

कटक के जैन मन्दिर मे कई मध्ययुगीन जिन मूर्तियां हैं। इनमे ऋषभ और पार्श्व की द्वितीर्थी और भरत एव बाहुबली से वेष्टित ऋषभ की मूर्तिया उल्लेखनीय हैं। क्योझर के पोट्टासिगीदी और बालेश्वर के चरम्पा ग्राम से आठवी से दसवी शती ई० के मध्य की ऋषभ, अजित, शान्ति, पार्श्व, महावीर एव अम्बिका की मूर्तिया मिली हैं, जो सम्प्रति राज्य संग्रहालय, उडीसा मे हैं।[2]

बंगाल

पुरुलिया, बाकुडा, मिदनापुर, सुन्दरवन, राढ एव वर्दवान के पुरातात्विक सर्वेक्षण से ल० आठवी से बारहवी शती ई० के मध्य की जैन प्रतिमाविज्ञान की प्रचुर सामग्री मिली है। बगाल की जैन मूर्तिया दिगवर सम्प्रदाय मे सम्बद्ध है (चित्र ९–११, ६८)। बगाल मे जिनो, चौमुखी,[3] द्वितीर्थी, सर्वानुभूति, चक्रेश्वरी, अम्बिका, सरस्वती और जैन युगलो की मूर्तिया मिली हैं। जिनो मे ऋषभ एव पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तिया है। लटो से युक्त ऋषभ कभी-कभी जटामुकुट से शोभित है। ऋषभ एव पार्श्व के बाद लोकप्रियता के क्रम में शान्ति, महावीर, नेमि एवं पद्मप्रभ की मूर्तिया हैं। जिन मूर्तियो मे लाछन सदैव प्रदर्शित हैं पर सिंहासन, धर्मचक्र, अशोकवृक्ष एव दुन्दुभिवादक के चित्रण नियमित नही रहे हैं। जिनो की कायोत्सर्ग मूर्तिया ही अधिक हैं। जिन मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी का निरूपण नही हुआ है।[4] जिन मूर्तियो के परिकर मे नवग्रहो एव २३ या २४ लघु जिन आकृतियो के चित्रण इस क्षेत्र मे विशेष लोकप्रिय थे। परिकर की लघु जिन आकृतिया सामान्यत लाछनो से युक्त हैं। जिन चौमुखी मूर्तियो मे अधिकाशत चार स्वतन्त्र जिन चित्रित है।

सुरोहर (दिनाजपुर, बांगलादेश) से ध्यानस्थ ऋषभ की एक मनोज्ञ मूर्ति (१०वी शती ई०) मिली है (चित्र ९)।[5] मूर्ति के परिकर मे लाछनो से युक्त २३ लघु जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।[6] राजशाही जिले के मण्डोली से मिली एक ऋषभ मूर्ति मे नवग्रह एवं गणेश निरूपित है।[7] राजशाही सग्रहालय मे बगाल की अम्बिका एव जैन युगल मूर्तिया भी सकलित हैं। बाकुडा मे पारसनाथ, रानीबाघ, अम्बिकानगर, केन्दुआ, बरकोला, दुएलभीर, बहुलर,[8] और पुरुलिया

---

१ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १२९–३३

२ जोशी, अर्जुन, 'फर्दर लाइट ऑन दि रिमेन्स ऐट पोट्टासिगीदी', उ०हि०रि०ज०, ख० १०, अ० ४, पृ० ३०-३२, दश, एम० पी०, 'जैन एन्टिक्विटीज फ्राम चरपा', उ०हि०रि०ज०, ख० ११, अ० १, पृ० ५०–५३

३ जिन चौमुखी का उत्कीर्णन अन्य किसी क्षेत्र की तुलना मे यहा अधिक लोकप्रिय था।

४ केवल एक जिन मूर्ति (ऋषभ) मे यक्ष-यक्षी का अकन हुआ है—मित्र, कालीपद, 'आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ऐन इमेज', इं०हि०क्वा०, ख० १८, अं० ३, पृ० २६१–६६

५ गागुली, कल्याणकुमार, 'जैन इमेजेज इन बगाल', इण्डि०क०, ख० ६, पृ० १३८–३९

६ सुमति एव सुपार्श्व के साथ पशु एव पद्म लाछनो का अकन परम्पराविरुद्ध है।

७ जैन जर्नल, ख० ३, अ० ४, पृ० १६१

८ बाकुडा से पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तियां मिली हैं—चौधरी, रवीन्द्रनाथ, 'आर्किअलाजिकल सर्वे रिपोर्ट बाकुडा डिस्ट्रिक्ट', माडर्न रिव्यू, ख० ८६, अ० १, पृ०२११–१२

मे देओली, पक्वीरा, संक एवं सेनारा आदि स्थानो से जैन मूर्तियां मिली हैं (चित्र ११, ६८)। मिदनापुर के राजपारा से शान्ति (१० वी शती ई०) एव पार्श्व की दो मूर्तिया प्राप्त हुई हैं। अम्बिकानगर एव वरकोला से अम्बिका की मूर्तिया, और वरकोला से ऋषभ (या सुविधि) एव अजित तथा जिन चौमुखी मिली हैं।[1] कुमारी नदी के किनारे से दसवी शतीई० की पार्श्व एव कुछ अन्य जैन मूर्तियां उपलब्ध हुई हैं।[2] धरपत जैन मन्दिर से ग्यारहवी शती ई० की पार्श्व एव महावीर मूर्तिया मिली हैं।[3] महावीर मूर्ति के परिकर मे २४ लघु जिन आकृतिया हैं। देउभेर्य से पार्श्व (परिकर मे २४ जिनो से युक्त), सर्वानुभूति एव अम्बिका की मूर्तिया (८ वी-९ वी शती ई०) मिली हैं।[4] अम्बिकानगर की एक ऋषभ मूर्ति (११ वी शती ई०) के परिकर मे २४ जिनो की लाछन युक्त मूर्तिया है।[5] छितगिरि से शान्ति एव पारसनाथ से पार्श्व की मूर्तिया मिली हैं।[6] पार्श्व के आसन पर नाग-नागी की आकृतिया है। केन्दुआ से मिली पार्श्व की मूर्ति मे दो नाग आकृतिया एवं चामरधर सेवक आमूर्तित है।[7] पुरुलिया के पक्वीरा से ऋषभ, पद्मप्रभ एव जिन चौमुखी मूर्तिया प्राप्त हुई हैं (चित्र ६८)। आसपास के क्षेत्र से भी पार्श्व, जैन युगल एव अम्बिका की मूर्तिया ज्ञात हैं।[8] वर्दवान मे रेन, कटवा, उजनी आदि स्थलो से जैन मूर्तिया मिली है।[9]

● ● ●

---

१ जैन जर्नल, ख० ३, अं० ४, पृ० १६३

२ बनर्जी, आर० डी०, 'इस्टर्न सर्किल, बगाल सरेनगढ', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५-२६, पृ० ११५

३ चौधरी, रवीन्द्रनाथ, 'धरपत टेम्पल्' माडर्न रिव्यू, ख० ८८, अ० ४, पृ० २९६-९८

४ मित्रा, देवला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बाकुडा, वेस्ट बगाल', ज०ए०सो०ब०, खं० २४, अ० २, पृ० १३२

५ वही, पृ० १३३-३४

६ वही, पृ० १३४

७ बनर्जी, आर० डी०, 'दि मेडिवल आर्ट ऑव साऊथ-वेस्टर्न बगाल', माडर्न रिव्यू, ख० ४६, अ० ६, पृ० ६४०-४६

८ बनर्जी, ए०, 'ट्रेसेज ऑव जैनिजम इन बंगाल', ज०यू०पी०हि०सो०, ख० २३, भाग १-२, पृ० १६८

९ जैन जर्नल, ख० ३, अ० ४, पृ० १६५

पञ्चम अध्याय

जिन-प्रतिमाविज्ञान

इस अध्याय मे साहित्य और शिल्प के आधार पर जिन मूर्तियो का सक्षेप मे काल एव क्षेत्रगत विकास प्रस्तुत किया गया है जिसमे उनकी सामान्य विशेषताओ का भी उल्लेख है। साथ ही प्रत्येक जिन के मूर्तिविज्ञान के विकास का अलग-अलग भी अध्ययन किया गया है। इस प्रकार यह अध्याय २४ भागो मे विभक्त है। प्रारम्भ से सातवी शती ई० तक के उदाहरणो का अध्ययन कालक्रम मे तथा उसके बाद का, क्षेत्र के सन्दर्भ मे स्थानीय भिन्नताओ एव विशेषताओ को दृष्टिगत करते हुए किया गया है। इस सन्दर्भ मे प्रतिमाविज्ञान के आधार पर उत्तर भारत को तीन भागो मे बाटा गया है। पहले भाग मे गुजरात और राजस्थान, दूसरे मे उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश तथा तीसरे मे बिहार, उडीसा और बगाल सम्मिलित हैं। यक्ष-यक्षियो के छठें अध्याय मे भी यही पद्धति अपनायी गयी है।

प्रत्येक जिन के जीवनवृत्त के सक्षेप मे उल्लेख के उपरान्त स्वतन्त्र मूर्तियो के आधार पर उस जिन के मूर्ति-विज्ञान के विकास का अध्ययन किया गया है। इसमे मूर्तियो की देश और कालगत विशेषताओ का भी उद्घाटन किया गया है। साथ ही सश्लिष्ट यक्ष-यक्षी युगल की विशिष्टताओ का भी अति सामान्य उल्लेख है क्योकि इनका विस्तृत अध्ययन आगे के अध्याय मे है। अध्ययन की पूर्णता की दृष्टि से जिनो के जीवनवृत्तो के चित्रणो का भी इस अध्याय मे अध्ययन किया गया है। चौबीस जिनो के अलग-अलग मूर्तिविज्ञानपरक अध्ययन के उपरान्त जिनो की द्वितीर्थी, त्रितीर्थी एव चौमुखी (सर्वतोभद्र-प्रतिमा) मूर्तियो और चतुर्विंशति पट्टो एव जिन-समवसरणो का भी अलग-अलग अध्ययन है। अध्ययन मे आवश्यकतानुसार दक्षिण भारतीय जिन मूर्तियो से तुलना भी की गई है।

जिन मूर्तियो मे जिनो की पहचान के मुख्यत तीन आधार हैं—लाछन, अभिलेख एव एक सीमा तक यक्ष-यक्षी युगल। गुजरात और राजस्थान की श्वेताबर जिन मूर्तियो मे सामान्यत लाछनो के स्थान पर पीठिका लेखो मे जिनो के नामोल्लेख की परम्परा ही अधिक लोकप्रिय थी। जिनो की पहचान मे यक्ष-यक्षियो से सहायता की वही आवश्यकता होती है जहा मूर्तियो मे लाछन या तो नष्ट हो गए हैं या अस्पष्ट हैं। जिन मूर्तियो की क्षेत्रीय एव कालगत भिन्नता भी मुख्यत लाछन, अभिलेख एव यक्ष-यक्षी युगल के चित्रण से ही सम्बद्ध है। जिन मूर्तियो की भिन्नता परिकर की लघु जिन आकृतियो, नवग्रहो एव कुछ अन्य देवो के अकन मे भी देखी जा सकती है।

जिन-मूर्तियो का विकास

ल० तीसरी शती ई० पू० से पहली शती ई० पू० के मध्य की तीन प्रारम्भिक जिन मूर्तिया क्रमश लोहानीपुर, चौसा एव प्रिंस आव वेल्स सग्रहालय, बम्बई की हैं (चित्र २)। इनमे जिनो के वक्ष स्थल मे श्रीवत्स चिह्न नही उत्कीर्ण है।[1] सभी मूर्तिया निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग-मुद्रा मे खडी हैं। जिन की ध्यानमुद्रा मे आसीन मूर्ति सर्वप्रथम पहली शती ई० पू० के मथुरा के आयागपट (राज्य सग्रहालय, लखनऊ, जे २५३) पर उत्कीर्ण हुई। उल्लेखनीय है कि जिन मूर्तियो के निरूपण मे केवल उपर्युक्त दो मुद्राएं, कायोत्सर्ग एव ध्यान, ही प्रयुक्त हुई हैं।

ल० पहली शती ई०पू० की चौसा, प्रिंस आँव वेल्स सग्रहालय, बम्बई एव मथुरा के आयागपट (राज्य सग्रहालय, लखनऊ, जे २५३) की तीन प्रारम्भिक जिन मूर्तियो मे पार्श्व सर्पफणो के छत्र से आच्छादित निरूपित है। इस प्रकार जिन

---

१ वक्ष स्थल मे श्रीवत्स चिह्न का अकन जिन मूर्तियो की विशिष्टता और उनकी पहचान का मुख्य आधार है। श्रीवत्स का अंकन सर्वप्रथम ल० पहली शती ई० पू० के मथुरा के आयागपटो की जिन मूर्तियो मे हुआ। इसके उपरान्त श्रीवत्स का अकन सर्वत्र हुआ। केवल उडीसा की कुछ मध्ययुगीन जिन मूर्तियो मे श्रीवत्स नही उत्कीर्ण है।

मूर्तियो में सर्वप्रथम पार्श्व का ही वैशिष्ट्य स्पष्ट हुआ। पार्श्व के वाद ऋषभ के लक्षण निश्चित हुए। मथुरा की पहली शती ई० की जिन मूर्तियो मे स्कन्धो पर लटकती जटाओ वाले ऋषभ निरूपित हैं। परवर्ती युगो मे भी ऋषभ के साथ जटाए एव पार्श्व के साथ सप्त सर्पफणो के छत्र प्रदर्शित है।

पहली-दूसरी शती ई० मे मथुरा मे प्रचुर सख्या मे जिनो की कायोत्सर्ग एव ध्यान मुद्राओ मे स्वतन्त्र मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। ऋषभ एव पार्श्व के अतिरिक्त कुछ उदाहरणो मे वलराम एव कृष्ण के साथ नेमि भी उत्कीर्ण है। अन्य जिनों (सम्भव, मुनिसुव्रत एव महावीर)[1] की पहचान केवल लेखो मे उनके नामो के आधार पर की गई है। चौसा की कुषाणकालीन जिन मूर्तियो मे केवल ऋषभ एवं पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। इस युग की सभी जिन मूर्तिया निर्वस्त्र अकित की गई हैं। इस प्रकार कुषाण काल मे केवल छह ही जिन निरूपित हुए।

कुषाण युग मे मथुरा मे ही सर्वप्रथम जिन मूर्तियो के साथ प्रातिहार्यों, धर्मचक्र,मागलिक चिह्नो एव उपासकों के उत्कीर्णन प्रारम्भ हुए। मथुरा मे जैन परम्परा के आठ प्रातिहार्यों मे से केवल सात ही प्रदर्शित हैं। ये प्रातिहार्य सिंहासन, भामण्डल, चामरधर सेवक, उड्डीयमान मालाधर, छत्र, चैत्यवृक्ष एव दिव्य-ध्वनि है। जिनो की हथेलियो, चरणो एवं उगलियो पर धर्मचक्र एवं त्रिरत्न जैसे मागलिक चिह्न भी उत्कीर्ण हैं।[2] कभी-कभी पार्श्व के सर्पफणो पर भी मागलिक चिह्न दृष्टिगत होते हैं। मथुरा संग्रहालय की एक पार्श्व मूर्ति (बी ६२) मे फणो पर श्रीवत्स, पूर्णघट, स्वस्तिक, वर्धमानक, मत्स्य एव नद्यावर्त अकित है।[3] कुषाण युग मे जिन चौमुखी का भी निर्माण प्रारम्भ हुआ (चित्र ६६)। इनमे चारो ओर चार जिनो की मूर्तिया अकित की जाती हैं। चार जिनो मे से केवल ऋषभ एव पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। कुषाण युग मे ऋषभ एवं महावीर के जीवनदृश्य भी उत्कीर्ण हुए।[4] इनमे नीलाजना के नृत्य के फलस्वरूप ऋषभ की वैराग्य प्राप्ति एव महावीर के गर्भापहरण के दृश्य हैं (चित्र १२, ३९)।

गुप्तकाल मे जिन प्रतिमाविज्ञान मे कुछ महत्वपूर्ण विकास हुआ। जिनो के साथ लाछनो, यक्ष-यक्षी युगलो एव अष्ट-प्रातिहार्यों का निरूपण प्रारम्भ हुआ। बृहत्सहिता (वराहमिहिरकृत) मे ही सर्वप्रथम जिन मूर्ति की लाक्षणिक विशेषताए भी निरूपित हुई।[5] ग्रन्थ मे जिन मूर्ति के श्रीवत्स चिह्न से युक्त, निर्वस्त्र, आजानुलम्बबाहु और तरुण स्वरूप मे निरूपण का उल्लेख है। गुप्तकाल मे गुजरात मे (अकोटा) श्वेताम्बर जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हुई (चित्र ५, ३६)। अन्य क्षेत्रो की जिन मूर्तिया दिगबर सम्प्रदाय की हैं।

राजगिर और भारत कला भवन, वाराणसी (१६१) की दो गुप्तकालीन नेमि और महावीर की मूर्तियो मे जिनो के लाछन प्रदर्शित हैं (चित्र ३५)। गुप्तकाल तक सभी जिनो के लाछनो का निर्धारण नही हो सका था। इसी कारण ऋषभ, नेमि, पार्श्व एव महावीर के अतिरिक्त अन्य किसी जिन के साथ लाछन नही प्रदर्शित हैं। गुप्तकाल मे अष्ट-प्रातिहार्यों का अकन नियमित हो गया। भामण्डल कुषाणकाल की तुलना मे अधिक अलकृत हैं। सिंहासन के मध्य मे

---

१ ज्योतिप्रसाद जैन ने मथुरा की एक कुषाणकालीन सुमतिनाथ मूर्ति (८४ई०) का भी उल्लेख किया है—जैन, ज्योति प्रसाद, दि जैन सोर्सेज ऑव दि हिस्ट्री ऑव ऐन्शण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९६४, पृ० २६८

२ जोशी, एन० पी०, 'यूस ऑव आस्पिशस सिम्बल्स इन दि कुषाण आर्ट ऐट मथुरा', मिराशी फेलिसिटेशन वाल्यूम, नागपुर, १९६५, पृ० ३१३   ३ वही, पृ० ३१४   ४ राज्य सग्रहालय, लखनऊ—जे ३५४, जे ६२६

५ आजानुलम्बबाहु श्रीवत्साङ्क प्रशान्तमूर्तिश्च।
दिग्वासास्तरुणो रूपवाश्च कार्योऽर्हता देव ॥ बृहत्सहिता ५८ ४५
द्रष्टव्य, मानसार ५५ ४६,७१-९५। मानसार (ल० छठी शती ई०) के अनुसार जिनमूर्ति मे दो हाथ और दो नेत्र हो, मुख पर श्मश्रु न दिखाये जायें। मस्तक पर जटाजूट दिखाया जाय। श्रीवत्स से युक्त जिन-मूर्ति मे शरीर आकर्षक (सुरूप) हो और किसी प्रकार का आभूषण या वस्त्र न प्रदर्शित हो। जै०क०स्था०, ख० ३, पृ० ४८१

उपासकों से वेष्टित धर्मचक्र भी उत्कीर्ण है। सिंहासन के छोरों एवं परिकर पर लघु जिन मूर्तियों का उत्कीर्णन भी प्रारम्भ हुआ। इसी समय की अकोटा की जिन मूर्तियों में धर्मचक्र के दोनों ओर दो मृगों के उत्कीर्णन की परम्परा प्रारम्भ हुई, जो गुजरात-राजस्थान की श्वेतांबर जिन मूर्तियों में निरन्तर लोकप्रिय रही।

यक्ष-यक्षी से युक्त प्रारम्भिकतम जिन मूर्ति (ल० छठी शती ई०) अकोटा से मिली है।[1] द्विभुज यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। ल० सातवीं-आठवीं शती ई० से जिन मूर्तियों में नियमित रूप से यक्ष-यक्षी-निरूपण प्रारम्भ हुआ। सातवीं से नवीं शती ई० की ऐसी कुछ जिन मूर्तियां भारत कला भवन, वाराणसी (२१२), मथुरा एवं लखनऊ संग्रहालयों, तथा अकोटा, ओसिया (महावीर मन्दिर) एवं धाक (काठियावाड) में सुरक्षित हैं (चित्र २६)। इन सभी उदाहरणों में यक्ष-यक्षी सामान्यतः द्विभुज सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। आठवीं-नवीं शती ई० के बाद की जिन मूर्तियों में ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं महावीर के साथ पारम्परिक या स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। पर गुजरात एवं राजस्थान की श्वेतांबर जिन मूर्तियों में सभी जिनों के साथ अधिकांशतः सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही आमूर्तित हैं।[2] मूर्तियों में यक्ष दाहिने और यक्षी बाएं पार्श्व में उत्कीर्ण हैं।[3]

ल० आठवीं-नवीं शती ई० तक साहित्य में २४ जिनों के लांछनों का निर्धारण हुआ। श्वेतांबर और दिगम्बर दोनों ही परम्परा के ग्रन्थों में २४ जिनों के निम्नलिखित लांछनों के उल्लेख हैं : वृषभ, गज, अश्व, कपि, क्रौंच पक्षी, पद्म, स्वस्तिक,[4] शशि, मकर, श्रीवत्स,[5] गण्डक (या खड्गी), महिष, शूकर, श्येन, वज्र, मृग, छाग (बकरा), नंद्यावर्त,[6] कलश, कूर्म, नीलोत्पल, शंख, सर्प एवं सिंह।[7]

मूर्तियों में जिनों के लांछन सिंहासन के ऊपर या धर्मचक्र के समीप उत्कीर्ण हैं। लटकती जटाओं से शोभित ऋषभ के साथ वृषभ लांछन सर्वदा प्रदर्शित है, पर सर्पफणों से शोभित सुपार्श्व एवं पार्श्व के लांछन (स्वस्तिक एवं सर्प) केवल कुछ ही उदाहरणों में उत्कीर्ण हैं।[8] उल्लेखनीय है कि गुजरात एवं राजस्थान की श्वेतांबर जिन मूर्तियों में लांछनों

---

१ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, बम्बई, १९५९, पृ० २८–२९, फलक १०, ११

२ कुछ ऋषभ, पार्श्व एवं महावीर की मूर्तियों में स्वतन्त्र यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं।

३ **प्रतिष्ठासारोद्धार** १.७७, **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ४.१२

४ **तिलोयपण्णत्ति** में स्वस्तिक के स्थान पर नंद्यावर्त का उल्लेख है।

५ **तिलोयपण्णत्ति** में श्रीवत्स के स्थान पर स्वस्तिक एवं **प्रतिष्ठासारोद्धार** में श्रीद्रुम के उल्लेख हैं।

६ **तिलोयपण्णत्ति** में नंद्यावर्त के स्थान पर तगरकुसुम (मत्स्य) का उल्लेख है।

७ वसह गय तुरय वानर। कुंचू कमल च सत्थिओ चंदो॥
मयर सिरिवच्छ गंडो। महिस वराहो य सेणो य॥
वज्ज हरिणो छगलो। नंदावत्तो य कलस कुम्मोय॥
नीलुप्पल संख फणी। सीहो य जिणाण चिन्हाइं॥ **प्रवचनसारोद्धार** ३८१–८२,
अभिधान चिंतामणि, देवाधिदेव काण्ड, ४७–४८
रिसहादीणं चिण्हं गोवदिगयतुरगवाणरा कोक।
पउम णंदावत्त अद्धससी मयरसोत्तीया॥
गंड महिसवराहा साही वज्जाणि हरिणछगलाय।
तगरकुसुमा य कलसा कुम्मुप्पलसंखअहिसिंहा॥ **तिलोयपण्णत्ति** ४.६०४–६०५,
प्रतिष्ठासारोद्धार १.७८–७९, **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.८०–८१

८ मध्ययुगीन जिन मूर्तियों में ऋषभ के अतिरिक्त कुछ अन्य जिनों के साथ भी जटाएं प्रदर्शित हैं। सम्भवतः इसी कारण ऋषभ के साथ लांछन का प्रदर्शन आवश्यक प्रतीत हुआ होगा।

के उत्कीर्णन के स्थान पर पीठिका लेखो मे जिनो के नामोल्लेख की परम्परा ही विशेष लोकप्रिय थी। पर ऋषभ, सुपार्श्व एवं पार्श्व के साथ क्रमशः जटाए एव पाच और सात सर्पफणो के छत्र प्रदर्शित है। ल० छठी-सातवी शती ई० से जिन मूर्तियो मे अष्ट-प्रातिहार्यो का नियमित अकन हुआ है। ये अष्ट-प्रातिहार्य[1] निम्नलिखित है: अशोक वृक्ष, देव-पुष्पवृष्टि, दिव्य-ध्वनि, चामर, सिंहासन, त्रिछत्र, देवदुन्दुभि एव भामण्डल।[2] मूर्त अकनो मे अशोक वृक्ष का चित्रण वहुत नियमित नही था। दिव्य-ध्वनि एव देवदुन्दुभि मे से केवल एक का निरूपण नियमित था।[3]

जयसेन, वसुनन्दि, आशाधर, नेमिचन्द्र, कुमुदचन्द्र आदि दिगम्बर ग्रन्थकारो ने अपने प्रतिष्ठाग्रन्थो मे जिन-प्रतिमा का विस्तार से वर्णन किया है। जयसेन के **प्रतिष्ठापाठ** मे जिन-विम्ब को शान्त, नासाग्रदृष्टि, निर्वस्त्र, ध्याननिमग्न और किंचित् नम्र ग्रीव वताया गया है। कायोत्सर्ग-मुद्रा मे जिन समभग मे खड होते हैं और उनके हाथ लम्ववत् नीचे लटके होते हैं। ध्यानमुद्रा मे जिन दोनो पैर मोडकर (पद्मासन) वैठे होते हैं और उनकी हथेलिया गोद मे (वायी के ऊपर दाहिनी) रखी होती है।[4] **प्रतिष्ठापाठ** मे उल्लेख है कि जिन-प्रतिमा केवल उपर्युक्त दो आसनो मे ही निरूपित होनी चाहिए। वसुनन्दि[5] एव आशाधर[6] आदि ने भी जिन-प्रतिमा के उपर्युक्त लक्षणो के ही उल्लेख किये है।

उत्तर भारत के विभिन्न पुरातात्विक स्थलो की जिन-मूर्तियो के अध्ययन से हमे ज्ञात होता है कि ऋषभ, पार्श्व, महावीर, नेमि, शान्ति एव सुपार्श्व इसी क्रम मे सर्वाधिक लोकप्रिय थे।[7] ल० नवी-दसवी शती ई० तक मूर्तिविज्ञान की

---

१ दक्षिण भारत की जिन मूर्तियो मे अष्ट-प्रातिहार्यो मे से केवल त्रिछत्र, अशोक वृक्ष, चामरधर, उड्डीयमान गन्धर्व, सिंहासन एव भामण्डल का ही नियमित अकन हुआ है। सिंहासन के मध्य मे धर्मचक्र का उत्कीर्णन भी नियमित नही था।

२ अशोकवृक्ष सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासन च।
भामण्डल दुन्दुभिरातपत्र सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम्॥
हस्तीमल के **जैनधर्म का मौलिक इतिहास** (भाग १, जयपुर, १९७१, पृ० ३३) से उद्धृत।
स्थापयेदर्हता छत्रत्रयाशोक प्रकीर्णकम्।
पीठभामण्डल भाषा पुष्पवृष्टि च दुन्दुभिम्॥
स्थिरेतरार्चयो पादपीठस्याधो यथायथम्।
लाछन दक्षिणे पार्श्वे यक्ष यक्षी च वामके॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** १ ७६–७७,
हरिवंशपुराण ३ ३१–३८, **प्रतिष्ठासारसग्रह** ५ ८२–८३

३ केवल गुजरात-राजस्थान की मूर्तियो मे ही दोनो का नियमित अकन हुआ है। त्रिछत्र के दोनो ओर देवदुन्दुभि और परिकर मे वीणा एवं वेणुवादन करती दिव्य-ध्वनि की सूचक दो आकृतिया उत्कीर्ण हैं। अन्य क्षेत्रो की मूर्तियो मे देवदुन्दुभि सामान्यत त्रिछत्र के समीप उत्कीर्ण है।

४ जैन, वालचन्द्र, 'जैन प्रतिमालक्षण', **अनेकान्त**, वर्ष १९, अ० ३, पृ० २११

५ अथ विम्व जिनेन्द्रस्य कर्तव्य लक्षणान्वितम्।
ऋज्वायत सुसस्थान तरुणाङ्ग दिगम्बर॥
श्रीवृक्षभूषितोरस्क जानुप्राप्तकराग्रज।
निजाङ्गुलप्रमाणेन साष्टाङ्गुलशतायुतम्॥
कक्षादिरोमहीनाङ्ग श्मश्रु लेखाविवर्जितम्।
ऊर्ध्वं प्रलम्वक दत्वा समाप्त्यन्त च धारयेत्॥ **प्रतिष्ठासारसग्रह** ४ १, २, ४

६ **प्रतिष्ठासारोद्धार** १ ६२, **मानसार** ५५ ३६–४२, **रूपमण्डन** ६.३३–३५

७ दक्षिण भारतीय शिल्प मे महावीर एव पार्श्व सर्वाधिक लोकप्रिय थे। ऋषभ की मूर्तिया तुलनात्मक दृष्टि से नगण्य हैं।

दृष्टि से जिन-मूर्तिया पूर्णत. विकसित हो चुकी थी। पूर्ण विकसित जिन-मूर्तियो मे लाछनो, यक्ष-यक्षी युगलो एव अष्ट-प्रातिहार्यों[1] के साथ ही परिकर मे दूसरी छोटी जिन-मूर्तिया,[2] नवग्रह,[3] गज,[4] महाविद्याए एव अन्य आकृतिया भी अकित हैं (चित्र ७, ९, १५, २०)। विभिन्न क्षेत्रो की जिन-मूर्तियो की कुछ अपनी विशिष्टताए रही है, जिनकी अति सक्षेप मे चर्चा यहा अपेक्षित है।

गुजरात-राजस्थान—सिंहासन के मध्य मे चतुर्भुज शान्तिदेवी (या आदिशक्ति)[5] एव गजो और मृगो के चित्रण[6] गुजरात एव राजस्थान की श्वेताम्बर जिन मूर्तियो की क्षेत्रीय विशेषताए थी।[7] परिकर मे हाथ जोड या कलश लिये गोमुख आकृतियो, वीणा एव वेणुवादन करती दो आकृतियो तथा त्रिछत्र के ऊपर कलश और नमस्कार-मुद्रा मे एक आकृति के अकन भी गुजरात एव राजस्थान मे ही लोकप्रिय थे (चित्र २०)।[8] मूलनायक के पार्श्वों मे पाच या सात सर्पफणो के छत्रो वाली या लाछन विहीन दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तियो का उत्कीर्णन भी इस क्षेत्र की विशेषता थी। दिलवाडा एवं कुम्भारिया की कुछ जिन-मूर्तियो के परिकर मे महाविद्याए भी अकित हैं। इस क्षेत्र मे ऋषभ और पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तिया उत्कीर्ण हुईं। नेमि और महावीर की मूर्तियो की सख्या अन्य क्षेत्रो की तुलना मे काफी कम है। इस क्षेत्र मे जिनो के जीवनदृश्यो के चित्रण भी विशेष लोकप्रिय थे[9] जिनमें जिनो के पचकल्याणको (च्यवन, जन्म, दीक्षा, कैवल्य, निर्वाण) एव कुछ अन्य विशिष्ट घटनाओ को उत्कीर्ण किया गया है। जीवनदृश्यो के मुख्य उदाहरण ओसिया, कुम्भारिया एव दिलवाडा मे हैं जो ऋषभ, शान्ति, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व एव महावीर से सबद्ध हैं (चित्र १३,१४,२२,२९,४०,४१)।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—उत्तर प्रदेश की कुछ नेमि मूर्तियो (देवगढ एव राज्य सग्रहालय, लखनऊ) मे बलराम एवं कृष्ण आमूर्तित हैं (चित्र २७, २८)। इस क्षेत्र की पार्श्वनाथ मूर्तियो मे कभी-कभी पार्श्ववर्ती चामरधर सेवक सर्पफणो से युक्त हैं और उनके हाथो मे लम्बा छत्र प्रदर्शित हैं। जिन-मूर्तियो के परिकर मे बाहुबली, जीवन्तस्वामी, क्षेत्रपाल, सरस्वती, लक्ष्मी आदि के चित्रण विशेष लोकप्रिय थे।

बिहार-उड़ीसा-बगाल—इस क्षेत्र की जिन मूर्तियो मे सिंहासन, धर्मचक्र, गजो एव दुन्दुभिवादक के नियमित चित्रण नही हुए हैं। सिंहासन के छोरो पर यक्ष-यक्षी का अकन भी नियमित नहीं था।

---

१ पार्श्व की मूर्तियो मे शीर्षभाग के सर्पफणो के कारण सामान्यत त्रिछत्र एव दुन्दुभिवादक की आकृतिया नही उत्कीर्ण हुईं।

२ कुछ उदाहरणो मे परिकर मे २३ या २४ छोटी जिन मूर्तिया बनी हैं। परिकर की छोटी जिन-मूर्तिया साधारणत. लाछनविहीन हैं। पर बगाल मे परिकर की छोटी जिन-मूर्तियो के साथ लाछनो का प्रदर्शन लोकप्रिय था।

३ गुजरात एव राजस्थान की श्वेताम्बर जिन-मूर्तियो मे अन्य क्षेत्रो के विपरीत नवग्रहो के केवल मस्तक ही उत्कीर्ण हैं।

४ कलश धारण करने वाली गज आकृतियो की पीठ पर सामान्यत. एक या दो पुरुष आकृतिया बैठी हैं।

५ चतुर्भुज शान्तिदेवी के करो मे सामान्यत अभय-(या वरद-) मुद्रा, पद्म, पद्म (या पुस्तक) एव फल प्रदर्शित हैं।

६ आदिशक्तिर्जिनेंद्राधो आसने गर्भ सस्थिता।
सहजा कुलजाऽधोना पद्महस्ता वरप्रदा॥
अर्कमान विधातव्यमुपाङ्ग महित भवेत्।
देव्याधोगर्भे मृगयुग्म धर्मचक्र सुशोभनम्॥
द्वौ गजौ वामदक्षिणे दशाङ्गुलानि विस्तेर।
सिंहौ रौद्रमहाकायौ जीवत् क्रोधौ च रक्षणे॥ वास्तुविद्या, जिनपरिकरलक्षण २२ १०–१२

७ मध्यप्रदेश (ग्यारसपुर एव खजुराहो) की कुछ दिगम्बर जिन मूर्तियो मे भी ये विशेषताए प्रदर्शित हैं।

८ वास्तुविद्या २२ ३३–३९

९ गुजरात-राजस्थान के बाहर जिनो के जीवनदृश्यो के अकन दुर्लभ हैं।

अति सक्षेप मे पूर्णविकसित मध्ययुगीन जिन मूर्तियो की सामान्य विशेषताए इस प्रकार थी। श्रीवत्स से युक्त जिन मूर्तिया कायोत्सर्ग मे खडी या ध्यानमुद्रा मे आसीन हैं। सामान्यत. गुच्छको के रूप मे प्रदर्शित केश रचना उष्णीप के रूप मे आवद्ध है। कायोत्सर्ग मे खडे जिनो के लटकते हाथो की हथेलियो मे सामान्यत पद्म अकित हैं। मूलनायक का पद्मासन रत्न, पुष्प एव कीर्तिमुख आदि से अलंकृत है। आसन के नीचे सिंहासन के सूचक दो रौद्र सिंह उत्कीर्ण हैं।[1] ये सिंह आकृतिया सामान्यत. एक दूसरे की ओर पीठकर दर्शको की ओर देखने की मुद्रा मे प्रदर्शित हैं। सिंहासन के मध्य मे धर्मचक्र उत्कीर्ण है। गुजरात एव राजस्थान को श्वेताम्बर मूर्तियो मे सिंहासन के मध्य मे धर्मचक्र के स्थान पर शान्तिदेवी की मूर्ति है। शान्तिदेवी की आकृति के नीचे दो मृगो एव उपासको के साथ धर्मचक्र चित्रित है। शान्तिदेवी के दोनो ओर दो गज आकृतिया उत्कीर्ण हैं।

धर्मचक्र के समीप या आसन पर जिनो के लाछन उत्कीर्ण है। सिंहासन—छोरो पर ललितमुद्रा मे यक्ष (दाहिनी) और यक्षी (वायी) की मूर्तिया निरूपित हैं।[2] यक्ष-यक्षी की अनुपस्थिति मे छोरो पर सामान्यतः जिन आकृतिया उत्कीर्ण हैं। जिनो के पार्श्वो मे चामरधर सेवक आमूर्तित हैं, जिनकी एक भुजा मे चामर है और दूसरी भुजा जानु पर रखी है।[3] चामरधरो के समीप नमस्कार-मुद्रा मे दो उपासक भी हैं। भामण्डल सामान्यत ज्यामितीय, पुष्प एव पद्म अलकरणो से अलकृत हैं। जिन के सिर के ऊपर त्रिछत्र हैं जिसके ऊपर दुन्दुभिवादक की अपूर्ण आकृति या केवल दो हाथ प्रदर्शित है। कुछ उदाहरणो मे त्रिछत्र के समीप अशोक वृक्ष की पत्तिया भी चित्रित हैं। परिकर मे दो गज एव उड्डीयमान मालाधर भी बने हैं।[4] परिकर मे दो अन्य मालाधर युगल एव वाद्यवादन करती आकृतिया भी उत्कीर्ण हैं। मूर्ति के छोरो पर गज-व्याल-मकर अलंकार एव आक्रामक मुद्रा मे एक योद्धा अंकित हैं।[5]

आगे प्रत्येक जिन का मूर्तिविज्ञानपरक अध्ययन किया जायगा।

(१) ऋषभनाथ[6]

जीवनवृत्त

जैन परम्परा के अनुसार ऋषभ मानव समाज के आदि व्यवस्थापक एव वर्तमान अवसर्पिणी युग के प्रथम जिन हैं। प्रथम जिन होने के कारण ही उन्हें आदिनाथ भी कहा गया। महाराज नाभि ऋषभ के पिता और मरुदेवी उनकी माता हैं। ऋषभ के गर्भधारण की रात्रि मे मरुदेवी ने १४ मागलिक स्वप्न देखे थे।[7] दिगम्बर परम्परा मे इन स्वप्नो की सख्या १६ वताई गई है।[8] उल्लेखनीय है कि अन्य जिनो की माताओ ने भो गर्भधारण की रात्रि मे इन्ही शुभ स्वप्नो को देखा था। किन्तु अन्य जिनो की माताओ ने स्वप्न मे जहा सबसे पहले गज देखा, वहा ऋषभ की माता ने सबसे पहले वृषभ का दर्शन किया। प्रथम स्वप्न के रूप मे वृषभ का दर्शन ऋषभ के नामकरण एव लाछन-निर्धारण की दृष्टि से

---

१ वास्तुविद्या २२ १२ २ वास्तुविद्या २२ १४, प्रतिष्ठासारोद्धार १ ७७

३ दूसरी भुजा मे कभी-कभी फल या पुष्प या घट भी प्रदर्शित है।

४ गज की सूड मे घट या पुष्प प्रदर्शित है।

५ अर्चा वामे यक्षिण्या यक्षो दक्षिणे चतुर्दश। स्तम्भिका मृणालयुक्त मकरैर्ग्रासरूपकै ॥ वास्तुविद्या २२ १४

६ ऋषभ एव अन्य जिनो के नामो के साथ 'नाथ' या 'देव' शब्द का प्रयोग किया गया है जो उनके प्रति भक्ति एव सम्मान का सूचक है।

७ १४ शुभ स्वप्न निम्नलिखित हैं—गज, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी (या श्री), पुष्पहार, चन्द्र, सूर्य, ध्वज-दण्ड, पूर्णकुम्भ, पद्मसरोवर, क्षीरसमुद्र, देवविमान, रत्नराशि और निर्धूम अग्नि। कल्पसूत्र ३३

८ दिगम्बर परम्परा में ध्वज-दण्ड के स्थान पर नागेन्द्र भवन का उल्लेख है। साथ हो मत्स्य-युगल एव सिंहासन को सम्मिलित कर शुभ स्वप्नो की सख्या १६ वताई गई है—हरिवंशपुराण ८ ५८-७४, महापुराण(आदिपुराण) १२ १०१-१२०

महत्वपूर्ण है। आवश्यकचूर्णि मे उल्लेख है कि माता द्वारा देखे प्रथम स्वप्न (वृषभ) एव वालक के वक्ष स्थल पर वृषभ चिह्न के अंकित होने के कारण ही वालक का नाम ऋषभ रखा गया।[1]

देवपति शक्रेन्द्र के निर्देश पर ऋषभ ने सुनन्दा एव सुमगला से विवाह किया। विवाह के पश्चात् ऋषभ का राज्याभिषेक हुआ। सुमगला ने भरत एवं ब्राह्मी और ९६ अन्य सन्तानो को जन्म दिया। सुनन्दा ने केवल वाहुवली और सुन्दरी को जन्म दिया। काफी समय गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के वाद ऋषभ ने राज्य वैभव एव परिवार को त्यागकर प्रव्रज्या ग्रहण की। ऋषभ ने विनीता नगर के वाहर सिद्धार्थ उद्यान मे अशोक वृक्ष के नीचे वस्त्राभूषणो का त्यागकर दीक्षा ली थी।[2] दीक्षा के पूर्व ऋषभ ने अपने केशो का चतुर्मुष्टिक लुचन भी किया था। इन्द्र की प्रार्थना पर ऋषभ ने एक मुष्टि केश सिर पर ही रहने दिया।[3] उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त परम्परा के कारण ही सभी क्षेत्रो की मूर्तियो मे ऋषभ के साथ लटकती जटाए प्रदर्शित की गयी। कल्पसूत्र एव त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र मे उल्लेख है कि ऋषभ के अतिरिक्त अन्य सभी जिनो ने दीक्षा के पूर्व अपने मस्तक के सम्पूर्ण केशो का पाच मुष्टियो मे लुचन किया। कुछ ग्रन्थो मे ऋषभ के भी पञ्चमुष्टि मे सारे केशो के लुचन का उल्लेख है।[4]

दीक्षा के वाद काफी समय तक विचरण एव कठिन साधना के उपरात ऋषभ को पुरिमताल नगर के वाहर शकटमुख उद्यान मे वटवृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ। कैवल्य प्राप्ति के वाद देवताओ ने ऋषभ के लिए समवसरण का निर्माण किया, जहा ऋषभ ने अपना पहला उपदेश दिया। ज्ञातव्य है कि कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् सभी जिन अपना पहला उपदेश देवनिर्मित समवसरण में ही देते हैं। समवसरण मे ही देवताओ द्वारा सम्वन्धित जिन के तीर्थ एव सघ की रक्षा करनेवाले शासनदेवता (यक्ष-यक्षी) नियुक्त किये जाते हैं। ऋषभ ने विभिन्न स्थलो पर धर्मोपदेश देकर धर्मतीर्थों की स्थापना की और अन्त मे अष्टापद पर्वत पर निर्वाणपद प्राप्त किया।

प्रारम्भिक मूर्तिया

ऋषभ का लाछन वृषभ है और यक्ष-यक्षी गोमुख एव चक्रेश्वरी (या अप्रतिचक्रा) हैं। ऋषभ की प्राचीनतम मूर्तिया कुषाण काल की हैं। ये मूर्तिया मथुरा और चौसा से मिली हैं। इनमे ऋषभ ध्यानमुद्रा मे आसीन या कायोत्सर्ग मे खडे हैं और तीन या पाच लटकती केशवल्लरियो से शोभित हैं। मथुरा की तीन मूर्तियो में पीठिका-लेखो मे भी ऋषभ का नाम है।[5] चौसा से ऋषभ की दो मूर्तिया मिली हैं। इनमे ऋषभ कायोत्सर्ग-मुद्रा मे हैं। ये मूर्तिया सम्प्रति पटना सग्रहालय (६५३८, ६५३९) मे सुरक्षित हैं।

गुप्तकालीन ऋषभ मूर्तिया मथुरा, चौसा एव अकोटा से मिली हैं। मथुरा से छह मूर्तिया मिली हैं। इनमे से तीन मे ऋषभ कायोत्सर्ग मे खडे हैं।[6] इनमे अलंकृत भामण्डल एवं पार्श्ववर्ती चामरधरो से युक्त ऋषभ तीन या पाच लटो से शोभित है। एक उदाहरण (पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा १२ २६८) मे पीठिका लेख मे ऋषभ का नाम भी उत्कीर्ण है। पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा की एक मूर्ति (वी ७) मे सिहासन के धर्मचक्र के दोनो ओर दो ध्यानस्थ जिन मूर्तिया भी वनी है (चित्र ४)। चौसा से चार मूर्तिया मिली हैं जिनमे जटाओ से सुशोभित ऋषभ ध्यानमुद्रा मे विराजमान है। अकोटा से ऋषभ की दो गुप्तकालीन श्वेताम्बर मूर्तिया मिली हैं (चित्र ५)। तीन लटो से शोभित ऋषभ दोनो उदाहरणो मे कायोत्सर्ग मे खडे है। ल० छठी शती ई० की दूसरी मूर्ति मे ऋषभ के आसन के समक्ष दो मृगो से वेष्टित धर्मचक्र और छोरो

१ आवश्यकचूर्णि, पृ० १५१

२ हस्तीमल, जैन धर्म का मौलिक इतिहास, ख० १, जयपुर, १९७१, पृ० ९–२९

३ ' सयमेव चउमुट्ठिय लोय करेड '। कल्पसूत्र १९५, त्रि०श०पु०च० ३ ६०–७०

४ पउमचरिय ३ १३६, हरिवशपुराण ९.९८, आदिपुराण १७.२०१, पद्मपुराण ३ २८३

५ दो मूर्तिया राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे २६, जे ६९) एव एक मथुरा सग्रहालय (वी ३६) मे हैं।

६ पाच मूर्तिया मथुरा संग्रहालय और एक राज्य संग्रहालय, लखनऊ (०.७२) मे है।

पर द्विभुज सर्वानुभूति एव अम्बिका आमूर्तित हैं ।[1] जिन के साथ यक्ष-यक्षी के चित्रण का यह प्राचीनतम उदाहरण है । इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्तकाल तक ऋषभ की मूर्तियो मे उनके लाछन वृषभ का तो नही किन्तु यक्ष-यक्षी का (जो परम्परा-सम्मत नही थे) निरूपण प्रारम्भ हो गया था ।

अकोटा से ल० सातवी शती ई० की भी तीन मूर्तिया मिली हैं ।[2] इनमे भी जटाओ से शोभित ऋषभ के साथ यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका ही है । सिंहासन केवल एक उदाहरण मे उत्कीर्ण है । वसन्तगढ (पिण्डवाडा, राजस्थान) से भी सातवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति मिली है ।[3]

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तिया

गुजरात-राजस्थान—वसन्तगढ़ की आठवी शती ई० के प्रारम्भ की एक ध्यानस्थ मूर्ति मे सिंहासन के छोरो पर यक्ष-यक्षी नही निरूपित है ।[4] ओसिया के महावीर मन्दिर के अर्धमण्डप पर भी ऋषभ की एक ध्यानस्थ मूर्ति है (ल० ९वी शती ई०) जिसमे द्विभुज सर्वानुभूति एव अम्बिका आमूर्तित हैं । आठवीं-नवी शती ई० की एक मूर्ति गोध्रा (गुजरात) से मिली है ।[5] कायोत्सर्ग मे खडी मूर्ति निर्वस्त्र है । वृषभ लाछन केवल वसतगढ की एक मूर्ति (८वी-९वी शती ई०) मे ही प्रदर्शित है ।[6] अकोटा से आठवी से दसवी शती ई० के मध्य की पाच श्वेतावर मूर्तिया मिली हैं ।[7] इनमे केवल जटाओ के आधार पर ही ऋषभ की पहचान की गई है । इन मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं । लिल्वादेव (पाचमहल, गुजरात) से दसवी शती ई० की कई मूर्तिया मिली हैं ।[8] एक मूर्ति मे सिंहासन पर नवग्रहो एवं अम्बिका यक्षी की मूर्तिया हैं । दूसरी मूर्ति मे सिंहासन के छोरो पर सर्वानुभूति एवं अम्बिका और मूलनायक के पार्श्वों मे दो जिन (कायोत्सर्ग-मुद्रा मे) आमूर्तित हैं । दो अन्य मूर्तियो के परिकर मे २३ छोटी जिन-आकृतिया उत्कीर्ण हैं ।[9] १०९४ ई० की एक मूर्ति पिण्डवाडा (सिरोही, राजस्थान) के जैन मन्दिर मे सुरक्षित है । इसके परिकर मे २३ जिन आकृतिया, गोमुख यक्ष और (चक्रेश्वरी के स्थान पर) अम्बिका यक्षी उत्कीर्ण हैं ।[10]

गगा गोल्डेन जुविली सग्रहालय, वीकानेर मे ग्यारहवी-वारहवी शती ई० की दो जिन मूर्तिया (वी०एम०१६६१ एव १६६८) सुरक्षित हैं । इनमें ध्यानमुद्रा मे आसीन ऋषभ के साथ यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं । एक मूर्ति (११४१ ई०) मे मूलनायक के पार्श्वो मे दो जिन एव आसन पर नवग्रह आकृतिया उत्कीर्ण हैं ।[11] विमलवसही मे ऋषभ की चार मूर्तियां हैं । वृषभ लाछन केवल गर्भगृह की मूर्ति मे उत्कीर्ण है । अन्य उदाहरणो मे पीठिका लेखो मे ऋषभ के नाम दिये हैं । गर्भगृह एवं देवकुलिका २५ की दो मूर्तियो मे गोमुख-चक्रेश्वरी और देवकुलिका १४ एव २८ की मूर्तियो मे सर्वानुभूति-अम्बिका निरूपित है । देवकुलिका १४ एव २८ की मूर्तियो मे मूलनायक के पार्श्वों मे कायोत्सर्ग और ध्यानमुद्रा मे दो जिन मूर्तिया भी हैं ।

वोस्टन सग्रहालय मे राजस्थान से मिली एक ध्यानस्थ मूर्ति (६४–४८७ · ९ वी–१० वी शती ई०) सुरक्षित है । ऋषभ वृषभ लाछन एव पारस्परिक यक्ष-यक्षी, गोमुख-चक्रेश्वरी, से युक्त हैं । लटो से शोभित ऋषभ की केशरचना

---

१ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, ववई, १९५९, पृ० २६, २८–२९　　　२ वही, पृ० ३८, ४१–४३

३ शाह, यू० पी०, 'ब्रोन्ज होर्ड फ्राम वसन्तगढ', ललितकला, अ० १–२, पृ० ५६　　४ वही, पृ० ५८

५ देवकर, वी० एल०, 'ए जैन तीर्थंकर इमेज रीसेन्टली एक्वायर्ड वाइ दि वडौदा म्यूजियम', बु०म्यू०पि०गै०, खं० १९, पृ० ३५–३६　　　६ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ५९

७ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० ४५, ५६–५९

८ राव, एस० आर०, 'जैन ब्रोन्जेज फ्राम लिल्वादेव', ज०इ०म्यू०, ख० ११, पृ० ३०–३३

९ शाह, यू० पी०, 'सेवेन ब्रोन्जेज फ्राम लिल्वा-देव', बु०व०म्यू०, ख० ९, भाग १–२, पृ० ४७–४८

१० शाह, यू०पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', ज०ओ०इ०, ख०२०, अ०३, पृ०३०१

११ श्रीवास्तव, वी०एस०, केटलाग ऐण्ड गाईड टू गगा गोल्डेन जुविली म्यूजियम, वीकानेर, ववई, १९६१, पृ०१७-१९

जटाजूट के रूप मे आवद्ध है। वयाना (भरतपुर, राजस्थान) से प्राप्त एक ध्यानस्थ मूर्ति (१० वी शती ई०) मे लाछन नष्ट हो गया है पर चतुर्भुज गोमुख एवं चक्रेश्वरी की मूर्तिया सुरक्षित हैं।[1] वारहवी शती ई० की वडौदा सग्रहालय की एक दिगम्वर मूर्ति[2] वृपम लाछन और परिकर मे चार लघु जिन आकृतियो से युक्त है।

विश्लेषण—इस प्रकार गुजरात-राजस्थान की मूर्तियो मे सामान्यतः लटकती जटाओ एवं पीठिका लेखो मे उत्कीर्ण नाम के आधार पर ही ऋषभ की पहचान की गई है। वृषभ लाछन एव गोमुख-चक्रेश्वरी केवल कुछ ही उदाहरणो, विशेपकर दिगम्वर मूर्तियो, मे उत्कीर्ण हैं। इनका उत्कीर्णन ल० आठवी से दसवी शती ई० के मध्य प्रारम्भ हुआ। अधिकाश उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्विका हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—ऋषभ की सर्वाधिक मूर्तिया इसी क्षेत्र मे उत्कीर्ण हुई।[3] आठवी-नवी शती ई० की मूर्तिया मुख्यत लखनऊ (जे ७८) और मथुरा (१८ १५०–४) संग्रहालयो एव देवगढ मे हैं जिनका कुछ विस्तार से उल्लेख किया जायगा। ग्वालियर स्थित तेली के मन्दिर पर नवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है जिसके परिकर में २४ जिन-आकृतिया उत्कीर्ण हैं।[4] ग्यारसपुर के वजरामठ मन्दिर मे दसवी शती ई० की (ध्यानमुद्रा में) दो मूर्तिया हैं। लाछन और यक्ष-यक्षी (गोमुख और चक्रेश्वरी) एक मे ही उत्कीर्ण हैं। धर्मचक्र के दोनो ओर दो गज वने हैं, जिनका चित्रण केवल गुजरात एव राजस्थान की श्वेताम्वर जिन मूर्तियो मे ही लोकप्रिय था। पार्श्ववर्ती चामरधरो के समीप दो देव आकृतिया हैं जिनके हाथो मे अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एव कलश प्रदर्शित हैं। परिकर मे दस छोटी जिन-मूर्तिया और साथ ही शख वजाती एव घट से युक्त मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं।

राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे आठवी से वारहवी शती ई० के मध्य की २३ मूर्तिया हैं। १५ उदाहरणो मे ऋषभ कायोत्सर्ग मे खडे हैं। केवल एक उदाहरण (जे ९४९) मे जिन धोती से युक्त हैं। वृषभ लाछन से युक्त ऋषभ दो, तीन या पाच लटो से शोभित हैं। नौ उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी नही आमूर्तित हैं। एक मूर्ति (जे ९५०, ११ वी शती ई०) मे (केतु के अतिरिक्त) आठ ग्रहो की भी मूर्तिया उत्कीर्ण है। दुवकुण्ड (ग्वालियर) की एक मूर्ति (जे ८२०, ११ वी शती ई०) मे त्रिछत्र के ऊपर आमलक एव कलश, और परिकर मे २२ छोटी जिन मूर्तिया वनी हैं। इनमे तीन और पाच सर्पफणो से आच्छादित दो जिनो की पहचान पार्श्व एव सुपार्श्व से सम्भव है।

ककाली टीले की ल० आठवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे ७८) मे वृषभ लाछन एव जटाओ से शोभित ऋषभ के साथ यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्विका हैं। यक्ष-यक्षी की आकृतियो के ऊपर सात सर्पफणो के छत्र से शोभित वलराम एव किरीटमुकुट से शोभित कृष्ण की स्थानक मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। वलराम के तीन हाथो मे प्याला, मुसल एव हल प्रदर्शित हैं और चौथी भुजा जानु पर स्थित है। कृष्ण अभयमुद्रा, ध्वजयुक्त गदा, चक्र एव शख से युक्त हैं। ज्ञातव्य है कि सर्वानुभूति यक्ष, अम्विका यक्षी एव वलराम-कृष्ण नेमिनाथ से सम्वन्धित हैं। अत ऋषभ के साथ इनका निरूपण परम्परा के विरुद्ध है।

लखनऊ सग्रहालय की ६ मूर्तियो मे ऋषभ के साथ यक्ष निरूपित है। गोमुख यक्ष केवल तीन ही उदाहरणो मे उत्कीर्ण है। शेष मे सर्वानुभूति आमूर्तित है। ११ उदाहरणो मे यक्षी चक्रेश्वरी है। कुछ मे सामान्य लक्षणो वाली यक्षी (जे ७८९) एव अम्विका (जे ७८, एस ९१४) भी निरूपित हैं। ल० दसवी-ग्यारहवी शती ई० की दो मूर्तियो (१६.० १७८, जे ९४९) मे ऋषभ के साथ चक्रेश्वरी के अतिरिक्त अम्विका, पद्मावती एव लक्ष्मी की भी मूर्तिया उत्कीर्ण हैं, जो ऋषभ की विशेष प्रतिष्ठा की सूचक हैं (चित्र ७)। अधिकाश मूर्तियो के परिकर मे ४, १४, २०, २२ या २३

---

१ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र सग्रह १५७ १२

२ शाह, यू० पी०, 'जैन स्कल्पचर्स इन दि वडौदा म्यूजियम', बु०व०म्यू०, ख० १, भाग २, पृ० २९

३ ल० नवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति कोसम (उ० प्र०) से मिली है (चित्र ६)।

४ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र सग्रह ८३ ६९

छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। सहेठ-महेठ की दसवी शती ई० की एक दुर्लभ मूर्ति (जे ८५७) मे मूलनायक को उन्नत वक्ष स्थल और अंतःप्रविष्ट उदर के साथ निरूपित किया गया है। इस दुर्लभ उदाहरण मे सम्भवतः एक योगी की ऊर्ध्व श्वांस प्रक्रिया को दरशाया गया है।

पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा मे आठवी से ग्यारहवीं शती ई० के मध्य की ऋषभ की चार मूर्तिया हैं। सभी में वृषभ लाछन और जटाएं प्रदर्शित हैं,पर यक्ष-यक्षी केवल दो उदाहरणो मे उत्कीर्ण हैं। एक मूर्ति (वी २१,१० वी शतीई०) मे यक्षी चक्रेश्वरी है, और यक्ष का मुखभाग खण्डित है। सिंहासन के नीचे एक पंक्ति मे कायोत्सर्ग-मुद्रा मे सात जिन-मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। परिकर मे भी आठ जिन आकृतिया सुरक्षित हैं। ग्यारहवी शती ई० की एक मूर्ति (१६ १२०७) मे द्विभुज यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका है। परम्परा विरुद्ध यक्ष वायी ओर और यक्षी दाहिनी ओर निरूपित हैं। मूलनायक के पार्श्वों मे केतु को छोडकर आठ ग्रहो को मूर्तिया उत्कीर्ण है।

खजुराहो मे दसवी से वारहवी शती ई० के मध्य की ५० से अधिक मूर्तियां हैं। इनमे से केवल ३६ मूर्तिया अध्ययन की दृष्टि से सुरक्षित है। लखनऊ सग्रहालय (१६ ० १७८) की एक मूर्ति की भाति खजुराहो के जार्डिन संग्रहालय की एक मूर्ति (१६५१) मे भी पारम्परिक यक्ष-यक्षी के साथ ही लक्ष्मी एवं अम्बिका निरूपित हैं जो ऋषभ की विशेष प्रतिष्ठा की सूचक है। ऋषभ केवल पाच ही उदाहरणो मे कायोत्सर्ग मे खडे हैं। छह उदाहरणो मे ऋषभ की केशरचना पृष्ठभाग मे जटा के रूप मे सवारी गई है। दो उदाहरणो मे सिंहासन के सूचक सिंह अनुपस्थित हैं। एक उदाहरण मे ऋषभ की जटाए और एक अन्य मे (मन्दिर ८) वृषभ लाछन नही उत्कीर्ण है। चामरधरो की एक भुजा मे कभी-कभी फल या सनाल पद्म भी प्रदर्शित हैं। तीन उदाहरणो मे पार्श्ववर्ती चामरधरो के स्थान पर पाच या सात सर्पफणो के छत्र से शोभित सुपार्श्व एव पार्श्व की कायोत्सर्ग मूर्तिया वनी हैं।

पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की ऋषभ मूर्ति मे यक्ष-यक्षी गोमुख एवं चक्रेश्वरी है। पार्श्वनाथ मन्दिर की मूर्ति मे पारम्परिक यक्ष-यक्षी के उत्कीर्णन के पश्चात् खजुराहो की अन्य मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी युगल का अभाव या अपारंपरिक यक्ष-यक्षी के चित्रण इस वात के सूचक है कि कलाकार परपरा के प्रति पूरी तरह आस्थावान नही थे। कई उदाहरणो मे गरुडवाहना यक्षी चक्रेश्वरी है पर यक्ष वृषानन नही है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की मूर्ति मे मूलनायक के दोनो ओर स्वतन्त्र सिंहासनो पर पाच एवं सात सर्पफणो से आच्छादित सुपार्श्व एव पार्श्व की कायोत्सर्ग मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। परिकर मे ३३ लघु जिन मूर्तिया भी हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह के प्रदक्षिणा पथ मे भी ऋषभ की एक मूर्ति (१०वी शतीई०) सुरक्षित है। मूर्ति के परिकर मे २३ जिन आकृतिया उत्कीर्ण हैं जिनमे से दो के सिरो पर पाच सर्पफणो के छत्र हैं। स्थानीय संग्रहालयो (के ६२, १६८२) की दो मूर्तियो (११ वी शती ई०) के परिकर मे क्रमश २४ और ५२ छोटी जिन आकृतिया उत्कीर्ण हैं। मन्दिर १७ की एक मूर्ति (११ वी शती ई०) के परिकर मे तीन जिनो एव वाहुवली की आकृतिया वनी हैं। पाच उदाहरणो मे ऋषभ के पार्श्वो मे सात सर्पफणो के शिरस्त्राण से युक्त पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्तिया हैं। जार्डिन सग्रहालय की एक मूर्ति (१६१२) मे पार्श्व एव सुपार्श्व की मूर्तिया हैं। चार उदाहरणो में आसन के नीचे नवग्रहो की आकृतिया उत्कीर्ण हैं।[1]

देवगढ मे नवी से वारहवी शती ई० के मध्य की ६० से अधिक ऋषभ मूर्तिया हैं (चित्र ८)। अधिकाश उदाहरणो मे ऋषभ कायोत्सर्ग मे निरूपित है। लटकती जटाओं[2] से शोभित ऋषभ के साथ वृषभ लाछन, और अधिकाश उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी प्रदर्शित हैं। कुछ उदाहरणो मे ऋषभ जटाजूट से अलकृत है, और कुछ मे उनके केश पीछे की ओर सवारे गए हैं। अधिकाश उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी गोमुख एव चक्रेश्वरी हैं। चार उदाहरणो[3] मे यक्षी अम्बिका है और

१ ये मूर्तिया मन्दिर १, २७, जार्डिन सग्रहालय एव पुरातात्त्विक संग्रहालय (१६८२) मे है।

२ स्कन्धो पर सामान्यत २, ३ या ५ लटें प्रदर्शित हैं।

३ मन्दिर १२, १३, १६ एवं २१

यक्ष भी वृषानन नही है।[१] आठ उदाहरणो[२] मे यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणो वाले हैं जिनके हाथो मे कलश, पद्म एव पुस्तक हैं तथा एक अभयमुद्रा मे प्रदर्शित है। चामरधरो की एक भुजा मे सामान्यत. पद्म (या फल) है। नवी से ग्यारहवीं शती ई० के मध्य की २५ विशाल कायोत्सर्ग मूर्तियो मे ऋषभ साधारण पीठिका या पद्मासन पर खडे हैं और उनकी लम्बी जटाएं भुजाओ तक लटक रही हैं।[3] इन मूर्तियो मे उष्णीष, लाछन एव यक्ष-यक्षी नही प्रदर्शित हैं।

देवगढ मे छत्रत्रयी के दोनो ओर अशोक वृक्ष की पत्तियो एव कलश धारण करनेवाली दो पुरुष आकृतियो का उत्कीर्णन विशेष लोकप्रिय था। परिकर मे कभी-कभी दो के स्थान पर चार गज आकृतिया उत्कीर्ण हैं। उड्डीयमान स्त्री आकृतियो के एक हाथ मे कभी-कभी चामर एव घट भी प्रदर्शित हैं। मन्दिर १२ की एक मूर्ति के सिंहासन पर चतुर्भुज लक्ष्मी की दो मूर्तिया[४] हैं। दो मूर्तियो[५] मे सिंहासन पर पुस्तक से युक्त दो जैन आचार्यों को शास्त्रार्थ की मुद्रा में निरूपित किया गया है। मन्दिर ४ की एक मूर्ति (११ वी शती ई०) मे यक्ष के स्थान पर अम्बिका और दूसरे छोर पर चक्रेश्वरी निरूपित है। सात मूर्तियो के परिकर मे २३ लघु जिन आकृतिया उत्कीर्ण हैं।[६] दो मूर्तियो के परिकर मे २४ जिन मूर्तिया हैं।[७]

गोलकोट एव बूढी चन्देरी की वृषभ लाछनयुक्त मूर्तियो (१० वी–११ वीं शती ई०) में गोमुख-चक्रेश्वरी निरूपित हैं। दुदही की एक मूर्ति मे जटाओ से शोभित ऋषभ के दोनो ओर सर्पफणो से युक्त कायोत्सर्ग जिन आमूर्तित हैं। त्रिछत्र के ऊपर आमलक एव चतुर्भुज दुन्दुभिवादक बने हैं।[८] धुबेला सग्रहालय की एक मूर्ति (३८) में सिंहासन के मध्य मे धर्मचक्र के स्थान पर चक्रेश्वरी है।[९] शहडोल की एक विशाल मूर्ति (११ वी शती ई०) के परिकर मे १०६ लघु जिन आकृतिया बनी हैं।[१०] सिंहासन के मध्य मे धर्मचक्र के स्थान पर चतुर्भुज शान्तिदेवी की मूर्ति है। गुना की एक मूर्ति (११ वी शती ई०) मे ऋषभ जटाजूट से शोभित हैं।[११] ऋषभ के साथ सर्वानुभूति एव अम्बिका अंकित हैं।

विश्लेषण—उत्तरप्रदेश–मध्यप्रदेश मे ऋषभ की मूर्तियो मे सर्वाधिक विकास परिलक्षित होता है। इस क्षेत्र मे जटाओ के साथ ही वृषभ लाछन और यक्ष-यक्षी का नियमित चित्रण हुआ है। लाछन का चित्रण सर्वप्रथम इसी क्षेत्र मे (ल० ८वीं शती ई०) प्रारम्भ हुआ।[१२] अधिकाश उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी हैं। सर्वानुभूति एव अम्बिका और सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी केवल कुछ ही उदाहरणो मे निरूपित हैं। अष्ट-प्रातिहार्यों एव परिकर मे लघु जिन-मूर्तियो का उत्कीर्णन भी लोकप्रिय था। परिकर मे सामान्यत २३ या २४ लघु जिन आकृतिया उत्कीर्ण हैं। कुछ उदाहरणो मे नवग्रहो की भी आकृतिया बनी हैं। ऋषभ के साथ परिकर मे शान्तिदेवी, जैन आचार्यों, बाहुबली, पद्मावती एव लक्ष्मी की भी मूर्तिया उत्कीर्ण हैं, जिनके चित्रण अन्यत्र दुर्लभ हैं।

बिहार-उडीसा-बंगाल—ल० आठवी शती ई० की ऋषभ की एक ध्यानस्थ मूर्ति राजगिर की वैभार पहाडी पर है।[१३] जटामुकुट एव केशवल्लरियो से शोभित मूर्ति की पीठिका के धर्मचक्र के दोनों ओर वृषभ लाछन की दो मूर्तिया

---

१ केवल मन्दिर २१ की एक मूर्ति मे यक्षी अम्बिका है पर यक्ष गोमुख है।

२ मन्दिर २, ८, २५, २६, २७ एव साहू जैन सग्रहालय।

३ ऐसी मूर्तिया मन्दिर १२ की चहारदीवारी पर सुरक्षित हैं।

४ लक्ष्मी के करो में अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एव कलश प्रदर्शित हैं।

५ मन्दिर ४ एव मन्दिर १२ की चहारदीवारी

६ मन्दिर ४, ८, १२, २४, २५ एव साहू जैन सग्रहालय

७ मन्दिर १२ की चहारदीवारी एव मन्दिर १६

८ ब्रुन, क्लाज, 'जैन तीर्थंज इन मध्य देश, दुदही', जैनयुग, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० २९–३२

९ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज–चित्र सग्रह ५४ ९८

१० वही, ए ७ ५२

११ गर्ग, आर०एस०, 'मालवा के जैन प्राच्यावशेष', जै०सि०भा०, ख० २४, अ० १, पृ० ५८

१२ राज्य संग्रहालय, लखनऊ–जे ७८

१३ आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५–२६, फलक ५६

हैं। गया से मिली एक दिगंबर मूर्ति (८ वीं–९ वीं शती ई०) इलाहाबाद संग्रहालय (२८०) मे सुरक्षित है।[1] कायोत्सर्ग मे खडे ऋषभ जटामुकुट एवं केशवल्लरियो से युक्त हैं। सिंहासन पर वृषभ लाछन एवं परिकर मे लाछनयुक्त २४ छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। परिकर मे सर्पफणो एव जटाओ से युक्त पार्श्व एवं ऋषभ की मूर्तिया हैं। काकटपुर (पुरी) से वृषम लाछन युक्त दो दिगंबर मूर्तिया मिली है, जो भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता मे सगृहीत हैं।[2] जटा से शोभित ऋषभ कायोत्सर्ग मे खडे हैं। एक उदाहरण मे आठ ग्रह भी उत्कीर्ण हैं। नवी से ग्यारहवी शती ई० के मध्य की आठ मूर्तियां अलुआरा (मानभूम) से मिली हैं, जो सम्प्रति पटना सग्रहालय मे हैं।[3] सात उदाहरणो मे ऋषभ निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग मे खडे हैं। इनमे केवल जटाओं के आधार पर ही ऋषभ की पहचान की गई है।

ल० नवी शती ई० की दो मूर्तिया पोट्टासिंगीदी (क्योझर) से मिली हैं और उडीसा राज्य सग्रहालय, भुवनेश्वर मे सुरक्षित हैं।[4] ध्यानमुद्रावाली एक मूर्ति मे वृषम लाछन के साथ ही लेख मे ऋषभ का नाम भी उत्कीर्ण है। दूसरी मूर्ति में ऋषभ निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग मे खडा हैं। जटाओ से शोभित ऋषभ त्रिछत्र के स्थान पर एकछत्र से युक्त हैं। चरपा (वालासोर) की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (९ वीं–१० वी शती ई०) मे जटा, वृषम लांछन, एक छत्र और आठ ग्रह उत्कीर्ण हैं।[5]

दसवी शती ई० की एक मनोज्ञ मूर्ति सुरोहर (दिनाजपुर, वागलादेश) से मिली है और वरेन्द्र शोध सग्रहालय (१४७२) मे सुरक्षित है (चित्र ९)।[6] ऋषभ ध्यानमुद्रा मे सिंहासन पर विराजमान हैं और जटामुकुट एव केशवल्लरियो से शोभित हैं। वृषम लाछन भी उत्कीर्ण है। परिकर मे जिनो की २३ लाछन युक्त छोटी मूर्तिया वनी हैं। २३ जिनो मे से केवल सुपार्श्व एव सुमति की पहचान सम्भव नही है। इनके साथ पारम्परिक लाछन (स्वस्तिक एव क्रौंच) के स्थान पर पद्म और पशु (सम्भवत श्वान्) उत्कीर्ण हैं। आशुतोष सग्रहालय मे भी ल० दसवी शती ई० की एक मूर्ति है,[7] जिसमे जटामुकुट एवं लाछन से युक्त ऋषभ कायोत्सर्ग मे निरूपित हैं। मूर्ति के परिकर मे चार जिन मूर्तिया वनी हैं। घटेश्वर (वगाल) से मिली दसवी शती ई० की एक दिगवर मूर्ति के परिकर मे २४ छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।[8] ल० दसवी शती ई० की एक ध्यानमुद्रावाली मूर्ति तालागुड़ी (पुरुलिया) से भी मिली है।[9] इसमे जटाजूट एवं लाछन से युक्त ऋषभ के वक्ष पर श्रीवत्स नही है। ऋषभ की कुछ मूर्तिया भेलोवा (दिनाजपुर, वागलादेश) एव सक (पुरुलिया, वगाल) से भी मिली हैं (चित्र १०, ११)।

खण्डगिरि की जैन गुफाओ मे भी ऋषभ की कई मूर्तिया (११ वी-१२ वी शती ई०) हैं। नवमुनि गुफा मे दो मूर्तियां ध्यानमुद्रा मे हैं। इनमे वृषभ लाछन और जटाएं प्रदर्शित है पर सिंहासन, भामण्डल, श्रीवत्स एव उड्डीयमान मालाधर नहीं है। एक मूर्ति मे ऋषभ के साथ दशभुज चक्रेश्वरी है। समान लक्षणो वाली एक अन्य ध्यानमुद्रावाली मूर्ति वारभुजी गुफा में है जिसमे सिंहासन, भामण्डल एव उड्डीयमान मालाधर चित्रित हैं। यहा चक्रेश्वरी वारह भुजाओवाली

---

१ चद्र, प्रमोद, स्टोन स्कल्पचर इन दि एलाहाबाद म्यूजियम, बम्बई, १९७०, पृ० ११२

२ रामचन्द्रन, टी०एन०, जैन मान्युमेण्ट्स ऐण्ड प्लेसेज़ आव फर्स्ट क्लास इम्पार्टेन्स, कलकत्ता, १९४४, पृ० ५९-६०

३ १०६७६, १०६८०–८१, १०६८३–८७

४ जोशी, अर्जुन, 'फर्दर लाइट आन दि रिमेन्स ऐट पोट्टासिंगीदी', उ०हि०रि०ज०, ख० १०, अ० ४, पृ० ३०-३१

५ दश, एम०पी०, 'जैन एन्टिक्विटीज फ्राम चरपा', उ०हि०रि०ज०, ख० ११, अ० १, पृ० ५०–५१

६ गागुली, कल्याण कुमार, 'जैन इमेजेज़ इन वगाल', इण्डि०क०, खं० ६, पृ० १३८–३९

७ सरकार, शिवशकर, 'आन सम जैन इमेजेज फ्राम वंगाल', माडर्न रिव्यू, ख० १०६, अ० २, पृ० १३०–३१

८ दत्त, कालीदास, 'दि एन्टिक्विटीज ऑव खारी', ऐनुअल रिपोर्ट, वारेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, १९२८–२९, पृ० ५–६

९ नाहटा, भवरलाल, 'तालागुडी की जैन प्रतिमा', जैन जगत, वर्ष १३, अं० ९–११, पृ० ६०–६१

है ।[१] त्रिशूल गुफा मे भी चार मूर्तिया हैं ।[२] इनमे वृषम लाछन, जटा एव जटामुकुट से युक्त ऋषभ कायोत्सर्ग मे खडे हैं । उड़ीसा के किसी स्थल से मिली ऋषभ की जटामुकुट से शोभित और कायोत्सर्ग मे खडी एक मूर्ति (१२ वी शती ई०) म्यूजेगीमे, पेरिस मे है ।[३] चामरधर और आठ ग्रह भी अकित हैं ।

अम्बिका नगर (वाकुडा) से लाछन एव जटामुकुट से शोभित एक विशाल कायोत्सर्ग मूर्ति (११ वी शती ई०) मिली है,[४] जिसके परिकर मे २४ जिनो की लाछनयुक्त छोटी मूर्तिया हैं । मानभूम एव वारभूम (मिदनापुर) की दो मूर्तिया (११ वी शती ई०) भारतीय सग्रहालय, कलकत्ता मे हैं ।[५] इनमे भी २४ लघु जिन आकृतिया उत्कीर्ण हैं । आशुतोष सग्रहालय की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (११ वी शती ई०) मे लाछन, नवग्रह एव गणेश की आकृतिया बनी हैं । बगाल की केवल एक ही ऋषभ मूर्ति (११ वीं शती ई०) मे यक्ष-यक्षी निरुपित है ।[६] यक्षी अम्बिका है पर द्विभुज यक्ष की पहचान सम्भव नही है ।

विश्लेषण—विहार-उडीसा-बगाल की ऋषभ मूर्तियो के अध्ययन से स्पष्ट है कि ऋषभ के साथ वृषभ लाछन एव जटाओ के साथ ही जटामुकुट का प्रदर्शन भी लोकप्रिय था । वृषभ लाछन का चित्रण ल० आठवी शती ई० मे ही प्रारम्भ हो गया । यक्ष-यक्षी का अकन केवल एक ही उदाहरण मे हुआ है, और उसमे भी वे पारम्परिक नही हैं ।[७] परिकर मे २३ या २४ जिनो की छोटी मूर्तियो एव नवग्रहो के अकन विशेष लोकप्रिय थे ।

जीवनदृश्य

ऋषभ के जीवनदृश्यो के उदाहरण राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे ३५४), ओसिया की देवकुलिका, कुम्भारिया के शान्तिनाथ एव महावीर मन्दिरो एव कल्पसूत्र के चित्रो मे सुरक्षित हैं। ओसिया और कुम्भारिया के उदाहरण ग्यारहवी शती ई० और कल्पसूत्र के चित्र पन्द्रहवी शती ई० के हैं ।

मथुरा से प्राप्त और राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे सुरक्षित ल० पहली शती ई० के एक पट्ट (जे ३५४) पर नीलाजना के नृत्य का दृश्य उत्कीर्ण है (चित्र १२) । नीलाजना इन्द्रलोक की नर्तकी थी । नीलाजना के नृत्य के कारण ही ऋषभ को वैराग्य उत्पन्न हुआ था ।[८] नीलाजना के नृत्य से सम्बन्धित पट्ट का दूसरा भाग भी प्राप्त हो गया है ।[९] वी०एन० श्रीवास्तव ने दोनो पट्टो के दृश्यो को पाच भागो मे विभाजित किया है । दाहिने कोने की आकृति को उन्होंने नीलाजना के नृत्य को देखते हुए शासक ऋषभ माना है । पट्ट पर ऋषभ के ससार त्यागने एव केवल-ज्ञान प्राप्त करने के भी चित्रण हैं ।

---

१ मित्रा, देवला, 'शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, ख० १, अ० २, पृ० १२८–३०

२ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, लिस्ट ऑव ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्राविन्स ऑव बिहार ऐण्ड उडीसा, कलकत्ता, १९३१, पृ० २८१

३ जै०क०स्था०, ख० ३, पृ० ५६२–६३

४ मित्रा, देवला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम वाकुडा, वेस्ट बगाल', ज०ए०सो०बं०, ख० २४, अ० २, पृ० १३२

५ एण्डरसन, जे०, केटलाग ऐण्ड हैण्डवुक टू दि आर्किअलाजिकल कलेक्शन इन दि इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, भाग १, कलकत्ता, १८८३, पृ० २०२, बनर्जी, जे० एन०, 'जैन इमेजेज़', दि हिस्ट्री ऑव बगाल, ख० १, ढाका, १९४३, पृ० ४६४–६५

६ मित्र, कालीपद, 'आन दि आइडेण्टिफिकेशन ऑव ऐन इमेज', इ०हि०क्वा०, ख० १८, अ० ३, पृ० २६१–६६

७ नवमुनि एव वारभुजी गुफाओ की दो ऋषभ मूर्तियो मे मूर्तियो के नीचे चक्रेश्वरी आमूर्तित है ।

८ पउमचरिय ३ १२२–२६, हरिवशपुराण ९ ४७–४८

९ राज्य सग्रहालय, लखनऊ—जे ६०९ श्रीवास्तव, वी० एन०, 'सम इन्टरेस्टिग जैन स्कल्पचर्स इन दि स्टेट म्यूज़ियम, लखनऊ', स०पु०प०, अ० ९, पृ० ४७–४८

ओसिया के महावीर मन्दिर के समीप की पूर्वी देवकुलिका के वेदिकावध पर ऋषभ के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। इस पहचान का मुख्य आधार नीलांजना के नृत्य का अंकन है। उत्तर की ओर ऋषभ की माता नवजात शिशु के साथ लेटी है। समीप ही गोद मे शिशु लिए अजमुख नैगमेषी आमूर्तित है। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि जिनो के जन्म के वाद इन्द्र ने अपने सेनापति नैगमेषी को शिशु को अभिषेक हेतु मेरु पर्वत पर लाने का आदेश दिया था। उपर्युक्त चित्रण नैगमेषी द्वारा शिशु को मेरुपर्वत पर ले जाने मे सम्बन्धित है। जैन परम्परा मे यह भी उल्लेख है कि नैगमेषी ने मरुदेवी को गहरी निद्रा मे सुलाकर उनके समीप शिशु की एक प्रतिकृति रख दी और शिशु को मेरु पर्वत पर ले गया। आगे गज पर दो आकृतिया वैठी हैं, जिनमे से एक की गोद मे शिशु है। यह इन्द्र द्वारा शिशु (ऋषभ) को मेरु पर्वत पर ले जाने का दृश्य है। आगे घट एवं वाद्ययंत्रो से युक्त ३५ आकृतिया उत्कीर्ण है, जो ऋषभ के जन्म-कल्याणक पर आनन्दोत्सव मना रही हैं। आगे ध्यानमुद्रा मे वैठी इन्द्र की आकृति है, जिसकी गोद मे शिशु (ऋषभ) है। पूर्वी वेदिकावन्ध पर ऋषभ के राज्यारोहण का दृश्य है। दक्षिणी वेदिकावन्ध पर पशुओ और योद्धाओ की मूर्तिया एव युद्ध से सम्वन्धित दृश्य हैं। समीप ही नृत्य करती एक स्त्री की आकृति है जिसके पास वाद्यवादन करती तीन आकृतिया हैं। यह नीलाजना के नृत्य का अकन है। समीप ही भिक्षापात्र एव मुख-पट्टिका से युक्त दो साधु आकृतिया उत्कीर्ण हैं जो सम्भवत. ऋषभ की मूर्तिया हैं।

कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के वितान (उत्तर से प्रथम) पर ऋषभ के जीवनदृश्यो के विस्तृत चित्रण हैं (चित्र १४)। सारा दृश्य चार आयतो मे विभाजित है। वाहर से प्रथम आयत मे पूर्व की ओर (वायें से) मरुदेवी और नाभि की वार्तालाप करती आकृतिया उत्कीर्ण हैं। आगे सेविकाओ से वेष्टित मरुदेवी शय्या पर लेटी हैं। समीप ही १४ मागलिक स्वप्न उत्कीर्ण हैं।[1] उत्तर की ओर (वायें से) भी नाभि एव मरुदेवी की वार्तालाप मे सलग्न मूर्तिया हैं। आगे मरुदेवी की शय्या पर लेटी आकृति भी उत्कीर्ण है जिसके समीप चार वृषभ एव अश्व पर आरूढ एक आकृति वनी हैं। यह सम्भवत ऋषभ के पूर्वभव (वज्रनाभ) के जीव के मरुदेवी के गर्भ मे च्यवन करने का चित्रण है। अश्वारूढ आकृति वज्रनाभ का जीव है। आगे नाभिराय को जैन आचार्यों से मरुदेवी के स्वप्नो का फल पूछते हुए दरशाया गया है। दक्षिण की ओर ऋषभ के राज्यारोहण एव विवाह के दृश्य हैं।

दूसरे आयत मे पूर्व की ओर ऋषभ को शासक के रूप मे विभिन्न कलाओ का ज्ञान देते हुए दिखाया गया है। जैन परम्परा मे ऋषभ को सभी कलाओ का प्रणेता कहा गया है। इन दृश्यो मे ऋषभ को पात्र (प्रथम पात्र) लिए और युद्ध की शिक्षा देते हुए दिखाया गया है। उत्तर की ओर ऋषभ की दीक्षा का दृश्य उत्कीर्ण है। पद्मासन मे ऋषभ की पाच मूर्तिया उत्कीर्ण हैं, जिनमे वाम भुजा गोद मे है और दक्षिण से ऋषभ अपने केशो का लुचन कर रहे है। पाचवी आकृति के समक्ष इन्द्र खडे हैं जो ऋषभ से एक मुष्टि केश सिर पर ही रहने देने का अनुरोध कर रहे हैं। जैन परम्परा के अनुसार इन्द्र ने ही ऋषभ के लुचित केशो को जल मे प्रवाहित किया था। आगे कायोत्सर्ग-मुद्रा मे ऋषभ तपस्यारत हैं। ऋषभ के पार्श्वों मे खड्गधारी नमि-विनमि की आकृतिया हैं। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि राज्य-लक्ष्मी प्राप्त करने की इच्छा से नमि-विनमि तपस्यारत ऋषभ के समीप काफी समय तक खडे रहे। अन्त मे धरणेन्द्र ने उपस्थित होकर नमि-विनमि को ४८ हजार विद्याओ का स्वामित्व प्रदान किया।[2] पश्चिम की ओर खड्गधारी नमि-विनमि की आकृतिया उत्कीर्ण हैं। दक्षिण की ओर ऋषभ का समवसरण है जिसके मध्य मे ऋषभ की ध्यानस्थ मूर्ति है।

तीसरे आयत मे ऋषभ के दो पुत्रो, भरत एव वाहुवली के मध्य हुए युद्ध का विस्तृत चित्रण है। इन दृश्यो मे दोनो पक्षो की सेनाओ के युद्ध के साथ ही भरत एव वाहुवली के द्वन्द्वयुद्ध भी प्रदर्शित हैं। जैन परम्परा के अनुसार युद्ध मे

---

१ मागलिक स्वप्नो मे चतुर्भुज महालक्ष्मी ध्यानमुद्रा मे विराजमान है। महालक्ष्मी की निचली भुजाए गोद मे रखी हैं और ऊपरी भुजाओ में सनाल पद्म हैं। पद्म के ऊपर की दो गज आकृतियां देवी का अभिषेक कर रही हैं।

२ त्रि०श०पु०च० १ ३ १३४–४४

होने वाले नरसहार को बचाने के उद्देश्य से भरत एव बाहुबली ने द्वन्द्वयुद्ध के माध्यम से निर्णय करने का निश्चय किया था।[1] युद्ध मे विजयश्री बाहुबली को मिली पर उसी समय उनके मन मे ससार के प्रति विरक्ति का भाव उत्पन्न हुआ, और बाहुबली ने दीक्षा लेकर कठोर तपस्या की। अन्त मे बाहुबली को कैवल्य प्राप्त हुआ। कठोर और लम्बी अवधि की तपस्या के कारण बाहुबली के शरीर से माधवी, सर्प एव वृश्चिक आदि लिपट गये, किन्तु बाहुबली विचलित न होकर तपस्यारत बने रहे। बायी ओर शरीर से लिपटी माधवी के साथ बाहुबली की कायोत्सर्ग-मुद्रा मे तपस्यारत आकृति बनी है। बाहुबली के दोनो ओर उनकी बहनो, ब्राह्मी और सुन्दरी की मूर्तिया है जिनके नीचे 'ब्राह्मी' और 'सुन्दरी' अभिलिखित है। जैन परम्परा के अनुसार ऋषभ के आदेश पर ब्राह्मी और सुन्दरी बाहुबली के समीप गई थी। ब्राह्मी एव सुन्दरी के आगमन के बाद ही बाहुबली को केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ था। चौथे आयत मे चतुर्भुज गोमुख और चक्रेश्वरी आमूर्तित है।

कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका (उत्तर से प्रथम) के वितान पर भी ऋषभ के जीवनदृश्यो के विशद अंकन हैं (चित्र १३)। सम्पूर्ण दृश्य तीन आयतो मे विभाजित है। पहले आयत मे पूर्व की ओर सर्वार्थसिद्ध स्वर्ग का चित्रण है, जिसमे वार्तालाप की मुद्रा मे कई आकृतिया उत्कीर्ण हैं। स्मरणीय है कि वज्रनाभ का जीव सर्वार्थसिद्ध स्वर्ग से ही मरुदेवी के गर्भ मे आया था। आगे वार्तालाप की मुद्रा मे ऋषभ के माता-पिता की आकृतियां हैं। उत्तर मे (बायें से) मरुदेवी की शय्या पर लेटी मूर्ति है। आगे १४ मागलिक स्वप्न और वार्तालाप की मुद्रा मे ऋषभ के माता-पिता की मूर्तिया है। अन्य दृश्य कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के समान हैं।

दूसरे आयत मे उत्तर की ओर (बायें से) सेविकाओ से वेष्टित मरुदेवी शिशु के साथ लेटी हैं। नीचे 'ऋषभ जन्म' अभिलिखित है। बायी ओर नमस्कार-मुद्रा मे सम्भवत इन्द्र की मूर्ति उत्कीर्ण है। श्वेतावर परम्परा में इन्द्र द्वारा भी शिशु को मेरुपर्वत पर ले जाने का उल्लेख है।[2] पूर्व मे मेरुपर्वत पर शिशु को इन्द्र की गोद मे बैठे दिखाया गया है। पीछे छत्र लिए एक मूर्ति उत्कीर्ण है। इन्द्र के पार्श्वो मे अभिषेक हेतु कलशधारी आकृतिया बनी हैं। दक्षिण मे ध्यानस्थ ऋषभ की एक मूर्ति उत्कीर्ण है, जो अपने बायें हाथ से केशो का लुचन कर रही है। बायी ओर ऋषभ को कायोत्सर्ग-मुद्रा मे दो वृक्षो के मध्य खडा प्रदर्शित किया गया है। समीप ही ऋषभ की एक अन्य कायोत्सर्ग मूर्ति भी उत्कीर्ण है। ये मूर्तिया ऋषभ की तपश्चर्या की सूचक हैं। आगे ऋषभ का समवसरण है। तीसरे आयत मे ऋषभ के पारम्परिक यक्ष-यक्षी, गोमुख-चक्रेश्वरी और पाच अन्य देवता निरूपित हैं। लेख मे चक्रेश्वरी को 'वैष्णवी देवी' कहा गया है। अन्य मूर्तिया ब्रह्मशान्ति यक्ष,[3] सिंहवाहना अम्बिका, सरस्वती, शान्तिदेवी एव महाविद्या वैरोट्या[4] की हैं।

कल्पसूत्र के चित्रो मे भी ऋषभ के पचकल्याणको के विस्तृत अकन हैं।[5] चित्रो के विवरण कुम्भारिया के शान्तिनाथ एव महावीर मन्दिरो की दृश्यावलियो के समान है। इनमे ऋषभ के विवाह, राज्याभिषेक एव सिद्ध-पद प्राप्त करने के दृश्य हैं। चतुर्भुज शक्र को ऋषभ का राज्याभिषेक करते हुए दिखाया गया है।

दक्षिण भारत—इस क्षेत्र मे महावीर एव पार्श्व की तुलना मे ऋषभ की मूर्तिया काफी कम हैं। ऋषभ मूर्तियों मे जटाओ, वृषभ लाछन, गोमुख-चक्रेश्वरी एव २३ या २४ छोटी जिन मूर्तियो के नियमित अकन प्राप्त होते हैं।

---

१ पउमचरिय ४ ५४–५५, हरिवंशपुराण ११ ९८–१०२, आदिपुराण, ख० २, ३६ १०६–८५, त्रि०श०पु०च०, ख० १, ५ ७४०–९८

२ त्रि०श०पु०च० १ २ ४०७–३०

३ चतुर्भुज ब्रह्मशान्ति का वाहन हस है और करो मे वरदमुद्रा, पद्म, पुस्तक एवं जलपात्र हैं।

४ चतुर्भुजा वैरोट्या के हाथों मे खड्ग, सर्प, खेटक एवम् फल प्रदर्शित हैं।

५ ब्राउन, डब्ल्यू०एन०, ए डेस्क्रिप्टिव ऐण्ड इलस्ट्रेटेड केटलॉग ऑव मिनियेचर पेण्टिग्स ऑव दि जैन कल्पसूत्र, वाशिंगटन, १९३४, पृ० ५०–५३, फलक ३५–३८

ल० दसवीं शती ई० की एक मूर्ति पुडुकोट्टई से मिली है।[1] कायोत्सर्ग मे खडी ऋषभ मूर्ति के परिकर मे २३ छोटी जिन मूर्तिया और पीठिका पर गोमुख-चक्रेश्वरी निरूपित हैं। ऋषभ की जटाए और वृषभ लाछन भी उत्कीर्ण हैं। कलसमंगलम (पुडुकोट्टई) से मिली एक अन्य मूर्ति मे भी गोमुख-चक्रेश्वरी एवं परिकर मे २४ छोटी जिन मूर्तिया बनी हैं।[2] समान लक्षणो वाली कन्नड़ रिसर्च इन्स्टिट्यूट म्यूजियम की एक ध्यानस्थ मूर्ति[3] के परिकर मे ७१ जिन आकृतिया और मूलनायक के दोनो ओर सुपार्श्व एवं पार्श्व की कायोत्सर्ग मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं।

विश्लेषण

सपूर्ण अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उत्तर भारत की जिन मूर्तियो मे ऋषभ सर्वाधिक लोकप्रिय थे।[4] ल० ८वी शती ई० मे उनके वृषभ लाछन और नवीं-दसवी शती ई० मे पारम्परिक यक्ष-यक्षी, गोमुख एव चक्रेश्वरी का अकन प्रारम्भ हुआ।[5] ऋषभ की जटाओ का निर्धारण मथुरा मे पहली शती ई० मे ही हो गया था। देवगढ, खजुराहो, कुम्भारिया (महावीर मन्दिर) एव लखनऊ सग्रहालय की कुछ मूर्तियो मे ऋषभ के साथ पारम्परिक यक्ष-यक्षी के साथ ही अम्बिका, पद्मावती, शान्तिदेवी, सरस्वती, लक्ष्मी, वैरोट्या एव ब्रह्मशान्ति भी निरूपित हैं। ऋषभ के साथ इन देवो का निरूपण ऋषभ की विशेष प्रतिष्ठा का सूचक है।

ऋषभ के निरूपण मे हिन्दू देव शिव का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। शिव का प्रभाव ऋषभ की जटाओं, वृषभ लाछन एव गोमुख यक्ष के सन्दर्भ मे देखा जा सकता है। गोमुख यक्ष वृषानन है और उसका वाहन भी वृषभ है। गोमुख यक्ष के हाथो मे भी शिव से सम्बन्धित परशु एव पाश प्रदर्शित हैं।[6] ऋषभ की चक्रेश्वरी यक्षी वाहन (गरुड) और आयुधो (चक्र, शख, गदा) के आधार पर हिन्दू वैष्णवी से प्रभावित प्रतीत होती है।[7] कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की एक चक्रेश्वरी मूर्ति मे देवी को स्पष्टत· 'वैष्णवी देवी' कहा गया है। इस प्रकार शैव एव वैष्णव धर्मो के प्रमुख आराध्य देवो को जैन धर्म के आदि तीर्थंकर ऋषभ के शासनदेवता के रूप में निरूपित करके सम्भवत जैन धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है।

(२) अजितनाथ

जीवनवृत्त

अजितनाथ इस अवसर्पिणी युग के दूसरे जिन हैं। विनीता नगरी के महाराज जितशत्रु उनके पिता और विजया देवी उनकी माता थी। अजित के माता के गर्भ मे आने के बाद से जितशत्रु अविजित रहे, इसी कारण बालक का नाम अजित रखा गया। आवश्यकचूर्णि मे उल्लेख है कि गर्भकाल मे जितशत्रु विजया को खेल मे न जीत सके थे, इसी कारण बालक का नाम अजित रखा गया। राजपद के भोग के बाद पचमुष्टिक मे केशो का लुचन कर अजित ने दीक्षा ग्रहण की।

---

१ बालसुब्रह्मण्यम, एस० आर० तथा राजू, वी० बी०, 'जैन वेस्टिजेज इन दि पुडुकोट्टा स्टेट', क्वा०ज०मै०स्टे०, खं० २४, अं० ३, पृ० २१३-१४

२ वेंकटरमन, के० आर०, 'दि जैनज इन दि पुडुकोट्टा स्टेट', जैन एण्टि०, ख० ३, अ० ४, पृ० १०५

३ अन्निगेरी, ए० एम०, ए गाइड टू दि कन्नड़ रिसर्च इस्टिट्यूट म्यूज़ियम, धारवाड, १९५८, पृ० २६–२७

४ केवल उडीसा की उदयगिरि–खण्डगिरि गुफाओ मे ही ऋषभ की तुलना मे पार्श्व की अधिक मूर्तिया है।

५ देवगढ, विमलवसही एव कुछ अन्य स्थलो की मूर्तियो मे ऋषभ के साथ सर्वानुभूति एव अम्बिका भी आमूर्तित हैं। बिहार, उडीसा एव बगाल की मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी का उत्कीर्णन लोकप्रिय नही था।

६ बनर्जी, जे० एन०, दि डीवेलपमेन्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, कलकत्ता, १९५६, पृ० ५६२

७ राव, टी० ए० गोपीनाथ, एलिमेन्ट्स ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, खं० १, भाग २, वाराणसी, १९७१ (पु०मु०), पृ० ३८४–८५

वारह वर्षों की कठिन तपस्या के वाद अजित को अयोध्या मे सप्तपर्ण (न्यग्रोध) वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ। अजित को सम्मेद शिखर पर निर्वाण प्राप्त हुआ।[1]

प्रारम्भिक मूर्तिया

अजित का लाछन गज है और यक्ष-यक्षी महायक्ष एव अजितवला (या अजिता या विजया) हैं। दिगवर परम्परा मे अजित की यक्षी रोहिणी है। केवल दिगंबर स्थलों की अजित मूर्तियो मे ही यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। पर उनके निरूपण मे लेशमात्र भी परम्परा का निर्वाह नही किया गया है। साथ ही उनके स्वतन्त्र स्वरूप भी कभी स्थिर नहीं हो सके। ल० छठी-सातवी शती ई० मे अजित के लाछन और आठवी शती ई० मे यक्ष-यक्षी का निरूपण प्रारम्भ हुआ।

अजित की प्रारम्भिकतम मूर्ति ल० छठी-सातवी शती ई० की है। वाराणसी से मिली यह मूर्ति सम्प्रति राज्य संग्रहालय, लखनऊ (४९–१९९) मे है।[2] अजित कायोत्सर्ग-मुद्रा मे निर्वस्त्र खडे हैं और पीठिका पर गज लाछन की दो मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। भामण्डल के अतिरिक्त कोई अन्य प्रातिहार्य नही उत्कीर्ण है।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तिया

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र से अजित की तीन मूर्तिया मिली हैं। ल० आठवी शती ई० की अकोटा की एक मूर्ति मे धर्मचक्र के दोनो ओर अजित के गज लाछन उत्कीर्ण हैं।[3] पीठिका छोरो पर द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं, जिनके आयुध स्पष्ट नही है। पीठिका पर अष्टग्रहो की भी मूर्तिया हैं। १०५३ ई० की दूसरी मूर्ति अहमदावाद के अजितनाथ मन्दिर मे है[4] जिसमे लाछन नही उत्कीर्ण है। पर पीठिका-लेख मे अजित का नाम आया है। तीसरी मूर्ति कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर मे है। ११११९ ई० की इस मूर्ति मे कायोत्सर्ग मे अवस्थित मूलनायक की पीठिका पर गज लाछन वना है। यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण हैं, पर तोरण स्तम्भों पर अप्रतिचक्रा, पुरुषदत्ता, महाकाली, वज्रशृखला, वज्राकुशी, रोहिणी महाविद्याओ एव शान्तिदेवी की मूर्तिया हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—इस क्षेत्र मे केवल देवगढ एव खजुराहो से ही अजित की मूर्तिया मिली हैं।[5] देवगढ मे दसवी से वारहवी शती ई० के मध्य की पाच मूर्तिया हैं (चित्र १५)। चार मूर्तियो मे अजित कायोत्सर्ग मे खडे हैं। गज लाछन सभी मे उत्कीर्ण है। मन्दिर २१ की दसवी शती ई० की एक मूर्ति के अतिरिक्त अन्य सभी उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। तीन उदाहरणो मे द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणो वाले है।[6] इनकी भुजाओ मे अभयमुद्रा एव फल (या जलपात्र) प्रदर्शित है। मन्दिर २९ की वारहवी शती ई० की एक मूर्ति मे यक्ष-यक्षी चतुर्भुज हैं। इस मूर्ति मे चामरधरो के समीप हार और घट लिए हुए दो आकृतिया खडी हैं। मन्दिर १२ की चहारदीवारी की दो मूर्तियो (१०वी–११शती ई०) के परिकर मे क्रमश चार और पाच छोटी जिन मूर्तिया भी उत्कीर्ण है।

खजुराहो मे ग्यारहवीं–वारहवी शती ई० की चार मूर्तिया हैं।[7] सभी मूर्तिया स्थानीय सग्रहालय मे सुरक्षित हैं। तीन उदाहरणो में अजित ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। यक्ष-यक्षी केवल एक ही मूर्ति (के ४३) मे निरूपित हैं। एक

---

१ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ६४-६७

२ शर्मा, आर० सी०, 'जैन स्कल्पचर्स ऑव दि गुप्त एज इन दि स्टेट म्यूज़ियम, लखनऊ', म०जै०वि०गो०जु०वा०, वम्बई, १९६८, पृ० १५५

३ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज़, पृ० ४७, चित्र ४१ वी०

४ मेहता, एन०सी०, 'ए मेडिवल जैन इमेज ऑव अजितनाथ–१०५३ ए०डी०', इण्डि०एण्टि०, ख०५६, पृ०७२-७४

५ अजीत, सम्भव, अभिनन्दन एव पद्मप्रभ की कुछ कायोत्सर्ग मूर्तिया मध्य प्रदेश के शिवपुरी सग्रहालय मे हैं। द्रष्टव्य, जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ६०४

६ सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी से हमारा तात्पर्य सदैव ऐसे द्विभुज यक्ष-यक्षी से है जिनके करो मे अभयमुद्रा (या पद्म) एवं फल (या जलपात्र) प्रदर्शित हैं।

७ तिवारी, एम०एन०पी०, 'दि जिन इमेजेज ऑव खजुराहो विद स्पेशल रेफरेन्स टू अजितनाथ', जैन जर्नल,, खं० १०, अ० १, पृ० २२–२५

उदाहरण (के ६६) मे चामरधरो के स्थान पर पार्श्वो मे दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। सिंहासन-छोरो पर एवं परिकर मे चार अन्य जिन मूर्तिया भी बनी हैं। एक मूर्ति (के २२) मे पीठिका पर पाच ग्रहो एव परिकर मे ६ जिनो की मूर्तिया हैं। दो अन्य मूर्तियो (के ४३, के ५९) के परिकर मे क्रमशः दो और सात जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—राजगिर के सोनभण्डार गुफा मे ल० दसवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति है।[1] पीठिका पर सिंहासन के सूचक सिंहो के स्थान पर दो गज (लाछन) आकृतिया उत्कीर्ण हैं। पीठिका-छोरो पर ध्यानस्थ जिनो की दो मूर्तियां है। मूलनायक के पार्श्वो मे दो चामरधर एवं परिकर मे दो उड्डीयमान मालाधर आमूर्तित हैं। अलु-आरा (मानभूम) से एक कायोत्सर्ग मूर्ति (१०वी–११वी शती ई०) मिली है, जो सम्प्रति पटना सग्रहालय (१०६९७) मे सुरक्षित है।[2] सिंहासन पर गज लाछन, और परिकर में चामरधर, त्रिछत्र, उड्डीयमान मालाधर, गज, आमलक एव छोटी जिन आकृतिया उत्कीर्ण हैं। चरंपा (उड़ीसा) से मिली एक ध्यानस्थ मूर्ति (१०वी-११वी शती ई०) उडीसा राज्य संग्रहालय, भुवनेश्वर मे सकलित है।[3] उडीसा की नवमुनि, बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओ मे अजित की तीन मूर्तिया है।[4] नवमुनि एव बारभुजी गुफाओ की मूर्तियो के नीचे यक्षिया भी आमूर्तित हैं। बिहार के मानभूम जिलान्तर्गत पालमा से भी अजित की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (११वी शती ई०) मिली है।[5] गज लाछन युक्त यह मूर्ति शिखर युक्त मन्दिर मे प्रतिष्ठित है।

(३) सम्भवनाथ

जीवनवृत्त

सम्भवनाथ इस अवसर्पिणी के तीसरे जिन हैं। श्रावस्ती के शासक जितारि उनके पिता और सेनादेवी (या सुषेणा) उनकी माता थी। जैन परम्परा के अनुसार सम्भव के गर्भ मे आने के बाद से देश में प्रभूत मात्रा मे साम्ब एव मूग धान्य उत्पन्न हुए, इसी कारण बालक का नाम सम्भव रखा गया। राजपद के उपभोग के बाद सम्भव ने सहस्राम्रवन मे दीक्षा ली। १४ वर्षों की कठोर तपःसाधना के बाद श्रावस्ती नगर मे शालवृक्ष के नीचे सम्भव को केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ। निर्वाण इन्होने सम्मेद शिखर पर प्राप्त किया।[6]

प्रारम्भिक मूर्तिया

सम्भव का लाछन अश्व है और यक्ष-यक्षी त्रिमुख एव दुरितारि है। दिगबर परम्परा मे यक्षी का नाम प्रज्ञप्ति है। मूर्त अकनो मे सम्भव के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण नहीं प्राप्त होता। ल० दसवी शती ई० मे सम्भव के अश्व लाछन और यक्ष-यक्षी का अकन प्रारम्भ हुआ।

सम्भव की प्राचीनतम मूर्ति मथुरा से मिली है और राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे १९) मे सुरक्षित है (चित्र १६)। कुषाणकालीन मूर्ति पर अकित स० ४८ (=१२६ ई०) के लेख मे 'सम्भवनाथ' का नाम उत्कीर्ण है। सम्भव ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। पीठिका पर धर्मचक्र और त्रिरत्न उत्कीर्ण हैं। इस मूर्ति के बाद दसवी शती ई० के पूर्व की एक भी सम्भव मूर्ति नही मिली है।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तिया

गुजरात और राजस्थान के जैन मन्दिरो की देवकुलिकाओ की सम्भव मूर्तिया सुरक्षित नही है। बिहार एवं बगाल से सम्भव की एक भी मूर्ति नही मिली है। उडीसा की नवमुनि, बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओ मे सम्भव की तीन ध्यानस्थ मूर्तिया हैं।[7] इनमे से दो उदाहरणो मे यक्षियां भी उत्कीर्ण हैं।

---

१ आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली, चित्र सग्रह १४३१ ५५

२ गुप्ता, पी० एल०, दि पटना म्यूजियम कैटलाग ऑव दि एन्टिक्विटीज, पटना, १९६५, पृ० ९०

३ दश, एम० पी, पू०नि०, पृ० ५१–५२

४ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

५ जै०क०स्था०, ख० २, पृ० २६७

६ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ६८–७१

७ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

उत्तर भारत मे केवल उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश के क्षेत्र मे देवगढ, खजुराहो एव विजनौर से सम्मवनाथ की मूर्तिया मिली हैं। दो मूर्तिया (१०वी–११वी शती ई०) राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे भी हैं। लखनऊ सग्रहालय की दोनो मूर्तियो मे सम्मव निर्वस्त्र और कायोत्सर्ग मे खडे हैं। इनमे अष्ट-प्रातिहार्य एव यक्ष-यक्षी नही निरूपित हैं। एक मूर्ति (जे ८५५) मे धर्मचक्र के दोनो ओर अश्व लाछन उत्कीर्ण है। दूसरी मूर्ति (० ११८) मे सम्मव के स्कन्धो पर जटाए प्रदर्शित हैं।

देवगढ मे दसवी से वारहवी शती ई० के मध्य की ११ मूर्तिया हैं। अश्व लाछन से युक्त सम्मव सभी मे कायोत्सर्ग मे खडे हैं। तीन उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण हैं। ६ उदाहरणो मे द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणो वाले हैं। इनके हाथो मे अभयमुद्रा (या गदा) एव फल (या कलश) प्रदर्शित हैं। मन्दिर १५ की एक मूर्ति (११ वी शती ई०) मे यक्षी द्विभुजा है, पर यक्ष चतुर्भुज है। मन्दिर ३० की एक मूर्ति (१२ वी शती ई०) मे यक्ष-यक्षी दोनो चतुर्भुज हैं। चार मूर्तियो[1] मे सम्मव के स्कन्धो पर जटाए प्रदर्शित हैं। पाच उदाहरणो मे परिकर मे कलशधारी, मन्दिर १७ की मूर्ति मे चार जिन और मन्दिर ३० की मूर्ति मे जैन आचार्य की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।

खजुराहो मे ग्यारहवी-वारहवी शती ई० की चार मूर्तिया हैं।[2] ११५८ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (मन्दिर २७) मे एक भी सहायक आकृति नही उत्कीर्ण है। अन्य उदाहरणो मे सम्मव ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। दो उदाहरणो मे द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। पुरातात्विक सग्रहालय, खजुराहो की मूर्ति (१७१५, ११वी शती ई०) मे मूलनायक के पार्श्वों मे सुपार्श्व की दो खड्गासन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। पार्श्ववर्ती जिनो के समीप दो स्त्री चामरधारिणी भी चित्रित हैं। परिकर मे तीन ध्यानस्थ जिनो एव वेणुवादको की भी मूर्तिया हैं।

पारसनाथ किले (विजनौर) से १०१० ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति मिली है।[3] इसके पीठिका लेख मे सम्मव का नाम उत्कीर्ण है। सम्मव के पार्श्वों मे नेमि एव चन्द्रप्रभ की कायोत्सर्ग मूर्तिया निरूपित हैं। यक्ष-यक्षी रूप मे सर्वानुभूति एव अम्विका निरूपित हैं।

(४) अभिनंदन

जीवनवृत्त

अभिनदन इस अवसर्पिणी के चौथे जिन हैं। अयोध्या के महाराज सवर उनके पिता और सिद्धार्था उनकी माता थी। अभिनदन के गर्भ मे आने के वाद से सर्वत्र प्रसन्नता छा गई, इसी कारण वालक का नाम अभिनदन रखा गया। राजपद के उपभोग के वाद अभिनदन ने दीक्षा ग्रहण की और कठिन तपस्या के वाद अयोध्या मे शाल (या पियक) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। इनकी निर्वाण-स्थली भी सम्मेदशिखर है।[4]

मूर्तिया

दसवी शती ई० से पूर्व की अभिनदन की एक भी मूर्ति नही मिली है। अभिनदन का लांछन कपि है और यक्ष-यक्षी यक्षेश्वर (या ईश्वर) एव कालिका (या काली) हैं। दिगवर परम्परा मे यक्षी का नाम वज्रश्रृंखला है। शिल्प मे अभिनंदन के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण नही प्राप्त होता।

---

१ मन्दिर ४, ९, २१

२ तिवारी, एम०एन०पी०, 'दि आइकानोग्राफी ऑव दि इमेजेज ऑव सम्मवनाथ ऐट खजुराहो', ज०गु०रि०सो०, ख० ३५, अ० ४, पृ० ३–९

३ वाजपेयी, के० डो०, 'पार्श्वनाथ किले के जैन अवशेष', चन्दावाई अभिनंदन ग्रन्थ, आरा, १९५४, पृ० ३८९

४ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ७२–७४

अभिनदन की स्वतन्त्र मूर्तिया केवल देवगढ, खजुराहो एव उडीसा की नवमुनि, वारभुजी और त्रिशूल गुफाओ मे हैं। देवगढ से केवल एक मूर्ति (मन्दिर ९, १० वी शती ई०) मिली है। कायोत्सर्ग मे खडे अभिनन्दन के आसन पर कपि लाछन एव सिंहासन-छोरो पर सामान्य लक्षणो वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी अकित हैं। यक्ष-यक्षी के करो मे अभयमुद्रा और कलश प्रदर्शित हैं। अभिनन्दन के स्कन्धो पर जटाए प्रदर्शित हैं। खजुराहो से दो मूर्तिया (१० वी–११ वी शती ई०) मिली हैं। दोनो मे जिन ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। पहली मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की पश्चिमी भित्ति पर और दूसरी मन्दिर २९ मे हैं। दोनो मे कपि लाछन और सामान्य लक्षणो वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी अभयमुद्रा और फल (या कलश) के साथ निरूपित हैं। मन्दिर २९ की मूर्ति मे चार छोटी जिन मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं। तीन ध्यानस्थ मूर्तिया नवमुनि, वारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे हैं।[1] दो मूर्तियो मे यक्षिया भी आमूर्तित हैं।

(५) सुमतिनाथ

जीवनवृत्त

सुमतिनाथ इस अवसर्पिणी के पाचवें जिन हैं। अयोध्या के शासक मेघ (या मेघप्रभ) उनके पिता और मगला उनकी माता थी। मगला ने गर्भकाल मे अपनी सुन्दर मति से जटिलतम समस्याओ का हल प्रस्तुत किया, अत गर्भस्थ वालक का उसके जन्म के उपरान्त सुमतिनाथ नाम रखा गया। राजपद के उपभोग के वाद सुमति ने दीक्षा ली और २० वर्षों की कठिन तपस्या के वाद अयोध्या के सहस्राम्रवन मे प्रियंगु वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त किया। इनकी निर्वाण-स्थली सम्मेद शिखर है।[2]

मूर्तियां

सुमतिनाथ की भी दसवी शती ई० से पूर्व की एक भी मूर्ति नही प्राप्त हुई है। सुमति का लाछन क्रौंच पक्षी, यक्ष तुम्वरु तथा यक्षी महाकाली हैं। दिगंवर परम्परा मे यक्षी का नाम नरदत्ता (या पुरुषदत्ता) है। मूर्त अकनो मे सुमति के पारम्परिक यक्ष-यक्षी नही निरूपित हुए।

गुजरात-राजस्थान क्षेत्र मे आवू और कुम्भारिया से सुमतिनाथ की मूर्तिया मिली हैं। विमलवसही की देव-कुलिका २७ एव कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ५ मे वारहवी शती ई० की दो मूर्तिया हैं। दोनो उदाहरणो मे मूलनायक की मूर्तिया नष्ट हैं, पर लेखो मे सुमतिनाथ का नाम उत्कीर्ण है। विमलवसही की मूर्ति मे मूलनायक के पार्श्वों मे दो कायोत्सर्ग और दो ध्यानस्थ जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं। कुम्भारिया की मूर्ति मे यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण हैं। सिंहासन के मध्य मे शान्तिदेवी के स्थान पर दो चामरधरो से सेवित चतुर्भुज महा-काली आमूर्तित है। मूर्ति के तोरण-स्तम्भो पर अप्रतिचक्रा, वज्राकुशी, वज्रशृखला, वैरोट्या, रोहिणी, मानवी, सर्वास्त्र-महाज्वाला एव महामानसी महाविद्याओ तथा सरस्वती एव कुछ अन्य देवियो की मूर्तिया हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश के क्षेत्र मे केवल खजुराहो एव महोवा (११५८ ई०)[3] से सुमति की मूर्तिया मिली हैं। खजुराहो मे दसवी-ग्यारहवी शती ई० की दो ध्यानस्थ मूर्तिया हैं। दोनो उदाहरणो मे लाछन और सामान्य लक्षणो वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। यक्ष-यक्षी के करो मे अभयमुद्रा (या पुष्प) एव फल प्रदर्शित हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की उत्तरी भित्ति की मूर्ति मे चामरधरो के समीप दो खड्गासन जिन मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं। मन्दिर ३० की दूसरी मूर्ति के परिकर मे चार कायोत्सर्ग जिन मूर्तिया हैं।

---

१ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१   २ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ७५–७८

३ स्मिथ, वी०ए० तथा ब्लैक, एफ०सी०, 'आब्जरवेशन आन सम चन्देल एन्टिक्विटीज', ज०ए०सो०वं०, ख० ५८, अं० ४, पृ० २८८

उडीसा मे वारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे दो ध्यानस्थ मूर्तिया हैं ।[१] दोनो उदाहरणो मे क्रौंच पक्षी की पहचान निश्चित नही है, पर मूर्तियो के पारम्परिक क्रम मे उत्कीर्ण होने के आधार पर उनकी सुमति से पहचान की गई है ।

(६) पद्मप्रभ

जीवनवृत्त

पद्मप्रभ वर्तमान अवसर्पिणी के छठें जिन हैं । कौशाम्बी के शासक धर (या धरण) इनके पिता और सुसीमा इनकी माता थी । जैन परम्परा मे उल्लेख है कि गर्भकाल मे माता को पद्म की शय्या पर सोने की इच्छा हुई थी तथा नवजात वालक के शरीर की प्रभा भी पद्म के समान थी, इसी कारण वालक का नाम पद्मप्रभ रखा गया ।[२] राजपद के उपभोग के वाद पद्मप्रभ ने दीक्षा ली और छह माह की तपस्या के वाद कौशाम्बी के सहस्राम्र वन मे प्रियंगु (या वट) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया । सम्मेद शिखर पर इन्हे निर्वाण प्राप्त हुआ ।[3]

मूर्तिया

पद्मप्रभ का लाछन पद्म है और यक्ष-यक्षी कुसुम एव अच्युता (या श्यामा या मानसी) हैं । दिगवर परम्परा मे यक्षी का नाम मनोवेगा है । मूर्त अकनो मे पद्मप्रभ के पारम्परिक यक्ष-यक्षी कभी निरूपित नही हुए । दसवी शती ई० से पहले की पद्मप्रभ की एक भी मूर्ति नही मिली है ।

उत्तरप्रदेश–मध्यप्रदेश के क्षेत्र मे पद्मप्रभ की मूर्तिया केवल खजुराहो, छतरपुर, देवगढ, नरवर[४] एव ग्वालियर से ही मिली है । दसवी शती ई० की एक विशाल पद्मप्रभ मूर्ति खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप मे सुरक्षित है । पद्मप्रभ ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं और उनकी पीठिका पर चतुर्भुज यक्ष-यक्षी एव कायोत्सर्ग-मुद्रा मे दो जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं । परिकर मे वीणावादन करती सरस्वती की भी दो मूर्तिया हैं । साथ ही कई छोटी जिन मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं । ग्वालियर से मिली मूर्ति (१०वी-११वी शती ई०) ध्यानमुद्रा मे है और भारतीय सग्रहालय, कलकत्ता मे सगृहीत है ।[५] देवगढ के मन्दिर १ से मिली मूर्ति कायोत्सर्ग-मुद्रा मे और ११ वी शती ई० की है । ११११४ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति कर्दमऊ (म० प्र०) के मन्दिर मे है ।[६] छतरपुर से मिली कायोत्सर्ग मूर्ति (११४९ ई०) राज्य सग्रहालय, लखनऊ (० १२२) मे हैं । इसमे मूलनायक के स्कन्धो पर जटाए भी प्रदर्शित हैं ।

कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ६ की मूर्ति (१२०२ ई०) के लेख मे पद्मप्रभ का नाम उत्कीर्ण है । उडीसा की वारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ में ध्यानस्थ पद्मप्रभ की दो मूर्तिया हैं । वारभुजी गुफा की मूर्ति मे चतुर्भुज यक्षी भी आमूर्तित है ।

(७) सुपार्श्वनाथ

जीवनवृत्त

सुपार्श्वनाथ इस अवसर्पिणी के सातवें जिन हैं । वाराणसी के शासक प्रतिष्ठ (या सुप्रतिष्ठ) उनके पिता और पृथ्वी उनकी माता थी । राजपद के उपभोग के वाद सुपार्श्व ने दीक्षा ली और नौ माह की तपस्या के वाद वाराणसी के सहस्राम्रवन मे सिरीश (या प्रियगु) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया । इनकी निर्वाण-स्थली सम्मेद शिखर है ।[७]

---

१ मिश्रा, देवला, 'शासन देवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, ख० १, अ० २, पृ० १३०, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

२ त्रि०श०पु०च० ३ ४ ३८, ५१

३ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ७८–८१

४ जै०क०स्था०, ख० ३, पृ० ६०४

५ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० ६२

६ जैन, कामताप्रसाद, 'दि स्टैचू ऑव पद्मप्रभ ऐट कर्दमऊ', वा०अहि०, ख० १३, अ० ९, पृ०१९१–९२

७ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ८२–८४

मूर्तिया

सुपार्श्व का लाछन स्वस्तिक है।[1] शिल्प मे सुपार्श्व का लाछन कुछ उदाहरणो मे ही उत्कीर्ण है। मूर्तियो मे सुपार्श्व की पहचान मुख्यतः एक, पाच या नौ सर्पफणो के शिरस्त्राण के आधार पर की गई है।[2] जैन ग्रन्थो मे उल्लेख है कि गर्भकाल मे सुपार्श्व की माता ने स्वप्न मे अपने को एक, पाच और नौ फणो वाले सर्पों की शय्या पर सोते हुए देखा था। वास्तुविद्या के अनुसार सुपार्श्व तीन या पाच सर्पफणो के छत्र से शोभित होंगे।[3] एक या नौ सर्पफणो के छत्रो वाली सुपार्श्व की स्वतन्त्र मूर्तिया नही मिली हैं। पर दिगवर स्थलो की कुछ जिन मूर्तियो के परिकर मे एक या नौ सर्पफणो के छत्रो वाली सुपार्श्व की लघु मूर्तिया अवश्य उत्कीर्ण हैं। स्वतन्त्र मूर्तियो मे सुपार्श्व सदैव पाच सर्पफणो के छत्र से युक्त हैं। सर्प की कुण्डलिया सामान्यत. चरणो तक प्रसारित हैं।

सुपार्श्व के यक्ष-यक्षी मातग और शाता है। दिगवर परम्परा मे यक्षी का नाम काली (या कालिका) है। दसवी शती ई० से पूर्व की सुपार्श्व मूर्ति नही मिली है। सुपार्श्व को मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी का चित्रण ग्यारहवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ। मूर्तियो मे पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण अनुपलब्ध है। पर कुछ उदाहरणो मे सुपार्श्व से सम्बद्ध करने के उद्देश्य से यक्ष-यक्षी के सिरो पर सर्पफणो के छत्र प्रदर्शित किये गये हैं।

गुजरात-राजस्थान—१०८५ ई० की ध्यानमुद्रा मे बनी एक मूर्ति कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की देवकुलिका ७ मे है। मूलनायक के दोनो ओर दो कायोत्सर्ग और दो ध्यानस्थ जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं। ग्यारहवी शती ई० की कुछ मूर्तिया ओसिया की देवकुलिकाओ पर भी हैं। कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर के गूढमण्डप मे ११५७ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है। इसमे पाच सर्पफणो के छत्र और स्वस्तिक लाछन दोनो उत्कीर्ण हैं, पर पारम्परिक यक्ष-यक्षी के स्थान पर सर्वानुभूति एव अम्बिका निरूपित है। यक्ष-यक्षी के बाद दोनो ओर महाविद्या, रोहिणी और वैरोट्या की चतुर्भुज मूर्तिया हैं। परिकर मे सरस्वती, प्रज्ञप्ति, वज्राकुशी, सर्वास्त्रमहाज्वाला एवं वज्रशृंखला की भी मूर्तिया हैं।

कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ७ की मूर्ति (१२०२ ई०) मे पाच सर्पफणो के छत्र और साथ ही लेख मे सुपार्श्व का नाम भी उत्कीर्ण हैं। बारहवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति विमलवसही की देवकुलिका १९ मे है। सुपार्श्व के यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वानुभूति और पद्मावती निरूपित हैं। पाच सर्पफणो के छत्र एव स्वस्तिक लाछन से युक्त बारहवीं शती ई० की एक मूर्ति बडौदा सग्रहालय मे है।[4] दो मूर्तिया (१२ वी शती ई०) राष्ट्रीय सग्रहालय, दिल्ली (एल ५५–११) एव राजपूताना सग्रहालय, अजमेर (५६) मे भी हैं।

विश्लेषण—इस प्रकार स्पष्ट है कि गुजरात एव राजस्थान से ग्यारहवी शती ई० के पूर्व की सुपार्श्व मूर्तिया नही मिली हैं। इस क्षेत्र मे सुपार्श्व के साथ पाच सर्पफणो के छत्र का नियमित चित्रण हुआ है। साथ ही लेखो मे सुपार्श्व के नामोल्लेख की परम्परा भी लोकप्रिय थी। कुछ उदाहरणो मे स्वस्तिक लाछन भी उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सदैव सर्वानुभूति एव अम्बिका ही हैं। केवल एक मूर्ति मे पार्श्वनाथ की यक्षी पद्मावती आमूर्तित है।

---

१ त्रि०श०पु०च० के अनुसार सुपार्श्व जन्म के समय स्वस्तिक चिह्न से युक्त थे। तिलोयपण्णत्ति मे सुपार्श्व का लाछन नन्द्यावर्त बताया गया है।

२ एक पच नव च फणा, सुपार्श्वे सप्तमे जिने।
भट्टाचार्य, बी० सी०, **दि जैन आइकानोग्राफी**, लाहौर, १९३९, पृ० ६०।

३ त्रिपचफण सुपार्श्व. पार्श्वः सप्तनवस्तथा। **वास्तुविद्या** २२ २७

४ शाह, यू० पी०, 'जैन स्कल्पचर्स इन दि बडौदा म्यूजियम', **बु०ब०म्यू०**, ख० १, भाग २, पृ० २९–३०

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—सुपार्श्व की सर्वाधिक मूर्तिया इसी क्षेत्र मे उत्कीर्ण हुई। पाच सर्पफणो के छत्र से शोभित और कायोत्सर्ग-मुद्रा मे खडे सुपार्श्व की दसवी शती ई० की एक मूर्ति शहडोल से मिली है।[1] दसवी-ग्यारहवी शती ई० की दो मूर्तिया क्रमश. मथुरा सग्रहालय (बी० २६) एव ग्यारसपुर के वजरामठ (बी० ११) मे हैं। ध्यानमुद्रावाली एक मूर्ति वैजनाथ (कागडा) से मिली है।[2] स्वस्तिक लाछन युक्त मूलनायक के दोनो ओर चन्द्रप्रभ एव वासुपूज्यकी लाछन युक्त मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। ग्यारहवी शती ई० की ध्यानमुद्रा मे ही एक मूर्ति राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे ९३५) मे है जिसके पीठिका-छोरो पर तीन सर्पफणो के छत्र वाले यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।

देवगढ मे ग्यारहवी शती ई० की पाच मूर्तिया हैं। सभी मे पाच सर्पफणो के छत्र से शोभित सुपार्श्व कायोत्सर्ग-मुद्रा मे खडे हैं। स्वस्तिक लाछन केवल मन्दिर १२ की चहारदीवारी की एक मूर्ति मे उत्कीर्ण है। इसी चहारदीवारी की एक अन्य मूर्ति मे सुपार्श्व जटाओ से युक्त हैं। यक्ष-यक्षी केवल एक ही मूर्ति (मन्दिर ४) मे निरूपित हैं। तीन सर्पफणो की छत्रावली से शोभित द्विभुज यक्ष-यक्षी के करो मे पुष्प एव कलश प्रदर्शित हैं। मन्दिर १२ (उत्तरी चहारदीवारी) की एक मूर्ति के परिकर मे द्विभुज अम्बिका की दो मूर्तिया हैं। मन्दिर ४ और मन्दिर १२ की उत्तरी चहारदीवारी के दो उदाहरणो मे परिकर मे चार जिन एव दो वटधारी आकृतिया उत्कीर्ण हैं।

खजुराहो मे बारहवी शती ई० की दो मूर्तिया (मन्दिर ५ एव २८) हैं। दोनो मे सुपार्श्व पाच सर्पफणो वाले और कायोत्सर्ग-मुद्रा मे हैं। दूसरी मूर्ति मे पीठिका पर स्वस्तिक लाछन और शान्तिदेवी[3] उत्कीर्ण हैं। बायी ओर तीन अन्य चतुर्भुज देविया भी निरूपित हैं। इनकी भुजाओ मे कुण्डलित पद्मनाल, पद्म, पद्म एव फल प्रदर्शित हैं। मन्दिर ५ की मूर्ति मे बायी ओर एक चतुर्भुज देवी आमूर्तित है जिसकी अवशिष्ट वाम भुजाओ मे पद्म एव फल हैं। ऊपर तीन छोटी जिन मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं।

विश्लेषण—उत्तर प्रदेश एव मध्य प्रदेश की मूर्तियो के अध्ययन से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र मे पाच सर्पफणो के छत्रो का प्रदर्शन नियमित था। सर्प की कुण्डलिया सामान्यत घुटनो या चरणो तक प्रसारित है। सुपार्श्व अधिकाशत कायोत्सर्ग-मुद्रा मे निरूपित हैं। स्वस्तिक लाछन केवल कुछ ही उदाहरणो मे है। यक्ष-यक्षी का चित्रण विशेष लोकप्रिय नही था। कुछ मूर्तियो मे सुपार्श्व से सम्बन्ध प्रदर्शित करने के उद्देश्य से यक्ष-यक्षी के मस्तको पर भी सर्पफणो के छत्र प्रदर्शित हैं।

बिहार-उडीसा-बगाल—बिहार एव बगाल से सुपार्श्व की मूर्तिया नही ज्ञात हैं। उडीसा मे बारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे दो मूर्तिया हैं। बारभुजी गुफा की मूर्ति के शीर्षभाग मे सर्पफण नही प्रदर्शित है। पीठिका पर उत्कीर्ण लाछन भी सम्भवत नन्द्यावर्त है।[4] नीचे यक्षी की मूर्ति उत्कीर्ण है। त्रिशूल गुफा की मूर्ति मे भी सर्पफण नही प्रदर्शित है। पर स्वस्तिक लाछन बना है।[5]

(८) चन्द्रप्रभ

जीवनवृत्त

चन्द्रप्रभ इस अवसर्पिणी के आठवें जिन हैं। चन्द्रपुरी के शासक महासेन उनके पिता और लक्ष्मणा (या लक्ष्मी देवी) उनकी माता थी। जैन परम्परा के अनुसार गर्भकाल मे माता की चन्द्रपान की इच्छा पूर्ण हुई थी और बालक की

---

१ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र सग्रह ५९ २८

२ वत्स, एम० एस०,'ए नोट आन द्द इमेजेज फ्राम बनीपार महाराज ऐण्ड वैजनाथ', आ०स०इ०ऐ०रि०,१९२९–३०, पृ० २२८

३ चतुर्भुज शान्तिदेवी अभयमुद्रा, कुण्डलित पद्मनाल, पुस्तक-पद्म एव जलपात्र से युक्त हैं। शान्तिदेवी के सिर पर सर्पफण की छत्रावली भी है।

४ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१

५ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

प्रभा भी चन्द्रमा की तरह थी, इसी कारण बालक का नाम चन्द्रप्रभ रखा गया।[1] राजपद के उपभोग के बाद चन्द्रप्रभ ने दीक्षा ली और तीन माह की तपस्या के बाद चन्द्रपुरी के सहस्राम्र वन मे प्रियगु (या नाग) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर उनकी निर्वाण-स्थली है।[2]

मूर्तिया

चन्द्रप्रभ का लाछन शशि है और यक्ष-यक्षी विजय (या श्याम) एव भृकुटि (या ज्वाला) है। मूर्तियो मे पारम्परिक यक्ष-यक्षी का अकन नहीं हुआ है। ल० नवी शती ई० मे चन्द्रप्रभ के लाछन और यक्ष-यक्षी का अकन प्रारम्भ हुआ। चन्द्रप्रभ की प्राचीनतम मूर्ति ल० चौथी शती ई० की है।[3] विदिशा से मिली इस ध्यानस्थ मूर्ति के लेख मे चन्द्रप्रभ का नाम है। मूर्ति मे लाछन नहीं है, यद्यपि चामरधर, सिंहासन और प्रभामण्डल उत्कीर्ण हैं। इस मूर्ति के बाद और नवी शती ई० के पूर्व की एक भी मूर्ति नहीं मिली है।

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र से केवल दो मूर्तिया मिली हैं जो ध्यानमुद्रा मे हैं। ११५२ ई० की पहली मूर्ति राजपूताना सग्रहालय, अजमेर मे है।[4] दूसरी मूर्ति (१२०२ ई०) कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ८ मे है। लेख मे चन्द्रप्रभ का नाम उत्कीर्ण है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—नवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति कौशाम्बी से मिली है और इलाहाबाद सग्रहालय (२९५) मे सुरक्षित है (चित्र १७)।[5] पीठिका पर चन्द्र लाछन और द्विभुज यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण है। दसवीं-ग्यारहवी शती ई० की शशि लाछनयुक्त तीन मूर्तिया राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे हैं।[6] दो उदाहरणो मे चन्द्रप्रभ ध्यानमुद्रा मे विराजमान है। सिरोनी खुर्द (ललितपुर) की दसवी शती ई० के तीसरे उदाहरण मे जिन कायोत्सर्ग-मुद्रा मे (जे ८८१) तथा द्विभुज यक्ष-यक्षी के साथ निरूपित हैं। चन्द्रप्रभ के स्कन्धो पर जटाए भी प्रदर्शित हैं।

खजुराहो मे दो ध्यानस्थ मूर्तिया हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की पश्चिमी भित्ति की मूर्ति मे द्विभुज यक्ष-यक्षी और दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। मन्दिर ३२ की दूसरी मूर्ति (१२वी शती ई०) मे भी यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। चामरधरो की दोनों भुजाओ मे चामर प्रदर्शित है। परिकर मे तीन जिन एव ६ उड्डीयमान मालाधर चित्रित हैं।

देवगढ मे दसवी-ग्यारहवीं शती ई० की लाछन युक्त नौ चन्द्रप्रभ मूर्तिया हैं (चित्र १५,१६)। छह उदाहरणो मे चन्द्रप्रभ ध्यानमुद्रा मे आसीन हैं। सात उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं। चार उदाहरणो[7] मे द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणो वाले हैं। मन्दिर १ की मूर्ति (११वी शती ई०) मे द्विभुज यक्ष गोमुख है। स्मरणीय है कि गोमुख ऋषभनाथ के यक्ष हैं। मन्दिर २१ की मूर्ति (११वी शती ई०) मे यक्ष-यक्षी चतुर्भुज हैं। मन्दिर २० की मूर्ति (११वी शती ई०) मे सिंहासन के दोनो छोरो पर चतुर्भुज यक्षी ही आमूर्तित है। परिकर मे चार जिन आकृतिया भी उत्कीर्ण हैं। मन्दिर ४ और १२ (प्रदक्षिणा पथ) की मूर्तियो मे भी चार छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। मन्दिर २१ की मूर्ति मे चन्द्रप्रभ जटाओ से युक्त हैं। परिकर मे आठ जिन आकृतिया भी हैं। मन्दिर १ और १२ (चहारदीवारी) की मूर्तियो मे क्रमश ६ और ४ जिन आकृतियां बनी हैं।

विश्लेषण—ज्ञातव्य है कि चन्द्रप्रभ की सर्वाधिक मूर्तिया उत्तर प्रदेश एव मध्य प्रदेश मे ही उत्कीर्ण हुईं। इस क्षेत्र मे शशि लाछन का चित्रण नियमित था। यक्ष-यक्षी का चित्रण भी लोकप्रिय था। कुछ उदाहरणो मे अपारम्परिक किन्तु स्वतन्त्र लक्षणोवाले यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।

---

१ त्रि०श०पु०च० ३ ६ ४९

२ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ८५–८७

३ अग्रवाल, आर० सी०, 'न्यूली डिस्कवर्ड स्कल्पचर्स फ्राम विदिशा', ज०ओ०इं०, ख० १८, अ० ३, पृ० २५३

४ इण्डियन आर्किअलाजी—ए रिव्यू, १९५७–५८, पृ० ७६

५ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० १४२–४३

६ जे ८८०, जे ८८१, जी ११३

७ मन्दिर १, १२, साहू जैन सग्रहालय

विहार-उड़ीसा-बंगाल—अलुआरा (पटना सग्रहालय १०६९५)[1] एव सोनगिरि[2] से चन्द्रप्रभ की दो कायोत्सर्ग मूर्तिया (११ वी शती ई०) मिली हैं। ग्यारहवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता मे भी है।[3] इसमे पीठिका पर यक्ष-यक्षी और परिकर मे २३ छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। वारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओ मे भी चन्द्रप्रभ की दो ध्यानस्थ मूर्तिया हैं।[4] वारभुजी गुफा की मूर्ति मे द्वादशभुज यक्षी भी आमूर्तित है। कोणार्क (उडीसा) के निकटवर्ती ककतपुर से प्राप्त चन्द्रप्रभ की कायोत्सर्ग मे खडी एक धातु मूर्ति (१२ वी शती ई०) आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता मे है।[5]

(९) सुविधिनाथ या पुष्पदन्त

जीवनवृत्त

सुविधिनाथ (या पुष्पदन्त) इस अवसर्पिणी के नवें जिन है। काकन्दी नगर के शासक सुग्रीव उनके पिता और रामादेवी उनकी माता थी। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि गर्भकाल मे माता सब विधियो मे कुशल रही, और उन्हे पुष्प का दोहद उत्पन्न हुआ, इसी कारण बालक का नाम क्रमश सुविधि और पुष्पदन्त रखा गया।[6] श्वेतांबर परम्परा मे सुविधि और पुष्पदन्त दोनो नामो के उल्लेख हैं, पर दिगबर परम्परा मे केवल पुष्पदन्त नाम ही प्राप्त होता है। राजपद के उपभोग के बाद सुविधि ने दीक्षा ली और चार माह की तपस्या के बाद काकन्दी के सहस्राम्र वन मे मालूर (या माली या अक्ष) वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[7]

मूर्तिया

सुविधि का लाछन मकर है और यक्ष-यक्षी अजित (या जय) एव सुतारा (या चण्डालिका) हैं। दिगवर परम्परा मे यक्षी का नाम महाकाली है। मूर्त अकनो मे सुविधि के यक्ष-यक्षी नही निरूपित हुए। केवल वारभुजी गुफा की मूर्ति मे ही यक्षी निरूपित है।

पुष्पदन्त की प्राचीनतम मूर्ति ल० चौथी शती ई० की है।[8] विदिशा से मिली इस मूर्ति मे पुष्पदन्त ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। लेख मे पुष्पदन्त का नाम उत्कीर्ण है। भामण्डल और चामरधर भी चित्रित हैं। इस मूर्ति और ग्यारहवी शती ई० के बीच की कोई मूर्ति ज्ञात नही है। मकर लाछन युक्त दो ध्यानस्थ मूर्तिया वारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे हैं।[9] ११५१ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति छतरपुर से मिली है।[10] कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ९ (१२०२ ई०) मे भी एक मूर्ति है। इस मूर्ति के लेख मे सुविधि का नाम उत्कीर्ण है। परिकर मे दो जिन मूर्तिया भी बनी हैं।

(१०) शीतलनाथ

जीवनवृत्त

शीतलनाथ इस अवसर्पिणी के दसवें जिन हैं। भदिदलपुर के महाराज दृढरथ उनके पिता और नन्दादेवी उनकी माता थी। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि गर्भकाल मे नन्दा देवी के स्पर्श से एक बार दृढरथ के शरीर की भयकर पीडा

---

१ प्रसाद, एच० के, पू०नि, पृ० २८७
२ बा०अहि०, ख० १२, अ० ९
३ स्ट०जै०आ०, फलक १६, चित्र ४४
४ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१
५ जै०क०स्था०, खं० २, पृ० २७७
६ त्रि०श०पु०च० ३ ७ ४९–५०
७ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ८८–९०
८ अग्रवाल, आर० सी०, पू०नि०,पृ० २५२–५३
९ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१
१० शास्त्री, हीरानन्द, 'सम रिसेन्टली ऐडेड स्कल्पचर्स इन दि प्राविन्शियल म्यूजियम, लखनऊ', मे०आ०स०इं०, अ० ११, पृ० १४

शान्त हुई थी, इसी कारण बालक का नाम शीतलनाथ रखा गया ।[१] राजपद के उपभोग के बाद उन्होने दीक्षा ली और तीन माह की तपस्या के बाद सहस्राम्र वन मे प्लक्ष (पीपल) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया । सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है ।[२]

मूर्तिया

शीतल का लाछन श्रीवत्स है और यक्ष-यक्षी ब्रह्म (या ब्रह्मा) एव अशोका (या गोमेधिका) हैं । दिगंबर परम्परा में यक्षी मानवी है । मूर्त अकनो मे यक्ष-यक्षी का चित्रण दुर्लभ है । केवल वारभुंजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी निरूपित है । शीतल की दसवी शती ई० से पहले की एक भी मूर्ति नही मिली है ।

वारभुजी गुफा मे श्रीवत्स-लाछन-युक्त एक ध्यानस्थ मूर्ति है ।[३] दसवी-ग्यारहवीं शती ई० की दो मूर्तिया आरंग (म० प्र०) से मिली हैं ।[४] त्रिपुरी (जबलपुर) से प्राप्त एक मूर्ति भारतीय सग्रहालय, कलकत्ता मे है ।[५] कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका १० मे भी एक मूर्ति (१२०२ ई०) है । मूर्ति के लेख मे शीतलनाथ का नाम उत्कीर्ण है ।

(११) श्रेयांशनाथ

जीवनवृत्त

श्रेयाशनाथ इस अवसर्पिणी के ग्यारहवें जिन हैं । सिंहपुरी के शासक विष्णु उनके पिता और विष्णुदेवी (या वेणुदेवी) उनकी माता थी । जैन परम्परा के अनुसार बालक के जन्म से राजपरिवार और सम्पूर्ण राष्ट्र का श्रेय-कल्याण हुआ, इसी कारण बालक का नाम श्रेयाश रखा गया ।[६] राजपद के उपभोग के बाद सहस्राम्र वन मे श्रेयाश ने अशोक वृक्ष के नीचे दीक्षा ली और दो मास की तपस्या के बाद सिंहपुर के उद्यान मे तिन्दुक (या पलाश) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया । सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है ।[७]

मूर्तिया

श्रेयाश का लाछन गैंडा (खड्गी) है और यक्ष-यक्षी ईश्वर (या यक्षराज) एव मानवी हैं । दिगवर परम्परा मे यक्षी गौरी है । मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी का निरूपण नही हुआ है । केवल वारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी निरूपित है । ग्यारहवी शती ई० से पहले की श्रेयाश की एक भी मूर्ति नही मिलो है । ल० ग्यारहवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति पक्वीरा (पुरुलिया) से मिली है ।[८] दो मूर्तिया वारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे हैं ।[९] एक मूर्ति इन्दौर सग्रहालय मे है ।[१०] लाछन सभी मे उत्कीर्ण हैं । कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ११ मे श्रेयाश की मूर्ति का सिंहासन (१२०२ ई०) सुरक्षित है । इसकी पीठिका पर श्रेयाश का नाम उत्कीर्ण है ।

(१२) वासुपूज्य

जीवनवृत्त

वासुपूज्य इस अवसर्पिणी के बारहवें जिन हैं । चम्पानगरी के महाराज वसुपूज्य उनके पिता और जया (या विजया) उनकी माता थी । वसुपूज्य का पुत्र होने के कारण ही इनका नाम वासुपूज्य रखा गया । जैन परम्परा मे

---

१ त्रि०श०पु०च० ३ ८ ४७ २ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ९१–९३ ३ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१

४ जैन, बालचन्द्र, 'महाकौशल का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १७, अं० ३, पृ० १३२

५ एण्डरसन, जे०, पू०नि०, पृ० २०६

६ त्रि०श०पु०च० ४ १ ८६ ७ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ९४–९८

८ बनर्जी, ए०, 'टू जैन इमेजेज़', ज०बि०उ०रि०सो०, खं० २८, भाग १, पृ० ४४

९ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८२

१० दिस्कालकर, डी० वी, दि इन्दौर म्यूज़ियम, इन्दौर, १९४२, पृ० ५

इनके अविवाहित-रूप मे दीक्षा ग्रहण करने का उल्लेख है। इन्होंने राजपद भी नहीं ग्रहण किया था। दीक्षा के वाद एक माह की तपस्या के उपरान्त इन्हे चम्पा के उद्यान मे पाटल वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त हुआ। चम्पा इनकी निर्वाण-स्थली भी है।

मूर्तिया

वासुपूज्य का लाछन महिष है और यक्ष-यक्षी कुमार एव चन्द्रा (या चण्डा या अजिता) हैं। दिगवर परम्परा मे यक्षी का नाम गान्धारी है। ल० दसवी शती ई० मे मूर्तियो मे वासुपूज्य के साथ लाछन और यक्ष-यक्षी का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ, किन्तु यक्ष-यक्षी पारम्परिक नही थे।

ल० दसवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति शहडोल (म० प्र०) से मिली है (चित्र १७)।[2] इसकी पीठिका पर महिष लाछन और यक्ष-यक्षी, तथा परिकर मे २३ छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। दो मूर्तिया वारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे हैं।[3] वारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी भी आमूर्तित है। विमलवसही की देवकुलिका ४१ मे ११८८ ई० की एक मूर्ति है जिसके लेख मे वासुपूज्य का नाम उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी के रूप मे सर्वानुभूति एव अम्बिका निरूपित हैं। कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका १२ मे भी एक मूर्ति है। इसके १२०२ ई० के लेख मे वासुपूज्य का नाम उत्कीर्ण है। मूर्ति मे चामरधरो के स्थान पर दो खड्गासन जिन मूर्तिया वनी हैं।

(१३) विमलनाथ

जीवनवृत्त

विमलनाथ इस अवसर्पिणी के तेरहवें जिन हैं। कपिलपुर के शासक कृतवर्मा उनके पिता और श्यामा उनकी माता थीं। जैन परम्परा के अनुसार गर्भकाल मे माता तन-मन से निर्मल वनी रही, इसी कारण वालक का नाम विमलनाथ रखा गया।[4] राजपद के उपभोग के वाद विमल ने सहस्राम्रवन मे दीक्षा ली और दो वर्षों की तपस्या के वाद कपिलपुर (सहेतुक वन) के उद्यान मे जम्बू वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[5]

मूर्तिया

विमल का लाछन वराह है और यक्ष-यक्षी षण्मुख एव विदिता (या वैरोटया) हैं। शिल्प मे विमल के पारम्परिक यक्ष-यक्षी कभी नही निरूपित हुए। नवी शती ई० मे मूर्तियो मे जिन के लाछन और ग्यारहवीं शती ई० में यक्ष-यक्षी का चित्रण प्रारम्भ हुआ।

नवी शती ई० की एक मूर्ति वाराणसी मे मिली है जो सारनाथ संग्रहालय (२३६) मे सुरक्षित है (चित्र १८)।[6] विमल कायोत्सर्ग-मुद्रा मे साधारण पीठिका पर निर्वस्त्र खडे हैं। पीठिका पर लाछन उत्कीर्ण है। पार्श्ववर्ती चामरधरो के अतिरिक्त अन्य कोई सहायक आकृति नहीं है। १००९ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति राज्य संग्रहालय, लखनऊ मे है। वटेश्वर (आगरा) से मिली इस मूर्ति मे विमल निर्वस्त्र हैं। सिंहासन पर लाछन और सामान्य लक्षणो वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। यक्ष-यक्षी के करो में अभयमुद्रा और घट प्रदर्शित हैं। अलुआरा से प्राप्त ल० ग्यारहवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति पटना संग्रहालय (१०६७४) मे सुरक्षित है।[7] लाछन युक्त दो मूर्तिया वारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे हैं।[8]

---

१ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ९९–१०१

२ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ५९.३४, १०२ ६

३ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

४ त्रि०श०पु०च० ४ ३.४८

५ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १०२–०४

६ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ७ ८९

७ प्रसाद, एच०के०, पू०नि०, पृ० २८८

८ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

पहली मूर्ति मे अष्टभुज यक्षी भी आमूर्तित है। विमलवसही की देवकुलिका ५० मे एक मूर्ति है जिसके ११८८ ई० के लेख मे विमल का नाम है तथा पीठिका के बायें छोर पर यक्षी अम्बिका निरूपित है।

(१४) अनन्तनाथ

जीवनवृत्त

अनन्तनाथ इस अवसर्पिणी के चौदहवें जिन है। अयोध्या के महाराज सिंहसेन उनके पिता और सुयशा (या सर्वयशा) उनकी माता थी। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि अनन्त के गर्भकाल मे पिता ने भयकर शत्रुओ पर विजय प्राप्त की थी, इसी कारण बालक का नाम अनन्त रखा गया।[1] राजपद के उपभोग के बाद अनन्त ने प्रव्रज्या ग्रहण की और तीन वर्षों की तपस्या के बाद अयोध्या के सहस्राम्र वन मे अशोक (या पीपल) वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[2]

मूर्तिया

श्वेताबर परम्परा मे अनन्त का लाछन श्येन पक्षी और दिगंबर परम्परा मे रीछ बताया गया है।[3] अनन्त के यक्ष-यक्षी पाताल एव अकुशा (या वरभृता) है। दिगंबर परम्परा मे यक्षी का नाम अनन्तमति है। मूर्तियो मे पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण नही हुआ है। अनन्त की भी ग्यारहवी शती ई० से पूर्व की कोई मूर्ति नही मिली है। ध्यानस्थ अनन्त की एक मूर्ति बारभुजी गुफा मे है।[4] मूर्ति के नीचे अष्टभुज यक्षी भी निरूपित है। एक ध्यानस्थ मूर्ति (१२ वी शती ई०) विमलवसही की देवकुलिका ३३ मे है जिसमे यक्ष-यक्षी रूप मे सर्वानुभूति एव अम्बिका निरूपित हैं।

(१५) धर्मनाथ

जीवनवृत्त

धर्मनाथ इस अवसर्पिणी के पन्द्रहवें जिन हैं। रत्नपुर के महाराज भानु उनके पिता और सुव्रता उनकी माता थी। जैन परम्परा के अनुसार गर्भकाल मे माता को धर्मसाधन का दोहद उत्पन्न हुआ, इसी कारण बालक का नाम धर्मनाथ रखा गया। राजपद के उपभोग के बाद धर्म ने दीक्षा ग्रहण की और दो वर्षों की तपस्या के बाद रत्नपुर के उद्यान मे दधिपर्ण वृक्ष के नीचे उन्होंने केवल-ज्ञान प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[5]

मूर्तिया

धर्मनाथ का लांछन वज्र है और यक्ष-यक्षी किन्नर एव कन्दर्पा (या मानसी) हैं। मूर्त अकनो मे यक्ष-यक्षी का अकन नही हुआ है। केवल बारभुजी गुफा की मूर्ति मे नीचे यक्षी भी आमूर्तित है। ग्यारहवी शती ई० से पहले की धर्मनाथ की कोई मूर्ति नही मिली है। वज्र-लाछन-युक्त दो ध्यानस्थ मूर्तिया बारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे हैं।[6] बारहवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति इन्दौर सग्रहालय मे है।[7] विमलवसही की देवकुलिका १ की मूर्ति (१२वी शती ई०) के लेख मे धर्मनाथ का नाम उत्कीर्ण है। मूर्ति मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं।

---

१ त्रि०श०पु०च० ४४४७
२ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १०५–०७
३ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० ७०
४ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१
५ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १०८–१३
६ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१
७ दिस्कालकर, डी० बी०,पू०नि०, पृ० ५

(१६) शान्तिनाथ

जीवनवृत्त

शान्तिनाथ इस अवसर्पिणी के सोलहवें जिन हैं। हस्तिनापुर के शासक विश्वसेन उनके पिता और अचिरा उनकी माता थी। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि शान्तिनाथ के गर्भ मे आने के पूर्व हस्तिनापुर नगर मे महामारी का रोग फैला था, पर इनके गर्भ मे आते ही महामारी का प्रकोप शान्त हो गया। इसी कारण बालक का नाम शान्तिनाथ रखा गया। शान्ति ने २५ हजार वर्षो तक चक्रवर्ती पद से सम्पूर्ण भारत पर शासन किया और उसके बाद दीक्षा ली। एक वर्ष की कठोर तपस्या के बाद शान्ति को हस्तिनापुर के सहस्राम्र उद्यान मे नन्दिवृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त हुआ। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[1]

मूर्तिया

शान्ति का लाछन मृग है और यक्ष-यक्षी गरुड (या वाराह) एव निर्वाणी (या धारिणी) हैं। दिगबर परम्परा मे यक्षी का नाम महामानसी है। मूर्तियो मे शान्ति के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का अंकन नही हुआ है। ल० सातवी शती ई० से पूर्व की कोई शान्ति मूर्ति नही मिली है। शान्ति की मूर्तियो मे ल० आठवी शती ई० मे लाछन और यक्ष-यक्षी का निरूपण प्रारम्भ हुआ।

गुजरात-राजस्थान—ल० सातवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति खेड्ब्रह्मा से मिली है।[2] इसमे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं। सिंहासन पर धर्मचक्र के दोनो ओर दो मृग उत्कीर्ण हैं जिन्हे यू० पी० शाह ने जिन के लाछन (मृग) का सूचक माना है।[3] सातवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति धाक गुफा मे भी है।[4] इसमे सिंहासन के मध्य में मृग लाछन और परिकर मे त्रिछत्र एव चामरधर सेवक आमूर्तित हैं।

कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की देवकुलिका १ मे ग्यारहवी शती ई० की एक मूर्ति है। मूर्ति के लेख मे शान्तिनाथ का नाम उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं। मूलनायक के दोनो ओर सुपार्श्व एव पार्श्व की कायोत्सर्ग मूर्तिया हैं। परिकर मे २४ छोटी जिन आकृतिया भी हैं। कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर के गूढमण्डप मे १११९–२० ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है (चित्र २०)। पीठिका पर मृग लाछन और लेख मे शान्तिनाथ का नाम है। यक्ष-यक्षी नहीं उत्कीर्ण हैं। परिकर मे आठ चतुर्भुज देविया निरूपित हैं। इनमे वज्रांकुशी, मानवी, सर्वास्त्रमहाज्वाला, अच्छुप्ता एव महामानसी महाविद्याओ और शान्तिदेवी की पहचान सम्भव है। ११३८ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति राजपूताना सग्रहालय, अजमेर (४६८) मे है। लेख मे शान्तिनाथ का नाम उत्कीर्ण है। ११६८ ई० की चाहमान काल की एक मनोज्ञ कास्य मूर्ति विक्टोरिया ऐण्ड अलबर्ट सग्रहालय, लन्दन मे है।[5] यहां शान्ति अलकृत आसन पर ध्यानमुद्रा में बैठे हैं।

---

१ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ११४–१८

२ शाह, यू० पी०, 'एन ओल्ड जैन इमेज फ्राम खेड्ब्रह्मा (नार्थ गुजरात)', ज०ओ०इं०, ख० १०, अ० १, पृ० ६१–६३

३ यह पहचान तर्कसगत नही है क्योकि धर्मचक्र के दोनो ओर दो मृगो का उत्कीर्णन गुजरात एवं राजस्थान के श्वेतावर जिन मूर्तियो की एक सामान्य विशेषता थी। अत यहां मृगो को लाछन का सूचक मानना उचित नही होगा।

४ सकलिया, एच० डी०, 'दि अर्लिएस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड़', ज०रा०ए०सो०, जुलाई १९३८, पृ० ४२८–२९, स्ट०जै०आ०, पृ० १७

५ जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ५६०–६१

विमलवसही की देवकुलिकाओ (१२, २४, ३०) मे वारहवी शती ई० की तीन मूर्तिया है। सभी के लेखो मे शान्तिनाथ का नाम है। सभी उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी के रूप मे सर्वानुभूति एव अम्बिका निरूपित हैं। लूणवसही की देवकुलिका १४ की मूर्ति (१२३६ ई०) मे भी सर्वानुभूति एव अम्बिका का ही अकन है। शान्तिनाथ की एक चौवीसी (१५१० ई०) भारत कला भवन, वाराणसी (२१७३३) मे है (चित्र २१)।

विश्लेषण—इस प्रकार स्पष्ट है कि कुछ उदाहरणो (कुम्भारिया, धाक) के अतिरिक्त इस क्षेत्र मे लाछन नही उत्कीर्ण किया गया है। पर पीठिका-लेखो मे शान्ति का नाम उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सभी उदाहरणो मे सर्वानुभूति एव अम्बिका ही है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—ल० आठवी शतीई० की ध्यानमुद्रा मे एक मूर्ति मथुरा से मिली है जो सम्प्रति पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा (वी ७५) मे है। इसमे धर्मचक्र के दोनो ओर मृग लाछन की दो आकृतिया उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं। परिकर मे ग्रहो की भी आठ मूर्तिया वनी है। इनमे केतु नही है। कौशाम्वी से मिली ल०नवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति इलाहावाद सग्रहालय (५३५) मे है।[1] इसमे धर्मचक्र के दोनो ओर मृग लाछन उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी नही वने हैं। दसवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (एम ५४) ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर के मण्डप की दक्षिणी रथिका मे सुरक्षित है। इसकी पीठिका पर मृग लाछन और चतुर्भुज यक्ष-यक्षी, तथा परिकर मे चार जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। ल० दसवी शती ई० की शान्तिनाथ की एक कायोत्सर्ग मूर्ति दुदही (ललितपुर) से मिली है।[2] इसमे जिन निर्वस्त्र हैं और उनका मृग लाछन धर्मचक्र के दोनो ओर उत्कीर्ण है।

देवगढ मे नवी से वारहवी शती ई० के मध्य की मृग-लाछन-युक्त ६ मूर्तिया हैं।[3] पाच उदाहरणो मे शान्ति कायोत्सर्ग मे निर्वस्त्र खडे हैं। मन्दिर १२ के गर्भगृह की नवी शती ई० की विशाल मूर्ति के अतिरिक्त अन्य सभी उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। तीन उदाहरणो[4] मे द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणो वाले हैं। मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की दो मूर्तियो मे यक्षी चतुर्भुजा है पर यक्ष केवल एक मे ही चतुर्भुज है। मन्दिर १२ (प्रदक्षिणापथ) एव मन्दिर ४ की दो मूर्तियो (११वी शती ई०) मे शान्ति के स्कन्धो पर जटाए भी प्रदर्शित हैं। मन्दिर १२ (गर्भगृह) एवं साहू जैन संग्रहालय की मूर्तियो मे नवग्रहो की भी मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। साहू जैन सग्रहालय की मूर्ति मे ग्रहो की मूर्तियां ध्यानमुद्रा मे वनी हैं। यहा केतु स्त्री-रूप मे निरूपित है। मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की मूर्ति के परिकर मे चार छोटी जिन आकृतियां एव चार उड्डीयमान मालाधर आमूर्तित हैं। मन्दिर ४ की मूर्ति के परिकर मे चार जिन एवं दो घटधारी आकृतिया वनी हैं। मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की एक अन्य मूर्ति के परिकर मे दस और प्रदक्षिणापथ की मूर्ति मे दो जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं।

खजुराहो मे ग्यारहवी-वारहवी शतीई० की मृग-लाछन-युक्त चार मूर्तिया हैं। दो उदाहरणो मे शान्ति कायोत्सर्ग मे खडे हैं। स्थानीय सग्रहालय की एक मूर्ति (के ३९) मे चामरधरो के स्थान पर दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। मन्दिर १ की विशाल कायोत्सर्ग मूर्ति (१०२८ ई०) मे चामरधरो के समीप पार्श्वनाथ की दो कायोत्सर्ग मूर्तिया हैं। परिकर मे २४ छोटी जिन मूर्तिया भी वनी हैं। सिंहासन-छोरो पर चतुर्भुज यक्ष-यक्षी हैं। स्थानीय संग्रहालय की एक ध्यानस्थ मूर्ति (के ६३) मे स्कन्धो पर जटाएं भी प्रदर्शित हैं। पीठिका-छोरों पर द्विभुज यक्ष-यक्षी एवं परिकर मे छह जिन आकृतिया उत्कीर्ण हैं। स्थानीय सग्रहालय की एक मूर्ति (के ३९) में यक्ष-यक्षी नही हैं, पर पार्श्वों में दो जिन मूर्तियां वनी

---

१ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० १४३

२ ब्रुन, क्लाज, 'जैन तीर्थंज इन मध्यदेश दुदही', **जैन युग**, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० ३२–३३

३ मन्दिर ८ के वरामदे मे शान्ति की मूर्ति का एक सिंहासन भी सुरक्षित है। इसमे यक्ष चतुर्भुज है और यक्षी के रूप मे द्विभुज अम्बिका निरूपित है। यक्ष के करो मे गदा, परशु, पद्म एव फल हैं।

४ साहू जैन सग्रहालय, मन्दिर १२ (प्रदक्षिणापथ), मन्दिर ४

हैं। जार्डिन सग्रहालय की एक मूर्ति मे द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है, पर यक्षी की पहचान सम्मव नही है। परिकर मे चार जिन मूर्तिया भी वनी हैं।

पमोसा की मृग-लाछन-युक्त एक ध्यानस्थ मूर्ति (११ वी शती ई०) इलाहाबाद संग्रहालय (५३३) मे है (चित्र १९)।[१] मूर्ति मे यक्ष-यक्षी रूप मे सर्वानुभूति एव अम्बिका निरूपित हैं। पार्श्ववर्ती चामरधरो के स्थान पर दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तिया वनी हैं। परिकर मे दो छोटी जिन मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं। सामान्य मालाधर युगलो के अतिरिक्त ६ अन्य मालाधर भी चित्रित हैं। पधावली एव .अहाड (११८० ई०) से दो कायोत्सर्ग मूर्तिया मिली हैं। एक मूर्ति (११४६ ई०) धुवेला सग्रहालय मे भी है। यहा लेख मे शान्ति का नाम उत्कीर्ण है।[२] ११७९ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति वजरगगढ़ (गुना) से मिली है।[३] इसकी पीठिका पर यक्ष-यक्षी भी निरूपित है। १०५३ ई० एवं ११४७ ई० की दो कायोत्सर्ग मूर्तिया मदनपुर से प्राप्त हुई हैं।[४]

विश्लेषण—उत्तर प्रदेश एव मध्य प्रदेश से प्राप्त मूर्तियो मे शान्तिनाथ अधिकाशत. कायोत्सर्ग-मुद्रा मे खडे हैं। इस क्षेत्र की जिन मूर्तियो मे मृग लाछन का नियमित अकन हुआ है। कुछ उदाहरणो मे लेख मे भी शान्ति का नाम उत्कीर्ण है। इस क्षेत्र मे धर्मचक्र के दोनो ओर मृग लाछन के चित्रण की परम्परा विशेष लोकप्रिय थी। यक्ष-यक्षी अधिकाशत. सर्वानुभूति एव अम्बिका, तथा शेष मे सामान्य लक्षणो वाले हैं। कुछ उदाहरणो मे शान्ति के साथ जटाएं भी प्रदर्शित हैं।

विहार-उड़ीसा-बंगाल—ल० नवी शती ई० की मृग-लाछन-युक्त एक मूर्ति राजपारा (मिदनापुर) से मिली है।[५] चरपा से मिली ल० दसवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति उडीसा राज्य सग्रहालय, भुवनेश्वर मे सुरक्षित है।[६] पीठिका पर यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। पक्वीरा (पुरुलिया) से ग्यारहवी शती ई० की मृग-लाछन-युक्त एक कायोत्सर्ग मूर्ति मिली है।[७] परिकर मे अजमुख नैगमेषी एव अजलि-मुद्रा मे चार स्त्रिया आमूर्तित हैं। सिंहासन के नीचे कलश और शिवलिंग बने हैं। परिकर की नवग्रहो की मूर्तिया खण्डित हैं। छितगिरि (अम्बिकानगर) के मन्दिर में भी शान्ति की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है। परिकर मे चार छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। उजेनी (वर्दवान), अलुआरा एव मानभूम से भी शान्ति की ग्यारहवी-वारहवी शती ई० की कायोत्सर्ग मूर्तिया मिली है।[८] दो ध्यानस्थ मूर्तिया वारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे हैं।[९] वारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी भी निरूपित है।

विश्लेषण—अध्ययन से स्पष्ट है कि विहार, उडीसा एव वगाल की मूर्तियों मे भी शान्ति अधिकाशत. कायोत्सर्ग में ही निरूपित हैं। मृग लाछन का चित्रण नियमित था, पर यक्ष-यक्षी का अकन लोकप्रिय नही था।

---

१ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० १५८
२ जैन, वालचन्द्र, 'धुवेला संग्रहालय के जैन मूर्ति लेख', अनेकान्त, वर्ष १९, अ० ४, पृ० २४४–४५
३ जैन, नीरज, 'वजरंगगढ का विशद जिनालय', अनेकान्त, वर्ष १८, अं० २, पृ० ६५–६६
४ कोठिया, दरवारीलाल, 'हमारा प्राचीन विस्मृत वैभव', अनेकान्त, वर्ष १४, अगस्त १९५६, पृ० ३१
५ गुप्ता, पी०सी० दास, 'आर्किअलाजिकल डिस्कवरी इन वेस्ट वंगाल', बुलेटिन ऑव दि डाइरेक्टरेट ऑव आर्किअलाजी, वेस्ट वगाल, अ० १, १९६३, पृ० १२
६ दथ, एम०पी०, पू०नि०, पृ० ५२
७ डे, सुधीन, 'टू यूनीक इन्स्क्राइव्ड जैन स्कल्पचर्स', जैन जर्नल, ख० ५, अ० १, पृ० २४–२६
८ गुप्ता, पी०एल०, पू०नि०, पृ० ९०, एण्डरसन, जे०, पू०नि०, पृ० २०१–०२
९ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

जीवनदृश्य

शान्ति के जीवनदृश्यो के चित्रण कुम्भारिया के शान्तिनाथ एव महावीर मन्दिरो (११वी शती ई०) तथा विमलवसही की देवकुलिका १२ (१२वी शती ई०) के वितानो पर मिलते हैं।[1]

कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के दूसरे वितान पर शान्ति के जीवनदृश्य है। शान्ति के पूर्वजन्म की एक कथा के चित्रण के आधार पर ही सम्पूर्ण दृश्यावली की पहचान की गई है। **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** मे उल्लेख है कि पूर्वभव मे शान्ति मेघरथ महाराज थे।[2] एक वार ईशानेन्द्र देवसभा मे मेघरथ के धर्माचरणो की प्रशसा कर रहे थे। इस पर सुरूप नाम के एक देवता ने मेघरथ की परीक्षा लेने का निश्चय किया। पृथ्वी पर आते समय सुरूप ने एक वाज और कपोत को लडते हुए देखा। परीक्षा लेने के उद्देश्य से सुरूप कपोत के शरीर मे प्रविष्ट हो गया। कपोत रक्षा के लिए आर्तनाद करता हुआ मेघरथ की गोद मे आ गिरा। मेघरथ ने उसे प्राण रक्षा का वचन दिया। कुछ देर वाद वाज भी वहा पहुचा और उसने मेघरथ से कहा कि वह क्षुधा से व्याकुल है, इसलिए उसके आहार (कपोत) को वे लौटा दें। पर मेघरथ ने वाज से कपोत के स्थान पर कुछ और ग्रहण करने को कहा। इस पर वाज ने कहा कि यदि उसे कपोत के भार के वरावर मनुष्य का मास मिल जाय तो उससे वह अपनी क्षुधा शान्त कर लेगा। मेघरथ ने तत्क्षण एक तराजू मगवाया और अपने शरीर से मास काट कर उस पर रखने लगे। पर कपोत के भीतर के देवता ने धीरे-धीरे अपना भार वढाना प्रारम्भ कर दिया। अन्त मे मेघरथ स्वय तराजू पर वैठ गये। इस प्रकार मेघरथ को किसी भी प्रकार धर्म से च्युत होते न देखकर सुरूप देव ने अन्त मे अपने को प्रकट किया और मेघरथ को आशीर्वाद दिया।

शान्तिनाथ मन्दिर के दृश्य तीन आयतो मे विभक्त हैं। वाहर से प्रथम आयत मे पश्चिम की ओर सैनिको एव सगीतज्ञो से वेष्टित मेघरथ एक ऊचे आसन पर विराजमान हैं। आगे एक तराजू वनी है जिस पर एक ओर कपोत और दूसरी ओर मेघरथ वैठे हैं। दक्षिण की ओर मेघरथ जैन आचार्यों के उपदेशो का श्रवण कर रहे हैं। पूर्व की ओर सम्भवत. मेघरथ की कायोत्सर्ग मे तपस्यारत मूर्ति है। आगे वार्तालाप की मुद्रा मे शान्ति के माता-पिता की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। समीप ही माता की विश्रामरत मूर्ति एवं १४ शुभ स्वप्न भी अकित हैं। दूसरे आयत मे पूर्व की ओर शान्ति की माता शिशु के साथ लेटी हैं। आगे नैगमेषी द्वारा शिशु को मेरु पर्वत पर ले जाने का दृश्य है। दक्षिण की ओर इन्द्र की गोद मे वैठे शिशु (शान्ति) के जन्म-अभिषेक का दृश्य उत्कीर्ण है। इन्द्र के पार्श्वों मे चामरधर एव कलशधारी सेवक चित्रित हैं। तीसरे आयत मे चक्रवर्ती पद के कुछ लक्षण, यथा नवनिधि के सूचक नौ घट, खड्ग, छत्र, चक्र आदि उत्कीर्ण हैं। आगे कई आकृतिया हैं जिनके समीप चक्रवर्ती शान्ति ऊचे आसन पर विराजमान हैं। समीप की आकृतिया सम्भवत अधीनस्थ शासको की सूचक हैं। दाहिनी ओर शान्ति का समवसरण उत्कीर्ण है जिसमे ऊपर की ओर शान्ति की ध्यानस्थ मूर्ति है।

कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के ५वें वितान पर भी शान्ति के जीवनदृश्य अकित हैं (चित्र २२ दक्षिणार्ध)। सम्पूर्ण दृश्यावली तीन आयतो मे विभक्त है। वाहर से प्रथम आयत मे दक्षिण की ओर शान्ति के माता-पिता की वार्तालाप मे सलग्न आकृतिया हैं। पश्चिम की ओर (वाये से) शान्ति की माता शय्या पर लेटी हैं। आगे १४ मागलिक स्वप्न और नवजात शिशु के साथ माता की विश्रामरत मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। समीप ही सेविकाओ एवं नैगमेषी की भी मूर्तिया हैं। नीचे 'श्री अचिरादेवी-प्रसूतिगृह-शान्तिनाथ' उत्कीर्ण है। उत्तर-पूर्व के कोने पर शान्ति के जन्माभिषेक का दृश्य है, जिसमे एक शिशु इन्द्र की गोद मे वैठा अकित है। इन्द्र के दोनो पार्श्वों मे कलशधारी आकृतिया खडी हैं। आगे चक्रवर्ती शान्ति एक ऊँचे आसन पर विराजमान हैं। नीचे 'शान्तिनाथ-चक्रवर्ती-पद' लिखा है। दक्षिणी-पूर्वी कोने पर शान्ति की गज और अश्व पर आरूढ कई मूर्तिया है जिनके नीचे शान्तिनाथ का नाम भी उत्कीर्ण है। ये आकृतिया

---

१ लूणवसही की देवकुलिका १४ की शान्तिनाथ मूर्ति के आधार पर वितान के दृश्यो की भी सम्भावित पहचान शान्ति से की गई है. जयन्तविजय, मुनिश्री, होली आवू, भावनगर, १९५४, पृ० १२२-२३

२ त्रि०श०पु०च०, ख० ३, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज १०८, वडौदा, १९४९, पृ० २९१-९३

मूर्तिया

मल्लि का लाछन कलश है और यक्ष-यक्षी कुवेर एव वैरोटया (या अपराजिता) हैं। मूर्तियो मे मल्लि के यक्ष-यक्षी का चित्रण दुर्लभ है। केवल वारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी उत्कीर्ण है। ग्यारहवी शती ई० से पहले की मल्लि की कोई मूर्ति नही मिली है।

ग्यारहवी शती ई० की एक श्वेतावर मूर्ति उन्नाव से मिली है और राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे० ८८५) मे सगृहीत है (चित्र २३)। यह मल्लि की नारी मूर्ति है। ध्यानमुद्रा मे विराजमान मल्लि के वक्ष स्थल मे श्रीवत्स नही उत्कीर्ण है। पर वक्ष स्थल का उभार स्त्रियोचित है और पृष्ठभाग की केशरचना भी वेणी के रूप मे प्रदर्शित है। पीठिका पर कलश (?) उत्कीर्ण है। नारी के रूप मे मल्लि के निरूपण का सम्भवत यह अकेला उदाहरण है। घट-लाछन-युक्त दो ध्यानस्थ मूर्तिया वारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे हैं।[1] ल० वारहवी शती ई० की घट-लाछन-युक्त एक ध्यानस्थ मूर्ति तुलसी सग्रहालय, सतना मे भी है।[2] कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका १८ मे ११७९ ई० की एक मूर्ति है। मूर्ति-लेख मे मल्लिनाथ का नाम भी उत्कीर्ण है।

(२०) मुनिसुव्रत

जीवनवृत्त

मुनिसुव्रत इस अवसर्पिणी के वीसवे जिन है। राजगृह के शासक सुमित्र उनके पिता और पद्मावती उनकी माता थी। गर्भकाल मे माता ने सम्यक् रीति से व्रतो का पालन किया, इसी कारण वालक का नाम मुनिसुव्रत रखा गया। राजपद के उपभोग के वाद मुनिसुव्रत ने दीक्षा ली और ११ माह की तपस्या के वाद राजगृह के नीलवन में चम्पक (चपा) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है। जैन परम्परा के अनुसार राम (पद्म) एव लक्ष्मण (वासुदेव) मुनिसुव्रत के समकालीन थे।[3]

मूर्तिया

मुनिसुव्रत का लाछन कूर्म है और यक्ष-यक्षी वरुण एव नरदत्ता (वहुरूपा या वहुरूपिणी) हैं। मूर्तियो मे मुनिसुव्रत के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का अकन नही प्राप्त होता। मुनिसुव्रत की उपलब्ध मूर्तिया ल० नवी० से वारहवी शती ई० के मध्य की हैं।[4] मुनिसुव्रत के लाछन और यक्ष-यक्षी का अकन ल० दसवी-ग्यारहवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ।

गुजरात-राजस्थान—ग्यारहवी शती ई० की एक श्वेतावर मूर्ति गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल म्यूजियम, जयपुर मे है (चित्र २४)।[5] इसमे मुनिसुव्रत कायोत्सर्ग में खडे हैं और आसन पर कूर्म लाछन उत्कीर्ण है। इसमे चामरधरो एव उपासको के अतिरिक्त अन्य कोई आकृति नही है। कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका २० मे ११७९ ई० की एक मूर्ति है। लेख मे 'मुनिसुव्रत' का नाम उत्कीर्ण है। यहा यक्ष-यक्षी नही वने हैं। दो मूर्तिया विमलवसही की देवकुलिका ११ (११४३ ई०) और ३१ में हैं। दोनो उदाहरणो मे लेखो मे मुनिसुव्रत का नाम और यक्ष-यक्षी रूप मे सर्वानुभूति एव अम्बिका उत्कीर्ण हैं। देवकुलिका ३१ की मूर्ति मे मूलनायक के पार्श्वों मे दो खड्गासन जिन मूर्तिया भी वनी हैं जिनके ऊपर दो ध्यानस्थ जिन आमूर्तित हैं।

---

१ मिश्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८२

२ जैन, जे०, 'तुलसी सग्रहालय का पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १६, अ० ६, पृ० २८०

३ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १३४–३५

४ राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे २०) मे १५७ ई० की एक मुनिसुव्रत मूर्ति की पीठिका सुरक्षित है शाह, यू०पी०, 'विगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, अ० ९, पृ० ५

५ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र सग्रह १५७ ७७

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—ल० दसवी शती ई० की एक मूर्ति वजरामठ (ग्यारसपुर) के प्रकोष्ठ मे है।[1] १००६ ई० की एक श्वेतांवर मूर्ति आगरा के समीप से मिली है और राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे ७७६) मे सुरक्षित है। मूर्ति काले पत्थर मे उत्कीर्ण है। ज्ञातव्य है कि जैन परम्परा मे मुनिसुव्रत के शरीर का रग काला वताया गया है। सिंहासन पर कूर्म लाछन और लेख मे 'मुनिमुव्रत' नाम आया है। मुनिसुव्रत ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। मूर्ति के परिकर मे जीवन्तस्वामी एव वलराम और कृष्ण की मूर्तियां है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। यक्ष के समीप एक स्त्री आकृति है जिसकी वाम भुजा मे पुस्तक है। चामरधरो के समीप कायोत्सर्ग-मुद्रा मे दो श्वेताम्बर जिन मूर्तिया वनी है। इन आकृतियो के ऊपर जीवन्तस्वामी की दो कायोत्सर्ग मूर्तिया हैं।[2] जीवन्तस्वामी मुकुट, हार, वाजूवद, कर्णफूल आदि से शोभित हैं। मूलनायक के त्रिछत्र के ऊपर एक ध्यानस्थ जिन मूर्ति उत्कीर्ण है जिसके दोनो ओर चतुर्भुज वलराम एव कृष्ण की मूर्तिया हैं। कृष्ण एव वलराम की मूर्तियो के आधार पर मध्य की जिन मूर्ति की पहचान नेमि से की जा सकती है। वनमाला एव तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त वलराम की भुजाओ मे वरदमुद्रा, मुसल, हल एव फल हैं। किरीटमुकुट एवं वनमाला से सज्जित कृष्ण के तीन अवशिष्ट करो मे वरदमुद्रा, गदा एव शख प्रदर्शित हैं। ल० ग्यारहवी शती ई० की कूर्म-लाछन-युक्त एक कायोत्सर्ग मूर्ति खजुराहो के मन्दिर २० मे है। इसमे यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण हैं। पर परिकर मे चार छोटी जिन मूर्तिया वनी हैं। ११४२ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति धुवेला सग्रहालय (४२) मे सुरक्षित है।[3] पीठिका लेख मे मुनिमुव्रत का नाम उत्कीर्ण है।

विहार-उड़ीसा-वंगाल—इस क्षेत्र मे वारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ में दो मूर्तिया है।[4] इनमे मुनिसुव्रत ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। वारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी भी आमूर्तित है। एक मूर्ति (ल० ९वी-१०वी शती ई०) राजगिर से भी मिली है।[5] ध्यानस्थ जिन के सिंहासन के नीचे वहुरूपिणी यक्षी को शय्या पर लेटी मूर्ति वनी है।

जीवनदृश्य

मुनिसुव्रत के जीवनदृश्य केवल स्वतन्त्र पट्टो पर उत्कीर्ण हैं। इन पट्टो पर मुनिमुव्रत के जीवन की केवल दो ही घटनाए मिलती हैं जो अश्वाववोध एव शकुनिका-विहार-तीर्थ की उत्पत्ति से सम्वन्धित है। गुजरात एव राजस्थान मे वारहवी-तेरहवी शती ई० के ऐसे चार पट्ट मिले है। वारहवी शती ई० का एक पट्ट जालोर के पार्श्वनाथ मन्दिर के गूढमण्डप मे है। अन्य सभी पट्ट तेरहवी शती ई० के हैं और कुम्भारिया के महावीर एव नेमिनाथ मन्दिरो,[6] लूणवसही की देवकुलिका १९ एव कैम्वे के जैन मन्दिर मे सुरक्षित हैं। सभी पट्टो के दृश्याकन विवरणो की दृष्टि से लगभग समान हैं।

जैन ग्रन्थो मे मुनिमुव्रत के जीवन से सम्वन्धित उपर्युक्त दोनो ही घटनाओ के विस्तृत उल्लेख हैं।[7] कैवल्य प्राप्ति के वाद मतिज्ञान से एक वार मुनिमुव्रत को ज्ञात हुआ कि एक अश्व को उनके उपदेशो की आवश्यकता है। इसके

---

१ जिन के आसन के नीचे शय्या पर लेटी यक्षी (वहुरूपिणी) के आधार पर जिन की सम्भावित पहचान मुनिसुव्रत से की गयी है।

२ जीवन्तस्वामी की दो मूर्तियो का उत्कीर्णन इस वात का सकेत है कि महावीर के अतिरिक्त अन्य जिनो के भी जीवन्तस्वामी स्वरूप की कल्पना की गई थी। कुछ परवर्ती ग्रन्थो मे पार्श्वनाथ के जीवन्तस्वामी स्वरूप का उल्लेख भी हुआ है। जैसलमेर सग्रहालय मे जीवन्तस्वामी चन्द्रप्रभ की एक मूर्ति भी है।

३ जैन, वालचन्द्र, 'धुवेला संग्रहालय के जैन मूर्ति लेख', अनेकान्त, वर्ष १९, अ० ४, पृ० २४४

४ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८२

५ जै०क०स्था०, खं० १, पृ० १७२

६ कुम्भारिया का पट्ट १२८१ ई० के लेख से युक्त है। पट्ट के दृश्यो के नीचे उनके विवरण भी उत्कीर्ण हैं।

७ त्रि०श०पु०च०, खं० ४, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज १२५, वड़ौदा, १९५४, पृ० ८६–८८; जयन्त विजय, मुनिश्री, पू०नि० पृ० १००–०५

सम्भवत. चक्रवर्ती पद प्राप्त करने के पूर्व विभिन्न युद्धो के लिए प्रस्थान करते हुए शान्ति के अकन हैं। उत्तर की ओर शान्ति की दीक्षा का दृश्य है। ध्यानमुद्रा मे विराजमान शान्ति केशो का लुचन कर रहे हैं। दाहिनी ओर इन्द्र शान्ति के लुचित केशो को एक पात्र मे सचित कर रहे है। आगे शान्ति की कायोत्सर्ग मे खडी एव ध्यानमुद्रा मे आसीन मूर्तिया हैं। ये मूर्तिया उनकी तपस्या और कैवल्य प्राप्ति को प्रदर्शित करती है। उत्तर की ओर शान्ति का समवसरण बना है जिसके ऊपर शान्ति की ध्यानस्थ मूर्ति है।

विमलवसही की देवकुलिका १२ के वितान पर शान्ति के पचकल्याणको के चित्रण हैं। विवरण की दृष्टि से विमलवसही के चित्रण कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के समान हैं। तुला मे एक ओर कपोत और दूसरी ओर मेघरथ की आकृतिया हैं। दीक्षा-कल्याणक के दृश्य मे शान्ति को शिविका मे बैठकर दीक्षास्थल की ओर जाते हुए दिखाया गया है। शान्ति के केश लुचन और इन्द्र द्वारा उन्हे सचित करने के भी दृश्य उत्कीर्ण हैं। आगे शान्ति की दो कायोत्सर्ग मूर्तिया हैं जो उनकी तपस्या और कैवल्य प्राप्ति की सूचक हैं। मध्य मे शान्ति का समवसरण भी बना है।

(१७) कुथुनाथ

जीवनवृत्त

कुथुनाथ इस अवसर्पिणी के सत्रहवें जिन हैं। हस्तिनापुर के शासक वसु (या सूर्यसेन) उनके पिता और श्रीदेवी उनकी माता थीं। जैन परम्परा के अनुसार गर्भकाल मे माता ने कुथु नाम के रत्नो की राशि देखी थी, इसी कारण बालक का नाम कुथुनाथ रखा गया। चक्रवर्ती शासक के रूप मे काफी समय तक शासन करने के बाद कुथु ने दीक्षा ली और १६ वर्षो की तपस्या के बाद गजपुरम् के उद्यान मे तिलक वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त किया। इनकी निर्वाण-स्थली सम्मेद शिखर है।[1]

मूर्तिया

कुथु का लाछन छाग (या बकरा) है और उनके यक्ष-यक्षी गन्धर्व एव बला (या अच्युता या गान्धारिणी) हैं। दिगबर परम्परा मे यक्षी का नाम जया (या जयदेवी) है। मूर्त अकनो मे कुथु के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण नही हुआ है। ग्यारहवी शती ई० के पहले की कुथु की कोई स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। ग्यारहवीं शती ई० की मूर्तियो मे कुथु के लाछन और बारहवी शती ई० की मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हुए।

ल० ग्यारहवी शती ई० की लाछन युक्त ६ मूर्तिया अलुअर से मिली है और सम्प्रति पटना सग्रहालय (१०६७५, १०६८९ से १०६९३) मे संकलित हैं।[2] सभी उदाहरणो मे कुथु कायोत्सर्ग-मुद्रा मे निर्वस्त्र खडे हैं। तीन उदाहरणों मे पीठिका पर ग्रहो की मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं। दो ध्यानस्थ मूर्तिया बारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे हैं।[3] बारभुजी गुफा की मूर्ति मे दशभुज यक्षी भी निरूपित है। बारहवी शती ई० की एक विशाल कायोत्सर्ग मूर्ति बजरगगढ (गुना) से मिली है।[4] ११४४ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति राजपूताना सग्रहालय, अजमेर मे है। इसमे कुथु निर्वस्त्र है। पीठिका लेख मे उनका नाम भी उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी भी जो सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं, सिंहासन के छोरो पर न होकर चामरधरो के समीप खडे है। विमलवसही की देवकुलिका ३५ में ११८८ ई० की एक मूर्ति है। मूर्ति-लेख मे कुथुनाथ का नाम उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं।

---

१ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ११९-२१
२ प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २८६-८७
३ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १२२, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१
४ जैन, नीरज, 'बजरंगगढ़ का विशद जिनालय', अनेकान्त, वर्ष १८, अ० २, पृ० ६५-६६

(१८) अरनाथ

जीवनवृत्त

अरनाथ इस अवसर्पिणी के अठारहवें जिन हैं। हस्तिनापुर के शासक सुदर्शन उनके पिता और महादेवी (या मित्रा) उनकी माता थी। गर्भकाल मे माता ने रत्नमय चक्र के अर को देखा था, इसी कारण वालक का नाम अरनाथ रखा गया। चक्रवर्ती शासक के रूप मे काफी समय तक राज्य करने के पश्चात् अर ने दीक्षा ली और तीन वर्षों की तपस्या के बाद गजपुरम् के सहस्राम्रवन मे आम्र वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी भी निर्वाण-स्थली है।[1]

मूर्तिया

श्वेतावर परम्परा मे अर का लाछन नन्द्यावर्त है, और दिगवर परम्परा मे मत्स्य। उनके यक्ष-यक्षी यक्षेन्द्र (या यक्षेश या खेन्द्र) और धारिणी (या काली) है। दिगवर परम्परा मे यक्षी तारावती (या विजया) है। शिल्प मे अर के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का निरूपण नही हुआ है। अर की मूर्तियो मे सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी के चित्रण दसवी शती ई० मे प्रारम्भ हुए।

पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा मे सुरक्षित (१३८८) और मथुरा से ही प्राप्त एक गुप्तकालीन जिन मूर्ति की पहचान डा० अग्रवाल ने अर से की है। सिंहासन पर उत्कीर्ण मीन-मिथुन को उन्होंने मत्स्य लाछन का अकन माना है।[2] पर हमारी दृष्टि मे यह पहचान ठीक नहीं है क्योकि मीन-मिथुन के खुले मुखो से मुक्तावली प्रसारित हो रही है जो सिंहासन का सामान्य अलकरण प्रतीत होता है। सहेठ-महेठ (गोंडा) की दसवी शती ई० की एक मूर्ति राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे ८६१) मे है। इसकी पीठिका पर मत्स्य लाछन और यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। मत्स्य-लाछन-युक्त दो मूर्तिया वारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे भी हैं।[3] वारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी भी आमूर्तित है। नवागढ (टीकमगढ) से ११४५ ई० की एक विशाल खड्गासन मूर्ति मिली है।[4] मूर्ति की पीठिका पर मत्स्य लाछन और यक्ष-यक्षी चित्रित हैं। १०५३ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति मदनपुर पहाडी के मन्दिर १ मे है।[5] वारहवी शती ई० की तीन खड्गासन मूर्तिया क्रमश अहाड (११८० ई०), मदनपुर (मन्दिर २, ११४७ ई०) एव वजरगगढ (११७९ ई०) से मिली हैं।[6] सभी उदाहरणो मे अर निर्वस्त्र हैं।

(१९) मल्लिनाथ

जीवनवृत्त

मल्लिनाथ इस अवसर्पिणी के उन्नीसवें जिन हैं। मिथिला के शासक कुम्भ उनके पिता और प्रभावती उनकी माता थी। श्वेतावर परम्परा के अनुसार मल्लि नारी तीर्थंकर हैं। पर दिगवर परम्परा मे मल्लि को पुरुष तीर्थंकर ही वताया गया है। दिगवर परम्परा मे नारी को मुक्ति या निर्वाण की अधिकारिणी ही नही माना गया है। इसलिए नारी के तीर्थंकर-पद प्राप्त करने का प्रश्न ही नही उठता। इनकी माता को गर्भकाल मे पुष्प शय्या पर सोने का दोहद उत्पन्न हुआ था, इसी कारण वालिका का नाम मल्लि रखा गया। श्वेतावर परम्परा के अनुसार मल्लि अविवाहिता थी और दीक्षा के दिन ही उन्हे अशोकवृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त हो गया। इनकी निर्वाण-स्थली सम्मेद शिखर है।[7]

---

१ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १२२–२४
२ अग्रवाल, वी०एस०, 'केटलाग आव दि मथुरा म्यूज़ियम', ज०यू०पी०हि०सो०, ख० २३, भाग १–२, पृ० ५७
३ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८२
४ जैन, नीरज, 'नवागढ : एक महत्वपूर्ण मध्यकालीन जैनतीर्थ', अनेकान्त, वर्ष १५, अ० ६, पृ० २७७
५ कोठिया, दरवारी लाल, 'हमारा प्राचीन विस्मृत वैभव', अनेकान्त, वर्ष १४, अगस्त १९५६, पृ० ३१
६ जैन, नीरज, 'वजरगगढ का विशद जिनालय', अनेकान्त, वर्ष १८, अ० २, पृ० ६५–६६
७ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १२५–३३

मूर्तिया

मल्लि का लाछन कलश है और यक्ष-यक्षी कुवेर एव वैरोटचा (या अपराजिता) है। मूर्तियो मे मल्लि के यक्ष-यक्षी का चित्रण दुर्लभ है। केवल वारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी उत्कीर्ण है। ग्यारहवी शती ई० से पहले की मल्लि की कोई मूर्ति नही मिली है।

ग्यारहवी शती ई० की एक श्वेतावर मूर्ति उन्नाव से मिली है और राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे० ८८५) मे सगृहीत है (चित्र २३)। यह मल्लि की नारी मूर्ति है। ध्यानमुद्रा मे विराजमान मल्लि के वक्ष:स्थल मे श्रीवत्स नही उत्कीर्ण है। पर वक्ष:स्थल का उभार स्त्रियोचित है और पृष्ठभाग की केशरचना भी वेणी के रूप मे प्रदर्शित है। पीठिका पर कलश (?) उत्कीर्ण है। नारी के रूप मे मल्लि के निरूपण का सम्भवत यह अकेला उदाहरण है। घट-लाछन-युक्त दो ध्यानस्थ मूर्तिया वारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे हैं।[१] ल० वारहवी शती ई० की घट-लाछन-युक्त एक ध्यानस्थ मूर्ति तुलसी सग्रहालय, सतना मे भी है।[२] कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका १८ मे ११७९ ई० की एक मूर्ति है। मूर्ति-लेख मे मल्लिनाथ का नाम भी उत्कीर्ण है।

(२०) मुनिसुव्रत

जीवनवृत्त

मुनिसुव्रत इस अवसर्पिणी के वीसवे जिन हैं। राजगृह के शासक सुमित्र उनके पिता और पद्मावती उनकी माता थी। गर्भकाल मे माता ने सम्यक् रीति से व्रतो का पालन किया, इसी कारण वालक का नाम मुनिसुव्रत रखा गया। राजपद के उपभोग के वाद मुनिसुव्रत ने दीक्षा ली और ११ माह की तपस्या के वाद राजगृह के नीलवन मे चम्पक (चपा) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली हैं। जैन परम्परा के अनुसार राम (पद्म) एव लक्ष्मण (वासुदेव) मुनिसुव्रत के समकालीन थे।[3]

मूर्तिया

मुनिसुव्रत का लाछन कूर्म है और यक्ष-यक्षी वरुण एव नरदत्ता (वहुरूपा या वहुरूपिणी) हैं। मूर्तियो मे मुनिसुव्रत के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का अकन नही प्राप्त होता। मुनिसुव्रत की उपलब्ध मूर्तिया ल० नवी० से वारहवी शती ई० के मध्य की हैं।[४] मुनिसुव्रत के लाछन और यक्ष-यक्षी का अकन ल० दसवी-ग्यारहवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ।

गुजरात-राजस्थान—ग्यारहवी शती ई० की एक श्वेतांवर मूर्ति गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल म्यूज़ियम, जयपुर मे है (चित्र २४)।[५] इसमे मुनिसुव्रत कायोत्सर्ग में खडे है और आसन पर कूर्म लाछन उत्कीर्ण है। इसमे चामरधरो एव उपासको के अतिरिक्त अन्य कोई आकृति नही है। कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका २० मे ११७९ ई० की एक मूर्ति है। लेख मे 'मुनिसुव्रत' का नाम उत्कीर्ण है। यहा यक्ष-यक्षी नही वने हैं। दो मूर्तिया विमलवसही की देवकुलिका ११ (११४३ ई०) और ३१ मे हैं। दोनो उदाहरणो मे लेखो मे मुनिसुव्रत का नाम और यक्ष-यक्षी रूप मे सर्वानुभूति एव अम्बिका उत्कीर्ण हैं। देवकुलिका ३१ की मूर्ति मे मूलनायक के पार्श्वों मे दो खड्गासन जिन मूर्तिया भी वनी हैं जिनके ऊपर दो ध्यानस्थ जिन आमूर्तित है।

---

१ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२, कुरैशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८२

२ जैन, जे०, 'तुलसी सग्रहालय का पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १६, अ० ६, पृ० २८०

३ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १३४–३५

४ राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे २०) मे १५७ ई० की एक मुनिसुव्रत मूर्ति की पीठिका सुरक्षित है शाह, यू०पी०, 'विगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', स०पु०प०, अ० ९, पृ० ५

५ अमेरिकन इंस्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र सग्रह १५७ ७७

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—ल० दसवी शती ई० की एक मूर्ति वजरामठ (ग्यारसपुर) के प्रकोष्ठ मे है।[१] १००६ ई० की एक श्वेतावर मूर्ति आगरा के समीप से मिली है और राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे ७७६) मे सुरक्षित है। मूर्ति काले पत्थर मे उत्कीर्ण है। ज्ञातव्य है कि जैन परम्परा मे मुनिसुव्रत के शरीर का रग काला वताया गया है। सिंहासन पर कूर्म लाछन और लेख मे 'मुनिसुव्रत' नाम आया है। मुनिसुव्रत ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। मूर्ति के परिकर मे जीवन्तस्वामी एवं वलराम और कृष्ण की मूर्तिया है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका है। यक्ष के समीप एक स्त्री आकृति है जिसकी वाम भुजा मे पुस्तक है। चामरधरो के समीप कायोत्सर्ग-मुद्रा मे दो श्वेताम्बर जिन मूर्तिया वनी हैं। इन आकृतियो के ऊपर जीवन्तस्वामी की दो कायोत्सर्ग मूर्तिया हैं।[२] जीवन्तस्वामी मुकुट, हार, वाजूवद, कर्णफूल आदि से शोभित हैं। मूलनायक के त्रिछत्र के ऊपर एक ध्यानस्थ जिन मूर्ति उत्कीर्ण है जिसके दोनो ओर चतुर्भुज वलराम एव कृष्ण की मूर्तिया हैं। कृष्ण एव वलराम की मूर्तियो के आधार पर मध्य की जिन मूर्ति की पहचान नेमि से की जा सकती है। वनमाला एव तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त वलराम की भुजाओ मे वरदमुद्रा, मुसल, हल एव फल हैं। किरीटमुकुट एव वनमाला से सज्जित कृष्ण के तीन अवशिष्ट करो मे वरदमुद्रा, गदा एव शख प्रदर्शित हैं। ल० ग्यारहवी शती ई० की कूर्म-लांछन-युक्त एक कायोत्सर्ग मूर्ति खजुराहो के मन्दिर २० मे है। इसमे यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण है। पर परिकर मे चार छोटी जिन मूर्तिया वनी हैं। ११४२ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति धुवेला सग्रहालय (४२) मे सुरक्षित है।[३] पीठिका लेख मे मुनिसुव्रत का नाम उत्कीर्ण है।

विहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र मे वारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे दो मूर्तिया हैं।[४] इनमे मुनिसुव्रत ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। वारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी भी आमूर्तित है। एक मूर्ति (ल० ९वी-१०वी शती ई०) राजगिर से भी मिली है।[५] ध्यानस्थ जिन के सिंहासन के नीचे वहुरूपिणी यक्षी की शय्या पर लेटी मूर्ति वनी है।

जीवनदृश्य

मुनिसुव्रत के जीवनदृश्य केवल स्वतन्त्र पट्टो पर उत्कीर्ण हैं। इन पट्टों पर मुनिसुव्रत के जीवन की केवल दो ही घटनाए मिलती हैं जो अश्वाववोध एव शकुनिका-विहार-तीर्थ की उत्पत्ति से सम्वन्धित हैं। गुजरात एव राजस्थान मे वारहवी-तेरहवी शती ई० के ऐसे चार पट्ट मिले है। वारहवी शती ई० का एक पट्ट जालोर के पार्श्वनाथ मन्दिर के गूढमण्डप मे है। अन्य सभी पट्ट तेरहवी शती ई० के हैं और कुम्भारिया के महावीर एव नेमिनाथ मन्दिरो,[६] लूणवसही की देवकुलिका १९ एव कैम्बे के जैन मन्दिर मे सुरक्षित हैं। सभी पट्टो के दृश्याकन विवरणो की दृष्टि से लगभग समान हैं।

जैन ग्रन्थो मे मुनिसुव्रत के जीवन से सम्वन्धित उपर्युक्त दोनो ही घटनाओ के विस्तृत उल्लेख है।[७] कैवल्य प्राप्ति के वाद मतिज्ञान से एक वार मुनिसुव्रत को ज्ञात हुआ कि एक अश्व को उनके उपदेशो की आवश्यकता है। इसके

---

१ जिन के आसन के नीचे शय्या पर लेटी यक्षी (वहुरूपिणी) के आधार पर जिन की सम्भावित पहचान मुनिसुव्रत से की गयी है।

२ जीवन्तस्वामी की दो मूर्तियो का उत्कीर्णन इस वात का सकेत है कि महावीर के अतिरिक्त अन्य जिनो के भी जीवन्तस्वामी स्वरूप की कल्पना की गई थी। कुछ परवर्ती ग्रन्थो मे पार्श्वनाथ के जीवन्तस्वामी स्वरूप का उल्लेख भी हुआ है। जैसलमेर सग्रहालय मे जीवन्तस्वामी चन्द्रप्रभ की एक मूर्ति भी है।

३ जैन, वालचन्द्र, 'धुवेला सग्रहालय के जैन मूर्ति लेख', अनेकान्त, वर्ष १९, अ० ४, पृ० २४४

४ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८२

५ जै०क०स्था०, खं० १, पृ० १७२

६ कुम्भारिया का पट्ट १२८१ ई० के लेख से युक्त है। पट्ट के दृश्यो के नीचे उनके विवरण भी उत्कीर्ण है।

७ त्रि०श०पु०च०, ख० ४, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज १२५, वडौदा, १९५४, पृ० ८६–८८; जयन्त विजय, मुनिश्री, पू०नि० पृ० १००–०५

वाद मुनिसुव्रत भृगुकच्छ गये और वहा कोरण्टवन मे अपना उपदेश प्रारम्भ किया। भृगुकच्छ के शासक जितशत्रु के अश्वमेघ यज्ञ का अश्व भी रक्षको के साथ मुनिसुव्रत के उपदेशो का श्रवण कर रहा था। अपने उपदेश मे मुनिसुव्रत ने अपने और उस अश्व के पूर्व जन्मो की कथा का भी उल्लेख किया। उपदेशो के वाद उस अश्व ने छह माह तक जैन श्रावक के लिए वताये गये मार्ग का अनुसरण किया। अगले जन्म मे यही अश्व सौधर्म लोक (स्वर्ग) मे देवता हुआ। मतिज्ञान मे पिछले जन्म की वातो का स्मरण कर वह मुनिसुव्रत के उपदेश-स्थल पर गया और वहा उसने मुनिसुव्रत के मन्दिर का निर्माण किया। मुनिसुव्रत की मूर्ति के समक्ष ही उसने अश्वरूप मे अपनी भी एक मूर्ति प्रतिष्ठित की। उसी समय से वह स्थान अश्वाववोध तीर्थ के रूप मे जाना जाने लगा।

दूसरी कथा इस प्रकार है। सिहल द्वीप के रत्नाशय देश मे श्रीपुर नाम का एक नगर था, जहा का शासक चन्द्रगुप्त था। एक वार उसके दरवार मे भृगुकच्छ का एक व्यापारी (धनेश्वर) आया। दरवार मे इस व्यापारी के 'ओम नमो अरिहतानाम' मत्र के उच्चारण से चन्द्रगुप्त की पुत्री सुदर्शना पूर्वजन्म की कथा का स्मरण कर मूछित हो गयी। पूर्वजन्म मे सुदर्शना भृगुकच्छ के समीप कोरण्ट उद्यान मे शकुनि पक्षी थी। एक वार वह शिकारी के वाणो से घायल होकर कराह रही थी। उसी समय पास से गुजरते हुए एक जैन आचार्य ने उसके ऊपर जलस्राव किया और उसे नवकार मन्त्र सुनाया। नवकार मन्त्र के प्रति अपनी श्रद्धा के कारण ही शकुनि मृत्यु के वाद सुदर्शना के रूप मे उत्पन्न हुई। पूर्व-जन्म की इस घटना का स्मरण होने के वाद से सुदर्शना सासारिक सुखो से विरक्त हो गई। उसने व्यापारी के साथ भृगु-कच्छ के तीर्थ की यात्रा भी की। सुदर्शना ने अश्वाववोध तीर्थ मे मुनिसुव्रत की पूजा की और उस तीर्थस्थली का पुनरुद्धार करवाकर वहा २४ जिनालयो का निर्माण करवाया। इस घटना के कारण उस स्थल को शकुनिका-विहार-तीर्थ भी कहा गया। चौलुक्य शासक कुमारपाल के मन्त्री उदयन के पुत्र आम्रभट्ट ने इस देवालय का पुनरुद्धार करवाया था।

जालोर के पार्श्वनाथ मन्दिर के पट्ट के दृश्य दो भागो मे विभक्त हैं। ऊपर अश्वाववोध और नीचे शकुनिका-विहार-तीर्थ की कथाए उत्कीर्ण हैं। ऊपरी भाग मे मध्य में एक जिनालय उत्कीर्ण है जिसमे मुनिसुव्रत की ध्यानस्थ मूर्ति है। जिनालय के समीप के एक अन्य देवालय मे मुनिसुव्रत के चरण-चिह्न अकित हैं। वायी ओर एक अश्व आकृति उत्कीर्ण है। कुम्भारिया के पट्ट पर अश्व आकृति के नीचे 'अश्वप्रतिवोध' लिखा है। अश्व के समीप कुछ रक्षक भी खडे हैं। जिनालय के दाहिनी ओर सिहलद्वीप के शासक चन्द्रगुप्त की मूर्ति है। सुदर्शना चन्द्रगुप्त की गोद मे वैठी है। समीप ही दो सेवको एव व्यापारी की मूर्तिया हैं। पट्ट के निचले भाग मे दाहिने छोर पर एक वृक्ष उत्कीर्ण है जिसकी डाल पर शकुनि वैठी है। वृक्ष के दाहिने ओर शिकारी और वायी ओर जैन साधुओ की दो आकृतिया चित्रित हैं। नीचे एक वृत्त के रूप मे समुद्र उत्कीर्ण है जिसमे जिनालय की ओर आती एक नाव प्रदर्शित है। नाव मे सुदर्शना वैठी है। यह सुदर्शना के अश्वाववोध तीर्थ की ओर आने का दृश्याकन है।

(२१) नमिनाथ

जीवनवृत्त

नमिनाथ इस अवसर्पिणी के इक्कीसवें जिन है। मिथिला के शासक विजय उनके पिता और वप्रा (या विप-रीता) उनकी माता थी। जव नमि का जीव गर्भ मे था उसी समय शत्रुओ ने मिथिला नगरी को घेर लिया था। वप्रा ने जव राजप्रासाद की छत से शत्रुओ को सौम्य दृष्टि से देखा तो शत्रु शासक का हृदय वदल गया और वह विजय के समक्ष नतमस्तक हो गया। शत्रुओ के इस अप्रत्याशित नमन के कारण ही वालक का नाम नमिनाथ रखा गया। राजपद के उप-भोग के वाद नमि ने दीक्षा ली और नौ माह की तपस्या के वाद मिथिला के चित्रवन मे वकुल (या जम्वू) वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त किया। इनकी निर्वाण-स्थली सम्मेद शिखर है।[1]

1 हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १३६–३८

मूर्तियां

नमि का लाछन नीलोत्पल हैं और यक्ष-यक्षी भृकुटि एवं गाधारी (या मालिनी या चामुण्डा) है। शिल्प मे नमि के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण नहीं हुआ है। उपलब्ध नमि मूर्तिया ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की हैं। ग्यारहवी शती ई० की एक मूर्ति पटना संग्रहालय मे है।[1] मूर्ति के परिकर मे २४ छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। एक ध्यानस्थ मूर्ति बारभुजी गुफा मे है।[2] नीचे यक्षी भी निरूपित है। रँदिघो (बगाल) के समीप मथुरापुर से कायोत्सर्ग मे खडी एक श्वेतांबर मूर्ति मिली है।[3] कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका २१ मे ११७९ ई० की एक नमि मूर्ति है। लूणवसही की देवकुलिका १९ मे भी १२३३ ई० की एक मूर्ति है। यहा पीठिका-लेख मे नमि का नाम भी उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं।

(२२) नेमिनाथ (या अरिष्टनेमि)

जीवनवृत्त

नेमिनाथ या अरिष्टनेमि इस अवसर्पिणी के बाईसवें जिन हैं। द्वारावती के हरिवशी महाराज समुद्रविजय उनके पिता और शिवा देवी उनकी माता थी। शिवा के गर्भकाल मे समुद्रविजय सभी प्रकार के अरिष्टो मे बचे थे तथा गर्भावस्था मे माता ने अरिष्टचक्र नेमि का दर्शन किया था, इसी कारण बालक का नाम अरिष्टनेमि या नेमि रखा गया। समुद्रविजय के अनुज वसुदेव सौरिपुर के शासक थे। वसुदेव की दो पत्निया, रोहिणी और देवकी थीं। रोहिणी से बलराम, और देवकी से कृष्ण उत्पन्न हुए। इस प्रकार कृष्ण एव बलराम नेमि के चचेरे भाई थे। इस सम्बन्ध के कारण ही मथुरा, देवगढ, कुम्भारिया, विमलवसही एव लूणवसही के मूर्त अकनो मे नेमि के साथ कृष्ण एव बलराम भी अकित हुए।

कृष्ण और रुक्मिणी के आग्रह पर नेमि राजीमती के साथ विवाह के लिए तैयार हुए। विवाह के लिए जाते समय नेमि ने मार्ग मे पिजरो मे बन्द और जालपाशो मे बधे पशुओ को देखा। जब उन्हे यह ज्ञात हुआ कि विवाहोत्सव के अवसर पर दिये जानेवाले भोज के लिए उन पशुओ का वध किया जायगा तो उनका हृदय विरक्ति से भर गया। उन्होने तत्क्षण पशुओ को मुक्त करा दिया और बिना विवाह किये वापिस लौट पडे, और साथ ही दीक्षा लेने के निर्णय की भी घोषणा की। नेमि के निष्क्रमण के समय मानवेन्द्र, देवेन्द्र, बलराम एव कृष्ण उनकी शिविका के साथ-साथ चल रहे थे। नेमि ने उज्जयत पर्वत पर सहस्राम्र उद्यान मे अशोक वृक्ष के नीचे अपने आभरणो एव वस्त्रो का परित्याग किया और पचमुष्टि मे केशो का लुचन कर दीक्षा ग्रहण की। ५४ दिनो की तपस्या के बाद उज्जयतगिरि स्थित रेवतगिरि पर वेतस वृक्ष के नीचे नेमि को कैवल्य प्राप्त हुआ। यही देवनिर्मित समवसरण मे नेमि ने अपना पहला धर्मोपदेश भी दिया। नेमि की निर्वाण-स्थली भी उज्जयंतगिरि है।[4]

प्रारम्भिक मूर्तिया

नेमि का लाछन शख है[5] और यक्ष-यक्षी गोमेध एव अम्बिका (या कुष्माण्डी) हैं। नेमि की मूर्तियो मे यक्षी सदैव अम्बिका है पर यक्ष गोमेध के स्थान पर प्राचीन परम्परा का सर्वानुभूति (या कुबेर) यक्ष है। जैन ग्रन्थो मे नेमि से सम्बन्धित बलराम एव कृष्ण की भी लाक्षणिक विशेषताए विवेचित हैं। कृष्ण के मुख्य लक्षण गदा (कुमुद्वती), खड्ग (नन्दक), चक्र, अकुश, शख एव पद्म हैं। कृष्ण किरीटमुकुट, वनहार, कौस्तुभमणि आदि से सज्जित हैं।[6] माला एव मुकुट से शोभित बलराम के मुख्य लक्षण गदा, हल, मुसल, धनुष एव बाण हैं।[7]

---

१ गुप्ता, पी०एल०, पू०नि०, पृ० ९० २ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२

३ दत्त, कालिदास, 'दि एन्टिक्विटीज आँव खारी', ऐनुअलरिपोर्ट, वारेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, १९२८-२९, पृ० १-११

४ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १३९–२३९

५ नेमि का शख लाछन उनके पूर्वभव के शख नाम से सम्बन्धित रहा हो सकता है।

६ हरिवंशपुराण ३५ ३५ ७ हरिवंशपुराण ४१ ३६–३७

मथुरा से पहली से चौथी शती ई० के मध्य की पाच मूर्तिया मिली हैं जो सम्प्रति राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे हैं। चार मूर्तियो मे नेमि की पहचान पार्श्ववर्ती बलराम एव कृष्ण की आकृतियो के आधार पर की गई है। बलराम पाच या सात सर्पफणो के छत्र से युक्त है। एक कायोत्सर्ग मूर्ति (जे ८, ९७ ई०) के लेख मे अरिष्टनेमि का नाम भी उत्कीर्ण है। परवर्ती कुषाण काल की एक मूर्ति का उल्लेख डॉ० अग्रवाल ने किया है।[1] यह मूर्ति मथुरा सग्रहालय (२५०२) मे है। मूर्ति का निचला भाग खण्डित है। नेमि के दाहिने और बायें पार्श्वों मे क्रमश बलराम एव कृष्ण की चतुर्भुज मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। बलराम की दो अवशिष्ट भुजाओ मे से एक मे हल है और दूसरी जानु पर स्थित है। कृष्ण की अवशिष्ट भुजाओ मे गदा और चक्र हैं।

पहली शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (राज्य सग्रहालय, लखनऊ जे ४७) मे चतुर्भुज बलराम की ऊपरी भुजाओ मे गदा और हल हैं। वक्ष स्थल के समक्ष मुडी दाहिनी भुजा मे एक पात्र है। चतुर्भुज कृष्ण वनमाला से शोभित हैं। उनकी तीन अवशिष्ट भुजाओ मे अभयमुद्रा, गदा और पात्र प्रदर्शित हैं।[2] दूसरी-तीसरी शती ई० की दो अन्य ध्यानस्थ मूर्तियो मे केवल बलराम की ही मूर्ति उत्कीर्ण है।[3] सात सर्पफणो के छत्र से युक्त द्विभुज बलराम नमस्कार-मुद्रा मे हैं।[4] ल० चौथी शती ई० की एक मूर्ति (राज्य सग्रहालय, लखनऊ, जे १२१) मे नेमि कायोत्सर्ग मे खडे हैं (चित्र २५)। उनके पार्श्वों मे चतुर्भुज बलराम एव कृष्ण की मूर्तिया हैं। नेमि के वाम पार्श्व मे एक छोटी जिन आकृति और चरणो के समीप तीन उपासक चित्रित हैं। सिंहासन के धर्मचक्र के दोनो ओर दो ध्यानस्थ जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं। पाच सर्पफणो की छत्रावली से युक्त बलराम की तीन भुजाओ मे मुसल, चषक और हल (?) हैं। ऊपर की दाहिनी भुजा सर्पफणो के समक्ष प्रदर्शित है। कृष्ण की तीन अवशिष्ट भुजाओ मे फल (?), गदा और शख हैं।

ल० चौथी शती ई० की एक मूर्ति राजगिर के वैभार पहाडी से मिली है। पीठिका-लेख मे 'महाराजाधिराज श्रीचन्द्र' का उल्लेख है, जिसकी पहचान गुप्त शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय से की गई है।[5] सिंहासन के मध्य मे एक पुरुष आकृति खडी है जिसके दाहिने हाथ से अभयमुद्रा व्यक्त है। यह आकृति आयुध पुरुष की है[6] या नेमि का राजपुरुष के रूप मे अकन है।[7] इस आकृति के दोनो ओर नेमि का शख लाछन उत्कीर्ण है। लाछन से युक्त यह प्राचीनतम जिन मूर्ति है। शख लाछन के समीप दो छोटी जिन आकृतिया हैं। परिकर मे चामरधर या कोई अन्य सहायक आकृति नही उत्कीर्ण है।

ल० सातवी शती ई० की एक मूर्ति राजघाट (वाराणसी) से मिली है और सम्प्रति भारत कला भवन, वाराणसी (२१२) मे सुरक्षित है (चित्र २६)।[8] इसमे नेमि ध्यानमुद्रा मे सिंहासन पर विराजमान हैं। लाछन नही उत्कीर्ण है, किन्तु यक्षी अम्बिका की मूर्ति के आधार पर मूर्ति की नेमि से पहचान सम्भव है। मूर्ति दो भागो मे विभक्त है। ऊपरी भाग मे मूलनायक की मूर्ति, चामरधर, सिंहासन, भामण्डल, त्रिछत्र, दुन्दुभिवादक और उड्डीयमान मालाधर तथा निचले भाग मे एक वृक्ष (सम्भवत कल्पवृक्ष) उत्कीर्ण हैं। वृक्ष के दोनो ओर त्रिभग मे खडी द्विभुज यक्ष-यक्षी मूर्तिया निरूपित हैं। सिंहासन के छोरो के स्थान पर सिंहासन के नीचे यक्ष-यक्षी का चित्रण मूर्ति की दुर्लभ विशेषता है। दक्षिण

---

१ अग्रवाल, वी० एस०, पू०नि०, पृ० १६–१७
२ श्रीवास्तव, वी० एन०, पू०नि०, पृ० ५०
३ राज्य सग्रहालय, लखनऊ, जे ११७, जे ६०
४ श्रीवास्तव, वी० एन०, पू०नि०, पृ० ५०–५१
५ चदा, आर०पी, 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', आ०स०इ०ऐ०रि०, १९२५–२६, पृ० १२५–२६
६ स्ट०जै०आ०, पृ० १४
७ चदा, आर०पी०, पू०नि०, पृ० १२६
८ तिवारी, एम०एन०पी०, 'ए नोट आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ए तीर्थंकर इमेज ऐट भारत कला भवन, वाराणसी, जैन जर्नल, ख० ६, अ० १, पृ० ४१–४३

पार्श्व के यक्ष के हाथो मे पुष्प और घट (? निधिपात्र) हैं। वाम पार्श्व की यक्षी के दाहिने हाथ मे पुष्प[1] और वायें मे वालक हैं। अम्बिका का दूसरा पुत्र उसके दक्षिण पार्श्व मे खडा है।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तिया

गुजरात-राजस्थान—गुजरात और राजस्थान मे जहा ऋषभ और पार्श्व की स्वतन्त्र मूर्तिया छठी-सातवी शती ई० मे उत्कीर्ण हुईं (अकोटा), वही नेमि और महावीर की मूर्तिया नवी शती ई० के वाद की हैं। यह तथ्य नेमि और महावीर की इस क्षेत्र मे सीमित लोकप्रियता का सूचक है। इस क्षेत्र की मूर्तियो मे या तो शख लाछन या फिर लेख मे नेमिनाथ का नाम उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी के रूप मे सर्वानुभूति एव अम्बिका ही निरूपित हैं। ल० दसवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति कटरा (भरतपुर) से मिली है और भरतपुर राज्य सग्रहालय (२९३) मे सुरक्षित है।[2] यहा शख लाछन उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी अनुपस्थित है। ११७९ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका २२ मे है। लेख मे नेमिनाथ का नाम उत्कीर्ण है। वारहवी शती ई० की शख-लाछन-युक्त एक मूर्ति अमरसर (राजस्थान) से मिली है और सम्प्रति गगा गोल्डेन जुविली सग्रहालय, वीकानेर (१६५९) मे सुरक्षित है।[3] लूणवसही के गर्भगृह की विशाल ध्यानस्थ मूर्ति मे शख लाछन और सर्वानुभूति एव अम्बिका निरूपित है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—इस क्षेत्र की नेमि मूर्तियो मे अष्ट-प्रातिहार्यो, शख लाछन और सर्वानुभूति एव अम्बिका[4] का नियमित अकन हुआ है। स्मरणीय है कि नेमि के लाछन और यक्ष-यक्षी के चित्रण सर्वप्रथम इसी क्षेत्र मे प्राप्त होते हैं। स्वतन्त्र नेमि मूर्तियो मे वलराम और कृष्ण का निरूपण भी केवल इसी क्षेत्र मे हुआ है।

राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे दसवी से वारहवी शती ई० के मध्य की आठ मूर्तिया हैं। सभी उदाहरणो मे शख लाछन, चामरधर, सिंहासन, त्रिछत्र एव भामण्डल उत्कीर्ण हैं। पाच उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं। यक्ष-यक्षी सामान्यत सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं। पाच उदाहरणो मे नेमि कायोत्सर्ग मे खडे हैं। एक उदाहरण (६६ ५३) के अतिरिक्त अन्य सभी मे नेमि निर्वस्त्र हैं। दो उदाहरणो मे नेमि के साथ वलराम और कृष्ण भी आमूर्तित हैं।

वटेश्वर (आगरा) की दसवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे ७९३) मे पीठिका पर चार जिनो और सर्वानुभूति एव अम्बिका की मूर्तिया उत्कीर्ण है। चामरधरो के समीप द्विभुज वलराम एव कृष्ण की मूर्तिया हैं। वलराम के दाहिने हाथ मे चषक है किन्तु वायें हाथ का आयुध स्पष्ट नही है। कृष्ण की दक्षिण भुजा मे शख है और वाम भुजा जानु पर स्थित है। मूलनायक के स्कन्धो पर जटाए भी प्रदर्शित हैं। ल० ग्यारहवी शती ई० की एक श्वेताबर मूर्ति (६६.५३) मे नेमि कायोत्सर्ग मे खडे हैं (चित्र २८)। परिकर मे तीन जिनो एव चतुर्भुज वलराम और कृष्ण की मूर्तिया हैं। तीन सर्पफणो के छत्र और वनमाला से शोभित वलराम के तीन अवशिष्ट हाथो मे से दो मे मुसल और हल प्रदर्शित हैं, और तीसरा जानु पर स्थित है। किरीटमुकुट एव वनमाला से सज्जित कृष्ण की भुजाओ मे अभयमुद्रा, गदा, चक्र और शख प्रदर्शित हैं।

मैहर (म० प्र०) की ग्यारहवी शती ई० की एक खड्गासन मूर्ति (१४.० ११७) मे सिंहासन-छोरो के स्थान पर यक्ष-यक्षी मूलनायक के वाम पार्श्व मे आमूर्तित हैं। यक्षी अम्बिका है। परिकर मे एक चतुर्भुज देवी निरूपित है जिसके हाथो में अभयमुद्रा, पद्म, पद्म और कलश हैं। ११७७ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे ९३६) मे यक्ष सर्वानुभूति है पर यक्षी

---

१ अम्बिका की एक भुजा मे आम्रलुवि के स्थान पर पुष्प का प्रदर्शन मथुरा की सातवी-आठवी शती ई० की कुछ अन्य मूर्तियो मे भी देखा जा सकता है।

२ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह १५७ १७

३ श्रीवास्तव, वी० एस०, पू०नि०, पृ० १४

४ कुछ उदाहरणो मे सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं।

अम्बिका नही है। लाछन भी नही उत्कीर्ण है।[1] परिकर मे चार छोटी जिन मूर्तिया भी वनी हैं। सहेठ-महेठ (गोंडा) मे प्राप्त समान विवरणो वाली दूसरी मूर्ति (जे ८५८) मे लाछन उत्कीर्ण है और यक्षी भी अम्बिका है। ११५१ ई० की एक मूर्ति (० १२३) मे नेमि के कधो पर जटाएं भी प्रदर्शित हैं।

पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा मे दसवी-ग्यारहवी शती ई० की दो मूर्तिया है। मथुरा मे मिली दसवी शती ई० की एक मूर्ति (३७ २७३८) मे ध्यानमुद्रा मे विराजमान नेमि के साथ लाछन और यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण हैं। पर पार्श्वों मे वलराम एव कृष्ण की मूर्तिया वनी हैं। वनमाला से शोभित चतुर्भुज वलराम त्रिभग मे खडे है। उनके तीन हाथो मे चषक, मुसल और हल हैं, और चौथा हाथ जानु पर स्थित है। वनमाला से युक्त कृष्ण समभग मे खडे हैं। उनके तीन सुरक्षित करो मे से दो मे वरदमुद्रा और गदा प्रदर्शित हैं और तीसरा जानु पर स्थित है। दूसरी मूर्ति (वी ७७) मे लाछन उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी अनुपस्थित है। मूलनायक के कन्धो पर जटाए हैं।

देवगढ मे दसवी से वारहवी शती ई० के मध्य की ३० से अधिक मूर्तिया हैं। अधिकाश उदाहरणो मे नेमि अष्ट-प्रातिहार्यो, शख लाछन और पारम्परिक यक्ष-यक्षी से युक्त हैं। सत्रह उदाहरणो मे नेमि कायोत्सर्ग मे निर्वस्त्र खडे हैं। दस उदाहरणो मे शख लाछन नही उत्कीर्ण है, पर सर्वानुभूति एव अम्बिका की मूर्तियो के आधार पर नेमि से पहचान सम्भव है।[2] केवल तीन उदाहरणो मे यक्षी-यक्षी नही निरूपित हैं।[3] कुछ उदाहरणो मे परम्परा के विरुद्ध यक्ष को नेमि के वायी ओर और यक्षी को दाहिनी ओर आमूर्तित किया गया है।[4] मन्दिर २ की दसवी शती ई० की एक मूर्ति मे वलराम और कृष्ण भी आमूर्तित हैं (चित्र २७)।[5] मथुरा के वाहर नेमि की स्वतन्त्र मूर्ति मे वलराम एव कृष्ण के उत्कीर्णन का यह सम्भवत अकेला उदाहरण है। पाच सर्पफणो के छत्र से युक्त द्विभुज वलराम के हाथो मे फल और हल है। किरीट-मुकुट से सज्जित चतुर्भुज कृष्ण की तीन अवशिष्ट भुजाओ मे चक्र, शंख और गदा हैं।

उन्नीस उदाहरणो मे नेमि के साथ द्विभुज सर्वानुभूति एव अम्बिका निरूपित हैं। मन्दिर १६ की दसवी शती ई० की शख-लाछन-युक्त एक खड्गासन मूर्ति मे यक्ष-यक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी हैं। नेमि की केश रचना भी जटाओ के रूप मे प्रदर्शित है। स्पष्टत कलाकार ने यहा नेमि के साथ ऋषभ की मूर्तियो की विशेषताएं प्रदर्शित की हैं। मूर्ति के परिकर मे २४ छोटी जिन मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं। सात उदाहरणो मे नेमि के साथ सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं।[6] कई उदाहरणो मे मूलनायक के कधो पर जटाए प्रदर्शित हैं।[7] मन्दिर १५ को मूर्ति के परिकर मे सात, मन्दिर २६ की मूर्ति मे चार, मन्दिर १२ की चहारदीवारी की दो मूर्तियो मे चार और छह, मन्दिर २१ की मूर्ति मे दो, मन्दिर ११ की मूर्ति मे दस, मन्दिर २० की मूर्ति मे चार और मन्दिर ३१ की मूर्ति मे दो छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। मन्दिर १२ के प्रदक्षिणापथ की ग्यारहवी शती ई० की कायोत्सर्ग मूर्ति के परिकर मे द्विभुज नवग्रहो की भी मूर्तिया हैं।

ल० दसवी शती ई० की दो मूर्तिया ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर मे हैं।[8] नेमि के लाछन दोनो उदाहरणो मे नही उत्कीर्ण हैं पर यक्ष यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं। एक मूर्ति के परिकर मे चार और दूसरे मे ५२ छोटी जिन मूर्तिया

---

१ सर्वानुभूति यक्ष के आधार पर प्रस्तुत मूर्ति की सम्भावित पहचान नेमि से की गई है। एक अन्य मूर्ति (जे ७९२) मे भी लाछन और अम्बिका नही उत्कीर्ण हैं।

२ मन्दिर १५

३ मन्दिर १२ के प्रदक्षिणापथ, चहारदीवारी और मन्दिर २६

४ मन्दिर ३, १२, १३, १५

५ तिवारी, एम०एन०पी०, 'ऐन अन्पब्लिश्ड इमेज ऑव नेमिनाथ फ्राम देवगढ', जैन जर्नल, खं० ८, अ० २, पृ० ८४–८५

६ मन्दिर १२ की चहारदीवारी, मन्दिर २,११,२०,२१,३०

७ मन्दिर ११,१५,२१,२६,३१

८ एक मे नेमि कायोत्सर्ग मे खडे हैं।

उत्कीर्ण हैं। ग्यारसपुर के वजरामठ मे भी नेमि की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (११वी शती ई०, वी० ९) है। इसमे भी लाछन नही उत्कीर्ण है, पर यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं।

खजुराहो मे ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की दो मूर्तिया है। दोनो मे नेमि ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। मन्दिर १० की ग्यारहवी शती ई० की मूर्ति मे लाछन स्पष्ट नही है, पर यक्षी अम्बिका ही है। पीठिका पर ग्रहो की सात मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। स्थानीय सग्रहालय की दूसरी मूर्ति (के १४) मे शख लाछन और सर्वानुभूति एव अम्बिका निरूपित हैं। परिकर मे २३ छोटी जिन मूर्तिया भी वनी हैं। गुर्गी (रीवा) की ग्यारहवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति इलाहाबाद सग्रहालय (ए०एम० ४९८) मे है।[1] यहा नेमि के साथ शख लाछन और सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं। पुरुषो के स्थान पर स्त्री चामरधारिणी सेविकाए वनी हैं। चार छोटी जिन मूर्तिया भी चित्रित हैं। धुबेला सग्रहालय (म० प्र०) मे भी एक मूर्ति है।[2] इसमे नेमि ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं और परिकर मे २२ जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। धुबेला सग्रहालय की ११४२ ई० की एक दूसरी मूर्ति के लेख मे नेमिनाथ का नाम उत्कीर्ण है।[3] ११५१ ई० की एक मूर्ति हार्निमन सग्रहालय मे है। नेमि का शंख लाछन पीठिका के साथ ही वक्ष.स्थल पर भी उत्कीर्ण है।[4]

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र से केवल चार मूर्तिया (११वी-१२वी शती ई०) मिली हैं। इस क्षेत्र मे शख लाछन का चित्रण नियमित था। पर यक्ष-यक्षी का निरूपण नही हुआ है। उडीसा मे वारभुजी एव नवमुनि गुफाओ की दो मूर्तियो मे केवल अम्बिका ही निरूपित है। अलुअर से मिली एक कायोत्सर्ग मूर्ति (११वी शती ई०) पटना सग्रहालय (१०६८८) मे सुरक्षित है।[5] नवमुनि, वारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे नेमि की तीन ध्यानस्थ मूर्तिया है।[6]

जीवनदृश्य

नेमि के जीवनदृश्यो के अकन कुम्भारिया के शान्तिनाथ एव महावीर मन्दिरो (११वी शती ई०) और विमलवसही (१२ वी शती ई०) एव लूणवसही (१३ वी शती ई०) मे है। कल्पसूत्र के चित्रो मे भी नेमि के जीवनदृश्यो के अकन हैं। इनमे पचकल्याणको के अतिरिक्त नेमि के विवाह और कृष्ण की आयुधशाला मे नेमि के शौर्य प्रदर्शन से सम्बन्धित दृश्य विस्तार से अकित हैं। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर एव लूणवसही की देवकुलिका ११ के वितानो के दृश्यो मे नेमि एव राजीमती को विवाह वेदिका के समक्ष खडा प्रदर्शित किया गया है, जबकि जैन परम्परा के अनुसार नेमि विवाह-स्थल पर गये विना मार्ग से ही दीक्षा के लिए लौट पडे थे।[7]

कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के पाचवे वितान पर नेमि के जीवनदृश्य हैं (चित्र २९)। सम्पूर्ण दृश्यावली तीन आयतो मे विभक्त है। बाहरी आयत मे पूर्व और उत्तर की ओर नेमि के पूर्वभव (महाराज शख) के चित्रण हैं। महाराज शख को अपनी भार्या यशोमती, योद्धाओ एव सेवको के साथ आमूर्तित किया गया है। पश्चिम की ओर नेमि की माता शिवा शय्या पर लेटी है। समीप ही १४ मागलिक स्वप्न और नेमि के माता-पिता की वार्तालाप मे संलग्न मूर्तिया और राजा समुद्रविजय की विजयो के दृश्य हैं। दूसरे आयत मे दक्षिण की ओर शिवादेवी नवजात शिशु के साथ लेटी है। आगे नैगमेषी द्वारा शिशु को जन्माभिषेक के लिए मेरु पर्वत पर ले जाने का दृश्य है। आगे कलशधारी

---

१ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० ११५
२ दीक्षित, एस०के०, ए गाईड टू दि स्टेट म्यूजियम धुबेला (नवगाव), विन्ध्यप्रदेश, नवगाव, १९५९, पृ० १२
३ जैन, बालचन्द्र, 'धुबेला सग्रहालय के जैन मूर्ति लेख', अनेकान्त, वर्ष १९, अ० ४, पृ० २४४
४ कीलहार्न, एफ०, 'ऑन ए जैन स्टैचू इन दि हार्निमन म्यूजियम', ज०रा०ए०सो०, १८९८, पृ० १०१–०२
५ प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २८७
६ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १२९, १३२, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८२
७ त्रि०श०पु०च०, ख० ५, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, वडौदा, १९६२, पृ० २५८–६०

देवो और वज्र से युक्त इन्द्र की मूर्तिया हैं। चामर एव कलश धारण करने वाली आकृतियो से वेष्टित इन्द्र की गोद मे एक शिशु विराजमान है।

पश्चिम की ओर रथ पर बैठे नेमि को बारात के साथ विवाह-स्थल की ओर जाते हुए दिखाया गया है। साथ मे खड्गधारी और अश्वारोही योद्धाओ की एव दूसरे लोगो की आकृतिया भी प्रदर्शित हैं। आगे एक पिंजरे मे बन्द शूकर, मृग एवं मेष जैसे पशुओं की आकृतिया हैं। इन्हीं पशुओ के भावी वध की बात जानकर नेमि ने विवाह न करने और दीक्षा लेने का निश्चय किया था। समीप ही विवाह-मण्डप की वेदिका के दोनो ओर राजीमती और नेमि की आकृतिया खडी हैं। पूर्वोक्त सन्दर्भ मे यह चित्रण परम्परा के विरुद्ध ठहरता है।

तीसरे आयत मे दक्षिण की ओर नेमि के विवाह से लौटने का दृश्याकन है। नेमि रथ मे बैठे हैं और समीप ही नमस्कार-मुद्रा मे खडे एक पुरुष की आकृति है। यह आकृति सम्भवत. राजीमती के पिता की है जो दीक्षा ग्रहण के लिए तत्पर नेमि से ऐसा न कर विवाह-मण्डप वापस चलने की प्रार्थना कर रहे हैं। आगे नेमि को शिविका मे बैठकर दीक्षा के लिए जाते हुए दरशाया गया है। समीप ही ९ नृत्य एव वाद्यवादन करती आकृतिया हैं, जो दीक्षा-कल्याणक के अवसर पर आनन्द मग्न हैं। आगे नेमि के आभरणो के परित्याग एव केश-लुचन के दृश्य हैं। समीप ही नेमि की कायोत्सर्ग मे तपस्यारत मूर्ति भी उत्कीर्ण है। दाहिने छोर पर गिरनार पर्वत और देवालय बने हैं। देवालय मे द्विभुज अम्बिका की मूर्ति प्रतिष्ठापित है। पश्चिम की ओर नेमि का समवसरण उत्कीर्ण है जिसमे ऊपर की ओर नेमि की ध्यानस्थ मूर्ति है। समवसरण मे परस्पर शत्रुभाव रखने वाले पशु-पक्षियो (गज-सिंह, मयूर-सर्प) को साथ-साथ प्रदर्शित किया गया है। बायी ओर के जिनालय मे नेमि की ध्यानस्थ मूर्ति प्रतिष्ठित है। समीप ही चार उपासको की मूर्तियां और दो देवालय भी उत्कीर्ण हैं। ये चित्रण गिरनार पर्वत पर नेमि एव अम्बिका के मन्दिरो के निर्माण से सम्बन्धित हैं।

कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के पाचवें वितान पर नेमि के जीवनदृश्य हैं[1] (चित्र २२ वामार्ध)। दक्षिणी छोर पर नेमि के पूर्वभव (शख) का अकन है। इसमे शख के पिता श्रीषेण और शख की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। दक्षिणी-पश्चिमी छोरो पर कई विश्रामरत मूर्तिया हैं। नीचे 'अपराजित विमान देव' लिखा है। ज्ञातव्य है कि शंख का जीव अपराजित विमान से ही शिवा के गर्भ मे आया था। उत्तर की ओर समुद्रविजय एव हरिवंश (या यदुवश) के शासको की कई मूर्तिया हैं। अन्तिम आकृति के नीचे 'समुद्रविजय' उत्कीर्ण है। पश्चिम की ओर नेमि की माता की शय्या पर लेटी आकृति एव १४ शुभ स्वप्न चित्रित हैं। उत्तर की ओर शिवा देवी शिशु के साथ लेटी हैं। नीचे 'श्रीशिवादेवी रानी प्रसूतिगृह—नेमिनाथ जन्म' अभिलिखित है। आगे नेमि के जन्म-अभिषेक का दृश्य है। पूर्व की ओर नेमि को दो स्त्रिया स्नान करा रही हैं।

आगे कृष्ण की आयुधशाला चित्रित है जिसमे कृष्ण के शख, गदा, चक्र, खड्ग जैसे आयुध प्रदर्शित हैं। समीप ही नेमि कृष्ण का पाचजन्य शंख बजा रहे हैं। आकृति के नीचे 'श्रीनेमि' लिखा है। जैन ग्रन्थो मे उल्लेख है कि एक बार नेमि घूमते हुए कृष्ण की आयुधशाला पहुच गए, जहां उन्होंने कृष्ण के आयुधो को देखा। कौतुकवश नेमि ने शख की ओर हाथ बढाया पर आयुधशाला के रक्षक ने नेमि को ऐसा करने से रोका और कहा कि शंख का बजाना तो दूर वे उसे उठा भी नही सकेंगे। इस पर नेमि ने शंख को बजा दिया। जब इसकी सूचना कृष्ण को मिली तो वे नेमि की इस अपार शक्ति से सशकित हो उठे और उन्होंने नेमि से शक्ति परीक्षण की इच्छा व्यक्त की। नेमि ने द्वन्द्व युद्ध के स्थान पर एक दूसरे की भुजा को झुकाकर बल परीक्षण करने को कहा। कृष्ण नेमि की भुजा किंचित भी नही झुका सके किन्तु नेमि ने सहजभाव से कृष्ण की भुजा झुका दी। कृष्ण नेमि को इस अपरिमित शक्ति से भयभीत हुए किन्तु बलराम ने कृष्ण को बताया कि चक्रवर्ती और इन्द्र से अधिक शक्तिशाली होने के बाद भी नेमि स्वभाव से शान्त और राज्यलिप्सा से मुक्त हैं। इसी समय

१ दक्षिणार्ध पर शान्ति के जीवनदृश्य हैं।

आकाशवाणी भी हुई कि नेमि २२वें जिन हैं, जो अविवाहित रहते हुए ब्रह्मचर्य की अवस्था मे ही दीक्षा ग्रहण करेंगे।[1] महावीर मन्दिर मे केवल नेमि के शख बजाने का दृश्य ही उत्कीर्ण है।

कृष्ण की आयुधशाला के समीप वार्तालाप की मुद्रा मे वसुदेव-देवकी की मूर्तियां हैं। दक्षिण की ओर नेमि का विवाह-मण्डप है। वेदिका के समीप राजीमती को अपनी एक सखी के साथ वार्तालाप की मुद्रा मे दिखाया गया है। आकृतियो के नीचे 'राजीमती' और 'सखी' अभिलिखित हैं। इस दृश्य के ऊपर स्वजनो एव सैनिको के साथ नेमि के विवाह के लिए प्रस्थान का दृश्य है। समीप ही पिंजरे मे वन्द मृग, शूकर, मेष जैसे पशु उत्कीर्ण हैं। साथ ही विवाह मण्डप की ओर आते और विवाहमण्डप के विपरीत दिशा मे जाते हुए दो रथ भी वने हैं, जिनमे नेमि वैठे हैं। दूसरा रथ नेमि के विना विवाह किये वापिस लौटने का चित्रण है। उत्तर को ओर नेमि की दीक्षा का दृश्य है। नेमि अपने दाहिने-हाथ से केशो का लुचन कर रहे है। ध्यानमुद्रा में विराजमान नेमि के समीप ही हार, मुकुट एव अगूठी उत्कीर्ण है जिसका दीक्षा के पूर्व नेमि ने त्याग किया था। समीप ही इन्द्र खडे हैं जो नेमि के लुचित केशो को पात्र मे सचित कर रहे हैं। वायीं ओर नेमि की कायोत्सर्ग-मुद्रा मे तपस्यारत मूर्ति है। समीप ही एक देवालय वना है जिसके नीचे जयन्तनाग (जयन्त नगा) लिखा है। मध्य मे नेमि का समवसरण है। समवसरण के समीप ही नेमि की दो ध्यानस्थ मूर्तिया भी हैं। समीप ही द्विभुजा अम्बिका भी आमूर्तित है।

विमलवसही की देवकुलिका १० के वितान के दृश्यो मे मध्य मे कृष्ण एव उनकी रानियो और नेमि को जल-क्रीडा करते हुए दिखाया गया है। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि समुद्रविजय के अनुरोध पर कृष्ण नेमि को विवाह के लिए सहमत करने के उद्देश्य से जलक्रीडा के लिए ले गए थे।[2] दूसरे वृत्त मे कृष्ण की आयुधशाला एव कृष्ण और नेमि के शक्ति परीक्षण के दृश्य हैं। दृश्य मे कृष्ण वैठे हैं और नेमि उनके सामने खडे हैं। दोनो की भुजाए अभिवादन की मुद्रा मे उठी हैं। आगे नेमि को कृष्ण की गदा घुमाते और कृष्ण को नेमि की भुजा झुकाने का असफल प्रयास करते हुए दिखाया गया है। नेमि की भुजा तनिक भी नही झुकी है। अगले दृश्य मे नेमि कृष्ण की भुजा केवल एक हाथ से झुका रहे हैं। कृष्ण की भुजा झुकी हुई है। समीप ही नेमि की पाचजन्य शख वजाते एव धनुष की प्रत्यचा चढाते हुए मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं। धनुप दो टुकडो मे खण्डित हो गया है। आगे वलराम एव कृष्ण की वार्तालाप मे संलग्न मूर्तिया हैं।

तीसरे वृत्त मे नेमि के विवाह का दृश्याकन है। प्रारम्भ मे एक पुरुष-स्त्री युगल को वार्तालाप की मुद्रा मे दिखाया गया है। आगे विवाह-मण्डप उत्कीर्ण है जिसके समीप पिंजरो मे वन्द मृग, शूकर, सिंह जैसे पशु चित्रित है। आगे नेमि को, रथ मे वैठकर विवाह-मण्डप की ओर जाते हुए दिखाया गया है। इस रथ के पास ही विवाह-मण्डप से विपरीत दिशा में जाता हुआ एक दूसरा रथ भी उत्कीर्ण है। यह नेमि के विवाह-स्थल पर पहुँचने से पूर्व ही वापिस लौटने का चित्रण है। आगे नेमि की ध्यानमुद्रा मे एक मूर्ति हे जिसमे नेमि दाहिने हाथ से अपने केशो का लुचन कर रहे है। नेमि के बायीं ओर चार आकृतिया हैं और दाहिनी ओर इन्द्र खडे है। इन्द्र नेमि के लुचित केशो को पात्र मे सचित कर रहे हैं। अगले दृश्य मे नेमि के कैवल्य प्राप्ति का चित्रण है। नेमि ध्यानमुद्रा मे विराजमान है और उनके दोनो ओर कलशधारी एव मालाधारी आकृतिया वनी हैं।[3]

लूणवसही की देवकुलिका ११ के वितान पर कृष्ण एव जरासन्ध के युद्ध, नेमि के विवाह एव दीक्षा के विस्तृत चित्रण हैं।[4] सम्पूर्ण दृश्यावली सात पक्तियो मे विभक्त है। चौथी पक्ति मे विवाह-स्थल की ओर जाता हुआ नेमि का रथ

---

१ त्रि०श०पु०च०, ख० ५, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, वडौदा, १९६२, पृ० २४८-५०, हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १८५-८६

२ त्रि०श०पु०च०, ख० ५, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, वडौदा, १९६२, पृ० २५०-५५

३ जयन्त विजय, मुनिश्री, पू०नि०, पृ० ६७-६९ ४ वही, पृ० १२२

उत्कीर्ण है। रथ के समीप ही पिंजरे मे बन्द शूकर, मृग जैसे पशु चित्रित हैं। विवाह-मण्डप मे वेदिका के एक ओर नेमि की और दूसरी ओर खडी राजीमती की मूर्ति है। नेमि की हथेली पर राजीमती की हथेली रखी है। विवाह-मण्डप के समीप उग्रसेन का महल है। पाचवीं पक्ति में विवाह के बाद बारात के वापिस लौटने का दृश्य है। एक शिविका मे दो आकृतिया बैठी हैं। कहीं ऐसा तो नही कि शिविका की दो आकृतिया नेमि के विवाह के बाद राजीमती के साथ वापिस लौटने का चित्रण है? आगे नेमि को गिरनार पर्वत पर कायोत्सर्ग मे तपस्यारत प्रदर्शित किया गया है। छठीं पक्ति मे नेमि के दीक्षा-कल्याणक का दृश्य है। लूणवसही की देवकुलिका ९ के वितान के दृश्यो की भी संभावित पहचान नेमि के जीवनदृश्यो से की गई है।[1]

कल्पसूत्र के चित्रो मे सबसे पहले नेमि के पूर्वभव का अकन है। आगे नेमि के शख लाछन के पूजन, नेमि के जन्म एव जन्म-अभिषेक के दृश्य है। तदुपरान्त नेमि और कृष्ण के शक्ति परीक्षण के चित्र हैं। चित्र में चतुर्भुज कृष्ण को दो भुजाओ से नेमि की भुजा झुकाने का प्रयास करते हुए दिखाया गया है। कृष्ण के समीप ही उनके आयुध—शख, चक्र, गदा एव पद्म चित्रित हैं। अगले चित्रो मे नेमि के विवाह और दीक्षा के दृश्य है। आगे नेमि का समवसरण और ध्यानमुद्रा मे विराजमान नेमि के चित्र हैं।[2]

विश्लेषण

विभिन्न क्षेत्रो की मूर्तियो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ऋषभ, पार्श्व और महावीर के बाद नेमि ही उत्तर भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय जिन थे। नेमि के जीवनदृश्यो के अकन अन्य जिनो की तुलना में अधिक है। कला मे ऋषभ और पार्श्व के बाद नेमि की ही मूर्ति के लक्षण सुनिश्चित हुए। मथुरा मे कुषाणकाल मे नेमि के साथ बलराम और कृष्ण का अकन प्रारम्भ हुआ। २४ जिनो मे से नेमि का शख लाछन सबसे पहले प्रदर्शित हुआ। राजगिर की ल० चौथी शती ई० की मूर्ति इसका प्रमाण है। ल० सातवीं शती ई० की भारत कला भवन, वाराणसी (२१२) की मूर्ति मे नेमि के साथ यक्ष-यक्षी भी निरूपित हुए। अधिकाश उदाहरणो मे नेमि के साथ यक्ष-यक्षी के रूप मे सर्वानुभूति (या कुबेर) एव अम्बिका उत्कीर्ण हैं। देवगढ एव राज्य संग्रहालय, लखनऊ की कुछ मूर्तियों मे सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं। गुजरात एवं राजस्थान की श्वेताबर मूर्तियो मे लाछन के स्थान पर पीठिका-लेखो मे नेमि के नामोल्लेख की परम्परा ही प्रचलित थी। मथुरा एव देवगढ की कुछ स्वतन्त्र मूर्तियो (१०वीं–११वीं शती ई०) मे नेमि के साथ बलराम और कृष्ण भी आमूर्तित हैं।

(२३) पार्श्वनाथ

जीवनवृत्त

पार्श्वनाथ इस अवसर्पिणी के तेईसवें जिन हैं। पार्श्व को जैन धर्म का वास्तविक सस्थापक माना गया है। वाराणसी के महाराज अश्वसेन उनके पिता और वामा (या वर्मिला) उनकी माता थी।[3] जन्म के समय बालक सर्प के चिह्न से चिह्नित था। आवश्यकचूर्णि एव त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में उल्लेख है कि गर्भकाल मे माता ने एक रात अपने पार्श्व मे सर्प को देखा था, इसी कारण बालक का नाम पार्श्वनाथ रखा गया। उत्तरपुराण के अनुसार जन्माभिषेक के बाद इन्द्र ने बालक का नाम पार्श्वनाथ रखा। पार्श्व का विवाह कुशस्थल के शासक प्रसेनजित की पुत्री प्रभावती से हुआ। दिगंबर ग्रन्थो मे पार्श्व के विवाह-प्रसग का अनुल्लेख है। श्वेताबर परम्परा के अनुसार नेमि के भित्ति चित्रों को देखकर, और दिगबर परम्परा के अनुसार ऋषभ के त्यागमय जीवन की बातो को सुनकर, तीस वर्ष की अवस्था मे

---

१ जयन्त विजय, मुनिश्री, पू०नि०, पृ० १२१

२ ब्राउन, डब्ल्यू० एन०, पू०नि०, पृ० ४५–४९, फलक ३०–३४, चित्र १०१–१४

३ उत्तरपुराण और महापुराण (पुष्पदंतकृत) मे पार्श्व के माता-पिता का नाम क्रमश: ब्राह्मी और विश्वसेन बताया गया है।

पार्श्व के मन मे वैराग्य उत्पन्न हुआ। पार्श्व ने आश्रमपद उद्यान मे अशोक वृक्ष के नीचे पचमुष्टि मे केशो का लुचन कर दीक्षा ली।

पार्श्व वाराणसी से शिवपुरी नगर गये और वही कौशाम्बवन मे कायोत्सर्ग मे खडे होकर तपस्या प्रारम्भ की। धरणेन्द्र ने धूप से पार्श्व की रक्षा के लिए उनके मस्तक पर छत्र की छाया की थी। अपने एक भ्रमण मे पार्श्व तापसाश्रम पहुचे और सन्ध्या हो जाने के कारण वही एक वट वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग मे खडे होकर तपस्या प्रारम्भ की। उसी समय आकाशमार्ग से मेघमाली (या शम्बर) नाम का असुर (कमठ का जीव) जा रहा था। जब उसने तपस्यारत पार्श्व को देखा तो उसे पार्श्व से अपने पूर्वजन्मो के वैर का स्मरण हो आया। मेघमाली ने पार्श्व की तपस्या को भंग करने के लिए तरह-तरह के उपसर्ग उपस्थित किये। पर पार्श्व पूरी तरह अप्रभावित और अविचलित रहे। मेघमाली ने सिंह, गज, वृश्चिक, सर्प और भयकर वैताल आदि के स्वरूप धारण कर पार्श्व को अनेक प्रकार की यातनाएं दी। उपसर्गों के बाद भी जब पार्श्व विचलित नही हुए तो मेघमाली ने माया से भयंकर वृष्टि प्रारम्भ की जिससे सारा वन प्रदेश जलमग्न हो गया। पार्श्व के चारो ओर वर्षा का जल बढने लगा जो धीरे-धीरे उनके घुटनो, कमर, गर्दन और नासाग्र तक पहुच गया। पर पार्श्व का ध्यान भग नही हुआ। उसी समय पार्श्व की रक्षा के लिए नागराज धरणेन्द्र पद्मावती एव वैरोट्या जैसी नाग देवियो के साथ पार्श्व के समीप उपस्थित हुए। धरणेन्द्र ने पार्श्व के चरणो के नीचे दीर्घनालयुक्त पद्म की रचना कर उन्हे ऊपर उठा दिया, उनके सम्पूर्ण शरीर को अपने शरीर से ढक लिया, साथ ही शीर्ष भाग के ऊपर सप्तसर्पफणो का छत्र भी प्रसारित किया।[1] उत्तरपुराण के अनुसार धरणेन्द्र ने पार्श्व को चारो ओर से घेर कर अपने फणो पर उठा लिया था, और उनकी पत्नी पद्मावती ने शीर्ष भाग मे वज्रमय छत्र की छाया की थी।[2] अन्त मे मेघमाली ने अपनी पराजय स्वीकार कर पार्श्व से क्षमायाचना की। इसके बाद धरणेन्द्र भी देवलोक चले गये। उपर्युक्त परम्परा के कारण ही मूर्तियो मे पार्श्व के मस्तक पर सात सर्पफणो के छत्र प्रदर्शन की परम्परा प्रारम्भ हुई। मूर्तियो मे पार्श्व के घुटनो या चरणो तक सर्प की कुण्डलियो का प्रदर्शन भी इसी परम्परा से निर्देशित है। पार्श्व को कभी-कभी तीन और ग्यारह सर्पफणो के छत्र से भी युक्त दिखाया गया है।[3]

पार्श्व को वाराणसी के निकट आश्रमपद उद्यान मे धातकी वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग-मुद्रा मे केवल-ज्ञान और १०० वर्ष की अवस्था मे सम्मेद शिखर पर निर्वाण-पद प्राप्त हुआ।[4]

प्रारम्भिक मूर्तिया

पार्श्व का लाछन सर्प है और यक्ष-यक्षी पार्श्व (या वामन) और पद्मावती हैं। दिगंबर परम्परा मे यक्ष का नाम धरण है। पीठिका पर पार्श्व के सर्प लाछन के उत्कीर्णन की परम्परा लोकप्रिय नही थी, पर सिर के ऊपर सात सर्पफणो का छत्र सदैव प्रदर्शित किया गया है। आगे के अध्ययन मे शीर्षभाग के सर्पफणो का उल्लेख तभी किया जायगा जब उनकी सख्या सात से कम या अधिक होगी।

पार्श्व की प्राचीनतम मूर्तिया पहली शती ई० पू० की हैं। इनमे पार्श्व सर्पफणों के छत्र से युक्त हैं। ये मूर्तिया चौसा एव मथुरा से मिली हैं। मथुरा की मूर्ति आयागपट पर उत्कीर्ण है। इसमें पार्श्व ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं।[5] चौसा (भोजपुर, बिहार)[6] एव प्रिंस ऑव वेल्स सग्रहालय, बम्बई[7] की दो मूर्तियो मे पार्श्व निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग-मुद्रा

---

१ त्रि०श०पु०च०, ख० ५, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज १३९, बड़ौदा, १९६२, पृ० ३९४–९६, पासनहचरिउ १४ २६, पार्श्वनाथचरित्र ६ १९२–९३

२ उत्तरपुराण ७३.१३९–४०

३ भट्टाचार्य, बी०सी०, पू०नि०, पृ० ८२

४ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० २८१–३३२

५ राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे २५३

६ शाह, यू०पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, फलक १ बी

७ स्ट०जै०आ०, पृ० ८–९, पार्श्व के मस्तक पर पाच सर्पफणो का छत्र है।

मे खडे हैं। कुषाण काल मे ऋषभ के बाद पार्श्व की ही सर्वाधिक मूर्तिया उत्कीर्ण हुईं। कुषाण कालीन मूर्तिया मथुरा एव चौसा से मिली है। इनमे सात सर्पफणो के छत्र से शोभित पार्श्व सदैव निर्वस्त्र हैं। चौसा की मूर्ति मे पार्श्व (पटना सग्रहालय, ६५३३) कायोत्सर्ग मे खडे हैं। मथुरा की अधिकाश मूर्तियो मे सप्रति पार्श्व के मस्तक ही सुरक्षित हैं।[1] राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे पार्श्व की तीन ध्यानस्थ मूर्तिया सुरक्षित हैं (चित्र३०)।[2] स्वतन्त्र मूर्तियो के अतिरिक्त जिन-चौमुखी-मूर्तियो मे भी पार्श्व की कायोत्सर्ग मूर्तिया उत्कीर्ण है। कुषाणकाल मे पार्श्व के सर्पफणो पर स्वस्तिक, धर्मचक्र, त्रिरत्न, श्रीवत्स, कलश, मत्स्ययुगल और पद्मकलिका जैसे मागलिक चिह्न भी अकित किये गये।[3]

ल० चौथी-पाचवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे १००) मे है। मूलनायक के दक्षिण पार्श्व मे एक पुरुष और वाम पार्श्व मे सर्पफण से युक्त एक स्त्री आकृति खडी है। स्त्री के दोनो हाथो मे एक छत्र है। ल० छठी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा (१८ १५०५) मे है। इसमें सर्प की कुण्डलिया पार्श्व के चरणो तक प्रसारित हैं। मूलनायक के दोनो ओर सर्पफण के छत्र से युक्त स्त्री-पुरुष आकृतिया खडी हैं। दक्षिण पार्श्व की पुरुष आकृति के कर मे चामर और वाम पार्श्व की स्त्री आकृति के कर मे छत्र प्रदर्शित है। तुलसी सग्रहालय, रामवन (सतना) मे भी ल० पाचवी-छठी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति है। पार्श्व नागकुण्डलियो पर आसीन और दो चामरधरो से वेष्टित हैं।[4]

अकोटा (गुजरात) और रोहतक (दिल्ली) से सातवी शती ई० की क्रमश आठ और एक श्वेतावर मूर्तिया मिली है। रोहतक की मूर्ति मे पार्श्व कायोत्सर्ग मे खडे हैं।[5] अकोटा की केवल एक ही मूर्ति मे पार्श्व कायोत्सर्ग मे खडे हैं। कायोत्सर्ग मूर्ति की पीठिका पर आठ ग्रहो एव एक सर्पफण के छत्र से युक्त द्विभुज नाग-नागी की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। नाग-नागी के कटि के नीचे के भाग सर्पाकार और आपस मे गुम्फित हैं। एक हाथ से अभयमुद्रा व्यक्त है और दूसरे मे सम्भवत. फल है। दो मूर्तियो मे मूलनायक के दोनो ओर दो कायोत्सर्ग जिन आमूर्तित हैं। पीठिका पर आठग्रहो एव सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तिया हैं। अन्य उदाहरणो मे भी यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका ही हैं।[6]

विश्लेषण—उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि सातवी शती ई० तक पार्श्व का लाछन नही उत्कीर्ण हुआ किन्तु सात सर्पफणो के छत्र का प्रदर्शन पहली शती ई० पू० मे ही प्रारम्भ हो गया। सातवी शती ई० मे पार्श्व की मूर्तियो (अकोटा) मे यक्ष-यक्षी भी निरूपित हुए। यक्ष-यक्षी के रूप मे सर्वानुभूति एव अम्बिका और नाग-नागी निरूपित हैं।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तिया

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र से प्रचुर सख्या मे पार्श्व की मूर्तिया मिली हैं। ल० सातवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति धाक गुफा मे है। पार्श्व निर्वस्त्र हैं और उनके यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं।[7] पार्श्व की दो ध्यानस्थ मूर्तिया ओसिया के महावीर मन्दिर के गूढमण्डप मे हैं। इनमे पार्श्व नाग की कुण्डलियो के आसन पर बैठे हैं। आठवी शती ई० की दो श्वेतावर मूर्तिया वसन्तगढ (सिरोही) से मिली हैं। इनमे पार्श्व कायोत्सर्ग मे खडे हैं और यक्ष-यक्षी

---

१ तीन उदाहरण राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे ९६, जे ११३, जे ११४) एव दो अन्य क्रमश. भारत कला भवन, वाराणसी (२०७४८) एव पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा (बी ६२) मे हैं।

२ जे ३९, जे ६९, जे ७७

३ राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ३९, जे ११३) एव पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा (बी ६२)

४ जैन, नीरज, 'तुलसी सग्रहालय, रामवन का जैन पुरातत्व', *अनेकान्त*, वर्ष १६, अ० ६, पृ० २७९

५ भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि०**, फलक ६, **स्ट०जै०आ०**, पृ० १७

६ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, पृ० ३३, ३५-३७, ३९, ४२, ४४

७ सकलिया, एच० डी०, **दि आर्किअलाजी ऑव गुजरात**, बम्बई, १९४१, पृ० १६७, **स्ट०जै०आ०**, पृ० १७

सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं। पीठिका पर आठ ग्रहो की भी मूर्तिया हैं।[1] अकोटा से भी आठवी शती ई० की दो श्वेतावर मूर्तिया मिली हैं।[2] एक उदाहरण मे पार्श्व कायोत्सर्ग मे निरूपित हैं और उनकी पीठिका पर नमस्कार-मुद्रा मे सर्पफण के छत्र से युक्त नाग-नागी चित्रित हैं। दूसरी मूर्ति में पीठिका पर आठ ग्रहो एव सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तिया हैं।

अकोटा से नवी-दसवी शती ई० की भी पाच मूर्तिया मिली हैं।[3] दो मूर्तियो मे ध्यानमुद्रा मे विराजमान पार्श्व के दोनो ओर दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। पार्श्ववर्ती जिनो के समीप अप्रतिचक्रा एव वैरोट्या महाविद्याओ की भी मूर्तिया हैं। सभी उदाहरणो मे पीठिका पर ग्रहो एव सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।[4] एक उदाहरण मे सर्वानुभूति एव अम्बिका सर्पफण के छत्र से युक्त हैं। एक उदाहरण के अतिरिक्त पार्श्ववर्ती कायोत्सर्ग जिन मूर्तिया सभी मे उत्कीर्ण हैं। अकोटा को दसवीं-ग्यारहवी शती ई० की एक अन्य मूर्ति के परिकर मे सात जिनो और पीठिका पर ग्रहो एव सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तिया हैं।[5]

९८८ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति भडौच से मिली है।[6] मूलनायक के पार्श्वों मे दो कायोत्सर्ग जिनो और परिकर मे अप्रतिचक्रा एव वैरोट्या महाविद्याओ की मूर्तिया हैं। पीठिका पर नवग्रहो एव यक्ष-यक्षी की मूर्तिया हैं। यक्ष की मूर्ति खण्डित हो गई है, पर यक्षी अम्बिका ही है। १०३१ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति वसन्तगढ से मिली है।[7] मूर्ति के परिकर मे पाच जिनो एव चार द्विभुज देवियो की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। पीठिका पर सर्वानुभूति एव अम्बिका और ब्रह्मशान्ति यक्ष की मूर्तियां हैं।

ओसिया की देवकुलिका १ पर ग्यारहवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका ही हैं। १०१९ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति ओसिया के वलानक मे सुरक्षित है। सिंहासन के छोरो पर सर्पफणो की छत्रावली वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। दसवी-ग्यारहवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति भरतपुर से मिली है और सम्प्रति राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (१७) मे सुरक्षित है। यहा पार्श्व के आसन के नीचे और पृष्ठ भाग मे सर्प की कुण्डलिया प्रदर्शित हैं। मूलनायक के दोनो ओर तीन सर्पफणो के छत्रो वाले चामरधर सेवक आमूर्तित हैं। चामरधरो के ऊपर तीन सर्पफणो के छत्रो वाली पार्श्व की चार अन्य छोटी मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। दो ध्यानस्थ मूर्तिया राष्ट्रीय सग्रहालय, दिल्ली मे हैं।[8] एक मूर्ति नवी शती ई० की है और दूसरी १०६९ ई० की है। इनमे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका ही हैं। साथ ही दो पार्श्ववर्ती जिनो, नाग-नागी एव नवग्रहो की भी मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।[9] लिल्वादेवा (गुजरात) से नवी से बारहवी शती ई० के मध्य की कई मूर्तिया मिली हैं। ये मूर्तिया सम्प्रति बडौदा सग्रहालय मे सुरक्षित हैं।[10] इनमे पार्श्व के साथ चामरधर सेवको, आठ या नौ ग्रहो एव सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। एक मूर्ति (१०३६ ई०) मे मूलनायक के दोनों ओर दो जिन भी आमूर्तित हैं।[11]

कुम्भारिया के जैन मन्दिरो मे भी कई मूर्तिया हैं। महावीर मन्दिर की देवकुलिका १५ की मूर्ति (११ वी शती ई०) मे सिंहासन के दोनो ओर दो जिनो एव मध्य मे शान्तिदेवी की मूर्तिया हैं। परिकर मे दो अन्य जिन मूर्तिया

---

१ शाह, यू० पी०, 'ब्रोन्ज होर्ड फ्राम वसन्तगढ', ललितकला, अ० १–२, पृ० ६०

२ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० ४४,४९

३ वही, पृ० ५२–५७

४ एक मूर्ति मे यक्ष-यक्षी की पहचान सम्भव नही है।

५ शाह, यू०पी०, पू०नि०, पृ० ६०

६ वही, चित्र ५६ ए

७ वही, चित्र ६३ ए

८ क्रमाक ६८ ८९, ६६.३७

९ शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, 'अन्पब्लिश्ड जैन ब्रोन्जेज इन दि नेशनल म्यूजियम', ज०ओ०इ०, ख०१९, अ०३, पृ०२७५-७७

१० शाह, यू०पी०, 'सेवेन ब्रोन्जेज फ्राम लिल्वादेवा', बु०व०म्यू०, ख० ९, भाग १–२, पृ० ४४–४५

११ वही, पृ० ४९–५०

मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की एक ध्यानस्थ मूर्ति (ल० ११वी शती ई०) मे पुरुष के हाथ मे छत्र प्रदर्शित है। मन्दिर ४ की कायोत्सर्ग मूर्ति (११वी शती ई०) मे चामरधर सेवक तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त हैं। मन्दिर १२ के सभामण्डप की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (११वी शती ई०) मे नवग्रहो की मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं। दक्षिण पार्श्व मे चामरधर के समीप दो स्त्री आकृतिया खडी हैं। वामपार्श्व मे द्विभुज अम्बिका है। मन्दिर ९, साहू जैन संग्रहालय, देवगढ, एव मन्दिर ४ की मूर्तियो के परिकर मे चार एव मन्दिर ३ एव मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की मूर्तियो मे दो छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।

ल० नवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति रीवा (म० प्र०) के समीप गुर्गी नामक स्थान से मिली है और इलाहाबाद सग्रहालय (ए० एम० ४९९) मे सुरक्षित है।[1] इसमे सर्प की कुण्डलिया चरणो तक बनी हैं। दोनो पार्श्वों मे क्रमश एक सर्पफण से युक्त चामरधर सेवक और छत्रधारिणी सेविका आमूर्तित हैं। कगरोल (मथुरा) से मिली १०३४ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (२८७४) मे है। यहा सिंहासन के छोरो पर सामान्य लक्षणो वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।

खजुराहो मे दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की ग्यारह मूर्तिया हैं। छह उदाहरणो मे पार्श्व कायोत्सर्ग मे खडे है। सात उदाहरणो मे सर्प की कुण्डलिया चरणो तक प्रसारित हैं। पाच उदाहरणो मे पार्श्व सर्प की कुण्डलियो पर ही विराजमान हैं। यक्ष-यक्षी केवल चार ही उदाहरणो मे निरूपित हैं। दो कायोत्सर्ग मूर्तियो (मन्दिर २८ एवं ५) मे मूलनायक के पार्श्वों मे तीन सर्पफणो वाले स्त्री-पुरुष चामरधर उत्कीर्ण हैं। दो ध्यानस्थ मूर्तियों (११ वी शती ई०) मे सर्पफणो के छत्रो से युक्त चामरधर सेवक और छत्रधारिणी सेविका हैं।[2] मन्दिर ५ की बारहवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति मे सामान्य चामरधरो के समीप दो अन्य स्त्री-पुरुष चामरधर चित्रित हैं जिनके शीर्षभाग मे सात सर्पफणो के छत्र हैं। ये धरणेन्द्र और पद्मावती की मूर्तिया है। मूर्ति के परिकर मे एक छोटी जिन, बायें छोर पर द्विभुज देवी और पीठिका के मध्य मे चतुर्भुज सरस्वती (या शान्तिदेवी) की मूर्तिया हैं। स्थानीय सग्रहालय की बारहवी शती ई० की एक मूर्ति (के ९) मे पीठिका पर चार ग्रहो एव परिकर मे ४६ जिनो की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।

स्थानीय सग्रहालय की ग्यारहवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (के ५) में चतुर्भुज यक्ष और द्विभुज यक्षी निरूपित हैं। यक्षी तीन सर्पफणो की छत्रावली से युक्त है। परिकर मे छह छोटी जिन मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं। पुरातात्विक सग्रहाल्य, खजुराहो की बारहवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (१६१८) मे द्विभुज यक्ष-यक्षी सर्पफणो से शोभित हैं। परिकर मे चार छोटी जिन मूर्तिया भी उत्कीर्ण है। स्थानीय सग्रहालय की ग्यारहवी शती ई० की दो अन्य मूर्तियो (के ६८, १००) मे भी यक्ष-यक्षी सर्पफणो की छत्रावलियो से युक्त हैं। एक उदाहरण (के ६८) मे चतुर्भुज यक्ष-यक्षी धरणेन्द्र एवं पद्मावती हैं। इस मूर्ति के परिकर में २० जिन मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं। मन्दिर १ और जार्डिन सग्रहालय, खजुराहो (१६६८) की दो ध्यानस्थ मूर्तियो के परिकर मे भी क्रमश. १८ और ६ जिन मूर्तिया हैं। धुबेला संग्रहालय की एक ध्यानस्थ मूर्ति (४९, ११ वी–१२ वी शती ई०) मे चतुर्भुज नागी एव द्विभुज नाग की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।[3]

विश्लेषण—उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश की मूर्तियो के विस्तृत अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र मे पार्श्व के साथ सात सर्पफणो के छत्र का प्रदर्शन नियमित था और अधिकाशत· इसी के आधार पर पार्श्व की पहचान भी की गई है। पार्श्व के साथ लांछन केवल दो ही मूर्तियों (११वी–१२वी शती ई०) मे उत्कीर्ण हैं। ये मूर्तिया राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जी ३२३) एव देवगढ के मन्दिर १२ की चहारदीवारी पर हैं। पार्श्व के साथ यक्ष-यक्षी युगल का निरूपण विशेष लोकप्रिय नहीं था। पारम्परिक यक्ष-यक्षी, धरणेन्द्र-पद्मावती, केवल देवगढ, खजुराहो एवं राज्य सग्रहालय, लखनऊ

---

१ चन्द्र, प्रमोद, पूर्०नि०, पृ० ११५

२ मन्दिर १ एव जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो, १६६८

३ दीक्षित, एस०के०, ए गाइड टू दि स्टेट म्यूजियम, धुबेला (नवगांव), विन्ध्यप्रदेश, नवगाव, १९५७, पृ० १४–१५

की ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की ही कुछ मूर्तियो मे निरूपित हैं। अधिकांशतः पार्श्व के साथ सामान्य लक्षणो वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं जिनके सिरो पर कभी-कभी सर्पफणो के छत्र भी प्रदर्शित हैं। सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी का अंकन ल० दसवी शती ई० मे ही प्रारम्भ हो गया। कुछ उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका भी हैं। सर्पफणो के छत्रो से युक्त या विना सर्पफणो वाले स्त्री-पुरुष चामरधरो या चामरधर पुरुष और छत्रधारिणी स्त्री के अंकन आठवी से बारहवी शती ई० के मध्य विशेष लोकप्रिय थे। कुछ मूर्तियो मे लटकती जटाए, नाग-नागी एव सरस्वती भी अंकित हैं।

बिहार-उडीसा-बंगाल—बंगाल और उडीसा मे अन्य किसी भी जिन की तुलना मे पार्श्व की मूर्तिया अधिक हैं। ल० नवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति उदयगिरि पहाडी (बिहार) के आधुनिक मन्दिर मे प्रतिष्ठित है।[1] बाकुडा से प्राप्त और भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता मे सुरक्षित ल० दसवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति मे पीठिका पर सर्प लाछन उत्कीर्ण है। चौबीस परगना (बंगाल) मे कान्तावेनिआ से प्राप्त ग्यारहवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति के परिकर मे २३ छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। समान विवरणो वाली दसवी-ग्यारहवी शती ई० की दो मूर्तिया बहुलारा के सिद्धेश्वर मन्दिर एवं पारसनाथ (अम्बिकानगर) मे हैं।[2] पारसनाथ से प्राप्त मूर्ति मे नाग-नागी भी उत्कीर्ण हैं।[3] अम्बिकानगर के समीप केंदुआग्राम से भी एक कायोत्सर्ग मूर्ति मिली है।[4] मूलनायक के पार्श्वों मे तीन सर्पफणो की छत्रावली वाली दो नागी मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।

ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की दो खड्गासन और दो ध्यानस्थ मूर्तिया[5] अलुआरा से मिली हैं। ये मूर्तिया सम्प्रति पटना संग्रहालय मे सुरक्षित हैं।[6] एक मूर्ति मे नवग्रहो एव एक अन्य मे दो नागो की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। ग्यारहवी शती ई० की दो मूर्तिया पोट्टासिंगीदी (क्योझर) से मिली हैं।[7] भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता की एक मूर्ति मे पार्श्व के समीप छत्र धारण करनेवाली नागी की मूर्ति है।[8] परिकर मे कुछ मानव, असुर एव पशुमुख आकृतिया उत्कीर्ण हैं। ये आकृतिया पत्थर एव खड्ग से पार्श्व पर आक्रमण की मुद्रा मे प्रदर्शित हैं। यह सम्भवत मेघमाली के उपसर्गों का चित्रण है।

उडीसा की नवमुनि, बारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की कई मूर्तिया हैं। बारभुजी गुफा की ध्यानस्थ मूर्ति के आसन पर त्रिफण नाग लाछन उत्कीर्ण है (चित्र ५९)। मूर्ति के नीचे पद्मावती यक्षी निरूपित है।[9] नवमुनि गुफा की मूर्ति मे ध्यानस्थ पार्श्व जटामुकुट से शोभित हैं और उनकी पीठिका पर दो नाग आकृतिया उत्कीर्ण है।[10] नवमुनि गुफा को दूसरी ध्यानस्थ मूर्ति मे भी आसन पर तीन सर्पफणो वाली दो नाग मूर्तिया हैं। नीचे पद्मावती यक्षी की मूर्ति है।[11]

विश्लेषण—उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र मे सर्प लाछन तुलनात्मक दृष्टि से अधिक उदाहरणो मे उत्कीर्ण है। पार्श्व के यक्ष-यक्षी की मूर्तिया इस क्षेत्र मे नहीं उत्कीर्ण हुई। केवल बारभुजी एव नवमुनि गुफाओ की मूर्तियो मे ही नीचे पद्मावती की मूर्तिया हैं।

---

१ आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५–२६, फलक ६०, चित्र ई, पृ० ११५
२ बनर्जी, जे० एन०, 'जैन इमेजेज', दि हिस्ट्री ऑव बंगाल, ख० १, ढाका, १९४३, पृ० ४६५
३ मित्रा, देवला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बाकुडा, वेस्ट बंगाल', ज०ए०सो०बं०,ख०२४, अ०२,पृ० १३३–३४
४ वही, पृ० १३४
५ पटना संग्रहालय ६५३१, ६५३३, १०६७८, १०६७९
६ प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २८१, २८८
७ जोशी, अर्जुन, 'फर्दर लाइट आन दि रिमेन्स ऐट पोट्टासिंगीदी', उ०हि०रि०ज०, अ० १०, अ० ४, पृ० ३१–३२
८ एण्डरसन, जे०, पू०नि०, पृ० २१३–१४
९ मित्रा, देवला, 'शासन देवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, ख० १, अ० २, पृ० १३३
१० वही, पृ० १२९
११ वही, पृ० १२९

भी उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका ही हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर की पूर्वी दीवार की एक रथिका मे ११०४ ई० की एक मूर्ति का सिंहासन सुरक्षित है। लेख मे पार्श्वनाथ का नाम उत्कीर्ण है। पीठिका पर शान्तिदेवी एव सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तिया हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका २३ मे ११७९ ई० की एक मूर्ति है। लेख मे पार्श्वनाथ का नाम दिया है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गूढमण्डप मे बारहवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है। यहा यक्ष-यक्षी रूप मे सर्वानुभूति एव अम्बिका निरूपित हैं। पार्श्व से सम्बद्ध करने के लिए यक्ष-यक्षी के मस्तको पर सर्पफणो के छत्र प्रदर्शित हैं। चामरधरो के ऊपर दो ध्यानस्थ जिन आकृतिया भी बनी हैं। ११५७ ई० की एक खड्गासन मूर्ति कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर के गूढमण्डप मे है। सिंहासन-छोरो पर सर्वानुभूति एव अम्बिका निरूपित हैं। परिकर मे १९ उड्डीयमान आकृतिया एव १४ चतुर्भुजी देविया चित्रित हैं। देवियो मे अधिकाश महाविद्याए हैं जिनमे केवल अप्रतिचक्रा, वज्रश्रृखला, सर्वास्त्र-महाज्वाला, रोहिणी एव वैरोट्या की पहचान सम्भव है।

विमलवसही की देवकुलिका ४ मे ११८८ ई० की एक मूर्ति है जिसके शीर्ष भाग मे सात सर्पफणो के छत्र और लेख मे पार्श्वनाथ के नाम उत्कीर्ण हैं। ओसिया की मूर्ति के बाद यह दूसरी मूर्ति है जिसमे पार्श्व के साथ पारम्परिक यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। मूलनायक के दोनो ओर दो कायोत्सर्ग और दो ध्यानस्थ जिन मूर्तिया हैं। ललितमुद्रा मे विराजमान यक्ष पार्श्व एव यक्षी पद्मावती तीन सर्पफणो की छत्रावलियो से युक्त हैं। विमलवसही की देवकुलिका २५ मे भी पार्श्व की एक मूर्ति है। पर यहा यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं। विमलवसही की देवकुलिका ५३ मे भी एक मूर्ति (११६५ ई०) है।

ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की एक दिगबर मूर्ति राष्ट्रीय सग्रहालय, दिल्ली (३९ २०२) मे है (चित्र ३३)।[1] पार्श्व कायोत्सर्ग मे खडे हैं और सर्प की कुण्डलिया उनके चरणो तक प्रसारित हैं। परिकर मे नाग और नागी की वीणा और वेणु बजाती और नृत्य करती हुई ६ मूर्तिया हैं। मूलनायक के प्रत्येक पार्श्व मे एक स्त्री-पुरुष युगल आमूर्तित है जिनके हाथो मे चामर एव पद्म हैं। इस मूर्ति मे यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण हैं।

कोटा क्षेत्र मे रामगढ एव अटरू से नवीं-दसवी शती ई० की चार मूर्तिया मिली हैं। ये सभी मूर्तिया कोटा सग्रहालय मे सुरक्षित हैं।[2] तीन उदाहरणो मे पार्श्व कायोत्सर्ग मे खडे हैं। सभी मे चामरधर सेवक और नाग-नागी की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी केवल एक ही उदाहरण (३२२) मे प्रदर्शित हैं। नवी से बारहवी शती ई० के मध्य की सात मूर्तिया गगा गोल्डेन जुबिली सग्रहालय, बीकानेर मे हैं।[3] सभी उदाहरणो मे पार्श्ववर्ती जिनों एवं आठ या नौ ग्रहो की मूर्तिया चित्रित हैं। तीन उदाहरणो मे सर्वानुभूति एव अम्बिका भी निरूपित हैं। लूणवसही की देवकुलिका १० और ३३ मे भी दो मूर्तिया (१२३६ ई०) हैं। इनमे भी यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका ही हैं।

विश्लेषण—गुजरात एव राजस्थान की मूर्तियो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र मे सात सर्पफणो के छत्र के साथ ही लेखो मे पार्श्वनाथ के नामोल्लेख की परम्परा भी लोकप्रिय थी। पर लाछन एव पारम्परिक यक्ष-यक्षी का निरूपण दुर्लभ है। केवल ओसिया (बलानक) एव विमलवसही (देवकुलिका ४) की ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की दो मूर्तियों मे ही यक्ष-यक्षी पारम्परिक हैं। अन्य उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। कुछ उदाहरणो मे पार्श्व से सम्बन्धित करने के उद्देश्य से यक्ष-यक्षी के सिरो पर सर्पफणो के छत्र भी प्रदर्शित किये गये है। पार्श्व के दोनो ओर दो कायोत्सर्ग जिनो एव परिकर मे महाविद्याओ, ग्रहो, शान्तिदेवी आदि के चित्रण विशेष लोकप्रिय थे।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे आठवी से दसवी शती ई० के मध्य की दस मूर्तिया हैं।[4] पाच उदाहरणो में पार्श्व ध्यानमुद्रा मे आसीन हैं। यक्ष-यक्षी चार ही उदाहरणो मे निरूपित है। परम्परिक यक्ष-यक्षी

---

१ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र सग्रह ए २ २८

२ क्रमाक ३१९, ३२०, ३२१, ३२२ ३ श्रीवास्तव, वी० एस०, पू०नि०, पृ० १८–१९

४ क्रमाक जे ७९४, जे ८८२, जे ८५९, जे ८४६, ४८.१८२, जी ३१०, ४० १२१, जी २२३

केवल वटेश्वर (आगरा) की ग्यारहवी शती ई० की एक खड्गासन मूर्ति (जे ७९४) मे ही उत्कीर्ण है। इसमे यक्ष-यक्षी पाच सर्पफणो की छत्रावली से युक्त हैं। पद्मावती सिंहासन के मध्य मे और धरणेन्द्र बायें छोर पर उत्कीर्ण है। यक्ष के ऊपर पद्म और वरद-(या अभय-) मुद्रा प्रदर्शित करनेवाली दो देव आकृतिया भी चित्रित है। अन्य तीन उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणो वाले हैं। ९७९ ई० की एक मूर्ति के अतिरिक्त अन्य सभी मे प्रातिहार्यों एव सहायक देवो की मूर्तिया उत्कीर्ण है।

राजघाट (वाराणसी) की आठवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (४८ १८२) के परिकर मे दो छोटी जिन मूर्तिया और मूलनायक के पार्श्वों मे सर्पफणो की छत्रावली वाले पुरुष-स्त्री सेवक उत्कीर्ण हैं। वाम पार्श्व की स्त्री आकृति की दाहिनी भुजा मे लम्बे दण्डवाला छत्र है। छत्र मूलनायक के मस्तक के ऊपर प्रदर्शित है। फलत त्रिछत्र नही प्रदर्शित है। उन सभी मूर्तियो मे जिनमे पार्श्व के सिर के ऊपर छत्र सेविका द्वारा धारित है, त्रिछत्र नही प्रदर्शित है। ल० नवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जी ३१०) मे मूलनायक के पार्श्वों मे तीन सर्पफणो के छत्रो वाली पुरुष-स्त्री सेवक आकृतिया निरूपित हैं। सहेठ-महेठ की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे८५९, ११वी शतीई०) मे पार्श्व के शरीर के दोनो ओर सर्प की कुण्डलियां और परिकर मे चार जिन मूर्तिया बनी हैं। महोबा (हमीरपुर) की कायोत्सर्ग मूर्ति (जे ८४६, १२वी शती ई०) मे सामान्य चामरधरों के अतिरिक्त दाहिनी ओर एक और चामरधर की मूर्ति है, जो आकार मे पार्श्वनाथ की मूर्ति के समान है। यह धरणेन्द्र यक्ष की मूर्ति है जिसे पार्श्व के चामरधर के रूप मे निरूपित कर यहा विशेष प्रतिष्ठा दी गई है। ११९६ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (जी २२३) मे पीठिका पर सर्प लाछन उत्कीर्ण है। इसमे पार्श्व के स्कन्धो पर जटाए भी प्रदर्शित है।

देवगढ मे नवी से ग्यारहवी शती ई० के मध्य की ३० मूर्तिया है। २३ उदाहरणो मे पार्श्व कायोत्सर्ग मे खडे हैं। नवी-दसवी शती ई० की कई विशाल मूर्तियो मे पार्श्व साधारण पीठिका पर खडे हैं। ऐसी अधिकांश मूर्तिया मन्दिर १२ की चहारदीवारी पर हैं। इन मूर्तियो मे मूलनायक के दोनो ओर सर्पफणो की छत्रावली वाली या बिना सर्पफणो वाली स्त्री-पुरुष चामरधर मूर्तिया उत्कीर्ण है। कुछ उदाहरणो मे पुरुष की भुजा मे चामर और स्त्री की भुजा मे लम्बा छत्र प्रदर्शित है। इन विशाल मूर्तियो मे भामण्डल एव उड्डीयमान मालाधरो के अतिरिक्त अन्य कोई प्रातिहार्य या सहायक आकृति नही उत्कीर्ण है।

देवगढ की सभी मूर्तियो मे सर्प की कुण्डलिया पार्श्व के घुटनो या चरणो तक प्रसारित हैं। कुछ उदाहरणो मे पार्श्व सर्प की कुण्डलियो पर ही विराजमान भी है। पार्श्व के साथ लाछन केवल एक मूर्ति (मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी, ११वी शती ई०) मे उत्कीर्ण है। कायोत्सर्ग मे खडे पार्श्व की पीठिका पर लाछन के रूप मे कुक्कुट-सर्प बना है (चित्र ३१)। मन्दिर ६ की दसवी शती ई० की एक खड्गासन मूर्ति मे पार्श्व के दोनो ओर तीन सर्पफणो वाली दो नाग आकृतिया बनी हैं (चित्र ३२)। मन्दिर ६ और ९ की दो मूर्तियो मे पार्श्व के कन्धो पर जटाए भी प्रदर्शित है। दसवी-ग्यारहवी शती ई० की छह मूर्तियो मे सामान्य लक्षणो वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। तीन उदाहरणो मे इनके शीर्ष भाग मे सर्पफणो के छत्र भी प्रदर्शित है।[1] पारम्परिक यक्ष-यक्षी केवल एक ही मूर्ति (११वी शती ई०) मे निरूपित हैं। यह मूर्ति मन्दिर १२ के समीप अरक्षित अवस्था मे पडी है। चतुर्भुज यक्ष-यक्षी सर्पफणो के छत्रो से युक्त हैं। पार्श्व के कन्धो पर जटाए प्रदर्शित है।

मन्दिर १२ के सभामण्डप एव पश्चिमी चहारदीवारी की दसवी-ग्यारहवी शती ई० की दो खड्गासन मूर्तियो मे पार्श्व के साथ यक्षी रूप मे अम्बिका आमूर्तित है। इनमे यक्ष नही उत्कीर्ण है। मन्दिर १२ के प्रदक्षिणापथ की दसवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति मे मूलनायक के दाहिने और बायें पार्श्वों मे एक सर्पफण की छत्रावली से युक्त क्रमश चामरधर पुरुष एव छत्रधारिणी स्त्री आकृतिया उत्कीर्ण है। पाच अन्य मूर्तियो मे भी ऐसी ही आकृतिया बनी हैं।[2]

---

१ मन्दिर ९ की एक एवं मन्दिर १२ की दो मूर्तिया

२ मन्दिर ८ एव १२

जीवनदृश्य

पार्श्व के जीवनदृश्य कुम्भारिया के शान्तिनाथ एव महावीर मन्दिरो और आबू के लूणवसही के वितानो पर उत्कीर्ण है। ओसिया की पूर्वी देवकुलिका के वेदिकावध की दृश्यावली भी सम्भवत: पार्श्व से सम्बन्धित है (चित्र ३७)। लूणवसही (१२३० ई०) के अतिरिक्त अन्य सभी उदाहरण ग्यारहवी शती ई० के हैं। कल्पसूत्र के चित्रो मे भी पार्श्व के जीवनदृश्य अकित हैं। पार्श्व के जीवनदृश्यो मे पचकल्याणको और पूर्वजन्मो एवं उपसर्गों की कथाएं विस्तार से अकित हैं।

कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के छठें वितान (उत्तर से) पर पार्श्व के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। इनमे पार्श्व के पूर्वभवो के दृश्यो, विशेषकर मरुभूति (पार्श्व) और कमठ (मेघमाली) के जीवो के विभिन्न भवो के सघर्ष को विस्तार से दरशाया गया है। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र मे उल्लेख है कि जम्बूद्वीप स्थित भारत मे पोतनपुर नाम का एक राज्य था। यहा का शासक अरविन्द था, जिसने जीवन के अन्तिम वर्षो मे मुनिधर्म की दीक्षा ली थी। अरविन्द के राज्य मे विश्वभूति नाम का एक ब्राह्मण पुरोहित रहता था जिसके कमठ और मरुभूति नाम के दो पुत्र थे। ज्ञातव्य है कि मरुभूति का जीव दसवें जन्म मे तीर्थंकर पार्श्व और कमठ का जीव मेघमाली हुआ। मरुभूति का मन सासारिक वस्तुओ मे नही लगता था, जब कि कमठ उन्ही मे लिप्त रहता था। कमठ का मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा से अनैतिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था। जब मरुभूति ने राजा अरविन्द से इसकी शिकायत की तो राजा ने कमठ को दण्डित किया। इस घटना के बाद लज्जावश कमठ जगलो मे जाकर साधु हो गया। कुछ समय बाद जब मरुभूति कमठ के पास क्षमायाचना के लिए पहुचा तो कमठ ने क्षमा करने के स्थान पर सक्रोध उसके मस्तक पर एक विशाल पत्थर से प्रहार किया। इस साघातिक प्रहार से मरुभूति की मृत्यु हो गई। अपने इस दुष्कृत्य के कारण कमठ सदैव के लिए नरक का अधिकारी बन गया।[1]

महावीर मन्दिर की दृश्यावली दो आयतो मे विभक्त है। दक्षिण की ओर मध्य मे वार्तालाप की मुद्रा मे अरविन्द की मूर्ति उत्कीर्ण है। अरविन्द के समक्ष दो आकृतिया बैठी हैं। एक आकृति नमस्कार-मुद्रा मे है और दूसरी की एक भुजा ऊपर उठी है। ये निश्चित ही मरुभूति और कमठ की मूर्तिया हैं। आगे साधु के रूप मे कमठ की एक मूर्ति उत्कीर्ण है। श्मश्रुयुक्त कमठ की दोनो भुजाओ मे एक शिलाखण्ड है। कमठ के समक्ष नमस्कार-मुद्रा मे मरुभूति की आकृति उत्कीर्ण है, जिस पर कमठ शिलाखण्ड से प्रहार करने को उद्यत है। आगे मुखपट्टिका से युक्त दो जैन मुनि निरूपित हैं। मूर्तियो के नीचे 'अरविन्द मुनि' उत्कीर्ण है।

जैन परम्परा के अनुसार दूसरे जन्म मे मरुभूति का जीव गज और कमठ का जीव कुक्कुट-सर्प हुआ। गज के प्रबोधन का समय निकट जानकर मुनि अरविन्द अष्टापद पर्वत पर कायोत्सर्ग मे खडे हो गये। गज क्रोध मे ऋषि की ओर दौडा पर समीप पहुचने पर मुनि की तपस्या के प्रभाव से शान्त हो गया। मुनि के उपदेशो के प्रभाव से गज यति हो गया और उसने अपना समय व्रत और साधना मे व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। एक दिन जब कुक्कुट-सर्प ने गज को देखा तो उसे पूर्वजन्म के वैमनस्य का स्मरण हो आया और उसने गज को डस लिया। दश के बाद गज ने अन्न-जल त्याग दिया और तपस्या करते हुए अपने प्राण त्याग दिये।[2] दृश्य मे एक वृक्ष के समीप अरविन्द ऋषि और गज आकृति चित्रित हैं। नीचे 'मरुभूति जीव' लिखा है। समीप ही दूसरी गज आकृति भी उत्कीर्ण है जिसकी पीठ पर कुक्कुट-सर्प को दश करते हुए दिखाया गया है। अगले दृश्य मे एक वृक्ष के समीप दो आकृतिया खडी हैं और उनके मध्य मे एक आकृति बैठी है। मध्य की आकृति के मस्तक पर पार्श्ववर्ती आकृतिया किसी तेज धार की वस्तु से प्रहार कर रही हैं। यह कमठ के जीव की नरक यानना का दृश्य है। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि कमठ का जीव तीसरे भव मे नरकवासी हुआ था और वहा उसे तरह-तरह की यातनाए दी गई थी। मरुभूति तीसरे भव मे देवता हुए।

---

१ त्रि०श०पु०च०, ख० ५, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज १३९, बडौदा, १९६२, पृ० ३५६–५९

२ वही, पृ० ३५९–६३

चौथे भव मे मरुभूति का जीव किरणवेग के रूप मे उत्पन्न हुआ। तिलका के शासक विद्युत्गति उनके पिता और कनकतिलका उनकी माता थीं। किरणवेग ने निश्चित समय पर अपने पुत्र को सिंहासन पर बैठाकर स्वय दीक्षा ग्रहण की और हेमपर्वत पर कायोत्सर्ग मे तपस्यारत हो गये। चौथे भव मे कमठ का जीव विकराल सर्प हुआ। इस सर्प ने जब किरणवेग को तपस्यारत देखा तो उनके शरीर के चारो ओर लिपट गया और कई स्थानो पर दश कर उनके प्राण ले लिये।[1] वितान पर वार्तालाप की मुद्रा मे किरणवेग की मूर्ति उत्कीर्ण है। समीप ही दो अन्य आकृतिया बैठी है। नीचे 'किरणवेग राजा' लिखा है। आगे किरणवेग की कायोत्सर्ग मे तपस्या करती मूर्ति है जिसके शरीर मे एक सर्प लिपटा है। पाचवे भव मे मरुभूति का जीव जम्बूद्रुमावर्त मे देवता हुआ और कमठ का जीव धूमप्रभा के रूप मे नरक मे उत्पन्न हुआ। छठें भव मे मरुभूति शुभकर नगर के राजा के पुत्र (वज्रनाभ) हुए।[2] वज्रनाभ ने उपयुक्त समय पर अपने पुत्र को राज्य प्रदान कर दीक्षा ली। कमठ का जीव छठें भव मे भिल्ल कुरगक हुआ। मुनि वज्रनाभ की मृत्यु पूर्व जन्मो के वैरी कुरगक के तीर से हुई थी। वितान पर पूर्व की ओर वज्रनाभ की आकृति बैठी है। नीचे 'वज्रनाभ' लिखा है। वज्रनाभ के समीप नमस्कार-मुद्रा मे दो आकृतिया उत्कीर्ण है। आगे मुनि वज्रनाभ खडे है, जिनके समीप शरसधान की मुद्रा मे कुरगक की मूर्ति है। आगे वज्रनाभ का मृत शरीर दिखाया गया है।

सातवें भव मे मरुभूति ललिताग देव हुए और कमठ रौरव नरक मे उत्पन्न हुआ। आठवें भव मे मरुभूति पुराणपुर के राजा कुलिशवाहु के पुत्र (सुवर्णवाहु) हुए। निश्चित समय पर दीक्षा ग्रहण कर सुवर्णवाहु ने कठिन तपस्या की। कमठ का जीव इस भव मे क्षीर पर्वत पर सिंह हुआ। एक वार सुवर्णवाहु क्षीर पर्वत के समीप के क्षीर वन मे कायोत्सर्ग मे तपस्या कर रहे थे। सिंह (कमठ का जीव) ने उसी समय सुवर्णवाहु पर आक्रमण कर उन्हे मार डाला। नवें भव मे मरुभूति महाप्रभ स्वर्ग मे देवता हुए और कमठ नरक एव विभिन्न पशु योनियो मे उत्पन्न हुआ।[3] दसवे भव मे मरुभूति का जीव पार्श्व जिन और कमठ का जीव कठ साधु हुआ। वितान पर उत्तर की ओर श्मश्रुयुक्त दो आकृतिया बैठी हैं। समीप ही सुवर्णवाहु मुनि की कायोत्सर्ग मूर्ति उत्कीर्ण है। मुनि के समीप आक्रमण की मुद्रा मे एक सिंह बना है। आकृतियो के नीचे 'कनकप्रभ मुनि' एव 'सिंह' अभिलिखित हैं। नवें भव मे मरुभूति का देवता के रूप मे और कमठ के जीव को प्राप्त होने वाली नरक की यातनाओ के चित्रण हैं। दो आकृतिया कमठ के सिर पर परशु से प्रहार कर रही हैं।

पूर्वभवो के चित्रण के वाद वार्तालाप की मुद्रा मे पार्श्व के माता-पिता की मूर्तिया उत्कीर्ण है। नीचे 'अश्वसेन राजा' और 'वामादेवी' लिखा है। आगे सेविकाओ से वेष्टित वामादेवी एक शय्या पर लेटी हैं। समीप ही १४ मागलिक स्वप्नो और शिशु के साथ लेटी वामादेवी के अकन हैं। आगे पार्श्व के जन्माभिषेक का दृश्य है, जिसमे इन्द्र की गोद मे एक शिशु (पार्श्व) बैठा है।

पश्चिम की ओर एक गज पर तीन आकृतिया बैठी हैं। नीचे 'पार्श्वनाथ' उत्कीर्ण है। आगे कठ साधु के पचाग्नि तप का चित्रण है। कठ साधु के दोनो ओर दो वट उत्कीर्ण हैं। कठ के समक्ष गज पर आरूढ पार्श्व की एक मूर्ति है। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि जब कठ साधु पचाग्नि तप कर रहा था, उसी समय कुमार पार्श्व उस स्थल से गुजरे। पार्श्व को यह ज्ञात हो गया कि अग्निकुण्ड मे डाले गये लकडी के ढेर मे एक जीवित सर्प है। पार्श्व के आदेश पर एक सेवक ने लकडी के ढेर से सर्प को निकाला। पर काफी जल जाने के कारण सर्प की मृत्यु हो गई।[4] यही सर्प अगले जन्म मे नागराज धरण हुआ जिसने मेघमाली के उपसर्गो के समय पार्श्व की रक्षा की थी।

दृश्य मे एक आकृति को परशु से लकड़ी चीरते हुए दिखाया गया है। समीप ही लकडी से निकला सर्प प्रदर्शित है। स्मरणीय है कि यही कठ साधु अगले जन्म मे मेघमाली असुर हुआ। आगे पार्श्व कायोत्सर्ग मे खडे हैं और दाहिने

---

१ वही, पृ० ३६४–६६ २ वही, पृ० ३६५–६९ ३ वही, पृ० ३६९–७७ ४ वही, पृ० ३९१–९२

हाथ से केशो का लुंचन कर रहे हैं। उल्लेखनीय है कि अन्यत्र जिनो को ध्यानमुद्रा मे बैठकर केशो का लुंचन करते हुए दिखाया गया है। पार्श्व के समीप ही हार, मुकुट, अगूठी जैसे आभूषण चित्रित हैं, जिनका दीक्षा के पूर्व पार्श्व ने परित्याग किया था। समीप ही इन्द्र को एक पात्र मे पार्श्व के लुंचित केशो को सचित करते हुए दिखाया गया है। दक्षिण की ओर पार्श्व की तपस्या का चित्रण है। पार्श्व कायोत्सर्ग में खडे हैं। पार्श्व के शीर्ष भाग मे सर्पफणो का छत्र भी प्रदर्शित है। समीप ही नमस्कार-मुद्रा मे जटाजूट से शोभित एक आकृति उत्कीर्ण है, जो सम्भवत अपने कार्यों के लिए पार्श्व से क्षमा-याचना करती हुई मेघमाली की आकृति है। पार्श्व के बायी ओर एक सर्पफण के छत्र से युक्त धरणेन्द्र की आकृति है। धरणेन्द्र सर्प की कुण्डलियो पर दोनो हाथ जोडकर बैठे हैं। आकृति के नीचे 'धरणेन्द्र' लिखा है। धरणेन्द्र के समीप ही नमस्कार-मुद्रा मे एक दूसरी आकृति भी बैठी है, जिसे लेख मे 'ककाल' कहा गया है। आगे एक सर्पफण की छत्रावली वाली वैरोट्या (धरणेन्द्र की पत्नी) भी निरूपित है। समीप ही सप्त सर्पफणो के शिरस्त्राण से सुशोभित पार्श्व की एक ध्यानस्थ मूर्ति है। आगे पार्श्व का समवसरण बना है।

कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की पूर्वी भ्रमिका के वितान पर भी पार्श्व के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। शान्तिनाथ मन्दिर के जीवनदृश्य विवरण की दृष्टि से पूरी तरह महावीर मन्दिर के जीवनदृश्यो के समान हैं। अतः उनका वर्णन यहा अपेक्षित नहीं है।

ओसिया की पूर्वी देवकुलिका की दृश्यावली की सम्भावित पहचान दो कारणो से पार्श्व से की गई है। पहला यह कि ललाट-बिम्ब पर पार्श्वनाथ की मूर्ति उत्कीर्ण है।[1] अत. यह सम्भावना है कि देवकुलिका पार्श्वनाथ को समर्पित थी। दूसरा यह कि ललाट-बिम्ब की पार्श्व मूर्ति के नीचे दो उड्डीयमान आकृतियो द्वारा धारित एक मुकुट चित्रित है। वेदिकाबन्ध की दृश्यावली मे भी ठीक इसी प्रकार से एक मुकुट उत्कीर्ण है।

उत्तर की ओर १४ मागलिक स्वप्न और जिन की माता की शिशु के साथ लेटी हुई मूर्ति उत्कीर्ण हैं। आगे पार्श्व के जन्म-अभिषेक का दृश्य है जिसमे पार्श्व इन्द्र की गोद मे बैठे हैं। आगे खड्ग, खेटक, चाप, शर आदि शस्त्रास्त्र एव पार्श्व के राज्यारोहण और युद्ध के दृश्य हैं। युद्ध-दृश्य मे सम्भवत पार्श्व और यवनराज की सेनाए प्रदर्शित हैं। दृश्य मे दोना पक्षो की सेनाओ के युद्ध का चित्रण नहीं किया गया है। जैन परम्परा मे भी यही उल्लेख मिलता है कि युद्ध के पूर्व ही यवनराज ने आत्मसमर्पण कर दिया था। दक्षिण की ओर एक रथ पर दो आकृतिया बैठी हैं। आगे स्थानक-मुद्रा मे एक चतुर्भुज मूर्ति उत्कीर्ण है। किरीटमुकुट एव वनमाला से शोभित आकृति के दो सुरक्षित हाथो मे गदा एव चक्र हैं।[2] आगे जिन की दीक्षा और तपस्या के दृश्य हैं। कायोत्सर्ग में खडी जिन-मूर्ति के पास एक देवालय उत्कीर्ण है जिसमे ध्यानस्थ जिन-मूर्ति प्रतिष्ठित है।

लूणवसही की देवकुलिका १६ के वितान के दृश्य मे हस्तिकलिकुण्डतीर्थ या अहिच्छत्रा नगर की उत्पत्ति की कथा विस्तार मे चित्रित है।[3] विविधतीर्थकल्प मे उल्लेख है कि पार्श्व के उपर्युक्त स्थल की यात्रा के बाद वहा जैन तीर्थ की स्थापना हुई।[4] कल्पसूत्र के चित्रो में पार्श्व के पूर्वभव, च्यवन, जन्म, जन्म-अभिषेक, दीक्षा, कैवल्य-प्राप्ति एव समवसरण के चित्रांकन हैं।[5] पूर्वभवों के चित्रण मे कठ के पचाग्नितप के दृश्य भी हैं।

दक्षिण भारत—उत्तर भारत के समान ही दक्षिण भारत से भी विपुल सख्या मे पार्श्व की मूर्तिया मिली हैं। शीर्ष भाग में सात सर्पफणों के छत्र सभी उदाहरणों मे प्रदर्शित हैं। सर्प लाछन किसी उदाहरण मे नहीं है। इस

---

१ गर्भगृह की जिन प्रतिमा गायब है।

२ इस आकृति के उत्कीर्णन का सन्दर्भ स्पष्ट नहीं है। पर यदि यह आकृति कृष्ण की है तो सम्पूर्ण दृश्यावली नेमि से भी सम्बन्धित हो सकती है।

३ जयन्त विजय, मुनिश्री, पू०नि०, पृ० १२३–२५

४ विविधतीर्थकल्प, पृ० १४, २६

५ ब्राउन, डब्ल्यू० एन०, पू०नि०, पृ० ४१–४४

क्षेत्र की नीचे विवेचित सभी मूर्तियो मे पार्श्व निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग मे खडे हैं। केवल कर्नाटक से मिली और ब्रिटिश सग्रहालय, लन्दन मे सुरक्षित एक मूर्ति मे ही पार्श्व ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। मूलनायक के दोनो ओर सेवको के रूप में धरणेन्द्र एव पद्मावती का निरूपण विशेष लोकप्रिय था। एलोरा और वादामी की जैन गुफाओ मे पार्श्व की कई मूर्तिया हैं। वादामी की गुफा ४ के मुखमण्डप की पश्चिमी दीवार की मूर्ति (७वी शती ई०) मे पार्श्व के शीर्षभाग मे सम्भवत मेघमाली की मूर्ति उत्कीर्ण है।[1] दाहिनी ओर एक सर्पफण के छत्र से शोभित पद्मावती खडी है जिसके हाथ मे एक लम्बा छत्र है। वायी ओर धरणेन्द्र की आकृति है जिसका एक हाथ अभयमुद्रा मे है। मूर्ति मे एक भी प्रातिहार्य नही उत्कीर्ण है। समान विवरणो वाली सातवी शती ई० की एक अन्य मूर्ति ऐहोल (वीजापुर) की जैन गुफा के मुखमण्डप की पश्चिमी दीवार पर उत्कीर्ण है।[2] एलोरा की गुफा ३३ की मूर्ति (११वी शती ई०) मे वायी ओर मेघमाली के उपसर्ग भी चित्रित हैं।[3] दाहिने पार्श्व मे छत्रधारिणी पद्मावती है। कन्नड शोध सस्थान सग्रहालय की एक मूर्ति (५३) मे पार्श्व के दोनो ओर धरणेन्द्र एव पद्मावती की चतुर्भुज मूर्तिया हैं।[4] हैदरावाद सग्रहालय की एक मूर्ति (१२वी शती ई०) मे भी चतुर्भुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।[5] परिकर मे २२ छोटी जिन आकृतिया, चामरधर, त्रिछत्र और दुन्दुभिवादक भी उत्कीर्ण हैं। ब्रिटिश सग्रहालय, लन्दन की मूर्ति (१२वी शती ई०) मे सात सर्पफणो के छत्र से शोभित पार्श्व के समीप दो चामरधर सेवक और पीठिका-छोरो पर गजारूढ़ धरणेन्द्र यक्ष और सर्पवाहना पद्मावती यक्षी निरूपित हैं।[6]

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत मे ऋषभ के वाद जिनो मे पार्श्व ही सर्वाधिक लोकप्रिय थे। उडीसा की उदयगिरि-खण्डगिरि गुफाओ मे तो पार्श्व की ऋषभ से भी अधिक मूर्तिया हैं। ल० पहली शती ई० पू० मे मथुरा मे पार्श्व के मस्तक पर सात सर्पफणो के छत्र का प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ। यहा उल्लेखनीय है कि पार्श्व के सात सर्पफणो का निर्धारण ऋषभ की जटाओ से कुछ पूर्व ही हो गया था। ऋषभ के साथ जटाएं पहली शती ई० मे प्रदर्शित हुई। पार्श्व के साथ सर्प लाछन का चित्रण केवल कुछ ही उदाहरणो में हुआ है। दसवी से वारहवी शती ई० के मध्य की ये मूर्तिया उत्तर प्रदेश, वंगाल एव उडीसा के विभिन्न स्थलो से मिली हैं। पार्श्व के शीर्ष भाग में प्रदर्शित सर्प की कुण्डलिया सामान्यत पार्श्व के चरणो या घुटनो तक प्रसारित हैं। कभी-कभी पार्श्व सर्प की कुण्डलियो के ही आसन पर वैठे भी निरूपित हैं। शीर्ष भाग मे प्रदर्शित सर्पफणो के छत्र के कारण पार्श्व की मूर्तियो मे भामण्डल नही उत्कीर्ण हैं। जिन मूर्तियो मे पार्श्व की सेविका की भुजा मे लम्वा छत्र प्रदर्शित है, उनमें शीर्षभाग मे त्रिछत्र नही उत्कीर्ण हैं।

श्वेतावर मूर्तियो में मूलनायक के दोनो ओर सामान्य चामरधर आमूर्तित हैं। पर दिगवर स्थलो की मूर्तियो मे अधिकाशत' मूलनायक के दाहिने और वायें पार्श्वों मे सर्पफणो की छत्रावलियो वाली पुरुष-स्त्री सेवक आकृतिया निरूपित हैं। इनका अकन पांचवीं-छठी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ। पुरुष आकृति या तो नमस्कार-मुद्रा मे है, या फिर उसके एक हाथ मे चामर है। स्त्री की भुजा मे एक लम्वे दण्ड वाला छत्र है जिसका छत्र भाग पार्श्व के सर्पफणो के ऊपर प्रदर्शित है। ये धरणेन्द्र एव पद्मावती की उस समय की मूर्तिया हैं जव मेघमाली के उपसर्गों से पार्श्व की रक्षा करने के लिए वे देवलोक से आये थे। पार्श्व की मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी का चित्रण वहुत नियमित नही था। ल० सातवी शती ई० मे यक्ष-यक्षी का चित्रण प्रारम्भ हुआ। यक्ष-यक्षी सामान्यतः सर्वानुभूति एव अम्विका या फिर सामान्य लक्षणो वाले हैं।

---

१ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ए २१–५९

२ वही, ए २१–२४ : पार्श्व यहा पाच सर्पफणो के छत्र से युक्त हैं।

३ आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली, चित्र सग्रह ९९६.५५

४ अन्निगेरी, ए० एम०, पू०नि०, पृ० १९

५ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र सग्रह १६६ ६७

६ जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ५५७

पारम्परिक यक्ष-यक्षी केवल ओसिया, देवगढ, आबू (विमलवसही की देवकुलिका ४), खजुराहो एव बटेश्वर की ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की कुछ ही मूर्तियो मे निरूपित हैं ।

(२४) महावीर

जीवनवृत्त

महावीर इस अवसर्पिणी के अन्तिम जिन है । ज्ञातृवश के शासक सिद्धार्थ उनके पिता और त्रिशला उनकी माता थी । महावीर का जन्म पटना के समीप कुण्डाग्राम (या क्षत्रियकुण्ड) मे ल० ५९९ ई० पू० मे हुआ था ।[1] श्वेताबर ग्रन्थो मे महावीर के जन्म के सम्बन्ध मे एक कथा प्राप्त होती है, जिसके अनुसार महावीर का जीव पहले ब्राह्मण ऋषभदत्त की भार्या देवानन्दा की कुक्षि मे आया[2] और देवानन्दा ने गर्भधारण की रात्रि मे १४ शुभ स्वप्नो का दर्शन किया । पर जब इन्द्र को इसकी सूचना मिली तो उसने विचार किया कि कभी कोई जिन ब्राह्मण कुल मे नही उत्पन्न हुए, अतः महावीर का ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न होना अनुचित और परम्परा विरुद्ध होगा । इन्द्र ने अपने सेनापति हरिनैगमेषी को महावीर के भ्रूण को देवानन्दा के गर्भ से क्षत्रियाणी त्रिशला के गर्भ मे स्थानान्तरित करने का आदेश दिया । हरिनैगमेषी ने महावीर के भ्रूण को स्थानान्तरित कर दिया । गर्भ परिवर्तन की रात्रि मे त्रिशला ने भी १४ शुभ स्वप्नो को देखा । महावीर के गर्भ मे आने के बाद से राज्य के धन, धान्य, कोष आदि मे अभूतपूर्व वृद्धि हुई, इसी कारण बालक का नाम वर्धमान रखा गया । बाल्यावस्था के वीरोचित और अद्भुत कार्यों के कारण देवताओ ने बालक का नाम 'महावीर' रखा ।[3]

महावीर का विवाह वसतपुर के महासामन्त समरवीर की पुत्री यशोदा से हुआ । दिगबर ग्रन्थो मे महावीर के विवाह का अनुल्लेख है । २८ वर्ष की अवस्था मे महावीर ने अपने अग्रज नन्दिवर्धन से प्रव्रज्या ग्रहण करने की अनुमति मागी । तथापि स्वजनो के अनुरोध पर विरक्त भाव से दो वर्ष तक महल मे ही रुके रहे । इस अवधि मे महावीर ने महल मे ही रह कर जैन धर्म के नियमो का पालन किया और कायोत्सर्ग मे तपस्या भी करते रहे । महावीर के इस रूप मे उनकी जीवन्तस्वामी मूर्तिया भी उत्कीर्ण हुई हैं । इनमे महावीर वस्त्राभूषणो से सज्जित प्रदर्शित किये गये । ३० वर्ष की अवस्था मे महावीर ने आभरणो का त्याग कर पचमुष्टिक मे केशो का लुचन किया और प्रव्रज्या ग्रहण की । साढे बारह वर्षो की कठिन साधना के बाद महावीर को जृम्भक ग्राम मे ऋजुपालिका नदी के किनारे शाल वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ । कैवल्य प्राप्ति के बाद देवताओ ने महावीर के समवसरण की रचना की । अगले ३० वर्षों तक महावीर विभिन्न स्थलो पर भ्रमण कर धर्मोपदेश देते रहे । ल० ५२७ ई० पू० मे ७२ वर्ष की अवस्था मे राजगिर के निकट (?) पावापुरी मे महावीर को निर्वाण-पद प्राप्त हुआ ।[4]

प्रारम्भिक मूर्तिया

महावीर का लाछन सिंह है और यक्ष-यक्षी मातग एव सिद्धायिका (या पद्मा) हैं । महावीर की प्राचीनतम मूर्तिया कुषाण काल की हैं । ये मूर्तिया मथुरा से मिली हैं । ल० पहली से तीसरी शती ई० के मध्य की सात मूर्तिया राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे सगृहीत हैं (चित्र ३४) ।[5] सभी उदाहरणो मे महावीर की पहचान पीठिका-लेख मे उत्कीर्ण नाम के आधार पर की गई है । छह उदाहरणो मे लेखो मे 'वर्धमान' और एक मे (जे २) 'महावीर' उत्कीर्ण हैं । तीन उदाहरणो मे सम्प्रति केवल पीठिकाए ही सुरक्षित हैं ।[6] अन्य चार उदाहरणो मे महावीर ध्यानमुद्रा में सिंहासन पर विराजमान हैं ।[7] सिंहासन के मध्य मे उपासको एव श्रावक-श्राविकाओ से वेष्टित धर्मचक्र उत्कीर्ण हैं ।

---

१ महावीर की तिथि निर्धारण के प्रश्न पर विस्तार के लिए द्रष्टव्य, जैन, के०सी०, लार्ड महावीर ऐण्ड हिज टाइम्स, दिल्ली, १९७४, पृ० ७२–८८

२ कल्पसूत्र २०–२८, त्रि०श०पु०च० १० २ १–२८

३ त्रि०श०पु०च० १० २ ८८–१२४

४ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ३३३–५५४

५ क्रमाक जे० २, १४, १६, २२, ३१, ५३, ६६

६ राज्य सग्रहालय, लखनऊ, जे २, १४, २२

७ राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे १६, ३१, ५३, ६६

गुप्तकाल की महावीर की केवल एक मूर्ति ज्ञात है। ल० छठी शती ई० की यह मूर्ति वाराणसी से मिली है और भारत कला भवन, वाराणसी (१६१) मे सगृहीत है (चित्र ३५)।[1] महावीर एक ऊची पीठिका पर ध्यानमुद्रा मे विराजमान है और उनके आसन के समक्ष विश्वपद्म उत्कीर्ण है। महावीर चामरधर सेवको, उड्डीयमान आकृतियो एव कातिमण्डल से युक्त हैं। पीठिका के मध्य मे धर्मचक्र और उसके दोनो ओर महावीर के सिह लाछन उत्कीर्ण है। पीठिका के छोरो पर दो ध्यानस्थ जिन मूर्तिया बनी हैं। गुप्त युग मे महावीर की दो जीवन्तस्वामी मूर्तिया भी उत्कीर्ण हुई। ये मूर्तिया अकोटा से मिली हैं।[2] इन श्वेतावर मूर्तियो मे महावीर कायोत्सर्ग मे खडे है और मुकुट, हार आदि आभूषणो से अलकृत हैं (चित्र ३६)। ल० सातवी शती ई० की दो दिगबर मूर्तिया धाक (गुजरात) की गुफा मे उत्कीर्ण हैं।[3] इनमे महावीर कायोत्सर्ग मे खडे हैं और उनका सिह लाछन सिहासन पर बना है।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तिया

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र से तीन मूर्तिया मिली हैं। दो मूर्तियो मे लाछन भी उत्कीर्ण है। दो उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका है। एक उदाहरण मे यक्ष-यक्षी स्वतन्त्र लक्षणो वाले है।[4] १००४ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति कटरा (भरतपुर) से मिली है और सम्प्रति राजपूताना सग्रहालय, अजमेर (२७९) मे सुरक्षित है। सिह-लाछन-युक्त इस महावीर मूर्ति के सिहासन के छोरो पर स्वतन्त्र लक्षणो वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित है। चामरधरो के समीप कायोत्सर्ग-मुद्रा मे दो निर्वस्त्र जिन आकृतिया भी उत्कीर्ण है। ११८६ ई० की एक मूर्ति कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर की पश्चिमी भित्ति पर है। यहा महावीर ध्यानमुद्रा मे सिहासन पर विराजमान है। सिह लाछन के साथ ही लेख मे महावीर का नाम भी उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं। पार्श्ववर्ती चामरधरो के ऊपर दो छोटी जिन आकृतिया उत्कीर्ण हैं। एक मूर्ति सुपार्श्व की है। ११७९ई० की एक मूर्ति कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका २४ मे है। लेख मे महावीर का नाम उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी अनुपस्थित हैं।

इस क्षेत्र मे जीवन्तस्वामी महावीर की भी कई मूर्तिया उत्कीर्ण हुई। राजस्थान के सेवडी एव ओसिया (चित्र ३७) से दसवी-ग्यारहवी शती ई० की जीवन्तस्वामी मूर्तिया मिली है। बारहवी शती ई० की एक मूर्ति सरदार सग्रहालय, जोधपुर मे है। सभी उदाहरणो मे वस्त्राभूषणो से सज्जित जीवन्तस्वामी महावीर कायोत्सर्ग मे खडे हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की पाच महावीर मूर्तिया हैं। तीन उदाहरणो मे महावीर ध्यानमुद्रा मे विराजमान है। सिह लाछन सभी मे उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी केवल एक ही उदाहरण (जे ८०८) मे निरूपित है। दसवी शती ई० की इस कायोत्सर्ग मूर्ति मे द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणो वाले है। १०७७ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे ८८०) मे लाछन के साथ ही पीठिका-लेख मे भी 'वीरनाथ' उत्कीर्ण है। मूलनायक के पार्श्वों मे चामरधरो के स्थान पर दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तिया बनी हैं जिनके ऊपर पुन दो ध्यानस्थ जिन आमूर्तित हैं।

अशवखेरा (इटावा) की ११६६ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे ७८२) मे सिहासन नही उत्कीर्ण है। पीठिका के मध्य मे धर्मचक्र के स्थान पर एक द्विभुजी देवी हाथो मे अभयमुद्रा और कलश के साथ आमूर्तित है। मूर्ति के दाहिने छोर पर गदा और शृखला से युक्त द्विभुज क्षेत्रपाल की नग्न आकृति खडी है। समीप ही वाहन श्वान् भी उत्कीर्ण है। क्षेत्रपाल

---

१ तिवारी, एम०एन०पी०, 'ऐन अन्पब्लिश्ड जिन इमेज इन दि भारत कला भवन, वाराणसी', वि०इं०ज०, ख० १३, अ० १-२, पृ० ३६३-७५

२ शाह, यू०पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० २६-२८

३ सकलिया, एच०डी०, 'दि अर्लिएस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड', ज०रा०ए०सो०, जुलाई १९३८, पृ० ४२९

४ राजपूताना सग्रहालय, अजमेर २७९

की आकृति के ऊपर द्विभुज गोमुख यक्ष की मूर्ति है, जिसके ऊपर तीन सर्पफणो के छत्रवाली पद्मावती यक्षी आमूर्तित हैं। मूर्ति के बायें छोर पर गरुडवाहना चक्रेश्वरी एव अम्बिका की मूर्तिया है। पारम्परिक यक्ष-यक्षी के स्थान पर गोमुख यक्ष एव चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती यक्षियो और क्षेत्रपाल के चित्रण इस मूर्ति की दुर्लभ विशेषताए है। ल० दसवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा (१२ २५९) मे है।

देवगढ मे दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की नौ मूर्तिया हैं। पाच उदाहरणों मे महावीर ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। सिंह लाछन सभी मे उत्कीर्ण हैं पर यक्ष-यक्षी केवल आठ ही उदाहरणो मे निरूपित है।[1] छह उदाहरणों मे यक्ष-यक्षी द्विभुज और सामान्य लक्षणो वाले हैं। मन्दिर १ की दसवी शती ई० की ध्यानस्थ मूर्ति मे यक्ष द्विभुज है और यक्षी चतुर्भुजा है। मन्दिर ११ की १०४८ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति मे यक्ष चतुर्भुज और यक्षी द्विभुजा हैं। तीन सर्पफणो की छत्रावली से युक्त यक्षी के हाथो मे फल एव बालक है। इस मूर्ति मे अम्बिका एव पद्मावती यक्षियो की विशेषताए सयुक्त रूप से प्रदर्शित हैं। परिकर मे १४ जिन मूर्तिया और मूलनायक के कन्धो पर जटाए प्रदर्शित हैं। मन्दिर ३ और मन्दिर २० की दो अन्य मूर्तियो मे भी जटाए प्रदर्शित है। मन्दिर १ की मूर्ति के परिकर मे १०, मन्दिर ४ की मूर्ति मे ४, मन्दिर ३ की मूर्ति मे ८, मन्दिर २ की मूर्ति मे २, मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की मूर्ति मे १५ और मन्दिर २० की मूर्ति मे २ छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। मन्दिर १२ के समीप भी यक्ष-यक्षी से युक्त महावीर की एक ध्यानस्थ मूर्ति (११ वी शती ई०) है (चित्र ३८)। ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर के गर्भगृह की दक्षिणी भित्ति पर दसवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति है। सिंहासन के मध्य मे लाछन और छोरो पर द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।

खजुराहो मे दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की नौ महावीर मूर्तिया हैं। आठ उदाहरणो मे महावीर ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। लाछन सभी मे उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी केवल छह उदाहरणो मे निरूपित हैं।[2] महावीर के यक्ष-यक्षी के निरूपण मे सर्वानुभूति एव अम्बिका का प्रभाव परिलक्षित होता है। यक्ष और यक्षी दोनो के साथ वाहन सिंह है, जो महावीर के सिंह लाछन से प्रभावित है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की दक्षिणी भित्ति की मूर्ति मे द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणो वाले हैं। चामरधरो के समीप दो जिन आकृतिया उत्कीर्ण हैं। मन्दिर २ की १०९२ ई० की एक मूर्ति मे सिंहासन के मध्य मे चतुर्भुज सरस्वती (या शान्तिदेवी)[3] एव छोरो पर चतुर्भुज यक्ष-यक्षी निरूपित है। मन्दिर २१ की मूर्ति (के २८।१, ११ वी शती ई०) मे यक्षी चतुर्भुजा है। स्थानीय सग्रहालय (के १७) की ग्यारहवी शती ई० की मूर्ति मे सिंहासन के छोरो पर चतुर्भुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। पुरातात्विक सग्रहालय, खजुराहो (१७३१) की एक मूर्ति (१२ वी शतीई०) मे द्विभुज यक्ष-यक्षी के ऊपर दो खडी स्त्रिया बनी हैं जिनकी एक भुजा मे सनालपद्म है। स्थानीय सग्रहालय की दो मूर्तियो (के १७ एव ३८) के परिकर मे क्रमश १४ और २, मन्दिर २ की मूर्ति में २, मन्दिर २१ की मूर्ति (के २८।१) मे ४, पुरातात्विक सग्रहालय, खजुराहो की मूर्ति (१७३१) मे ८, शान्तिनाथ मन्दिर की मूर्ति मे २ और मन्दिर ३१ की मूर्ति मे १ छोटी जिन आकृतिया उत्कीर्ण हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस क्षेत्र मे सिंह लाछन के साथ ही यक्ष-यक्षी का भी निरूपण लोकप्रिय था। यक्ष-यक्षी का अकन दसवी शती ई० में प्रारम्भ हुआ। अधिकाश उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणो वाले हैं।

बिहार-उडीसा-बगाल—ल० आठवी शती ई० की दो ध्यानस्थ मूर्तिया सोनभण्डार की पूर्वी गुफा मे उत्कीर्ण हैं।[4] इन मूर्तियो मे धर्मचक्र के दोनो ओर सिंह लाछन और पीठिका के छोरो पर दो ध्यानस्थ जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।

---

१ मन्दिर २१ की मूर्ति मे यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण है।

२ मन्दिर १ की दो और मन्दिर ३१ की एक मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण हैं।

३ देवी की भुजाओ मे वरदमुद्रा, पद्म, पुस्तक एव कमण्डलु प्रदर्शित हैं।

४ कुरैशी, मुहम्मद हमीद, राजगिर, दिल्ली, १९७०, फलक ७ ख

विष्णुपुर (वाकुडा) के धरपत मन्दिर से ल० दसवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति मिली है।[1] मूर्ति के परिकर मे २४ छोटी जिन मूर्तिया वनी हैं। दसवी-ग्यारहवी शती ई० की पाच महावीर मूर्तिया अलुआरा से मिली है और पटना सग्रहालय मे सुरक्षित (१०६७०-७३, १०६७७) हैं।[2] सभी उदाहरणो मे महावीर निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग मे खडे हैं। एक उदाहरण मे नवग्रहो की भी मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।

चरपा (उडीसा) से मिली ल० दसवी-ग्यारहवी शती ई० की एक निर्वस्त्र मूर्ति उडीसा राज्य सग्रहालय, भुवनेश्वर मे है।[3] महावीर कायोत्सर्ग मे खडे हैं और उनका लाछन पीठिका पर उत्कीर्ण है। एक ध्यानस्थ मूर्ति वारभुजी गुफा मे है (चित्र ५९)।[4] मूर्ति के नीचे विंशतिभुज यक्षी निरूपित है। एक कायोत्सर्ग मूर्ति त्रिशूल गुफा मे है।[5] वारहवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति वैभारगिरि के जैन मन्दिर मे है।[6] इस प्रकार इस क्षेत्र मे सिंह लाछन का चित्रण नियमित था पर यक्ष-यक्षी का अकन दुर्लभ था।

जीवनदृश्य

मथुरा के ककाली टीले से प्राप्त फलक और कुम्भारिया के महावीर एव शान्तिनाथ मन्दिरो के वितानो पर महावीर के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। मथुरा से प्राप्त फलक पहली शती ई० का है। कुम्भारिया के मन्दिरो के दृश्य ग्यारहवी शती ई० के हैं। कल्पसूत्र के चित्रो मे भी महावीर के जीवनदृश्य हैं। महावीर के जीवनदृश्यो मे पूर्वजन्मो, पच-कल्याणको, विवाह, चन्दनवाला को कथा एव महावीर के उपसर्गो के विस्तृत अकन हैं।

मथुरा से प्राप्त फलक राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे ६२६) मे सुरक्षित है (चित्र ३९)। फलक पर महावीर के गर्भापहरण का दृश्य अकित है।[7] फलक पर इन्द्र के प्रधान सेनापति हरिनैगमेषी (अजमुख) को ललितमुद्रा मे एक ऊचे आसन पर वैठे दिखाया गया है। आकृति के नीचे 'नेमेसो' उत्कीर्ण है। नैगमेषी सम्भवत महावीर के गर्भ परिवर्तन का कार्य पूरा कर इन्द्र की सभा मे वैठे हैं। नैगमेषी के समीप एक निर्वस्त्र वालक आकृति खडी है। वालक की पहचान महावीर से की गई है। वालक के समीप ही दो स्त्रिया खडी हैं। फलक के दूसरे ओर एक स्त्री की गोद मे एक वालक वैठा है। ये सम्भवत त्रिशला और महावीर की आकृतिया हैं।

कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के वितान (उत्तर से दूसरा) पर महावीर के जीवनदृश्य हैं (चित्र ४०)। सम्पूर्ण दृश्यावली तीन आयतो मे विभक्त है। प्रारम्भ मे महावीर के पूर्वभवो के अकन है। जैन परम्परा के अनुसार महावीर के जीव ने नयसार के भव मे सत्कर्म का वीज डालकर क्रमश· उसका सिंचन किया और २७ वें भव मे तीर्थंकर-पद प्राप्त किया। राजा के आदेश पर नयसार एक वार वन मे लकडिया काटने गया। वन मे नयसार की भेंट कुछ भूखे मुनियो से हुई, जिन्हे उसने भक्तिपूर्वक भोजन कराया। मुनियो ने नयसार को आत्मकल्याण का मार्ग वतलाया। १८ वें भव मे नयसार का जीव त्रिपृष्ठ वासुदेव हुआ। त्रिपृष्ठ ने शालिक्षेत्र के एक उपद्रवी सिंह को विना रथ और शस्त्र के मार डाला था। एक दिन त्रिपृष्ठ के राजमहल मे कुछ संगीतज्ञ आये। सोने के पूर्व त्रिपृष्ठ ने अपने शय्यापालको को यह आदेश दिया कि जब मुझे निद्रा आ जाय तो सगीत का कार्यक्रम वन्द करा दिया जाय, किन्तु शय्यापालक सगीत मे इतने रम गये कि वे त्रिपृष्ठ के आदेश का पालन करना भूल गये। निद्रा समाप्त होने पर जब त्रिपृष्ठ ने देखा कि सगीत का कार्यक्रम पूर्ववत् चल रहा है तो वह अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने आज्ञाभग करने के अपराध मे शय्यापालक के कानो

---

१ चौधरी, रवीन्द्रनाथ, 'धरपत टेम्पल्', माडर्न रिव्यू, ख० ८८, अ० ४, पृ० २९७

२ प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २८८

३ दश, एम० पी, पू०नि०, पृ० ५२

४ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३३

५ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्रॉविन्स ऑव विहार ऐण्ड उडीसा, पृ० २८२

६ चन्दा, आर० पी०, पू०नि०, फलक ५७ वी

७ एपि०इण्डि०, ख० २, पृ० ३१४, फलक २

मे गरम शीशा डलवाकर उसे दण्डित किया। अपने इसी अमानवीय कृत्य के कारण १९ वें भव मे त्रिपृष्ठ नरक मे उत्पन्न हुआ। वाईसवें भव मे नयसार का जीव प्रियमित्र चक्रवर्ती हुआ। २६ वे भव मे नयसार का जीव ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ मे उत्पन्न हुआ। देवानन्दा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ मे स्थानान्तरण को नयसार का २७ वा भव माना गया।[1]

दूसरे आयत मे उत्तर की ओर नयसार और तीन जैन मुनियो की आकृतिया खडी हैं। मुनियो के एक हाथ मे मुखपट्टिका है और दूसरे से अभयमुद्रा प्रदर्शित है। समीप ही मुनि द्वारा नयसार को उपदेश दिये जाने का दृश्य है। आगे नयसार के जीव को दूसरे भव मे स्वर्ग मे और तीसरे भव मे मारीचि के रूप मे दिखाया गया है। समीप ही विश्वभूति की मूर्ति (१६ वा भव) है। विश्वभूति एक वृक्ष पर प्रहार कर रहे है। नीचे 'विश्वभूति केवली' उत्कीर्ण है। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि किसी बात पर अप्रसन्न होकर विश्वभूति ने सेव के एक वृक्ष पर मुष्टिका से प्रहार किया था जिसके फलस्वरूप वृक्ष के सभी सेव नीचे गिर पडे थे। दक्षिण की ओर त्रिपृष्ठ को एक सिंह से युद्धरत दिखाया गया है। नीचे 'त्रिपृष्ठ वासुदेव' उत्कीर्ण है। आगे त्रिपृष्ठ के जीव को नरक मे विभिन्न प्रकार की यातनाए सहते हुए दिखाया गया है। नीचे 'त्रिपृष्ठ नरकवास' उत्कीर्ण है। समीप ही एक सिंह (२० वा भव) एव नरक की यातना (२१ वा भव) के दृश्य हैं। नीचे 'अग्नि नरकवास' उत्कीर्ण है। आगे एक श्मश्रुयुक्त आकृति बनी है, जिसके समीप सर्प, मृग एव शूकर आदि पशु चित्रित हैं। मध्य के आयत मे (उत्तर की ओर) प्रियमित्र चक्रवर्ती (२२ वा भव), नन्दन (२४ वा भव) एव देवता (२५ वा भव) की मूर्तिया हैं।

बाहरी आयत मे (पश्चिम की ओर) महावीर के जन्म का दृश्य उत्कीर्ण है। दाहिने छोर पर त्रिशला एक शय्या पर लेटी हैं। समीप ही वार्तालाप की मुद्रा मे सिद्धार्थ एव त्रिशला की आकृतिया हैं। दक्षिण की ओर त्रिशला की शय्या पर लेटी एक अन्य आकृति एव १४ मागलिक स्वप्न हैं। आगे दो सेविकाओ से सेवित त्रिशला नवजात शिशु के साथ लेटी हैं। त्रिशला के समीप नमस्कार-मुद्रा मे नैगमेषी की मूर्ति खडी है। आगे वार्तालाप की मुद्रा मे सिद्धार्थ एव त्रिशला की आकृतिया हैं। समीप ही सात अन्य आकृतिया उत्कीर्ण हैं जो सम्भवत. सिद्धार्थ की अधीनता स्वीकार करनेवाले शासको की मूर्तिया है। पूर्व की ओर (मध्य मे) नैगमेषी द्वारा शिशु (महावीर) को अभिषेक के लिए मेरु पर्वत पर इन्द्र के पास ले जाने का दृश्य अकित है। उत्तर की ओर महावीर के जन्माभिषेक का दृश्य है। आगे महावीर के विवाह का दृश्य है। विवाह-वेदिका के दोनो ओर महावीर और यशोदा की स्थानक मूर्तिया हैं। विवाह-वेदिका पर स्वय ब्रह्मा उपस्थित हैं। समीप ही महावीर एक साधु को कुछ भिक्षा दे रहे हैं। पश्चिम की ओर महावीर और तीन मुनियो की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।

दूसरे आयत मे (पश्चिम की ओर) महावीर की दीक्षा का दृश्य है। महावीर अपने बायें हाथ से केशो का लुचन कर रहे हैं। समीप ही खड्ग, मुकुट, हार, कर्णफूल आदि चित्रित हैं जिनका महावीर ने परित्याग किया था। अगले दृश्य मे महावीर मुखपट्टिका से युक्त एक वृद्ध को दान दे रहे हैं। नीचे 'महावीर' और 'देवदूष्य ब्राह्मण' लिखा है। जैन परम्परा में उल्लेख है कि दीक्षा के बाद मार्ग मे महावीर को एक वृद्ध ब्राह्मण मिला जो महावीर से कुछ दान प्राप्त करना चाहता था। दीक्षा के पूर्व महावीर द्वारा मुक्त हस्त से दिये गये दान के समय यह ब्राह्मण उपस्थित नही हो सका था। महावीर ने वृद्ध ब्राह्मण को निराश नही किया और कन्धे पर रखे वस्त्र का आधा भाग फाडकर दे दिया।[2]

आगे विभिन्न स्थानो पर महावीर की तपस्या और तपस्या मे उपस्थित किये गये उपसर्गों के चित्रण हैं। दृश्य मे महावीर शूलपाणि यक्ष के आयतन मे बैठे हैं। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि महावीर सन्ध्या समय अस्थिग्राम पहुचे और नगर के बाहर शूलपाणि यक्ष के आयतन मे ही रुक गये। लोगो ने महावीर को वहा न रुकने की सलाह दी पर महावीर ने परीषह सहने और यक्ष को प्रतिबोधित करने का निश्चय कर लिया था। रात्रि मे यक्ष ने प्रकट होकर ध्यानस्थ

---

१ त्रि०श०पु०च० १०.१.१–२८४, हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ३३६–३९

२ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ३६२

महावीर के समक्ष भयकर अट्टहास किया। किन्तु महावीर तनिक भी विचलित नही हुए। तब यक्ष ने हाथी का रूप धारण कर महावीर को दातो और पैरो से पीडा पहुचाई। पर महावीर फिर भी अविचलित रहे। तब उसने पिशाच का रूप धारण कर तीक्ष्ण नखो एव दातो से महावीर के शरीर को नोचा, सर्प बनकर उनका दश किया और उनके शरीर से लिपट गया। इतना कुछ होने पर भी महावीर का ध्यान नही टूटा। शूलपाणि ने महावीर के शरीर मे सात स्थानो (नेत्रो, कानो, नासिका, सिर, दातो, नखो एव पीठ) पर भयकर पीडा पहुचाई। पर महावीर शान्तभाव से सब सहते रहे। अन्त मे यक्ष ने अपनी पराजय स्वीकार की और महावीर के चरणो पर गिर पडा। बाद मे उसने वह स्थान भी छोड दिया।[1]

तप साधना के दूसरे वर्ष मे महावीर को चण्डकौशिक नाम का दृष्टि-विष वाला भयकर सर्प मिला जिसने ध्यानस्थ महावीर के पैर और शरीर पर जहरीला दृष्टाघात किया। पर महावीर उससे प्रभावित नही हुए।[2] साधना के पाचवें वर्ष मे महावीर लाढ देश मे आये, जो अनार्य क्षेत्र था। यहा के लोगो ने महावीर की तपस्या मे भयकर उपसर्ग उपस्थित किये। श्वान् दूर से ही महावीर को काटने दौडते थे। अनार्य लोगो ने महावीर पर दण्ड, मुष्टि, पत्थर एव शूल आदि से प्रहार किये।[3] साधना के ११वें वर्ष मे इन्द्र ने महावीर की कठिन साधना की प्रशसा की। पर इन्द्र की बातो पर अविश्वास करते हुए सगम देव ने महावीर की स्वय परीक्षा लेने का निश्चय किया। सगम देव ने ध्यान निमग्न महावीर को विभिन्न उपसर्गो द्वारा विचलित करने का प्रयास किया।[4] उसने एक ही रात मे २० उपसर्ग उपस्थित किये। उसने प्रलयकारी धूल की वर्षा, वृश्चिक, नकुल, सर्प, चीटियो, मूषक, गज, पिशाच, सिह और चाण्डाल आदि के उपसर्गों द्वारा महावीर को तरह-तरह की वेदना पहुचाई। सगमदेव ने महावीर पर कालचक्र भी चलाया, जिसके प्रभाव से महावीर के शरीर का आधा निचला भाग भूमि मे धस गया। उसने एक अप्सरा को महावीर के समक्ष प्रस्तुत किया और स्वय सिद्धार्थ एव त्रिशला का रूप धारण कर करुण विलाप भी किया। पर महावीर इन उपसर्गो से तनिक भी विचलित नही हुए। अन्त मे सगम देव ने अपनी पराजय स्वीकार करते हुए महावीर से क्षमा मागी।[5]

दक्षिण की ओर शूलपाणि यक्ष की मूर्ति है, जिसकी दोनो भुजाए ऊपर उठी हैं। शूलपाणि के वक्ष.स्थल की सभी हड्डिया दीख रही हैं। समीप ही वृश्चिक, सर्प, कपि, नकुल, गज और सिंह की आकृतिया उत्कीर्ण हैं। आगे महावीर की कायोत्सर्ग मूर्ति है। नीचे 'महावीर उपसर्ग' लिखा है। यह शूलपाणि यक्ष के उपसर्गों का चित्रण है। महावीर-मूर्ति के नीचे भी वृषभ, गज और सिह की मूर्तिया हैं। साथ ही बाण और चक्र जैसे शस्त्र भी अकित हैं। नीचे 'महावीर उपसर्ग' उत्कीर्ण है। महावीर के दाहिने पार्श्व मे एक सर्प को दश करते हुए दिखाया गया है। ऊपर आक्रमण की मुद्रा मे एक आकृति चित्रित है। समीप ही सर्प और खड्ग से युक्त एक आकृति को कायोत्सर्ग मे खडे महावीर पर प्रहार की मुद्रा मे दिखाया गया है। आगे महावीर की एक दूसरी कायोत्सर्ग मूर्ति उत्कीर्ण है। एक वृषभ महावीर पर आक्रमण की मुद्रा मे दिखाया गया है। ये सभी सगमदेव के उपसर्ग हैं।

उपसर्गों के बाद महावीर के चन्दनबाला से भिक्षाग्रहण करने का दृश्य है। ज्ञातव्य है कि चन्दनबाला महावीर की प्रथम शिष्या एव श्रमणी-सघ की प्रवर्तिनी थी। चन्दनबाला चम्पा नगरी के शासक दधिवाहन की पुत्री थी और उसका प्रारम्भिक नाम वसुमति था। एक बार कौशाम्बी के राजा ने दधिवाहन पर आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया और उसकी पुत्री वसुमती को कौशाम्बी ले आया, जहा उसने वसुमती को धनावह श्रेष्ठी के हाथो बेच दिया। धनावह और उसकी पत्नी मूला वसुमती को अपनी पुत्री के समान मानते थे। दोनों ने वसुमती का नया नाम चन्दना रखा। चन्दना का सौन्दर्य अनुपम था। उसकी अपार रूपराशि को देखकर मूला के हृदय का स्त्री दौर्बल्य जाग उठा और उसने यह सोचना

---

१ त्रि०श०पु०च० १० ३ १११–४६
२ त्रि०श०पु०च० १० ३ २२५–८०
३ त्रि०श०पु०च० १० ३ ५५४–६६
४ त्रि०श०पु०च० १०.४ १८४–२८१
५ चतुर्विंशति जिनचरित्र, जिनचरित्र परिशिष्ट, २२२–३७

प्रारम्भ कर दिया कि कही धनावह चन्दना से विवाह न कर ले । मूला अब चन्दना को हटाने का उपाय सोचने लगी । एक दिन अपराह्न मे धनावह जब बाजार मे घर लौटा तो सेवको के उपस्थित न होने कारण चन्दना ही धनावह का पैर धोने लगी । नीचे झुकने के कारण चन्दना का जूडा खुल गया और उसकी केशराशि बिखर गई । चन्दना के केश कही कीचड मे न सन जायें, इस दृष्टि से सहज वात्सल्य से प्रेरित होकर धनावह ने चन्दना की केशराशि को अपनी यष्टि से ऊपर उठा कर जूडा बाध दिया । सयोगवश मूला यह सब देख रही थी । उसने अपने सन्देह को वास्तविकता का रूप दे डाला और चन्दना का सर्वनाश करने पर तुल गई । एक बार जब धनावह कार्यवश किसी दूसरे गांव चला गया था, तब मूला ने चन्दना के बालो को मुडवा कर उसे शारीरिक यातनाए दी और उसे एक कमरे में बन्द कर दिया । तीन दिनो तक चन्दना भूखी-प्यासी उसी कमरे मे बन्द रही । वापिस लौटने पर जब धनावह को यह ज्ञात हुआ तो वह रो पडा । रसोईघर मे जाने पर उसे सूप मे कुछ उडद के बाकलो के अतिरिक्त कुछ नही मिला । उसने चन्दना से उन्ही को ग्रहण करने को कहा । उसी समय एक मुनि आया जिसे चन्दना ने उन उडद के बाकलो की भिक्षा दी । मुनि और कोई नही बल्कि स्वय महावीर थे । उसी क्षण आकाश मे महादान-महादान की देववाणी हुई । चन्दना के मुण्डित मस्तक पर लम्बी केशराशि उत्पन्न हो गई और इन्द्र ने महावीर की वन्दना के बाद चन्दना का भी अभिवादन किया । जब महावीर को केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ तो चन्दनबाला ने महावीर से दीक्षा ग्रहण की और श्रमणी सघ का सचालन करते हुए निर्वाण प्राप्त किया ।[1]

दक्षिण की ओर चन्दनबाला को धनावह का पैर धोते हुए दिखाया गया है । नीचे 'चन्दनबाला' अभिलिखित है । धनावह एक यष्टि की सहायता से चन्दना की बिखरी केशराशि को उठा रहा है । अगले दृश्य मे चन्दनबाला एक कमरे मे बन्द है और उसके समीप मुनि की एक आकृति खडी है । मुनि स्वय महावीर है । मुनि के एक हाथ मे मुखपट्टिका है और दूसरा व्याख्यान-मुद्रा मे है । चन्दनबाला मुनि को भिक्षा देने की मुद्रा मे निरूपित है । दोनो आकृतियो के नीचे क्रमश 'चन्दनबाला' और 'महावीर' अभिलिखित हैं । आगे नमस्कार-मुद्रा मे इन्द्र की एक मूर्ति है । पूर्व की ओर महावीर की एक मूर्ति है । महावीर दो वृक्षो के मध्य ध्यानमुद्रा मे विराजमान है । नीचे 'समवसरण श्रीमहावीर' अभिलिखित हैं । आगे महावीर की एक कायोत्सर्ग मूर्ति भी उत्कीर्ण है ।

कुम्मारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के वितान के दृश्य कुछ नवीनताओ के अतिरिक्त महावीर मन्दिर के दृश्याकन के समान हैं (चित्र ४१) । सम्पूर्ण दृश्याकन चार आयतो मे विभक्त हैं । बाहर से प्रथम आयत मे पूर्व, पश्चिम और दक्षिण की ओर महावीर के पूर्वभवो के विस्तृत अकन है । पूर्व मे भरत चक्रवर्ती और उनके पुत्र मारीचि (तीसराभव) की आकृतिया हैं । मारीचि की साधु के रूप मे भी एक आकृति है । दक्षिण की ओर विश्वभूति (१६वा भव) के जीवन की एक घटना चित्रित है । जैन परम्परा मे उल्लेख है कि जैन श्रावक के रूप मे विचरण करते हुए विश्वभूति किसी समय मथुरा पहुचे और वहा एक गाय के धक्के से गिर पडे । इस पर उनके भाई विशाखनन्दिन ने विश्वभूति की शक्ति का परिहास किया । इस बात से विश्वभूति क्रोधित हुए और उन्होंने उस गाय को केवल शृग से पकडकर नियत्रण मे कर लिया ।[2] दृश्य म विश्वभूति एक गाय का शृग पकडे हुए हैं । नीचे 'विश्वभूति' उत्कीर्ण है । समीप ही एक अन्य गाय और पुरुष आकृतिया बनी है । आगे नयसार के जीव को देवता के रूप मे प्रदर्शित किया गया है । देवता के समक्ष हल और मुसल से युक्त एक आकृति खडी है ।

पश्चिम की ओर त्रिपृष्ठ की कथा चित्रित है । एक कायोत्सर्ग आकृति के समीप सिंह और त्रिपृष्ठ की आकृतियां उत्कीर्ण हैं । यह सिंह और त्रिपृष्ठ के युद्ध का चित्रण है । आगे त्रिपृष्ठ और शय्यापालक की मूर्तिया हैं । शय्यापालक नमस्कार-मुद्रा मे खडा है और त्रिपृष्ठ उसके मस्तक पर प्रहार कर रहे है । यह शय्यापालक को दण्डित करने का दृश्य है । समीप ही एक नर्तकी और वाद्यवादन करती दो आकृतिया भी निरूपित हैं । आगे प्रियमित्र चक्रवर्ती (२२वा भव) की आकृति है ।

---

१ त्रि०श०पु०च० १० ४.५१६–६००   २ त्रि०श०पु०च० १० १.८६–१०७

उत्तर की ओर सिद्धार्थ और त्रिशला की वार्तालाप करती, त्रिशला की शय्या पर अकेली और शिशु के साथ लेटी, महावीर के जन्म-अभिषेक एवं वाल्यकाल की घटनाओ से सम्बन्धित मूर्तियां हैं। वाल्यकाल की घटनाओ के चित्रण मे सबसे पहले महावीर को एक पुरुष आकृति को पीठ पर बैठे हुए दिखाया गया है। महावीर की एक भुजा मे सम्भवत· चावुक है। आकृति के नीचे 'वीर' उत्कीर्ण है। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि एक वार इन्द्र देवताओ से कुमार महावीर की निर्भयता की प्रशसा कर रहे थे। इस पर एक देवता ने महावीर की शक्ति-परीक्षा लेने का निश्चय किया। देवता महावीर के क्रीडा-स्थल पर आया। उस समय महावीर सकुली और तिन्दुसक खेल खेल रहे थे। सकुली खेल मे किसी वृक्ष विशेष को लक्षित कर वालक उस ओर दौडते हैं और जो वालक सवसे पहले उस वृक्ष पर चढ़कर नीचे उतर आता है वह विजयी माना जाता है, और विजेता पराजित वालक के कन्धो पर चढकर उस स्थान तक जाता है, जहा से दौड प्रारम्भ हुई होती है। देवता विषधर सर्प का स्वरूप धारण कर वृक्ष के तने पर लिपट गया। सभी वालक सर्प से डर गये पर महावीर ने नि शक भाव मे उस सर्प को पकडकर रज्जु की तरह एक ओर फेंक दिया। देवता ने वालक का रूप धारण कर दौड के खेल मे भी भाग लिया, पर महावीर से पराजित हुआ। महावीर नियमानुसार उस देवता पर आरूढ होकर वृक्ष से खेल के मूल स्थान तक आये।[1] दृश्य मे एक वालक की पीठ पर महावीर वैठे हैं। समीप ही एक वृक्ष उत्कीर्ण है जिसके पास महावीर खडे हैं और एक सर्प को फेंक रहे हैं। नीचे 'वीर' उत्कीर्ण है।

आगे वार्तालाप की मुद्रा मे कुमार महावीर और सिद्धार्थ की मूर्तिया हैं। समीप ही महावीर की दीक्षा का दृश्य उत्कीर्ण है। दीक्षा के पूर्व महावीर को दान देते हुए और एक शिविका मे वैठकर दीक्षा-स्थल की ओर जाते हुए दिखाया गया है। तीसरे आयत मे (पूर्व की ओर) महावीर को ध्यानमुद्रा मे वैठे और दाहिनी भुजा से केशो का लुचन करते हुए दिखाया गया है। दाहिने पार्श्व की इन्द्र की आकृति एक पात्र मे लुचित केशो को सचित कर रही है। आगे महावीर की चार कायोत्सर्ग मूर्तिया हैं जो महावीर की तपस्या का चित्रण है। समीप ही कायोत्सर्ग मे खडी महावीर-मूर्ति के शीर्ष भाग मे एक चक्र उत्कीर्ण है और उनके जानु के नीचे का भाग नही प्रदर्शित है। वायी ओर दो स्त्री-पुरुष आकृतिया खडी हैं। यह सगम देव द्वारा महावीर पर कालचक्र (१८ वा उपसर्ग) चलाये जाने का मूर्त अकन है। स्मरणीय है कि कालचक्र के प्रभाव से महावीर के घुटनो तक का भाग भूमि मे प्रविष्ट हो गया था[2], इसी कारण मूर्ति मे भी महावीर के जानु के नीचे का भाग नहीं उत्कीर्ण किया गया है। वायें कोने पर क्षमायाचना की मुद्रा में सगम देव की मूर्ति है।

दक्षिण की ओर (दाहिने) चन्दनवाला की कथा उत्कीर्ण है। एक मण्डप मे चतुर्भुज इन्द्र आसीन है। समीप ही महावीर की कायोत्सर्ग मे तपस्यारत एव मुनिरूप मे दण्ड से युक्त मूर्तिया हैं। आगे चन्दनवाला धनावह का पैर धो रही है। धनावह एक यष्टि से चन्दनवाला की विखरी केशराशि को उठाये है। आकृतियो के नीचे 'श्रेष्ठी' और 'चन्दनवाला' उत्कीर्ण है। चन्दनवाला के समीप श्रेष्ठी-पत्नी मूला आश्चर्य से यह दृश्य देख रही है। आगे चन्दनवाला को एक कमरे मे बन्द और महावीर को भिक्षा देते हुए निरूपित किया गया है। आकृतियो के नीचे 'चन्दनवाला' और 'वीर' लिखा है। समीप ही इस महादान पर प्रसन्नता व्यक्त करती हुई आकृतिया अकित है। वितान पर महावीर का समवसरण नही उत्कीर्ण है।

कल्पसूत्र के चित्रो मे महावीर के पूर्वभवो, पकल्याणको, उपसर्गो एव देवानन्दा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ मे स्थानातरण के विस्तृत अकन हैं।[3] एक चित्र मे महावीर सिद्धरूप मे प्रदर्शित हैं। सिद्धरूप मे महावीर ध्यानमुद्रा मे विराजमान और विभिन्न अलंकरणो से युक्त हैं। अगले चित्रो मे महावीर के प्रमुख गणधर इन्द्रभूति गौतम और महावीर के निर्वाण के वाद दीपावली का उत्सव मनाने के अकन हैं।

---

१ त्रि०श०पु०च० १०. २ ८८–१२४

२ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ३८९

३ ब्राउन, डब्ल्यू०एन०, पू०नि०, पृ० ११–४४

दक्षिण भारत—दक्षिण भारत से पर्याप्त सख्या मे महावीर की मूर्तिया मिली है। इनमे अधिकांशत महावीर ध्यानमुद्रा मे विराजमान है। महावीर के सिंह लाछन और यक्ष-यक्षी के नियमित चित्रण प्राप्त होते हैं। वादामी की गुफा ४ मे महावीर की सातवी शती ई० की कायोत्सर्ग मूर्तिया हैं।[1] इनमे चतुर्भुज यक्ष-यक्षी और परिकर मे २४ छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। महावीर के कन्धो पर जटाए भी प्रदर्शित हैं। एलोरा की जैन गुफाओ (३०, ३१, ३२, ३३, ३४) मे भी महावीर की कई मूर्तिया (९वी-११वी शती ई०) है।[2] इनमे महावीर ध्यानमुद्रा मे विराजमान है और उनके यक्ष-यक्षी के रूप मे गजारूढ सर्वानुभूति एव सिंहवाहना अम्बिका निरूपित हैं। समान विवरणो वाली एक मूर्ति वम्बई के हरीदास स्वाली सग्रह मे है।[3] दो कायोत्सर्ग मूर्तिया हैदराबाद सग्रहालय मे हैं।[4] इन मूर्तियो के परिकर मे २३ छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। तीन मूर्तिया मद्रास गवर्नमेन्ट म्यूजियम मे हैं।[5] दो उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी और एक उदाहरण मे २३ छोटी जिन आकृतिया वनी है। दक्षिण भारत से मिली ल० नवी-दसवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति पेरिस सग्रहालय (म्यूजे गीमे) मे है।[6] मूर्ति की पीठिका पर सिंह लाछन और परिकर मे सात सर्पफणो वाले पार्श्वनाथ और वाहुवली की कायोत्सर्ग मूर्तिया अकित हैं।

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत मे ऋषभ और पार्श्व के वाद महावीर ही सर्वाधिक लोकप्रिय थे। गुप्त युग मे महावीर के सिंह लाछन का प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ। भारत कला भवन, वाराणसी की ल० छठी शती ई० की मूर्ति (१६१) इसका प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण है। महावीर की मूर्तियो मे ल० दसवी शती ई० मे यक्ष-यक्षी का अकन प्रारम्भ हुआ। यक्ष-यक्षी युगलो से युक्त दसवी शती ई० की सभी महावीर मूर्तिया उत्तरप्रदेश एव मध्यप्रदेश मे देवगढ, ग्यारसपुर, खजुराहो एव राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे ८०८) मे है। मूर्त अकनो मे महावीर के यक्ष-यक्षी का पारम्परिक या कोई स्वतन्त्र स्वरूप कभी भी स्थिर नही हो सका। केवल देवगढ, खजुराहो, ग्यारसपुर एव राजपूताना सग्रहालय, अजमेर (२७९) की ही कुछ महावीर मूर्तियो मे स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। विहार, उडीसा और वगाल की मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण ही नही हैं। गुजरात एव राजस्थान की मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं।[7] अष्ट-प्रातिहार्यो, नवग्रहो एव लघु जिन आकृतियो के चित्रण सभी क्षेत्रो मे लोकप्रिय थे। महावीर की जीवन्तस्वामी मूर्तियो और उनके जीवनदृश्यो के अकन केवल गुजरात और राजस्थान के श्वेतावर स्थलो से ही मिले हैं।[8]

द्वितीर्थी-जिन-मूर्तियां

द्वितीर्थी जिन मूर्तियो से आशय उन मूर्तियो से है जिनमे दो जिन-मूर्तिया साथ-साथ उत्कीर्ण हैं। ऐसी जिन मूर्तियो का निर्माण परम्परा-सम्मत नही है, क्योकि जैन ग्रन्थो मे हमे द्वितीर्थी जिन मूर्तियो के सम्बन्ध मे किसी प्रकार के उल्लेख नही मिलते। इन मूर्तियो का निर्माण नवी से वारहवी शती ई० के मध्य हुआ है। इनके उदाहरण केवल दिगवर स्थलो से ही मिले है। सर्वाधिक मूर्तिया खजुराहो और देवगढ मे हैं। लाक्षणिक विशेषताओ के आधार पर द्वितीर्थी जिन मूर्तियो

---

१ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र सग्रह ए २१–६०, ६१

२ गुप्ते, आर०एस० तथा महाजन, वी०डी०, **अजन्ता, एलोरा ऐण्ड औरगावाद केव्स**, वम्वई, १९६२, पृ०१२९-२२३

३ शाह, यू०पी०, 'जैन ब्रोन्जेज इन हरीदास स्वालीज कलेक्शन', वु०प्रि०वे०म्यू०वे०इ०, अ० ९, पृ० ४७–४९

४ राव, एस०एच०, 'जैनिज्म इन दि डकन', ज०इ०हि०, ख० २६, भाग १–३, पृ० ४५–४९

५ रामचन्द्रन, टी०एन०, **जैन मान्युमेन्ट्स ऐण्ड प्लेसेज ऑव फर्स्ट क्लास इम्पार्टेन्स**, कलकत्ता, १९४४, पृ० ६४-६६

६ जै०क०स्था०, ख० ३, पृ० ५६३

७ राजपूताना सग्रहालय, अजमेर (२७९) की महावीर मूर्ति इसका अपवाद है।

८ मथुरा का कुषाणकालीन फलक (राज्य सग्रहालय, लखनऊ, जे ६२६) इसका अपवाद है।

को तीन वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग की मूर्तियो मे एक ही जिन की दो आकृतिया उत्कीर्ण हैं। इस वर्ग मे केवल ऋषभ, सुपार्श्व एवं पार्श्व की ही मूर्तिया हैं। दूसरे वर्ग मे लाछन विहीन जिनो की दो मूर्तिया वनी हैं। इस प्रकार पहले और दूसरे वर्गो की द्वितीर्थी मूर्तियो का उद्देश्य एक ही जिन की दो आकृतियो का उत्कीर्णन था। तीसरे वर्ग मे भिन्न लाछनो वाली दो जिन मूर्तिया निरूपित हैं। इस वर्ग की मूर्तियो का उद्देश्य सम्भवत. दो भिन्न जिनो को एक स्थान पर साथ-साथ प्रतिष्ठित करना था।

सभी वर्गों की मूर्तियो मे दोनो जिन आकृतिया कायोत्सर्ग-मुद्रा मे निर्वस्त्र खडी है। जिन मूर्तिया धर्मचक्र से युक्त सिंहासन या साधारण पीठिका पर उत्कीर्ण है। प्रत्येक जिन दो पार्श्ववर्ती चामरधरो, उपासको, उड्डीयमान मालाधरो, गजो एव त्रिछत्र, अशोकवृक्ष, भामण्डल और दुन्दुभिवादक की आकृतियो से युक्त हैं। कुछ उदाहरणो मे चार के स्थान पर केवल तीन ही चामरधरो एवं उड्डीयमान मालाधरो की आकृतिया उत्कीर्णित हैं।[1] दसवी शती ई० मे जिनो के लाछन एव ग्यारहवीं शती ई० मे यक्ष-यक्षी युगलो के उत्कीर्णन प्रारम्भ हुए।

दसवी-ग्यारहवीं शती ई० की एक मूर्ति खण्डगिरि की गुफा से मिली है और सम्प्रति ब्रिटिश सग्रहालय, लन्दन (९९) मे सुरक्षित हैं (चित्र ६०)।[2] जिनो की पीठिकाओ पर वृषभ और सिंह लाछन उत्कीर्ण हैं। इस प्रकार यह ऋषभ और महावीर की द्वितीर्थी मूर्ति है। ऋषभ जटामुकुट से शोभित हैं पर महावीर की केशरचना गुच्छको के रूप में प्रदर्शित है। अलुआरा (मानभूम) से प्राप्त ग्यारहवीं शती ई० की एक मूर्ति पटना सग्रहालय (१०६८२) मे है।[3] लाछनो के आधार पर जिनो की पहचान ऋषभ और महावीर से सम्भव है।

खजुराहो से दसवी से वारहवीं शती ई० के मध्य की नौ मूर्तिया मिली है (चित्र ६१, ६३)।[4] सभी मे अष्ट-प्रातिहार्य प्रदर्शित हैं। खजुराहो की द्वितीर्थी-जिन-मूर्तियो की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वे लाछनो से रहित हैं। केवल शान्तिनाथ मन्दिर के आहाते की एक मूर्ति मे ही लाछन प्रदर्शित हैं।[5] इस सन्दर्भ में ज्ञातव्य है कि दसवी शती ई० तक खजुराहो के कलाकार सभी जिनो के लाछनो से परिचित हो चुके थे, और इस परिप्रेक्ष्य मे द्वितीर्थी मूर्तियो मे लाछनो का अभाव आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। आठ उदाहरणो मे प्रत्येक जिन मूर्ति के सिंहासन-छोरो पर द्विभुज या चतुर्भुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।[6] द्विभुज यक्ष-यक्षी के करो मे अभयमुद्रा (या पद्म) और जलपात्र (या फल) प्रदर्शित हैं। पाच उदा-हरणो मे यक्ष-यक्षी चतुर्भुज हैं। चतुर्भुज यक्ष-यक्षी की भुजाओ मे सामान्यतः अभयमुद्रा, पद्म (या शक्ति), पद्म (या पद्म से लिपटी पुस्तिका) एवं फल (या जलपात्र) प्रदर्शित हैं। द्वितीर्थी मूर्तियो के परिकर मे छोटी जिन आकृतियां भी उत्कीर्ण है।

देवगढ मे नवीं से वारहवी शती ई० के मध्य की ५० से अधिक द्वितीर्थी मूर्तिया हैं। सामान्यत प्रातिहार्यों से युक्त जिन आकृतिया साधारण पीठिका या सिंहासन पर खडी हैं। अधिकाश उदाहरणो मे जिनो के लाछन एवं परिकर मे छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। देवगढ मे केवल पहले और तीसरे वर्ग की ही द्वितीर्थी मूर्तिया हैं। पहले वर्ग की मूर्तियो मे लटकती जटाओं[7] या पाच[8] और सात[9] सर्पफणो के छत्रो से शोभित ऋषभ, सुपार्श्व एव पार्श्व की मूर्तिया हैं।

---

१ दो आकृतिया मूर्ति के छोरो पर और एक दोनो जिनो के मध्य मे उत्कीर्ण हैं।

२ चन्दा, आर० पी०, मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर इन दि ब्रिटिश म्यूज़ियम, वाराणसी, १९७२ (पु०मु०), पृ० ७१

३ प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २८६

४ ६ मूर्तिया शान्तिनाथ सग्रहालय (के २५, २६, २८, २९, ३०, ३१) मे हैं, और शेष तीन क्रमश शान्तिनाथ मन्दिर, मन्दिर ३ और पुरातात्विक सग्रहालय, खजुराहो (१६५३) में हैं।

५ एक जिन के आसन पर गज-लाछन (अजितनाथ) उत्कीर्ण है पर दूसरे जिन का लाछन स्पष्ट नही है।

६ केवल शान्तिनाथ मन्दिर की ११वी शती ई० की मूर्ति मे यक्ष-यक्षी अनुपस्थित हैं।

७ चार उदाहरण

८ दो उदाहरण : मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी एवं मन्दिर १७

९ दस उदाहरण

तीसरे वर्ग की मूर्तियो मे दो भिन्न लाछनो वाली मूर्तिया हैं। इस वर्ग की अधिकाश मूर्तिया ग्यारहवी शती ई० की है। इस वर्ग की मूर्तियो मे ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, शीतल, विमल, शान्ति, कुथु, नेमि, पार्श्व एव महावीर की मूर्तिया हैं। मन्दिर १ की मूर्ति मे विमल और कुथु के शूकर और अज लाछन (चित्र ६२), मन्दिर ३ की मूर्ति मे अजित और सम्भव के गज और अश्व लाछन, मन्दिर ४ की मूर्ति मे अभिनन्दन और सुमति के कपि और क्रौंच लाछन, और मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की मूर्ति मे शान्ति और सुपार्श्व[1] के मृग और स्वस्तिक लाछन अकित हैं। मन्दिर १२ की उत्तरी चहारदीवारी पर ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की कई मूर्तिया हैं। इनमे ऋषभ, महावीर, पद्मप्रभ और नमि की मूर्तिया हैं। मन्दिर ८ की मूर्ति मे सुपार्श्व और पार्श्व की स्वस्तिक और सर्प लाछन से युक्त मूर्तिया हैं। सुपार्श्व और पार्श्व के मस्तको पर सर्पफणो के छत्र नही प्रदर्शित हैं।

यक्ष-यक्षी युगल केवल दो ही उदाहरणो (मन्दिर १९, ल० ११वी शती ई०) मे निरूपित हैं। एक मूर्ति मे यक्ष-यक्षी द्विभुज है और उनके करो मे अभयमुद्रा (गदा) एव फल प्रदर्शित हैं। दूसरी द्वितीर्थी मूर्ति ऋषभ और अजित की है। अजित के साथ परम्पराविरुद्ध गोमुख और चक्रेश्वरी निरूपित है। द्विभुज गोमुख की भुजाओ मे परशु और फल हैं। गरुडवाहना चक्रेश्वरी चतुर्भुजा है और उसके करो मे अभयमुद्रा, गदा, चक्र एव शख प्रदर्शित हैं। ऋषभ के द्विभुज यक्ष के हाथो मे अभयमुद्रा और पद्म हैं। ऋषभ की चतुर्भुजा यक्षी के अवशिष्ट हाथो मे अभयमुद्रा और पद्म हैं। इस मूर्ति के परिकर मे पार्श्वनाथ की लघु आकृति उत्कीर्ण है। मन्दिर १९ की इन दोनो ही मूर्तियो मे केवल एक ही त्रिछत्र, दुन्दुभिवादक एव उड्डीयमान मालाधर बने है। तीन उदाहरणो[2] मे पक्तिबद्ध ग्रहो की द्विभुज मूर्तिया भी बनी हैं।[3] मन्दिर १२ के प्रदक्षिणा-पथ की मूर्ति मे सूर्य उत्कुटिकासन मे विराजमान हैं और उनके दोनो करो मे सनाल पद्म हैं। अन्य छह ग्रह ललितमुद्रा मे आसीन हैं और उनके करो मे अभयमुद्रा और कलश प्रदर्शित हैं। ऊर्ध्वकाय राहु के समीप सर्पफण से शोभित केतु की आकृति उत्कीर्ण है।

पार्श्व की द्वितीर्थी मूर्तियो[4] मे मूर्ति के छोरो पर एक सर्पफण के छत्र से युक्त दो छत्रधारिणी सेविकाए निरूपित हैं। छत्र के शीर्ष भाग दोनो जिनो के सर्पफणो के ऊपर प्रदर्शित हैं।[5] इन मूर्तियो मे त्रिछत्र नही प्रदर्शित हैं। पार्श्व की कुछ द्वितीर्थी मूर्तियो (मन्दिर ८) मे एक सर्पफण के छत्र से युक्त तीन चामरधर सेवक भी आमूर्तित हैं। मन्दिर १७ और १८ की पार्श्व की दो द्वितीर्थी मूर्तियो (१०वी शती ई०) मे प्रत्येक जिन के पार्श्वों मे तीन सर्पफणो के छत्रो से युक्त स्त्री-पुरुष सेवक आमूर्तित है। बायी ओर की सेविका के हाथो मे लम्बा छत्र है पर पुरुष के हाथो मे अभयमुद्रा और चामर हैं।

त्रितीर्थी-जिन-मूर्तियां

द्वितीर्थी जिन मूर्तियो की शैली पर ही त्रितीर्थी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हुईं, जिनमे दो के स्थान पर तीन जिनो की मूर्तिया हैं। सभी जिन कायोत्सर्ग-मुद्रा मे निर्वस्त्र खडे हैं। इनमे अष्ट-प्रातिहार्य भी उत्कीर्ण है। जैन ग्रन्थो मे त्रितीर्थी जिन मूर्तियो के सम्बन्ध मे भी कोई उल्लेख नही प्राप्त होता। त्रितीर्थी मूर्तिया दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य उत्कीर्ण हुईं। इनके उदाहरण केवल दिगबर स्थलो (देवगढ एव खजुराहो) से ही मिले हैं। त्रितीर्थी मूर्तियो मे सर्वदा तीन अलग-अलग जिनो की ही मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।

---

१ सुपार्श्व के मस्तक पर सर्पफणो का छत्र नही है।

२ मन्दिर (१२ प्रदक्षिणापथ), मन्दिर १६, म० दर १२ (चहारदीवारी)

३ मन्दिर १२ की दक्षिणी चहारदीवारी और मन्दिर १६ की द्वितीर्थी मूर्तियो में सूर्य, राहु, केतु एव एक अन्य ग्रहो की मूर्तिया नही उत्कीर्ण हैं। मन्दिर १६ की मूर्ति मे राहु उपस्थित है।

४ मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी और मन्दिर ८ की १०वी-११वी शती ई० की मूर्तिया

५ कुछ उदाहरणों (मन्दिर १२ एव १७) मे सेविकाओ की भुजाओ मे छत्र के स्थान पर केवल दण्ड प्रदर्शित हैं।

खजुराहो मे केवल एक त्रितीर्थी मूर्ति (मन्दिर ८) है। ग्यारहवी शती ई० की इस मूर्ति मे नेमि, पार्श्व और महावीर की मूर्तिया निरूपित है। देवगढ मे २० से अधिक त्रितीर्थी मूर्तिया हैं। देवगढ की त्रितीर्थी जिन मूर्तियो को लाक्षणिक विशेषताओ के आधार पर तीन वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग मे ऐसी मूर्तिया हैं जिनमे तीन जिनो को कायोत्सर्ग-मुद्रा मे निरूपित किया गया है। दूसरे वर्ग मे ऐसी मूर्तिया हैं जिनमे मध्यवर्ती जिन ध्यानमुद्रा मे आसीन हैं, पर पार्श्ववर्ती जिन आकृतिया कायोत्सर्ग मे खडी हैं। तीसरे वर्ग मे ऐसी मूर्तिया हैं जिनमे कायोत्सर्ग मे खडी दो जिन मूर्तियो के साथ तीसरी आकृति सरस्वती या भरत चक्रवर्ती की है। इनमे जिन की तीसरी आकृति मूर्ति के किसी अन्य छोर पर उत्कीर्ण है। जिनो के साथ सरस्वती एव भरत के निरूपण सम्भवत उनकी प्रतिष्ठा मे वृद्धि और उन्हे जिनो से समकक्ष प्रतिष्ठित करने के प्रयास के सूचक हैं। पहले वर्ग की दसवी शतीई० की एक मूर्ति मन्दिर १२ की उत्तरी चहारदीवारी पर है। इस मूर्ति मे शख, सर्प एव सिंह लाछनो से युक्त नेमि, पार्श्व एव महावीर निरूपित हैं। पार्श्व के साथ सात सर्पफणो का छत्र और नेमि तथा महावीर के नीचे उनके नाम भी उत्कीर्ण हैं।[1] मन्दिर ३ मे कपि, पुष्प एव पद्म लाछनो से युक्त अभिनन्दन, पद्मप्रभ और नमि की एक त्रितीर्थी मूर्ति (११वी शतीई०) है। मन्दिर १ की भित्ति पर ग्यारहवी शतीई० की आठ त्रितीर्थी मूर्तिया हैं। एक मे लाछन कपि (अभिनन्दन), गज (अजित) और अश्व (सम्भव) हैं। दूसरी मे एक जिन के मस्तक पर पाच सर्पफणो का छत्र (सुपार्श्व) है और दूसरे जिन का लाछन शख (नेमि) है, पर तीसरे जिन का लाछन स्पष्ट नही है। तीसरी मूर्ति मे दो जिनो के लाछन मृग (शान्ति) एव बकरा (कुथु) हैं, पर तीसरे जिन का लाछन स्पष्ट नही है। चौथी मूर्ति मे लाछन सर्प (पार्श्व), स्वस्तिक (सुपार्श्व) और कोई पशु (?) हैं। सुपार्श्व और पार्श्व क्रमश पाच और सात सर्पफणो के छत्र से भी युक्त हैं। पाचवी मूर्ति मे केवल एक ही जिन का लाछन स्पष्ट है, जो अर्धचन्द्र (चन्द्रप्रभ) है। छठीं मूर्ति मे लाछन स्वस्तिक (सुपार्श्व), पुष्प (पुष्पदन्त) और अज (? कुथु) हैं। सुपार्श्व के मस्तक पर सर्पफणो का छत्र नही है। इस मूर्ति के बायें छोर पर जैन आचार्यों की तीन मूर्तिया है। समान विवरणो वाली सातवी मूर्ति मे भी बायी ओर जैन आचार्यों की तीन मूर्तिया उत्कीर्ण है। इस उदाहरण मे जिनो के लाछन स्पष्ट नही हैं। आठवी मूर्ति मे भी जिनो के लाछन स्पष्ट नही है। केवल सात सर्पफणो के शिरस्त्राण से युक्त एक जिन की पहचान पार्श्व से सम्भव है। इस मूर्ति के दाहिने छोर पर यक्ष-यक्षी और लाछन से युक्त महावीर की एक मूर्ति है।

दूसरे वर्ग की दसवीं शती ई० की एक मूर्ति मन्दिर २१ के शिखर पर है (चित्र ६४)। सभी जिनो के साथ द्विभुज यक्ष यक्षी निरूपित है। मध्य की ध्यानस्थ मूर्ति के साथ लाछन नही उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं, जिनके आधार पर जिन की पहचान नेमि से की जा सकती है। नेमि के दक्षिण एव वाम पार्श्वों मे क्रमश पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्तिया है। ग्यारहवी शती ई० की एक मूर्ति मन्दिर १ की भित्ति पर है। मध्य मे यक्ष-यक्षी से वेष्टित चन्द्रप्रभ की ध्यानस्थ मूर्ति है। चन्द्रप्रभ के दोनो ओर सुपार्श्व और पार्श्व को कायोत्सर्ग मूर्तिया है।

तीसरे वर्ग की केवल दो ही मूर्तिया (११वी शती ई०) हैं। मन्दिर २ की पहली मूर्ति मे बायें छोर पर बाहुबली की कायोत्सर्ग मूर्ति है (चित्र ७५)। एक ओर भरत की भी कायोत्सर्ग मूर्ति बनी है। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि ऋषभ-पुत्र भरत ने जीवन के अन्तिम दिनो मे दीक्षा ग्रहण कर तपस्या की थी। भरत-मूर्ति की पीठिका पर गज, अश्व, चक्र, घट, खड्ग एव वज्र उत्कीर्ण हैं, जो चक्रवर्ती के लक्षण हैं। मूर्ति की जिन आकृतियो की पहचान लाछनो के अभाव मे सम्भव नही है। मन्दिर १ की दूसरी मूर्ति मे अजित और सम्भव के साथ वाग्देवी सरस्वती की चतुर्भुजी मूर्ति उत्कीर्ण है (चित्र ६५)।[2] मयूरवाहना सरस्वती के करो मे वरदमुद्रा, अक्षमाला, पद्म और पुस्तक हैं। तीसरी जिन आकृति की पहचान सम्भव नही है।

---

१ तिवारी, एम०एन०पी०, 'ऐन अनपब्लिश्ड त्रितीर्थिक जिन इमेज फ्राम देवगढ', जैन जर्नल, ख० ११, अ० २, अक्तूबर ७६, पृ० ७३–७४

२ तिवारी, एम० एन० पी०, 'यू यूनिक त्रितीर्थिक जिन इमेज फ्राम देवगढ', ललितकला, अ० १७, पृ० ४१–४२

सर्वतोभद्रिका जिन मूर्तियां या जिन चौमुखी

प्रतिमा सर्वतोभद्रिका या सर्वतोभद्र प्रतिमा का अर्थ है वह प्रतिमा जो सभी ओर से शुभ या मंगलकारी है, अर्थात् ऐसा शिल्पकार्य जिसमे एक ही शिलाखण्ड मे चारो ओर चार प्रतिमाए निरूपित हो।[1] पहली शती ई० में मथुरा मे इनका निर्माण प्रारम्भ हुआ। इन मूर्तियो मे चारो दिशाओ मे चार जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। ये मूर्तिया या तो एक ही जिन की या अलग-अलग जिनो की होती हैं। ऐसी मूर्तियो को चतुर्बिम्ब, जिन चौमुखी और चतुर्मुख भी कहा गया है।[2] ऐसी प्रतिमाए दिगंबर स्थलो पर विशेष लोकप्रिय थी।

जिन चौमुखी की धारणा को विद्वानो ने जिन समवसरण की प्रारम्भिक कल्पना पर आधारित और उसमे हुए विकास का सूचक माना है।[3] पर इस प्रभाव को स्वीकार करने मे कई कठिनाईया हैं। समवसरण वह देवनिर्मित सभा है, जहां प्रत्येक जिन कैवल्य प्राप्ति के बाद अपना प्रथम उपदेश देते हैं। समवसरण तीन प्राचीरो वाला भवन है जिसके ऊपरी भाग मे अष्ट-प्रातिहार्यों से युक्त जिन ध्यानमुद्रा मे (पूर्वाभिमुख) विराजमान होते हैं। सभी दिशाओ के श्रोता जिन का दर्शन कर सकें, इस उद्देश्य से व्यंतर देवो ने अन्य तीन दिशाओ मे भी उसी जिन की प्रतिमाए स्थापित की।[4] यह उल्लेख सर्वप्रथम आठवी-नवी शती ई० के जैन ग्रन्थो मे प्राप्त होता है। प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो मे चार दिशाओ मे चार जिन मूर्तियो के निरूपण का उल्लेख नही प्राप्त होता। ऐसी स्थिति मे कुषाणकालीन जिन चौमुखी मे चार अलग-अलग जिनो के उत्कीर्णन को समवसरण की धारणा से प्रभावित और उसमे हुए किसी विकास का सूचक नहीं माना जा सकता। आठवी-नवी शती ई० के ग्रन्थो मे भी समवसरण मे किसी एक ही जिन की चार मूर्तियो के निरूपण का उल्लेख है, जब कि कुषाणकालीन चौमुखी मे चार अलग-अलग जिनो को चित्रित किया गया है।[5] समवसरण मे जिन सदैव ध्यानमुद्रा में आसीन होते हैं, जब कि कुषाणकालीन चौमुखी जिन मूर्तिया कायोत्सर्ग मे खडी हैं। जहा हमे समकालीन जैन ग्रन्थो मे जिन चौमुखी मूर्ति की कल्पना का निश्चित आधार नही प्राप्त होता है, वही तत्कालीन और पूर्ववर्ती शिल्प मे ऐसे एकमुख और बहुमुख शिवलिंग[6] एव यक्ष मूर्तिया[7] प्राप्त होती हैं जिनमे जिन चौमुखी की धारणा के प्रभावित होने की सम्भावना हो सकती है।

---

१ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, एपि०इण्डि०, ख० २, पृ० २०२–०३, २१०; भट्टाचार्य, बी० सी०, पूर्वोनि०, पृ० ४८, अग्रवाल, वी० एस०, पू०नि०, पृ० २७, दे, सुधीन, 'चौमुख ए सिम्बालिक जैन आर्ट', जैन जर्नल, ख० ६,अं० १, पृ० २७, पाण्डेय, दीनबन्धु, 'प्रतिमा सर्वतोभद्रिका', राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे २८ और २९ जनवरी १९७२ को जैन कला पर हुए सगोष्ठी मे पढा लेख, तिवारी ,एम०एन०पी०, 'सर्वतोभद्रिका जिन मूर्तिया या जिन-चौमुखी', सबोधि, ख० ८, अ० १–४, अप्रैल ७९—जनवरी ८०, पृ० १–७

२ एपि०इण्डि०, ख० २, पृ० २११, लेख ४१

३ स्ट०जै०आ०, पृ० ९४–९५, दे, सुधीन, पू०नि०, पृ० २७, श्रीवास्तव, वी० एन०, पू०नि०, पृ० ४५

४ त्रि०श०पु०च० १ ३ ४२१–६८६, भण्डारकर, डी० आर०, 'जैन आइकानोग्राफी-समवसरण', इण्डि०एण्टि०, ख ४०, पृ० १२५–३०

५ मथुरा की १०२३ ई० की एक चौमुखी मूर्ति मे ही सर्वप्रथम समवसरण की धारणा को अभिव्यक्ति मिली। पीठिका-लेख मे उल्लेख है कि यह महावीर की जिन चौमुखी है (वर्धमानस्चतुर्विम्व)-द्रष्टव्य, एपि०इण्डि०, खं० २, पृ० २११, लेख ४१

६ मथुरा से कुषाणकालीन एकमुख और पचमुख शिवलिंगो के उदाहरण मिले हैं। गुडीमल्लम (दक्षिण भारत) के पहली शती ई० पू० के शिवलिंग मे लिंगम के समक्ष स्थानक-मुद्रा मे शिव की मानवाकृति उत्कीर्ण है—द्रष्टव्य, बनर्जी, जे० एन०, दि डीवलपमेण्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, पृ० ४६१, भट्टाचार्य, बी०सी०, पू०नि०, पृ० ४८, शुक्ल, डी० एन०, प्रतिमाविज्ञान, लखनऊ, १९५६, पृ० ३१५

७ राजघाट (वाराणसी) से मिली परवर्ती शुंगकालीन एक त्रिमुख यक्ष मूर्ति मे तीन दिशाओं मे यक्ष आकृतिया उत्कीर्ण हैं—द्रष्टव्य, अग्रवाल, पी० के०, 'दि ट्रिपल यक्ष स्टैचू फ्राम राजघाट', छवि, वाराणसी, १९७१, पृ० ३४०–४२

जिन चौमुखी पर स्वस्तिक[1] तथा मौर्य शासक अशाक के सिंह एव वृषम स्तम्म शीर्षों का भी कुछ प्रभाव असम्भव नही है। अशोक का सारनाथ-सिंह-शोर्ष-स्तम्म इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

जिन चौमुखी प्रतिमाओ को मुख्यत दो वर्गों मे वाटा जा सकता है। पहले वर्ग मे ऐसी मूर्तिया हैं जिनमे एक ही जिन की चार मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। दूसरे वर्ग की मूर्तियो मे चार अलग-अलग जिनो की मूर्तिया हैं। पहले वर्ग की मूर्तियो का उत्कीर्णन ल० सातवी-आठवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ। किन्तु दूसरे वर्ग की मूर्तिया पहली शती ई० से ही वनने लगी थी। मथुरा की कुषाणकालीन चौमुखी मूर्तिया इसी दूसरे वर्ग की हैं। तुलनात्मक दृष्टि से पहले वर्ग की मूर्तिया सख्या मे बहुत कम हैं। पहले वर्ग की मूर्तियो मे जिनो के लाछन सामान्यत नही प्रदर्शित हैं।

प्रारम्भिक मूर्तिया

प्राचीनतम जिन चौमुखी मूर्तिया कुषाणकाल की है। मथुरा से इन मूर्तियो के १५ उदाहरण मिले हैं (चित्र ६६)। समी मे चार जिन आकृतिया साधारण पीठिका पर कायोत्सर्ग मे खडी हैं।[2] श्रीवत्स से युक्त समी जिन निर्वस्त्र हैं (चित्र ७३)। चार मे से केवल दो ही जिनो की पहचान जटाओ और सात सर्पफणो की छत्रावली के आधार पर क्रमश ऋषम और पार्श्व से सम्मव है। कुषाणकालीन जिन चौमुखी मूर्तियो मे उपासको एव भामण्डल के अतिरिक्त अन्य कोई भी प्रातिहार्य नही उत्कीर्ण है। गुप्तकाल मे जिन चौमुखी का उत्कीर्णन लोकप्रिय नही प्रतीत होता। हमे इस काल की केवल एक मूर्ति मथुरा से ज्ञात है जो पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा (वी ६८) मे सुरक्षित है। कुषाणकालीन मूर्तियो के समान ही इसमे भी केवल ऋषम एव पार्श्व की ही पहचान सम्मव है।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तिया

जिनो के स्वतन्त्र लाछनो के निर्धारण के साथ ही ल० आठवी शती ई० से जिन चौमुखी मूर्तियो मे समी जिनो के साथ लाछनो के उत्कीर्णन की परम्परा प्रारम्म हुई। ऐसी एक प्रारम्भिक मूर्ति राजगिर के सोनभण्डार गुफा मे है। विहार और बगाल की चौमुखी मूर्तियो में सभी जिनो के साथ स्वतन्त्र लाछनो का उत्कीर्णन विशेष लोकप्रिय था। अन्य क्षेत्रो मे सामान्यत कुषाणकालीन चौमुखी मूर्तियो के समान केवल दो ही जिनो (ऋषम एव पार्श्व) की पहचान सम्मव है। चौमुखी मूर्तियो मे ऋषम और पार्श्व के अतिरिक्त अजित, सम्मव, सुपार्श्व, चन्द्रप्रम, नेमि, शान्ति और महावीर की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। ल० आठवी-नवीं शती ई० मे जिन चौमुखी मूर्तियो मे कुछ अन्य विशेषताए भी प्रदर्शित हुई। चौमुखी मूर्तियो मे चार प्रमुख जिनो के साथ ही लघु जिन मूर्तियो का उत्कीर्णन भी प्रारम्भ हुआ। लघु जिन मूर्तियो को संख्या सदैव घटती-बढती रही है। इनमे कभी-कभी २० या ४८ छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण है, जो चार मुख्य जिनो के साथ मिलकर क्रमश जिन चौवीसी और नन्दीश्वर द्वीप के भाव को व्यक्त करती हैं।

चारो प्रमुख जिन मूर्तियो के साथ सामान्य प्रातिहार्यों एव कभी-कभी यक्ष-यक्षी युगलो और नवग्रहो को भी प्रदर्शित किया जाने लगा। साथ ही चौमुखी मूर्तियो के शीर्षभाग छोटे जिनालयो के रूप मे निर्मित होने लगे, जिनमे आमलक और कलश भी उत्कीर्ण हुए। कुछ क्षेत्रो मे चतुर्मुख जिनालयो का भी निर्माण हुआ। चतुर्मुख जिनालय का एक प्रारम्भिक उदाहरण (ल० ९वी शती ई०) पहाडपुर (बगाल) से मिला है।[3] यह चौमुख मन्दिर चार प्रवेश-द्वारो से युक्त है और इसके मध्य मे चार जिन प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। ल० ग्यारहवी शती ई० का एक विशाल चौमुख जिनालय इन्दौर (गुना, म० प्र०) मे है (चित्र ६९)।[4] चारो जिन आकृतिया ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं और सामान्य प्रातिहार्यों एव

१ अग्रवाल, वी० एस०, इण्डियन आर्ट, वाराणसी, १९६५, पृ० ४९–५०, २३२

२ उल्लेखनीय है कि चौमुखी मूर्तियो मे जिन अधिकाशत कायोत्सर्ग मे ही निरूपित हैं।

३ दे, सुधीन, पू०नि०, पृ० २७

४ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र सग्रह ८२ ३९, ८२ ४०

यक्ष-यक्षी युगलो से युक्त है। मूलनायको के परिकर मे जिनो, स्थापना-युक्त जैन आचार्यों एव गोद मे बालक लिये स्त्री-पुरुष युगलो की कई आकृतिया उत्कीर्ण हैं। ल० ग्यारहवी-बारहवी शती ई० मे स्तम्भो के शीर्ष भाग मे भी जिन चौमुखी का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ। ऐसे दो उदाहरण पुरातात्विक सग्रहालय, ग्वालियर[1] एव राज्य सग्रहालय, लखनऊ (० ७३) मे हैं।

गुजरात-राजस्थान—गुजरात और राजस्थान मे श्वेताबर स्थलो पर जिन चौमुखी का उत्कीर्णन विशेष लोकप्रिय नही था। इस क्षेत्र से दोनो वर्गों की चौमुखी मूर्तिया मिली है। दूसरे वर्ग की मूर्तियो मे मथुरा की कुषाणकालीन चौमुखी मूर्तियो के समान केवल ऋषभ और पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। जघीना (भरतपुर) मे प्राप्त नवी शती ई० की एक दिगंबर मूर्ति भरतपुर राज्य सग्रहालय (३) मे है।[2] इसमे जटाओ से शोभित ऋषभ की चार कायोत्सर्ग मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। ल० ग्यारहवी शती ई० की दो मूर्तिया बीकानेर सग्रहालय (१६७२) एव राजपूताना सग्रहालय, अजमेर (४९३) मे है।[3] इनमे ध्यानमुद्रा मे विराजमान जिनो के साथ लाछन नही उत्कीर्ण हैं।

अकोटा से दूसरे वर्ग की दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की तीन श्वेताबर मूर्तिया मिली है।[4] मूर्तियो के ऊपरी भाग शिखर के रूप मे निर्मित हैं। सभी उदाहरणो मे जिन आकृतिया ध्यानमुद्रा मे बैठी हैं। इनमे केवल ऋषभ एव पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। बारहवी शती ई० की एक मूर्ति विमलवसही की देवकुलिका १७ मे सुरक्षित है।[5] यहा जिनो के लाछन नहीं उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। यक्ष-यक्षी के आधार पर केवल दो ही जिनो, ऋषभ एव नेमि, की पहचान सम्भव है। जिनो के सिंहासनो पर चतुर्भुज शान्तिदेवी और तोरणो पर प्रज्ञप्ति, वज्राकुशी, अच्छुप्ता एवं महामानसी महाविद्याओ की मूर्तिया हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—इस क्षेत्र मे दोनो वर्गों की चौमुखी मूर्तिया निर्मित हुई। पर दूसरे वर्ग की मूर्तियो की सख्या अधिक है। प्रथम वर्ग की ल० आठवी शती ई० की एक मूर्ति भारत कला भवन, वाराणसी (७७) मे है। इसमे सभी जिन निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग मे साधारण पीठिका पर खडे हैं। जिनो के लाछन नही उत्कीर्ण हैं। प्रत्येक जिन की पीठिका पर दो छोटी ध्यानस्थ जिन मूर्तिया उत्कीर्ण है। कौशाम्बी से मिली एक मूर्ति (१० वीं शती ई०) इलाहाबाद सग्रहालय (ए० एम० ९४३) मे है।[6] लाछन विहीन चारो जिन मूर्तिया कायोत्सर्ग मे खडी है। समान विवरणो वाली दो अन्य मूर्तिया क्रमश ग्वालियर एव मथुरा (१५२९) सग्रहालयो मे सुरक्षित हैं।[7] ककाली टीला, मथुरा से मिली और राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे २३६) मे सुरक्षित १०२३ ई० की एक मूर्ति मे ध्यानमुद्रा मे चार जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। जिनो के लाछन नही प्रदर्शित हैं। पर पीठिका-लेख मे इसे वर्धमान (महावीर) का चतुर्विम्ब बताया गया है। मूर्ति का शीर्ष भाग मन्दिर के शिखर के रूप मे निर्मित है। प्रत्येक जिन सिंहासन, धर्मचक्र, त्रिछत्र एव वृक्ष की पत्तियो से युक्त हैं। बटेश्वर (आगरा) से मिली एक मूर्ति (११ वी शती ई०) राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे है। लाछन रहित जिन ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। प्रत्येक जिन के साथ सिंहासन, भामण्डल, त्रिछत्र, दुन्दुभिवादक, उड्डीयमान मालाधर एव उपासक आमूर्तित है। देवगढ से इस वर्ग की पाच मूर्तिया मिली हैं।[8] सभी उदाहरणो मे लाछन विहीन जिन मूर्तिया कायोत्सर्ग मे उत्कीर्ण हैं।

---

१ जैन, नीरज, 'पुरातात्विक संग्रहालय, ग्वालियर की जैन मूर्तिया', अनेकान्त, वर्ष १६, अ० ५, पृ० २१४

२ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्रसग्रह १५६ ७१, १५६ ६८

३ श्रीवास्तव, वी० एस०, केटलाग ऐण्ड गाइड टू गगा गोल्डेन जुबिली वाल्यूम, बीकानेर, बम्बई, १९६१, पृ० १९

४ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० ६०–६१, फलक ७० ए, ७० बी, ७१ ए

५ मूलनायक की मूर्तियां सम्प्रति सुरक्षित नही है।

६ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० १४४

७ ठाकुर, एस० आर०, केटलाग ऑव स्कल्पचर्स इन दि आर्किअलाजिकल म्यूजियम, ग्वालियर, लश्कर, पृ० २०, अग्रवाल, वी० एस०,पू०नि०,पृ० ३०

८ ये मूर्तिया मन्दिर १२ की चहारदीवारी एवं मन्दिर १५ से मिली हैं।

दूसरे वर्ग की ल० आठवी शती ई० की एक मूर्ति पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा (बी ६५) मे है। चारो जिन ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। लटकती जटाओ, सहस्रसर्पफणो की छत्रावली एव सर्वानुभूति-अम्बिका की आकृतियो के आधार पर तीन जिनो की पहचान क्रमशः ऋषभ, पार्श्व एव नेमि से सम्भव है। दूसरे वर्ग की सर्वाधिक मूर्तिया (१०वी–१२ वी शती ई०) देवगढ मे है।[१] अधिकाश मूर्तियो मे जिन कायोत्सर्ग मे खडे हैं। मूर्तियो के ऊपरी भाग सामान्यत. शिखर के रूप मे निर्मित हैं। जिनो के साथ सिंहासन, चामरधर, त्रिछत्र, दुन्दुभिवादक, उड्डीयमान मालाधर, गज एव अशोक वृक्ष की पत्तिया भी उत्कीर्ण हैं। ग्यारहवी शती ई० की दो मूर्तियो मे चारो जिनो के साथ यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं। दोनो मूर्तिया मन्दिर १२ की चहारदीवारी के मुख्य प्रवेश-द्वार के समीप हैं। इनमे केवल ऋषभ एव पार्श्व की ही पहचान स्पष्ट है। देवगढ की अधिकाश मूर्तियो मे केवल ऋषभ एव पार्श्व (या सुपार्श्व)[२] की पहचान सम्भव है। सभी जिनो के साथ लाछन केवल कुछ ही उदाहरणो मे उत्कीर्ण है। मन्दिर २६ के समीप की एक मूर्ति (११ वी शती ई०) मे ध्यानमुद्रा मे विराजमान जिन वृषभ, कपि, शशि एव मृग लाछनो से युक्त है। इस प्रकार यह ऋषभ, अभिनन्दन, चन्द्रप्रभ एव शान्ति की चौमुखी है।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ मे सरायघाट (अलीगढ) और बटेश्वर (आगरा) से मिली दसवी शती ई० की दो कायोत्सर्ग मूर्तिया (जे ८१३, जी १४१) सुरक्षित हैं। इनमे केवल ऋषभ और पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। एक मूर्ति मे आठ ग्रहो की भी मूर्तिया उत्कीर्ण है।[३] ऐसी ही एक मूर्ति शहडोल (म० प्र०) से भी मिली है।[४] इसमे जिन आकृतिया ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। एक मूर्ति अहाड (टीकमगढ, म० प्र०, ११ वी शती ई०) से मिली है (चित्र ६७)। खजुराहो से केवल एक ही मूर्ति (११ वी शती ई०) मिली है। यह मूर्ति पुरातात्विक सग्रहालय, खजुराहो (१५८८) मे है। इसमे सभी जिन ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। जिनो मे केवल ऋषभ एव पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। प्रत्येक जिन मूर्ति के परिकर मे १२ लघु जिन आकृतिया उत्कीर्ण हैं। इस प्रकार मुख्य जिनो सहित इस चौमुखी मे कुल ५२ जिन आकृतिया है।[५]

बिहार-उडीसा-बगाल—बिहार और बगाल से केवल दूसरे वर्ग की ही मूर्तिया मिली हैं।[६] उडीसा से मिली किसी मूर्ति की जानकारी हमे नही है। बगाल मे जिन चौमुखी मूर्तियो (१० वी–१२ वी शती ई०) का उत्कीर्णन विशेष लोकप्रिय था। इस क्षेत्र की सभी मूर्तियो मे जिन निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग-मुद्रा मे खडे हैं। इस क्षेत्र की चौमुखी मूर्तियो मे केवल ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, चन्द्रप्रभ, शान्ति, कुंथु, पार्श्व एव महावीर की ही मूर्तिया उत्कीर्ण हुई। राजगिर के सोनभण्डार गुफा की ल० आठवी शती ई० की एक मूर्ति मे जिनो के लाछन पीठिका के धर्मचक्र के दोनो ओर उत्कीर्ण हैं। इस मूर्ति मे वर्तमान अवसर्पिणी के प्रथम चार जिन, ऋषभ, अजित, सम्भव एव अभिनन्दन, आमूर्तित हैं।[७] दसवी-ग्यारहवीं शती ई० की सतदेउलिया (वर्दवान) से मिली एक मूर्ति आशुतोष सग्रहालय, कलकत्ता मे सुरक्षित है।[८] मूर्ति का ऊपरी भाग शिखर के रूप मे बना है। चारो दिशाओ मे ऋषभ, चन्द्रप्रभ, पार्श्व एव महावीर की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। बगाल के विभिन्न स्थलो से प्राप्त दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की कई मूर्तिया स्टेट

---

१ देवगढ मे २५ से अधिक मूर्तिया हैं। अधिकाश मूर्तिया मन्दिर १२ की चहारदीवारी पर हैं।

२ मन्दिर १२ की एक मूर्ति मे ऋषभ एव शान्ति की पहचान सम्भव है।

३ मथुरा सग्रहालय की एक मूर्ति (बी ६६) मे भी नवग्रहो की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।

४ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र सग्रह १०१ ७१, १०१ ७३

५ दिगबर परम्परा के नन्दीश्वर द्वीप पट्ट पर ५२ जिन आकृतिया उत्कीर्ण होती हैं–द्रष्टव्य, स्ट०जै०आ०, पृ०१२०

६ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, जै०क०स्था०, ख० २, पृ० २६७–७५

७ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, राजगिर, पृ० २८, आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली, चित्रसग्रह १४३० ५५

८ सरकार, शिवशकर, 'आन सम जैन इमेजेज फ्राम बगाल', माडर्न रिव्यू, ख० १०६, अ० २, पृ० १३१

आर्किअलाजी गैलरी, वगाल मे हैं।[1] पक्वीरा ग्राम (पुरुलिया) की दसवी-ग्यारहवी शती ई० की एक मूर्ति मे ऋषभ, कुंथु, शान्ति एव महावीर की मूर्तिया उत्कीर्ण है (चित्र ६८)।[2] अम्बिकानगर (वाकुडा) से प्राप्त एक मूर्ति मे केवल ऋषभ, चन्द्रप्रभ एव शान्ति की पहचान सम्भव है।[3]

चतुर्विंशति-जिन-पट्ट

चतुर्विंशति-जिन-पट्टो के उदाहरण ल० दसवी शती ई० से प्राप्त होते हैं। इन पट्टो की २४ जिन मूर्तिया सामान्यत· प्रातिहार्यों, लाछनो एव कभी-कभी यक्ष-यक्षी युगलो मे युक्त हैं। देवगढ मे इस प्रकार का ग्यारहवी शती ई० का एक जिन-पट्ट है जो स्थानीय साहू जैन सग्रहालय मे सुरक्षित है। पट्ट दो भागो मे विभक्त है। पट्ट की सभी जिन आकृतिया लाछनो, प्रातिहार्यों एवं यक्ष-यक्षी युगलो से युक्त है।[4] जिन मूर्तियो के उत्कीर्णन मे दोनो मुद्राए—ध्यान और कायोत्सर्ग—प्रयुक्त हुई हैं। लाछनो के स्पष्ट न होने के कारण शीतल, वासुपूज्य, अनन्त, धर्मनाथ, शान्ति एव अर की पहचान सम्भव नही है। सुपार्श्व के मस्तक पर सर्पफणो का छत्र नही प्रदर्शित है और लाछन भी स्वस्तिक के स्थान पर सर्प है। सभी जिनो के साथ सामान्य लक्षणो वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। इनकी भुजाओ मे अभय-(या वरद-) मुद्रा एव फल (या पद्म या कलश) हैं। मूर्तियो के निरूपण मे जिनो के पारम्परिक क्रम का ध्यान नही रखा गया है। कौशाम्बी से प्राप्त एक पट्ट इलाहाबाद सग्रहालय (५०६) मे है।[5] पट्ट पर पाच पक्तियो मे २४ जिनो की ध्यानस्थ मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।

जिन-समवसरण

समवसरण वह देवनिर्मित सभा है, जहा देवता, मनुष्य एव पशु जिनो के उपदेशो का श्रवण करते हैं। कैवल्य प्राप्ति के बाद प्रत्येक जिन अपना पहला उपदेश समवसरण मे ही देते हैं।[6] **महापुराण** के अनुसार समवसरणो का निर्माण इन्द्र ने किया। सातवी शती ई० के बाद के जैन ग्रन्थो मे जिन समवसरणो के विस्तृत उल्लेख है।[7] पर समवसरणों के उदाहरण केवल श्वेतावर स्थलो से ही मिले हैं। समवसरणो का उत्कीर्णन ल० ग्यारहवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ। समवसरणो के स्वतन्त्र उदाहरणो के अतिरिक्त कुम्भारिया के महावीर एव शान्तिनाथ मन्दिरो और दिलवाडा के विमल-वसही एव लूणवसही मे जिनो के कैवल्य प्राप्ति के दृश्य को समवसरणो के माध्यम से ही व्यक्त किया गया है।

जैन ग्रन्थो के अनुसार समवसरण तीन प्राचीरो वाला भवन है। इसमे ऊपर (मध्य मे) ध्यानमुद्रा मे एक जिन आकृति (पूर्वाभिमुख) बैठी होती है।[8] सभी दिशाओ के श्रोता जिन का दर्शन कर सकें, इस उद्देश्य से व्यतर देवो ने अन्य तीन दिशाओ मे भी जिन की रत्नमय प्रतिमाए स्थापित की थीं।[9] समवसरण के प्रत्येक प्राचीर मे चार प्रवेश-द्वारो तथा

---

१ दे, सुधीन, पू०नि०, पृ० २७–३०

२ बनर्जी, ए०, 'ट्रेसेज ऑव जैनिजम इन बगाल', ज०यू०पी०हि०सो०, ख० २३, भाग १–२, पृ० १६८

३ मित्रा, देवला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम वाकुडा, वेस्ट वगाल', ज०ए०सो०व०, ख० २४, अ० २, पृ० १३३

४ लाछन एव यक्ष-यक्षी युगलो के आयुध अधिकाशत· स्पष्ट नही हैं।

५ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० १४७

६ कुछ अन्य अवसरो पर भी देवताओ द्वारा समवसरणों का निर्माण किया गया। पद्मचरित (२ १०२) और आवश्यक निर्युक्ति (गाथा ५४०–४४) मे उल्लेख है कि महावीर के विपुलगिरि (राजगृह) आगमन पर एक समवसरण का निर्माण किया गया था।

७ स्ट०जै०आ०, पृ० ८५–९५

८ त्रि०श०पु०च० १ ३.४२१–७७, भण्डारकर, डी०आर०, पू०नि०, पृ०१२५–३०, स्ट०जै०आ०, पृ० ८६–८९

९ आदिपुराण २३.९२

उनके समीप विभिन्न आयुधो से युक्त द्वारपाल मूर्तियो के उत्कीर्णन का विधान है। मध्य के प्राचीर मे अभयमुद्रा, पाश, अंकुश और मुद्गर धारण करनेवाली जया, विजया, अजिता और अपराजिता नाम की देविया रहती हैं। तीसरे (निचले) प्राचीर मे खट्वाग एव गले मे कपाल की माला धारण किये हुए द्वारपाल (तुम्बरुदेव), साथ ही पशु, मानव एवं देव आकृतियां उत्कीर्ण होती हैं। पहले (ऊपरी) प्राचीर के द्वारो एव भित्तियो पर वैमानिक, व्यंतर, ज्योतिष्क एव भवनपति देवो और साधु-साध्वियो की आकृतिया उत्कीर्ण होनी चाहिए। जैन परम्परा के अनुसार जिनो के समवसरणो मे सभी को प्रवेश का अधिकार प्राप्त है और इस अवसर पर समवसरण मे उपस्थित होने वाले मनुष्यो और पशुओ मे आपस मे किसी प्रकार का द्वेष या वैमनस्य नहीं रह जाता। इसी भाव को प्रदर्शित करने के लिए मूर्त अकनो मे सिंह-मृग, सिंह-गज, सर्प-नकुल एव मयूर-सर्प जैसे परस्पर शत्रुभाव वाले जीवो को साथ-साथ, आमने-सामने, दिखाया गया है। समवसरण मे ही इन्द्र ने जिनो के शासनदेवताओं (यक्ष-यक्षी) को भी नियुक्त किया था।

समवसरणो के चित्रण मे उपर्युक्त विशेषताए ही प्रदर्शित हैं। सभी समवसरण तीन वृत्ताकार प्राचीरो वाले भवन के रूप मे निर्मित हैं। इनके ऊपरी भाग अधिकाशतः मन्दिर के शिखर के रूप मे प्रदर्शित हैं। समवसरणो मे पद्मासन मे बैठी जिनो की चार मूर्तिया भी उत्कीर्ण रहती हैं। लाछनो के अभाव मे समवसरणो की जिन मूर्तियो की पहचान सम्भव नही है। सामान्य प्रातिहार्यों से युक्त जिन मूर्तियो मे कभी-कभी यक्ष-यक्षी भी निरूपित रहते हैं।[1] प्रत्येक प्राचीर मे चार प्रवेश-द्वार और द्वारपालो की मूर्तियां होती हैं। भित्तियो पर देवताओ, साधुओ, मनुष्यो एव पशुओ की आकृतिया बनी रहती हैं। दूसरे और तीसरे प्राचीरो की भित्तियो पर सिंह-गज, सिंह-मृग, सिंह-वृषभ, मयूर-सर्प और नकुल-सर्प जैसे परस्पर शत्रुभाव वाले पशुओ के जोडे अंकित होते हैं।

ग्यारहवी शती ई० का एक खण्डित समवसरण कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की देवकुलिका मे है। इस समवसरण के प्रत्येक प्राचीर के प्रवेश-द्वारो पर दण्ड और फल से युक्त द्विभुज द्वारपालो की मूर्तिया हैं। ग्यारहवी शती ई० का एक उदाहरण मारवाड के जैन मन्दिर से मिला है और सम्प्रति सूरत के जैन देवालय मे प्रतिष्ठित है।[2] विमलवसही की देवकुलिका २० में ल० बारहवी शती ई० का एक समवसरण है। इसमे ऊपर की ओर चार ध्यानस्थ जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। सभी जिनो के साथ चतुर्भुज यक्ष-यक्षी निरूपित है। बारहवीं शती ई० का एक अन्य समवसरण कैम्बे से मिला है।[3] कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की एक देवकुलिका मे १२०९ ई० का एक समवसरण है। चार ध्यानस्थ जिन मूर्तियो के अतिरिक्त इसमे २४ छोटी जिन मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं।[4]

---

१ विमलवसही की देवकुलिका २० के समवसरण मे यक्ष-यक्षी भी उत्कीर्णित है।

२ स्ट०जै०आ०, पृ० ९४

३ शाह, यू०पी०, 'जैन ब्रोन्जेज़ फ्राम कैम्बे', ललितकला, अ० १३, पृ० ३१–३२

४ पाच और सात सर्पफणो के छत्रो से युक्त दो जिन मूर्तिया सुपार्श्व और पार्श्व की हैं।

षष्ठ अध्याय

यक्ष-यक्षी-प्रतिमाविज्ञान

सामान्य विकास

यक्ष एव यक्षिया जिन-प्रतिमाओ के साथ सयुक्त रूप से अकित किये जानेवाले देवों मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। प्रस्तुत अध्याय मे यक्ष एव यक्षियो के प्रतिमाविज्ञान के विकास का अध्ययन किया जायगा। प्रारम्भ मे यक्ष और यक्षियो के प्रतिमाविज्ञान के सामान्य विकास की सक्षिप्त रूपरेखा दी गई है। तत्पश्चात् जिनो के क्रम से प्रत्येक यक्ष-यक्षी युगल की मूर्तियो का प्रतिमाविज्ञानपरक अध्ययन किया गया है। यह विकास पहले साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर और बाद मे पुरातात्विक साक्ष्य के आधार पर निरूपित है। अन्त मे दोनो का तुलनात्मक एव समन्वयात्मक अध्ययन है। संक्षेप में दक्षिण भारत के जैन यक्ष एवं यक्षियो मे इनके तुलनात्मक अध्ययन का भी प्रयास किया गया है।

साहित्यिक साक्ष्य

जैन ग्रन्थो मे यक्ष एव यक्षियो का उल्लेख जिनो के शासन और उपासक देवो के रूप में हुआ है।[1] प्रत्येक जिन के यक्ष-यक्षी युगल उनके चतुर्विध सघ के शासक एव रक्षक देव हैं।[2] जैन ग्रन्थो के अनुसार समवसरण मे जिनो के धर्मोपदेश के बाद इन्द्र ने प्रत्येक जिन के साथ सेवक-देवों के रूप मे एक यक्ष और एक यक्षी को नियुक्त किया।[3] शासन-देवताओ के रूप मे सर्वदा जिनो के समीप रहने के कारण ही जैन देवकुल मे यक्ष और यक्षियो को जिनो के बाद सर्वाधिक प्रतिष्ठा मिली।[4] हरिवंशपुराण मे उल्लेख है कि जिन-शासन के भक्त-देवो (शासनदेवताओ) के प्रभाव से हित-(शुभ-) कार्यो की विघ्नकारी शक्तिया (ग्रह, नाग, भूत, पिशाच और राक्षस) शान्त हो जाती हैं।[5]

जैन परम्परा के अनुसार यक्ष एव यक्षी जिन मूर्तियो के सिंहासन या सामान्य पीठिका के क्रमश. दाहिने और बायें छोरों पर अकित होने चाहिये।[6] सामान्यत ये ललितमुद्रा मे निरूपित हैं, पर कभी-कभी इन्हें ध्यानमुद्रा मे आसीन या

---

१ प्रयासना शासनदेवताश्च या जिनाश्चतुर्विंशतिमाश्रिता सदा।
हिता सतामप्रतिचक्रयान्विता. प्रयाचिता· सन्निहिता भवन्तु ता.॥ हरिवंशपुराण ६६ ४३–४४
यक्षाभक्तिदक्षस्तीर्थंकृतामिमे। प्रवचनसारोद्धार (भट्टाचार्य, बी०सी०, दि जैन आइकानोग्राफी, लाहौर, १९३९, पृ० ९२)

२ ओ नमो गोमुखयक्षाय श्री युगांगे जिनशासनरक्षाकार काय।
आचारदिनकर
या पति शासन जैन सद्य प्रत्यूहनाशिनी। साभिप्रेतसमृद्ध्यर्थं भूयात् शासनदेवता।
प्रतिष्ठाकल्प, पृ० १३ (भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० ९२–९३)

३ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० ९३

४ हरिवंशपुराण ६६ ४३–४४, तिलोयपण्णत्ति ४ ९३४–३९

५ हरिवंशपुराण ६६ ४५

६ यक्ष च दक्षिणेपार्श्वे वामे शासनदेवता। प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.१२
प्रतिष्ठासारोद्धार १ ७७। परम्परा के विपरीत कभी-कभी पीठिका के मध्य के धर्मचक्र के दोनो ओर या जिनो के चरणो के समीप भी यक्ष और यक्षियो की मूर्तिया उत्कीर्ण हुईं। कुछ उदाहरणो मे यक्ष बायी ओर और यक्षी दाहिनी ओर भी निरूपित हैं। ऐसी मूर्तिया मुख्यत. दिगंबर स्थलों (देवगढ, राज्य सग्रहालय, लखनऊ) से मिली हैं।

स्थानक-मुद्रा मे खडा भी दिखाया गया है। ल० छठी शती ई० मे जिन-मूर्तियो मे[1] और ल० नवी शती ई० मे स्वतन्त्र मूर्तियो के रूप मे[2] यक्ष-यक्षियो का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ। स्वतन्त्र मूर्तियो मे यक्ष और यक्षियो के मस्तको पर छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण रहती हैं, जो उन्हे जिनो और साथ ही जैन देवकुल से सम्बन्धित करती हैं। लाछन युक्त छोटी जिन मूर्तिया भी उनके पहचान मे सहायक हुई है। दिगबर परम्परा की अधिकाश यक्षियो के नाम एव कुछ सीमा तक लाक्षणिक विशेषताएं श्वेताबर परम्परा की पूर्ववर्ती महाविद्याओ से ग्रहण की गई। इसी कारण यक्षियो के नामो एव लाक्षणिक विशेषताओ के सन्दर्भ मे श्वेताबर और दिगबर परम्पराओ मे पूर्ण भिन्नता दृष्टिगत होती है। पर यक्षो के सन्दर्भ मे ऐसी भिन्नता नही प्राप्त होती।

२४ यक्षो एव २४ यक्षियो की सूची मे अधिकाश के नाम एव उनकी लाक्षणिक विशेषताए हिन्दू और कुछ उदाहरणो मे बौद्ध देवकुल के देवो से प्रभावित हैं। जैन धर्म मे हिन्दू देवकुल के विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, स्कन्द कार्त्तिकेय, काली, गौरी, सरस्वती, चामुण्डा और बौद्ध देवकुल की तारा, वज्रश्रृखला, वज्रतारा एव वज्राकुशी के नामो और लाक्षणिक विशेषताओ को ग्रहण किया गया।[3] जैन देवकुल पर ब्राह्मण और बौद्ध धर्मों के देवो का प्रभाव दो प्रकार का है। प्रथम, जैनो ने इतर धर्मों के देवो के केवल नाम ग्रहण किये और स्वय उनकी स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषताए निर्धारित की। गरुड, वरुण, कुमार यक्षो और गौरी, काली, महाकाली, अम्बिका एव पद्मावती यक्षियो के सन्दर्भ मे प्राप्त होनेवाला प्रभाव इसी कोटि का है। द्वितीय, जैनो ने देवताओ के एक वर्ग की लाक्षणिक विशेषताए इतर धर्मो के देवो से ग्रहण की। कभी-कभी लाक्षणिक विशेषताओ के साथ ही साथ इन देवो के नाम भी हिन्दू और बौद्ध देवो से प्रभावित हैं। इस वर्ग मे आनेवाले यक्ष-यक्षियो मे ब्रह्मा, ईश्वर, गोमुख, भृकुटि, षण्मुख, यक्षेन्द्र, पाताल, धरणेन्द्र एव कुबेर यक्ष और चक्रेश्वरी, विजया, निर्वाणी, तारा एव वज्रश्रृखला यक्षिया प्रमुख हैं।

हिन्दू देवकुल से प्रभावित यक्ष-यक्षी युगल तीन भागो मे विभाज्य हैं। पहली कोटि मे ऐसे यक्ष-यक्षी युगल आते हैं जिनके मूल-देवता हिन्दू देवकुल मे आपस मे किसी प्रकार सम्बन्धित नही हैं। जैन यक्ष-यक्षी युगलो मे अधिकाश इसी वर्ग के हैं। दूसरी कोटि मे ऐसे यक्ष-यक्षी युगल हैं जो पूर्वरूप मे हिन्दू देवकुल मे भी परस्पर सम्बन्धित हैं, जैसे श्रेयाशनाथ के यक्ष-यक्षी ईश्वर एव गौरी। तीसरी कोटि मे ऐसे युगल हैं जिनमे यक्ष एक और यक्षी दूसरे स्वतन्त्र सम्प्रदाय के देवता से प्रभावित हैं। ऋषभनाथ के गोमुख यक्ष एव चक्रेश्वरी यक्षी इसी कोटि के है जो क्रमश शैव एव वैष्णव धर्मों के प्रतिनिधि देव हैं।

आगम साहित्य, कल्पसूत्र एवं **पउमचरिय** जैसे प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो मे २४ यक्ष-यक्षियो मे से किसी का उल्लेख नही है। छठी-सातवी शती ई० के टीका, निर्युक्ति एव चूर्णि ग्रन्थो मे भी इनका अनुल्लेख है। जैन देवकुल का प्रारम्भिकतम यक्ष-यक्षी युगल सर्वानुभूति (यक्षेश्वर)[4] एव अम्बिका है, जिसे छठी-सातवी शती ई० मे निरूपित किया गया।[5] सर्वानुभूति

---

१ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, बम्बई, १९५९, पृ० २८–२९

२ छठी-सातवी शती ई० की एक स्वतन्त्र अम्बिका मूर्ति अकोटा (गुजरात) से मिली है–शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ३०–३१, फलक १४

३ शाह, यू० पी०, 'इण्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज इन जैन वरशिप', प्रो० ट्रां० ओ० कां०, २०वा अधिवेशन, भुवनेश्वर, अक्तूबर १९५९, पृ०१५१–५२, भट्टाचार्य, बेनायतोश, दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकानोग्राफी, कलकत्ता, १९६८, पृ० ५६, २३५, २४०, २४२, २९७, बनर्जी, जे० एन०, दि डीवलपमेन्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, कलकत्ता, १९५६, पृ० ५६१–६३

४ प्रारम्भ मे यक्ष का नाम पूरी तरह निश्चित न हो पाने के कारण सर्वानुभूति को मातग और गोमेध भी कहा गया।

५ शाह, यू०पी०, पू०नि०, पृ० १४५–४६, शाह, यू०पी०, 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इ०, ख० ३, अं० १, पृ० ७१, शाह, यू०पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० २८–३१

यक्ष एव अम्बिका यक्षी की धारणा जैन आगम एव टीका ग्रन्थो के माणिभद्र-पूर्णभद्र यक्ष और बहुपुत्रिका यक्षी की प्रारम्भिक धारणा से प्रभावित है।[1] ल० छठी से नवी शती ई० के मध्य की जिन मूर्तियो मे सभी जिनो के साथ[2] यही यक्ष-यक्षी युगल आमूर्तित है। इसका कारण यह था कि दसवी-ग्यारहवी शती ई० के पूर्व सर्वानुभूति एव अम्बिका के अतिरिक्त अन्य किसी यक्ष-यक्षी युगल की लाक्षणिक विशेषताए निर्धारित नही हो पायी थी। अकोटा की ऋषभ (ल० छठी शती ई०)[3], भारत कला भवन वाराणसी (२१२) की नेमि (ल० ७ वी शती ई०), पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा की शान्ति एवं नेमि (बी ७५, बी ६५, ८ वी-९ वी शती ई०), धाक की पार्श्व (ल० ७ वी शती ई०)[4], ओसिया के महावीर मन्दिर की ऋषभ (ल० ९ वी शती ई०), तथा अकोटा की अन्य कई ऋषभ एव पार्श्व (७ वी-९ वी शती ई०)[5] मूर्तियो मे यही यक्ष-यक्षी युगल निरूपित है (चित्र २६)। इनमे यक्ष के हाथो मे सामान्यत फल एव धन का थैला[6], और यक्षी के हाथो मे आम्र-लुम्बि एव बालक[7] प्रदर्शित हैं।

अकोटा से ल० छठी-सातवी शती ई० की एक स्वतन्त्र अम्बिका मूर्ति भी मिली है।[8] द्विभुजा सिंहवाहिनी अम्बिका के करो मे आम्रलुम्बि एव फल हैं। एक बालक देवी की गोद मे और दूसरा समीप ही खडा है। अम्बिका के शीर्ष भाग मे सात सर्पफणो वाली पार्श्वनाथ की एक छोटी मूर्ति है, जो यहा अम्बिका के पार्श्व की यक्षी के रूप मे निरूपण की सूचक है।[9] यक्षराज (सर्वानुभूति) एव अम्बिका की लाक्षणिक विशेषताओ का सर्वप्रथम निरूपण बप्पभट्टिसूरि (७४३–८३८ ई०) की चतुर्विशतिका मे प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ मे यक्षो से सेव्यमान और गजारूढ यक्षराज की आराधना समृद्धि एव धन के देवता के रूप मे की गयी है। यद्यपि यक्षराज के हाथ में धन के थैले का उल्लेख नही है,[10] पर सम्भवत समृद्धि के देवता के रूप मे उल्लेख के कारण ही मूर्तियो मे सर्वानुभूति के साथ ल० छठी-सातवी शती ई० मे धन का थैला प्रदर्शित किया गया। यहा यक्षराज पार्श्व से सम्बद्ध है। अम्बा देवी का ध्यान नेमि एव महावीर दोनो के साथ किया गया है। शीर्ष भाग मे आम्रफल के गुच्छको से शोभित और सिंह पर आरूढ अम्बा बालको से युक्त है।[11] अम्बा के कर मे आम्रलुम्बि का उल्लेख नही है। सम्भवत. इसी कारण प्रारम्भिक मूर्तियो मे अम्बिका के साथ आम्रलुम्बि का प्रदर्शन नियमित नही था। धरणपट्ट (पद्मावती) का धरणेन्द्र की पत्नी के रूप में उल्लेख है, जो सर्प से युक्त है।[12] इसका उल्लेख अजितनाथ के साथ किया गया है। **हरिवंशपुराण** (७८३ ई०) मे सिंहवाहिनी अम्बिका और चक्रधारण करनेवाली अप्रतिचक्रा यक्षियो के उल्लेख हैं।[13] **महापुराण** (पुष्पदन्तकृत, ल० ९६० ई०) मे चक्रेश्वरी, अम्बिका, सिद्धायिका, गौरी और गान्धारी देवियो की आराधना की गई है।[14]

---

१ शाह, यू०पी०, 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इं०, ख० ३, अ० १, पृ० ६२

२ ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व।

३ शाह, यू०पी, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० २८–२९

४ स्ट०जै०आ०, पृ० १७

५ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ३५–३९

६ भारत कला भवन, वाराणसी की मूर्ति मे यक्ष के हाथो मे अभयमुद्रा-पद्म एव पात्र हैं। मथुरा सग्रहालय की मूर्ति (बी ६५) मे फल के स्थान पर प्याला है।

७ भारत कला भवन, वाराणसी एव मथुरा सग्रहालय (बी ६५) की मूर्तियो मे आम्रलुम्बि के स्थान पर पुष्प प्रदर्शित है।

८ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ३०–३१

९ ल० १० वीं शती ई० मे सर्वानुभूति (या कुबेर या गोमेध) और अम्बिका को नेमिनाथ से सम्बद्ध किया गया।

१० चतुर्विशतिका २३ ९२, पृ० १५३

११ चतुर्विशतिका २२.८८, पृ० १४३, २४.९६, पृ० १६२

१२ वही, २.८, पृ० १८

१३ हरिवंशपुराण ६६.४४

१४ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', ज०ओ०इं०, ख० २०, अ० ३, पृ० ३०४–०५

ल० आठवी-नवी शती ई० मे २४ यक्ष-यक्षी युगलो की सूची तैयार हुई। प्रारम्भिकतम सूचिया **कहावली** (श्वेतांबर),[1] **तिलोयपण्णत्ति** (दिगंबर)[2] एवं **प्रवचनसारोद्धार** (श्वेतांबर)[3] मे मिलती हैं। २४ यक्ष-यक्षी युगलो की स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषताएं ग्यारहवी-बारहवी शती ई० मे निर्धारित हुई। ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की २४ यक्ष-यक्षी युगलो की सूची प्रारम्भिक सूची से, यक्ष-यक्षियो के नामो के सन्दर्भ मे, कुछ भिन्न हैं। **तिलोयपण्णत्ति** के ब्रह्मेश्वर एवं किंपुरुष यक्षो और वज्राकुशा, जया एव सोलसा यक्षियो के नाम परवर्ती सूची मे नही प्राप्त होते। चक्रेश्वरी एव अप्रति-चक्रेश्वरी नाम से एक ही यक्षी का **तिलोयपण्णत्ति** मे दो बार क्रमश पहली और छठीं यक्षियो के रूप मे उल्लेख है।[4] **प्रवचनसारोद्धार** की सूची मे मनुज एव सुरकुमार यक्षो और ज्वाला, श्रीवत्सा, प्रवरा एव अच्छुप्ता यक्षियो के नाम ऐसे हैं जो परवर्ती ग्रन्थो मे नही मिलते। परवर्ती ग्रन्थो मे उनके स्थान पर यक्षेश्वर, कुमार, भृकुटि, मानवी, चण्डा एव नरदत्ता के नामोल्लेख हैं। **प्रवचनसारोद्धार** मे छठी यक्षी का नाम अच्युता और बीसवी यक्षी का अच्छुप्ता दिया है। परवर्ती ग्रन्थो मे छठी यक्षी का नाम तो अच्युता ही है, पर बीसवी यक्षी का नाम नरदत्ता है।

सर्वप्रथम **निर्वाणकलिका** (११ वी-१२ वी शती ई०) मे २४ यक्ष-यक्षी युगलो की स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषताए विवेचित हुई। बारहवी शती ई० के **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** (श्वेतांबर), **प्रवचनसारोद्धार** पर सिद्धसेनसूरि की टीका (श्वेतांबर) एव **प्रतिष्ठासारसंग्रह** (दिगंबर) मे भी २४ यक्ष-यक्षियो की लाक्षणिक विशेषताएं निरूपित हैं। बारहवी शतीई० के बाद अन्य कई ग्रन्थो मे भी २४ यक्ष-यक्षी युगलो के प्रतिमानिरूपण से सम्बन्धित उल्लेख हैं। इनमे **पद्मानन्दमहाकाव्य** (या **चतुर्विंशति जिनचरित्र**-श्वेतांबर, १२४१ ई०), **मन्त्राधिराजकल्प** (श्वेतांबर, १२ वी-१३ वी शती ई०), **आचार-दिनकर** (श्वेतांबर, १४११ ई०), **प्रतिष्ठासारोद्धार** (दिगबर, १२२८ ई०) एव **प्रतिष्ठातिलकम** (**नेमिचन्द्र सहिता** या **अर्हत् प्रतिष्ठासारसग्रह**-दिगबर, १५४३ ई०) प्रमुख हैं। कुछ जैनेतर ग्रन्थो मे भी २४ यक्ष एव यक्षियो की लाक्षणिक विशेषताएं निरूपित हैं। इनमे **अपराजितपृच्छा** (दिगबर परम्परा पर आधारित, ल० १३ वी शती ई०) एव **रूपमण्डन** और **देवतामूर्तिप्रकरण** (श्वेतांबर परम्परा पर आधारित, ल० १५ वी शती ई०) प्रमुख हैं।

उपर्युक्त ग्रन्थो के आधार पर २४ यक्ष एव यक्षियो की सूचिया निम्नलिखित हैं :

२४-यक्ष—गोमुख, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षेश्वर (या ईश्वर),[5] तुम्बरु (या तुम्बर), कुसुम (या पुष्प), मातग (या वरनन्दि), विजय (श्याम-दिगबर), अजित, ब्रह्म, ईश्वर, कुमार, षण्मुख (चतुर्मुख-दिगबर), पाताल, किन्नर, गरुड, गन्धर्व, यक्षेन्द्र (खेन्द्र-दिगबर), कुबेर (या यक्षेश), वरुण, भृकुटि, गोमेध, पार्श्व[6] (धरण-दिगबर) एव मातग २४ यक्ष हैं।[7]

---

१ शाह, यू० पी०, 'इन्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज इन जैन वरशिप', **प्रो०ट्रा०ओ०कां०**, २० वा अधिवेशन, भुवनेश्वर, १९५९, पृ० १४७

२ **तिलोयपण्णत्ति** ४ ९३४–३९

३ **प्रवचनसारोद्धार** ३७५–७८

४ यह भूल यक्षियो की सूची मे दूसरी से सातवी यक्षियो के नामोल्लेख मे महाविद्याओ के नामो के क्रम के अनुकरण के कारण हुई है।

५ श्वेतांबर परम्परा मे ईश्वर और यक्षेश्वर, तथा दिगबर परम्परा मे केवल यक्षेश्वर नाम से उल्लेख है।

६ **प्रवचनसारोद्धार** मे यक्ष का नाम वामन है।

७ २४ यक्षों की उपर्युक्त सूची को ध्यान से देखने पर एक बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है कि २४ यक्षो मे से कई को दो बार एक ही नाम या कुछ भिन्न नामो के साथ निरूपित किया गया। इनमे मातंग, ईश्वर, कुमार (या षण्मुख) एव यक्षेश्वर (या यक्षेन्द्र या यक्षेश) मुख्य हैं। भृकुटि नाम से यक्ष और यक्षी दोनो के उल्लेख हैं।

२४—यक्षियां—चक्रेश्वरी (या अप्रतिचक्रा),[१] अजिता[२] (रोहिणी-दिगंबर), दुरितारी (प्रज्ञप्ति-दिगंबर), कालिका[३] (वज्रश्रृंखला-दिगंबर), महाकाली[४] (पुरुषदत्ता-दिगंबर),[५] अच्युता[६] (मनोवेगा-दिगंबर), शान्ता (काली-दिगंबर), भृकुटि (ज्वालामालिनी-दिगंबर), सुतारा[७] (महाकाली-दिगंबर), अशोका[८] (मानवी-दिगंबर), मानवी (गौरी-दिगंबर), चण्डा[९] (गान्धारी-दिगंबर), विदिता[१०] (वैरोटी-दिगंबर), अंकुशा[११] (अनन्तमती-दिगंबर), कन्दर्पा[१२] (मानसी), निर्वाणी (महामानसी-दिगंबर), बला[१३] (जया-दिगंबर), धारणी[१४] (तारावती[१५]-दिगंबर), वैरोट्या[१६] (अपराजिता-दिगंबर), नरदत्ता[१७] (बहुरूपिणी-दिगंबर), गान्धारी[१८] (चामुण्डा[१९]-दिगंबर), अम्बिका (या आम्रा या कुष्माण्डिनी), पद्मावती एवं सिद्धायिका (या सिद्धायिनी) २४ यक्षियां हैं।[२०]

प्रतिमा-निरूपण सम्बन्धी ग्रन्थों में अधिकांश यक्ष एवं यक्षी चार भुजाओं वाले हैं। दिगंबर परम्परा में अम्बिका एवं सिद्धायिका यक्षियों को द्विभुज बताया गया है। चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी, मानसी एवं पद्मावती यक्षियां छह या अधिक भुजाओं वाली हैं। यक्षियों की तुलना में यक्ष अधिक उदाहरणों में बहुभुज (६ से १२ भुजाओं वाले) हैं। बहुभुज यक्षों में महायक्ष, त्रिमुख, ब्रह्म, कुमार, चतुर्मुख, षण्मुख, पाताल, किन्नर, यक्षेन्द्र, कुबेर, वरुण, भृकुटि एवं गोमेध मुख्य हैं। केवल मातंग यक्ष द्विभुज है। अधिकांश यक्ष और यक्षियों की दो भुजाओं में अभय-(या वरद-) मुद्रा एवं फल[२१] (या अक्षमाला या जलपात्र) प्रदर्शित हैं।

टी० एन० रामचन्द्रन ने अपनी पुस्तक में दक्षिण भारत के तीन ग्रन्थों के आधार पर यक्ष-यक्षी युगलों का प्रतिमा-निरूपण किया है।[२२] एक ग्रन्थ दिगंबर परम्परा का है और दो अन्य श्वेतांबर परम्परा के हैं। श्वेतांबर परम्परा के एक ग्रन्थ का नाम **यक्ष-यक्षी-लक्षण** है।

मूर्तिगत साक्ष्य

ग्रन्थों में २४ यक्ष और यक्षियों की लाक्षणिक विशेषताएं ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० में निर्धारित हुईं। पर शिल्प में ल० दसवीं शती ई० में ही ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं महावीर के साथ सर्वानुभूति एवं अम्बिका के स्थान

१ कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों में अप्रतिचक्रा नाम से उल्लेख है।

२ **मन्त्राधिराजकल्प** में यक्षी का नाम विजया है।

३ श्वेतांबर ग्रन्थों में इसे काली भी कहा गया है।

४ **मन्त्राधिराजकल्प** में यक्षी का नाम सम्मोहिनी है।

५ दिगंबर परम्परा में नरदत्ता भी कहा गया है।

६ **आचारदिनकर** में श्यामा और **मन्त्राधिराजकल्प** में मानसी नामों से उल्लेख है।

७ **मन्त्राधिराजकल्प** में चाण्डालिका नाम है।

८ **मन्त्राधिराजकल्प** में गोमेधिका नाम से उल्लेख है।

९ कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों में प्रचण्डा एवं अजिता नामों से भी उल्लेख हैं।

१० **आचारदिनकर** में विजया नाम है।

११ **मन्त्राधिराजकल्प** में वरभृत नाम है।

१२ **प्रवचनसारोद्धार** में पन्नगा नाम है।

१३ कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों में अच्युता एवं गान्धारिणी नामों से उल्लेख हैं।

१४ श्वेतांबर ग्रन्थों में इसे काली भी कहा गया है।

१५ दिगंबर ग्रन्थों में विजया भी कहा गया है।

१६ कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों में वनजात देवी और धरणप्रिया नामों से भी उल्लेख है।

१७ कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों में वरदत्ता, अच्छुप्ता एवं सुगन्धि नाम दिये हैं।

१८ **मन्त्राधिराजकल्प** में मालिनी नाम है।

१९ दिगंबर ग्रन्थों में कुसुममालिनी भी कहा गया है।

२० दिगंबर ग्रन्थों की सूचियों में यक्षियों के नामों में एकरूपता और श्वेतांबर ग्रन्थों की सूचियों में यक्षियों के नामों में भिन्नता दृष्टिगत होती है।

२१ यक्ष और यक्षियों के एक हाथ में फल (या मातुलिंग) का प्रदर्शन विशेष लोकप्रिय था।

२२ रामचन्द्रन, टी० एन०, **तिरुपरुत्तिकुणरम ऐण्ड इट्स टेम्पल्स**, बु०म०ग०म्यू०न्यू०सि०, ख० १, भाग ३, मद्रास, १९३४

पर पारम्परिक और स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी युगलो का निरूपण प्रारम्भ हो गया, जिसके उदाहरण मुख्यत. उत्तर प्रदेश एव मध्य प्रदेश मे देवगढ, राज्य सग्रहालय, लखनऊ, ग्यारसपुर, खजुराहो एव कुछ अन्य स्थलो पर है। इन स्थलो को दसवी शती ई० की मूर्तियो मे ऋषभ एव नेमि के साथ क्रमश. गोमुख चक्रेश्वरी एव सर्वानुभूति-अम्बिका उत्कीर्णित हैं (चित्र ७, २७)। पर शान्ति एव महावीर के स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी पारम्परिक नहीं हैं। ओसिया के महावीर और ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिरो पर धरणेन्द्र एव पद्मावती की स्वतन्त्र मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।

छठी शती ई० से आठवी-नवी शती ई० तक की जिन मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी के चित्रण वहुत नियमित नहीं थे। पर नवी शती ई० के वाद विहार, उडीसा एव वगाल के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्रो की जिन मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी युगलो के नियमित अकन हुए हैं। यह भी ज्ञातव्य है कि स्वतन्त्र अकनो मे यक्ष की तुलना मे यक्षियो के चित्रण विशेष लोकप्रिय थे। २४ यक्षियो के सामूहिक अकन के हमे तीन उदाहरण मिले हैं।[१] पर २४ यक्षो के सामूहिक निरूपण का सम्भवत. कोई प्रयास नही किया गया। यक्ष एव यक्षियो के उत्कीर्णन की दृष्टि से उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रो मे अलग-अलग स्थिति रही है, जिसका अतिसक्षेप मे उल्लेख यहा अपेक्षित है।

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र मे श्वेतावर स्थलो पर महाविद्याओ की विशेष लोकप्रियता के कारण यक्ष एव यक्षियो की मूर्तिया तुलनात्मक दृष्टि से वहुत कम हैं। इस क्षेत्र मे अम्बिका की सर्वाधिक मूर्तिया हैं। वस्तुत. अम्बिका की मूर्तिया (५वी-६ठी शती ई०) सवसे पहले इसी क्षेत्र मे उत्कीर्ण हुई। अम्बिका के वाद चक्रेश्वरी, पद्मावती (कुम्भारिया, विमलवसही) एव सिद्धायिका की मूर्तिया हैं। यक्षो मे केवल वरुण (?), सर्वानुभूति, गोमुख[२] एव पार्श्व की ही मूर्तिया मिली हैं। स्मरणीय है कि सर्वानुभूति एव अम्बिका इस क्षेत्र के सर्वाधिक लोकप्रिय यक्ष-यक्षी युगल थे, जिन्हे सभी जिनो के साथ निरूपित किया गया।[३] केवल कुछ ही उदाहरणो मे ऋषभ (गोमुख-चक्रेश्वरी),[४] पार्श्व (धरणेन्द्र-पद्मावती)[५] एव महावीर (मातग-सिद्धायिका)[६] के साथ पारम्परिक और स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। दिगवर जिन मूर्तियो मे स्वतन्त्र लक्षणों वाले पारम्परिक यक्ष और यक्षियो के चित्रण अधिक लोकप्रिय थे।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—यक्ष एव यक्षियो के मूर्तिविज्ञानपरक विकास के अध्ययन की दृष्टि से यह क्षेत्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र मे ल० सातवी-आठवी शती ई० मे जिन मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी के चित्रण प्रारम्भ हुए। इस क्षेत्र की दसवीं से वारहवी शती ई० के मध्य की जिन मूर्तियो मे अधिकाशत पारम्परिक या स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी ही निरूपित हैं। ऋषभ, नेमि एव पार्श्व के साथ अधिकाशत पारम्परिक यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं। सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, शान्ति एव महावीर के साथ भी कभी-कभी स्वतन्त्र लक्षणो वाले, किन्तु अपारम्परिक यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। अन्य जिनो के साथ अधिकाशत. सामान्य लक्षणो वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी के हाथो मे अभय-(या वरद-)मुद्रा और कलश (या फल या पुष्प) प्रदर्शित हैं। इस क्षेत्र मे चक्रेश्वरी एव अम्बिका की सर्वाधिक स्वतन्त्र मूर्तिया

---

१ ये उदाहरण क्रमश देवगढ (मन्दिर १२), पतियानदाई (अम्बिका मूर्ति) और वारभुजी गुफा से मिले हैं।

२ राजपूताना सग्रहालय, अजमेर (२७०), घाणेराव (महावीर मन्दिर) एव तारगा (अजितनाथ मन्दिर)

३ गजारूढ सर्वानुभूति कभी द्विभुज और कभी चतुर्भुज है। द्विभुज होने पर उसकी दोनो भुजाओ मे या तो धन का थैला प्रदर्शित है, या फिर एक मे फल (या वरद या-अभय-मुद्रा) और दूसरे मे धन का थैला हैं। चतुर्भुज सर्वानुभूति के हाथो मे सामान्यत वरद-(या अभय-) मुद्रा, अकुश, पाश और धन का थैला (या फल) प्रदर्शित हैं। सिंहवाहिनी अम्बिका सामान्यत द्विभुजा है और उसके हाथो मे आम्रलुम्वि (या फल) एव वालक स्थित है। चतुर्भुज अम्बिका की तीन भुजाओ मे आम्रलुम्वि एव चौथे मे वालक प्रदर्शित हैं।

४ कुम्भारिया (शान्तिनाथ एव महावीर मन्दिर के वितान), चन्द्रावती एव विमलवसही (गर्भगृह एव देवकुलिका २५) की मूर्तिया

५ ओसिया के महावीर मन्दिर के वलानक एव विमलवसही (देवकुलिका ४) की मूर्तिया

६ कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के वितान की मूर्ति

हैं (चित्र ४४-४६, ५०, ५१, ५३)। साथ ही रोहिणी[1], पद्मावती[2] एवं सिद्धायिका[3] की भी कुछ मूर्तिया प्राप्त हुई हैं (चित्र ४७, ५५, ५७)। चक्रेश्वरी एव पद्मावती की मूर्तियो मे सर्वाधिक विकास दृष्टिगत होता है। अम्बिका का स्वरूप अन्य क्षेत्रो के समान इस क्षेत्र मे भी स्थिर रहा। यक्षो मे केवल सर्वानुभूति एव धरणेन्द्र की ही कुछ स्वतन्त्र मूर्तिया मिली हैं (चित्र ४९)।[4] इस क्षेत्र मे २४ यक्षियो के सामूहिक चित्रण के भी दो उदाहरण क्रमश. देवगढ (मन्दिर १२) एव पतियानदाई (अम्बिका मूर्ति) से मिले हैं।

बिहार-उडीसा-बंगाल—इस क्षेत्र की जिन मूर्तियो मे यक्ष यक्षी युगलो के चित्रण की परम्परा लोकप्रिय नहीं थी। केवल दो उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।[5] उडीसा मे नवमुनि एव बारभुजी गुफाओ (११वी-१२वीं शती ई०) की क्रमश. सात और चौवीस जिन मूर्तियो मे जिनो के नीचे उनकी यक्षिया निरूपित है (चित्र ५९)। चक्रेश्वरी एव अम्बिका की कुछ स्वतन्त्र मूर्तिया भी मिली है।

सामूहिक अकन—जैन ग्रन्थो मे नवी शती ई० तक यक्ष एव यक्षियो की केवल सूची ही तैयार थी। तथापि सूची के आधार पर ही नवी शती ई० मे शिल्प मे २४ यक्षियो को मूर्त अभिव्यक्ति प्रदान की गई। २४ यक्षियो के सामूहिक अकनो के हमे तीन उदाहरण क्रमश देवगढ (मन्दिर १२, उ० प्र०), पतियानदाई (अम्बिका मूर्ति, म० प्र०) एव बारभुजी गुफा (उडीसा) से मिले हैं। ये तीनो ही दिगबर स्थल हैं। यक्षो के सामूहिक चित्रण का सम्भवत. कोई प्रयास नही किया गया। यहा यक्षियो के सामूहिक अकनो की सामान्य विशेषताओ का सक्षेप मे उल्लेख किया जायगा।

देवगढ के मन्दिर १२ (शान्तिनाथ मन्दिर, ८६२ई०)[6] की भित्ति पर का २४ यक्षियो का सामूहिक चित्रण इस प्रकार का प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण है (चित्र ४८)।[7] सभी यक्षिया त्रिभंग मे खडी है और उनके शीर्ष भाग मे सम्बन्धित जिनो की छोटी मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।[8] सभी उदाहरणों में जिनो एव यक्षियो के नाम उनकी आकृतियो के नीचे अभिलिखित हैं। अम्बिका के अतिरिक्त अन्य किसी यक्षी के निरूपण मे जैन ग्रन्थो के निर्देशो का पालन नही किया गया है। देवगढ के मन्दिर १२ की यक्षी मूर्तियो के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि देवगढ मे नवी शतीई० तक केवल अम्बिका का ही स्वरूप नियत हो सका था। सात यक्षियों के निरूपण मे पूर्व परम्परा मे प्रचलित अप्रतिचक्रा, वज्रशृखला, नरदत्ता, महाकाली, वैरोट्या, अच्छुप्ता एव महामानसी महाविद्याओ की लाक्षणिक विशेषताओ के पूर्ण या आशिक अनुकरण हैं, पर उनके नाम परिवर्तित कर दिये गये हैं। यक्षियो पर महाविद्याओ के प्रभाव का निर्धारण बप्पभट्टि की चतुर्विशतिका के विवरणो एव ओसिया के महावीर मन्दिर की महाविद्या मूर्तियो के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर किया गया है। देवगढ समूह की अन्य यक्षिया विशिष्टतारहित एवं सामान्य लक्षणो वाली हैं। इन द्विभुज यक्षियों की एक भुजा में चामर, पुष्प एव कलश मे से कोई एक सामग्री प्रदर्शित है और दूसरी भुजा या तो नीचे लटकती या फिर जानु पर स्थित है। समान विवरणो वाली दो चतुर्भुज मूर्तियो मे यक्षी की दो भुजाओं मे कलश प्रदर्शित हैं और अन्य मे या तो पुष्प हैं या फिर एक में पुष्प है और दूसरा जानु पर स्थित है। सुपार्श्व के साथ काली के स्थान पर 'मयूरवाहि' नाम की चतुर्भुजा यक्षी उत्कीर्ण है। मयूर-वाहिनी यक्षी की भुजा मे पुस्तक प्रदर्शित है जो स्पष्टत सरस्वती के स्वरूप का अनुकरण है।

---

१ देवगढ एव ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर)

२ खजुराहो, देवगढ, मथुरा एव शहडोल

३ खजुराहो एव देवगढ

४ खजुराहो, देवगढ़ एव ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर)

५ एक मूर्ति बगाल और दूसरी बिहार से मिली हैं।

६ मन्दिर १२ शान्तिनाथ को समर्पित है।

७ मन्दिर १२ के अर्धमण्डप के एक स्तम्भ पर सवत् ९१९ (८६२ ई०) का एक लेख है। पर अर्धमण्डप निश्चित ही मूल मन्दिर के कुछ बाद का निर्माण है, अत मूल मन्दिर (मन्दिर १२) को ८६२ ई० के कुछ पहले (ल० ८४३ ई०) का निर्माण स्वीकार किया जा सकता है—द्रष्टव्य, जि०इ०दे०, पृ० ३६

८ जि०इ०दे०, पृ० ९८–११२

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि देवगढ मे प्रत्येक जिन के साथ एक यक्षी को कल्पना तो की गई, परन्तु उनकी प्रतिमा लाक्षणिक विशेषताओ के उस समय (९वी शती ई०) तक निश्चित न हो पाने के कारण अम्बिका के अतिरिक्त अन्य यक्षियों के निरूपण मे महाविद्याओ एव सरस्वती के लाक्षणिक स्वरूपो के अनुकरण किये गये और कुछ मे सामान्य लक्षणो वाली यक्षियो को आमूर्तित किया गया। उपर्युक्त धारणा की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि देवगढ की ही स्वतन्त्र जिन मूर्तियो मे अम्बिका के अतिरिक्त मन्दिर १२ की अन्य किसी भी यक्षी को नही उत्कीर्ण किया गया है।

नामो के आधार पर देवगढ के मन्दिर १२ की यक्षियो को तीन वर्गों में बाटा जा सकता है। पहले वर्ग मे वे पाच यक्षिया हैं जिन्हे पारम्परिक जिनो के साथ प्रदर्शित किया गया है। इनमे ऋषभ, अनन्त, अर, अरिष्टनेमि एवं पार्श्व की चक्रेश्वरी, अनन्तवीर्या,[1] तारादेवी,[2] अम्बायिका एव पद्मावती यक्षिया हैं। दूसरे वर्ग मे ऐसी चार यक्षिया हैं जिन्हे अपने पारम्परिक जिनो के साथ नही प्रदर्शित किया गया है। इनमें जालामालिनी,[3] अपराजिता (वर्धमान), सिधइ (मुनिसुव्रत) एव वहुरूपी (पुष्पदन्त) यक्षिया हैं। जैन परम्परा के अनुसार ज्वालामालिनी चन्द्रप्रभ की, अपराजिता मल्लि की, सिधइ (या सिद्धायिका) महावीर की एव वहुरूपी (वहुरूपिणी) मुनिसुव्रत की यक्षिया है। तीसरे वर्ग मे ऐसी यक्षिया हैं जिनके नाम किसी जैन ग्रन्थ मे नही प्राप्त होते। ये भगवती सरस्वती (अभिनन्दन), मयूरवाहि (सुपार्श्व), हिमादेवी (मल्लि), श्रीयादेवी (शान्ति), सुरक्षिता (धर्म), सुलक्षणा (विमल), अमोगरतिण[4] (वासुपूज्य), वहनि (श्रेयांश), श्रीयादेवी (शीतल), सुमालिनी (चन्द्रप्रभ) एव सुलोचना (पद्मप्रभ) यक्षिया हैं।

पतियानदाई मन्दिर (सतना, म० प्र०) से ग्यारहवीं शती ई० की एक अम्बिका मूर्ति मिली है, जिसके परिकर मे अम्बिका के अतिरिक्त अन्य २३ यक्षियो की चतुर्भुज मूर्तिया उत्कीर्ण है। यह मूर्ति सम्प्रति इलाहावाद सग्रहालय (२९३) मे है (चित्र ५३)।[5] अम्बिका एव परिकर की सभी २३ यक्षिया त्रिभंग मे खडी हैं। आकृतियो के नीचे उनके नाम अभिलिखित हैं। परिकर मे दिगवर जिन मूर्तिया भी वनी हैं। सिंहवाहना अम्बिका की चारो भुजाएं खण्डित है। देवी के वायें और दाहिने पार्श्वों की यक्षियो के नीचे क्रमश प्रजापती और वज्रसकला उत्कीर्ण है। समीप ही दो अन्य यक्षिया निरूपित हैं जिनके नाम स्पष्ट नही हैं। पर एक यक्षी के हाथ मे चक्र एव दूसरी के साथ गजवाहन वने हैं। ये निश्चित ही चक्रेश्वरी और रोहिणी की मूर्तिया हैं। वायीं ओर (ऊपर से नीचे) की यक्षियो की आकृतियो के नीचे क्रमशः जया, अनन्तमती, वैरोटा, गौरी, महाकाली, काली और पुषदधी नाम उत्कीर्ण हैं। दाहिनी ओर (ऊपर से नीचे) अपराजिता, महामुनुसि, अनन्तमती, गान्धारी, मनुसी, जालमालिनी और मनुजा नाम की यक्षिया हैं। मूर्ति के ऊपरी भाग मे (वायें से दाहिने) क्रमश वहुरूपिणी, चामुण्डा, सरसती, पदुमावती और विजया नाम की यक्षिया आमूर्तित हैं। यक्षियो के नाम सामान्यत. तिलोयपण्णत्ति की सूची से मेल खाते हैं। परिकर की २३ यक्षिया पारम्परिक क्रम मे नहीं निरूपित हैं। उनकी लाक्षणिक विशेषताए भी वहुत स्पष्ट नही है। अनन्तनाथ की यक्षी अनन्तमती का नाम दो वार उत्कीर्ण है। इसके अतिरिक्त प्रजापति, जया, पुपदधी, मनुजा एव सरस्वती नाम ऐसे हैं जिनका उल्लेख कहीं भी यक्षियो के रूप मे नही प्राप्त होता। इसके अतिरिक्त २४ यक्षियो की पारम्परिक सूची मे से प्रज्ञप्ति, मनोवेगा, मानवी एवं सिद्धायिका के नाम इस मूर्ति मे नही प्राप्त होते।

---

१ दिगवर परम्परा मे यक्षी का नाम अनन्तमती है।

२ दिगवर ग्रन्थ मे अर की यक्षी का नाम तारावती है।

३ जिन का नाम स्पष्ट नहीं है। दिगवर परम्परा मे ज्वालामालिनी चन्द्रप्रभ की यक्षी है। देवगढ समूह मे चन्द्रप्रभ के साथ सुमालिनी उत्कीर्ण है।

४ साहनी ने इसे अमोगरोहिणी पढा है–जि०इ०दे०, पृ० १०३

५ कनिंघम, ए०, आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया रिपोर्ट, वर्ष १८७३–७५, खं० ९, पृ० ३१-३३, चन्द्र, प्रमोद, **स्टोन स्कल्पचर इन दि एलाहावाद म्यूज़ियम**, वम्वई, १९७०, पृ० १६२

वारभुजी गुफा (खण्डगिरि, उडीसा) की २४ यक्षियो की मूर्तिया ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की हैं।[1] देवगढ के समान यहा भी यक्षियो की मूर्तिया सम्बन्धित जिनो की मूर्तियो के नीचे उत्कीर्ण हैं (चित्र ५९)। जिन मूर्तिया लाछनो से युक्त हैं। द्विभुज से विंशतिभुज यक्षिया ललितमुद्रा या ध्यानमुद्रा मे आसीन है।[2] २४ यक्षियो मे केवल चक्रेश्वरी, अम्बिका एव पद्मावती के निरूपण मे ही परम्परा का कुछ पालन किया गया है। कुछ यक्षियो के निरूपण मे ब्राह्मण एव वौद्ध देवकुलो की देवियो के लक्षणो का अनुकरण किया गया है। शान्ति, अर एव नमि की यक्षियो के निरूपण मे क्रमश गजलक्ष्मी (महालक्ष्मी), तारा (वौद्धदेवी) एव ब्रह्माणी (त्रिमुख एव हसवाहना) के प्रभाव स्पष्ट हैं। अन्य यक्षिया स्थानीय कलाकारो की कल्पना को देन प्रतीत होती हैं। यहा यह उल्लेखनीय है कि देवगढ समूह की २४ यक्षियो के विपरीत वारभुजी गुफा की यक्षिया स्वतन्त्र लक्षणो वाली हैं।

अब प्रत्येक जिन के यक्ष-यक्षी युगल के प्रतिमाविज्ञान का अलग-अलग अध्ययन किया जायगा।

(१) गोमुख यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

गोमुख जिन ऋषभनाथ का यक्ष है। श्वेतावर एव दिगवर दोनो ही परम्परा के ग्रन्थो मे गोमुख को चतुर्भुज कहा गया है।

श्वेतांवर परम्परा—निर्वाणकलिका के अनुसार गो के मुख वाले गोमुख यक्ष का वाहन गज तथा आयुध दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा एव अक्षमाला और वायें मे मातुलिंग (फल) एव पाश हैं।[3] अन्य ग्रन्थो मे भी यही लक्षण प्राप्त होते हैं।[4] केवल आचारदिनकर मे वाहन वृषभ है और दोनो पार्श्वों मे गज एव वृषभ के उत्कीर्णन का निर्देश है।[5] रूपमण्डन मे गोमुख को गजानन कहा गया है।[6]

दिगवर परम्परा—दिगवर परम्परा मे गोमुख का शीर्षभाग धर्मचक्र चिह्न से लाछित, वाहन वृषभ और करो के आयुध परशु, फल, अक्षमाला एव वरदमुद्रा हैं।[7] स्पष्टत. परशु के अतिरिक्त शेष आयुध श्वेतावर परम्परा के समान हैं।[8]

इस प्रकार श्वेतावर एव दिगवर ग्रन्थो मे केवल वाहन (गज या वृषभ) एव आयुधो (पाश या परशु) के प्रदर्शन के सन्दर्भ मे ही भिन्नता दृष्टिगत होती है। आचारदिनकर मे गोमुख के पार्श्वों मे गज एव वृषभ के चित्रण का निर्देश सम्भवत वाहनो के सन्दर्भ मे दोनो परम्पराओ के समन्वय का प्रयास है।

---

१ मित्रा, देवला, 'शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, ख० १, अ० २, पृ० १३०–३३

२ मुनिसुव्रत की यक्षी को लेटी हुई मुद्रा मे प्रदर्शित किया गया है।

३ तथा तत्तीर्थोत्पन्नगोमुखयक्ष हेमवर्णंगजवाहन चतुर्भुज वरदाक्षसूत्रयुतदक्षिणपाणि मातुलिंगपाशान्वितवामपाणि चेति। निर्वाणकलिका १८ १

४ त्रि०श०पु०च० १ ३ ६८०–८१, पद्मानन्दमहाकाव्य १४ २८०–८१, मन्त्राधिराजकल्प ३ २६

५ स्वर्णाभो वृषवाहनो द्विरदगोयुक्तश्चतुर्वाहुभि आचारदिनकर, प्रतिष्ठाधिकार. ३४ १

६ रिषभो (ऋषभे) गोमुखो यक्षो हेमवर्णा गजानना (हेमवर्णो गजानन·)। रूपमण्डन ६.१७। ज्ञातव्य है कि रूपमण्डन मे गोमुख के वाहन (गज) का उल्लेख नही है।

७ चतुर्भुज सुवर्णाभो गोमुखो वृषवाहन.।
हस्तेन परशु धत्ते वीजपूराक्षसूत्रक ॥
वरदान पर सम्यक् धर्मचक्रं च मस्तके। प्रतिष्ठासारसग्रह ५ १३–१४
प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १२९, प्रतिष्ठातिलकम् ७ १

८ अपराजितपृच्छा मे पाश ही प्रदर्शित है (२२१ ४३)।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दक्षिण भारत के दोनो परम्परा के ग्रन्थो मे गो के मुख वाले, चतुर्भुज एवं वृषभ पर ललितमुद्रा में आसीन गोमुख के हाथो मे अभय-(या वरद-) मुद्रा, अक्षमाला, परशु एवं मातुलिंग के प्रदर्शन का निर्देश है।[1] श्वेतांबर परम्परा मे यक्ष के शीर्ष भाग मे धर्मचक्र के उत्कीर्णन का भी विधान है। स्पष्ट है कि दक्षिण भारत की श्वेतांबर एव दिगम्बर परम्पराएं गोमुख के निरूपण मे उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा से सहमत है।

मूर्ति-परम्परा

गुजरात-राजस्थान (क) स्वतन्त्र मूर्तियां—इस क्षेत्र मे गोमुख की केवल तीन स्वतन्त्र मूर्तिया मिली हैं। इनमे यक्ष वृषानन एव चतुर्भुज है। दसवी शती ई० की एक मूर्ति घाणेराव (पाली, राजस्थान) के महावीर मन्दिर के पश्चिमी अधिष्ठान पर उत्कीर्ण है। इसमे ललितमुद्रा मे आसीन गोमुख के करो में कमण्डलु, सनालपद्म, सनालपद्म एव वरदमुद्रा प्रदर्शित हैं। ल० दसवी शती ई० की दूसरी मूर्ति हथमा (वाडमेर, राजस्थान) से मिली है और सम्प्रति राजपूताना सग्रहालय अजमेर (२७०) मे है (चित्र ४३)। ललितमुद्रा मे बैठे गोमुख के हाथो मे अभयमुद्रा, परशु, सर्प एव मातुलिंग हैं। यज्ञोपवीत से शोभित यक्ष के मस्तक पर धर्मचक्र भी उत्कीर्ण है।[2] उपर्युक्त दोनो मूर्तियो मे वाहन अनुपस्थित है। बारहवी शती ई० की एक मूर्ति तारगा के अजितनाथ मन्दिर के गूढमण्डप की दक्षिणी भित्ति पर है। यहा गोमुख त्रिभंग मे खडे हैं और उनके समीप ही गजवाहन भी उत्कीर्ण है। यक्ष की एक अवशिष्ट भुजा मे सम्भवत अकुश है।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तिया—इस क्षेत्र की केवल कुछ ही ऋषभ मूर्तियो मे गोमुख निरूपित हैं। राजस्थान की एक ऋषभ मूर्ति (१० वी शती ई०) मे चतुर्भुज गोमुख की तीन भुजाओ मे अभयमुद्रा, परशु एव जलपात्र हैं।[3] बयाना (भरतपुर) की ऋषभमूर्ति (१० वी शती ई०) मे चतुर्भुज गोमुख की दो भुजाओ मे गदा एवं फल हैं।[4] कुम्भारिया के शान्तिनाथ एव महावीर मन्दिरो (११ वी शती ई०) के वितानो पर उत्कीर्ण ऋषभ के जीवनदृश्यो मे भी गोमुख की ललितमुद्रा मे दो चतुर्भुज मूर्तिया हैं। शान्तिनाथ मन्दिर की मूर्ति मे गजारूढ गोमुख की भुजाओ मे वरदमुद्रा, अकुश, पाश एवं धन का थैला प्रदर्शित हैं (चित्र १४)। महावीर मन्दिर की मूर्ति मे दो अवशिष्ट दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा एव अकुश हैं। विमलवसही के गर्भगृह की ऋषभ मूर्ति (१२ वी शती ई०) मे गजारूढ गोमुख के करो मे फल, अकुश, पाश एव धन का थैला हैं। विमलवसही की देवकुलिका २५ की एक अन्य मूर्ति मे गजारूढ गोमुख की भुजाओ मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, पाश एव फल है। यह अकेली मूर्ति है जिसके निरूपण मे श्वेतांबर ग्रन्थो के निर्देशो का पालन किया गया है।[5]

उपर्युक्त मूर्तियो से स्पष्ट है कि ल० दसवी शती ई० मे गुजरात एव राजस्थान मे गोमुख की स्वतन्त्र एव जिन-संयुक्त मूर्तिया उत्कीर्ण हुई। श्वेतांबर स्थलो की मूर्तियो मे परम्परा के अनुरूप गजवाहन एव पाश प्रदर्शित हैं।[6] श्वेतांबर स्थलो की ग्यारहवीं-बारहवी शती ई० की मूर्तियो मे अंकुश एव धन के थैले का प्रदर्शन भी लोकप्रिय था, जो सम्भवत सर्वानुभूति यक्ष का प्रभाव है। इस क्षेत्र की दिगंबर परम्परा की मूर्तियो मे वाहन नही उत्कीर्ण है, पर परशु एव एक उदाहरण मे शीर्ष भाग में धर्मचक्र के उत्कीर्णन मे परम्परा का पालन किया गया है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—इस क्षेत्र से गोमुख की स्वतन्त्र मूर्तिया नही मिली हैं। पर जिन-सयुक्त मूर्तियो मे ऋषभ के साथ गोमुख का चित्रण दसवी शती ई० मे ही प्रारम्भ हो गया था। वाहन का अंकन लोकप्रिय नही था।

---

१ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० १९७

२ भट्टाचार्य, यू० सी०, 'गोमुख यक्ष', ज०यू०पी०हि०सो०, ख० ५, भाग २ (न्यू सिरीज), पृ० ८–

३ यह मूर्ति वोस्टन सग्रहालय (६४ ४८७) मे है।

४ यह मूर्ति भरतपुर राज्य सग्रहालय (६७) मे है–द्रष्टव्य, अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्रसग्रह १५७ १२

५ केवल अक्षमाला के स्थान पर अभयमुद्रा प्रदर्शित है।

६ घाणेराव के महावीर मन्दिर की मूर्ति में ये विशेषताएं नही प्रदर्शित है।

केवल देवगढ के मन्दिर १२ के अर्धमण्डप के उत्तरग (१० वी शती ई०) पर ही चतुर्भुज गोमुख की एक छोटी मूर्ति उत्कीर्ण है। ललितमुद्रा में आसीन यक्ष के करो मे कलश, पद्मकलिका, पद्मकलिका एव फल प्रदर्शित है। यक्ष के करो की सामग्रियाः घाणेराव के महावीर मन्दिर (श्वेतांबर) की गोमुख मूर्ति के समान हैं। वजरामठ (ग्यारसपुर, विदिशा) की ऋषभ मूर्ति (१० वी शती ई०) मे चतुर्भुज गोमुख की भुजाओ मे अभयमुद्रा, परशु, गदा एव जलपात्र है।

खजुराहो की ऋषभ मूर्तियो (१०वी-१२वीं शती ई०) मे गोमुख की द्विभुज और चतुर्भुज मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। चतुर्भुज मूर्तिया सख्या मे अधिक हैं। गोमुख के साथ वृषभवाहन केवल एक ही उदाहरण (स्थानीय सग्रहालय, के ८) मे है। चतुर्भुज गोमुख के तीन सुरक्षित करो मे पद्म, गदा (?) एव धन का थैला हैं। कुछ मूर्तियों मे यक्ष वृषानन भी नही है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की मूर्ति (१०वी शती ई०) मे चतुर्भुज गोमुख के तीन हाथों मे परशु, गदा एवं मातुलिंग हैं। चतुर्भुज गोमुख की ऊपरी भुजाओ मे अधिकाशत परशु एव पुस्तक प्रदर्शित हैं। पर निचली भुजाओं मे वरदमुद्रा एवं धन का थैला,[1] या अभयमुद्रा एव फल (या जलपात्र)[2] हैं। जार्डिन सग्रहालय, खजुराहो की एक मूर्ति मे यक्ष की भुजाओं मे वरदमुद्रा, परशु, शृखला एव जलपात्र हैं। स्थानीय सग्रहालय की एक मूर्ति (के ६) मे यक्ष के तीन हाथों मे सर्प, पद्म एव धन का थैला हैं। छह उदाहरणो मे द्विभुज गोमुख की भुजाओं मे फल एवं धन का थैला हैं।[3] इस प्रकार स्पष्ट है कि खजुराहो मे गोमुख के करो मे परशु, पुस्तक एव धन के थैले का प्रदर्शन लोकप्रिय था। केवल परशु के प्रदर्शन में ही दिगबर परम्परा का पालन किया गया है। गोमुख के साथ पुस्तक का प्रदर्शन खजुराहो के बाहर दुर्लभ है।[4] धन के थैले का प्रदर्शन अन्य स्थलो पर भी प्राप्त होता है, जो सर्वानुभूति यक्ष का प्रभाव है।

देवगढ की दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की ऋषभ मूर्तियो मे गोमुख की द्विभुज[5] एव चतुर्भुज[6] मूर्तिया निरूपित हैं। इनमे यक्ष सर्दव वृषानन है पर वाहन किसी उदाहरण मे नही उत्कीर्ण है। करो मे परशु एवं गदा का प्रदर्शन लोकप्रिय था। द्विभुज गोमुख के हाथो मे परशु (या अभयमुद्रा या गदा) एव फल (या धन का थैला या कलश) हैं। चतुर्भुज गोमुख की निचली भुजाओ मे सर्वदा अभयमुद्रा एव कलश (या फल) प्रदर्शित हैं। पर ऊपरी भुजाओं के आयुधो मे काफी भिन्नता प्राप्त होती है। अधिकाश उदाहरणों[7] मे ऊपरी हाथो मे परशु एव गदा हैं। चार मूर्तियो[8] (११वी-१२वी शती ई०) मे ऊपरी हाथो में छत्र-पद्म (या पद्म) प्रदर्शित हैं। खजुराहो, देवगढ़ एवं घाणेराव (महावीर मन्दिर) की गोमुख मूर्तियो मे पद्म का प्रदर्शन परम्परासम्मत न होते हुए भी श्वेतांबर (घाणेराव का महावीर मन्दिर) एवं दिगंबर दोनो ही स्थलो पर लोकप्रिय था। मन्दिर ५ की मूर्ति मे गोमुख के हाथो में पुष्प एव मुद्गर, मन्दिर १ की मूर्ति में दोनों करो में धन का थैला (चित्र ८), मन्दिर २० की मूर्ति मे गदा एव पुस्तक और मन्दिर १२ की चहारदीवारी की मूर्ति मे गदा (?) एव पद्म प्रदर्शित हैं। मन्दिर ९ की एक मूर्ति (१०वी शती ई०) मे गोमुख के हाथो मे वरदमुद्रा, परशु, व्याख्यानमुद्रा-अक्षमाला एव फल प्रदर्शित हैं। देवगढ़ की यह अकेली मूर्ति है जिसके निरूपण मे अक्षरश दिगबर परम्परा का पालन किया गया है। मन्दिर १९ की एक मूर्ति (११वीं शती ई०) में गोमुख फल, अभयमुद्रा, पद्म एव धन का थैला मे युक्त हैं। मन्दिर १२ की एक मूर्ति (११वी शती ई०) में गोमुख के करो मे अभयाक्ष, स्रुक, पुस्तक एवं कलश प्रदर्शित हैं।

राज्य सग्रहालय, लखनऊ की केवल दो ही ऋषभ मूर्तियो (११वी शती ई०) मे यक्ष वृषानन है। पहली मूर्ति (जे ७८९) में चतुर्भुज गोमुख की तीन अवशिष्ट भुजाओ मे अभयमुद्रा, पद्म एवं कलश प्रदर्शित हैं। दूसरी मूर्ति मे द्विभुज

---

१ स्थानीय सग्रहालय, के ४०, के ६९

२ स्थानीय सग्रहालय, के ८, १६५१

३ मन्दिर १७, जार्डिन संग्रहालय (१६७४, १६०७, १७२५), स्थानीय सग्रहालय (के ७), पार्श्वनाथ मन्दिर के पश्चिमी भाग का जिनालय

४ देवगढ की भी दो मूर्तियो में गोमुख के हाथ में पुस्तक है।

५ दस उदाहरण · मन्दिर ११, १६, १९, २४, २५

६ बीस उदाहरण

७ नौ उदाहरण

८ मन्दिर २, १२, २०, २४

गोमुख अभयमुद्रा एव कलश से युक्त है। सग्रहालय की चार अन्य ऋषम मूर्तियो मे यक्ष वृषानन नही है और उसकी एक भुजा मे सामान्यत धन का थैला है।

दक्षिण भारत—दक्षिण भारत मे ऋपम के यक्ष को वृषानन नही निरूपित किया गया है। वह सदैव चतुर्भुज है। यक्ष के साथ वाहन का चित्रण लोकप्रिय नही था। कन्नड शोध सस्थान सग्रहालय की एक ऋषम मूर्ति मे चतुर्भुज यक्ष के करो मे अभयमुद्रा, अक्षमाला, परशु एव फल हैं।[1] अयहोल (कर्नाटक) के जैन मन्दिर (८वी-९वी शती ई०) की चतुर्भुज मूर्ति मे ललितमुद्रा मे विराजमान यक्ष के हाथों मे पद्मकलिका, परशु, पाश एव वरदमुद्रा हैं।[2] कर्नाटक के शान्तिनाथ वस्ती की एक मूर्ति मे वृपमारूढ यक्ष के करो मे पद्म, परशु, अक्षमाला एव फल प्रदर्शित हैं।[3] उपर्युक्त मूर्तियो से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत मे मुख्य आयुधो (परशु, अक्षमाला एव फल) के प्रदर्शन मे परम्परा का निर्वाह किया गया है। यक्ष की भुजाओ मे पद्म और पाश का प्रदर्शन उत्तर भारतीय परम्परा से प्रभावित प्रतीत होता है।

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उत्तर भारत मे दसवी शती ई० मे गोमुख यक्ष की स्वतन्त्र एव जिन-सयुक्त मूर्तियो का निर्माण प्रारम्भ हुआ। विहार, उडीसा एव वगाल से यक्ष की एक भी मूर्ति नही मिली है। सर्वाधिक मूर्तिया उत्तर प्रदेश एव मध्य प्रदेश मे उत्कीर्ण हुई। पर स्वतन्त्र मूर्तियां केवल गुजरात एव राजस्थान से ही मिली हैं। ग्रन्थो के समान शिल्प मे भी गोमुख का चतुर्भुज स्वरूप ही लोकप्रिय था।[4] श्वेतावर मूर्तियो मे गज-वाहन का चित्रण नियमित था, पर दिगवर स्थलो पर वाहन (वृपम) का चित्रण केवल एक ही उदाहरण[5] मे मिलता है। दिगवर स्थलो की मूर्तियो मे केवल परशु के प्रदर्शन मे ही दिगवर परम्परा का पालन किया गया है। दिगवर स्थलो पर गोमुख के हाथो मे पुस्तक, गदा, पद्म एव धन का थैला मे से कोई एक या दो आयुध प्रदर्शित हैं। इन आयुधो का प्रदर्शन कलाकारो की कल्पना या किसी ऐसी परम्परा की देन है जो सम्प्रति उपलब्ध नही है। श्वेतावर स्थलो की मूर्तियो मे भी गोमुख के साथ केवल गज-वाहन एव पाश के प्रदर्शन मे ही परम्परा का निर्वाह किया गया है। इस क्षेत्र मे गोमुख की दो भुजाओ मे अधिकाशत अकुश एव धन का थैला प्रदर्शित हैं जो सर्वानुभूति यक्ष का प्रभाव है। दिगवर स्थलो की तुलना मे श्वेतावर स्थलो पर गोपुख की लाक्षणिक विशेषताए अधिक स्थिर रहीं।

गोमुख की धारणा निश्चित ही शिव से प्रभावित है। यक्ष का गोमुख होना, उसका वृषभ वाहन और हाथो मे परशु एवं पाश जैसे आयुधो का प्रदर्शन शिव के ही प्रभाव का सकेत देता है। राजपूताना संग्रहालय, अजमेर की मूर्ति (२७०) मे गोमुख के एक कर मे सर्प भी प्रदर्शित है। डा० बनर्जी ने गोमुख यक्ष को शिव का पशु एव मानव रूप मे सयुक्त अकन माना है।[6] गोमुख प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ (ऋषभनाथ) का यक्ष है। ऋषभनाथ को जैन धर्म का सस्थापक एवं महादेव वताया गया है।[7] गोमुख के शीर्ष भाग के धर्मचक्र को इस आधार पर आदिनाथ के धर्मोपदेश का प्रतीकात्मक अंकन माना जा सकता है।

---

१ अन्निगेरी, ए० एम०, ए गाइड टू दि कन्नड रिसर्च इन्स्टिट्यूट म्यूजियम, धारवाड, १९५८, पृ० २७
२ सकलिया, एच० डी०, 'जैन यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', बु०ड०का०रि०इं०, ख० १, अ० २–४, पृ० १६०
३ आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव मैसूर, ऐनुअल रिपोर्ट, १९३९, भाग ३, पृ० ४८
४ दिगम्वर स्थलो की कुछ मूर्तियो मे गोमुख द्विभुज है।
५ स्थानीय सग्रहालय, खजुराहो के ८
६ वनर्जी, जे० एन०, पू०नि०, पृ० ५६२
७ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० ९६

(१) चक्रेश्वरी यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

चक्रेश्वरी (या अप्रतिचक्रा)[१] जिन ऋषभनाथ की यक्षी है। दोनो परम्परा के ग्रन्थो मे चक्रेश्वरी का वाहन गरुड है और उसकी भुजाओ मे चक्र के प्रदर्शन का निर्देश है। श्वेतांबर परम्परा मे चक्रेश्वरी का अष्टभुज एव द्वादशभुज और दिगंबर परम्परा मे चतुर्भुज एव द्वादशभुज स्वरूपो मे निरूपण किया गया है। द्वादशभुज स्वरूप मे दोनो परम्पराओ मे चक्रेश्वरी के हाथो मे जिन आयुधो के प्रदर्शन के निर्देश हैं, वे समान हैं।[२]

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका के अनुसार अष्टभुज अप्रतिचक्रा का वाहन गरुड है और उसके दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा, बाण, चक्र एव पाश और बायें हाथो मे धनुष, वज्र, चक्र एव अकुश होने चाहिए।[३] परवर्ती ग्रन्थो मे भी सामान्यत. इन्ही आयुधो के उल्लेख हैं। आचारदिनकर मे दो वाम भुजाओ मे धनुष के प्रदर्शन का उल्लेख है।[४] फलत· एक भुजा मे चक्र नही प्रदर्शित है। रूपमण्डन एव देवतामूर्तिप्रकरण मे चक्रेश्वरी का द्वादशभुज स्वरूप वर्णित है जिसमे आठ भुजाओ मे चक्र, दो में वज्र और शेष दो मे मातुलिंग एव अभयमुद्रा का उल्लेख है।[५]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे चक्रेश्वरी का चतुर्भुज एव द्वादशभुज स्वरूपो मे ध्यान किया गया है।[६] इनमे चतुर्भुज यक्षी के दो करो मे चक्र और शेष दो मे मातुलिंग एव वरदमुद्रा, तथा द्वादशभुज यक्षी के आठ हाथो मे चक्र, दो मे वज्र और शेष दो मे मातुलिंग एव वरदमुद्रा का उल्लेख है। प्रतिष्ठासारोद्धार एव प्रतिष्ठातिलकम् मे भी समान लक्षणो वाली चतुर्भुज एवं द्वादशभुज चक्रेश्वरी का वर्णन है।[७] अपराजितपृच्छा मे द्वादशभुज चक्रेश्वरी के हाथो मे वरदमुद्रा के स्थान पर अभयमुद्रा का उल्लेख है।[८]

---

१ निर्वाणकलिका, त्रि०श०पु०च० एव पद्मानन्दमहाकाव्य मे यक्षी का अप्रतिचक्रा नाम से उल्लेख है।

२ श्वेतांबर ग्रन्थो मे देवी की एक भुजा से अभयमुद्रा पर दिगंबर ग्रन्थो मे वरदमुद्रा व्यक्त है।

३ अप्रतिचक्राभिधाना यक्षिणी हेमवर्णां गरुडवाहनामष्टभुजा।
वरदबाणचक्रपाशयुक्तदक्षिणकरा धनुर्वज्रचक्राकुशवामहस्ता चेति ॥ निर्वाणकलिका १८.१
त्रि०श०पु०च० १ ३, ६८२–८३, पद्मानन्दमहाकाव्य १४.२८२–८३, मंत्राधिराजकल्प ३.५१

४ स्वर्णाभा गरुडासनाष्टभुजयुग्वामे च हस्तोच्चये वज्र चापमथाकुश गुरुधनु सौम्याश्रया बिभ्रती। आचारदिनकर ३४ १

५ द्वादशभुजाष्टचक्राणि वज्रयोर्द्वयमेव च।
मातुलिंगाभये चैव पद्मस्था गरुडोपरि ॥ रूपमण्डन ६ २४
देवतामूर्तिप्रकरण ७ ६६। श्वेतांबर परम्परा की द्वादशभुज यक्षी का विवरण दिगंबर परम्परा से प्रभावित है।

६ वामे चक्रेश्वरीदेवी स्थाप्यद्वादशसद्भुजा।
धत्ते हस्तद्वयेवज्रे चक्राणी च तथाष्टसु ॥
एकेन बीजपूर तु वरदा कमलासना।
चतुर्भुजाथवाचक्रं द्वयोर्गरुड वाहन ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५ १५–१६

७ भर्माभाद्य करद्वयाल्कुलिशा चक्राकहस्ताष्टका
सव्यासव्यशयोल्लसत्फलवरा यन्मूर्तिरास्तेम्बुजे।
तार्क्ष्ये वा सह चक्रयुग्मरुचकत्यागैश्चतुर्भि. करै.
पंचेष्वास शतोन्नतप्रभुनता चक्रेश्वरी 'ता यजे ॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १५६, प्रतिष्ठातिलकम् ७ १

८ षट्पादा द्वादशभुजा चक्राण्यष्टौ द्विवज्रकम्।
मातुलिंगाभये चैव तथा पद्मासनाऽपि च ॥
गरुडोपरिसस्था च चक्रेशी हेमवर्णिका। अपराजितपृच्छा २११.१५–१६

तान्त्रिक ग्रन्थ **चक्रेश्वरी-अष्टकम्** मे चक्रेश्वरी के भयावह स्वरूप का ध्यान है जिसमे देवी के हाथो की संख्या का उल्लेख किये विना ही उनमे चक्रो, पद्म, फल एवं वज्र के धारण करने का उल्लेख है।[1] तीन नेत्रो एव भयकर दर्शन वाली देवी की आराधना डाकिनियो एवं गुह्यको से रक्षा एव अन्य बाधाओ को दूर करने तथा समृद्धि के लिए की गई है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दक्षिण भारत मे गरुडवाहना चक्रेश्वरी का द्वादशभुज एवं षोडशभुज स्वरूपो मे ध्यान किया गया है। दिगवर ग्रन्थ मे षोडशभुज चक्रेश्वरी के बारह हाथो मे युद्ध के आयुध[2], दो के गोद मे तथा शेष दो के अभयमुद्रा और कटकमुद्रा मे होने का उल्लेख है। श्वेतावर गन्थ (अज्ञात-नाम) मे द्वादशभुज यक्षी को त्रिनेत्र वताया गया है। यक्षी के आठ करो मे चक्र और शेष चार मे शक्ति, वज्र, वरदमुद्रा एव पद्म प्रदर्शित है। **यक्ष-यक्षी लक्षण** मे द्वादश-भुज चक्रेश्वरी के आठ हाथो मे चक्र, दो मे वज्र एव शेष दो मे मातुलिंग एव वरदमुद्रा के प्रदर्शन का विधान है।[3] इस प्रकार स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय श्वेतावर परम्परा पूरी तरह उत्तर भारत की दिगवर परम्परा से प्रभावित है।

मूर्ति परम्परा

नवी शती ई० मे चक्रेश्वरी का मूर्त चित्रण प्रारम्भ हुआ। इनमे देवी अधिकाशत. मानव रूप मे निरूपित गरुड वाहन तथा चक्र, शख एव गदा से युक्त है।

गुजरात-राजस्थान (क) स्वतन्त्र मूर्तियां—ल० दसवी शती ई० की एक अष्टभुज मूर्ति राष्ट्रीय सग्रहालय, दिल्ली (६७ १५२) मे सुरक्षित है। इसमें गरुडवाहना यक्षी की ऊपरी छह भुजाओ मे चक्र और नीचे की दो भुजाओ मे वरदमुद्रा एव फल प्रदर्शित हैं।[4] सेवडी (पाली, राजस्थान) के महावीर मन्दिर (११वी शती ई०) से मिली द्विभुज चक्रेश्वरी की एक मूर्ति के चरणो के समीप गरुड तथा अवशिष्ट एक दाहिने हाथ मे चक्र उत्कीर्ण है।[5]

यहा उल्लेखनीय है कि जैन देवकुल में अप्रतिचक्रा नामवाली देवी का महाविद्या के रूप मे भी उल्लेख है। जैन ग्रन्थो में चतुर्भुजा अप्रतिचक्रा के चारो हाथो मे चक्र के प्रदर्शन का निर्देश है पर शिल्प मे इसका पूरी तरह पालन न किये जाने के कारण गुजरात एव राजस्थान मे चक्रेश्वरी यक्षी एव अप्रतिचक्रा महाविद्या के मध्य स्वरूपगत भेद स्थापित कर पाना अत्यन्त कठिन है। तथापि इन स्थलो पर महाविद्याओ की विशेष लोकप्रियता, देवी के चक्र, गदा एवं शख आयुधो तथा उसके साथ रोहिणी, वैरोट्या, महामानसी एव अच्छुप्ता महाविद्याओ की विद्यमानता के आधार पर उसकी पहचान महाविद्या से ही की गयी है।[6] लूणवसही की देवकुलिका १० के वितान पर चक्रेश्वरी की एक अष्टभुजी मूर्ति (१२३० ई०) है। देवी के आसन के समक्ष पक्षीरूप मे गरुड वना है। देवी के करो मे वरदमुद्रा, चक्र, व्याख्यान-मुद्रा, छल्ला, छल्ला, पद्मकलिका, चक्र एवं फल हैं।

(ख) जिन-सयुक्त मूर्तियां—इस क्षेत्र की छठी से नवी शती ई० तक की ऋषम मूर्तियो मे यक्षी के रूप मे अम्बिका ही निरूपित है। नवी शती ई० के वाद की श्वेतावर मूर्तियो मे भी यक्षी अधिकाशत. अम्बिका ही है। केवल कुछ ही श्वेतावर मूर्तियो (१०वी–१२वी शती ई०) मे चक्रेश्वरी उत्कीर्ण है। ऐसी मूर्तिया चन्द्रावती, विमलवसही (गर्भगृह एव

---

१ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी', ज०ओ०इं०, ख० २०, अ० ३, पृ० २९७, ३०६

२ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० १९७–९८ ३ वही, पृ० १९८

४ शर्मा, व्रजेन्द्रनाथ, 'अन्पब्लिश्ड जैन ब्रोन्जेज़ इन दि नेशनल म्यूज़ियम', ज०ओ०इ०, खं० १९, अ० ३, पृ० २७६

५ ढाकी, एम०ए०, 'सम अर्ली जैन टेम्पल्स इन वेस्टर्न इण्डिया', म०जै०वि०गो०जु०वा०, वम्वई, १९६८, पृ० ३३७–३८

६ कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के वितान के १६ महाविद्याओ के सामूहिक चित्रण मे अप्रतिचक्रा की भुजाओ मे वरदमुद्रा, चक्र, चक्र और शख प्रदर्शित हैं। विमलवसही के रगमण्डप के १६ महाविद्याओ के सामूहिक अकन मे अप्रतिचक्रा की तीन सुरक्षित भुजाओ मे चक्र, चक्र एव फल हैं।

देवकुलिका २५), प्रभास-पाटण एव कैम्बे[1] से मिली है। इनमे गरुडवाहना यक्षी के दो हाथो मे चक्र एव शेष दो मे शख (या वज्र) एव वरद-(या अभय-)मुद्रा प्रदर्शित हैं।[2] कुम्भारिया के शान्तिनाथ एव महावीर मन्दिरो (११वी शती ई०) के वितानो के ऋषभ के जीवनदृश्यो मे भी चतुर्भुजा चक्रेश्वरी की ललितमुद्रा मे दो मूर्तिया हैं। गरुडवाहन केवल शान्तिनाथ मन्दिर की मूर्ति मे ही उत्कीर्ण है, जहा यक्षी के हाथो मे वरदमुद्रा, चक्र, चक्र एव शख प्रदर्शित हैं (चित्र १४)। महावीर मन्दिर की मूर्ति मे यक्षी वरदमुद्रा, गदा, सनालपद्म एव शख (?) से युक्त है (चित्र १३)। लेख में यक्षी को 'वैष्णवी देवी' कहा गया है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि गुजरात एव राजस्थान मे ल० दसवी शती ई० मे चक्रेश्वरी की मूर्तियो का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ। इनमे चक्रेश्वरी अधिकाशत चतुर्भुजा है।[3] चक्रेश्वरी के साथ गरुडवाहन और चक्र एव शख का प्रदर्शन नियमित था।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश (क) स्वतन्त्र मूर्तिया—चक्रेश्वरी की प्राचीनतम स्वतन्त्र मूर्ति इसी क्षेत्र से मिली है। त्रिभग मे खडी यह चतुर्भुज मूर्ति देवगढ के मन्दिर १२ (८६२ ई०) की भित्ति पर है। लेख मे देवी को 'चक्रेश्वरी' कहा गया है। यक्षी के चारो हाथो मे चक्र है। देवी का गरुडवाहन दाहिने पार्श्व मे नमस्कार-मुद्रा मे खडा है।[4] ल० दसवी शती ई० की एक चतुर्भुज मूर्ति घुवेला राज्य सग्रहालय, नवगाव मे भी सुरक्षित है। गरुडवाहना यक्षी के करो मे वरदमुद्रा, चक्र, चक्र एव शख प्रदर्शित हैं। किरीटमुकुट से शोभित यक्षी के शीर्षभाग मे एक लघु जिन आकृति उत्कीर्ण है।[5] समान विवरणो वाली दसवी शती ई० की एक अन्य चतुर्भुज मूर्ति बिल्हारी (जबलपुर) से मिली है।[6]

दसवी शती ई० मे ही चक्रेश्वरी की चार से अधिक भुजाओ वाली मूर्तिया भी उत्कीर्ण हुई। दो अष्टभुज मूर्तिया (१०वी शती ई०) ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर के शिखर पर उत्कीर्ण हैं। दोनो उदाहरणो मे गरुडवाहना यक्षी ललित-मुद्रा मे विराजमान है। दक्षिण शिखर की मूर्ति मे यक्षी के सुरक्षित हाथो मे छल्ला, वज्र, चक्र, चक्र, चक्र और शख प्रदर्शित हैं। उत्तरी शिखर की दूसरी मूर्ति मे यक्षी के अवशिष्ट करो मे खड्ग, आम्रलुम्बि (?), चक्र, खेटक, शख और गदा हैं। दसवी शती ई० की एक दशभुजा मूर्ति पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा (डी ६) मे है (चित्र ४४)। समभग मे खडी चक्रेश्वरी का गरुडवाहन पक्षी रूप मे आसन के नीचे उत्कीर्ण है। यक्षी के नौ सुरक्षित करो मे चक्र हैं। शीर्ष भाग मे एक लघु जिन आकृति एव पार्श्वों मे दो स्त्री सेविकाए आमूर्तित हैं। राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे सिरोनी खुर्द (ललितपुर) से मिली दसवी शती ई० की एक दशभुजा मूर्ति (जे ८८३) है। किरीटमुकुट से शोभित गरुडवाहना चक्रेश्वरी के नौ सुरक्षित हाथो मे व्याख्यान-मुद्रा, पद्म, खड्ग, तूणीर, चक्र, घण्टा, चक्र, पद्म एव चाप प्रदर्शित हैं। ऊपरी भाग मे उड्डीयमान आकृतिया भी उत्कीर्ण हैं।

खजुराहो से चक्रेश्वरी की ग्यारहवीं शती ई० की चार स्वतन्त्र मूर्तिया मिली हैं। किरीटमुकुट से शोभित गरुड-वाहना यक्षी एक उदाहरण मे षड्भुज और शेष तीन मे चतुर्भुज है। मन्दिर २७ (के २७ ५०) की षड्भुज मूर्ति मे यक्षी के हाथो मे अभयमुद्रा, गदा, छल्ला, चक्र, पद्म एव शख प्रदर्शित हैं। दो चतुर्भुज मूर्तियो मे चक्रेश्वरी अभयमुद्रा, गदा,

---

१ शाह, यू०पी०, पू०नि०, पृ० २८०–८१

२ विमलवसही के गर्भगृह की मूर्ति मे वरदमुद्रा के स्थान पर वरदाक्ष प्रदर्शित है।

३ सेवडी के महावीर मन्दिर की मूर्ति में यक्षी द्विभुजा और राष्ट्रीय सग्रहालय, दिल्ली (६७ १५२) एव लूणवसही की मूर्तियो मे चतुर्भुजा है।

४ स्मरणीय है कि यक्षी की चारो भुजाओ मे चक्र का प्रदर्शन देवी पर महाविद्या अप्रतिचक्रा का स्पष्ट प्रभाव दरशाता है।

५ दीक्षित, एस०के०, ए गाईड टू दि स्टेट म्यूजियम घुबेला (नवगांव), विन्ध्यप्रदेश, नवगाव, १९५७, पृ० १६–१७

६ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्रसग्रह १०४ २

चक्र एवं शख (या फल) से युक्त है।[1] शान्तिनाथ मन्दिर की उत्तरी भित्ति की मूर्ति मे यक्षी वरदमुद्रा, चक्र, चक्र एव शख के साथ निरूपित है।

चार स्वतन्त्र मूर्तियो के अतिरिक्त दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य के नौ उत्तरगो पर भी चक्रेश्वरी की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। उत्तरगो की मूर्तियो मे किरीटमुकुट से सज्जित गरुडवाहना यक्षो चार से दस भुजाओ वाली हैं। तीन उत्तरग क्रमश पार्श्वनाथ, घण्टई एव आदिनाथ मन्दिरो मे हैं। खजुराहो मे दसवी शती ई० मे ही चक्रेश्वरी की आठ और दस भुजाओ वाली मूर्तिया भी उत्कीर्ण हुईं। घण्टई मन्दिर (१० वी शती ई०) के उत्तरग की मूर्ति मे अष्टभुजा यक्षी की भुजाओ मे फल (?), घण्टा, चक्र, चक्र, चक्र, चक्र, धनुप (?) एव कलश प्रदर्शित है। पार्श्वनाथ मन्दिर (१० वी शती ई०) के उत्तरंग की मूर्ति मे दशभुजा चक्रेश्वरी के करो मे वरदमुद्रा, खड्ग गदा, चक्र, पद्म (?), चक्र, कार्मुक, फलक, गदा और शख निरूपित हैं। मन्दिर ११ के उत्तरग की पड्भुज मूर्ति (११ वी शती ई०) मे चक्रेश्वरी के हाथो मे वरदमुद्रा, चक्र, चक्र, चक्र, चक्र एव शख हैं। दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० के छह अन्य उदाहरणो मे यक्षी चतुर्भुजा है (चित्र ५७)। इनमे यक्षी के ऊपरी करो मे गदा और चक्र तथा नीचे के करो मे अभय-(या वरद-) मुद्रा और शख प्रदर्शित हैं।[2]

इन मूर्तियो के अध्ययन से स्पष्ट है कि खजुराहो मे चक्रेश्वरी की चार से दस भुजाओ वाली मूर्तिया उत्कीर्ण हुईं, किन्तु यक्षी का चतुर्भुज स्वरूप ही सर्वाधिक लोकप्रिय था। गरुडवाहना यक्षी के साथ चक्र, शख और गदा का अकन नियमित था। बहुभुजी मूर्तियो मे चक्रेश्वरी के अतिरिक्त करो मे सामान्यत खड्ग, खेटक, धनुप और पद्म प्रदर्शित हैं।

उत्तर भारत मे चक्रेश्वरी की सर्वाधिक मूर्तिया देवगढ मे उत्कीर्ण हुईं, और चक्रेश्वरी की प्राचीनतम ज्ञात मूर्ति भी यही से मिली है। नवी-दसवी शती ई० मे चक्रेश्वरी की केवल चतुर्भुज मूर्तिया ही बनी। ग्यारहवी शती ई० मे चक्रेश्वरी का चतुर्भुज के साथ ही पड्भुज, अष्टभुज, दशभुज एव विंशतिभुज स्वरूपो मे भी निरूपण हुआ। इस प्रकार चक्रेश्वरी की मूर्तियो के मूर्तिविज्ञानपरक विकास के अध्ययन की दृष्टि मे भी देवगढ की मूर्तिया बडे महत्व की हैं। खजुराहो के समान ही यहा भी चक्रेश्वरी की चतुर्भुज मूर्तिया ही सर्वाधिक सख्या मे बनीं। किरीटमुकुट से अलकृत गरुडवाहना यक्षी के करो मे चक्र, शख एव गदा का नियमित अकन हुआ है। बहुभुजी मूर्तियो मे अतिरिक्त करो मे सामान्यत खड्ग, खेटक, परशु एव वज्र प्रदर्शित है।

मन्दिर १२, ५ एव ११ के उत्तरगो पर चतुर्भुज चक्रेश्वरी की तीन मूर्तिया (१० वी-११ वी शती ई०) उत्कीर्ण हैं। इनमे यक्षी अभय-(या वरद-) मुद्रा, गदा, चक्र एव शख से युक्त है। मन्दिर १२ के अर्धमण्डप के स्तम्भ की एक चतुर्भुज मूर्ति (१०वी शती ई०) मे यक्षी स्थानक-मुद्रा मे आमूर्तित है और उसकी भुजाओ मे वरदमुद्रा, गदा, चक्र एव शख है। मन्दिर १, ४, १२ एव २६ के आगे के स्तम्भो (११वी-१२वी शती ई०) पर भी चतुर्भुजा यक्षी की सात मूर्तिया हैं। इनमे भी यक्षी के करो मे ऊपर वर्णित आयुध ही प्रदर्शित है। मन्दिर ४ की मूर्ति (११५० ई०) मे यक्षी की अक्षमाला धारण किये एक भुजा से व्याख्यान-मुद्रा प्रदर्शित है। मन्दिर १ के बारहवी शती ई० के स्तम्भो को दो मूर्तियो मे यक्षी के तीन हाथो मे चक्र और एक मे शख (या वरदमुद्रा) है। मन्दिर ९ के उत्तरग की मूर्ति (११वी शती ई०) मे यक्षी के करो मे वरदमुद्रा, गदा, चक्र एव छल्ला है।

देवगढ मे पड्भुज चक्रेश्वरी की केवल एक ही मूर्ति (११वी शती ई०) है। यह मूर्ति मन्दिर १२ की दक्षिणी चहारदीवारी पर उत्कीर्ण है। गरुडवाहना यक्षी की भुजाओ मे वरदमुद्रा, खड्ग, चक्र, चक्र, गदा एव शख प्रदर्शित हैं। अष्टभुजा चक्रेश्वरी की तीन मूर्तिया मिली है। एक मूर्ति (११वी शती ई०) मन्दिर १ के पश्चिमी मानस्तम्भ पर उत्कीर्ण

---

१ एक मूर्ति आदिनाथ मन्दिर के उत्तरी अधिष्ठान पर है।

२ मन्दिर २२ की मूर्ति मे निचली दाहिनी भुजा मे मुद्रा के स्थान पर पद्म, आदिनाथ मन्दिर के उत्तरग की मूर्ति मे चक्र के स्थान पर पद्म एव जैन धर्मशाला के समीप की मूर्ति मे ऊपर की दोनो भुजाओ मे दो चक्र प्रदर्शित हैं।

है। चक्रेश्वरी के हाथों में वरदमुद्रा, गदा, वाण, छल्ला, छल्ला, वज्र, चाप एव शख है। बारहवी शती ई० की दो मूर्तिया क्रमश मन्दिर १२ एव १४ के समक्ष के मानस्तम्भो पर हैं। दोनों मे स्थानक-मुद्रा मे खडी यक्षी के समीप ही गरुड की मूर्तियां बनी हैं। मन्दिर १२ की मूर्ति मे यक्षी ने खड्ग, अभयमुद्रा, चक्र, चक्र, खेटक, परशु एव शख धारण किया है। मन्दिर १४ की मूर्ति में चक्रेश्वरी दण्ड, खड्ग, अभयमुद्रा, चक्र, चक्र, चक्र, परशु एव शख से युक्त है। दशभुजा चक्रेश्वरी की भी केवल एक ही मूर्ति (मन्दिर ११—मानस्तम्भ, १०५९ ई०) है (चित्र ४५)। गरुड-वाहना यक्षी के करो मे वरदमुद्रा, वाण, गदा, खड्ग, चक्र, चक्र, खेटक, वज्र, धनुष एव शंख प्रदर्शित है।

देवगढ मे विशतिभुजा चक्रेश्वरी की तीन मूर्तिया (११वीं शती ई०) हैं। दो मूर्तिया स्थानीय साहू जैन सग्रहालय मे सुरक्षित हैं और एक मूर्ति मन्दिर २ के समीप अरक्षित अवस्था मे पडी है। मन्दिर २ के विरूपित उदाहरण मे यक्षी की एकमात्र अवशिष्ट भुजा मे चक्र प्रदर्शित है। साहू जैन सग्रहालय की एक मूर्ति मे केवल सात भुजाएं ही सुरक्षित हैं, जिनमे से चार मे चक्र और शेष तीन मे वरदाक्ष, खेटक और शख प्रदर्शित है। एक खण्डित भुजा के ऊपर गदा का भाग अवशिष्ट है। यक्षी के समीप दो उपासको, चार चामरधारिणी सेविकाओ एव पद्म धारण करनेवाले पुरुषो की मूर्तिया हैं। शीर्षभाग में एक ध्यानस्थ जिन मूर्ति उत्कीर्ण है जो दो खड्गासन जिन आकृतियो से वेष्टित है। परिकर मे दो उड्डीयमान मालाधर युगलो एव दो चतुर्भुज देवियो की मूर्तिया हैं। दाहिने पार्श्व की तीन सर्पफणो वाली देवी पद्मावती है। पद्मावती की भुजाओ मे वरदमुद्रा, सनालपद्म, सनालपद्म एव जलपात्र प्रदर्शित हैं। वाम पार्श्व मे जटामुकुट से शोभित सरस्वती निरूपित है। सरस्वती की निचली भुजाओ मे वीणा और ऊपरी मे सनालपद्म एव पुस्तक हैं। साहू जैन सग्रहालय की दूसरी मूर्ति मे चक्रेश्वरी की सभी भुजाए सुरक्षित हैं (चित्र ४६)। इस मूर्ति मे गरुडवाहन (मानव) चतुर्भुज है। गरुड के नीचे के हाथ नमस्कार-मुद्रा मे हैं और ऊपरी चक्रेश्वरी का भार वाहन कर रहे हैं। धम्मिल्ल से शोभित चक्रेश्वरी के ऊपर उठे हुए ऊपरी दो हाथो मे एक चक्र तथा शेष मे चक्र, खड्ग, तूणीर (?), मुद्गर, चक्र, गदा, अक्षमाला, परशु, वज्र, शृखलावद्ध-घण्टा, खेटक, पताकायुक्त दण्ड, शख, धनुष, चक्र, सर्प, शूल एव चक्र प्रदर्शित हैं। अक्षमाला धारण करने वाला हाथ व्याख्यान-मुद्रा मे है। चक्रेश्वरी के पार्श्वों मे दो चामरधारिणी सेविकाए और शीर्षभाग मे उड्डीयमान मालाधरो एव तीन जिनो की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। एक खण्डित विंशतिभुज मूर्ति गधावल (देवास, म० प्र०) से भी मिली है[1] जिसके एक हाथ मे चक्र एव परिकर मे पाच छोटी जिन मूर्तिया सुरक्षित हैं।

उपर्युक्त मूर्तियो के अध्ययन से स्पष्ट है कि देवगढ मे चक्रेश्वरी को विशेष प्रतिष्ठा दी गई थी। इसी कारण चक्रेश्वरी के साथ मे चामरधारिणी सेविकाओ, उड्डीयमान मालाधरो, गजो एव एक उदाहरण मे पद्मावती और सरस्वती को भी निरूपित किया गया। किन्तु दिगंबर परम्परा के अनुसार चक्रेश्वरी की द्वादशभुज मूर्ति देवगढ मे नही उत्कीर्ण हुई।

(ख) जिन-सयुक्त मूर्तिया—जिन-सयुक्त मूर्तियो मे गरुडवाहना यक्षी अधिकाशत चतुर्भुजा और चक्र, शख, गदा एवं अभय-(या वरद-) मुद्रा से युक्त है। बजरामठ (ग्यारसपुर, म० प्र०) की ऋषभ मूर्ति (१० वीं शती ई०) मे गरुड-वाहना यक्षी के करो मे यही उपादान प्रदर्शित हैं। खजुराहो की दसवी से वारहवी शती ई० की ३२ ऋषभ मूर्तियो मे चक्रेश्वरी आमूर्तित है। ज्ञातव्य है कि इन सभी उदाहरणो मे यक्ष वृषानन नही है, किन्तु यक्षी सर्वदा चक्रेश्वरी ही है। यक्षी का वाहन गरुड सभी उदाहरणो मे उत्कीर्ण है।[2] दो उदाहरणो (११ वी शती ई०) मे यक्षी द्विभुजा है और उसके हाथो मे अभयमुद्रा एव चक्र प्रदर्शित हैं।[3] अन्य उदाहरणो मे यक्षी चतुर्भुजा है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की मूर्ति मे यक्षी अभयमुद्रा, गदा, चक्र एव शख से युक्त है। दो उदाहरणो मे गदा के स्थान पर पद्म प्रदर्शित है।[4] दस उदाहरणो मे

१ गुप्ता, एस० पी० तथा शर्मा, बी० एन०, 'गधावल और जैन मूर्तिया', अनेकान्त, व० १९, अ० १–२, पृ० १३०

२ शान्तिनाथ सग्रहालय की एक मूर्ति (के ६२) मे गरुड नही उत्कीर्ण है।

३ के ४४ एव जार्डिन सग्रहालय

४ शान्तिनाथ संग्रहालय, के ४०, पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो, १९६७

चक्रेश्वरी के ऊपरी दोनो हाथो मे एक-एक चक्र है, और छह उदाहरणो मे क्रमश गदा एव चक्र हैं। नीचे के हाथो मे अभय-(या वरद-) मुद्रा एव शख (या फल या जलपात्र) प्रदर्शित हैं।[1] स्थानीय सग्रहालय की ग्यारहवी शती ई० की एक ऋषभ मूर्ति की पीठिका पर मूलनायक के आकार की द्वादशभुजा चक्रेश्वरी आमूर्तित है। यक्षी की सभी भुजाए भग्न हैं।

देवगढ की दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की कम से कम २० ऋषभ मूर्तियो मे यक्षी चक्रेश्वरी है।[2] गरुडवाहना यक्षी अधिकाशत किरीटमुकुट से शोभित है। दसवी शती ई० की केवल दो ही ऋषभ मूर्तियो[3] मे चक्रेश्वरी द्विभुजा है। इनमे यक्षी चक्र एव शख से युक्त है। अन्य मूर्तियो मे चक्रेश्वरी चतुर्भुजा है। केवल मन्दिर ४ की मूर्ति (११वी शती ई०) मे चक्रेश्वरी षड्भुजा है और उसके सुरक्षित करो में वरदमुद्रा, गदा, चक्र, चक्र एव शंख प्रदर्शित हैं। चतुर्भुजा यक्षी की भुजाओ मे अभय-(या वरद-) मुद्रा, गदा या (या पद्म), चक्र एव शख (या कलश) हैं।

राज्य सग्रहालय, लखनऊ की २२ ऋषभ मूर्तियो मे से केवल १० उदाहरणो (१० वी-१२ वी शती ई०) मे गरुडवाहना चक्रेश्वरी आमूर्तित है। चक्रेश्वरी केवल एक मूर्ति (जे ८५६, ११ वी शती ई०) मे द्विभुजा है और उसकी भुजाओ मे चक्र एव शख प्रदर्शित हैं। अधिकाश मूर्तियो मे यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करो मे अभयमुद्रा, गदा (या चक्र), चक्र एव शख हैं।[4] एक मूर्ति (जी ३२२) मे यक्षी की चारो भुजाओ मे चक्र हैं। उरई की एक मूर्ति (१६ ० १७८, ११ वी शती ई०) मे चक्रेश्वरी अष्टभुजा है (चित्र ७)। जटामुकुट से शोभित चक्रेश्वरी की सुरक्षित भुजाओ मे गदा, अभय-मुद्रा, वज्र, चक्र, सर्प (?) एव धनुष (?) प्रदर्शित हैं। पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा की ल० दसवी शती ई० की एक ऋषभ मूर्ति (बी २१) मे गरुडवाहना चक्रेश्वरी चतुर्भुजा है और उसकी भुजाओ मे अभयमुद्रा, चक्र, चक्र एव शंख हैं।

उत्तरप्रदेश एव मध्यप्रदेश की दिगवर परम्परा की चक्रेश्वरी मूर्तियो के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र मे चक्रेश्वरी की दो[5] से बीस भुजाओ वाली मूर्तिया उत्कीर्ण हुईं। ये मूर्तिया नवी से बारहवी शती ई० के मध्य की हैं। स्वतन्त्र एवं जिन-संश्लिष्ट मूर्तियो मे चक्रेश्वरी का चतुर्भुज स्वरूप ही सर्वाधिक लोकप्रिय था। द्विभुज, षड्भुज, अष्टभुज, दशभुज एवं विंशतिभुज रूपो मे भी पर्याप्त मूर्तिया बनी जिनका दिगवर ग्रन्थो मे अनुल्लेख है। चक्रेश्वरी की सर्वाधिक स्वतन्त्र एव जिन-सश्लिष्ट मूर्तिया इसी क्षेत्र मे उत्कीर्ण हुईं। चक्रेश्वरी के साथ गरुडवाहन एव चक्र, शख, गदा और अभय-(या वरद-) मुद्रा का प्रदर्शन दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य को मूर्तियो मे नियमित था। दिगवर ग्रन्थो के निर्देशो का पालन केवल गरुडवाहन एव चक्र और वरदमुद्रा के प्रदर्शन मे ही किया गया है।

बिहार-उडीसा-बगाल—इस क्षेत्र मे केवल उडीसा से चक्रेश्वरी की मूर्तिया (११वी-१२वी शती ई०) मिली हैं जो नवमुनि एव बारभुजी गुफाओं मे उत्कीर्ण हैं। इनमे गरुडवाहना यक्षी दस और बारह भुजाओ वाली है। नवमुनि गुफा की मूर्ति मे दशभुजा यक्षी योगासन-मुद्रा मे बैठी और जटामुकुट से शोभित है। यक्षी के सात हाथो मे चक्र तथा दो मे खेटक और अक्षमाला हैं। एक भुजा योगमुद्रा मे गोद मे स्थित है।[6] बारभुजी गुफा की द्वादशभुज मूर्ति मे यक्षी के छह दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा, वज्र, चक्र, चक्र, अक्षमाला एव खड्ग और तीन अवशिष्ट वाम भुजाओ मे खेटक, चक्र तथा

१ दो उदाहरणो मे चक्र (के ७९) एवं छल्ला (पुरातात्विक सग्रहालय, खजुराहो १६६७) भी प्रदर्शित है।

२ खजुराहो के विपरीत देवगढ़ की ऋषभ मूर्तियो में चार उदाहरणो मे अम्बिका एव पन्द्रह उदाहरणो मे सामान्य लक्षणो वाली यक्षी भी आमूर्तित हैं।

३ मन्दिर २ और १९। मन्दिर १६ के मानस्तम्भ (१२ वी शती ई०) की मूर्ति मे भी यक्षी द्विभुजा है और उसकी दोनो भुजाओ मे चक्र स्थित हैं।

४ जे ८४७, जे ७८९, ६६ ५९, १२ ० ७५

५ द्विभुजा चक्रेश्वरी का निरूपण मुख्यत देवगढ, खजुराहो एव राज्य सग्रहालय, लखनऊ की जिन-सयुक्त मूर्तियो मे ही हुआ है। छह से बीस भुजाओ वाली मूर्तिया भी मुख्यत इन्ही स्थलो से मिली हैं।

६ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १२८

सनाल पद्म प्रदर्शित हैं ।[1] बारभुजी गुफा की दूसरी द्वादशभुज मूर्ति मे चक्रेश्वरी के तीन दक्षिण करो मे वरदमुद्रा, खड्ग और चक्र तथा तीन वाम करो मे खेटक, घण्टा (?) एव चक्र प्रदर्शित हैं । चौथी बायी भुजा वक्ष स्थल के समक्ष है । शेष भुजाए खण्डित हैं ।[2] उपर्युक्त मूर्तियो मे अन्यत्र विशेष लोकप्रिय गदा एव शंख का प्रदर्शन नही प्राप्त होता है । गदा एव शख के स्थान पर खड्ग और खेटक का प्रदर्शन हुआ है ।

दक्षिण भारत—दक्षिण भारत की मूर्तियो मे चक्रेश्वरी का गरुडवाहन कभी-कभी नही प्रदर्शित है, पर चक्र का प्रदर्शन नियमित था । यक्षी की चतुर्भुज, षड्भुज और द्वादशभुज मूर्तिया मिली हैं । पुडुकोट्टा की दसवी शती ई० की एक ऋषभ मूर्ति मे चतुर्भुज यक्षी के हाथो मे फल, चक्र, शख एव अभयमुद्रा प्रदर्शित हैं ।[3] चतुर्भुजा चक्रेश्वरी की एक स्वतन्त्र मूर्ति (११वी-१२वी शती ई०) कम्बड पहाडी (कर्नाटक) के शान्तिनाथ वस्ती के नवरग से मिली है ।[4] गरुडवाहना यक्षी के करो मे अभयमुद्रा, चक्र, चक्र एव पद्म (या फल) प्रदर्शित हैं । एक चतुर्भुज मूर्ति जिननाथपुर (कर्नाटक) के जैन मन्दिर की दक्षिणी भित्ति पर है । गरुडवाहना चक्रेश्वरी की ऊपरी भुजाओ मे चक्र और निचली मे पद्म एव वरदमुद्रा प्रदर्शित हैं । इसी स्थल की एक अन्य मूर्ति मे गरुडवाहना चक्रेश्वरी षड्भुज है । यक्षी की भुजाओ मे वरदमुद्रा, वज्र, चक्र, चक्र, वज्र एव पद्म प्रदर्शित हैं । समान विवरणो वाली एक अन्य षड्भुज मूर्ति श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) के मण्डोर वस्ती की ऋषभ मूर्ति मे उत्कीर्ण है ।[5]

बम्बई के सेण्ट जेवियर कालेज के इण्डियन हिस्टारिकल रिसर्च इन्स्टिट्यूट सग्रहालय की एक ऋषभ मूर्ति मे द्वादशभुज चक्रेश्वरी उत्कीर्ण है । त्रिभग मे खडी यक्षी के आठ हाथो मे चक्र, दो मे वज्र एव एक मे पद्म प्रदर्शित हैं । एक भुजा भग्न है । द्वादशभुज यक्षी की समान विवरणो वाली तीन अन्य मूर्तिया कर्नाटक के विभिन्न स्थलो से मिली हैं ।[6] द्वादशभुज चक्रेश्वरी की एक मूर्ति एलोरा (महाराष्ट्र) की गुफा ३० मे है । गरुडवाहना चक्रेश्वरी की पाच अवशिष्ट दाहिनी भुजाओ मे पद्म, चक्र, शख, चक्र एव गदा हैं । यक्षी की केवल एक वाम भुजा सुरक्षित है, जिसमे खड्ग है ।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत मे चक्रेश्वरी के साथ शख एव गदा के स्थान पर वज्र एव पद्म का प्रदर्शन लोकप्रिय था । द्वादशभुजा चक्रेश्वरी के निरूपण मे सामान्यत दक्षिण भारत के **यक्ष-यक्षी-लक्षण** के निर्देशो का निर्वाह किया गया है ।[7]

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत मे चक्रेश्वरी विशेष लोकप्रिय थी । अम्बिका के बाद चक्रेश्वरी की ही सर्वाधिक मूर्तिया मिली हैं । चक्रेश्वरी की गणना जैन देवकुल की चार प्रमुख यक्षियो मे की गई है । अन्य प्रमुख यक्षियां अम्बिका, पद्मावती एव सिद्धायिका हैं जो क्रमश नेमि, पार्श्व एव महावीर की यक्षिया हैं । चक्रेश्वरी का उत्कीर्णन नवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ । देवगढ के मन्दिर १२ की मूर्ति (८६२ ई०) चक्रेश्वरी की प्राचीनतम मूर्ति है । पर अन्य स्थलो पर चक्रेश्वरी की मूर्तिया दसवी शती ई० मे उत्कीर्ण हुई । चक्रेश्वरी की सर्वाधिक मूर्तिया दसवी-ग्यारहवी शती ई० में बनो । इसी समय चक्रेश्वरी के स्वरूप मे सर्वाधिक मूर्तिविज्ञानपरक विकास हुआ और उसकी द्विभुज से विंशतिभुज मूर्तिया उत्कीर्ण हुई । श्वेतांबर स्थलो पर चक्रेश्वरी का शास्त्र-परम्परा से अलग चतुर्भुज स्वरूप मे निरूपण ही लोकप्रिय था । स्मरणीय है कि श्वेतांबर ग्रन्थो मे चक्रेश्वरी के अष्टभुज एव द्वादशभुज स्वरूपों का ही उल्लेख है । दिगबर स्थलो पर

---

१ वही, पृ० १३०

२ वही, पृ० १३३

३ बाल सुब्रह्मण्यम, एस० आर० तथा राजू, वी० वी०, 'जैन वेस्टिजेज़ इन दि पुडुकोट्टा स्टेट', क्वा०ज०मै०स्टे०, ख० २४, अ० ३, पृ० २१३–१४

४ शाह, यू०पी०, पू०नि०, पृ० २९१

५ वही, पृ० २९२

६ वही, पृ० २९७–९८

७ मूर्तियो मे मातुलिंग के स्थान पर पद्म प्रदर्शित है ।

चक्रेश्वरी की द्विभुज से विंशतिभुज मूर्तिया बनी।[1] पर सर्वाधिक मूर्तियो मे चक्रेश्वरी चतुर्भुजा ही है। चक्रेश्वरी के निरूपण मे सर्वाधिक स्वरूपगत विविधता दिगंबर स्थलो पर ही दृष्टिगत होती है। सभी क्षेत्रो की मूर्तियो मे गरुडवाहन (मानवरूप मे) एवं चक्र का नियमित प्रदर्शन हुआ है जो जैन ग्रन्थो के निर्देशो का पालन है। ग्रन्थो के निर्देशो के विपरीत उत्तरप्रदेश एव मध्यप्रदेश मे गदा और शख, गुजरात एव राजस्थान मे एक भुजा मे शख और दो भुजाओ मे चक्र तथा उडीसा मे खड्ग और खेटक का प्रदर्शन लोकप्रिय था।

(२) महायक्ष

शास्त्रीय परम्परा

महायक्ष जिन अजितनाथ का यक्ष है। दोनो परम्परा के ग्रन्थो मे महायक्ष को गजारूढ, चतुर्मुख एव अष्टभुज कहा गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे गजारूढ महायक्ष की दाहिनी भुजाओ मे वरदमुद्रा, मुद्गर, अक्षमाला, पाश और बायीं मे मातुलिंग अभयमुद्रा, अकुश एव शक्ति का उल्लेख है।[2] अन्य श्वेतांबर ग्रन्थो मे भी इन्ही आयुधो के नाम हैं।[3]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे गजारूढ महायक्ष के आयुधो का उल्लेख नही है।[4] **प्रतिष्ठासारोद्धार** के अनुसार महायक्ष के दाहिने हाथो मे खड्ग (निस्त्रिंश), दण्ड, परशु एव वरदमुद्रा और बायें मे चक्र, त्रिशूल, पद्म और अकुश होने चाहिए।[5] अपराजितपृच्छा में गजारूढ महायक्ष की आठ भुजाओ मे श्वेतांबर परम्परा के अनुरूप वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, मुद्गर, अक्षमाला, पाश, अकुश, शक्ति एव मातुलिंग के प्रदर्शन का विधान है।[6]

महायक्ष के साथ गजवाहन और अकुश का प्रदर्शन हिन्दू देव इन्द्र का,[7] यक्ष का चतुर्मुख होना ब्रह्मा का तथा परशु और त्रिशूल धारण करना शिव का प्रभाव हो सकता है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा मे सर्प पर आसीन और गज लाछन से युक्त अष्टभुज महायक्ष के करो मे खड्ग, दण्ड, अकुश, परशु, त्रिशूल, चक्र, पद्म एव वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है। श्वेतांबर परम्परा के दोनो ग्रन्थो मे भी अष्टभुज एव चतुर्भुज महायक्ष के करो मे उपर्युक्त आयुधो का ही उल्लेख है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे महायक्ष का

---

१ दिगंबर स्थलो से चक्रेश्वरी की द्विभुज, चतुर्भुज, षड्भुज, अष्टभुज, दशभुज, द्वादशभुज एव विंशतिभुज मूर्तिया मिली हैं।

२ महायक्षाभिधान यक्षेश्वर चतुर्मुखं श्यामवर्णं मातगवाहनमष्टपाणि वरदमुद्गराक्षसूत्रपाशान्वितदक्षिणपाणि बीजपूरकाभयाकुशशक्तियुक्तवामपाणिपल्लव चेति। निर्वाणकलिका १८ २
त्रि०श०पु०च० २ ३ ८४२–४४, पद्मानन्दमहाकाव्य. परिशिष्ट—अजितस्वामीचरित्र १९–२०, मन्त्राधिराजकल्प ३ २७, आचारदिनकर ३४, पृ० १७३

३ देवतामूर्तिप्रकरण मे महायक्ष का वाहन हस है और एक भुजा मे अक्षमाला के स्थान पर वज्र प्रदर्शित है। देवतामूर्तिप्रकरण ७ २०

४ अजितश्च महायक्षो हेमवर्णश्चतुर्मुख ।
गजेन्द्रवाहनारूढ स्वोचिताष्टभुजायुध ॥ प्रतिष्ठासारसग्रह ५ १७

५ चक्रत्रिशूलकमलाकुशवामहस्तो निस्त्रिंशदण्डपरशूद्यवरान्यपाणि । प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १३०

६ श्यामोऽष्टबाहुर्हस्तिस्थो वरदाभयमुद्गरा ।
अक्षपाशाङ्कुशा शक्तिर्मातुलिंग तथैव च ॥ अपराजितपृच्छा २२१ ४४

७ स्मरणीय है कि अजितनाथ का लाछन भी गज ही है।

वाहन गज और अज्ञातनाम दूसरे ग्रन्थ मे सर्प कहा गया है ।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय परम्परा महायक्ष के निरूपण मे उत्तर भारतीय दिगवर परम्परा से सहमत है । महायक्ष के साथ सर्पवाहन का उल्लेख दक्षिण भारतीय परम्परा की नवीनता है ।

मूर्ति-परम्परा

महायक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है । केवल देवगढ एव खजुराहो की जिन-सश्लिष्ट मूर्तियो (११वी-१२वी शती ई०) मे ही अजितनाथ के साथ यक्ष का अकन प्राप्त होता है (चित्र १५) । पर किसी भी उदाहरण मे यक्ष परम्परा विहित लक्षणो से युक्त नही है । सभी मूर्तियो मे द्विभुज यक्ष सामान्य लक्षणो वाला है जिसके हाथो मे अभयमुद्रा एव फल (या जलपात्र) प्रदर्शित है ।

(२) अजिता (या रोहिणी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

जिन अजितनाथ की यक्षी को श्वेताबर परम्परा मे अजिता (या अजितबला या विजया)[2] और दिगवर परम्परा मे रोहिणी नाम दिया गया है । दोनो परम्पराओ मे चतुर्भुजा यक्षी को लोहासन पर विराजमान बताया गया है ।

श्वेताबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे लोहासन पर विराजमान चतुर्भुजा अजिता के दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा एव पाश और बायें हाथो मे अकुश एव फल के प्रदर्शन का विधान है ।[3] अन्य ग्रन्थो मे भी उपर्युक्त लक्षणो के ही उल्लेख हैं ।[4] आचारदिनकर एव देवतामूर्तिप्रकरण मे यक्षी के वाहन के रूप मे लोहासन के स्थान पर क्रमशः गाय और गोधा का उल्लेख है ।[5]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे लोहासन पर विराजमान चतुर्भुजा रोहिणी के हाथो मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, शख एव चक्र के अकन का निर्देश है ।[6] अन्य ग्रन्थों मे भी यही विवरण प्राप्त होता है ।[7]

इस प्रकार दोनो परम्पराओ मे केवल यक्षी के नामो एव आयुधो के सन्दर्भ मे ही भिन्नता प्राप्त होती है । श्वेतावर परम्परा मे अजिता के मुख्य आयुध पाश एव अकुश, और दिगवर परम्परा मे रोहिणी के मुख्य आयुध चक्र एव शख हैं । यक्षी का अजिता नाम सम्भवत उसके जिन (अजितनाथ) से तथा रोहिणी नाम प्रथम महाविद्या रोहिणी से ग्रहण किया गया है ।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर परम्परा के अनुसार चतुर्भुजा यक्षी के ऊपरी हाथो मे चक्र और नीचे के हाथो मे अभयमुद्रा और कटकमुद्रा होने चाहिए । अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे मकरवाहना चतुर्भुजा यक्षी के करो मे वज्र, अंकुश, कटार (सकु) एव पद्म के प्रदर्शन का निर्देश है । यक्ष-यक्षी-लक्षण मे धातु निर्मित आसन पर विराजमान यक्षी के

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० १९८ २ मन्त्राधिराजकल्प

३ समुत्पन्नामजितामिधाना यक्षिणी गौरवर्णां लोहासनाधिरूढा चतुर्भुजा वरदपाशाधिष्ठितदक्षिणकरा बीजपुरकाकुश-युक्तवामकरा चेति ॥ निर्वाणकलिका १८ २

४ त्रि०श०पु०च० २ ३ ८४५-४६, पद्मानन्दमहाकाव्य परिशिष्ट-अजितस्वामीचरित्र २१-२२, मन्त्राधिराजकल्प ३ ५२

५ आचारदिनकर ३४, पृ० १७६, देवतामूर्तिप्रकरण ७ २१

६ देवी लोहासना रोहिण्याख्या चतुर्भुजा ।
वरदाभयहस्तासौ शखचक्रोज्वलायुधा ॥ प्रतिष्ठासारसग्रह ५ १८

७ प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १५७, प्रतिष्ठातिलकम ७ २, पृ० ३४१, अपराजितपृच्छा २२१ १६

८ महाविद्या रोहिणी की एक भुजा मे शख भी प्रदर्शित है ।

हाथो मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, शंख एव चक्र का उल्लेख है।[१] इस प्रकार उत्तर और दक्षिण भारत के ग्रन्थो मे चक्र, शख, अंकुश एव अभय-(या वरद-) मुद्रा के प्रदर्शन मे समानता प्राप्त होती है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** का विवरण पूरी तरह **प्रतिष्ठासारसंग्रह** के समान है।

मूर्ति-परम्परा

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र की अजितनाथ मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी का चित्रण नही प्राप्त होता है। पर आबू, कुम्भारिया, तारंगा, सादरी, घाणेराव जैसे श्वेताम्बर स्थलो पर दो ऊर्ध्व करो मे अकुश एव पाश धारण करने वाली चतुर्भुजा देवी का निरूपण विशेष लोकप्रिय था। देवी के निचले करो मे वरद-(या अभय-) मुद्रा एव मातुलिंग (या जलपात्र) प्रदर्शित हैं। देवी का वाहन कभी गज और कभी सिंह है। देवी की सम्भावित पहचान अजिता से की जा सकती है।[२]

उत्तरप्रदेश–मध्यप्रदेश—(क) **स्वतन्त्र मूर्तिया**—मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, विदिशा) एव देवगढ से रोहिणी की दसवीं-ग्यारहवी शती ई० की तीन मूर्तिया मिली हैं। मालादेवी मन्दिर की मूर्ति (१० वी शती ई०) उत्तरी मण्डप के अधिष्ठान पर उत्कीर्ण है। इसमे द्वादशभुजा रोहिणी ललितमुद्रा मे लोहासन पर विराजमान है। लोहासन के नीचे एक अस्पष्ट सी पशु आकृति (सम्भवत गज-मस्तक) उत्कीर्ण है। यक्षी के छह अवशिष्ट हाथो मे पद्म, वज्र, चक्र, शंख, पुष्प और पद्म प्रदर्शित हैं। देवगढ मे रोहिणी की दो मूर्तिया हैं। एक मूर्ति (१०५९ ई०) मन्दिर ११ के सामने के स्तम्भ पर है (चित्र ४७)। इसमे अष्टभुजा रोहिणी ललितमुद्रा मे भद्रासन पर विराजमान है। आसन के नीचे गोवाहन उत्कीर्ण है। रोहिणी वरदमुद्रा, अकुश, वाण, चक्र, पाश, धनुष, शूल एव फल से युक्त है। दूसरी मूर्ति (११वी शती ई०) मन्दिर १२ के अर्धमण्डप के समीप के स्तम्भ पर है। इसमे गोवाहना रोहिणी चतुर्भुजा है और उसकी भुजाओ मे वरदमुद्रा, वाण, धनुष एव जलपात्र हैं।[3]

(ख) **जिन-संयुक्त मूर्तियां**—जिन-सयुक्त मूर्तियो मे यक्षी का अपने विशिष्ट स्वतन्त्र स्वरूप मे निरूपण नही प्राप्त होता। देवगढ एव खजुराहो की अजितनाथ की मूर्तियो मे सामान्य लक्षणो वाली द्विभुजा यक्षी अभयमुद्रा (या खड्ग) एव फल (या जलपात्र) से युक्त है।

विहार-उडीसा-वगाल—इस क्षेत्र मे केवल उडीसा की नवमुनि एव वारभुजी गुफाओ से ही रोहिणी की मूर्तिया (११वीं-१२वी शती ई०) मिली हैं। नवमुनि गुफा की मूर्ति मे अजित की यक्षी चतुर्भुजा है और उसका वाहन गज है। यक्षी के हाथो मे अभयमुद्रा, वज्र, अकुश और तीन काटे वाली कोई वस्तु प्रदर्शित हैं। किरीटमुकुट से शोभित यक्षी के ललाट पर तीसरा नेत्र उत्कीर्ण है। यक्षी के निरूपण मे गजवाहन एव वज्र और अकुश का प्रदर्शन हिन्दू इन्द्राणी (मातृका) का प्रभाव है।[४] वारभुजी गुफा मे अजित के साथ द्वादशभुजा रोहिणी आमूर्तित है। वृषभवाहना रोहिणी को अवशिष्ट दाहिनी भुजाओ मे वरदमुद्रा, शूल, वाण एव खड्ग और वायी मे पाश (?), धनुष, हल, खेटक, सनाल पद्म एव घण्टा (?) प्रदर्शित हैं। यक्षी की एक वायी भुजा वक्ष स्थल के समक्ष स्थित है।[५] यक्षी के साथ वृषभवाहन एव धनुष और वाण का प्रदर्शन रोहिणी महाविद्या का प्रभाव है। वारभुजी गुफा की एक दूसरी मूर्ति मे रोहिणी अष्टभुजा है। वृषभवाहना यक्षी के शीर्ष भाग मे गज-लाछन-युक्त अजितनाथ की मूर्ति उत्कीर्ण है। रोहिणी के दक्षिण करो मे वरदमुद्रा, पताका,

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पूर्वो०नि०, पृ० १९८

२ श्वेताम्बर स्थलो पर महाविद्याओ की विशेष लोकप्रियता, यक्षियो की स्वतन्त्र मूर्तियो की अल्पता एव अजितनाथ की मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी का न उत्कीर्ण किया जाना, इस पहचान मे वाधक हैं।

३ देवगढ की मूर्तियो पर श्वेताम्बर परम्परा की महाविद्या रोहिणी का प्रभाव है। गोवाहना रोहिणी महाविद्या की भुजाओ मे वाण, अक्षमाला, धनुष एवं शख प्रदर्शित हैं।

४ मित्रा, देवला, पूर्वो०नि०, पृ० १२८

५ वही, पृ० १३०

अंकुश और चक्र एव वाम करो मे शख (?), जलपात्र, वृक्ष की टहनी और चक्र हैं ।[१] नवमुनि एवं वारभुजी गुफाओ की मूर्तियो के विवरणो से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र मे रोहिणी की लाक्षणिक विशेषताए स्थिर नही हो पायी थीं ।

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि ल० दसवी शती ई० मे यक्षी की स्वतन्त्र मूर्तियो का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ, जिनके उदाहरण ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर), देवगढ एव उडीसा मे नवमुनि और वारभुजी गुफाओ से मिले हैं । दिगवर स्थलो की इन मूर्तियो मे रोहिणी के निरूपण मे अधिकाशत श्वेताबर महाविद्या रोहिणी की विशेषताए ग्रहण की गयी । केवल मालादेवी मन्दिर की मूर्ति मे ही वाहन और आयुधो के सन्दर्भ मे दिगवर परम्परा का निर्वाह किया गया है ।

(३) त्रिमुख यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

त्रिमुख जिन सम्भवनाथ का यक्ष है । दोनो परम्पराओं मे उसे तीन मुखो, तीन नेत्रो और छह भुजाओ वाला तथा मयूरवाहन से युक्त बताया गया है ।

श्वेताबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे त्रिमुख यक्ष के दाहिने हाथो मे नकुल, गदा एव अभयमुद्रा और बायें मे फल, सर्प एव अक्षमाला का उल्लेख है ।[२] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही आयुधो की चर्चा है ।[३] **मन्त्राधिराजकल्प** मे त्रिमुख यक्ष का वाहन मयूर के स्थान पर सर्प है ।[४] आचारदिनकर के अनुसार यक्ष नौ नेत्रो वाला (नवाक्ष) है ।[५]

दिगबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसग्रह** मे आयुधो का अनुल्लेख है ।[६] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे त्रिमुख यक्ष के दाहिने हाथो मे दण्ड, त्रिशूल एव कटार (शितकर्तृका), और बायें मे चक्र, खड्ग एव अंकुश दिये गये हैं ।[७] **अपराजितपृच्छा** यक्ष के करो मे परशु, अक्षमाला, गदा, चक्र, शख और वरदमुद्रा का उल्लेख करता है ।[८]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर परम्परा के अनुसार मयूर पर आरूढ त्रिमुख यक्ष षड्भुज है और उसकी दाहिनी भुजाओ मे त्रिशूल, पाश (या वज्र) एव अभयमुद्रा, और बायी मे खड्ग, अकुश एव पुस्तक (? या खुली हुई हथेली) रहते हैं । अज्ञातनाम श्वेताबर ग्रन्थ के अनुसार वीरमर्कट पर आरुढ यक्ष के करो मे खड्ग, खेटक, कटार (कट्टि), चक्र, त्रिशूल एव दण्ड होने चाहिये । **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे तीन मुखो एव नेत्रो वाले यक्ष का वाहन मयूर है और उसके

---

१ वही, पृ० १३३

२ त्रिमुखयक्षेश्वर त्रिमुख त्रिनेत्र श्यामवर्णं मयूरवाहन षड्भुज नकुलगदाभययुक्तदक्षिणपाणि मातुलिंगनागाक्षसूत्रान्वितवामहस्त चेति । **निर्वाणकलिका १८ ३**

३ त्रि०श०पु०च० ३.१ ३८५-८६, पद्मानन्दमहाकाव्य परिशिष्ट-सम्भवनाथचरित्र १७–१८

४ सर्पासनस्थितिरय त्रिमुखो मदीयम् । **मन्त्राधिराजकल्प ३ २८**

५ आचारदिनकर ३४, पृ० १७३

६ षड्भुजस्त्रिमुखोयक्षस्त्रिनेत्र सिखिवाहन ।
श्यामलागो विनीतात्मा सम्भवं जिनमाश्रित ॥ **प्रतिष्ठासारसग्रह ५ १९**

७ चक्रासिसृण्युपगसव्यसयोन्यहस्तैर्दंडत्रिशूलमुपयन् शितकर्तृकाच ।
वाजिध्वजप्रभुनत शिखिगोजनाभस्त्रयक्ष प्रतिक्षतु वलि त्रिमुखाख्ययक्ष ॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १३१**
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम् ७ ३, पृ० ३३२**

८ मयूरस्थस्त्रिनेत्रश्च त्रिवक्त्र श्यामवर्णक. ।
परस्वक्षग,दाचक्र शखा वरश्च षड्भुज ॥ **अपराजितपृच्छा २२१ ४५**

हाथो मे चक्र, खड्ग, दण्ड, त्रिशूल, अकुश एवं सत्कीर्तिक (ग्रस्त्र) के प्रदर्शन का निर्देश है।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि दक्षिण भारत के श्वेताबर एव दिगवर ग्रन्थो के विवरणो मे एकरूपता है। साथ ही उन पर उत्तर भारत के दिगवर ग्रन्थो का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है।

मूर्ति-परम्परा

त्रिमुख यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। सम्भवनाथ की मूर्तियो मे भी पारम्परिक यक्ष का उत्कीर्णन नही हुआ है। यक्ष का कोई स्वतन्त्र स्वरूप भी नियत नही हो सका था। सामान्य लक्षणो वाला यक्ष समान्यत: द्विभुज है।[2] देवगढ की छह मूर्तियो (१०वी-१२वी शती ई०) मे द्विभुज यक्ष अभयमुद्रा[3] एव फल (या कलश) के साथ तथा मन्दिर १५ और ३० की दो चतुर्भुज मूर्तियो (११वी-१२वी शती ई०) मे वरद-(या अभय-) मुद्रा, गदा, पुस्तक (या पद्म) और फल (या कलश) के साथ निरूपित है। खजुराहो की दो मूर्तियों[4] (११ वी-१२ वी शती ई०) मे द्विभुज यक्ष के हाथो मे पात्र और धन का थैला (या मातुलिंग) हैं।

(३) दुरितारी (या प्रज्ञप्ति) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

दुरितारी (या प्रज्ञप्ति) जिन सम्भवनाथ की यक्षी है। श्वेतावर परम्परा मे इसे दुरितारी और दिगवर परम्परा मे प्रज्ञप्ति नामो से सम्बोधित किया गया है। श्वेतावर परम्परा मे यक्षी चतुर्भुजा और दिगबर परम्परा मे षड्भुजा है।

श्वेतांवर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे मेषवाहना दुरितारी के दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा और अक्षमाला तथा वायें में फल और अभयमुद्रा है।[5] **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र**[6] तथा **पद्मानन्दमहाकाव्य**[7] मे फल के स्थान पर सर्प का उल्लेख है। परवर्ती ग्रन्थो मे यक्षी के वाहन के सन्दर्भ मे पर्याप्त भिन्नता प्राप्त होती है। **पद्मानन्दमहाकाव्य** मे वाहन के रूप मे छाग (अज), **मन्त्राधिराजकल्प** मे मयूर[8] और **देवतामूर्तिप्रकरण** मे महिष[9] का उल्लेख है।

दिगम्बर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसग्रह** मे षड्भुजा यक्षी का वाहन पक्षी है। ग्रन्थ मे प्रज्ञप्ति की केवल चार ही भुजाओ के आयुधो—अर्द्धेन्दु, परशु, फल एव वरदमुद्रा—का उल्लेख है।[10] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे पक्षीवाहना प्रज्ञप्ति के करो

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० १९८

२ केवल देवगढ की दो मूर्तियो मे यक्ष चतुर्भुज और स्वतन्त्र लक्षणो वाला है।

३ मन्दिर १७ और १९ की दो मूर्तियो (११ वी शती ई०) मे यक्ष की दाहिनी भुजा मे अभयमुद्रा के स्थान पर गदा प्रदर्शित है।

४ पुरातात्विक सग्रहालय, खजुराहो (१७१५) एवं मन्दिर १६

५ दुरितारिदेवी गौरवर्णां मेषवाहना चतुर्भुजा वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरा फलाभयान्वितवामकरा चेति ॥
निर्वाणकलिका १८ ३
अचारदिनकर मे अक्षमाला के स्थान पर मुक्तामाला का उल्लेख है (३४, पृ० १७६)।

६ दक्षिणाभ्याभुजाभ्या तु वरदेनाऽक्षसूत्रिणा।
वामाभ्या शोभमाना तु फणिनाऽभयदेन च ॥ त्रि०श०पु०च० ३.१ ३८८

७ **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट—सम्भवनाथचरित्र १९–२०

८ देवी तुषारगिरिसोदरदेहकान्तिर्दध्यात् सुख शिखिगति सतत परीता । **मन्त्राधिराजकल्प** ३ ५३

९ दुरितारिगौरवर्णा यक्षिणी महिषासना । **देवतामूर्तिप्रकरण** ७ २३

१० प्रज्ञप्तिर्देवता श्वेता षड्भुजापक्षिवाहना।
अर्द्धेन्दुपरशु धत्ते फलाश्रीष्टावरप्रदा ॥ **प्रतिष्ठासारसग्रह** ५.२०

मे अर्द्धेन्दु, परशु, फल, खड्ग, इढ़ी एव वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[१] प्रतिष्ठातिलकम् मे इढी के स्थान पर पिंडी का उल्लेख है।[२] अपराजितपृच्छा मे षड्भुजा यक्षी के दो हाथो मे खड्ग और इढी के स्थान पर क्रमश: अभयमुद्रा एव पद्म दिये गये हैं।[३]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा मे हसवाहना यक्षी षड्भुजा है और उसकी दक्षिण भुजाओ मे परशु, खड्ग एव अभयमुद्रा और वाम मे पाश, चक्र एव कटकमुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे अश्व-वाहना यक्षी द्विभुजा है जिसकी भुजाओ मे वरदमुद्रा एव पद्म दिये गये हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण मे पक्षीवाहना यक्षी षड्भुजा है तथा प्रतिष्ठासारसंग्रह के समान, उसकी केवल चार भुजाओ के आयुध—अर्धचन्द्र, परशु, फल एव वरदमुद्रा-वर्णित हैं।[४]

मूर्ति-परम्परा

(क) स्वतन्त्र मूर्तिया—यक्षी की केवल दो मूर्तिया (११वी-१२वी शती ई०) मिली हैं। ये मूर्तिया उडीसा के नवमुनि एव बारभुजी गुफाओ मे हैं। इनमे पारम्परिक विशेषताए नही प्रदर्शित हैं। नवमुनि गुफा की मूर्ति में पद्मासन पर ललितमुद्रा मे विराजमान द्विभुजा यक्षी जटामुकुट और हाथो मे अभयमुद्रा एवं सनाल पद्म से युक्त है।[५] बारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी चतुर्भुजा है। उसका वाहन (कोई पशु) आसन के नीचे उत्कीर्ण है। यक्षी के दो अवशिष्ट हाथो मे वरदमुद्रा और अक्षमाला हैं।[६]

(ख) जिन-सयुक्त मूर्तिया—देवगढ एव खजुराहो की सम्भवनाथ की मूर्तियो (११वी-१२वी शती ई०) मे यक्षी आमूर्तित है। इनमे यक्षी द्विभुजा और सामान्य लक्षणो वाली है। द्विभुजा यक्षी के करो मे अभयमुद्रा एवं फल (या पद्म, या खड्ग या कलश) प्रदर्शित हैं। देवगढ की एक मूर्ति मे यक्षी चतुर्भुजा भी है जिसके तीन सुरक्षित हाथो मे वरदमुद्रा, पद्म एव कलश हैं। सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि मूर्त अकनो मे यक्षी का कोई पारम्परिक या स्वतन्त्र स्वरूप नियत नही हो सका था

(४) ईश्वर (या यक्षेश्वर) यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

ईश्वर (या यक्षेश्वर) जिन अभिनन्दन का यक्ष है। श्वेतांबर परम्परा मे यक्ष को ईश्वर और यक्षेश्वर नामों से, पर दिगंबर परम्परा मे केवल यक्षेश्वर नाम से ही सम्बोधित किया गया है। दोनो परम्पराओ मे यक्ष चतुर्भुज है और उसका वाहन गज है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे गजारूढ ईश्वर के दाहिने हाथो मे फल और अक्षमाला तथा बायें मे नकुल और अंकुश के प्रदर्शन का निर्देश है।[७] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही आयुधो के उल्लेख हैं।[८]

---

१ पक्षिस्थार्धेन्दुपरशुफलासीढीवरै: सिता।
चतुश्चापशतोच्चाहंद्भक्ता प्रज्ञप्तिरिच्यते ॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१५८

२ कृपाणपिण्डीवरमादधानाम्। प्रतिष्ठातिलकम् ७ ३, पृ० ३४१

३ अभयवरदफलचन्द्रा परशुरुत्पलम् ॥ अपराजितपृच्छा २२१ १७

४ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० १९९ ५ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १२८

६ वही, पृ० १३०

७ तत्तीर्थोत्पन्नमीश्वरयक्ष श्यामवर्ण गजवाहन चतुर्भुज मातुलिंगाक्षसूत्रयुतदक्षिणपाणि नकुलाकुशान्वितवामपाणि चेति। निर्वाणकलिका १८.४

८ त्रि०श०पु०च० ३ २ १५९-६०, मन्त्राधिराजकल्प ३ २९, आचारदिनकर ३४, पृ० १७४

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह् मे गजारूढ यक्षेश्वर के करो के आयुधो का अनुल्लेख है।[1] प्रतिष्ठासारोद्धार मे यक्षेश्वर की दाहिनी भुजाओ के आयुध सक-पत्र और खड्ग तथा वायी के कार्मुक और खेटक हैं।[2] प्रतिष्ठातिलकम् मे सकपत्र के स्थान पर बाण का उल्लेख है।[3] अपराजितपृच्छा मे यक्ष का चतुरानन नाम से स्मरण है जिसका वाहन हस तथा भुजाओ के आयुध सर्प, पाश, वज्र और अकुश हैं।[4]

यक्षेश्वर के निरूपण मे गजवाहन एवं अंकुश का प्रदर्शन सम्भवत. हिन्दू देव इन्द्र का प्रभाव है। अपराजितपृच्छा मे अंकुश के साथ ही वज्र के प्रदर्शन का भी निर्देश है। अपराजितपृच्छा मे यक्ष के नाम, चतुरानन, और वाहन, हस, के सन्दर्भ मे हिन्दू ब्रह्मा का प्रभाव भी देखा जा सकता है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दक्षिण भारत मे दोनो परम्परा के ग्रन्थो मे उत्तर भारत की दिगवर परम्परा के अनुरूप गजारूढ यक्ष चतुर्भुज है और उसकी भुजाओ के आयुध अभयमुद्रा (या बाण), खड्ग, खेटक एवं धनुष हैं।[5]

मूर्ति-परम्परा

यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। केवल अभिनन्दन की तीन मूर्तियो (१०वी-११वी शती ई०) मे यक्ष निरूपित है। इनमे से दो खजुराहो (पार्श्वनाथ मन्दिर, मन्दिर २९) तथा तीसरी देवगढ (मन्दिर ९) से मिली हैं। इनमे सामान्य लक्षणो वाला द्विभुज यक्ष अभयमुद्रा एव फल (या कलश) से युक्त है।

(४) कालिका (या वज्रशृंखला) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

कालिका (या वज्रशृंखला) जिन अभिनन्दन की यक्षी है। श्वेतावर परम्परा मे यक्षी को कालिका (या काली) और दिगंबर परम्परा मे वज्रशृंखला कहा गया है। दोनो परम्पराओ मे यक्षी को चतुर्भुजा बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे पद्मवाहना कालिका के दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा और पाश एव बायें मे सर्प और अंकुश का उल्लेख है।[6] अन्य ग्रन्थो मे भी यही लाक्षणिक विशेषताए वर्णित हैं।[7]

दिगवर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे वज्रशृखला के वाहन हस और भुजाओ मे वरदमुद्रा, नागपाश, अक्षमाला और फल का उल्लेख है।[8] परवर्ती ग्रन्थो मे भी इन्ही आयुधो का वर्णन है।[9]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर परम्परा मे चतुर्भुजा यक्षी का वाहन हस है और वह भुजाओ मे अक्षमाला, अभयमुद्रा, सर्प एव कटकमुद्रा धारण किये है। अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे यक्षी का वाहन कपि और करो मे चक्र,

---

१ अभिनन्दननाथस्य यक्षो यक्षेश्वराभिध ।
हस्तिवाहनमारूढ श्यामवर्णश्चतुर्भुज॰ ।। प्रतिष्ठासारसंग्रह ५ २१

२ प्रेरवद्धनु. खेटकवामपाणि सकपत्रास्यपसव्यहस्तम् ।
श्याम करिस्थ कपिकेतुमक्त यक्षेश्वर यक्षमिहार्चयामि ।। प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १३२

३ वामान्यहस्तोद्धृतबाणखड्ग । प्रतिष्ठातिलकम् ७ ४, पृ० ३३२

४ नागपाशवज्राकुशा हसस्थश्चतुरानन । अपराजितपृच्छा २२१.४६

५ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० १९९

६ ' कालिकादेवी श्यामवर्णी पद्मासना चतुर्भुजा वरदपाशाधिष्ठितदक्षिणभुजा नागाकुशान्वितवामकरा चेति । निर्वाणकलिका १८ ४

७ त्रि०श०पु०च० ३.२.१६१–६२, आचारदिनकर ३४, पृ० १७६, मत्राधिराजकल्प ३ ५४

८ वरदा हसमारूढा देवता वज्रशृखला ।
नागपाशाक्षसूत्रोरुफलहस्ता चतुर्भुजा ।। प्रतिष्ठासारसग्रह ५ २२–२३

९ प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १५९, प्रतिष्ठातिलकम् ७ ४, पृ० ३४१, अपराजितपृच्छा २२१ १८

कमण्डलु, वरदमुद्रा एव पद्म हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण मे हसवाहना यक्षी के करो मे वरदमुद्रा, फल, पाश एव अक्षमाला का वर्णन है।[१] वाहन हंस एव भुजाओ मे पाश, अक्षमाला एव फल के प्रदर्शन मे दक्षिण भारतीय परम्पराए उत्तर भारतीय दिगवर परम्परा के समान हैं।

मूर्ति-परम्परा

(क) **स्वतन्त्र मूर्तियां**—वज्रश्रृखला की तीन मूर्तिया मिली हैं। ये मूर्तिया उत्तर प्रदेश मे देवगढ से (मन्दिर १२) एवं उडीसा मे उदयगिरि-खण्डगिरि की नवमुनि और वारभुजी गुफाओ से मिली हैं। इनमे यक्षी के साथ पारम्परिक विशेषताए नही प्रदर्शित हैं। देवगढ की मूर्ति (८६२ ई०) मे जिन अभिनन्दन के साथ आमूर्तित द्विभुजा यक्षी को लेख मे 'भगवती सरस्वती' कहा गया है। यक्षी की दाहिनी भुजा मे चामर है और वायी जानु पर स्थित है। नवमुनि गुफा की मूर्ति मे यक्षी चतुर्भुजा है तथा उसकी भुजाओ मे अभयमुद्रा, चक्र, शख और वालक है।[२] किरीटमुकुट से शोभित यक्षी का वाहन कपि है। स्पष्ट है कि यक्षी के निरूपण मे कलाकार ने सयुक्त रूप से हिन्दू वैष्णवी (चक्र, शख एव किरीटमुकुट) एव जैन यक्षी अम्बिका (वालक)[३] की विशेषताए प्रदर्शित की हैं। यक्षी का कपिवाहन अभिनन्दन के लाछन (कपि) से ग्रहण किया गया है। वारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी अष्टभुजा और पद्म पर आसीन है। यक्षी के दो हाथों मे उपवीणा (हार्प) और दो मे वरदमुद्रा एव वज्र हैं। शेष हाथ खण्डित हैं।[४]

(ख) **जिन-सयुक्त मूर्तिया**—देवगढ एव खजुराहो की जिन अभिनन्दन की तीन मूर्तियों (१० वी-११ वी शती ई०) मे यक्षी सामान्य लक्षणो वाली और द्विभुजा है तथा उसके करो मे अभयमुद्रा एव फल (या कलश) प्रदर्शित है।

(५) तुम्बरु यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

तुम्बरु (या तुम्वर) जिन सुमतिनाथ का यक्ष है। दोनो परम्पराओ मे तुम्बरु को चतुर्भुज और गरुड वाहन-वाला कहा गया है।

श्वेतांवर परम्परा—निर्वाणकलिका मे तुम्बरु के दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा एव शक्ति और वायें मे नाग एव पाश के प्रदर्शन का निर्देश है।[५] दो ग्रन्थो मे नाग के स्थान पर गदा का उल्लेख है।[६] अन्य ग्रन्थो मे गदा और नाग-पाश दोनो के उल्लेख है।[७]

दिगवर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे नाग यज्ञोपवीत से सुशोभित चतुर्भुज यक्ष के दो करो मे दो सर्प और शेष मे वरदमुद्रा एव फल का वर्णन है।[८] परवर्ती ग्रन्थो मे भी इन्ही विशेषताओ के उल्लेख हैं।[९]

---

१ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० १९९　　२ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १२८

३ वालक का प्रदर्शन हिन्दू मातृका का भी प्रभाव हो सकता है।　　४ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३०

५ तुम्वरुयक्ष गरुडवाहन चतुर्भुज वरदशक्तियुत-दक्षिणपाणि नागपाशयुक्तवामहस्त चेति। निर्वाणकलिका १८ ५

६ दक्षिणौ वरदशक्तिधरौ वाहू समुद्वहन्।
वामौ वाहू गदाधारपाशयुक्तौ च धारयन्॥ त्रि०श०पु०च० ३ ३ २४६–४७
द्रष्टव्य, पद्मानन्दमहाकाव्य परिशिष्ट-सुमतिनाथ १८–१९

७ 'वरशक्तियुक्तहस्तौ गदोरगपपाशगवामपाणि। मन्त्राधिराजकल्प ३ ३०, द्रष्टव्य, आचारदिनकर ३४, पृ० १७४

८ सुमतेस्तुम्वरोयक्ष श्यामवर्णश्चतुर्भुज।
सर्पद्वयफल धत्ते वरद परिकीर्तित।
सर्पयज्ञोपवीतोसौ खगाधिपतिवाहन.॥ प्रतिष्ठासारसग्रह ५ २३–२४

९ द्रष्टव्य, प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १३३, प्रतिष्ठातिलकम् ७ ५, पृ० ३३२, अपराजितपृच्छा २२१ ४६

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर ग्रन्थ मे चतुर्भुज यक्ष का वाहन गरुड है। उसके दो हाथो मे सर्प और शेष दो मे अभय-और कटक-मुद्राए प्रदर्शित है। अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे चतुर्भुज यक्ष का वाहन सिंह है और उसके करो में खड्ग, फलक, वज्र एव फल प्रदर्शित हैं। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे नागयज्ञोपवीत से युक्त यक्ष के दो हाथो मे सर्प, और अन्य दो मे फल एवं वरदमुद्रा हैं।[1] **यक्ष-यक्षी-लक्षण** एव दिगवर ग्रन्थ के विवरण उत्तर भारतीय दिगवर परम्परा के समान है।

मूर्ति-परम्परा

तुम्बरु यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। केवल खजुराहो की दो सुमतिनाथ की मूर्तियो (१० वीं–११ वीं शती ई०) मे ही यक्ष आमूर्तित है।[2] इनमे द्विभुज यक्ष सामान्य लक्षणो वाला और अभयमुद्रा एव फल से युक्त है।

(५) महाकाली (या पुरुषदत्ता) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

महाकाली (या पुरुषदत्ता) जिन सुमतिनाथ की यक्षी है। श्वेतावर परम्परा मे यक्षी को महाकाली और दिगबर परम्परा मे पुरुषदत्ता (या नरदत्ता) नाम से सम्बोधित किया गया है।

श्वेतांवर परम्परा—**निर्वाणकलिका** के अनुसार चतुर्भुजा महाकाली का वाहन पद्म है और उसके दाहिने हाथो के आयुध वरदमुद्रा और पाश तथा वायें के मातुलिंग और अकुश हैं।[3] परवर्ती ग्रन्थों मे भी इन्ही लक्षणो के उल्लेख हैं।[4] केवल **देवतामूर्तिप्रकरण** मे पाश के स्थान पर नागपाश का उल्लेख है।[5]

दिगवर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे चतुर्भुजा पुरुषदत्ता का वाहन गज है और उसकी भुजाओ मे वरदमुद्रा, चक्र, वज्र एवं फल का वर्णन है।[6] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही लक्षणो के उल्लेख हैं।[7]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर ग्रन्थ मे गजारूढ यक्षी की ऊपरी भुजाओ मे चक्र एव वज्र और निचली मे अभय-एवं कटक-मुद्राए उल्लिखित हैं। अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे द्विभुजा यक्षी का वाहन श्वान् है तथा हाथो के आयुध अभयमुद्रा और अंकुश है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे गजवाहना यक्षी चक्र, वज्र, फल एव वरदमुद्रा से युक्त है।[8] चतुर्भुजा यक्षी के ये विवरण उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा से प्रभावित हैं।

---

१ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० १९९

२ ये मूर्तिया पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की भित्ति एव मन्दिर ३० मे हैं। विमलवसही की देवकुलिका २७ की सुमतिनाथ की मूर्ति मे चतुर्भुज यक्ष सर्वानुभूति है।

३ महाकाली देवीं सुवर्णवर्णां पद्मवाहना चतुर्भुजा वरदपाशाधिष्ठितदक्षिणकरा मातुलिंगाकुशयुक्तवामभुजा चेति ॥
निर्वाणकलिका १८ ५

४ द्रष्टव्य, त्रि०श०पु०च० ३ ३ २४८-४९, मन्त्राधिराजकल्प ३ ५४, पद्मानन्दमहाकाव्य परिशिष्ट–सुमतिनाथ १९-२०, आचारदिनकर ३४, पृ० १७६

५ वरद नागपाश चाकुश स्याद् वीजपूरकम्। देवतामूर्तिप्रकरण ७ २७

६ देवी पुरुषदत्ता च चतुर्हस्तागजेन्द्रगा।
रथागवज्रशस्त्रासौ फलहस्ता वरप्रदा ॥ प्रतिष्ठासारसग्रह ५ २५
गजेन्द्रगावज्रफलोद्यचक्रवरागहस्ता '। प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १६०

७ प्रतिष्ठातिलकम् ७ ५, पृ० ३४२, अपराजितपृच्छा २२१ १९

८ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २००

मूर्ति-परम्परा

पुष्पदत्ता की केवल दो स्वतन्त्र मूर्तिया मध्य प्रदेश मे ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर तथा उडीसा मे बारभुजी गुफा से मिली हैं। मालादेवी मन्दिर की मूर्ति (१०वी शती ई०) मण्डप की दक्षिणी जघा पर है जिसमे पुरुषदत्ता पद्मासन पर ललितमुद्रा मे विराजमान है और उसका गजवाहन आसन के नीचे उत्कीर्ण है। चतुर्भुजा यक्षी के करो मे खड्ग, चक्र, खेटक और शख प्रदर्शित हैं। गजवाहन एव चक्र के आधार पर देवी की पहचान पुरुषदत्ता से की गई है। बारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी दशभुजा है और उसका वाहन मकर है। यक्षी के अवशिष्ट दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा, चक्र, शूल और खड्ग तथा बायें हाथो मे पाश, फलक, हल, मुद्गर और पद्म हैं।[१] खजुराहो की दो सुमतिनाथ की मूर्तियो मे द्विभुजा यक्षी सामान्य लक्षणो वाली है। यक्षी के करो मे अभयमुद्रा (या पुष्प) और फल प्रदर्शित हैं। विमलवसही की सुमतिनाथ की मूर्ति मे अम्बिका निरूपित है।

(६) कुसुम यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

कुसुम (या पुष्प) जिन पद्मप्रभ का यक्ष है। दोनो परम्पराओ मे चतुर्भुज यक्ष का वाहन मृग बताया गया है। यक्ष के कुसुम और पुष्प नाम निश्चित ही जिन पद्मप्रभ के नाम से प्रभावित हैं।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे मृग पर आरूढ कुसुम यक्ष के दाहिने हाथो मे फल और अभयमुद्रा एव बायें हाथो मे नकुल और अक्षमाला का उल्लेख है।[२] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही लक्षणो के उल्लेख हैं।[३] केवल **मन्त्राधिराजकल्प** एव **आचारदिनकर** मे वाहन क्रमश मयूर और अश्व बताया गया है।[४]

दिगबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे यक्ष पुष्प मृगवाहन वाला और द्विभुज है।[५] **अपराजितपृच्छा** मे भी यक्ष द्विभुज तथा मृग पर सस्थित है और उसके करो मे गदा और अक्षमाला का उल्लेख है।[६] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे चतुर्भुज यक्ष के ध्यान मे उसकी दाहिनी भुजाओ मे शूल (कुन्त) और मुद्रा तथा बायी मे खेटक और अभयमुद्रा का वर्णन है।[७] **प्रतिष्ठातिलकम्** मे दोनो वाम करो मे खेटक के प्रदर्शन का विधान है।[८]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगबर ग्रन्थ मे वृषभारूढ यक्ष चतुर्भुज है। उसकी ऊपरी भुजाओं मे शूल एव खेटक और निचली मे अभय-एव कटक मुद्राए हैं। श्वेतांबर ग्रन्थो मे मृगवाहन से युक्त चतुर्भुज यक्ष के करो मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, शूल एव फलक का वर्णन है।[९] श्वेतांबर ग्रन्थो के विवरण उत्तर भारतीय दिगबर परम्परा से प्रभावित हैं।

कुसुम यक्ष की एक भी मूर्ति नही मिली है।

---

१ मिश्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३०

२ कुसुमयक्ष नीलवर्णं कुरगवाहन चतुर्भुज फलाभययुक्तदक्षिणपाणि नकुलकाक्षसूत्रयुक्तवामपाणि चेति। **निर्वाणकलिका** १८.६

३ त्रि०श०पु०च० ३.४ १८०-८१, पद्मानन्दमहाकाव्य परिशिष्ट-पद्मप्रभ १६-१७

४ रम्भादभामवपुरेपकुमारयानो यक्ष फलाभयपुरोगभुज पुनातु।
वभ्रवक्षदामयुतवामकरस्तु ॥ **मन्त्राधिराजकल्प** ३ ३१
नीलस्तुरगगमनश्च चतुर्भुजाढय- स्फूर्जत्फलाभयसुदक्षिणपाणि युग्म।
वभ्राक्षसूत्रयुतवामकरद्वयश्च ॥ **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४

५ पद्मप्रभजिनेन्द्रस्य यक्षो हरिणवाहन-।
द्विभुज पुष्पनामाम्नो श्यामवर्ण प्रकीर्तित ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.२७

६ कुसुमाख्यो गदाक्षो च द्विभुजो मृगसस्थित। **अपराजितपृच्छा** २२१ ४७

७ मृगारुह कुन्तवरापसव्यकर सखेटाभयसव्यहस्तम्। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१३४

८ खेटोभयोद्भासितसव्यहस्त कुन्तेष्टदानस्फुरितान्यपाणिम्। **प्रतिष्ठातिलकम्** ७ ६, पृ० ३३३

९ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २००

(६) अच्युता (या मनोवेगा) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

अच्युता (या मनोवेगा) जिन पद्मप्रभ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे यक्षी को अच्युता (या श्यामा या मानसी) और दिगंबर परम्परा मे मनोवेगा कहा गया है। दोनो परम्परा के ग्रन्थो मे यक्षी को चतुर्भुजा बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे नरवाहना अच्युता के दक्षिण करो मे वरदमुद्रा एवं वीणा तथा वाम मे धनुष एवं अभयमुद्रा का वर्णन है।[1] अन्य ग्रन्थो मे वीणा के स्थान पर पाश[2] या बाण[3] के उल्लेख हैं। **आचारदिनकर** मे यक्षी के दाहिने हाथो मे पाश एवं वरदमुद्रा और बायें मे मातुलिंग एवं अंकुश का उल्लेख है।[4]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे चतुर्भुजा अश्ववाहना मनोवेगा के केवल तीन करो के आयुधो—वरद-मुद्रा, खेटक एवं खड्ग का उल्लेख है।[5] अन्य ग्रन्थो मे चौथी भुजा मे मातुलिंग वर्णित है।[6] **अपराजितपृच्छा** मे अश्ववाहना मनोवेगा के करो मे वज्र, चक्र, फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[7]

श्वेतांबर परम्परा मे यक्षी का नाम १४वी महाविद्या अच्युता से ग्रहण किया गया। हाथो मे बाण एवं धनुष का प्रदर्शन भी सम्भवत. महाविद्या अच्युता का ही प्रभाव है। यक्षी का नरवाहन सम्भवत. महाविद्या महाकाली से प्रभावित है। दिगंबर परम्परा मे यक्षी का नाम मनोवेगा है, पर उसकी लाक्षणिक विशेषताएं (अश्ववाहन, खड्ग, खेटक) महाविद्या अच्युता से प्रभावित हैं।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे अश्ववाहना यक्षी के ऊपरी हाथो मे खड्ग एवं खेटक और नीचे के हाथो मे अभय-एवं कटक-मुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे मृगवाहना यक्षी के करो मे खड्ग, खेटक, शर एवं चाप का वर्णन है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे अश्ववाहना यक्षी वरदमुद्रा, खेटक, खड्ग एवं मातुलिंग से युक्त है।[8] दक्षिण भारत के दोनो परम्पराओ के ग्रन्थो मे यक्षी के साथ अश्ववाहन एवं खड्ग और खेटक के प्रदर्शन उत्तर भारत के दिगंबर परम्परा से सम्बन्धित हो सकते हैं।

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की नवी से बारहवी शती ई० के मध्य की चार स्वतन्त्र मूर्तियां देवगढ, खजुराहो, ग्यारसपुर एवं बारभुजी गुफा से मिली हैं।[9] देवगढ के मन्दिर १२ (८६२ ई०) की भित्ति पर पद्मप्रभ के साथ 'सुलोचना' नाम की अश्ववाहना यक्षी निरूपित है।[10] चतुर्भुजा यक्षी के तीन हाथो मे धनुष, बाण एवं पद्म हैं तथा चौथा जानु पर स्थित

---

१ अच्युता देवी श्यामवर्णा नरवाहनां चतुर्भुजा वरदवीणान्वितदक्षिणकरा कार्मुकाभययुतवामहस्ता ॥ निर्वाणकलिका १८ ६

२ त्रि०श०पु०च० ३ ४ १८२–८३, पद्मानन्दमहाकाव्य–परिशिष्ट ६ १७–१८

३ मन्त्राधिराजकल्प ३.५५, देवतामूर्तिप्रकरण ७ २९

४ श्यामा चतुर्भुजधरा नरवाहनस्था पाशं तथा च वरदं कारयोर्दधाना।
वामान्ययोस्तदनु सुन्दरबीजपूरं तीक्ष्णाङ्कुशं च परयो ॥ आचारदिनकर ३४, पृ० १७६

५ तुरगवाहना देवी मनोवेगा चतुर्भुजा।
वरदा काञ्चना छाया सिद्धासिफलकायुधा ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५ २८

६ मनोवेगा सफलकफलखड्गवराच्यंते। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१६१, प्रतिष्ठातिलकम् ७ ६, पृ० ३४२

७ चतुर्वणा स्वर्णवर्णाऽशनिचक्रफल वरम्।
अश्ववाहनसस्था च मनोवेगा तु कामदा ॥ अपराजितपृच्छा २२१ २०

८ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २००

९ ये सभी दिगंबर स्थल हैं। १० जि०इ०दे०, पृ० १०७

है। यक्षी का निरूपण १४वी महाविद्या अच्युता से प्रभावित है।[1] ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर की दक्षिणी भित्ति पर एक अष्टभुज मूर्ति (१०वी शती ई०) है। इसमे ललितमुद्रा मे विराजमान यक्षी के आसन के नीचे अश्ववाहन उत्कीर्ण है। यक्षी के अवशिष्ट हाथो मे खड्ग, पद्म[2], कलश, घण्टा, फलक, आम्रलुम्बि एव मातुलिंग प्रदर्शित हैं। खजुराहो के पुरातात्विक संग्रहालय मे भी चतुर्भुजा मनोवेगा की एक मूर्ति (क्रमाक ९४०) है। ग्यारहवीं शती ई० की इस स्थानक मूर्ति मे यक्षी का अश्ववाहन पीठिका पर उत्कीर्ण है। यक्षी के एक अवशिष्ट हाथ मे सनाल पद्म है। यक्षी के पार्श्वों में दो स्त्री सेविकाओ एव उपासको की मूर्तिया हैं। यक्षी के स्कन्धो के ऊपर चतुर्भुज सरस्वती की दो लघु मूर्तिया बनी हैं।[3] बारभुजी गुफा की मूर्ति मे चतुर्भुजा यक्षी हसवाहना है। यक्षी के हाथो मे वरदमुद्रा, वज्र (?), शख (?) और पताका प्रदर्शित हैं।[4] उपर्युक्त मूर्तियो के अध्ययन से स्पष्ट है कि बारभुजी गुफा की मूर्ति के अतिरिक्त अन्य मे सामान्यतः अश्ववाहन एव खड्ग और खेटक के प्रदर्शन मे दिगबर परम्परा का निर्वाह किया गया है।

(७) मातंग यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

मातग जिन सुपार्श्वनाथ का यक्ष है। श्वेताबर परम्परा मे मातग का वाहन गज और दिगम्बर परम्परा मे सिंह है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में चतुर्भुज मातग को गजारूढ तथा दाहिने हाथो मे बिल्वफल और पाश एवं बायें मे नकुल और अकुश से युक्त कहा गया है।[5] आचारदिनकर मे पाश एवं नकुल के स्थान पर क्रमश. नागपाश और वज्र का उल्लेख है।[6] अन्य ग्रन्थो मे निर्वाणकलिका के ही आयुध उल्लिखित हैं।[7] मातंग के साथ गजवाहन एव अंकुश और वज्र का प्रदर्शन हिन्दू देव इन्द्र का प्रभाव हो सकता है।

दिगबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे द्विभुज यक्ष के करो मे वज्र एव दण्ड के प्रदर्शन का निर्देश है, पर वाहन का अनुल्लेख है।[8] प्रतिष्ठासारोद्धार मे मातग का वाहन सिंह है और उसकी भुजाओ मे दण्ड और शूल का वर्णन है।[9] अपराजितपृच्छा मे मातग का वाहन मेष है और उसकी भुजाओ मे गदा और पाश वर्णित है।[10]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दोनो परम्पराओ मे मातग (या वरनदि) का वाहन सिंह है। श्वेताबर एव दिगबर ग्रन्थो मे द्विभुज यक्ष के हाथो मे त्रिशूल एव दण्ड का उल्लेख है। यक्ष-यक्षी-लक्षण मे चतुर्भुज यक्ष का करो मे त्रिशूल,

---

१ महाविद्या अच्युता का वाहन अश्व है और उसके हाथो मे खड्ग, खेटक, शर एव चाप प्रदर्शित है। ओसिया के महावीर मन्दिर पर समान लक्षणो वाली महाविद्या अच्युता की दो मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।

२ पद्म का निचला भाग श्रृखला के रूप मे प्रदर्शित है।

३ सरस्वती के करो मे अभयमुद्रा, पद्म, पुस्तक एव जलपात्र हैं। ४ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३०

५ मातगयक्षं नीलवर्णं गजवाहन चतुर्भुज बिल्वपाशयुक्तदक्षिणपाणि नकुलकाकुशान्वितवामपाणि चेति। निर्वाणकलिका १८ ७

६ नीलोगजेन्द्रगमनश्च चतुर्भुजोपि बिल्वाहिपाशयुतदक्षिणपाणियुग्म।
वज्राकुशप्रगुणितीकृतवामपाणिर्मातगराड् ॥ आचारदिनकर ३४, पृ० १७४

७ त्रि०श०पु०च० ३ ५ ११०–११, पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट—सुपार्श्वनाथ १८–१९, मन्त्राधिराजकल्प ३ ३२

८ सुपार्श्वनाथदेवस्य यक्षो मातग सज्ञक।
द्विभुजो वज्रदण्डोसौ कृष्णवर्ण प्रकीर्तित ॥ प्रतिष्ठासारसग्रह ५ २९

९ सिंहाधिरोहस्य सदण्डशूलसव्यान्यपाणेः कुटिलाननस्य। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१३५, प्रतिष्ठातिलकम् ७.७, पृ० ३३३

१० मातग स्याद् गदापाशो द्विभुजो मेषवाहन। अपराजितपृच्छा २२१ ४७

दण्ड एव दो मे पद्म के साथ ध्यान किया गया है ।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि यहा भी दक्षिण भारतीय परम्परा उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा से प्रभावित है ।

मूर्ति-परम्परा

विमलवसही के रगमण्डप से सटे उत्तरी छज्जे पर एक देवता की अतिभग मे खडी षड्भुज मूर्ति उत्कीर्ण है । देवता का वाहन गज है । उसके चार हाथो मे वज्र, पाश, अभयमुद्रा एव जलपात्र है तथा शेष दो मुद्राए व्यक्त करते हैं । देवता की सम्भावित पहचान मातग से की जा सकती है । मातंग की कोई और स्वतन्त्र मूर्ति नही प्राप्त होती है ।

विभिन्न क्षेत्रो की सुपार्श्वनाथ की मूर्तियो (११वी-१२वी शती ई०) मे यक्ष का चित्रण प्राप्त होता है । पर इनमे पारम्परिक यक्ष नही निरूपित है । सुपार्श्व से सम्बद्ध करने के उद्देश्य से यक्ष को सामान्यत सर्पफणो के छत्र से युक्त दिखाया गया है । देवगढ के मन्दिर ४ की मूर्ति (११वी शती ई०) मे तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त द्विभुज यक्ष के हाथो मे पुष्प एव कलश है । राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे ९३५, ११वी शती ई०) की एक मूर्ति मे तीन सर्पफणो के छत्रवाला यक्ष चतुर्भुज है जिसके हाथो मे अभयमुद्रा, चक्र, चक्र एवं चक्र प्रदर्शित हैं । कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर के गूढमण्डप की मूर्ति (११५७ ई०) मे गजारूढ यक्ष चतुर्भुज है और उसके हाथो मे वरदमुद्रा, अकुश, पाश एव धन का थैला हैं । विमलवसही की देवकुलिका १९ की मूर्ति मे भी गजारूढ यक्ष चतुर्भुज है और उसके करो मे वरदमुद्रा, अकुश, पाश एव फल प्रदर्शित है ।[2]

(७) शान्ता (या काली) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

शान्ता (या काली) जिन सुपार्श्वनाथ की यक्षी है । श्वेतावर परम्परा मे चतुर्भुजा शान्ता गजवाहना एव दिगवर परम्परा मे चतुर्भुजा काली वृषभवाहना है ।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे गजवाहना शान्ता की दक्षिण भुजाओ मे वरदमुद्रा और अक्षमाला एव वाम मे शूल और अभयमुद्रा का उल्लेख है ।[3] **आचारदिनकर** मे अक्षमाला के स्थान पर मुक्तामाला[4] एव **देवतामूर्तिप्रकरण** मे शूल के स्थान पर त्रिशूल[5] के उल्लेख हैं । **मन्त्राधिराजकल्प** मे यक्षी मालिनी एवं ज्वाला नामो से सम्बोधित है । ग्रन्थ के अनुसार गजवाहना यक्षी भयानक दर्शन वाली है और उसके शरीर से ज्वाला निकलती है । यक्षी के हाथो मे वरदमुद्रा, अक्षमाला, पाश एव अकुश का वर्णन है ।[6]

---

१ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २००

२ कुम्भारिया एव विमलवसही की उपर्युक्त दोनो ही मूर्तियो की लाक्षणिक विशेषताए श्वेतांबर ग्रन्थो मे वर्णित मातंग की विशेषताओ से मेल खाती है । यहां उल्लेखनीय है कि गुजरात एव राजस्थान के श्वेतावर स्थलो पर इन्ही लक्षणो वाले यक्ष को सभी जिनो के साथ निरूपित किया गया है और उसकी पहचान सर्वानुभूति से की गई है । ज्ञातव्य है कि कुम्भारिया की सुपार्श्व-मूर्ति मे यक्षी अम्बिका ही है ।

३ शान्तादेवी सुवर्णवर्णा गजवाहना चतुर्भुजा वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरा शूलाभययुतवामहस्ता चेति ।
निर्वाणकलिका १८ ७, **त्रि०श०पु०च०** ३ ५ ११२-१३, **पद्मानन्दमहाकाव्य** · परिशिष्ट—सुपार्श्वनाथ १९–२०

४ लसन्मुक्तामाला वरदमपि सव्यान्यकरयो । **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७६

५ वरद चाक्षसूत्र चाभय तस्मात्त्रिशूलकम् । **देवतामूर्तिप्रकरण** ७ ३१

६ ज्वालाकरालवदना द्विरदेन्द्रयाना दद्यात् सुख वरमथो जपमालिका च ।
पाश शृणि मम च पाणिचतुष्टयेन ज्वालाभिधा च दधती किल मालिनीव ॥ **मन्त्राधिराजकल्प** ३ ५६

दिगवर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे वृषभारूढा काली के करो मे घण्टा, त्रिशूल, फल एव वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[1] अन्य ग्रन्थो मे त्रिशूल के स्थान पर शूल मिलता है।[2] अपराजितपृच्छा मे महिषवाहना काली का अष्टभुज रूप मे ध्यान किया गया है। काली के हाथो मे त्रिशूल, पाश, अंकुश, धनुष, बाण, चक्र, अभयमुद्रा एव वरदमुद्रा का वर्णन है।[3] दिगवर परम्परा की वृषभवाहना यक्षी काली का स्वरूप हिन्दू काली और शिवा से प्रभावित प्रतीत होता है।[4]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर परम्परा मे वृषभवाहना यक्षी के करो मे त्रिशूल, घण्टा, अभयमुद्रा एव कटकमुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे चतुर्भुजा यक्षी का वाहन मयूर है। यक्षी की दो भुजाए अजलिमुद्रा मे हैं और शेष दो मे वरदमुद्रा एव अक्षमाला हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण मे वृषभारूढा यक्षी के हाथो मे घण्टा, त्रिशूल एवं वरदमुद्रा का वर्णन है।[5] दक्षिण भारतीय दिगवर परम्परा एव यक्ष-यक्षी-लक्षण के विवरण उत्तर भारतीय दिगवर परम्परा के समान हैं।

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तिया देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अकनो मे उत्कीर्ण हैं। इन मूर्तियो मे यक्षी के साथ पारम्परिक विशेषताए नही प्रदर्शित हैं। देवगढ मे सुपार्श्व की चतुर्भुजा यक्षी मयूरवाहि(नी) नामवाली है। मयूरवाहन से युक्त यक्षी के करो मे व्याख्यानमुद्रा, चामर-पद्म, पुस्तक एव शंख प्रदर्शित हैं।[6] यक्षी का निरूपण स्पष्टत सरस्वती से प्रभावित है। बारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी अष्टभुजा है और उसका वाहन सम्भवत. मयूर है। यक्षी के दक्षिण करो मे वरदमुद्रा, फलो से भरा पात्र, शूल (?) एव खड्ग और वाम मे खेटक, शख, मुद्गर (?) एव शूल प्रदर्शित हैं।[7]

जिन-सयुक्त मूर्तियो मे भी यक्षी का पारम्परिक या कोई स्वतन्त्र स्वरूप नही परिलक्षित होता है। देवगढ (मन्दिर ४) एव राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे ९३५) की दो सुपार्श्वनाथ की मूर्तियो मे तीन सर्पफणो के छत्रोवाली द्विभुज यक्षी के हाथो मे पुष्प (या पद्म) और कलश प्रदर्शित हैं। कुम्भारिया के महावीर एव नेमिनाथ मन्दिरो की दो मूर्तियो मे यक्षी अम्बिका है। पर विमलवसही की देवकुलिका १९ की मूर्ति मे सुपार्श्व के साथ यक्षी रूप मे पद्मावती निरूपित है।[8]

(८) विजय (या श्याम) यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

विजय (या श्याम) जिन चन्द्रप्रभ का यक्ष है। श्वेतावर परम्परा मे द्विभुज विजय का वाहन हस है और दिगवर परम्परा मे चतुर्भुज श्याम का वाहन कपोत है।

---

१ सितगोवृषमारूढा कालिदेवी चतुर्भुजा।
घण्टात्रिशूलसयुक्तफलहस्तावरप्रदा ॥ प्रतिष्ठासारसग्रह ५ ३०

२ सिता गोवृषगा घण्टा फलशूलवरावृताम्। प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १६१, प्रतिष्ठातिलकम् ७ ७ पृ० ३४२

३ कृष्णाऽष्टबाहुस्त्रिशूलपाशाकुशधनु शरा ।
चक्राभयवरदाश्च महिषस्था च कालिका ॥ अपराजितपृच्छा २२१.२१

४ राव, टी० ए० गोपीनाथ, एलिमेन्ट्स ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, ख० १, भाग २, वाराणसी, १९७१ (पु०मु०), पृ० ३६६

५ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २००

६ जि०इ०दे०, पृ० १०५

७ मिश्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १२१

८ तीन सर्पफणों के छत्र वाली यक्षी का वाहन सम्मवत कुक्कुट-सर्प है और उसके करो मे वरदमुद्रा, अंकुश, पद्म एव फल प्रदर्शित हैं।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे द्विभुज विजय त्रिनेत्र है और उसका वाहन हस है। विजय के दाहिने हाथ मे चक्र और वायें मे मुद्गर है।[1] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही लक्षणो के उल्लेख हैं।[2] पद्मानन्दमहाकाव्य मे चक्र के स्थान पर खड्ग का उल्लेख है।

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे चतुर्भुज श्याम त्रिनेत्र है और उसकी भुजाओ मे फल, अक्षमाला, परशु एव वरदमुद्रा है।[3] ग्रन्थ मे वाहन का अनुल्लेख है। **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे यक्ष का वाहन कपोत बताया गया है।[4] **अपराजितपृच्छा** मे यक्ष को विजय नाम से सम्बोधित किया गया है और उसके दो हाथो मे फल और अक्षमाला के स्थान पर पाश और अभयमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[5]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा मे हस पर आरूढ चतुर्भुज यक्ष की एक भुजा से अभयमुद्रा के प्रदर्शन का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे कपोत वाहन से युक्त चतुर्भुज यक्ष के हाथो मे कशा, पाश, वरदमुद्रा एव अकुश वर्णित हैं। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे कपोत पर आरूढ यक्ष त्रिनेत्र है और उसके करो मे फल, अक्षमाला, परशु एव वरदमुद्रा का उल्लेख है।[6] प्रस्तुत विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा का अनुकरण है।

मूर्ति-परम्परा

यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। जिन-सयुक्त मूर्तियो (९वी–१२वी शती ई०) मे चन्द्रप्रभ का यक्ष सामान्य लक्षणो वाला है।[7] इनमे द्विभुज यक्ष अभयमुद्रा (या फल) एव धन के थैले (या फल या कलश या पुष्प) से युक्त है। देवगढ के मन्दिर २१ की मूर्ति (११ वी शती ई०) मे यक्ष चतुर्भुज है और उसके हाथो मे अभयमुद्रा, गदा, पद्म एव फल प्रदर्शित हैं।

(८) भृकुटि (या ज्वालामालिनी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

भृकुटि (या ज्वालामालिनी) जिन चन्द्रप्रभ की यक्षी हैं। श्वेतांबर परम्परा मे चतुर्भुजा भृकुटि (या ज्वाला) का वाहन वराल (या मराल) है और दिगंबर परम्परा मे अष्टभुजा ज्वालामालिनी का वाहन महिष है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे चतुर्भुजा भृकुटि का वाहन[8] वराह है और उसकी दाहिनी भुजाओ मे खड्ग एवं मुद्गर और वायी मे फलक एव परशु का वर्णन है।[9] अन्य ग्रन्थ आयुधो के सन्दर्भ मे एकमत हैं, पर वाहन के

---

१ विजययक्ष हरितवर्णं त्रिनेत्र हसवाहन द्विभुज दक्षिणहस्तेचक्र वामे मुद्गरमिति। **निर्वाणकलिका** १८.८

२ **त्रि०श०पु०च०** ३ ६ १०८, **मन्त्राधिराजकल्प** ३ ३३, **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४, **पद्मानन्दमहाकाव्य :** परिशिष्ट–चन्द्रप्रभ १७, त्रि०श०पु०च० एव **पद्मानन्दमहाकाव्य** मे यक्ष के त्रिनेत्र होने का उल्लेख नही है।

३ चन्द्रप्रभजिनेन्द्रस्य श्यामो यक्ष त्रिलोचन।
फलाक्षसूत्रक धत्ते परशु च वरप्रद.॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५ ३१

४ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३ १३६

५ पर्शुपाशाभयवरा कपोते विजय स्थित। **अपराजितपृच्छा** २२१ ४८

६ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०१

७ जिन-सयुक्त मूर्तियां देवगढ,खजुराहो, राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे८८१) एवं इलाहाबाद सग्रहालय (२९५) मे हैं।

८ ग्रन्थ के पाद टिप्पणी मे उसका पाठान्तर विराल दिया है।

९ भृकुटिदेवी पीतवर्णां वराह (विडाल ?) वाहना चतुर्भुजा।
खड्गमुद्गरान्वितदक्षिणभुजा फलकपरशुयुतवामहस्ता चेति॥ **निर्वाणकलिका** १८ ८

सन्दर्भ मे उनमे पर्याप्त भिन्नता प्राप्त होती है। मन्त्राधिराजकल्प मे यक्षी की भुजा मे फलक के स्थान पर मातुलिंग मिलता है।[1] आचारदिनकर एव प्रवचनसारोद्धार मे यक्षी का वाहन विटाल या वराल्क बताया गया है।[2] त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र[3] एव पद्मानन्दमहाकाव्य[4] मे वाहन हस है। देवतामूर्तिप्रकरण मे वाहन सिंह है।[5]

दिगवर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे अष्टभुजा ज्वालिनी का वाहन महिष है और उसके करो मे वाण, चक्र, त्रिशूल और पाश का वर्णन है।[6] अन्य करो के आयुधो का उल्लेख नही किया गया है। प्रतिष्ठासारोद्धार मे अष्टभुजा ज्वालिनी के हाथो मे चक्र, धनुष, पाश, चर्म, त्रिशूल, वाण, मत्स्य एव खड्ग के प्रदर्शन का निर्देश है।[7] प्रतिष्ठातिलकम् मे अष्टभुजा यक्षी के करो मे पाश, चर्म एव त्रिशूल के स्थान पर नागपाश, फलक एव शूल के प्रदर्शन का उल्लेख है।[8] अपराजितपृच्छा मे ज्वालामालिनी चतुर्भुजा है।[9] यक्षी का वाहन वृषभ है और उसके करो मे घण्टा, त्रिशूल, फल एव वरदमुद्रा प्रदर्शित हैं। यक्षी का निरूपण ग्यारहवी महाविद्या महाज्वाला (या ज्वालामालिनी) से प्रभावित है।[10]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर परम्परा मे वृषभवाहना यक्षी अष्टभुजा है। ज्वालामय मुकुट से शोभित यक्षी के दक्षिण करो मे त्रिशूल, शर, सर्प एव अभयमुद्रा, और वाम मे वज्र, चाप, सर्प एव कटकमुद्रा का वर्णन है। श्वेतावर ग्रन्थो मे महिषवाहना यक्षी अष्टभुजा है। अज्ञातनाम एक ग्रन्थ मे यक्षी के हाथो मे चक्र, मकर, पताका, वाण, धनुष, त्रिशूल, पाश एव वरदमुद्रा वर्णित हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण मे वाण, चक्र, त्रिशूल, वरदमुद्रा (या फल), कार्मुक, पाश, झष एवं खेटक धारण करने का उल्लेख है।[11] स्पष्टत दक्षिण भारत की दोनो परम्पराओ के विवरण उत्तर भारत की दिगवर परम्परा से प्रभावित हैं। यहा यह भी उल्लेखनीय है कि पद्मावती के बाद कर्नाटक मे ज्वालामालिनी ही सर्वाधिक लोकप्रिय थी। ज्वालामालिनी के बाद लोकप्रियता के क्रम मे अम्बिका का नाम था।[12]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की केवल दो स्वतन्त्र मूर्तिया मिली है। ये मूर्तिया देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एव वारभुजी गुफा के सामूहिक चित्रणो मे उत्कीर्ण हैं। देवगढ मे चन्द्रप्रभ के साथ 'सुमालिनी' नाम की चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है (चित्र ४८)।[13] यक्षी के तीन हाथो मे खड्ग, अभयमुद्रा एव खेटक प्रदर्शित हैं, चौथी भुजा जानु पर स्थित है। वाम पार्श्व

---

१ पीता वराहगमना ह्यसिमुद्गराका भूयात् कुठारफलभृद् भृकुटि सुखाय। मन्त्राधिराजकल्प ३.५७

२ आचारदिनकर ३४, पृ० १७६, प्रवचनसारोद्धार ८

३ त्रि०श०पु०च० ३.६.१०९–१०

४ पद्मानन्दमहाकाव्य . परिशिष्ट—चन्द्रप्रभ १८–१९

५ देवतामूर्तिप्रकरण ७ ३३

६ ज्वालिनी महिषारूढा देवी श्वेता भुजाष्टका।
काण्डचक्रत्रिशूलं च धत्ते पाश च मू(क)ष ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५ ३२

७ चन्द्रोज्ज्वला चक्रशरासपाश चर्मत्रिशूलेषुझषासिहस्ताम्। प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १६२

८ चक्र चापमहीशपाशफलके सव्यैस्चतुर्भिः करैरन्यै.।
शूलमिषु झष ज्वलदसि धत्तेऽत्र या दुर्जया ॥ प्रतिष्ठातिलकम् ७ ८, पृ० ३४३

९ कृष्णा चतुर्भुजा घण्टा त्रिशूल च फल वरम्।
पद्मासना वृषारूढा कामदा ज्वालमालिनी ॥ अपराजितपृच्छा २२१ २२

१० जैन परम्परा मे महाविद्या महाज्वाला का वाहन महिष, शूकर, हंस एवं विडाल वताया गया है। दिगंबर ग्रन्थो मे महाविद्या के हाथो में खड्ग, खेटक, वाण और धनुष प्रदर्शित हैं।

११ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०१

१२ देसाई, पी०वी, जैनिजम इन साऊथ इण्डिया ऐण्ड सम जैन एपिग्राफ्स, शालापुर, १९६३, पृ० १७२

१३ जि०इ०दे०, पृ० १०७

मे सिंहवाहन उत्कीर्ण है। सुमालिनी का लाक्षणिक स्वरूप निश्चित ही १६ वी महाविद्या महामानसी से प्रभावित है।[1] बारभुजी गुफा की मूर्ति मे सिंहवाहना यक्षी द्वादशभुजा है। यक्षी की दाहिनी भुजाओ मे वरदमुद्रा, कृपाण, चक्र, बाण, गदा (?) एवं खड्ग और बायी मे वरदमुद्रा, खेटक, धनुष, शख, पाश एव घण्ट प्रदर्शित हैं।[2] सिंहवाहन के अतिरिक्त मूर्ति की अन्य विशेषताए सामान्यत दिगवर ग्रन्थो से मेल खाती हैं।

जिन-सयुक्त मूर्तिया (९ वी-१२ वी शती ई०) कौशाम्बी, देवगढ, खजुराहो, एवं राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे हैं। इनमे अधिकाशत द्विभुजा यक्षी सामान्य लक्षणो वाली है। यक्षी के हाथो मे अभयमुद्रा (या पुष्प) और फल (या कलश या पुष्प) प्रदर्शित हैं। देवगढ (मन्दिर २०, २१) एवं खजुराहो (मन्दिर ३२) की तीन चन्द्रप्रभ मूर्तियो मे यक्षी चतुर्भुजा है। यक्षी के दो हाथों में पद्म एव पुस्तक, और शेष दो मे अभयमुद्रा, कलश एव फल मे से कोई दो प्रदर्शित हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि जिन-सयुक्त मूर्तियो में भी यक्षी को पारम्परिक या स्वतन्त्र स्वरूप मे अभिव्यक्ति नही मिली।

(९) अजित यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

अजित जिन सुविधिनाथ (या पुष्पदन्त) का यक्ष है। दोनो परम्पराओ मे चतुर्भुज यक्ष का वाहन कूर्म है।

श्वेतांवर परम्परा—निर्वाणकलिका मे चतुर्भुज अजित के दक्षिण करो मे मातुलिंग एव अक्षसूत्र और वाम मे नकुल एवं शूल का वर्णन है।[3] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्हीं आयुधो के उल्लेख हैं। पर मन्त्राधिराजकल्प मे अक्षसूत्र के स्थान पर अभयमुद्रा और आचारदिनकर मे शूल के स्थान पर अतुल रत्नराशि के प्रदर्शन के निर्देश हैं।[4]

दिगंवर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे कूर्म पर आरूढ अजित के हाथो मे फल, अक्षसूत्र, शक्ति एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं।[5] परवर्ती ग्रन्थो मे भी इन्ही आयुधो के उल्लेख हैं। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दिगवर परम्परा श्वेतावर परम्परा की अनुगामिनी है। नकुल के स्थान पर वरदमुद्रा का उल्लेख दिगवर परम्परा की नवीनता है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दोनो परम्परा के ग्रन्थो में कूर्म पर आरुढ अजित चतुर्भुज है। दिगवर ग्रन्थ मे यक्ष के दाहिने हाथो मे अक्षमाला एव अभयमुद्रा और वायें मे शूल एव फल का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे यक्ष के हाथो मे कशा, दण्ड, त्रिशूल एव परशु के प्रदर्शन का विधान है। यक्ष-यक्षी-लक्षण मे फल, अक्षसूत्र, त्रिशूल एव वरदमुद्रा का उल्लेख है।[6] दोनो परम्पराओ के विवरण उत्तर भारतीय दिगवर परम्परा से प्रभावित प्रतीत होते हैं।[7]

अजित यक्ष की एक भी स्वतन्त्र या जिन-संयुक्त मूर्ति नही मिली है।

---

१ श्वेतावर परम्परा मे सिंहवाहना महामानसी के मुख्य आयुध खड्ग एवं खेटक हैं।

२ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१

३ अजितयक्ष श्वेतवर्णं कूर्मवाहनं चतुर्भुजं मातुलिंगाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलकुन्तान्वितवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८ ९, द्रष्टव्य, त्रि०श०पु०च० ३ ७ १३८–३९

४ मन्त्राधिराजकल्प ३ ३३, आचारदिनकर ३४, पृ० १७४

५ अजित पुष्पदन्तस्य यक्ष श्वेतश्चतुर्भुज।
फलाक्षसूत्रशक्त्याढ्यवरद कूर्मवाहन.॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५ ३३
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठासारोद्धार. ३.१३७, प्रतिष्ठातिलकम् ७ ९, पृ० ३३३, अपराजितपृच्छा २२१ ४८

६ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०१

७ केवल शक्ति के स्थान पर त्रिशूल का उल्लेख है।

(९) सुतारा (या महाकाली) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

सुतारा (या महाकाली) जिन सुविधिनाथ (या पुष्पदन्त) की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे यक्षी को सुतारा (या चाण्डालिका) और दिगबर परम्परा मे महाकाली कहा गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे वृषभवाहना सुतारा चतुर्भुजा है। यक्षी के दाहिने हाथो में वरदमुद्रा एवं अक्षमाला और बायें मे कलश एव अकुश वर्णित है।[1] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही लक्षणो के उल्लेख हैं।[2]

दिगबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे कूर्मवाहना महाकाली चतुर्भुजा है। यक्षी तीन भुजाओ में वज्र, मुद्गर और फल लिये है। चौथी भुजा की सामग्री का अनुल्लेख है।[3] अन्य ग्रन्थो मे चौथी भुजा मे वरदमुद्रा बतायी गयी है।[4] अपराजितपृच्छा मे मुद्गर और फल के स्थान पर गदा और अभयमुद्रा का उल्लेख है।[5] यक्षी का स्वरूप सम्भवत. ८ वी महाविद्या महाकाली से प्रभावित हैं। यक्षी का कूर्मवाहन अजित यक्ष के कूर्मवाहन से सम्बन्धित हो सकता है।[6]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगबर ग्रन्थ मे चतुर्भुजा यक्षी के ऊपरी हाथो मे दण्ड एव फल (या वज्र) और नीचे के हाथो मे अभय-एव कटक-मुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे सिंहवाहना यक्षी के करो मे खड्ग, फल, वज्र एव पद्म वर्णित हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण मे कूर्मवाहना यक्षी के करो मे सर्वज्ञ (? आयुध या ज्ञानमुद्रा), मुद्गर, फल एव वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[7]

मूर्ति-परम्परा

महाकाली की केवल दो स्वतन्त्र मूर्तिया मिली हैं। ये मूर्तिया देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) और बारभुजी गुफा के सामूहिक चित्रणों मे उत्कीर्ण हैं। इनमे देवी के निरूपण मे पारम्परिक विशेषताए नही प्रदर्शित हैं। देवगढ मे पुष्पदन्त के साथ 'बहुरूपी' नाम की सामान्य लक्षणो वाली द्विभुजी यक्षी आमूर्तित है। यक्षी के दाहिने हाथ मे चामर-पद्म है और बाया जानु पर स्थित है।[8] बारभुजी गुफा की मूर्ति मे दशभुजा यक्षी वृषभवाहना है। यक्षी के दक्षिण करो मे वरदमुद्रा, चक्र (?), पक्षी, फलो से भरा पात्र (?) एव चक्र (?), और वाम मे अर्धचन्द्र, तर्जनीमुद्रा, सर्प, पुष्प (?) एव मयूरपख (या वृक्ष की डाल) प्रदर्शित हैं।[9]

(१०) ब्रह्म यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

ब्रह्म जिन शीतलनाथ का यक्ष है। दोनो परम्पराओ मे चतुर्मुख एव अष्टभुज ब्रह्म यक्ष का वाहन पद्म बताया गया है।

---

१ सुतारादेवी गौरवर्णां वृषवाहना चतुर्भुजा वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणभुजा कलशाकुशान्वितवामपाणि चेति। निर्वाणकलिका १८ ९

२ त्रि०श०पु०च० ३ ७ १४०–४१, पद्मानन्दमहाकाव्य. परिशिष्ट—सुविधिनाथ १८–१९, मन्त्राधिराजकल्प ३ ५७, आचारदिनकर ३४, पृ० १७६

३ देवी तथा महाकाली विनीता कूर्मवाहना।
सवज्रमुद्गरा (कृष्णा) फलहस्ता चतुर्भुजा ॥ प्रतिष्ठासारसग्रह ५.३४

४ प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १६३, प्रतिष्ठातिलकम् ७ ९, पृ० ३४३

५ चतुर्भुजा कृष्णवर्णा वज्र गदावरामया। अपराजितपृच्छा २२१ २३

६ स्मरणीय है कि सुविधिनाथ (या पुष्पदत) का लाछन मकर है।

७ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०२

८ जि०इ०दे०, पृ० १०७

९ मिश्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१

श्वेताबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे चतुर्मुख और त्रिनेत्र ब्रह्म के दाहिने हाथो मे मातुलिंग, मुद्गर, पाश एव अभयमुद्रा और बाये मे नकुल, गदा, अकुश एव अक्षसूत्र का वर्णन है।[1] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही आयुधो का उल्लेख है।[2] **मन्त्राधिराजकल्प** मे अभयमुद्रा के स्थान पर वरदमुद्रा का उल्लेख है।[3] **आचारदिनकर** मे यक्ष दस भुजाओ और बारह नेत्रो वाला है। उसकी आठ भुजाओ मे निर्वाणकलिका के आयुधो का और शेष दो मे पाश एव पद्म का उल्लेख है।[4]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे चतुर्मुख ब्रह्म सरोज पर आसीन है। ग्रन्थ मे उसके आयुधो का अनुल्लेख है।[5] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे केवल छह हाथो के ही आयुधो का उल्लेख है। दाहिने हाथो मे बाण, खड्ग, वरदमुद्रा और बायें मे धनुष, दण्ड, खेटक वर्णित हैं।[6] **प्रतिष्ठातिलकम्** मे यक्ष की केवल सात भुजाओ के ही आयुध स्पष्ट हैं। **प्रतिष्ठासारोद्धार** से भिन्न **प्रतिष्ठातिलकम्** मे वज्र और परशु का उल्लेख है, किन्तु बाण का अनुल्लेख है।[7] **अपराजितपृच्छा** मे ब्रह्म चतुर्भुज है और उसका वाहन हस है। यक्ष के करो मे पाश, अकुश, अभयमुद्रा और वरदमुद्रा का वर्णन है।[8]

यक्ष का नाम (ब्रह्म), उसका चतुर्मुख होना, पद्म और हसवाहनो के उल्लेख तथा एक हाथ मे अक्षमाला का प्रदर्शन—ये सभी बातें ब्रह्मयक्ष के निरूपण मे हिन्दू देव ब्रह्मा-प्रजापति का प्रभाव दरशाती हैं।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगबर ग्रन्थ मे पद्मकलिका पर आसीन अष्टभुज ब्रह्मेश्वर (या ब्रह्मा) यक्ष को त्रिनेत्र एव चतुर्मुख बताया गया है। यक्ष के छह हाथो मे गदा, खड्ग, खेटक एव दण्ड जैसे आयुधो और शेष दो मे अभय-एव कटक-मुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेताबर ग्रन्थ मे सिंह पर आरूढ यक्ष अष्टभुज है और उसके हाथो मे खड्ग, खेटक, बाण, धनुष, परशु, वज्र, पाश एव अभय-(या वरद-) मुद्रा का वर्णन है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे पद्म वाहन से युक्त चतुर्मुख एव अष्टभुज यक्ष के करो मे खड्ग, खेटक, वरदमुद्रा, बाण, धनुष, दण्ड, परशु एव वज्र के प्रदर्शन का निर्देश है।[9] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दोनो परम्पराओ के आयुधो एव वाहन के सन्दर्भ मे विवरण उत्तर भारतीय दिगबर परम्परा से प्रभावित हैं।

ब्रह्म यक्ष की एक भी स्वतन्त्र या जिन-सयुक्त मूर्ति नही मिली है।

(१०) अशोका (या मानवी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

अशोका (या मानवी) जिन शीतलनाथ की यक्षी है। श्वेताबर परम्परा मे चतुर्भुजा अशोका (या गोमेधिका) पद्मवाहना है और दिगबर परम्परा मे चतुर्भुजा मानवी शूकरवाहना है।

---

१ ब्रह्मयक्षं चतुर्मुखं त्रिनेत्रं धवलवर्णं पद्मासनमष्टभुजं मातुलिंगमुद्गरपाशाभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलगदाकुशाक्षसूत्रान्वितवामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.१०

२ त्रि०श०पु०च० ३ ८ १११–१२, **पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—शीतलनाथ** १७–१८

३ **मन्त्राधिराजकल्प** ३.३४

४ वसुमितभुजयुक् चतुर्वक्त्रभाग् द्वादशाक्षो रुचा सरसिजविहितासनो मातुलिंगाभये पाशयुग्मुद्गरं दधदतिगुणमेवहस्तोत्करे दक्षिणे चापि वामे गदा सृणिनकुलसरोद्भवाक्षावलीर्ब्रह्मनामा सुपर्वोत्तम.। **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४

५ शीतलस्य जिनेन्द्रस्य ब्रह्मयक्षश्चतुर्मुखं।
अष्टबाहु सरोजस्थः श्वेतवर्णः प्रकीर्तित ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५ ३५

६ श्रीवृक्षकेतननतो धनुदण्डखेटवज्ञा–(? वज्रा-) ढ्यसव्यसय इन्दुसितोम्बुजस्थ।
ब्रह्मासरस्त्वधिपतिखड्गवरप्रदानव्यग्रान्यपाणिरुपयातु चतुर्मुखोर्चाम्॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३ १३८

७ सचापदण्डोर्जितखेटवज्रसव्योद्धपाणि नुतशीतलेशम्।
सव्यान्यहस्तेषु परश्वसीष्टदान यजे ब्रह्मसमाख्ययक्षम्॥ **प्रतिष्ठातिलकम्** ७ १०, पृ० ३३४

८ पाशाङ्कुशाभयवरा ब्रह्मा स्याद्धंसवाहन.। **अपराजितपृच्छा** २२१ ४९

९ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०२–२०३

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे पद्मवाहना अशोका के दक्षिण करो मे वरदमुद्रा एव पाश और वाम मे फल एव अकुश वर्णित है ।[१] अन्य ग्रन्थो मे भी यही लक्षण है ।[२] आचारदिनकर मे नृत्यरत अप्सराओ से वेष्टित यक्षी के एक हाथ मे फल के स्थान पर वर्म्म का उल्लेख है ।[३] देवतामूर्तिप्रकरण मे पाश के स्थान पर नागपाश दिया गया है ।[४]

दिगबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे शूकरवाहना मानवी के तीन हाथो मे फल, वरदमुद्रा एव झष के प्रदर्शन का निर्देश है, चौथे हाथ के आयुध का अनुल्लेख है ।[५] प्रतिष्ठासारोद्धार मे मानवी का वाहन काला नाग है और उसकी चौथी भुजा मे पाश का उल्लेख है ।[६] प्रतिष्ठातिलकम् मे पुन. तीन ही हाथो के आयुधो के उल्लेख के कारण पाश का अनुल्लेख है, और वरदमुद्रा के स्थान पर माला का उल्लेख है ।[७] अपराजितपृच्छा मे शूकरवाहना मानवी के करो मे पाश, अकुश, फल और वरदमुद्रा का वर्णन है ।[८] मानवी का स्वरूप दिगवर परम्परा की १२वी महाविद्या मानवी से प्रभावित है ।[९]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर ग्रन्थ मे चतुर्भुजा यक्षी के ऊपरी हाथो मे अक्षमाला एव झष और निचले मे अभय-एव कटक-मुद्रा का उल्लेख है । अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे द्विभुजा यक्षी मकरवाहना है एव उसके आयुध वरदमुद्रा एव पद्म हैं । **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे चतुर्भुजा मानवी का वाहन कृष्ण शूकर है और उसके हाथो मे झष, अक्षसूत्र, हार एव वरदमुद्रा का वर्णन है ।[१०] शूकरवाहन एव झष का प्रदर्शन सम्भवत उत्तर भारतीय दिगवर परम्परा से प्रभावित है ।

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की केवल दो स्वतन्त्र मूर्तिया मिली हैं । ये मूर्तिया देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एव बारभुजी गुफा के सामूहिक अकनो मे उत्कीर्ण हैं । इनमे यक्षी के साथ पारम्परिक विशेषताए नही प्रदर्शित हैं । देवगढ मे शीतलनाथ के साथ 'श्रीया देवी' नाम की चतुर्भुजा यक्षी निरूपित है । यक्षी के तीन हाथो मे फल,पद्म, फल (या कलश) प्रदर्शित हैं और चौथी भुजा जानु पर स्थित है । यक्षी के दोनो पार्श्वों मे वृक्ष के तने उत्कीर्ण है । सम्भव है कि श्रीयादेवी नाम श्रीदेवी का सूचक हो जो लक्ष्मी का ही दूसरा नाम है ।[११] बारभुजी गुफा की मूर्ति मे चतुर्भुजा यक्षी का वाहन कोई पशु है । यक्षी के नीचे के हाथो मे वरदमुद्रा एवं दण्ड और ऊपरी हाथो मे चक्र एव शख (या फल) प्रदर्शित हैं ।[१२]

---

१ अशोका देवी मुद्गवर्णां पद्मवाहना चतुर्भुजा वरदपाशयुक्तदक्षिणकरा फलाकुशयुक्तवामकरा चेति ।
निर्वाणकलिका १८ १०

२ त्रि०श०पु०च० ३ ८ ११३–१४, पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट–शीतलनाथ १९–२०, मन्त्राधिराजकल्प ३.५८

३ वामे चाकुशवर्म्मणी वहुगुणाऽशोका विशोका जन कुर्यादप्सरसा गणै प्ररिवृता नृत्यद्भिरानन्दितै ।
आचारदिनकर ३४, पृ० १७६

४ वरद नागपाश चाकुश वै वीजपूरकम् । देवतामूर्तिप्रकरण ७ ३७

५ मानवी च हरिद्वर्णा झषहस्ताचतुर्भुज ।
कृष्णशूकरयानस्था फलहस्तवरप्रदा ॥ प्रतिष्ठासारसग्रह ५ ३६

६ झपदामरुवकदानोचितहस्ता कृष्णकालगा हरिताम् । प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१६४

७ ऊर्ध्वद्विहस्तोद्वृतमत्स्यमाला अधोद्विहस्ताक्षफलप्रदानाम् । प्रतिष्ठातिलकम् ७ १०, पृ० ३४३

८ चतुर्भुजा श्यामवर्णा पाशाङ्कुशफलवरम् ।
सूकरोपरिसस्था च मानवी चार्थदायिनी ॥ अपराजितपृच्छा २२१ २४

९ यह प्रभाव यक्षी के नाम, शूकरवाहन एव भुजा मे झष के प्रदर्शन के सन्दर्भ मे देखा जा सकता है । दिगवर परम्परा मे महाविद्या मानवी का वाहन शूकर है और उसके करो मे झष, त्रिशूल एवं खड्ग प्रदर्शित हैं ।

१० रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०३

११ जि०इ०दे०, पृ० १०७

१२ मिश्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१

(११) ईश्वर यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

ईश्वर[1] जिन श्रेयांशनाथ का यक्ष है। दोनो परम्पराओ मे वृषभारूढ ईश्वर त्रिनेत्र एव चतुर्भुज है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे ईश्वर के दक्षिण करो मे मातुलिंग एव गदा और वाम मे नकुल एवं अक्षसूत्र वर्णित है।[2] अन्य ग्रन्थो मे भी यही लाक्षणिक विशेषताए प्राप्त होती हैं।[3] केवल **देवतामूर्तिप्रकरण** मे नकुल और अक्षसूत्र के स्थान पर अकुश और पद्म के प्रदर्शन का निर्देश है।[4]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे ईश्वर के तीन हाथो मे फल, अक्षसूत्र एव त्रिशूल का उल्लेख है, पर चौथे हाथ की सामग्री का अनुल्लेख है।[5] **प्रतिष्ठासारोद्धार**[6] एव **अपराजितपृच्छा**[7] मे चौथे हाथ मे क्रमश दण्ड और वरद-मुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।

दोनो परम्पराओ मे यक्ष का नाम, वाहन (वृषभ) एव उसका त्रिनेत्र होना शिव से प्रभावित है। दिगंबर परम्परा मे भुजाओ मे त्रिशूल एव दण्ड के उल्लेख इसी प्रभाव के समर्थक हैं।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर ग्रन्थ मे नन्दी पर आरूढ एव अर्धचन्द्र से शोभित चतुर्भुज ईश्वर के वाम-करो मे त्रिशूल एव दण्ड और दक्षिण मे कटक-एव-अभय-मुद्रा का वर्णन है। श्वेतावर ग्रन्थो मे वृषभारूढ यक्ष चतुर्भुज है। अज्ञातनाम ग्रन्थ मे ईश्वर के करो मे शर, चाप, त्रिशूल एव दण्ड का उल्लेख है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे यक्ष को त्रिनेत्र और फल, अभयमुद्रा, त्रिशूल एवं दण्ड से युक्त बताया गया है।[8] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दोनो परम्पराओ मे ईश्वर का स्वरूप उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित हैं।

ईश्वर यक्ष की एक भी स्वतन्त्र या जिन-सयुक्त मूर्ति नही मिली है।[9]

---

१ प्रवचनसारोद्धार और आचारदिनकर मे यक्ष को क्रमशः मनुज और यक्षराज नामो से सम्बोधित किया गया है।

२ ईश्वरयक्ष धवलवर्णं त्रिनेत्र वृषभवाहन चतुर्भुज मातुलिंगगदान्वितदक्षिणपाणि नकुलकाक्षसूत्रयुक्तवामपाणि चेति। निर्वाणकलिका १८ ११

३ त्रि०श०पु०च० ४.१ ७८४-८५, पद्मानन्दमहाकाव्य · परिशिष्ट-श्रेयांशनाथ १९-२०, आचारदिनकर ३४, पृ०१७४, मन्त्राधिराजकल्प ३ ५

४ मातुलिंग गदा चैवाकुश च कमल क्रमात्। देवतामूर्तिप्रकरण ७ ३८

५ ईश्वर श्रेयशो यक्षस्त्रिनेत्रो वृषवाहन।
फलाक्षसूत्रसयुक्त सत्रिशूलश्चतुर्भुजः॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५ ३७

६ त्रिशूलदण्डान्वितवामहस्त करेऽक्षसूत्र त्वपरे फल च। प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १३९, द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७ ११, पृ० ३३४

७ त्रिशूलाक्षफलवरा यक्षेट्श्वेतो वृषस्थित.। अपराजितपृच्छा २२१ ४९

८ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०३

९ खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह एव मण्डप की भित्तियो पर नन्दीवाहन से युक्त कई चतुर्भुज मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। जटामुकुट मे सज्जित देवता के करो मे वरदाक्ष (या पद्म), त्रिशूल, सर्प एव कमण्डलु प्रदर्शित है। लक्षणो के आधार पर देवता की सम्भावित पहचान ईश्वर यक्ष से की जा सकती है। पर पार्श्वनाथ मन्दिर की भित्तियो की सम्पूर्ण शिल्प सामग्री के सन्दर्भ मे देवता को शिव का अकन मानना ही अधिक प्रासगिक एव उचित होगा।

(११) मानवी (या गौरी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

मानवी (या गौरी) जिन श्रेयांशनाथ की यक्षी है। श्वेताम्बर परम्परा मे चतुर्भुजा मानवी (या श्रीवत्सा या विद्युन्नदा) का वाहन सिंह और दिगंबर परम्परा मे चतुर्भुजा गौरी का वाहन मृग है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे सिंहवाहना मानवी के दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा एवं मुद्गर और बायें मे कलश एव अकुश है।[1] त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र मे कलश के स्थान पर वज्र,[2] प्रवचनसारोद्धार मे मुद्गर के स्थान पर पाश,[3] पद्मानन्दमहाकाव्य मे कलश और अकुश के स्थान पर नकुल और अक्षसूत्र,[4] आचारदिनकर मे दो वामकरो में अकुश[5] और देवतामूर्तिप्रकरण मे कलश के स्थान पर नकुल[6] के प्रदर्शन के उल्लेख हैं।

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे मृगवाहना गौरी के केवल दो हाथो के आयुधो का उल्लेख है जो पद्म और वरदमुद्रा हैं।[7] प्रतिष्ठासारोद्धार मे गौरी के करो मे मुद्गर, अब्ज, कलश एव वरदमुद्रा का उल्लेख है।[8] अपराजितपृच्छा मे मुद्गर एव कलश के स्थान पर पाश एव अकुश प्रदर्शित हैं।[9] यक्षी का नाम एव एक हाथ मे पद्म का प्रदर्शन ९ वी महाविद्या गौरी का प्रभाव है।[10]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे नन्दी पर आरूढ चतुर्भुजा यक्षी अर्धचन्द्र से युक्त है। उसके दक्षिण करो मे जलपात्र एव अभयमुद्रा और वाम मे वरदमुद्रा एव दण्ड का उल्लेख है। यक्षी का निरूपण ईश्वर यक्ष से प्रभावित है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे हंसवाहना यक्षी द्विभुजा है और उसके करो मे कशा एव अकुश का वर्णन है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे चतुर्भुजा यक्षी का वाहन मृग है और उसके हाथो मे उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप पद्म, मुद्गर (? मुनिर), कलश एव वरदमुद्रा वर्णित हैं।[11]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की तीन स्वतन्त्र मूर्तियां (दिगंबर परम्परा) मिली हैं। दो मूर्तियां क्रमश. देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ई०) एव बारभुजी गुफा के सामूहिक अकनो और एक मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, म० प्र०) मे उत्कीर्ण हैं। देवगढ मे श्रेयांश

---

१ मानवी देवीं गौरवर्णां सिंहवाहनां चतुर्भुजां वरदमुद्गरान्वितदक्षिणपाणिं कलशाकुशयुक्तवामकरां चेति।
निर्वाणकलिका १८ ११, मन्त्राधिराजकल्प ३ ५८

२ वामौ च बिभ्रती पाणी कुलिशांकुशधारिणौ। त्रि०श०पु०च० ४ १ ७८६–८७

३ वरदपाशयुक्तदक्षिणकरद्वया कलशाकुशयुक्तवामकरद्वया। प्रवचनसारोद्धार ११.३७५, पृ० ९४

४ वामौ तु सनकुलाक्षसूत्रौ श्रेयांसशासने। पद्मानन्दमहाकाव्य · परिशिष्ट–श्रेयांशनाथ २०

५ वाम हस्तयुग तटाकुशयुत । आचारदिनकर ३४, पृ० १७७

६ अकुश वरद हस्त नकुल मुद्ग(ल ? रं) तथा। देवतामूर्तिप्रकरण ७ ३९

७ पद्महस्ता सुवर्णाभा गौरीदेवी चतुर्भुजा।
जिनेन्द्रशासने भक्ता वरदा मृगवाहना॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५ ३८

८ समुद्गराब्जकलशा वरदा कनकप्रभाम्। प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १६५, द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७ ११, पृ० ३४४

९ पाशांकुशाब्जवरदा कनकाभा चतुर्भुजा।
सा कृष्णहरिणारूढा कार्या गौरी च शान्तिदा॥ अपराजितपृच्छा २२१ २५

१० ज्ञातव्य है कि हिन्दू गौरी की भी एक भुजा मे पद्म प्रदर्शित है।

११ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०३

के साथ 'वहनि' नाम की सामान्य लक्षणो वाली द्विभुजा यक्षी निरूपित है ।[१] यक्षी की दाहिनी भुजा मे पद्म है और बायी जानु पर स्थित है । मालादेवी मन्दिर के मण्डोवर की दक्षिणी जघा पर चतुर्भुजा गौरी ललितमुद्रा मे पद्मासन पर विराजमान हैं । यक्षी का वाहन मृग है और उसके करो मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, पद्म एव फल प्रदर्शित हैं । बारभुजी गुफा की चतुर्भुज मूर्ति मे यक्षी का वाहन खण्डित है और उसके हाथो मे वरदमुद्रा, अक्षमाला, पुस्तक एव जलपात्र प्रदर्शित हैं ।[२] उपर्युक्त तीन मूर्तियो मे से केवल मालादेवी मन्दिर की मूर्ति मे ही पारम्परिक विशेषताए प्रदर्शित हैं ।

(१२) कुमार यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

कुमार जिन वासुपूज्य का यक्ष है । दोनो परम्पराओ मे उसका वाहन हस हे ।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे चतुर्भुज कुमार के दक्षिण करो मे बीजपूरक एव बाण और वाम मे नकुल एव धनुष का उल्लेख है ।[३] अन्य ग्रन्थो मे भी यही लक्षण वर्णित हैं ।[४] केवल **प्रवचनसारोद्धार** मे बाण के स्थान पर वीणा मिलता है ।[५]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे कुमार के त्रिमुख या षण्मुख होने का उल्लेख है । ग्रन्थ मे आयुधो का उल्लेख नही है ।[६] अन्य ग्रन्थो में कुमार को त्रिमुख या षण्मुख नही बताया गया है । **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे चतुर्भुज कुमार के दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा एव गदा और बायें मे धनुष एवं फल वर्णित हैं ।[७] **प्रतिष्ठातिलकम्** मे कुमार षड्भुज है और उसके दाहिने हाथो मे बाण, गदा एव वरदमुद्रा और बायें हाथो मे धनुष, नकुल एव मातुलिंग का उल्लेख है ।[८] **अपराजितपृच्छा** मे चतुर्भुज कुमार का वाहन मयूर है और उसके करो मे धनुष, बाण, फल एव वरदमुद्रा हैं ।[९]

यद्यपि कुमार नाम हिन्दू कुमार (या कार्तिकेय) से ग्रहण किया गया, पर जैन यक्ष के लिए स्वतन्त्र लक्षणो की कल्पना की गई ।[१०] जैन देवकुल पर हिन्दू प्रभाव के सन्दर्भ मे एक महत्वपूर्ण बात यह है कि जैन आचार्यों ने कभी-कभी जानबूझकर हिन्दू प्रभाव को छिपाने का प्रयास किया है । इस प्रकार के प्रयास मे एक जैन देवता के लिए नाम एवं लाक्षणिक विशेषताए दो अलग-अलग हिन्दू देवो से ग्रहण की गईं । उदाहरण के लिए १२ वें यक्ष कुमार का वाहन हस है, पर १३ वें यक्ष चतुर्मुख का वाहन मयूर है । इसमे स्पष्टत कुमार के मयूर वाहन को चतुर्मुख (यानी ब्रह्मा) के साथ और चतुर्मुख के हस वाहन को कुमार के साथ प्रदर्शित किया गया है ।

---

१ जि०इ०दे०, पृ० १०७ २ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१

३ कुमारयक्ष श्वेतवर्णं हसवाहन चतुर्भुज मातुलिंगबाणान्वितदक्षिणपाणि नकुलकधनुर्युक्तवामपाणि चेति । **निर्वाणकलिका** १८ १२

४ त्रि०श०पु०च० ४.२ २८६–८७, **पद्मानन्दमहाकाव्य** परिशिष्ट–वासुपूज्य १७–१८, **मन्त्राधिराजकल्प** ३ ३६, **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४

५ बीजपूरकवीणान्वितदक्षिणपाणिद्वयो—**प्रवचनसारोद्धार** १२ ३७३, पृ० ९३

६ वासुपूज्य जिनेन्द्रस्य यक्षो नाम्ना कुमारिक ।
त्रिमुख षण्मुख. श्वेत सुरूपो हसवाहन ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५ ३९

७ शुभ्रो धनुर्वभ्रुफलाढ्यसव्यहस्तोन्यहस्तेषु गदेष्टदान ।
लुलाय लक्ष्मणप्रणतस्त्रिवक्त्र प्रमोदता हसचर कुमार ॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३ १४०

८ हस्तैर्धनुर्बभ्रुफलानि सव्यैरन्यैरिषु चारुगदां वर च । **प्रतिष्ठातिलकम्** ७ १२, पृ० ३३४

९ धनुर्बाणफलवरा कुमार शिखिवाहन. । **अपराजितपृच्छा** २२१ ५०

१० पर दिगबर परम्परा मे कभी-कभी कुमार को हिन्दू कुमार के समान ही षण्मुख एव मयूर वाहन से युक्त भी निरूपित किया गया है ।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे मयूर पर आरूढ त्रिमुख एव षड्भुज यक्ष के दाहिने हाथो मे पाश, शूल, अभयमुद्रा और बायें मे वज्र (?), धनुष, वरदमुद्रा वर्णित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे हंस पर आरूढ चतुर्भुज यक्ष के करो मे शर, चाप, मातुलिंग एव दण्ड का उल्लेख है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे हंस पर आरूढ त्रिमुख एव षड्भुज यक्ष के आयुधो का अनुल्लेख है।[1]

कुमार यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। विमलवसही की देवकुलिका ४१ की वासुपूज्य की मूर्ति में सर्वानुभूति यक्ष निरूपित है।

(१२) चण्डा (या गांधारी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

चण्डा (या गान्धारी) जिन वासुपूज्य की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे यक्षी को प्रचण्डा, प्रवरा, चन्द्रा और अजिता नामो से भी सम्बोधित किया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे चतुर्भुजा प्रचण्डा का वाहन अश्व है और उसके दाहिने हाथों मे वरद-मुद्रा एव शक्ति और बायें में पुष्प एव गदा हैं।[2] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही लक्षणो के उल्लेख हैं।[3] केवल **मन्त्राधिराजकल्प** में पुष्प के स्थान पर पाश का उल्लेख है।[4]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे पद्मवाहना गांधारी चतुर्भुजा है। गांधारी के दो हाथो मे मुसल एवं पद्म हैं, शेष दो करो के आयुधों का अनुल्लेख है।[5] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे चतुर्भुजा गांधारी का वाहन मकर (नक्र) है और उसके हाथो मे मुसल एव पद्म के साथ ही वरदमुद्रा एव पद्म भी प्रदर्शित हैं।[6] **अपराजितपृच्छा** मे गांधारी द्विभुजा है और उसके करों मे पद्म एव फल स्थित हैं।[7] गांधारी की लाक्षणिक विशेषताए श्वेतांबर परम्परा की १० वी महाविद्या गांधारी से प्रभावित हैं।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे सर्पवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके ऊपरी करो मे दो दर्पण और निचली मे अभयमुद्रा एव दण्ड का वर्णन है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे हंसवाहना यक्षी द्विभुजा है जिसके दोनो हाथ वरद-एव-ज्ञानमुद्रा मे हैं। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे चतुर्भुजा यक्षी का वाहन मकर है और उसके हाथो मे उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान वरदमुद्रा, मुसल, पद्म एव पद्म का उल्लेख है।[9]

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०४

२ प्रचण्डादेवी श्यामवर्णा अश्वारूढा चतुर्भुजा वरदशक्तियुक्तदक्षिणकरा पुष्पगदायुक्तवामपाणि चेति। **निर्वाणकलिका** १८.१२

३ त्रि०श०पु०च० ४ २ २८८–८९, **पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट**—वासुपूज्य १८–१९, **आचारदिनकर** ,३४ पृ० १७७

४ कृष्णाजिता तुरगगा वरशक्तिहस्ता भूयाद्धिताय सुमदामगदे दधाना। **मन्त्राधिराजकल्प** ३ ५९

५ गांधारीसंज्ञिका ज्ञेया हरिद्रा सा चतुर्भुजा।
मुशलपद्मयुक्त च धत्ते कमलवाहना॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५ ४०

६ सपद्ममुशलाम्भोजदाना मकरगा हरित्। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३ १६६, द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.१२, पृ० ३४४

७ करद्वये पद्मफले नक्रारूढा तथैव च।
श्यामवर्णा प्रकर्तव्या गांधारी नामिकाभवेत्॥ **अपराजितपृच्छा** २२१ २६

८ पद्मवाहना गांधारी महाविद्या वरदमुद्रा, मुसल एव अभयमुद्रा से युक्त है।

९ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०४

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की चार स्वतन्त्र मूर्तिया (९वी-१२वी शती ई०) मिली हैं।[1] ये मूर्तिया देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एव वारभुजी गुफा के समूहो एव मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, म० प्र०) और नवमुनि गुफा से मिली हैं। देवगढ मे वासुपूज्य के साथ 'अभौगरतिण (या अमोगरोहिणी)' नाम की द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है।[2] यक्षी की दाहिनी भुजा मे सर्प और वायीं मे लम्बी माला प्रदर्शित हैं। सर्प का प्रदर्शन १३ वी महाविद्या वैरोट्या का प्रभाव हो सकता है। मालादेवी मन्दिर (१० वी शती ई०) के मण्डोवर की पश्चिमी जघा की चतुर्भुजा देवी की सम्भावित पहचान गाधारी से की जा सकती है।[3] देवी ललितमुद्रा मे पद्मासन पर विराजमान है और उसके आसन के नीचे मकर-मुख उत्कीर्ण हैं, जो सम्भवतः वाहन का सूचक है। पीठिका पर एक पक्ति मे नौ घट (नवनिधि के सूचक) भी वने हैं। देवी के तीन अवशिष्ट करो मे से दो मे पद्म एव दर्पण हैं और तीसरा ऊपर उठा है।

नवमुनि गुफा मे वासुपूज्य की चतुर्भुजा यक्षी मयूरवाहना है। जटामुकुट से शोभित यक्षी के करो मे अभयमुद्रा, मातुलिंग, शक्ति एवं वालक प्रदर्शित हैं।[4] यक्षी की लाक्षणिक विशेषताए अपारम्परिक और हिन्दू कौमारी से प्रभावित हैं।[5] वारभुजी गुफा की मूर्ति मे अष्टभुजा यक्षी का वाहन पक्षी है। यक्षी के दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा, मातुलिंग (?), अक्षमाला, नीलोत्पल और वायें हाथो मे जलपात्र, शख पुष्प, सनालपद्म प्रदर्शित हैं।[6] यक्षी का निरूपण परम्परा-सम्मत नही है।

(१३) षण्मुख (या चतुर्मुख) यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

षण्मुख (या चतुर्मुख) जिन विमलनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओ मे इसका वाहन मयूर है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे द्वादशभुज षण्मुख यक्ष का वाहन मयूर है। षण्मुख के दक्षिण करो मे फल, चक्र, वाण, खड्ग, पाश एव अक्षमाला और वाम मे नकुल, चक्र, धनुष, फलक, अंकुश एव अभयमुद्रा का उल्लेख है।[7] अन्य ग्रन्थो मे भी यही विशेषताएं वर्णित हैं।[8] पर **मन्त्राधिराजकल्प** मे वाण और पाश के स्थान पर शक्ति और नागपाश का उल्लेख है।[9]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे चतुर्मुख यक्ष द्वादशभुज है और उसका वाहन मयूर है। ग्रन्थ मे आयुधो का अनुल्लेख है।[10] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे चतुर्मुख के ऊपर के आठ हाथो मे परशु और शेष चार मे खड्ग (कौक्षेयक),

---

१ सभी मूर्तिया दिगवर स्थलो से मिली हैं।

२ जि०इ०दे०, पृ० १०३, १०७

३ आसन के नीचे नौ घटो का चित्रण इस पहचान मे वाधक है।

४ मित्रा, देवला, पू०नि, पृ० १२८

५ राव, टी० ए० गोपीनाथ, पू०नि०, पृ० ३८७–८८

६ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१

७ षण्मुख यक्षं श्वेतवर्णं शिखिवाहनं द्वादशभुज फलचक्रवाणखड्गपाशाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणपाणि नकुलचक्रधनु फलकाकुशा-भययुक्तवामपाणि चेति। निर्वाणकलिका १८.१३

८ त्रि०श०पु०च० ४.३.१७८–७९, पद्मानन्दमहाकाव्य. परिशिष्ट-विमलस्वामी १९-२०, आचारदिनकर ३४, पृ०१७४

९ चक्राक्षदामफलशक्तिभुजगपाशखड्गाकदक्षिणभुज. सितरुक् सुकेकी। मंत्राधिराजकल्प ३ ३७

१० विमलस्य जिनेन्द्रस्य नामार्याभ्यां चतुर्मुख·।
यक्षोद्वादशदोर्दण्ड सुरूपः शिखिवाहन ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५ ४१

अक्षसूत्र (अक्षमणि), खेटक एव दण्डमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[1] अपराजितपृच्छा मे यक्ष को षण्मुख और षड्भुज बताया गया है। यक्ष के चार हाथो मे वज्र, धनुष, फल एव वरदमुद्रा और शेष मे बाण का उल्लेख है।[2]

चतुर्मुख नाम हिन्दू ब्रह्मा और षण्मुख नाम हिन्दू कुमार (या कार्तिकेय) से प्रभावित है। साथ ही दोनो परम्पराओ मे वाहन के रूप मे मयूर का उल्लेख भी हिन्दूदेव कुमार के ही प्रभाव का सूचक है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे षण्मुख एव द्वादशभुज यक्ष का वाहन कुक्कुट है। ग्रन्थ मे केवल एक भुजा से अभयमुद्रा के प्रदर्शन का ही उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे द्वादशभुज यक्ष का वाहन कपि है। यक्ष के आठ हाथो मे वरदमुद्रा और शेष चार मे खड्ग, खेटक, परशु एव ज्ञानमुद्रा का उल्लेख है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे द्वादशभुज यक्ष का वाहन मयूर है और उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान उसके आठ हाथो मे परशु एव शेष चार मे फलक, खड्ग, दण्ड एव अक्षमाला का वर्णन है।[3]

यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। पर राज्य सग्रहालय, लखनऊ की एक विमलनाथ की मूर्ति (जे ७९१, १००९ ई०) मे द्विभुज यक्ष आमूर्तित है। यक्ष के अवशिष्ट बायें हाथ मे घट है।

(१३) विदिता (या वैरोटी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

विदिता (या वैरोटी) जिन विमलनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे चतुर्भुजा विदिता[4] का वाहन पद्म और दिगंबर परम्परा मे चतुर्भुजा वैरोटी का वाहन सर्प है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे पद्मवाहना विदिता के दक्षिण करो मे बाण एव पाश और वाम मे धनुष एवं सर्प का वर्णन है।[5] अन्य ग्रन्थो मे भी यही लक्षण निर्दिष्ट हैं।[6]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे सर्पवाहना वैरोट्या के दो करो मे सर्प प्रदर्शित हैं, शेष दो करो के आयुधो का अनुल्लेख है।[7] प्रतिष्ठासारोद्धार मे दो हाथो मे सर्प और शेष दो मे धनुष एवं बाण के प्रदर्शन का निर्देश है।[8] अपराजितपृच्छा मे यक्षी षड्भुजा और व्योमयान पर अवस्थित है। उसके दो हाथो मे वरदमुद्रा एव शेष मे खड्ग, खेटक, कार्मुक और शर हैं।[9]

---

१ यक्षो हरित्सपरशूपरिमाष्टपाणि कौक्षेयकक्षमणिखेटकदण्डमुद्रा ।
विभ्रच्चतुर्भिरपरै शिखिग किराकनम्र प्रतृत्यतुयथार्थ चतुर्मुखाख्य ॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १४१
प्रतिष्ठातिलकम ७ १३, पृ० ३३५

२ षण्मुख षड्भुजो वज्रो धनुर्बाणी फलवर । अपराजितपृच्छा २२१ ५०

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०४

४ प्रवचनसारोद्धार एव आचारदिनकर मे यक्षी को विजया कहा गया है।

५ विदिता देवीं हरितालवणा पद्मारूढा चतुर्भुजा बाणपाशयुक्तदक्षिणपाणि धनुर्नागयुक्तवामपाणि चेति ।
निर्वाणकलिका १८ १३

६ त्रि०श०पु०च० ४.३ १८०–८१, पद्मानन्दमहाकाव्य . परिशिष्ट–विमलस्वामी २१, मन्त्राधिराजकल्प ३ ५९, आचारदिनकर ३४, पृ० १७४

७ वैरोटी नामती देवी हरिद्वर्णा चतुर्भुज ।
हस्तद्वयेन सर्पौ द्वौ धत्ते घोणसवाहना ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५ ४२

८ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१६७, द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७ १३, पृ० ३४४

९ श्यामवर्णा षड्भुजा द्वौ वरदौ खड्गखेटकौ ।
धनुर्बाणौ त्रिगटाल्या व्योमयानगता तथा ॥ अपराजितपृच्छा २२१ २७

विदिता एवं वैरोटी के स्वरूप १३वी महाविद्या वैरोट्या से प्रभावित हैं। विदिता के सन्दर्भ मे यह प्रभाव हाथ मे सर्प के प्रदर्शन तक सीमित है, पर वैरोटी के सन्दर्भ मे नाम, वाहन एव दो हाथो मे सर्प का प्रदर्शन—ये सभी महाविद्या के प्रभाव प्रतीत होते हैं।[1]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर ग्रन्थ मे सर्पवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके दो करो मे सर्प एव शेष दो मे अभय-एव कटक-मुद्रा है। अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे चतुर्भुजा यक्षी मृगवाहना (कृष्णसार) है और उसके हाथो मे शर, चाप, वरदमुद्रा एव पद्म का उल्लेख है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे सर्पवाहना (गोनस) यक्षी के दो करो मे सर्प एव शेष दो मे वाण और धनुष का वर्णन है।[2] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय परम्परा यक्षी के निरूपण में सामान्यत. उत्तर भारतीय दिगवर परम्परा से सहमत है।

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तिया मिली हैं। दोनो मूर्तियां दिगवर परम्परा की हैं और क्रमश देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एव वारभुजी गुफा के सामूहिक चित्रणो मे उत्कीर्ण हैं। देवगढ मे विमलनाथ के साथ 'सुलक्षणा' नाम की सामान्य लक्षणो वाली द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है।[3] यक्षी का दाहिना हाथ जानु पर है और वायें मे चामर प्रदर्शित हैं। वारभुजी गुफा मे विमलनाथ की यक्षी अष्टभुजा है और उसका वाहन सारस है। यक्षी के दक्षिण करो मे वरदमुद्रा, वाण, खड्ग एव परशु और वाम मे वज्र, धनुष, शूल एव खेटक प्रदर्शित है।[4] यक्षी का निरूपण परम्परासम्मत नही है। राज्य सग्रहालय, लखनऊ की जिन-सयुक्त मूर्ति (जे ७९१) मे द्विभुजा यक्षी अभयमुद्रा एव घट से युक्त है।

(१४) पाताल यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

पाताल जिन अनन्तनाथ का यक्ष है। दोनो परम्परा के ग्रन्थो मे पाताल को त्रिमुख, षड्भुज और मकर पर आरूढ कहा गया है।

श्वेतांवर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे पाताल यक्ष के दाहिने हाथो मे पद्म, खड्ग एव पाश और वायें मे नकुल, फलक एव अक्षसूत्र का उल्लेख है।[5] अन्य ग्रन्थो मे भी यही आयुध प्रदर्शित हैं।[6] **मन्त्राधिराजकल्प** मे पाताल को त्रिनेत्र कहा गया है। **आचारदिनकर** मे अक्षसूत्र के स्थान पर मुक्ताक्षावलि का उल्लेख है।[7]

---

१ श्वेतावर परम्परा मे महाविद्या वैरोट्या का वाहन सर्प है और उसके दो करो मे सर्प एव अन्य मे खड्ग और खेटक प्रदर्शित हैं।

२ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०४

३ जि०इ०दे०, पृ० १०३, १०७

४ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१

५ पातालयक्ष त्रिमुख रक्तवर्णं मकरवाहन षड्भुज पद्मखड्गपाशयुक्तदक्षिणपाणि नकुलफलकाक्षसूत्रयुक्तवामपाणि चेति। निर्वाणकलिका १८ १४

६ त्रि०श०पु०च० ४ ४ २००–२०१, पद्मानन्दमहाकाव्य परिशिष्ट—अनन्त १८–१९, मन्त्राधिराजकल्प ३.३८

७ आचारदिनकर ३४, पृ० १७४

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे हसवाहना अनन्तमती के हाथो मे धनुष, बाण, फल एव वरदमुद्रा दिये गये हैं।[1] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही लक्षणो का उल्लेख है।[2]

यक्षी के अकुशा नाम के कारण ही यक्षी के हाथ मे अकुश प्रदर्शित हुआ। ज्ञातव्य है कि जैन परम्परा की चौथी महाविद्या का नाम वज्राकुशा है और उसके मुख्य आयुध वज्र एव अकुश है। दिगबर परम्परा मे यक्षी का नाम (अनन्तमती) जिन (अनन्तनाथ) से प्रभावित है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगबर ग्रन्थ मे हसवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके ऊपरी हाथो मे शर एवं चाप और नीचे के हाथो मे अभय-एव कटक-मुद्रा प्रदर्शित है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे मयूरवाहना यक्षी द्विभुजा है और वरदमुद्रा एव पद्म से युक्त है। यक्ष-यक्षी-लक्षण मे हसवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके हाथो मे धनुष, वाण, फल एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[3] प्रस्तुत विवरण उत्तर भारतीय दिगबर परम्परा से प्रभावित है।

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तिया मिली है।[4] ये मूर्तिया क्रमश देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एव बारभुजी गुफा के सामूहिक अकनो मे उत्कीर्ण है। देवगढ मे अनन्तनाथ के साथ 'अनन्तवीर्या' नाम की सामान्य लक्षणो वाली द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है।[5] यक्षी की दाहिनी भुजा जानु पर स्थित है और वायी मे चामर प्रदर्शित है। बारभुजी गुफा मे अनन्त के साथ अष्टभुजा यक्षी निरूपित है। यक्षी का वाहन सम्भवत गर्दभ है। यक्षी के दक्षिण करो मे वरदमुद्रा, कटार, शूल एव खड्ग और वाम मे दण्ड, वज्र, सनालपद्म, मुद्गर एवं खेटक प्रदर्शित हैं।[6] यक्षी का चित्रण परम्परासम्मत नही है। विमलवसही की अनन्तनाथ की मूर्ति मे यक्षी अम्बिका है।

(१५) किन्नर यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

किन्नर जिन धर्मनाथ का यक्ष है। दोनो परम्परा के ग्रन्थो मे किन्नर यक्ष को त्रिमुख और षड्भुज बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे किन्नर यक्ष का वाहन कूर्म है और उसके दाहिने हाथो मे बीजपूरक, गदा, अभयमुद्रा एव बायें मे नकुल, पद्म, अक्षमाला का उल्लेख है।[7] अन्य ग्रन्थो मे भी यही विशेषताएं वर्णित हैं।[8]

---

१ तथानन्तमती हेमवर्णा चैव चतुर्भुजा।
चाप बाण फलं धत्ते वरदा हसवाहना ॥ प्रतिष्ठासारसग्रह ५ ४९

२ प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १६८, प्रतिष्ठातिलकम ७ १४, पृ० ३४५; अपराजितपृच्छा २२१.२८

३ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०५

४ श्वेतांबर स्थलो पर वरदमुद्रा, शूल, अकुश एव फल से युक्त एक पद्मवाहना देवी का अंकन विशेष लोकप्रिय था। देवी की सम्भावित पहचान अकुशा से की जा सकती है। पर इस देवी का महाविद्या समूह मे अंकन यक्षी से पहचान मे वाधक है।

५ जि०इ०दे०, पृ० १०३, १०६

६ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१—लेखिका ने यक्षी को अष्टभुजा बताया है, पर वाम करो मे पाच आयुधो का ही उल्लेख किया है।

७ किन्नरयक्ष त्रिमुख रक्तवर्णं कूर्मवाहनं षट्भुज बीजपूरकगदाभययुक्तदक्षिणपाणि नकुलपद्माक्षमालायुक्तवामपाणि चेति। निर्वाणकलिका १८.१५

८ त्रि०श०पु०च० ४ ५ १९७—९८, पद्मानन्दमहाकाव्य · परिशिष्ट—धर्मनाथ १९—२०, मन्त्राधिराजकल्प ३.३९, आचारदिनकर ३४, पृ० १७४

दिगबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे यक्ष का वाहन मीन (झष) है। ग्रन्थ मे आयुधो का अनुल्लेख है।[1] प्रतिष्ठासारोद्धार मे यक्ष के दक्षिण करो मे मुद्गर, अक्षमाला, वरदमुद्रा एव वाम मे चक्र, वज्र, अंकुश का उल्लेख है।[2] अपराजितपृच्छा मे यक्ष के करो मे पाश, अकुश, धनुष, बाण, फल एव वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[3]

किन्नरो[4] की धारणा भारतीय परम्परा मे काफी प्राचीन है। जैन परम्परा मे किन्नर यक्ष का नाम प्राचीन परम्परा से ग्रहण किया गया 'पर उसकी लाक्षणिक विशेषताए स्वतन्त्र हैं। ज्ञातव्य है कि जैन यक्षो की सूची में नाग, किन्नर, गरुड एवं गन्धर्व आदि नामो से प्राचीन भारतीय परम्परा के कई देवो को सम्मिलित किया गया, पर मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से उन सभी के स्वतन्त्र रूप निर्धारित किये गये।[5]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दोनो परम्परा के ग्रन्थो मे षड्भुज यक्ष का वाहन मीन है। दिगवर ग्रन्थ मे यक्ष त्रिमुख है और उसके दक्षिण करो मे अक्षमाला, दण्ड, अभयमुद्रा एव वाम मे शक्ति, शूल, माला (या कटक) का वर्णन है। दोनो श्वेतावर ग्रन्थो मे उत्तर भारतीय दिगवर परम्परा के अनुरूप यक्ष मुद्गर, चक्र, वज्र, अक्षमाला, वरदमुद्रा एवं अकुश से युक्त है।[6]

किन्नर यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। विमलवसही की देवकुलिका १ की धर्मनाथ की मूर्ति में यक्ष सर्वानुभूति का अकन है।

(१५) कन्दर्पा (या मानसी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

कन्दर्पा (या मानसी) जिन धर्मनाथ की यक्षी है। श्वेतावर परम्परा मे मत्स्यवाहना यक्षी को कन्दर्पा (या पन्नगा) और दिगवर परम्परा मे व्याघ्रवाहना यक्षी को मानसी नामो से सम्बोधित किया गया है। दोनो परम्परा के ग्रन्थो मे यक्षी के दो हाथो मे अकुश एव पद्म के प्रदर्शन का निर्देश है।

श्वेतावर परम्परा—निर्वाणकलिका मे मत्स्यवाहना कन्दर्पा चतुर्भुजा है जिसके दाहिने हाथो मे उत्पल और अकुश तथा वायें मे पद्म और अभयमुद्रा का उल्लेख है।[7] अन्य ग्रन्थों मे भी यही आयुध वर्णित हैं।[8] पर मन्त्राधिराजकल्प मे तीन करो मे पद्म के प्रदर्शन का उल्लेख है।[9]

---

१ धर्मस्य किन्नरो यक्षस्त्रिमुखो मीनवाहन'।
षड्भुज पद्मरागाभो जिनधर्मपरायण ॥ प्रतिष्ठासारसग्रह ५ ५०

२ सचक्रवज्राकुशवामपाणि समुद्गराक्षालिवरान्यहस्त।
प्रवालवर्णास्त्रिमुखो झषस्थो वज्राकभक्तोचतु किन्नरोऽच्यर्याम् ॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १४३
प्रतिष्ठातिलकम् ७ १५, पृ० ३३५

३ किन्नरेशः पाशाङ्कुशौ धनुर्बाणौ फलवरः। अपराजितपृच्छा २२१ ५१

४ किन्नर मानव शरीर और अश्वमुख वाले होते हैं।

५ किन्नरों के नेता कुबेर हैं जिन्हें किमीश्वर कहा गया है। द्रष्टव्य, भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० १०९

६ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०५

७ कन्दर्पा देवी गौरवर्णा मत्स्यवाहना चतुर्भुजा उत्पलांकुशयुक्त-दक्षिणकरा पद्माभययुक्तवामहस्ता चेति।
निर्वाणकलिका १८ १५

८ त्रि०श०पु०च० ४ ५ १९९-२००, पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट-धर्मनाथ २०-२१, आचारदिनकर ३४,पृ०१७७, देवतामूर्तिप्रकरण ७ ४५

९ मन्त्राधिराजकल्प ३ ६०

दिगबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे षड्भुजा मानसी का वाहन व्याघ्र है। ग्रन्थ मे आयुधो का अनुल्लेख है।[1] प्रतिष्ठासारोद्धार मे यक्षी के दो हाथो मे पद्म और शेष मे धनुष, वरदमुद्रा, अकुश और बाण का उल्लेख है।[2] अपराजितपृच्छा मे मानसी के करो मे त्रिशूल, पाश, चक्र, डमरू, फल एव वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[3]

यद्यपि मानसी का नाम १५वी महाविद्या मानसी से ग्रहण किया गया, पर यक्षी की लाक्षणिक विशेषताए सर्वथा स्वतन्त्र हैं। स्मरणीय है कि किन्नर यक्ष एव कन्दर्पा यक्षी दोनो ही के वाहन मत्स्य हैं। कन्दर्पा को हिन्दू देव कन्दर्प या काम से सम्बन्धित नही किया जा सकता है।[4]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगबर ग्रन्थ मे सिंहवाहना मानसी चतुर्भुजा है और उसके दाहिने हाथो मे अकुश और शूल (या बाण) तथा बायें मे पुष्प (या चक्र) और धनुष का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे मृगवाहना (कृष्णसार) यक्षी चतुर्भुजा है और उसकी भुजाओ मे शर, चाप, वरदमुद्रा एव पद्म प्रदर्शित हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण मे व्याघ्र-वाहना यक्षी षड्भुजा है और उसके करो मे उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप पद्म, धनुष, वरदमुद्रा, अकुश, बाण एव उत्पल का उल्लेख है।[5]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तिया मिली है। दिगंबर स्थलो से मिलने वाली ये मूर्तिया क्रमश देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एव बारभुजी गुफा के सामूहिक अकनो मे उत्कीर्ण है। देवगढ मे धर्मनाथ के साथ 'सुरक्षिता' नाम की सामान्य स्वरूप वाली द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है।[6] यक्षी के दाहिने हाथ मे पद्म है और बाया जानु पर स्थित है। बारभुजी गुफा मे धर्मनाथ की षड्भुजा यक्षी का वाहन उष्ट्र है। यक्षी के दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा, पिण्ड (या फल), तीन काटो वाली वस्तु और बायें मे घण्टा, पताका एव शख प्रदर्शित हैं।[7] यक्षी का निरूपण परम्परासम्मत नही है। एक मूर्ति ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर के मण्डोवर के उत्तरी पार्श्व पर उत्कीर्ण है। चतुर्भुजा देवी का वाहन झष है और उसके करो मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, पद्म और फल प्रदर्शित है। झषवाहन और पद्म के आधार पर देवी की सम्भावित पहचान धर्मनाथ की यक्षी से की जा सकती है।

(१६) गरुड यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

गरुड[8] जिन शान्तिनाथ का यक्ष है। श्वेतावर परम्परा मे इसे वराहमुख बताया गया है।

---

१ देवता मानसी नाम्ना षड्भुजाविद्रुमप्रभा।
व्याघ्रवाहनमारूढा नित्य धर्मानुरागिणी ॥ प्रतिष्ठासारसग्रह ५ ५१

२ साबुजधनुदानाकुशशरोत्पला व्याघ्रगा प्रवालनिभा। प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १६९
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७ १५, पृ० ३४५

३ षड्भुजा रक्तवर्णा च त्रिशूल पाशचक्रके।
डमरुर्वे फलवरे मानसी व्याघ्रवाहना ॥ अपराजितपृच्छा २२१ २९

४ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० १३५

५ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०५

६ जि०इ०दे०, पृ० १०३, १०६

७ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२

८ मन्त्राधिराजकल्प मे यक्ष का वराह नाम से उल्लेख है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे चतुर्भुज गरुड वराहमुख है और उसका वाहन भी वराह है। गरुड के हाथो मे बीजपूरक, पद्म, नकुल और अक्षसूत्र का वर्णन है।[1] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही लक्षणो के उल्लेख हैं।[2] कुछ ग्रन्थो मे गरुड का वाहन गज बताया गया है।[3] मन्त्राधिराजकल्प मे नकुल के स्थान पर पाश के प्रदर्शन का निर्देश है।[4]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे वराह पर आरूढ चतुर्भुज गरुड के आयुधो का उल्लेख नही है।[5] प्रतिष्ठासारोद्धार मे चतुर्भुज गरुड का वाहन शुक (किटि) है और उसकी ऊपरी भुजाओ मे वज्र एव चक्र तथा निचली मे पद्म एव फल का वर्णन है।[6] अपराजितपृच्छा मे शुकवाहन से युक्त गरुड के करो मे पाश, अंकुश, फल एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[7]

गरुड यक्ष का नाम हिन्दू गरुड से प्रभावित है, पर उसका मूर्ति-विज्ञान-परक स्वरूप स्वतन्त्र है। दिगंबर परम्परा मे चक्र का और अपराजितपृच्छा मे पाश और अकुश का उल्लेख सम्भवत हिन्दू गरुड का प्रभाव है।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे वृषभारूढ यक्ष को किंपुरुष नाम से सम्बोधित किया गया है। चतुर्भुज यक्ष के ऊपरी करो मे चक्र और शक्ति तथा निचली मे अभय-और-कटक-मुद्राओ का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे गरुड पर आरूढ चतुर्भुज यक्ष के करो मे वज्र, पद्म, चक्र एव पद्म (या अभय-या-वरदमुद्रा) के प्रदर्शन का निर्देश है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे वराह पर आरूढ यक्ष के करो मे वज्र, फल, चक्र, एवं पद्म वर्णित हैं।[9] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत की श्वेतांबर और उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा मे गरुड यक्ष के निरूपण मे पर्याप्त समानता है।

मूर्ति-परम्परा

बी० सी० भट्टाचार्य ने गरुड यक्ष की एक मूर्ति का उल्लेख किया है।[10] यह मूर्ति देवगढ दुर्ग के पश्चिमी द्वार के एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। शूकर पर आरूढ चतुर्भुज यक्ष के करो में गदा, अक्षमाला, फल एव सर्प स्थित हैं।

शान्तिनाथ की मूर्तियो मे ल० आठवीं शती ई० मे ही यक्ष-यक्षी का निरूपण प्रारम्भ हो गया। गुजरात एव राजस्थान की शान्तिनाथ की मूर्तियो मे यक्ष सदैव सर्वानुभूति है। पर उत्तरप्रदेश एव मध्यप्रदेश की मूर्तियो (१० वीं-

---

१ गरुडयक्ष वराहवाहन क्रोडवदनं श्यामवर्णं चतुर्भुज बीजपूरकपद्मयुक्तदक्षिणपाणि नकुलकाक्षसूत्रवामपाणि चेति। निर्वाणकलिका १८ १६

२ त्रि०श०पु०च० ५ ५ ३७३–७४, पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट–शान्तिनाथ ४५९–६०, शान्तिनाथमहाकाव्य (मुनिभद्रकृत) १५ १३१, आचारदिनकर ३४, पृ० १७४, देवतामूर्तिप्रकरण ७ ४६

३ त्रि०श०पु०च०, पद्मानन्दमहाकाव्य एव शान्तिनाथमहाकाव्य।

४ मन्त्राधिराजकल्प ३ ४०

५ गरुडो (नाम) तो यक्ष शान्तिनाथस्य कीर्तित·।
वराहवाहन श्यामो चक्रवक्त्रश्चतुर्भुज ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५ ५२

६ वक्रानघोऽधस्तनहस्तपद्म फलोन्यहस्तार्पितवज्रचक्र।
मृगध्वजहित्प्रणत सपर्यां श्याम किटिस्थो गरुडोभ्युपैतु ॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १४४
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७ १६, पृ० ३३६

७ पाशाङ्कुशफलवरो गरुड स्याच्छुकासन। अपराजितपृच्छा २२१ ५२

८ हिन्दू शिल्पशास्त्रो में गरुड के करो में चक्र, खड्ग, मुसल, अकुश, शंख, शारंग, गदा एव पाश आदि के प्रदर्शन का उल्लेख है। द्रष्टव्य, बनर्जी, जे०एन०, पू०नि०, पृ० ५३२–३३

९ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०५–२०६

१० भट्टाचार्य, बी०सी०, पू०नि०, पृ० ११०

१२ वीं शती ई०) मे शान्तिनाथ के साथ कभी-कभी स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष का भी निरूपण हुआ है।[1] जिन-सयुक्त मूर्तियो मे यक्ष का पारम्परिक स्वरूप मे अकन नहीं मिलता है। यक्ष का कोई स्वतन्त्र स्वरूप भी स्थिर नही हो सका। दिगवर स्थलो पर यक्ष के करो मे पद्म के अतिरिक्त परशु, गदा, दण्ड एव धन के थैले का प्रदर्शन हुआ है।

पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा की ल० आठवीं शती ई० की एक मूर्ति (बी ७५) मे द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है। मालादेवी मन्दिर की मूर्ति (१० वी शती ई०) मे चतुर्भुज यक्ष के करो मे फल, पद्म, परशु एव धन का थैला प्रदर्शित हैं। देवगढ की दसवी-ग्यारहवी शती ई० की पाच मूर्तियो मे सामान्य लक्षणो वाला द्विभुज यक्ष आमूर्तित है। इनमे यक्ष के हाथो मे गदा एव फल (या धन का थैला) हैं। दो उदाहरणो मे यक्ष चतुर्भुज है।[2] एक मे यक्ष के करो मे गदा, परशु, पद्म एवं फल हैं, और दूसरे मे अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं जलपात्र। खजुराहो के मन्दिर १ की शान्तिनाथ की मूर्ति (१०२८ ई०) मे यक्ष चतुर्भुज है और उसके हाथो मे दण्ड, पद्म, पद्म एवं फल प्रदर्शित हैं। खजुराहो एव इलाहाबाद संग्रहालय (क्रमाक ५३३) की तीन मूर्तियो मे द्विभुज यक्ष फल (या प्याला) और धन के थैले से युक्त है (चित्र १९)।

(१६) निर्वाणी (या महामानसी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

निर्वाणी (या महामानसी) जिन शान्तिनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे चतुर्भुजा निर्वाणी पद्मवाहना और दिगवर परम्परा मे चतुर्भुजा महामानसी मयूर-(या गरुड-) वाहना है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में पद्मवाहना निर्वाणी के दाहिने हाथो मे पुस्तक एव उत्पल और बायें मे कमण्डलु एवं पद्म वर्णित हैं।[3] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही लक्षणो के उल्लेख है।[4] पर **मन्त्राधिराजकल्प** में पद्म के स्थान पर वरदमुद्रा[5] और **आचारदिनकर** मे पुस्तक के स्थान पर कल्हार (?)[6] के उल्लेख हैं।

दिगवर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसग्रह** मे मयूरवाहना महामानसी के हाथो मे फल, सर्प, चक्र एव वरदमुद्रा उल्लिखित हैं।[7] समान लक्षणों का उल्लेख करने वाले अन्य ग्रन्थो मे सर्प के स्थान पर इढि (या इंडी-खड्ग ?) का वर्णन है।[8] **अपराजितपृच्छा** मे महामानसी का वाहन गरुड है और उसके करो मे बाण, धनुष, वज्र एव चक्र वर्णित है।[9]

निर्वाणी के साथ पद्मवाहन एवं करो मे पद्म, पुस्तक और कमण्डलु का प्रदर्शन निश्चित ही सरस्वती का प्रभाव है। दिगंबर परम्परा मे यक्षी के साथ मयूरवाहन का निरूपण भी सरस्वती का ही प्रभाव है।[10] दिगवर परम्परा मे

---

१ कुछ उदाहरणो मे यक्ष के रूप मे सर्वानुभूति भी निरूपित है।

२ ग्यारहवी शती ई० की ये मूर्तिया मन्दिर ८ और मन्दिर १२ (पश्चिमी चहारदीवारी) पर हैं।

३ निर्वाणी देवीं गौरवर्णां पद्मासना चतुर्भुजा पुस्तकोत्पलयुक्तदक्षिणकरा कमण्डलुकमलयुतवामहस्ता चेति। **निर्वाणकलिका** १८ १६

४ त्रि०श०पु०च० ५ ५ ३७५-७६, **पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट—शान्तिनाथ** ४६०-६१, **शान्तिनाथमहाकाव्य** १५ १३२

५ **मन्त्राधिराजकल्प** ३ ६१   ६ **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७७

७ सुमहामानसी देवी हेमवर्णा चतुर्भुजा।
फलाहिचक्रहस्तासौ वरदा शिखिवाहना॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५ ५३

८ चक्रफलेढिराकितकरां महामानसी सुवर्णाभाम्। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३ १७०
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्**, ७ १६, पृ० ३४५

९ चतुर्भुजा सुवर्णाभा शर शार्ङ्गं च वज्रकम्।
चक्र महामानसीस्यात् पक्षिराजोपरिस्थिता॥ **अपराजितपृच्छा** २२१ ३०

१० महामानसी का शाब्दिक अर्थ विद्या या ज्ञान की प्रमुख देवी है। सम्भवत इसी कारण महामानसी के साथ सरस्वती का मयूर वाहन प्रदर्शित किया गया। द्रष्टव्य, भट्टाचार्य, बी०सी०, पू०नि०, पृ० १३७

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे चतुर्भुज गरुड वराहमुख है और उसका वाहन भी वराह है। गरुड के हाथो मे वीजपूरक, पद्म, नकुल और अक्षसूत्र का वर्णन है।[1] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही लक्षणो के उल्लेख है।[2] कुछ ग्रन्थो मे गरुड का वाहन गज बताया गया है।[3] **मन्त्राधिराजकल्प** मे नकुल के स्थान पर पाश के प्रदर्शन का निर्देश है।[4]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे वराह पर आरूढ चतुर्भुज गरुड के आयुधो का उल्लेख नही है।[5] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे चतुर्भुज गरुड का वाहन शुक (किटि) है और उसकी ऊपरी भुजाओ मे वज्र एव चक्र तथा निचली में पद्म एव फल का वर्णन है।[6] अपराजितपृच्छा मे शुकवाहन से युक्त गरुड के करो मे पाश, अकुश, फल एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[7]

गरुड यक्ष का नाम हिन्दू गरुड से प्रभावित है, पर उसका मूर्ति-विज्ञान-परक स्वरूप स्वतन्त्र है। दिगंबर परम्परा मे चक्र का और **अपराजितपृच्छा** मे पाश और अकुश का उल्लेख सम्भवत हिन्दू गरुड का प्रभाव है।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे वृषमारूढ यक्ष को किंपुरुष नाम से सम्बोधित किया गया है। चतुर्भुज यक्ष के ऊपरी करो मे चक्र और शक्ति तथा निचली मे अभय-और-कटक-मुद्राओ का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे गरुड पर आरूढ चतुर्भुज यक्ष के करो मे वज्र, पद्म, चक्र एव पद्म (या अभय-या-वरदमुद्रा) के प्रदर्शन का निर्देश है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे वराह पर आरूढ यक्ष के करों मे वज्र, फल, चक्र, एव पद्म वर्णित है।[9] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत की श्वेतांबर और उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा मे गरुड यक्ष के निरूपण मे पर्याप्त समानता है।

मूर्ति-परम्परा

बी० सी० भट्टाचार्य ने गरुड यक्ष की एक मूर्ति का उल्लेख किया है।[10] यह मूर्ति देवगढ दुर्ग के पश्चिमी द्वार के एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। शूकर पर आरूढ चतुर्भुज यक्ष के करो में गदा, अक्षमाला, फल एव सर्प स्थित हैं।

शान्तिनाथ की मूर्तियो मे ल० आठवीं शती ई० मे ही यक्ष-यक्षी का निरूपण प्रारम्भ हो गया। गुजरात एव राजस्थान की शान्तिनाथ की मूर्तियो मे यक्ष सदैव सर्वानुभूति है। पर उत्तरप्रदेश एव मध्यप्रदेश की मूर्तियो (१० वी-

---

१ गरुडयक्ष वराहवाहन क्रोडवदन श्यामवर्णं चतुर्भुज वीजपूरकपद्मयुक्तदक्षिणपाणि नकुलकाक्षसूत्रवामपाणि चेति। **निर्वाणकलिका** १८ १६

२ **त्रि०श०पु०च०** ५ ५ ३७३–७४, **पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट –शान्तिनाथ** ४५९–६०, **शान्तिनाथमहाकाव्य** (मुनिभद्रकृत) १५ १३१, **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४, **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.४६

३ **त्रि०श०पु०च०**, **पद्मानन्दमहाकाव्य** एव **शान्तिनाथमहाकाव्य**।

४ **मन्त्राधिराजकल्प** ३ ४०

५ गरुडो (नाम) तो यक्ष शान्तिनाथस्य कीर्तित।
वराहवाहन श्यामो चक्रवक्त्रश्चतुर्भुज ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५ ५२

६ वक्रानघोऽधस्तनहस्तपद्म फलोन्यिहस्तार्पितवज्रचक्र।
मृगध्वजहित्प्रणत सपर्या श्याम किटिस्थो गरुडोभ्युपैतु ॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३ १४४
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७ १६, पृ० ३३६

७ पाशाङ्कुशफलवरो गरुड स्याच्छुकासन.। **अपराजितपृच्छा** २२१ ५२

८ हिन्दू शिल्पशास्त्रो में गरुड के करो मे चक्र, खड्ग, मुसल, अकुश, शख, शारंग, गदा एव पाश आदि के प्रदर्शन का उल्लेख है। द्रष्टव्य, बनर्जी, जे०एन०, पू०नि०, पृ० ५३२–३३

९ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०५–२०६

१० भट्टाचार्य, बी०सी, पू०नि०, पृ० ११०

१२ वी शती ई०) मे शान्तिनाथ के साथ कभी-कभी स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष का भी निरूपण हुआ है।[1] जिन-संयुक्त मूर्तियो मे यक्ष का पारम्परिक स्वरूप मे अंकन नही मिलता है। यक्ष का कोई स्वतन्त्र स्वरूप भी स्थिर नही हो सका। दिगंबर स्थलो पर यक्ष के करो मे पद्म के अतिरिक्त परशु, गदा, दण्ड एव धन के थैले का प्रदर्शन हुआ है।

पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा की ल० आठवी शती ई० की एक मूर्ति (बी ७५) मे द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है। मालादेवी मन्दिर की मूर्ति (१० वी शती ई०) मे चतुर्भुज यक्ष के करो मे फल, पद्म, परशु एव धन का थैला प्रदर्शित हैं। देवगढ की दसवी-ग्यारहवी शती ई० की पाच मूर्तियो मे सामान्य लक्षणो वाला द्विभुज यक्ष आमूर्तित है। इनमे यक्ष के हाथो मे गदा एव फल (या धन का थैला) हैं। दो उदाहरणो मे यक्ष चतुर्भुज है।[2] एक मे यक्ष के करो मे गदा, परशु, पद्म एवं फल हैं, और दूसरे में अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एव जलपात्र। खजुराहो के मन्दिर १ की शान्तिनाथ की मूर्ति (१०२८ ई०) मे यक्ष चतुर्भुज है और उसके हाथो मे दण्ड, पद्म, पद्म एव फल प्रदर्शित हैं। खजुराहो एव इलाहाबाद संग्रहालय (क्रमाक ५३३) की तीन मूर्तियो मे द्विभुज यक्ष फल (या प्याला) और धन के थैले से युक्त है (चित्र १९)।

(१६) निर्वाणी (या महामानसी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

निर्वाणी (या महामानसी) जिन शान्तिनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे चतुर्भुजा निर्वाणी पद्मवाहना और दिगंबर परम्परा मे चतुर्भुजा महामानसी मयूर-(या गरुड-) वाहना है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में पद्मवाहना निर्वाणी के दाहिने हाथो मे पुस्तक एव उत्पल और बायें मे कमण्डलु एव पद्म वर्णित है।[3] अन्य ग्रन्थों मे भी इन्ही लक्षणो के उल्लेख है।[4] पर मन्त्राधिराजकल्प मे पद्म के स्थान पर वरदमुद्रा[5] और आचारदिनकर मे पुस्तक के स्थान पर कल्हार (?)[6] के उल्लेख हैं।

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे मयूरवाहना महामानसी के हाथो मे फल, सर्प, चक्र एव वरदमुद्रा उल्लिखित हैं।[7] समान लक्षणो का उल्लेख करने वाले अन्य ग्रन्थों में सर्प के स्थान पर इढि (या ईडी-खड्ग ?) का वर्णन है।[8] अपराजितपृच्छा मे महामानसी का वाहन गरुड है और उसके करो मे बाण, धनुष, वज्र एव चक्र वर्णित है।[9]

निर्वाणी के साथ पद्मवाहन एव करो मे पद्म, पुस्तक और कमण्डलु का प्रदर्शन निश्चित ही सरस्वती का प्रभाव है। दिगंबर परम्परा मे यक्षी के साथ मयूरवाहन का निरूपण भी सरस्वती का ही प्रभाव है।[10] दिगंबर परम्परा मे

---

१ कुछ उदाहरणो मे यक्ष के रूप मे सर्वानुभूति भी निरूपित है।

२ ग्यारहवी शती ई० की ये मूर्तिया मन्दिर ८ और मन्दिर १२ (पश्चिमी चहारदीवारी) पर हैं।

३ निर्वाणी देवीं गौरवर्णां पद्मासना चतुर्भुजां पुस्तकोत्पलयुक्तदक्षिणकरां कमण्डलुकमलयुतवामहस्तां चेति। निर्वाणकलिका १८ १६

४ त्रि०श०पु०च० ५ ५ ३७५-७६, पद्मानन्दमहाकाव्य: परिशिष्ट—शान्तिनाथ ४६०-६१, शान्तिनाथमहाकाव्य १५ १३२

५ मन्त्राधिराजकल्प ३ ६१

६ आचारदिनकर ३४, पृ० १७७

७ सुमहामानसी देवी हेमवर्णा चतुर्भुजा।
फलाहिचक्रहस्तासौ वरदा शिखिवाहना ॥ प्रतिष्ठासारसग्रह ५ ५३

८ चक्रफलेढिराकितकरा महामानसी सुवर्णाभाम्। प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १७०
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम्, ७ १६, पृ० ३४५

९ चतुर्भुजा सुवर्णाभा शर शार्गंच वज्रकम्।
चक्र महामानसीस्यात् पक्षिराजोपरिस्थिता ॥ अपराजितपृच्छा २२१ ३०

१० महामानसी का शाब्दिक अर्थ विद्या या ज्ञान की प्रमुख देवी है। सम्भवत. इसी कारण महामानसी के साथ सरस्वती का मयूर वाहन प्रदर्शित किया गया। द्रष्टव्य, भट्टाचार्य, बी०सी०, पू०नि०, पृ० १३७

महामानसी का नाम १६ वी महाविद्या महामानसी से ग्रहण किया गया, पर देवी की लाक्षणिक विशेषताएं महाविद्या से भिन्न हैं।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे मयूरवाहना महामानसी चतुर्भुजा है और उसकी ऊपरी भुजाओ मे वर्छी (डार्ट) एवं चक्र और निचली मे अभय-एव-कटक मुद्राएं वर्णित है। अज्ञातनाम श्वेतांवर ग्रन्थ मे मकरवाहना यक्षी के करो मे खड्ग, खेटक, शक्ति एव पाश के प्रदर्शन का निर्देश है। यक्ष-यक्षी-लक्षण मे उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप मयूरवाहना यक्षी को फल, खड्ग, चक्र एव वरदमुद्रा से युक्त निरूपित किया गया है।[1]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तिया मिली हैं। ये मूर्तिया देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के यक्षी समूहो मे उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ मे शान्तिनाथ के साथ 'श्रीयादेवी' नाम की चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है।[2] यक्षी का वाहन महिष है और उसके हाथो मे खड्ग, चक्र, खेटक एव परशु प्रदर्शित हैं। यक्षी का निरूपण श्वेतांवर परम्परा की छठी महाविद्या नरदत्ता (या पुरुषदत्ता) से प्रभावित है।[3] बारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी द्विभुजा है और ध्यानमुद्रा मे पद्म पर विराजमान है। यक्षी के दोनो हाथो मे सनाल पद्म प्रदर्शित हैं। शीर्षभाग मे देवी का अभिषेक करती हुई दो गज आकृतिया भी उत्कीर्ण हैं।[4] यक्षी का निरूपण पूर्णत. अभिषेकलक्ष्मी से प्रभावित है।

शान्तिनाथ की मूर्तियो मे ल० आठवी शती ई० मे यक्षी का अकन प्रारम्भ हुआ। गुजरात एव राजस्थान के श्वेतांवर स्थलो की जिन-संयुक्त मूर्तियो मे यक्षी के रूप मे सर्वदा अम्बिका निरूपित है। पर देवगढ, ग्यारसपुर एव खजुराहो जैसे दिगंबर स्थलो की मूर्तियो (१०वीं-१२वीं शती ई०) मे स्वतन्त्र लक्षणो वाली यक्षी आमूर्तित है।[5] मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, म० प्र०) की मूर्ति (१०वी शती ई०) मे स्वतन्त्र रूपवाली यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करो मे अभयाक्ष, पद्म, पद्म एव मातुलिंग प्रदर्शित हैं। देवगढ की तीन मूर्तियो मे सामान्य लक्षणो वाली द्विभुजा यक्षी के हाथो मे अभयमुद्रा एव कलश (या फल) हैं। देवगढ़ के मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की दो मूर्तियो (११ वी शती ई०) मे चतुर्भुजा यक्षी के करो में अभयमुद्रा, पद्म, पुस्तक एव जलपात्र प्रदर्शित हैं। खजुराहो के मन्दिर १ की मूर्ति मे चतुर्भुजा यक्षी अभयमुद्रा, चक्राकार सनाल पद्म, पद्म-पुस्तक एव जलपात्र से युक्त है। खजुराहो के स्थानीय सग्रहालय की दो मूर्तियो मे सामान्य लक्षणोवाली द्विभुजा यक्षी का दाहिना हाथ अभयमुद्रा मे तथा बाया कार्मुक धारण किये हुए या जानु पर स्थित है।

विश्लेषण

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि शिल्प मे यक्षी का पारम्परिक स्वरूप मे अकन नही किया गया। स्वतन्त्र लक्षणो वाली यक्षी के निरूपण का प्रयास भी केवल दिगंबर स्थलो की ही कुछ जिन-सयुक्त मूर्तियो मे दृष्टिगत होता है। ऐसी मूर्तिया देवगढ, ग्यारसपुर एव खजुराहो से मिली हैं। स्वतन्त्र लक्षणो वाली चतुर्भुजा यक्षी के दो हाथो मे दो पद्म, या एक मे पद्म और दूसरे मे पुस्तक प्रदर्शित है। दिगंबर स्थलो पर यक्षी के करो मे पद्म एव पुस्तक का प्रदर्शन श्वेतांवर प्रभाव है।

---

१ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०६

२ जि०इ०दे०, पृ० १०३, १०६

३ महाविद्या नरदत्ता का वाहन महिष है और उसके मुख्य आयुध खड्ग एव खेटक हैं।

४ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२

५ मथुरा एव इलाहाबाद सग्रहालयो तथा देवगढ (मन्दिर ८) की तीन मूर्तियो मे यक्षी अम्बिका है।

(१७) गन्धर्व यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

गन्धर्व जिन कुथुनाथ का यक्ष है। श्वेतावर परम्परा मे गन्धर्व का वाहन हस और दिगंवर परम्परा मे पक्षी (या शुक) है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे चतुर्भुज गन्धर्व का वाहन हस है और उसके दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा एवं पाश और वायें मे मातुलिंग एवं अंकुश हैं।[१] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही आयुधों के उल्लेख हैं।[२] **आचारदिनकर** मे यक्ष का वाहन सितपत्र है।[३] **देवतामूर्तिप्रकरण** मे पाश के स्थान पर नागपाश एव वाहन के रूप मे सिंह (?) का उल्लेख है।[४]

दिगबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह के अनुसार चतुर्भुज गन्धर्व पक्षियान पर आरूढ है। ग्रन्थ मे आयुधो का अनुल्लेख है।[५] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे पक्षियान पर आरूढ गन्धर्व के करो मे सर्प, पाश, बाण और धनुष वर्णित हैं।[६] **अपराजितपृच्छा** मे वाहन शुक है और हाथो के आयुध पद्म, अभयमुद्रा, फल एव वरदमुद्रा हैं।[७]

जैन गन्धर्व की मूर्तिविज्ञानपरक विशेषताए जैनो की मौलिक कल्पना है।[८]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर ग्रन्थ मे मृग पर आरूढ चतुर्भुज यक्ष के दो हाथो मे सर्प और शेष मे शर (या शूल) एव चाप प्रदर्शित हैं। अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे रथ पर आरूढ चतुर्भुज यक्ष के करो मे शर, चाप, पाश एवं पाश का वर्णन है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे पक्षियान पर अवस्थित यक्ष के हाथो मे शर, चाप, पाश एव पाश हैं।[९] इस प्रकार स्पष्ट है कि दक्षिण भारत के श्वेतावर परम्परा के विवरण उत्तर भारतीय दिगवर परम्परा के समान हैं।[१०]

गन्धर्व यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। कुंथुनाथ की दो मूर्तियो मे भी पारम्परिक यक्ष के स्थान पर सर्वानुभूति निरूपित है। ये मूर्तिया क्रमशः राजपूताना सग्रहालय, अजमेर एवं विमलवसही की देवकुलिका ३५ मे हैं।

---

१ गन्धर्वयक्ष श्यामवर्णं हसवाहनं चतुर्भुज वरदपाशान्वितदक्षिणभुज मातुलिंगाकुशाधिष्ठितवामभुज चेति। **निर्वाणकलिका** १८ १७

२ **त्रि०श०पु०च०** ६ १ ११६–१७, **पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट–कुन्थुनाथ** १८–१९, **मन्त्राधिराजकल्प** ३ ४१

३ **आचारदिनकर** ३३, पृ० १७५

४ कुन्थनाथस्य गन्ध(र्वोहिस ? र्व. सिंह) स्थ. श्यामवर्णभाक्।
वरद नागपाश चाकुश वै वीजपूरकम्॥ **देवतामूर्तिप्रकरण** ७ ४८

५ कुंथुनाथ जिनेन्द्रस्य यक्षो गन्धर्व संज्ञक।
पक्षियान समारूढ श्यामवर्ण. चतुर्भुज॥ **प्रतिष्ठासारसग्रह** ५ ५४

६ सनागपाशोर्ध्वकरद्वयोश्. करद्वयात्तेषुधनु सुनील।
गन्धर्वयक्षः स्तमकेतुमक्त पूजामुपैतुश्रितपक्षियान॥ **प्रतिष्ठामारोद्धार** ३ १४५
ऊर्द्धद्विहस्तोद्धृतनागपाशमधोद्विहस्तस्यितचापवाणम्। **प्रतिष्ठातिलकम्** ७ १७, पृ० ३३६

७ पद्माभयफलवरो गन्धर्व. स्याच्छुकासन.। **अपराजितपृच्छा** २२१.५२

८ जैन, शशिकान्त, 'सम कामन एलिमेन्ट्स इन दि जैन ऐण्ड हिन्दू पैन्थिआन्स–I–यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', **जैन एण्टि०**, ख० १८, अ० १, पृ० २१

९ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० २०६

१० दक्षिण भारत के ग्रन्थो मे सर्प के स्थान पर पाश का उल्लेख है।

(१७) वला (या जया) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

वला (या जया) जिन कुथुनाथ की यक्षी है। श्वेतावर परम्परा मे चतुर्भुजा वला[१] मयूरवाहना और दिगवर परम्परा मे चतुर्भुजा जया शूकरवाहना है।

श्वेतावर परम्परा—निर्वाणकलिका मे मयूरवाहना वला के दाहिने हाथो मे वीजपूरक एव शूल और बायें में मुषुण्डि (या मुषढी)[२] एव पद्म का वर्णन है।[३] आचारदिनकर एव देवतामूर्तिप्रकरण मे शूल के स्थान पर त्रिशूल का उल्लेख है।[४] आचारदिनकर मे दोनो वाम करो मे मुषुण्ढि के प्रदर्शन का निर्देश है। मन्त्राधिराजकल्प मे मुषुण्ढि के स्थान पर दो करो मे पद्म का उल्लेख है।[५]

दिगवर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे शूकरवाहना जया के हाथो मे शख, खड्ग, चक्र एव वरदमुद्रा का वर्णन है।[६] अपराजितपृच्छा मे जया को षड्भुजा बताया गया है और उसके हाथो मे वज्र, चक्र, पाश, अकुश, फल एव वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[७]

वला के साथ मयूरवाहन एव शूल का प्रदर्शन हिन्दू कौमारी या जैन महाविद्या प्रज्ञप्ति का प्रभाव है। जया के निरूपण मे शूकरवाहन एव हाथो में शख, खड्ग और चक्र का प्रदर्शन हिन्दू वाराही या बौद्ध मारीची से प्रभावित हो सकता है।[८]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर परम्परा मे चतुर्भुजा यक्षी मयूरवाहना है। यक्षी के दो ऊपरी हाथों में चक्र और शेष मे अभयमुद्रा एव खड्ग का उल्लेख है। आयुधो के सन्दर्भ मे उत्तर भारतीय दिगवर परम्परा का प्रभाव दृष्टिगत होता है। अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे द्विभुजा यक्षी का वाहन हस है और उसके हाथो मे वरदमुद्रा एव नीलोत्पल वर्णित हैं। यक्ष यक्षी-लक्षण मे कृष्ण शूकर पर आरूढ चतुर्भुजा यक्षी के करो मे उत्तर भारतीय दिगवर परम्परा के समान ही शख, खड्ग, चक्र एव वरदमुद्रा का उल्लेख है।[९]

---

१ श्वेतावर परम्परा मे यक्षी का अच्युता एव गाधारिणी नामो से भी उल्लेख हुआ है।

२ मुषुण्ढी स्याद् दारुमयी वृत्ताय कीलसचिता-इति हैमकोशे—निर्वाणकलिका, पृ० ३५। अर्थात् मुषुण्ढी काष्ठ निर्मित है जिसमे लोहे की कीलें लगी होती है।

३ वला देवीं गौरवर्णां मयूरवाहनां चतुर्भुजां वीजपूरकशूलान्वितदक्षिणभुजां मुषुण्ढिपद्मान्वितवामभुजां चेति। निर्वाणकलिका १८ १७, द्रष्टव्य, त्रि०श०पु०च० ७ १ ११८–१९, पद्मानन्दमहाकाव्य–परिशिष्ट–कुन्थुनाथ १९–२०

४ शिखिगा सुचतुर्भुजाऽतिपीता फलपूर दधतीत्रिशूलयुक्तम्।
करयोरपसव्ययोश्च सव्ये करयुग्मे तु भृशुण्डिभृद्वलाऽव्यात्॥ आचारदिनकर ३४, पृ० १७७
गौरवर्णा मयूरस्था वीजपूरत्रिशूलिने।
(पद्मभुषधिका ?) चैव स्याद् वला नाम यक्षिणी॥ देवतामूर्तिप्रकरण ७ ४९

५ गान्धारिणी शिखिगति कील वीजपूरशूलान्वितोत्पलयुग्-द्विकरेन्दुगौरा। मन्त्राधिराजकल्प ३.६१

६ जयदेवी सुवर्णाभा कृष्णशूकरवाहना।
शखासिचक्रहस्ताभो वरदाधर्मवत्सला॥ प्रतिष्ठासारसग्रह ५ ५५
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १७१, प्रतिष्ठातिलकम् ७ १७, पृ० ३४५

७ वज्रचक्रे पाशाकुशौ फल च वरदं जया।
कनकाभा षड्भुजा च कृष्णशूकरसस्थिता॥ अपराजितपृच्छा २२१ ३१

८ भट्टाचार्य, बी०सी०, पू०नि०, पृ० १३८ ९ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०६

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तिया मिली हैं। ये मूर्तिया देवगढ (मन्दिर १२,८६२ ई०) एव वारभुजी गुफा के सामूहिक अंकनो में उत्कीर्ण हैं। देवगढ मे कुंथुनाथ के साथ चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है।[1] यक्षी के तीन करो मे चक्र (छल्ला), पद्म एव नरमुण्ड प्रदर्शित हैं और एक कर जानु पर स्थित है। यक्षी का वाहन नर है जो देवी के समीप भूमि पर लेटा है। ज्ञातव्य है कि श्वेतावर परम्परा की ८वी महाविद्या महाकाली को नरवाहना वताया गया है। पर यक्षी के आयुध महाविद्या महाकाली से पूर्णत भिन्न हैं। अत. नरवाहन और करो मे नरमुण्ड तथा चक्र के प्रदर्शन के आधार पर हिन्दू महाकाली या चामुण्डा का प्रभाव स्वीकार करना अधिक उपयुक्त होगा।[2] वारभुजी गुफा की मूर्ति मे कुंथु की दशभुजा यक्षी महिषवाहना है। यक्षी के दक्षिण करो मे वरदमुद्रा, दण्ड, अकुश (?), चक्र एव अक्षमाला (?) और वाम मे तीन काटो वाला आयुध (त्रिशूल), चक्र, शख (?), पद्म एवं कलश प्रदर्शित हैं।[3] राजपूताना सग्रहालय, अजमेर एव विमलवसही (देवकुलिका ३५) की कुंथुनाथ की मूर्तियो मे यक्षी अम्बिका है।

(१८) यक्षेन्द्र (या खेन्द्र) यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

यक्षेन्द्र (या खेन्द्र) जिन अरनाथ का यक्ष है। दोनो परम्पराओ मे षण्मुख, द्वादशभुज एव त्रिनेत्र यक्षेन्द्र का वाहन शख वताया गया है।

श्वेतांवर परम्परा—निर्वाणकलिका मे शख पर आरुढ यक्षेन्द्र के दक्षिण करो मे मातुलिंग, वाण, खड्ग, मुद्गर, पाश, अभयमुद्रा और वाम मे नकुल, धनुष, खेटक, शूल, अकुश, अक्षसूत्र का वर्णन है।[4] **पद्मानन्दमहाकाव्य** मे वाम करो मे केवल पाच ही आयुधो के उल्लेख हैं जो चक्र, धनुष, शूल, अकुश एवं अक्षसूत्र है।[5] **मन्त्राधिराजकल्प** मे यक्ष को वृषभारूढ कहा गया है और उसके एक दाहिने हाथ मे पाश के स्थान पर शूल का उल्लेख है।[6] **आचारदिनकर** मे खेटक के स्थान पर स्फर मिलता है।[7] **देवतामूर्तिप्रकरण** मे यक्षेन्द्र का वाहन शेष है और उसके एक हाथ मे वाण के स्थान पर कपाल (शिरस्) के प्रदर्शन का निर्देश है।[8]

दिगंवर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे शखवाहन से युक्त खेन्द्र के करो के आयुधो का अनुल्लेख है।[9] **प्रतिष्ठा-सारोद्धार** मे यक्ष के वायें हाथो मे धनुष, वज्र, पाश, मुद्गर, अकुश और वरदमुद्रा वर्णित है। दाहिने हाथो के केवल तीन ही आयुधो का उल्लेख है जो वाण, पद्म एव फल हैं।[10] **प्रतिष्ठातिलकम्** मे दक्षिण करो मे वाण, पद्म एव अरुफल के

---

१ जि०इ०दे०, पृ० १०३

२ राव, टी०ए० गोपीनाथ, पू०नि०, पृ० ३५८,३८६

३ मिश्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२

४ यक्षेन्द्रयक्ष षण्मुख त्रिनेत्र श्यामवर्णं शखवाहन द्वादशभुजं मातुलिंगवाणखड्गमुद्गरपाशाभययुक्तदक्षिणपाणि नकुल-धनुश्चर्मफलकशूलाकुशाक्षसूत्रयुक्तवामपाणि चेति। निर्वाणकलिका १८ १८, द्रष्टव्य, त्रि०श०पु०च० ६ ५.९७–९८

५ पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—अरनाथ १७–१८

६ यक्षोऽसितो वृषगति. शरमातुलिंग शूलाभयासिकलमुद्गरपाणिषट्क शूलाकुशस्रगहिवैरिधनूंषि विभ्रद् वामेषु खेटकयुतानि हितानि दद्यात्। मन्त्राधिराजकल्प ३.४२

७ आचारदिनकर ३४, पृ० १७५

८ देवतामूर्तिप्रकरण ७.५०–५१

९ अरस्यजिननाथस्य खेन्द्रो यक्षस्त्रिलोचन ।
द्वादशोरुभुजा. श्याम. षण्मुख. शखवाहन. ।। प्रतिष्ठासारसग्रह ५ ५६

१० आरभ्योपरिमात्करेषु कलयन् वामेषु चाप पविं पाश मुद्गरमकुश च वरद षष्ठेन युजन् परैं ।
वाणाभोजफलस्त्रगच्छपटलीलीलाविलासास्त्रिदृक् षड्वक्त्रेष्टगराकमक्तिरसित खेन्द्रोर्च्यते शखग ।।
प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १४६

साथ ही माला (पुष्पहार), अक्षमाला एव लीलामुद्रा के प्रदर्शन का उल्लेख है ।[1] अपराजितपृच्छा में यक्षेश षड्भुज है और उसका वाहन खर है । यक्ष के करों मे वज्र, चक्र (अरि), धनुष, वाण, फल एव वरदमुद्रा का वर्णन है ।[2]

यक्ष के निरूपण मे हिन्दू कार्तिकेय एव इन्द्र के सयुक्त प्रभाव देखे जा सकते हैं । यक्ष का षण्मुख होना कार्तिकेय का और दिगवर परम्परा मे यक्ष की भुजाओ मे वज्र एव अकुश का प्रदर्शन इन्द्र का प्रभाव दरशाता है ।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर ग्रन्थ में षण्मुख एव द्वादशभुज खेन्द्र का वाहन मयूर है । ग्रन्थ मे केवल छह हाथो के आयुध वर्णित हैं । यक्ष के दो हाथ गोद मे हैं और अन्य चार मे कमान (क्रुक), उरग तथा अभय-और-कटक मुद्राओ का उल्लेख है । अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे द्विभुज यक्ष का नाम जय है और उसके हाथो के आयुध त्रिशूल एव दण्ड हैं । **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे, द्वादशभुज यक्ष के करो मे उत्तर भारतीय दिगवर परम्परा के समान कार्मुक, वज्र, पाश, मुद्गर, अकुश, वरदमुद्रा, शर, पद्म, फल, स्रुक, पुष्पहार एव अक्षमाला वर्णित हैं ।[3]

यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है । राज्य सग्रहालय, लखनऊ की एक अरनाथ की मूर्ति (जे ८६१, १०वी शती ई०) मे द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है ।

(१८) धारणी (या तारावती) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

धारणी (या तारावती) जिन अरनाथ की यक्षी है । श्वेतावर परम्परा मे चतुर्भुजा धारणी (या काली) का वाहन पद्म है और दिगंवर परम्परा में चतुर्भुजा तारावती (या विजया) का वाहन हस है ।

श्वेतांवर परम्परा—निर्वाणकलिका मे पद्मवाहना धारणी के दाहिने हाथो मे मातुलिग एव उत्पल और बायें मे पाश एव अक्षसूत्र का वर्णन है ।[4] अन्य सभी ग्रन्थो मे पाश के स्थान पर पद्म का उल्लेख है ।[5]

दिगवर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे हसवाहना तारावती के करो मे सर्प, वज्र, मृग एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं ।[6] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही लक्षणो के उल्लेख हैं ।[7] केवल अपराजितपृच्छा मे चतुर्भुजा यक्षी का वाहन सिंह है और उसके दो हाथो मे मृग एव वरदमुद्रा के स्थान पर चक्र एवं फल के प्रदर्शन का निर्देश है ।[8] तारावती का स्वरूप, नाम एवं सर्प के प्रदर्शन के सन्दर्भ मे, बौद्ध तारा से प्रभावित प्रतीत होता है ।[9]

---

१ वाणाम्बुजोरुफलमाल्यमहाक्षमालालीलायजाम्यरमित त्रिदशं च खेन्द्रं । प्रतिष्ठातिलकम् ७ १८, पृ० ३३६
२ यक्षेट् खरस्थो वज्रारिधनुर्वाणा फल वर । अपराजितपृच्छा २२१ ५३
३ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०६–२०७
४ धारणी देवी कृष्णवर्णां चतुर्भुजा मातुलिगोत्पलान्वितदक्षिणभुजा पाशाक्षसूत्रान्वितवामकरा चेति । निर्वाणकलिका १८ १८
५ त्रि०श०पु०च० ६ ५ ९९–१००, पद्मानन्दमहाकाव्य परिशिष्ट—अरनाथ १९, आचारदिनकर ३४, पृ० १७७, देवतामूर्तिप्रकरण ७.५२
६ देवी तारावती नाम्ना हेमवर्णाश्चतुर्भुजा ।
सर्पवज्र मृग धत्ते वरदा हसवाहना ॥ प्रतिष्ठासारसग्रह ५ ५७
७ स्वर्णाभा हसगा सर्पमृगवज्रवरोद्धराम् । प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १७२, द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७ १८, पृ० ३४६
८ सिंहासना चतुर्बाहुर्वज्रचक्रफलोरगा ।
तेजोवती स्वर्णवर्णा नाम्ना सा विजयामता ॥ अपराजितपृच्छा २२१ ३२
९ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० १३९

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे चतुर्भुजा यक्षी का वाहन हंस है और उसकी ऊपरी भुजाओ मे सर्प एवं निचली मे अभयमुद्रा एवं शक्ति का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे वृषभवाहना यक्षी (विजया) षण्मुखा एवं द्वादशभुजा है जिसके करो मे खड्ग, खेटक, शर, चाप, चक्र, अंकुश, दण्ड, अक्षमाला, वरदमुद्रा, नीलोत्पल, अभयमुद्रा और फल का वर्णन है। यक्षी का स्वरूप यक्षेन्द्र (१८वा यक्ष) से प्रभावित है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे हंसवाहना विजया चतुर्भुजा है और उसके हाथो मे उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान सर्प, वज्र, मृग एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं।[1]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तिया देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के समूहो मे उत्कीर्ण हैं। देवगढ मे अरनाथ के साथ 'तारादेवी' नाम की द्विभुजा यक्षी निरूपित है।[2] यक्षी की दाहिनी भुजा जानु पर स्थित है और बायी मे पद्म है। बारभुजी गुफा की मूर्ति मे भी यक्षी द्विभुजा है और उसका वाहन सम्भवत. गज है। यक्षी के करो मे वरदमुद्रा एवं सनाल पद्म प्रदर्शित हैं।[3] उपर्युक्त दोनो मूर्तियो मे यक्षी की एक भुजा मे पद्म का प्रदर्शन श्वेतांबर परम्परा से निर्देशित हो सकता है।[4] स्मरणीय है कि दोनो मूर्तिया दिगंबर स्थलो से मिली हैं। राज्य संग्रहालय, लखनऊ की जिन-संयुक्त मूर्ति मे द्विभुज यक्षी सामान्य लक्षणो वाली है।

(१९) कुबेर यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

कुबेर (या यक्षेश) जिन मल्लिनाथ का यक्ष है। दोनो परम्पराओ मे गजारूढ यक्ष को चतुर्मुख एवं अष्टभुज बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे गरुडवदन[5] कुबेर का वाहन गज है और उसके दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा, परशु, शूल एवं अभयमुद्रा तथा बायें मे बीजपूरक, शक्ति, मुद्गर एवं अक्षसूत्र का उल्लेख है।[6] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही लक्षणो का वर्णन है।[7] मन्त्राधिराजकल्प मे कुबेर को चतुर्मुख नही कहा गया है। **देवतामूर्तिप्रकरण** में रथारूढ कुबेर के केवल छह ही हाथो के आयुधो का उल्लेख है, फलस्वरूप शूल एवं अक्षसूत्र का अनुल्लेख है।[8]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे गजारूढ यक्षेश के आयुधो का अनुल्लेख है।[9] प्रतिष्ठासारोद्धारमे कुबेर के हाथो मे फलक, धनुष, दण्ड, पद्म, खड्ग, बाण, पाश एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[10] अपराजितपृच्छा

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०७
२ जि०इ०दे०, पृ० १०३, १०६
३ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२
४ पद्म का प्रदर्शन बौद्ध तारा का प्रभाव भी हो सकता है।
५ केवल निर्वाणकलिका मे ही यक्ष को गरुडवदन कहा गया है।
६ कुबेरयक्षं चतुर्मुखमिन्द्रायुधवर्णं गरुडवदनं गजावाहनं अष्टभुजं वरदपरशुशूलाभययुक्तदक्षिणपाणिं बीजपूरकशक्तिमुद्गराक्षसूत्रयुक्त-वामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.१९
(पा०टि० के अनुसार मूल ग्रन्थ मे वरद, पाश एवं चाप के उल्लेख हैं।)
७ त्रि०श०पु०च० ६.६ २५१–५२, पद्मानन्दमहाकाव्य–परिशिष्ट–मल्लिनाथ ५८–५९, मन्त्राधिराजकल्प ३.४३, आचारदिनकर ३४, पृ० १७५, मल्लिनाथचरित्रम् (विनयचन्द्रसूरिकृत) ७.११५४–११५६
८ देवतामूर्तिप्रकरण ७.५३
९ मल्लिनाथस्य यक्षेशः कुबेरो हस्तिवाहनः।
सुरेन्द्रचापवर्णोसावष्टहस्तश्चतुर्मुखः ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.५८
१० सफलकधनुर्दण्डपद्म खड्गप्रदरसुपाशवरप्रदाष्टपाणिम्।
गजगमनचतुर्मुखेन्द्र चापद्युतिकलशाकनतं यजेकुबेरम्॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१४७
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.१९, पृ० ३३७

मे यक्ष को चतुर्भुज और सिंह पर आरूढ बताया गया है और उसके करो मे पाश, अकुश, फल एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[१]

कुबेर के निरूपण मे नाम, गजवाहन एव मुद्गर के सन्दर्भ मे हिन्दू कुबेर का प्रभाव देखा जा सकता है।[२] पर जैन कुबेर की मूर्तिविज्ञानपरक दूसरी विशेषताए स्वतन्त्र एव मौलिक हैं।[३]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दोनो परम्परा के ग्रन्थो मे अष्टभुज कुबेर का वाहन गज है। दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्मुख यक्ष के दक्षिण करो मे खड्ग, शूल, कटार और अभयमुद्रा तथा वाम मे शर, चाप, बर्छी (या गदा) और कटक-मुद्रा (या कोई अन्य आयुध) के प्रदर्शन का विधान है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ के अनुसार चतुर्मुख कुबेर खड्ग, खेटक, बाण, धनुष, मातुलिंग, परशु, वरदमुद्रा और शण्डमुद्रा (?) से युक्त है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में यक्ष के करो मे खड्ग, खेटक, शर, चाप, पद्म, दण्ड, पाश एव वरदमुद्रा वर्णित हैं।[४] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय परम्पराए उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित हैं।

कुबेर यक्ष की कोई स्वतन्त्र या जिन-सयुक्त मूर्ति नही मिली है।

(१९) वैरोट्या (या अपराजिता) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

वैरोट्या (या अपराजिता) जिन मल्लिनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे चतुर्भुजा वैरोट्या[५] का वाहन पद्म है और दिगंबर परम्परा मे चतुर्भुजा अपराजिता का वाहन शरभ (या अष्टापद) है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे पद्मवाहना वैरोट्या के दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा एवं अक्षसूत्र और बायें मे मातुलिंग एव शक्ति का वर्णन है।[६] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही आयुधो के उल्लेख हैं।[७]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे अपराजिता का वाहन अष्टापद (शरभ) है और उसके तीन हाथो मे फल, खड्ग एव खेटक का उल्लेख है, चौथी भुजा की सामग्री का अनुल्लेख है।[८] अन्य ग्रन्थो में शरभवाहना यक्षी की चौथी भुजा मे वरदमुद्रा वर्णित है।[९]

---

१ पाशाङ्कुशफलवरा धनेट् सिंहे चतुर्मुख.। अपराजितपृच्छा २२१ ५३

२ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० ११३

३ जैन कुबेर के हाथ मे धन के थैले (नकुल के चर्म से निर्मित) का न प्रदर्शित किया जाना इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ज्ञातव्य है कि धन के थैले एव अंकुश और पाश से युक्त गजारूढ यक्ष का उल्लेख नेमिनाथ के सर्वानुभूति यक्ष के रूप मे किया गया है क्योकि नेमिनाथ की मूर्तियों मे अम्बिका के साथ यही यक्ष निरूपित है।

४ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०७

५ मन्त्राधिराजकल्प एव देवतामूर्तिप्रकरण मे यक्षी को क्रमश वनजात देवी और धरणप्रिया नामो से सम्बोधित किया गया है।

६ वैरोट्या देवीं कृष्णवर्णां पद्मासना चतुर्भुजा वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरा मातुलिंगशक्तियुक्तवामहस्ता चेति। निर्वाणकलिका १८.१९

७ त्रि०श०पु०च० ६ ६.२५३–५४, पद्मानन्दमहाकाव्य परिशिष्ट—मल्लिनाथ ६०–६१, मन्त्राधिराजकल्प ३ ६२, देवतामूर्तिप्रकरण ७ ५४, आचारदिनकर ३४, पृ० १७७

८ अष्टापद समारूढा देवी नाम्नाऽपराजिता।
फलासिखेटहस्तासौ हरिद्वर्णा चतुर्भुजा॥ प्रतिष्ठासारसग्रह ५ ५९

९ शरभस्थार्च्यते खेटफलासिवरयुक् हरित्॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १७३
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७ १९, पृ० ३४६, अपराजितपृच्छा २२१ ३३

यक्षी वैरोट्या का नाम निश्चित ही १३वी महाविद्या वैरोट्या से ग्रहण किया गया है, पर यक्षी की लाक्षणिक विशेषताए महाविद्या से पूरी तरह भिन्न हैं। जैन परम्परा मे महाविद्या वैरोट्या को नागेन्द्र धरण की प्रमुख रानी बताया गया है। आचारदिनकर एव देवतामूर्तिप्रकरण मे यक्षी वैरोट्या को भी क्रमश नागाधिप की प्रियतमा और धरणप्रिया कहा गया है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगबर ग्रन्थ मे चतुर्भुजा अपराजिता का वाहन हस है और उसके ऊपरी हाथो मे खड्ग एवं खेटक और निचले मे अभय-एव-कटक मुद्राए वर्णित हैं। अज्ञातनाम श्वेताबर ग्रन्थ के अनुसार लोमडी पर आसीन यक्षी द्विभुजा और वरदमुद्रा एव सतर (पुष्प) से युक्त हैं। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में उत्तर भारतीय दिगबर परम्परा के अनुरूप शरभवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करो मे फल, खड्ग, फलक एव वरदमुद्रा का उल्लेख है।[1]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तिया मिली हैं। ये मूर्तिया देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एव बारभुजी गुफा के यक्षी समूहो मे उत्कीर्ण हैं। देवगढ मे मल्लिनाथ के साथ 'हीमादेवी' नाम की सामान्य स्वरूप वाली द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है।[2] यक्षी के दक्षिण हाथ मे कलश है और वाम भुजा जानु पर स्थित है। बारभुजी गुफा की मूर्ति मे अष्टभुजा यक्षी का वाहन कोई पशु (सम्भवत अश्व) है तथा उसके दक्षिण करो मे वरदमुद्रा, शक्ति, बाण, खड्ग और वाम मे शख (?), धनुष, खेटक, पताका प्रदर्शित हैं।[3] यक्षी का निरूपण परम्परासम्मत नही है।

(२०) वरुण यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

वरुण जिन मुनिसुव्रत का यक्ष है। दोनो परम्पराओ मे वृषभारूढ वरुण को जटामुकुट से युक्त और त्रिनेत्र बताया गया है।

श्वेताबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे वरुण यक्ष को चतुर्मुख एव अष्टभुज कहा गया है तथा वृषभारूढ यक्ष के दाहिने हाथो मे मातुलिंग, गदा, बाण, शक्ति एव बायें मे नकुलक, पद्म, धनुष, परशु का उल्लेख है।[4] दो ग्रन्थो मे पद्म के स्थान पर अक्षमाला का उल्लेख है।[5] **मन्त्राधिराजकल्प** मे वरुण को चतुर्मुख नही बताया गया है।[6] **आचारदिनकर** मे यक्ष को द्वादशलोचन कहा गया है।[7] **देवतामूर्तिप्रकरण** मे परशु के स्थान पर पाश के प्रदर्शन का निर्देश है।[8]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे वृषभारूढ वरुण अष्टानन एव चतुर्भुज है। ग्रन्थ मे आयुधो का अनुल्लेख है।[9] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे जटाकिरीट से शोभित चतुर्भुज वरुण के करो मे खेटक, खड्ग, फल एव वरदमुद्रा के

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०७

२ जि०इ०दे०, पृ० १०३, १०६

३ मिश्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२

४ वरुणयक्ष चतुर्मुख त्रिनेत्र धवलवर्णं वृषभवाहन जटामुकुटमण्डित अष्टभुज मातुलिंगगदाबाणशक्तियुतदक्षिणपाणि नकुलकपद्मधनु. परशुयुतवामपाणि चेति। **निर्वाणकलिका** १८ २०

५ त्रि०श०पु०च० ६ ७ १९४–९५, पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट—मुनिसुव्रत ४३–४४

६ **मन्त्राधिराजकल्प** ३ ४४

७ **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७५

८ **देवतामूर्तिप्रकरण** ७ ५५–५६

९ मुनिसुव्रतनाथस्य यक्षो वरुणसक्षकः।
त्रिनेत्रो वृषभारूढ. श्वेतवर्णश्चतुर्भुज ॥
अष्टाननो महाकायो जटामुकुटभूपित.। **प्रतिष्ठासारसग्रह** ५ ६०–६१

प्रदर्शन का विधान है।[1] अपराजितपृच्छा मे षड्भुज वरुण के करो मे पाश, अंकुश, कार्मुक, शर, उरग एव वज्र वर्णित है।[2]

यद्यपि वरुण यक्ष का नाम पश्चिम दिशा के दिक्पाल वरुण से ग्रहण किया गया पर उसकी लाक्षणिक विशेषताए दिक्पाल से भिन्न है।[3] वरुण यक्ष का त्रिनेत्र होना और उसके साथ वृषभवाहन और जटामुकुट का प्रदर्शन शिव का प्रभाव है। हाथो मे परशु एवं सर्प के प्रदर्शन भी शिव के प्रभाव का ही समर्थन करते हैं।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे सप्तमुख एव चतुर्भुज यक्ष के वाहन का अनुल्लेख है। यक्ष के दक्षिण करो मे पुष्प (पद्म) एव अभयमुद्रा और वाम में कटकमुद्रा एव खेटक वर्णित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे पंचमुख एव अष्टभुज वरुण का वाहन मकर है तथा यक्ष के करो मे खड्ग, खेटक, शर, चाप, फल, पाश, वरदमुद्रा एवं दण्ड का उल्लेख है। यक्ष-यक्षी-लक्षण मे उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप त्रिनेत्र एव चतुर्भुज यक्ष वृषभारूढ और हाथो मे खड्ग, वरदमुद्रा, खेटक एव फल से युक्त है।[4]

मूर्ति-परम्परा

ओसिया के महावीर मन्दिर (श्वेतांबर) के अर्धमण्डप के पूर्वी छज्जे पर एक द्विभुज देवता की मूर्ति है जिसमें वृषभारूढ देवता के दाहिने हाथ मे खड्ग है और बाया जानु पर स्थित है। वृषभवाहन एव खड्ग के आधार पर देवता की पहचान वरुण यक्ष से की जा सकती है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ७७६) एव विमलवसही (देवकुलिका ११ एव ३१) की मुनिसुव्रत की तीन मूर्तियो मे यक्ष सर्वानुभूति है।

(२०) नरदत्ता (या बहुरूपिणी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

नरदत्ता (या बहुरूपिणी) जिन मुनिसुव्रत की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे चतुर्भुजा नरदत्ता[5] भद्रासन पर विराजमान है। दिगंबर परम्परा मे चतुर्भुजा बहुरूपिणी का वाहन काला नाग है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे भद्रासन पर विराजमान यक्षी के दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा एवं अक्षसूत्र और बायें मे बीजपूरक एव कुम्भ वर्णित हैं।[6] समान लक्षणो का उल्लेख करने वाले अन्य ग्रन्थो मे कुम्भ के स्थान पर शूल

---

१ जटाकिरीटोऽष्टमुखस्त्रिनेत्रो वामान्यखेटासिफलेष्टदानः ।
कूर्मांकनागो वरुणो वृषस्थः श्वेतो महाकायऽर्पतु तुष्टिम् ॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१४८
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.२०, पृ० ३३७

२ पाशाङ्कुश धनुर्बाण सर्पवज्रा गजासनः । अपराजितपृच्छा २२१.५४

३ अपराजितपृच्छा मे वरुण यक्ष को जल का स्वामी (अपांपति) भी बताया गया है।

४ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०७

५ निर्वाणकलिका एवं देवतामूर्तिप्रकरण मे यक्षी को वरदत्ता, आचारदिनकर एव प्रवचनसारोद्धार मे अच्छुप्ता और मन्त्राधिराजकल्प म सुगन्धि नामो से सम्बोधित किया गया है।

६ वरदत्ता देवीं गौरवर्णां भद्रासनारूढां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुतदक्षिणकरां बीजपूरककुम्भयुतवामहस्तां चेति ।
निर्वाणकलिका १८.२०

का निर्देश है ।[1] **देवतामूर्तिप्रकरण** मे चतुर्भुजा यक्षी का वाहन सिंह है और उसके एक हाथ मे कुम्भ के स्थान पर त्रिशूल का उल्लेख है ।[2]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे काले नाग पर आरूढ वहुरूपिणी के तीन करो मे खेटक, खड्‌ग एव फल हैं, चौथी भुजा के आयुध का अनुल्लेख है ।[3] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे चौथे हाथ मे वरदमुद्रा का उल्लेख है ।[4] **अपराजितपृच्छा** मे वहुरूपा द्विभुजा और खड्‌ग एवं खेटक से युक्त है ।[5]

श्वेतावर परम्परा मे नरदत्ता एव अच्छुप्ता के नाम क्रमशः छठी और १४ वी जैन महाविद्याओ से ग्रहण किये गये । पर उनकी मूर्तिविज्ञानपरक विशेषताए स्वतन्त्र हैं । दिगंबर परम्परा मे वहुरूपिणी यक्षी के साथ सर्पवाहन एवं खड्‌ग और खेटक का प्रदर्शन १३ वी जैन महाविद्या वैरोट्या से प्रभावित है ।[6]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर ग्रन्थ मे चतुर्भुजा वहुरूपिणी का वाहन उरग है और उसके ऊपरी करो मे खड्‌ग, खेटक एव निचले में अभय-और-कटक मुद्राए वर्णित हैं । अज्ञातनाम श्वेतांवर ग्रन्थ मे मयूरवाहना विद्या द्विभुजा और करो मे खड्‌ग एव खेटक धारण किये है । **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे सर्पवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करो मे खेटक, खड्‌ग, फल एव वरदमुद्रा वर्णित हैं ।[7] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत की दोनो परम्पराओ एव उत्तर भारतीय दिगंवर परम्परा के विवरणो मे पर्याप्त समानता है ।

मूर्ति-परम्परा

वहुरूपिणी की दो स्वतन्त्र मूर्तिया क्रमश. देवगढ (मन्दिर १२,८६२ई०) एव् वारभुजी गुफा के सामूहिक अकनो मे उत्कीर्ण हैं । देवगढ मे मुनिसुव्रत के साथ 'सिधइ' नाम की चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है ।[8] पद्मवाहना यक्षी के तीन हाथो में शृंखला, अभय-पद्म (या पाश) और पद्म[9] प्रदर्शित हैं । चौथी भुजा जानु पर स्थित है । यक्षी के साथ पद्म वाहन एव करो मे शृङ्खला और पद्म का प्रदर्शन जैन महाविद्या वज्रशृङ्खला का प्रभाव है ।[10] वारभुजी गुफा की मूर्ति मे मुनिसुव्रत की द्विभुजा यक्षी को शय्या पर लेटे हुए प्रदर्शित किया गया है । यक्षी के समीप तीन सेवक और शय्या के नीचे

---

१ समातुलिंगशूलाभ्या वामदोर्म्यां च शोभिता । त्रि०श०पु०च० ६ ७ १९६–९७, द्रष्टव्य, **पद्मानन्दमहाकाव्य :** परिशिष्ट–मुनिसुव्रत ४५–४६, आचारदिनकर ३४, पृ० १७७, मन्त्राधिराजकल्प ३ ६३

२ वरदत्ता गौरवर्णा सिंहारूढा सुशोभना ।
वरद चाक्षसूत्रं त्रिशूल च वीजपूरकम् ।। देवतामूर्तिप्रकरण ७ ५७

३ कृष्णनागसमारूढा देवता वहुरूपिणी ।
खेट खड्‌ग फल धत्ते हेमवर्णा चतुर्भुजा ।। प्रतिष्ठासारसग्रह ५ ६१–६२

४ यजे कृष्णाहिगा खेटकफलखड्‌गवरोत्तराम् । प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१७४
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७ २०, पृ० ३४६

५ द्विभुजा स्वर्णवर्णा च खड्‌गखेटक धारिणी ।
सर्पासना च कर्तव्या वहुरूपा सुखावहा ।। अपराजितपृच्छा २२१ ३४

६ श्वेतावर परम्परा मे उरगवाहना महाविद्या वैरोट्या के हाथो मे सर्प, खेटक, खड्‌ग एवं सर्प के प्रदर्शन का निर्देश दिया गया है ।

७ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०८

८ जि०इ०दे०, पृ० १०३

९ पद्म त्रिशूल जैसा दीख रहा है ।

१० जैन ग्रन्थो मे वज्रशृखला महाविद्या को पद्मवाहना और दो हाथो मे शृखला तथा शेष मे वरदमुद्रा एव पद्म से युक्त वताया गया है ।

कलश उत्कीर्ण है ।[1] यहा उल्लेखनीय है कि दिगबर स्थलो[2] की चार अन्य जिन मूर्तियो (९वी-१२वी शती ई०) मे मूलनायक की आकृति के नीचे एक स्त्री को ठीक इसी प्रकार शय्या पर विश्राम करते हुए आमूर्तित किया गया है ।[3] देवला मित्रा ने तीन उदाहरणो मे मुनिसुव्रत के साथ निरूपित उपर्युक्त स्त्री आकृति की पहचान मुनिसुव्रत की यक्षी से की है ।[4]

राज्य सग्रहालय, लखनऊ एव विमलवसही की मुनिसुव्रत की तीन मूर्तियो मे यक्षी के रूप मे अम्बिका निरूपित है ।

(२१) भृकुटि यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

भृकुटि जिन नमिनाथ का यक्ष है । दोनो परम्पराओ मे वृषमारूढ भृकुटि को चतुर्मुख एव अष्टभुज कहा गया है ।

श्वेताबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे त्रिनेत्र और चतुर्मुख भृकुटि का वाहन वृषभ है । भृकुटि के दाहिने हाथो मे मातुलिंग, शक्ति, मुद्गर, अभयमुद्रा एव बायें मे नकुल, परशु, वज्र, अक्षसूत्र का उल्लेख है ।[5] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही लक्षणो के प्रदर्शन का निर्देश है ।[6] आचारदिनकर मे द्वादशाक्ष यक्ष की भुजा मे अक्षमाला के स्थान पर मौक्तिकमाला का उल्लेख है ।[7] **देवतामूर्तिप्रकरण** मे चार करो मे मातुलिंग, शक्ति, मुद्गर एवं अभयमुद्रा वर्णित है, शेष करो के आयुधो का अनुल्लेख है ।[8]

दिगबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसग्रह** मे चतुर्मुख भृकुटि का वाहन नन्दी है, किन्तु आयुधो का अनुल्लेख है ।[9] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे यक्ष के करो मे खेटक, खड्ग, धनुष, बाण, अकुश, पद्म, चक्र एवं वरदमुद्रा वर्णित है ।[10] **अपराजितपृच्छा**

---

१ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२

२ वजरामठ (ग्यारसपुर), वैभार पहाडी (राजगिर), आशुतोष सग्रहालय, कलकत्ता, पी०सी० नाहर सग्रह, कलकत्ता । वैभार पहाडी एवं आशुतोष सग्रहालय की जिन मूर्तियो मे मुनिसुव्रत का कूर्मलाछन भी उत्कीर्ण है । द्रष्टव्य, जै०क०स्था०, ख० १, पृ० १७२

३ स्त्री के समीप कोई बालक आकृति नही उत्कीर्ण है, अत इसे जिन की माता का अकन नही माना जा सकता है । फिर माता का जिन मूर्तियो के पादपीठो पर जिनो के चरणो के नीचे अकन भारतीय परम्परा के विरुद्ध भी है । दूसरी ओर बारभुजी गुफा मे यक्षियो के समूह मे मुनिसुव्रत के साथ इस देवी का चित्रण उसके यक्षी होने का सूचक है ।

४ मित्रा, देवला, 'आइकानोग्राफिक नोट्स', ज०ए०सो०ब०, ख० १, अ० १, पृ० ३७–३९

५ भृकुटियक्ष चतुर्मुख त्रिनेत्र हेमवर्णं वृषभवाहनं अष्टभुज मातुलिगशक्तिमुद्गराभययुक्तदक्षिणपाणि नकुलपरशुवज्राक्षसूत्रवामपाणि चेति । निर्वाणकलिका १८ २१

६ त्रि०श०पु०च० ७ ११ ९८–९९, पद्मानन्दमहाकाव्य परिशिष्ट–नमिनाथ १८–१९, मन्त्राधिराजकल्प ३ ४५

७ आचारदिनकर ३४, पृ० १७५

८ भृकुटि (नेमि ? नमि) नाथस्य पीतस्त्र्यक्षश्चतुर्मुखः ।
वृषवाहो मातुलिग शक्तिश्च मुद्गराभयौ ॥ देवतामूर्तिप्रकरण ७ ५८

९ नमिनाथजिनेन्द्रस्य यक्षो भृकुटिसज्ञक ।
अष्टबाहुश्चतुर्वक्त्रो रक्ताभो नन्दिवाहन ॥ प्रतिष्ठासारसग्रह ५ ६३

१० खेटासिकोदण्डशराकुशाब्जचक्रेष्टदानोल्लसिताष्टहस्तम् ।
चतुर्मुख नन्दिगमुत्फलाकमक्त जपाभ भृकुटि यजामि ॥
प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १४९ । द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७ २१, पृ० ३३७

मे यक्ष के केवल पाच ही करो के आयुध उल्लिखित है, जो शूल, शक्ति, वज्र, खेटक एव डमरु हैं।[1] उल्लेखनीय है कि दिगंबर परम्परा मे यक्ष को त्रिनेत्र नही बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा मे भृकुटि का त्रिनेत्र होना और उसके साथ वृषभवाहन एवं परशु का प्रदर्शन शिव का प्रभाव प्रतीत होता है। दिगंबर परम्परा मे भी भृकुटि का वाहन नन्दी ही है। हिन्दू ग्रन्थो मे शिव के भृकुटि स्वरूप ग्रहण करने का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[2]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे वृषभारूढ यक्ष को चतुर्मुख एव अष्टभुज बताया गया है जिसके दक्षिण करो मे खड्ग, बर्छी (या शकु), पुष्प, अभयमुद्रा एव वाम में फलक, कार्मुक, शर, कटकमुद्रा वर्णित हैं। अज्ञात-नाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे यक्ष चतुर्मुख एवं अष्टभुज है, पर उसका नाम विद्युत्प्रभ बताया गया है। उसका वाहन हस है और उसके करो मे असि, फलक, इषु, चाप, चक्र, अकुश, वरदमुद्रा एव पुष्प का उल्लेख है। समान लक्षणो का उल्लेख करने वाले **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे यक्ष का वाहन वृषभ है और एक हाथ मे पुष्प के स्थान पर पद्म प्राप्त होता है।[3] दक्षिण भारत के दोनो परम्पराओ के विवरण सामान्यत उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान हैं।

भृकुटि की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। लूणवसही की देवकुलिका १९ की नमिनाथ की मूर्ति (१२३३ ई०) मे यक्ष सर्वानुभूति है।

(२१) गान्धारी (या चामुण्डा) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

गान्धारी (या चामुण्डा) जिन नमिनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे चतुर्भुजा गान्धारी (या मालिनी) का वाहन हंस और दिगंबर परम्परा मे चामुण्डा (या कुसुममालिनी) का वाहन मकर है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे हसवाहना गान्धारी के दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा, खड्ग एव बायें मे बीजपूरक, कुम्भ (या कुत ?) का उल्लेख है।[4] **प्रवचनसारोद्धार, मन्त्राधिराजकल्प** एव **आचारदिनकर** मे कुम्भ के स्थान पर क्रमश. शूल, फलक एव शकुन्त के उल्लेख है।[5] दो ग्रन्थो मे वाम करो मे फल के प्रदर्शन का निर्देश है।[6] **देवतामूर्ति-प्रकरण** मे हसवाहना यक्षी अष्टभुजा हैं और अक्षमाला, वज्र, परशु, नकुल, वरदमुद्रा, खड्ग, खेटक एव मातुलिंग (लुग) से युक्त है।[7]

---

१ शूलशक्ति वज्रखेटा ? डमरुर्भृकुटिस्तथा। अपराजितपृच्छा २२१ ५४

२ रचित भृकुटिबन्ध नन्दिना द्वारि रुद्धे। हरिविलास। द्रष्टव्य, भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० ११५

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०८

४ नमेगान्धारी देवी श्वेता हसवाहना चतुर्भुजा वरदखड्गयुक्तदक्षिणभुजद्वया बीजपूरकुम्भ-(कुन्त ?)-युतवामपाणिद्वया चेति। निर्वाणकलिका १८ २१

५ प्रवचनसारोद्धार २१, पृ० ९४, मन्त्राधिराजकल्प ३ ६३, आचारदिनकर ३४, पृ० १७७। शकुन्त पक्षी एव कुन्त दोनो का सूचक हो सकता है।

६ वामाभ्या बीजपूरिभ्या बाहुभ्यामुपशोभिता। त्रि०श०पु०च० ७ ११ १००–१०१, द्रष्टव्य, पद्मानन्दमहाकाव्य परिशिष्ट—नमिनाथ २०–२१

७ अक्षवज्रपरशुनकुल भथानस्तु गान्धारी यक्षिणी।
वरखड्गखेट लुग हंसारूढास्तिता कायो॥ देवतामूर्तिप्रकरण ७ ५९

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारोद्धार मे मकरवाहना चामुण्डा चतुर्भुजा है और उसके करो मे दण्ड (यष्टि), खेटक, अक्षमाला एव खड्ग के प्रदर्शन का उल्लेख है।[1] अपराजितपृच्छा मे चामुण्डा अष्टभुजा और उसका वाहन मर्कट है। उसके हाथो मे शूल, खड्ग, मुद्गर, पाश, वज्र, चक्र, डमरू एवं अक्षमाला वर्णित हैं।[2]

नमि की चामुण्डा एव गान्धारी यक्षियो के निरूपण मे वासुपूज्य की गान्धारी एव चण्डा यक्षियो के वाहन (मकर) एव आयुध (शूल) का परस्पर आदान-प्रदान हुआ है। वासुपूज्य की गान्धारी एव नमि की चामुण्डा मकरवाहना है और नमि की गान्धारी एव वासुपूज्य की चण्डा की एक भुजा मे शूल प्रदर्शित है। चामुण्डा का एक नाम कुसुममालिनी भी है, जिसे हिन्दू कुसुममाली या काम से सम्बन्धित किया जा सकता है। ज्ञातव्य है कि कुसुममाली या काम का वाहन मकर है।[3]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे चतुर्भुजा यक्षी मकरवाहना है और उसके दक्षिण करो मे अक्षमाला एवं खड्ग (या अभयमुद्रा) और वाम मे दण्ड एव कटकमुद्रा उल्लिखित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे वरदमुद्रा एव पद्म धारण करनेवाली यक्षी द्विभुजा और उसका वाहन हस है। *यक्ष-यक्षी-लक्षण* मे उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप मकरवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करो मे खड्ग, दण्ड, फलक एव अक्षसूत्र दिये गये हैं।[4]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तिया मिली हैं। ये मूर्तिया देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एव बारभुजी गुफा के समूहो मे उत्कीर्ण हैं। देवगढ मे नमिनाथ के साथ सामान्य लक्षणो वाली द्विभुजा यक्षी उत्कीर्ण है। यक्षी के दाहिने हाथ मे कलश है और बाया हाथ जानु पर स्थित है।[5] बारभुजी गुफा की मूर्ति मे नमि की यक्षी त्रिमुखी, चतुर्भुजा एव हसवाहना है जिसके करों मे वरदमुद्रा, अक्षमाला, त्रिदण्डी एव कलश प्रदर्शित हैं। यक्षी का निरूपण हिन्दू ब्रह्माणी से प्रभावित है।[6] लूणवसही की जिन-सयुक्त मूर्ति मे यक्षी अम्बिका है।

(२२) गोमेध यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

गोमेध जिन नेमिनाथ का यक्ष है। दोनो परम्पराओ मे त्रिमुख एवं षड्भुज गोमेध का वाहन नर (या पुष्प) बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे नर पर आरूढ गोमेध के दक्षिण करो मे मातुलिंग, परशु और चक्र तथा वाम मे नकुल,[7] शूल और शक्ति का उल्लेख है।[8] अन्य ग्रन्थो मे भी यही लक्षण वर्णित हैं।[9] आचारदिनकर मे गोमेध के समीप ही अम्बिका (अम्बक) के अवस्थित होने का उल्लेख है।

---

१ चामुण्डा यष्टिखेटाक्षसूत्रखड्गोत्कटा हरित्।
मकरस्थार्च्यते पञ्चदशदण्डोन्नतेशभाक्॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३ १७५, द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७ २१, पृ० ३४७

२ रक्तामाष्टभुजा शूलखड्गौ मुद्गरपाशकौ।
वज्रचक्रे डमर्वक्षौ चामुण्डा मर्कटासना॥ अपराजितपृच्छा २२१ ३५

३ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० १४२

४ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०८

५ जि०इ०दे०, पृ० १०२, १०६

६ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२

७ ज्ञातव्य है कि मूर्तियो मे नेमिनाथ के यक्ष की एक भुजा मे धन के थैले का नियमित प्रदर्शन हुआ है। धन का थैला नकुल के चर्म से निर्मित है।

८ गोमेधयक्ष त्रिमुख श्यामवर्णं पुरुषवाहन षड्भुज मातुलिंगपरशुचक्रान्वितदक्षिणपाणि नकुलकशूलशक्तियुतवामपाणि चेति। निर्वाणकलिका १८ २२

९ त्रि०श०पु०च० ८ ९ ३८३–८४; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—नेमिनाथ ५५–५६, मन्त्राधिराजकल्प ३ ४६, देवतामूर्तिप्रकरण ७ ६०, अचारदिनकर ३४, पृ० १७५

दिगम्बर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसग्रह** मे गोमेध का वाहन पुष्प कहा गया है किन्तु आयुधो का अनुल्लेख है।[1] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे वाहन नर है और हाथो के आयुध मुद्गर (द्रुघण), परशु, दण्ड, फल, वज्र एव वरदमुद्रा है।[2] **प्रतिष्ठातिलकम्** मे द्रुघण के स्थान पर धन के प्रदर्शन का निर्देश है[3] जिसके कारण ही मूर्तियो मे नेमि के यक्ष की एक भुजा मे धन का थैला प्रदर्शित हुआ।

गोमेध के नरवाहन एव पुष्पयान को हिन्दू कुवेर का प्रभाव माना जा सकता है जिसका वाहन नर है और रथ पुष्प या पुष्पकम है। यही पुष्पक अन्तत राम ने रावण से प्राप्त किया था।[4] वाहन के अतिरिक्त गोमेध पर हिन्दू कुवेर का अन्य कोई प्रभाव नही है।[5]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर ग्रन्थ मे त्रिमुख एव षड्भुज सर्वाण्ह का वाहन लघु मन्दिर है। यक्ष के दक्षिण करो मे शक्ति, पुष्प, अभयमुद्रा एव वाम मे दण्ड, कुठार, कटकमुद्रा वर्णित हैं। अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे त्रिमुख एव षड्भुज यक्ष का वाहन नर है तथा उसके करो मे कशा, मुद्गर, फल, परशु, वरदमुद्रा एव दण्ड के प्रदर्शन का निर्देश है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे गोमेध चतुर्भुज है और उसके हाथो मे अभयमुद्रा, अकुश, पाश एव वरदमुद्रा वर्णित हैं। यक्ष का चिह्न पुष्प है और शीर्षभाग मे धर्मचक्र का उल्लेख है। वाहन गज है।[6] दक्षिण भारत के प्रथम दो ग्रन्थो के विवरण सामान्यत उत्तर भारतीय दिगवर परम्परा से मेल खाते हैं, पर **यक्ष-यक्षी-लक्षण** का विवरण स्वतन्त्र है।[7]

मूर्ति-परम्परा

मूर्तियों में नेमिनाथ के साथ नर पर आरूढ त्रिमुख और षड्भुज पारम्परिक यक्ष कभी नही निरूपित हुआ। मूर्तियो मे नेमि के साथ सदैव गजारूढ सर्वानुभूति (या कुवेर)[8] आमूर्तित है। सर्वानुभूति का श्वेतावर स्थलो पर चतुर्भुज और दिगवर स्थलो पर द्विभुज रूपो मे निरूपण उपलब्ध होता है। दिगवर स्थलो (देवगढ, सहेठमहेठ, खजुराहो) की नेमिनाथ की मूर्तियो मे कभी-कभी सर्वानुभूति एव अम्बिका के स्थान पर सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी भी उत्कीर्णित हैं। सर्वानुभूति के हाथ मे धन के थैले का प्रदर्शन सभी क्षेत्रो मे लोकप्रिय था।[9] पर गजवाहन एव करो मे पाश और अकुश के प्रदर्शन केवल श्वेतावर स्थलो पर ही दृष्टिगत होते है। सर्वानुभूति की सर्वाधिक स्वतन्त्र मूर्तिया गुजरात एव राजस्थान के श्वेतावर स्थलो से मिली हैं।

---

१ नेमिनाथजिनेन्द्रस्य यक्षो गोमेधनामभाक्।
श्यामवर्णस्त्रिवक्त्रश्च पट्हस्त पुष्पवाहन ॥ **प्रतिष्ठासारसग्रह** ५ ६५

२ श्यामस्त्रिवक्त्रो द्रुघण कुठार दण्ड फल वज्रवरौ च विभ्रत्।
गोमेदयक्ष क्षितशखलक्ष्मापूजा नृवाहोऽर्हतु पुष्पयान ॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३ १५०

३ धन कुठार च विभ्र्ति दण्ड सव्यै फलैर्वज्रवरौ च योऽन्यै । **प्रतिष्ठातिलकम्** ७ २२, पृ० ३३७

४ वनर्जी, जे० एन०, पू०नि०, पृ० ५२८–३९, भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० ११५–१६

५ केवल एक ग्रन्थ मे धन के प्रदर्शन का उल्लेख है। इस विशेषता को भी हिन्दू कुवेर से सम्बन्धित किया जा सकता है।

६ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०८–०९

७ द्विभुज यक्ष की मूर्ति एलोरा की गुफा ३२ मे उत्कीर्ण है। इसमे गजारूढ यक्ष के हाथो मे फल एव धन का थैला प्रदर्शित हैं। यक्ष के मुकुट मे एक छोटी जिन आकृति उत्कीर्ण है।

८ **विविधतीर्थकल्प** (पृ० १९) मे अम्बिका के साथ गोमेध के स्थान पर कुवेर का उल्लेख है और उसका वाहन नर बताया गया है। मूर्तियो मे नेमिनाथ के यक्ष-यक्षी के रूप मे सदैव सर्वानुभूति (या कुवेर) एव अम्बिका ही निरूपित हैं।

९ धन के थैले का प्रदर्शन ल० छठी शती ई० मे ही प्रारम्भ हो गया। शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, पृ० ३१

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र की श्वेतांबर परम्परा की जिन मूर्तियो के साथ (६ठी-१२ वी शती ई०) तथा मन्दिरो के दहलीजो पर सर्वानुभूति की अनेक मूर्तिया उत्कीर्ण है। आठवी-नवी शती ई० मे सर्वानुभूति की स्वतन्त्र मूर्तियो का भी उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ। अकोटा की नवीं शती ई० की मूर्तियो मे द्विभुज यक्ष हाथो में फल एवं धन का थैला लिये है।[१] सातवी-आठवी शती ई० मे सर्वानुभूति के साथ गजवाहन का चित्रण प्रारम्भ हुआ और दसवीं शती ई० मे उसकी चतुर्भुज मूर्तिया उत्कीर्ण हुईं।[२] पर अकोटा और वसतगढ की मूर्तियो मे ग्यारहवीं शती ई० तक यक्ष का द्विभुज रूप मे ही अकन हुआ है।

ओसिया के महावीर मन्दिर (ल० ९वी शती ई०) पर सर्वानुभूति की पाच मूर्तिया उत्कीर्ण हैं।[३] इनमे द्विभुज यक्ष ललितमुद्रा में विराजमान है और उसके वायें हाथ मे धन का थैला है। तीन उदाहरणो मे यक्ष के दाहिने हाथ मे पात्र (या कपाल-पात्र)[४] है और शेष दो उदाहरणो मे दाहिना हाथ जानु पर स्थित है। इनमे वाहन नही है। वासी (राजस्थान) से प्राप्त और विक्टोरिया हाल सग्रहालय, उदयपुर मे सुरक्षित एक द्विभुज मूर्ति (८वी शती ई०) मे गजारूढ यक्ष के हाथो मे फल एव धन का थैला हैं।[५] यक्ष के मुकुट मे एक छोटी जिन मूर्ति वनी है। घाणेराव के महावीर मन्दिर की मूर्ति (१०वी शती ई०) मे सर्वानुभूति चतुर्भुज है। मूर्ति गूढमण्डप के पूर्वी अधिष्ठान पर उत्कीर्ण हैं। ललितमुद्रा मे विराजमान यक्ष के करो मे फल, पाश, अकुश एव फल हैं। घाणेराव मन्दिर के गूढमण्डप एव गर्भगृह के दहलीजो पर भी चतुर्भुज सर्वानुभूति की चार मूर्तिया हैं। सभी उदाहरणो मे ललितमुद्रा मे विराजमान यक्ष की एक भुजा मे धन का थैला प्रदर्शित है। इनमे वाहन नही उत्कीर्ण है। गूढमण्डप के दाहिने और वायें छोरो की दो मूर्तियो मे यक्ष के हाथो मे अभयमुद्रा (या फल), परशु (या पद्म), पद्म एव धन का थैला प्रदर्शित हैं। गर्भगृह के दाहिने छोर की मूर्ति के दो हाथो मे धन का थैला और शेष दो मे अभयमुद्रा एव फल हैं। वायें छोर की आकृति धन का थैला, गदा, पुस्तक एव बीजपूरक से युक्त है। सर्वानुभूति के हाथो मे गदा एव पुस्तक का प्रदर्शन कुम्भारिया एव आबू की मूर्तियो मे भी प्राप्त होता है।

कुम्भारिया के शान्तिनाथ, महावीर एव नेमिनाथ मन्दिरो (११ वी-१२ वी शती ई०) की जिन मूर्तियो मे तथा वितानो एव भित्तियो पर चतुर्भुज सर्वानुभूति की कई मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। अधिकाश उदाहरणो मे गजारूढ यक्ष ललितमुद्रा मे आसीन है, और उसके हाथो मे अभयमुद्रा (या वरद या फल), अकुश, पाश[६] एव धन का थैला प्रदर्शित है।[७] कई चतुर्भुज मूर्तियो मे दो ऊपरी हाथो मे धन का थैला है, तथा निचले हाथ अभय-(या वरद-) मुद्रा और फल (या जलपात्र) से युक्त हैं।[८] शान्तिनाथ मन्दिर की देवकुलिका ११ की मूर्ति (१०८१ ई०) मे गजारूढ यक्ष द्विभुज है और उसके दोनो हाथो मे धन का थैला स्थित है।

ओसिया की देवकुलिकाओ[९] (११ वी शती ई०) की दहलीजो पर गजारूढ सर्वानुभूति की तीन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। इनमें चतुर्भुज यक्ष ललितमुद्रा मे विराजमान है और उसके करों मे धन का थैला, गदा, चक्राकार पद्म और फल

---

१ आठवीं शती ई० की एक मूर्ति मे यक्ष के करो मे पद्म और प्याला भी प्रदर्शित हैं। शाह, यू० पी०, पू०नि०, चित्र ३८ ए

२ दसवी-ग्यारहवी शती ई० की चतुर्भुज मूर्तिया घाणेराव, ओसिया एव कुम्भारिया से प्राप्त हुई हैं।

३ ये मूर्तिया अर्धमण्डप के उत्तरी छज्जे, गूढमण्डप की दहलीज, भीतरी दीवार एव पश्चिमी वरण्ड पर उत्कीर्ण हैं।

४ एक भुजा मे कपाल-पात्र का प्रदर्शन दिगवर स्थलो पर अधिक लोकप्रिय था।

५ अग्रवाल, आर० सी०, 'सम इन्टरेस्टिग स्कल्पचर्स ऑव यक्षज ऐण्ड कुवेर फ्राम राजस्थान', इ०हि०क्वा०,ख० ३३, अ० ३, पृ० २०४–२०५

६ शान्तिनाथ मन्दिर की देवकुलिका ९ की जिन मूर्ति मे पाश के स्थान पर पुस्तक प्रदर्शित है।

७ कभी-कभी धन के थैले के स्थान पर फल प्रदर्शित है।

८ इस वर्ग की वहुत थोडी मूर्तिया मिली हैं। कुछ मूर्तिया कुम्भारिया (नेमिनाथ मन्दिर) एव विमलवसही (देवकुलिका ११) से मिली है।

९ देवकुलिका २, ३, ४

प्रदर्शित हैं।[1] तारंगा के अजितनाथ मन्दिर (१२ वी शती ई०) की भित्तियो पर चतुर्भुज सर्वानुभूति की तीन मूर्तिया हैं। गजवाहन से युक्त यक्ष तीनो उदाहरणो मे त्रिभग मे खडा है, और वरदमुद्रा, अकुश, पाश एव फल से युक्त है। विमल-वसही के रंगमण्डप के समीप के वितान पर षड्भुज सर्वानुभूति की एक मूर्ति (१२ वी शती ई०) है। त्रिभग मे खडे यक्ष का वाहन गज है और उसके दो करो मे धन का थैला तथा शेष मे वरदमुद्रा, अकुश, पाश एव फल प्रदर्शित हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—(क) स्वतन्त्र मूर्तियां—इस क्षेत्र मे सर्वानुभूति (या कुबेर) की स्वतन्त्र मूर्तियो का उत्कीर्णन दसवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ जिनमे वाहन का अकन नही हुआ है। पर सर्वानुभूति के साथ कभी-कभी दो घट उत्कीर्ण हैं जो निधि के सूचक हैं। दसवी शती ई० की एक द्विभुज मूर्ति मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर) से मिली है, जिसमे ललितमुद्रा मे आसीन यक्ष कपाल एव धन के थैले से युक्त है। चरणो के समीप दो कलश भी उत्कीर्ण हैं।[2] देवगढ से यक्ष की दो मूर्तिया (१०वी-११वी शती ई०) मिली हैं। एक मे द्विभुज यक्ष ललितमुद्रा मे विराजमान और फल एव धन के थैले से युक्त है (चित्र ४९)।[3] दूसरी मूर्ति (मन्दिर ८, ११वी शती ई०) मे चतुर्भुज यक्ष त्रिभग मे खडा और हाथो मे वरदमुद्रा, गदा, धन का थैला और जलपात्र धारण किये है। उसके वाम पार्श्व मे एक कलश भी उत्कीर्ण है।

खजुराहो से चार मूर्तिया (१०वी-११वी शती ई०) मिली हैं जिनमे चतुर्भुज यक्ष ललितमुद्रा मे विराजमान है।[4] शान्तिनाथ मन्दिर एव मन्दिर ३२ का दो मूर्तियो मे यक्ष के ऊपरी हाथो मे पद्म और निचले मे फल और धन का थैला हैं। शेष दो मूर्तिया शान्तिनाथ मन्दिर के समीप के स्तम्भ पर उत्कीर्ण हैं। एक मूर्ति मे तीन सुरक्षित हाथो मे अभयमुद्रा, पद्म एवं धन का थैला हैं। दूसरी मूर्ति के दो करो मे पद्म एव शेष मे अभयमुद्रा और फल प्रदर्शित हैं। चरणो के समीप दो घट भी उत्कीर्ण हैं। सभी उदाहरणो मे यक्ष हार, उपवीत, धोती, कुण्डल, किरीटमुकुट एवं अन्य सामान्य आभूषणो से सज्जित है। खजुराहो के जैन शिल्प मे यक्षो मे सर्वानुभूति सर्वाधिक लोकप्रिय था। पार्श्वनाथ के धरणेन्द्र यक्ष के अतिरिक्त अन्य सभी जिनो के साथ यक्ष के रूप मे या तो सर्वानुभूति आमूर्तित है, या फिर यक्ष के एक हाथ मे सर्वानुभूति का विशिष्ट आयुध (धन का थैला) प्रदर्शित है।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तिया—स्वतन्त्र मूर्तियो के साथ ही नेमिनाथ की मूर्तियो (८वी-१२वी शती ई०) मे भी सर्वानुभूति निरूपित है। राज्य सग्रहालय, लखनऊ की ५ मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। तीन उदाहरणो[5] मे द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है। यक्ष के करो मे अभयमुद्रा (या वरद या फल) एव धन का थैला है। ग्यारहवी शती ई० की एक मूर्ति (जे ८५८) मे यक्ष चतुर्भुज है और उसके करो मे अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एव कलश हैं।

देवगढ की १९ नेमिनाथ की मूर्तियो (१०वी-१२वी शती ई०) मे द्विभुज सर्वानुभूति एव अम्बिका निरूपित हैं। प्रत्येक उदाहरण मे सर्वानुभूति के बायें हाथ मे धन का थैला प्रदर्शित है। पर दाहिने हाथ मे फल, दण्ड, कपालपात्र एवं अभयमुद्रा मे से एक प्रदर्शित है। मन्दिर १२ की चहारदीवारी की एक मूर्ति (११वी शती ई०) मे अम्बिका के समान ही सर्वानुभूति की भी एक भुजा में बालक प्रदर्शित है। सात उदाहरणो मे नेमि के साथ सामान्य लक्षणो वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। ऐसे उदाहरणो मे यक्ष के हाथो मे अभयमुद्रा (या वरद या गदा) और फल प्रदर्शित हैं। चार मूर्तियो (११वी-१२वी शती ई०) मे यक्ष-यक्षी चतुर्भुज हैं[6] और उनके हाथो मे वरद-(या अभय-) मुद्रा, पद्म, पद्म एव फल

---

१ देवकुलिका ३ की मूर्ति मे यक्ष की दक्षिण भुजाए भग्न हैं।

२ कृष्ण देव, 'मालादेवी टेम्पल् ऐट ग्यारसपुर', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बम्बई, १९६८, पृ० २६४

३ जि०इ०दे०, चित्र २३, मूर्ति सं० १३

४ तिवारी, एम० एन० पी०, 'खजुराहो के जैन शिल्प मे कुबेर', जै०सि०भा०, ज० २८, भाग २, दिसम्बर १९७५, पृ० १–४

५ जे ७९२, ७९३, ९३६

६ ये मूर्तिया मन्दिर ११, २० और ३० मे हैं।

(या कलश) है। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि देवगढ में पारम्परिक एव सामान्य लक्षणो वाले यक्ष का निरूपण साथ-साथ लोकप्रिय था। ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर एव वजरामठ तथा खजुराहो की नेमिनाथ की मूर्तियो (१०वी–१२वी शती ई०) मे द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है। यक्ष के बायें हाथ मे धन का थैला[1] और दाहिने मे अभयमुद्रा (या फल)' है।

विश्लेषण

इस सम्पूर्ण अध्ययन से ज्ञात होता है कि उत्तर भारत में जैन यक्षों मे सर्वानुभूति सर्वाधिक लोकप्रिय था। ल० छठी शती ई० मे सर्वानुभूति की जिन-सयुक्त और आठवी-नवी शती ई० मे स्वतन्त्र मूर्तियो का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ।[2] सर्वाधिक स्वतन्त्र मूर्तिया दसवी और ग्यारहवी शती ई० के मध्य उत्कीर्ण हुई। यक्ष के हाथ मे धन के थैले का प्रदर्शन छठी शती ई० मे ही प्रारम्भ हो गया। पर गजवाहन का चित्रण सातवी-आठवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ। स्मरणीय है कि गजवाहन का अकन केवल श्वेतावर स्थलो पर ही हुआ है। दिगबर स्थलो पर गज के स्थान पर निधियो के सूचक घटो के उत्कीर्णन की परम्परा थी। दिगंबर स्थलो पर सर्वानुभूति का कोई एक रूप नियत नही हो सका।[3] श्वेतावर स्थलो पर गजारूढ यक्ष के करो मे धन के थैले के अतिरिक्त अकुश, पाश एवं फल (या अभय-या-वरदमुद्रा) का नियमित प्रदर्शन हुआ है। दिगबर स्थलो पर धन के थैले के अतिरिक्त पद्म, गदा एव पुस्तक का भी अकन प्राप्त होता है। घाणेराव एव कुम्भारिया की कुछ श्वेतावर मूर्तियो मे भी सर्वानुभूति के साथ पद्म, गदा और पुस्तक प्रदर्शित है।

(२२) अम्बिका (या कुष्माण्डी) यक्षी[4]

शास्त्रीय परम्परा

अम्बिका (या कुष्माण्डी) जिन नेमिनाथ की यक्षी है। दोनो परम्पराओ मे सिंहवाहना यक्षी के करो मे आम्रलुम्बि एव बालक के प्रदर्शन का निर्देश है।

श्वेतावर परम्परा—निर्वाणकलिका मे सिंहवाहना कुष्माण्डी चतुर्भुजा है और उसके दाहिने हाथो मे मातुलिंग एव पाश और बायें मे पुत्र एव अकुश है।[5] समान लक्षणो का उल्लेख करनेवाले अन्य ग्रन्थों में मातुलिंग के स्थान पर आम्रलुम्बि[6] का उल्लेख है। मन्त्राधिराजकल्प मे हाथ मे बालक के प्रदर्शन का उल्लेख नही है। ग्रन्थ के अनुसार अम्बिका

---

१ खजुराहो की एक मूर्ति (मन्दिर १०) मे यक्ष की भुजा मे धन का थैला नही है।

२ श्वेतावर स्थलो पर दिगबर स्थलो की तुलना मे यक्ष की अधिक मूर्तिया उत्कीर्ण हुई।

३ दिगबर स्थलो पर केवल धन के थैले का प्रदर्शन ही नियमित था।

४ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, शाह यू०पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका', ज०यू०बा०, खं० ९, भाग २, १९४०–४१, पृ० १४७–६९, तिवारी, एम०एन०पी०, 'उत्तर भारत मे जैन यक्षी अम्बिका का प्रतिमा-निरूपण', सबोधि, ख० ३, अ० २–३, दिसबर १९७४, पृ० २७–४४

५ कुष्माण्डीं देवी कनकवर्णां सिंहवाहना चतुर्भुजा मातुलिंगपाशयुक्तदक्षिणकरा पुत्रांकुशान्वितवामकरा चेति॥ निर्वाणकलिका १८ २२, द्रष्टव्य, देवतामूर्तिप्रकरण ७.६१। ज्ञातव्य है कि कुछ श्वेतावर ग्रन्थो (चतुर्विंशतिका—बप्पभट्टिकृत, श्लोक ८८, ९६) मे द्विभुजा अम्बिका का भी ध्यान किया गया है।

६ अम्बादेवी कनककान्तिरुचि सिंहवाहना चतुर्भुजा आम्रलुम्बिपाशयुक्तदक्षिणकरद्वया पुत्रांकुशासक्तवामकरद्वया च। प्रवचनसारोद्धार २२, पृ० ९४, द्रष्टव्य, त्रि०श०पु०च० ८ ९ ३८५–८६, आचारदिनकर ३४, पृ० १७७, पद्मानन्दमहाकाव्य · परिशिष्ट–नेमिनाथ ५७–४८, रूपमण्डन ६ १९–ग्रन्थ मे पाश के स्थान पर नागपाश का उल्लेख है।

के दोनो पुत्र (सिद्ध और बुद्ध) उसके कटि के समीप निरूपित होंगे ।[1] अम्बिका-ताटंक मे उल्लेख है कि चतुर्भुजा अम्बिका का एक पुत्र उसकी उगली पकडे होगा और दूसरा गोद मे स्थित होगा । सिंहवाहना अम्बिका फल, आम्रलुम्बि, अकुश एव पाश से युक्त है ।[2]

दिगवर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे सिंहवाहना कुष्माण्डिनी (आम्रादेवी) को द्विभुजा और चतुर्भुजा वताया गया है, पर आयुधो का उल्लेख नही है ।[3] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे द्विभुजा अम्बिका के करो मे आम्रलुम्बि (दक्षिण) एव पुत्र (प्रियंकर) के प्रदर्शन का निर्देश है । दूसरे पुत्र (शुभकर) के आम्रवृक्ष की छाया मे अवस्थित यक्षी के समीप ही निरूपण का उल्लेख है ।[4] **अपराजितपृच्छा** मे द्विभुजा - अम्बिका के करो मे फल एवं वरदमुद्रा का वर्णन है । देवी के समीप ही उसके दोनो पुत्रो के प्रदर्शन का विधान है, जिनमे से एक गोद मे वैठा होगा ।[5]

दिगवर परम्परा के एक तान्त्रिक ग्रन्थ मे सिंहासन पर विराजमान अम्बिका का चतुर्भुज एवं अष्टभुज रूपो मे ध्यान किया गया है । चतुर्भुजा अम्बिका के करो मे शख, चक्र, वरदमुद्रा एव पाश का[6] तथा अष्टभुजा देवी के करो मे शख, चक्र, धनुष, परशु, तोमर, खड्ग, पाश और कोद्रव का उल्लेख है ।[7]

अम्बिका का भयावह स्वरूप—तान्त्रिक ग्रन्थ, **अम्बिका-ताटंक**, मे अम्बिका के भयकर रूप का स्मरण है और उसे शिवा, शकरा, स्तम्भिनी, मोहिनी, शोषणी, भीमनादा, चण्डिका, चण्डरूपा, अघोरा आदि नामो से सम्बोधित किया गया है । प्रलयकारी रूप मे उसे सम्पूर्ण सृष्टि की सहार करनेवाली कहा गया है । इस रूप मे देवी के करो मे धनुष, वाण, दण्ड, खड्ग, चक्र एव पद्म आदि के प्रदर्शन का निर्देश है । सिंहवाहिनी देवी के हाथ मे आम्र का भी उल्लेख है । यू०पी० शाह ने विमलवसही की देवकुलिका ३५ के वितान की विंशतिभुजा देवी की सम्भावित पहचान अम्बिका के भयावह रूप से की है ।[8] ललितमुद्रा मे विराजमान सिंहवाहना अम्बिका की इस मूर्ति मे सुरक्षित दस भुजाओ मे खड्ग, शक्ति, सर्प, गदा, खेटक, परशु, कमण्डलु, पद्म, अभयमुद्रा एव वरदमुद्रा प्रदर्शित हैं ।

---

१ कुष्माण्डिनी ' पाशाम्रलुम्बिसृणिसत्फलमावहन्ती ।
पुत्रद्वय करकटीतटग च नेमिनाथक्रमाम्बुजयुग शिवदा नमन्ती ।। **मन्त्राधिराजकल्प** ३ ६४
द्रष्टव्य, **स्तुति चतुर्विंशतिका** (शोभनसूरिकृत) २२ ४, २४ ४
सिंहयाना हेमवर्णा सिद्धवुद्धसमन्विता ।
कम्राम्रलुम्बिभृत्पाणिरत्राम्बा सङ्घविघ्नहृत् ।। **विविधतीर्थकल्प**—उज्जयन्त-स्तव ।

२ शाह, यू०पी०, पू०नि०, पृ० १६०

३ देवी कुष्माण्डिनी यस्य सिंहगा हरितप्रभा ।
चतुर्हस्तजिनेन्द्रस्य महाभक्तिविराजित ।।
द्विभुजा सिंहमारूढा आम्रादेवी हरित्प्रभा ।। **प्रतिष्ठासारसग्रह** ५ ६४, ६६

४ सव्येकद्युपगप्रियकर सुतुक्प्रीत्यै करे विभ्रती
द्विव्याम्रस्तवक शुभकरकाश्लिष्टान्यहस्तागुलिम् ।
सिंहे भर्तृचरे स्थिता हरितभामाभ्रद्रुमच्छायगा
वदारु दशकार्मुकोच्छ्रयलिन देवीमिहाभ्रा यजे ।। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३ १७६, द्रष्टव्य,**प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२२,पृ० ३४७

५ हरिद्वर्णा सिंहसंस्था द्विभुजा च फलं वरम् ।
पुत्रेणोपास्यमाना च सुतोत्सगातथाऽम्बिका ।। **अपराजितपृच्छा** २२१ ३६

६ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० १६१ देवी चतुर्भुजा शखचक्रवरदपाशान्यस्वरूपेण सिंहासनस्थिता ।

७ वही, पृ० १६१—शाह ने अष्टभुजा अम्बिका के एक चित्र का उल्लेख किया है, जिसमे सिंहवाहना अम्बिका कोद्रव, त्रिशूल, चाप, अभयमुद्रा, सृणि, पद्म, शर एव आम्रलुम्बि से युक्त है ।

८ वही, पृ० १६१—६२

श्वेतावर और दिगवर परम्पराओ मे अम्बिका[1] की उत्पत्ति की विस्तृत कथाए क्रमश जिनप्रभसूरिकृत 'अम्बिका-देवी-कल्प' (१४०० ई०) और यक्षी कथा (पुण्याश्रवकथा का अश) मे वर्णित हैं। श्वेतावर परम्परा मे अम्बिका के पुत्रो के नाम सिद्ध और बुद्ध तथा दिगवर परम्परा मे शुभकर और प्रभकर है।[2] श्वेतावर कथा के अनुसार अम्बिका पूर्व-जन्म में सोम नाम के ब्राह्मण की भार्या थी जो किसी कल्पित अपराध पर सोम द्वारा निष्कासित किये जाने पर अपने दोनो पुत्रो के साथ घर से निकल पडी। अम्बिका और उसके दोनो पुत्रो को भूख-प्यास से व्याकुल जान कर मार्ग का एक सूखा आम्रवृक्ष फलो से लद गया और सूखा कुआ जल से पूर्ण हो गया। अम्बिका ने आम्र फल खाकर जल ग्रहण किया और उसी वृक्ष के नीचे विश्राम किया। कुछ समय पश्चात् सोम अपनी भूल पर पश्चाताप करता हुआ अम्बिका को ढूढने निकला। जब अम्बिका ने सोम को अपनी ओर आते देखा तो अन्यथा समझ कर भयवश दोनो पुत्रो के साथ कुए मे कूद कर आत्म-हत्या कर ली। अगले जन्म मे यही अम्बिका नेमिनाथ की शासनदेवी हुई और उसके पूर्वजन्म के दोनो पुत्र इस जन्म मे भी पुत्रो के रूप मे उससे सम्बद्ध रहे। सोम उसका वाहन (सिंह) हुआ। अम्बिका की भुजा मे आम्रलुम्बि एव शीर्षभाग के ऊपर आम्रशाखाओ के प्रदर्शन भी पूर्वजन्म की कथा से सम्बद्ध हैं। देवी के हाथ का पाश उस रज्जु का सूचक है जिसकी सहायता से अम्बिका ने कुए से जल निकाला था।[3] इस प्रकार अम्बिका मूर्ति की प्रमुख लाक्षणिक विशेषताओ को उसके पूर्वजन्म की कथा से सम्बद्ध माना गया है।

अम्बिका या कुष्माण्डिनी पर हिन्दू दुर्गा या अम्बा का प्रभाव स्वीकार किया गया है।[4] पर वास्तव मे तान्त्रिक ग्रन्थ[5] के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थो में वर्णित अम्बिका के प्रतिमा-लक्षण हिन्दू दुर्गा से अप्रभावित और भिन्न हैं। हिन्दू प्रभाव केवल जैन यक्षी के नामो एव सिंहवाहन के प्रदर्शन मे ही स्वीकार किया जा सकता है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दक्षिण भारतीय ग्रन्थो मे सिंहवाहना कुष्माण्डिनी का धर्मदेवी नाम से भी उल्लेख है। दिगवर ग्रन्थ मे चतुर्भुजा यक्षी के ऊपरी हाथो मे खड्ग एवं चक्र का तथा निचले हाथो से गोद मे बैठे बालकों को सहारा देने का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे द्विभुजा यक्षी के करो मे फल एव वरदमुद्रा वर्णित है। यक्ष-यक्षी-लक्षण मे चतुर्भुजा धर्मदेवी की गोद मे उसके दोनो पुत्र अवस्थित हैं तथा देवी दो हाथो से पुत्रो को सहारा दे रही है, तीसरे मे आम्रलुम्बि लिये है और उसका चौथा हाथ सिंह की ओर मुडा है।[6] स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय परम्परा मे अम्बिका के साथ आम्रलुम्बि का प्रदर्शन नियमित नही था। अम्बिका की गोद मे एक के स्थान पर दोनो पुत्रो के चित्रण की परम्परा लोकप्रिय थी।

मूर्ति-परम्परा

उत्तर भारत मे जैन यक्षियो मे अम्बिका की ही सर्वाधिक स्वतन्त्र और जिन-सयुक्त मूर्तिया मिली हैं। ल० छठी शती ई० मे अम्बिका को शिल्प मे अभिव्यक्ति मिली।[7] नवी शती ई० तक सभी क्षेत्रो मे अधिकाश जिनो के साथ यक्षी के

---

१ पूर्वजन्म मे अम्बिका के नाम अम्बिणी (श्वेतावर) और अग्निला (दिगवर) थे।

२ शाह, यू०पी०, पूoनि, पृ० १४७–४८

३ वही, पृ० १४८। दिगवर परम्परा मे यही कथा कुछ नवीन नामो एव परिवर्तनो के साथ वर्णित है।

४ बनर्जी, जे०एन०, पू०नि०, पृ० ५६२। हिन्दू दुर्गा को अम्बिका और कुष्माण्डी (या कुष्माण्डा) नामो से भी सम्बोधित किया गया है।

५ तान्त्रिक ग्रन्थ मे जैन अम्बिका का शिवा, शकरा, चण्डिका, अघोरा आदि नामो से सम्बोधन एव करो मे शख और चक्र के प्रदर्शन का निर्देश हिन्दू अम्बा या दुर्गा के प्रभाव का समर्थन करता है। हिन्दू दुर्गा का वाहन कभी महिष और कभी सिंह बताया गया है और उसके करो में अभयमुद्रा, चक्र, कटक एव शख प्रदर्शित हैं। द्रष्टव्य, राव, टी०ए० गोपीनाथ, पू०नि०, पृ० ३४१–४२

६ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०९

७ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० २८–३१

रूप मे अम्बिका ही आमूर्तित है। गुजरात एवं राजस्थान के श्वेताम्बर स्थलो पर तो दसवी शती ई० के बाद भी सभी जिनो के साथ सामान्यत अम्बिका ही निरूपित है। केवल कुछ ही उदाहरणो मे ऋषभ एवं पार्श्व के साथ पारम्परिक यक्षी का निरूपण हुआ है। स्वतन्त्र एवं जिन-सयुक्त मूर्तियो मे अम्बिका अधिकाशत द्विभुजा है।[1] सभी क्षेत्रो की मूर्तियो मे अम्बिका के साथ सिंहवाहन[2] एव दो हाथो मे आम्रलुम्बि[3] (दक्षिण) और बालक (वाम) का प्रदर्शन लोकप्रिय था।[4] अम्बिका अधिकाशत ललितमुद्रा मे विराजमान है और उसके शीर्षभाग मे लघु जिन आकृति (नेमि) एव आम्रफल के गुच्छक उत्कीर्ण है। अम्बिका के दूसरे पुत्र को भी समीप ही उत्कीर्ण किया गया जिसके एक हाथ मे फल (या आम्रफल) है और दूसरा माता के हाथ की आम्रलुम्बि को लेने के लिए ऊपर उठा होता है।

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र मे छठी से दसवी शती ई० के मध्य की सभी जिन मूर्तियो मे यक्षी के रूप मे अम्बिका ही निरूपित है। अम्बिका की जिन-सयुक्त एव स्वतन्त्र मूर्तियो के प्रारम्भिकतम (छठी-सातवी शती ई०) उदाहरण इसी क्षेत्र मे अकोटा (गुजरात) से मिले हैं।[5] अकोटा की एक स्वतन्त्र मूर्ति मे सिंहवाहना अम्बिका द्विभुजा और आम्रलुम्बि एव फल से युक्त है।[6] एक बालक उसकी बायी गोद मे बैठा है और दूसरा दक्षिण पार्श्व मे (निर्वस्त्र) खडा है। अम्बिका के शीर्षभाग मे नेमिनाथ के स्थान पर पार्श्वनाथ की मूर्ति उत्कीर्ण है। तात्पर्य यह कि छठी-सातवी शती ई० तक अम्बिका को नेमि से नही सम्बद्ध किया गया था।[7] आम्रलुम्बि एव बालक से युक्त सिंहवाहना अम्बिका की एक द्विभुजा मूर्ति ओसिया के महावीर मन्दिर (ल० ९ वी शती ई०) के गूढमण्डप के प्रवेश द्वार पर उत्कीर्ण है। इस क्षेत्र मे अम्बिका के साथ सिंहवाहन एव शीर्षभाग मे आम्रफल के गुच्छको का नियमित चित्रण नवी शती ई० के बाद प्रारम्भ हुआ। धाक (काठियावाड) की सातवी-आठवी शती ई० की द्विभुजा मूर्ति मे दोनो विशेषताए अनुपस्थित है।[8] आठवी से दसवी शती ई० के मध्य की छह मूर्तिया अकोटा से मिली हैं। इनमे सिंहवाहना अम्बिका द्विभुजा और आम्रलुम्बि एव बालक से युक्त है।[9] दूसरे पुत्र का नियमित चित्रण नवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ।[10] ज्ञातव्य है कि जिन-सयुक्त मूर्तियो मे दूसरे पुत्र का चित्रण सामान्यत नही हुआ है। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के शिखर की एक द्विभुजी मूर्ति मे अम्बिका के दाहिने हाथ मे आम्रलुम्बि के साथ ही खड्ग भी प्रदर्शित है तथा बाया हाथ पुत्र के ऊपर स्थित है।

---

१ खजुराहो, देवगढ, राज्य सग्रहालय, लखनऊ, विमलवसही, कुम्भारिया और लूणवसही से अम्बिका की चतुर्भुज मूर्तिया (१०वी-१३वी शती ई०) भी मिली हैं।

२ दिगबर स्थलो पर सिंहवाहन का चित्रण नियमित नही था।

३ विमलवसही, कुम्भारिया (शान्तिनाथ एव महावीर मन्दिरो की देवकुलिकाओ) एव कुछ अन्य स्थलो की मूर्तियो मे कभी-कभी आम्रलुम्बि के स्थान पर फल (या अभय-या-वरद-मुद्रा) भी प्रदर्शित हैं।

४ यू० पी० शाह ने ऐसी दो मूर्तियो का उल्लेख किया है, जिनमे बालक के स्थान पर अम्बिका के हाथ मे फल प्रदर्शित है। द्रष्टव्य, शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका', ज०यू०बां०, ख० ९, १९४०-४१, पृ० १५५, चित्र ९ और १०

५ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० २८-२९, ३६-३७

६ वही, पृ० ३०-३१, फलक १४

७ वप्पभट्टिसूरि की चतुर्विंशतिका (७४३-८३८ ई०) मे अम्बिका का ध्यान नेमि और महावीर दोनो ही के साथ किया गया है।

८ सकलिया, एच० डी०, 'दि अर्लिएस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड', ज०रा०ए०सो०, जुलाई १९३८ पृ० ४२७-२८

९ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, चित्र ४८ बी०, ५० सी, ५० ए। समान विवरणो वाली मूर्तिया (९ वी-१२ वी शती ई०) कोटा, घाणेराव, नाडलाई, ओसिया, कुम्भारिया एवं आबू (विमलवसही एव लूणवसही) से मिली हैं।

१० दिगबर स्थलो पर दूसरा पुत्र सामान्यत. दाहिने पार्श्व मे और श्वेताबर स्थलो पर वाम पार्श्व मे उत्कीर्ण है। ओसिया की जैन देवकुलिकाओ की दो मूर्तियो मे दूसरा पुत्र नही उत्कीर्ण है।

ग्यारहवी शती ई० मे अम्बिका की चतुर्भुज मूर्तिया भी उत्कीर्ण हुई। ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की चतुर्भुज मूर्तिया कुम्भारिया, विमलवसही, जालोर एव तारगा से मिली हैं। आयुधो के आधार पर चतुर्भुजा अम्बिका की मूर्तियो को दो वर्गों मे बाटा जा सकता है। पहले वर्ग मे ऐसी मूर्तिया हैं जिनमे देवी के तीन हाथो मे आम्रलुम्बि और चौथे में पुत्र हैं (चित्र ५४)। श्वेताबर ग्रन्थो के निर्देशो के विरुद्ध अम्बिका के तीन हाथो मे आम्रलुम्बि का प्रदर्शन सम्भवत यक्षी के द्विभुज स्वरूप से प्रभावित है।[1] दूसरे वर्ग की मूर्तियो मे अम्बिका आम्रलुम्बि, पाश, चक्र (या वरदमुद्रा) एव पुत्र से युक्त है। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की देवकुलिका ११ (१०८१ ई०) एव १२ की दो जिन मूर्तियो मे सिंहवाहना अम्बिका चतुर्भुजा है और उसके तीन करो मे आम्रलुम्बि एव चौथे मे बालक हैं।[2] कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर (देवकुलिका ५) एव विमलवसही के गूढमण्डप की रथिकाओ की जिन मूर्तियो (१२ वी शती ई०) में भी समान लक्षणोवाली चतुर्भुजा अम्बिका निरूपित है। ऐसी ही चतुर्भुजा अम्बिका की एक स्वतन्त्र मूर्ति विमलवसही के रंगमण्डप के दक्षिणी-पश्चिमी वितान पर है जिसमे शीर्षभाग मे आम्रफल के गुच्छक और पार्श्व मे दूसरा पुत्र भी उत्कीर्ण है (चित्र ५४)।

चतुर्भुजा अम्बिका की दूसरे वर्ग की तीन मूर्तिया (१२ वी शती ई०) क्रमश तारगा, जालोर एव विमलवसही से मिली हैं। तारगा के अजितनाथ मन्दिर की मूर्ति मूलप्रासाद की उत्तरी भित्ति पर उत्कीर्ण है। त्रिभग मे खडी अम्बिका के वाम पार्श्व मे सिंह तथा करो मे वरदमुद्रा, आम्रलुम्बि, पाश एवं पुत्र प्रदर्शित हैं। जालोर की मूर्ति महावीर मन्दिर के उत्तरी अधिष्ठान पर है। सिंहवाहना अम्बिका आम्रलुम्बि, चक्र, चक्र एव पुत्र से युक्त है।[3] विमलवसही के गूढमण्डप के दक्षिणी प्रवेश-द्वार पर उत्कीर्ण तीसरी मूर्ति मे सिंहवाहना अम्बिका के हाथो मे आम्रलुम्बि, पाश, चक्र एव पुत्र हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—इस क्षेत्र मे ल० सातवी-आठवी शती ई० मे अम्बिका की जिन-सयुक्त और नवी शती ई० मे स्वतन्त्र मूर्तियो का उत्कीर्णन आरम्भ हुआ। सम्पूर्ण मूर्तियो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अम्बिका के साथ पुत्र का अकन सर्वप्रथम इसी क्षेत्र मे प्रारम्भ हुआ। पुत्र का अकन सातवी-आठवीं शती ई० मे और आम्रलुम्बि एव सिंहवाहन का नवी-दसवी शती ई० में प्रारम्भ हुआ (चित्र २६)।

(क) स्वतन्त्र मूर्तियां—अम्बिका की प्रारम्भिकतम स्वतन्त्र मूर्ति देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) के यक्षी समूह मे है। अरिष्टनेमि के साथ 'अम्बायिका' नाम को चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है जो हाथो मे पुष्प (या फल), चामर, पद्म एवं पुत्र लिये है।[4] वाहन अनुपस्थित है। अम्बिका के चतुर्भुजा होने के बाद भी पुत्र के अतिरिक्त इस मूर्ति मे अन्य कोई पारम्परिक विशेषता नही प्रदर्शित है। पर देवगढ़ के मन्दिर १२ के गर्भगृह की नवी-दसवी शती ई० की द्विभुज अम्बिका मूर्तियो मे सिंहवाहन एव करो मे आम्रलुम्बि एव पुत्र प्रदर्शित हैं (चित्र ५१)।

किसी अज्ञात स्थल से प्राप्त ल० नवी शती ई० की एक द्विभुज मूर्ति पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा (डी ७) मे सुरक्षित है (चित्र ५०)। इस मूर्ति की दुर्लभ विशेषता, परिकर मे गणेश, कुबेर, बलराम, कृष्ण एव अष्टमातृकाओ का उत्कीर्णन है। अम्बिका पद्मासन पर ललितमुद्रा मे विराजमान है और उसका सिंहवाहन आसन के नीचे अकित है। यक्षी के दाहिने हाथ मे अभयमुद्रा और बायें मे पुत्र है। दाहिने पार्श्व मे अम्बिका का दूसरा पुत्र भी उपस्थित है। पीठिका पर एक पक्ति में आठ स्त्री आकृतिया (अष्ट-मातृकाए)[5] बनी हैं। ललितमुद्रा मे आसीन इन आकृतियो मे से अधिकाश नमस्कार-मुद्रा मे हैं

---

१ श्वेताबर ग्रन्थो मे चतुर्भुजा यक्षी के करो मे आम्रलुम्बि, पाश, अकुश एव पुत्र के प्रदर्शन का निर्देश है।

२ ज्ञातव्य है कि इस क्षेत्र की जिन-संयुक्त मूर्तियो मे सिंहवाहना अम्बिका सामान्यत द्विभुजा और आम्रलुम्बि एव पुत्र से युक्त है।

३ अम्बिका के साथ चक्र का प्रदर्शन तान्त्रिक ग्रन्थ से निर्देशित है।

४ जि०इ०दे०, पृ० १०२

५ जैन ग्रन्थो मे अष्ट-मातृकाओ के उल्लेख प्राप्त होते हैं। अष्ट-मातृकाओ की सूची मे ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और त्रिपुरा के नाम हैं। द्रष्टव्य, शाह, यू०पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', ज०ओ०इं०, ख० २०, अ० ३, पृ० २८६

और कुछ के हाथो मे फल एवं अन्य सामग्रिया हैं। अम्बिका के शीर्षभाग की जिन आकृति के पार्श्वों मे त्रिभग मे खडी वलराम एव कृष्ण की चतुर्भुज मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। स्मरणीय है कि वलराम और कृष्ण नेमिनाथ के चचेरे भाई हैं और अम्बिका नेमिनाथ की यक्षी है। यह मूर्ति इस वात का प्रमाण है कि ल० नवी शती ई० मे अम्बिका नेमिनाथ से सम्बद्ध हुई। तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त वलराम के तीन हाथो मे पात्र (?), मुसल और हल (पताका सहित) हैं तथा चौथा हाथ जानु पर स्थित है। कृष्ण के करो मे अभयमुद्रा, गदा, चक्र एव शख हैं। भामण्डल से युक्त अम्बिका के शीर्षभाग मे आम्रफल के गुच्छक एव उड्डीयमान मालाधर आमूर्तित हैं। देवी के दाहिने पार्श्व मे ललितमुद्रा मे विराजमान गजमुख गणेश की द्विभुज मूर्ति उत्कीर्ण है जिसके हाथो मे अभयमुद्रा एव मोदकपात्र हैं। वाम पार्श्व मे ललितमुद्रा मे आसीन द्विभुज कुवेर की मूर्ति है जिसके हाथो मे फल एव धन का थैला हैं।

दसवी शती ई० की दो द्विभुज मूर्तिया मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, म०प्र०) के उत्तरी और दक्षिणी शिखर पर हैं। शीर्षभाग मे आम्रफल के गुच्छको से शोभित सिंहवाहना अम्बिका आम्रलुम्बि एव पुत्र से युक्त है। खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर (१०वी शती ई०) के दक्षिणी मण्डोवर पर भी अम्बिका की एक द्विभुजा मूर्ति है। त्रिभग मे खडी अम्बिका आम्रलुम्बि एव वालक से युक्त है। यहा सिंहवाहन नही उत्कीर्ण है। शीर्षभाग मे आम्रफल के गुच्छक और दाहिने पार्श्व मे दूसरा पुत्र उत्कीर्ण हैं। इस मूर्ति के अतिरिक्त खजुराहो की दसवी से वारहवी शती ई० के मध्य की अन्य सभी मूर्तियो मे अम्बिका चतुर्भुजा है।[1] उल्लेखनीय है कि खजुराहो मे अम्बिका जहा एक ही उदाहरण मे द्विभुजा है, वही देवगढ की ५० से अधिक मूर्तियो (९वी-१२वी शती ई०) मे वह द्विभुजा अकित है। देवगढ से चतुर्भुजा अम्बिका की केवल तीन ही मूर्तिया मिली हैं।[2] तात्पर्य यह कि खजुराहो मे अम्बिका का चतुर्भुज और देवगढ मे द्विभुज रूपो मे निरूपण लोकप्रिय था। स्मरणीय है कि दिगवर परम्परा मे अम्बिका को द्विभुज वताया गया है।[3]

देवगढ से प्राप्त ५० से अधिक स्वतन्त्र मूर्तियो (९वी-१२वी शती ई०)[4] मे से तीन उदाहरणो के अतिरिक्त अन्य सभी मे अम्बिका द्विभुजा है (चित्र ५१)। अधिकाश उदाहरणो मे देवी स्थानक-मुद्रा मे और कुछ मे ललितमुद्रा मे निरूपित है। शीर्षभाग मे लघु जिन आकृति एव आम्रवृक्ष उत्कीर्ण हैं। अम्बिका के करो मे आम्रलुम्बि[5] एव पुत्र प्रदर्शित हैं। कुछ उदाहरणो मे पुत्र गोद मे न होकर वाम पार्श्व मे खडा है। सिंहवाहन सभी उदाहरणो मे उत्कीर्ण है। दिगवर परम्परा के अनुरूप दूसरे पुत्र को दाहिने पार्श्व मे अंकित किया गया है।[6] परिकर मे उड्डीयमान मालाधरो एव कभी-कभी चामरधर सेवको को भी उत्कीर्ण किया गया है। साहू जैन सग्रहालय, देवगढ की एक मूर्ति (१२वी शती ई०) मे अम्बिका के वाहन का सिर सिंह का और शरीर मानव का है। इसी सग्रहालय की एक अन्य मूर्ति (११वी शती ई०) मे यक्षी के वाम स्कन्ध के ऊपर पाच सर्पफणो से मण्डित सुपार्श्व की खड्गासन मूर्ति वनी है। सग्रहालय की एक अन्य मूर्ति में परिकर मे अभयमुद्रा, पद्म, चामर एव कलश से युक्त दो चतुर्भुज देवियो, पाच जिनो एव चामरधरो की मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। वाम पार्श्व मे दूसरा पुत्र है। मन्दिर १२ की उत्तरी चहारदीवारी की एक मूर्ति (११वी शती ई०) मे अम्बिका के दाहिने हाथ मे आम्रलुम्बि नही है वरन् वह पुत्र के मस्तक पर स्थित है। उपर्युक्त मूर्तियो के अध्ययन से स्पष्ट है कि देवगढ़ मे द्विभुजा अम्बिका के निरूपण मे दिगवर परम्परा का पालन किया गया है।

---

१ पार्श्वनाथ मन्दिर के शिखर (दक्षिण) पर भी चतुर्भुजा अम्बिका की एक मूर्ति है।

२ इसमे मन्दिर १२ की चतुर्भुज मूर्ति भी सम्मिलित है।

३ केवल तान्त्रिक ग्रन्थ मे अम्बिका चतुर्भुजा है।

४ सर्वाधिक मूर्तिया ग्यारहवी शती ई० की हैं।

५ साहू जैन सग्रहालय, देवगढ़ की एक मूर्ति (११वी शती ई०) मे यक्षी की दाहिनी भुजा मे आम्रलुम्बि के स्थान पर छत्र-पद्म प्रदर्शित है। मन्दिर १२ की उत्तरी चहारदीवारी की मूर्ति मे भी आम्रलुम्बि नही प्रदर्शित है।

६ मानस्तम्भो की कुछ मूर्तियो मे अम्बिका का दूसरा पुत्र नही उत्कीर्ण है।

देवगढ के मन्दिर ११ के सामने के मानस्तम्भ (१०५९ ई०) पर चतुर्भुजा अम्बिका की एक मूर्ति है। सिंहवाहना अम्बिका के करो मे आम्रलुम्बि, अकुश, पाश एव पुत्र हैं।[1] समान विवरणो वाली दूसरी चतुर्भुज मूर्ति मन्दिर १६ के स्तम्भ (१२वी शती ई०) पर उत्कीर्ण है जिसमे वाहन नही है और ऊर्ध्व दक्षिण हाथ का आयुध भी अस्पष्ट है। ज्ञातव्य है कि अम्बिका का चतुर्भुज स्वरूप मे निरूपण दिगबर परम्परा के विरुद्ध है। उपर्युक्त मूर्तियो मे अम्बिका के करो मे आम्रलुम्बि एव पुत्र के साथ ही पाश और अकुश का प्रदर्शन स्पष्टतः श्वेतावर परम्परा से प्रभावित है। देवगढ के अतिरिक्त खजुराहो एव राज्य सग्रहालय, लखनऊ की दो अन्य दिगबर परम्परा की चतुर्भुज मूर्तियो (११वी-१२वी शती ई०) मे भी यह श्वेतावर प्रभाव देखा जा सकता है। खजुराहो के मन्दिर २७ की एक स्थानक मूर्ति (११वी शती ई०) मे सिंहवाहना अम्बिका के शीर्षभाग मे आम्रफल के गुच्छक एव जिन आकृति उत्कीर्ण है। अम्बिका के करो मे आम्रलुम्बि, अकुश, पाश, एव पुत्र दृष्टिगत होते है।[2] चामरधर सेवको एव उपासको से वेष्ठित अम्बिका के दाहिने पार्श्व मे दूसरा पुत्र भी आमूर्तित है। समान विवरणो वाली राज्य सग्रहालय, लखनऊ (६६ २२५) की एक मूर्ति मे सिंहवाहना अम्बिका के एक हाथ मे अकुश के स्थान पर त्रिशूलयुक्त-घण्टा है। ललितमुद्रा मे विराजमान यक्षी के समीप ही उसक दूसरा पुत्र (निर्वस्त्र) भी खडा है। इस मूर्ति मे भयानक दर्शन वाली अम्बिका के नेत्र बाहर की ओर निकले हैं। भयावह रूप मे यह निरूपण सम्भवत तान्त्रिक परम्परा से प्रभावित है।

राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जी ३१२) की ललितमुद्रा मे आसीन एक अन्य चतुर्भुज मूर्ति (११वी शती ई०) मे अम्बिका के निचले हाथो मे आम्रलुम्बि एव पुत्र और ऊपरी हाथो मे पद्म-पुस्तक एव दर्पण हैं। सिंहवाहना अम्बिका के वाम पार्श्व मे दूसरा पुत्र एव शीर्षभाग मे जिन आकृति एव आम्रफल के गुच्छक उत्कीर्ण है। जैन परम्परा के विपरीत अम्बिका के साथ पद्म और दर्पण का चित्रण हिन्दू अम्बिका (पार्वती) का प्रभाव हो सकता है। ज्ञातव्य है कि पद्म का चित्रण खजुराहो की चतुर्भुज अम्बिका की मूर्तियो मे विशेष लोकप्रिय था।

देवगढ के समान खजुराहो मे भी जैन यक्षियो मे अम्बिका की ही सर्वाधिक मूर्तिया है। खजुराहो मे दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की अम्बिका की ११ मूर्तिया हैं।[3] पार्श्वनाथ मन्दिर के एक उदाहरण के अतिरिक्त अन्य सभी में अम्बिका चतुर्भुजा है। ११ स्वतन्त्र मूर्तियो के अतिरिक्त ७ उत्तरगो पर भी चतुर्भुजा अम्बिका की ललितमुद्रा मे आसीन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। ११ स्वतन्त्र मूर्तियो मे से दो पार्श्वनाथ और दो आदिनाथ मन्दिरो पर बनी हैं। अन्य उदाहरण स्थानीय संग्रहालयो एव मन्दिरो में सुरक्षित है। सात उदाहरणो मे अम्बिका त्रिभग मे खडी और शेष मे ललितमुद्रा मे आसीन हैं। सभी उदाहरणो मे शीर्षभाग मे आम्रफल के गुच्छक, लघु जिन मूर्ति एव सिंहवाहन उत्कीर्ण हैं। अम्बिका के निचले दो हाथो मे आम्रलुम्बि एव बालक[4] और ऊपरी हाथो मे पद्म (या पद्म मे लिपटी पुस्तिका) प्रदर्शित हैं (चित्र ५७)।[5] केवल मन्दिर २७ की एक मूर्ति मे ऊर्ध्व करो मे अकुश एव पाश हैं। इस अध्ययन से स्पष्ट है कि मुख्य आयुधो (आम्रलुम्बि एव पुत्र) के सन्दर्भ मे खजुराहो के कलाकारो ने परम्परा का पालन किया, पर ऊर्ध्व करों में पद्म या पद्म-पुस्तिका का प्रदर्शन खजुराहो की अम्बिका मूर्तियो की स्थानीय विशेषता है। ग्यारहवी शती ई० की चार

---

१ पुत्र के बायें हाथ मे आम्रफल है।

२ खजुराहो की अन्य चतुर्भुज मूर्तियो मे दो ऊर्ध्व करो मे अकुश एव पाश के स्थान पर पद्म (या पद्म में लिपटी पुस्तिका) प्रदर्शित हैं।

३ उत्तर भारत मे अम्बिका की सर्वाधिक चतुर्भुज मूर्तिया खजुराहो से मिली हैं।

४ दो उदाहरणो (पुरातात्विक सग्रहालय, खजुराहो १६०८ एव मन्दिर २७) मे पुत्र गोद मे बैठा न होकर वाम पार्श्व मे खडा है।

५ स्थानीय सग्रहालय (के ४२) की एक मूर्ति मे अम्बिका की एक ऊपरी भुजा मे पद्म के स्थान पर आम्रलुम्बि है और जैन धर्मशाला के प्रवेश-द्वार के समीप के दो उत्तरगो (११वी शती ई०) की मूर्तियो मे पुस्तक प्रदर्शित है।

मूर्तियो मे दाहिने पार्श्व मे दूसरा पुत्र भी उत्कीर्ण है। स्वतन्त्र मूर्तियो मे अम्बिका सामान्यत दो पार्श्ववर्ती सेविकाओ से सेवित है जिनकी एक भुजा मे चामर या पद्म प्रदर्शित हैं। साथ ही अभयमुद्रा एव जलपात्र से युक्त दो पुरुष या स्त्री आकृतिया भी अंकित हैं। परिकर मे सामान्यत· उपासको, गन्धर्वों एव उड्डीयमान मालाधरो की आकृतिया वनी हैं। पुरातात्विक सग्रहालय, खजुराहो (१६०८) की एक विशिष्ट अम्बिका मूर्ति (११ वी शती ई०) मे जिन मूर्तियो के समान ही पीठिका छोरो पर द्विभुज यक्ष और यक्षी भी आमूर्तित है। यक्ष अभयमुद्रा एव धन के थैले और यक्षी अभयमुद्रा एव जलपात्र से युक्त हैं। शीर्षभाग मे पद्म धारण करने वाली कुछ देविया भी वनी हैं।

द्विभुजा अम्बिका की तीन मूर्तिया (१० वी-११ वी शती ई०) राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे हैं।[1] शीर्षभाग मे आम्रवृक्ष एव जिन आकृति से युक्त अम्बिका सभी उदाहरणो मे ललितमुद्रा मे विराजमान है। वाहन केवल दो ही उदाहरणो मे उत्कीर्ण है।[2] इनमे यक्षी के करो मे आम्रलुम्बि एव पुत्र प्रदर्शित हैं।

(ख) जिन-सयुक्त मूर्तिया—इस क्षेत्र की जिन-सयुक्त मूर्तियो मे अम्बिका सर्वदा द्विभुजा है। दसवी शती ई० के पूर्व की नेमिनाथ की मूर्तियो मे अम्बिका के साथ आम्रलुम्बि एव सिंहवाहन का प्रदर्शन नही प्राप्त होता है। पर अम्बिका के साथ पुत्र का प्रदर्शन सातवी-आठवी शती ई० मे ही प्रारम्भ हो गया था।[3] दसवी शती ई० के पूर्व की मूर्तियो मे आम्रलुम्बि के स्थान पर पुष्प (या अभयमुद्रा) प्रदर्शित है (चित्र २६)। राज्य सग्रहालय, लखनऊ, ग्यारसपुर, देवगढ एव खजुराहो की दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की नेमिनाथ की मूर्तियो मे द्विभुजी अम्बिका आम्रलुम्बि एव पुत्र से युक्त है।[4] जिन-सयुक्त मूर्तियो मे अम्बिका के साथ सिंहवाहन एव दूसरा पुत्र सामान्यत नही निरूपित है। शीर्षभाग मे आम्रफल के गुच्छक भी कभी-कभी ही उत्कीर्ण किये गये हैं।

देवगढ के मन्दिर १३ और २४ की दो जिन-सयुक्त मूर्तियो (११ वी शती ई०) मे आम्रलुम्बि के स्थान पर अम्बिका के हाथ मे आम्रफल (या फल) प्रदर्शित है। कुछ उदाहरणो (मन्दिर १२, १३) मे दूसरा पुत्र भी उत्कीर्ण है। मन्दिर १२ की चहारदीवारी एव मन्दिर १५ की मूर्तियो मे सिंहवाहन भी वना है। तीन उदाहरणो (१० वी–११ वी शती ई०) मे नेमि के साथ सामान्य लक्षणो वाली द्विभुजा यक्षी भी उत्कीर्ण है। यक्षी अभयमुद्रा (या वरदमुद्रा या पुष्प) एवं फल (या कलश) से युक्त है। चार मूर्तियो (११ वी–१२ वी शती ई०) मे यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करो मे वरद- (या अभय-) मुद्रा, पद्म, पद्म एव फल (या कलश) प्रदर्शित हैं।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र की स्वतन्त्र मूर्तियो मे अम्बिका सदैव द्विभुजा है और आम्रलुम्बि एव पुत्र से युक्त है। ल० दसवी शती ई० की एक पालयुगीन मूर्ति राष्ट्रीय सग्रहालय, दिल्ली (६३ ९४०) मे सगृहीत है। द्विभग मे पद्मासन पर खडी अम्बिका का सिंहवाहन आसन के नीचे उत्कीर्ण है। यक्षी के दाहिने हाथ मे आम्रलुम्बि है और बायें से वह समीप ही खडे (निर्वस्त्र) पुत्र की उगली पकडे है। पोट्टासिंगीदी (क्योझर, उडीसा) की मूर्ति मे सिंहवाहना अम्बिका ललित-मुद्रा मे विराजमान है और उसकी अवशिष्ट वामभुजा मे पुत्र है।[5] अलुआरा से प्राप्त एक मूर्ति पटना सग्रहालय (१०६९४) मे है जिसम दाहिने पार्श्व मे एक पुत्र खडा है।[6] पक्वीरा (मानभूम) की मूर्ति मे अवशिष्ट बाये हाथ मे पुत्र है।[7] अम्बिका-नगर (बाकुडा) एवं वरकोला से भी सिंहवाहना अम्बिका की दो मूर्तिया मिली हैं।[8]

---

१ क्रमाक जे ८५३, जे ७९, ८० ३३४ २ जे ८५३, ८० ३३४ ३ भारत कला भवन, वाराणसी २१२

४ राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे ७९२) एव देवगढ की कुछ नेमिनाथ की मूर्तियो मे अम्बिका के स्थान पर सामान्य लक्षणो वाली यक्षी भी आमूर्तित है।

५ जोशी, अर्जुन, 'फर्दर लाइट ऑन दि रिमेन्स ऐट पोट्टासिंगीदी', उ०हि०रि०ज०, ख० १०, अ० ४, पृ० ३१–३२

६ प्रसाद, एच०के०, 'जैन ब्रोन्जेज इन दि पटना म्यूजियम', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बम्बई, १९६८, पृ० २८९

७ मित्र, कालीपद, 'नोट्स ऑन टू जैन इमेमेज', ज०वि०उ०रि०सो०, ख० २८, भाग २, पृ० २०३

८ मित्रा, देवला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बाकुडा, वेस्ट बंगाल', ज०ए०सो०व०, ख०२४, अ०२, पृ०१३१-३३

ललितमुद्रा मे विराजमान सिंहवाहना अम्बिका की दो मूर्तिया नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओ (११ वी–१२ वी शती ई०) मे उत्कीर्ण हैं । नवमुनि गुफा की मूर्ति मे यक्षी के करो मे आम्रलुम्बि एव पुत्र हैं ।[१] जटामुकुट एवं आम्रफल के गुच्छको से शोभित अम्बिका के समीप ही दूसरा पुत्र (निर्वस्त्र) भी आमूर्तित है । बारभुजी गुफा के उदाहरण मे यक्षी के दाहिने हाथ मे फल और बायें मे आम्रवृक्ष की टहनी हैं ।[२] शीर्षभाग मे आम्रवृक्ष और बायें पार्श्व मे पुत्र उत्कीर्ण हैं ।

दक्षिण भारत—दक्षिण भारत में भी अम्बिका का द्विभुज स्वरूप मे निरूपण ही विशेष लोकप्रिय था । मूर्तियों मे अम्बिका सामान्यत पुत्रो एव सिंहवाहन से युक्त है । दोनो पुत्रो को सामान्यत वाम पार्श्व मे आमूर्तित किया गया है । अम्बिका के हाथ मे आम्रलुम्बि का प्रदर्शन नियमित नही था । दक्षिण भारत मे शीर्षभाग मे आम्रफल के गुच्छको के स्थान पर आम्रवृक्ष के उत्कीर्णन की परम्परा लोकप्रिय थी । अम्बिका दक्षिण भारत की तीन सर्वाधिक लोकप्रिय यक्षियो (अम्बिका, पद्मावती, ज्वालामालिनी) मे थी । अम्बिका की प्राचीनतम मूर्ति अयहोल (कर्नाटक) के मेगुटी मन्दिर (६३४–३५ ई०) से मिली है ।[३] सामान्य पीठिका पर ललितमुद्रा मे विराजमान द्विभुजा यक्षी के दोनो हाथ खण्डित हैं, पर शीर्षभाग मे आम्रवृक्ष एव पैरो के नीचे सिंहवाहन सुरक्षित है । वाम पार्श्व मे अम्बिका का पुत्र उत्कीर्ण है जिसके एक हाथ मे फल है । अम्बिका के पार्श्वों मे पाच सेविकाए बनी हैं । दाहिने पार्श्व की एक सेविका की गोद मे एक बालक (निर्वस्त्र) है जो सम्भवत अम्बिका का दूसरा पुत्र है ।

आनन्दमंगलक गुफा (काची) मे सिंहवाहना अम्बिका की कई स्थानक मूर्तिया हैं । इनमे अम्बिका का बाया हाथ पुत्र के मस्तक पर स्थित है ।[४] त्रावनकोर राज्य के किसी स्थल से प्राप्त एक मूर्ति (९ वी–१० वी शती ई०) मे सिंहवाहना अम्बिका का दाहिना हाथ वरदमुद्रा मे है और बाया नीचे लटक रहा है ।[५] वाम पार्श्व मे दोनो पुत्र बने हैं । कलुगुमलाई (तमिलनाडु) की एक मूर्ति (१० वी–११ वीं शती ई०) मे सिंहवाहना अम्बिका का दाहिना हाथ एक बालिका के मस्तक पर है[६] और बाया फल (या आम्रलुम्बि) लिये है । वाम पार्श्व मे दो बालक आकृतिया उत्कीर्ण हैं ।[७] एलोरा की जैन गुफाओ मे अम्बिका की कई मूर्तिया (१० वी–११ वी शती ई०) हैं । इनमे आम्रवृक्ष के नीचे विराजमान अम्बिका के करो मे आम्रलुम्बि और पुत्र (गोद मे) प्रदर्शित है । यक्षी का दूसरा पुत्र सामान्यत. सिंहवाहन के समीप आमूर्तित है (चित्र ५२) । अगदि के जैन वस्ती (कर्नाटक) की मूर्ति मे यक्षी के दाहिने हाथ मे आम्रलुम्बि है और बाया पुत्र के मस्तक पर स्थित है । दक्षिण पार्श्व मे सिंहवाहन और दूसरा पुत्र आमूर्तित है । मुर्तजापुर (अकोला, महाराष्ट्र) की एक द्विभुज मूर्ति नागपुर सग्रहालय मे है । इसमे सिंहवाहना अम्बिका आम्रलुम्बि एव फल से युक्त है । प्रत्येक पार्श्व मे उसका एक पुत्र खडा है । समान विवरणो वाली एक मूर्ति श्रवणबेलगोला के चामुण्डराय वस्ती से मिली है ।[८]

दक्षिण भारत से अम्बिका की कुछ चतुर्भुज मूर्तिया भी मिली हैं । जिनकाची के भित्ति चित्रो मे अम्बिका चतुर्भुजा है ।[९] पद्मासन मे विराजमान यक्षी के ऊपरी हाथो मे अकुश और पाश तथा शेष मे अभय–और वरदमुद्राए

---

१ मित्रा, देवला, 'शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, ख० १, अ० २, पृ० १२९

२ वही, पृ० १३२

३ कजिन्स, एच०, दि चालुक्यन आर्किटेक्चर, आर्किअलाजिकल सर्वे आव इण्डिया, ख० ४२, न्यू इम्पीरियल सिरीज, पृ० ३१, फलक ४

४ देसाई, पी०बी०, 'यक्षी इमेजेज इन साऊथ इण्डियन जैनिजम', डा० मिराशी फेलिसिटेशन वाल्यूम, नागपुर, १९६५, पृ० ३४५

५ देसाई, पी०बी०, जैनिजम इन साऊथ इण्डिया ऐण्ड सम जैन एपिग्राफ्स, शोलापुर, १९६३, पृ० ६९

६ पुत्र के स्थान पर पुत्री का चित्रण अपारम्परिक है ।

७ देसाई, पी०बी०, पूर्वनि०, पृ० ६४

८ शाह, यू०पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका', ज०यू०बा०, ख० ९, भाग २, पृ० १५४–५६

९ वही, पृ० १५८

प्रदर्शित हैं। बर्जेस ने कन्नड परम्परा पर आधारित चतुर्भुजा कुष्माण्डिनी का एक चित्र भी प्रकाशित किया है जिसमे सिंह-वाहना यक्षी के दोनो पुत्र गोद मे स्थित है और उसके दो ऊपरी हाथो मे खड्ग और चक्र प्रदर्शित हैं।[1]

विश्लेषण

अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत मे दक्षिण भारत की अपेक्षा अम्बिका की अधिक मूर्तिया उत्कीर्ण हुई। जैन देवकुल की प्राचीनतम यक्षी होने के कारण ही शिल्प मे सबसे पहले अम्बिका को मूर्त अभिव्यक्ति मिली। ल० छठी-सातवी शती ई० मे अम्बिका की स्वतन्त्र एवं जिन-सयुक्त मूर्तियो का निरूपण प्रारम्भ हुआ।[2] सभी क्षेत्रो मे अम्बिका का द्विभुज रूप ही विशेष लोकप्रिय था। जिन-सयुक्त मूर्तियो मे तो अम्बिका सदैव द्विभुजा ही है।[3] उसके साथ सिंहवाहन एव आम्रलुम्बि और पुत्र का चित्रण सभी क्षेत्रो मे लोकप्रिय था। शीर्षभाग मे आम्रफल के गुच्छक और पार्श्व मे दूसरे पुत्र का अकन भी नियमित था। श्वेतावर स्थलो पर उपर्युक्त लक्षणो का प्रदर्शन दिगवर स्थलो की अपेक्षा कुछ पहले ही प्रारम्भ हो गया था। श्वेतावर स्थलो (अकोटा) पर इन विशेषताओ का प्रदर्शन छठी-सातवी शती ई० मे और दिगवर स्थलों[4] पर नवी-दसवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ। दिगवर स्थलो की जिन-संयुक्त मूर्तियो मे सिंहवाहन एव दूसरे पुत्र का प्रदर्शन दुर्लभ है। यह भी ज्ञातव्य है कि श्वेतावर स्थलो पर नेमि के साथ सदैव अम्बिका ही निरूपित है, पर दिगवर स्थलो पर कभी-कभी सामान्य लक्षणो वाली अपारम्परिक यक्षी भी आमूर्तित है।

उल्लेखनीय है कि दिगवर ग्रन्थो मे द्विभुजा अम्बिका का ध्यान किया गया है।[5] पर दिगवर स्थलो पर अम्बिका की द्विभुज और चतुर्भुज दोनो ही मूर्तिया उत्कीर्ण हुई। दिगवर परम्परा की सर्वाधिक चतुर्भुजी मूर्तिया खजुराहो से मिली हैं। दूसरी ओर श्वेतावर परम्परा मे अम्बिका का चतुर्भुज रूप मे ध्यान किया गया है, पर श्वेतावर स्थलो पर उसकी द्विभुज मूर्तिया ही अधिक सख्या मे उत्कीर्ण हुई। केवल कुम्भारिया, विमलवसही, जालोर एव तारगा से ही कुछ चतुर्भुजी मूर्तिया मिली हैं। श्वेतावर स्थलो पर परम्परा के अनुरूप चतुर्भुजा अम्बिका के ऊपरी हाथो मे पाश एव अकुश नही मिलते हैं।[6] पर दिगंवर स्थलों[7] की मूर्तियो मे ऊपरी हाथो मे पाश एव अकुश (या त्रिशूलयुक्त घटा) प्रदर्शित हुए हैं। श्वेतावर स्थलो पर अम्बिका की स्थानक मूर्तिया दुर्लभ हैं[8], पर दिगंवर स्थलो से आसीन और स्थानक दोनो ही मूर्तिया मिली हैं।

श्वेतावर स्थलो पर जहा अम्बिका के निरूपण मे एकरूपता प्राप्त होती है[9], वही दिगवर स्थलो पर विविधता देखी जा सकती है। दिगवर स्थलो पर चतुर्भुजा अम्बिका के दो हाथो मे आम्रलुम्बि एव पुत्र और शेष दो हाथो मे पद्म, पद्म-पुस्तक, पुस्तक, अंकुश, पाश, दर्पण एव त्रिशूल-घण्टा मे से कोई दो आयुध प्रदर्शित हैं। खजुराहो की एक अम्बिका मूर्ति (पुरातात्विक सग्रहालय, खजुराहो, १६०८) मे देवी के साथ यक्ष-यक्षी युगल का उत्कीर्णन अम्बिका-मूर्ति के विकास की पराकाष्ठा का सूचक है।

---

१ बर्जेस, जे०, 'दिगवर जैन आइकानोग्राफी', इण्डि०एण्टि०, ख० ३२, पृ० ४६३, फलक ४, चित्र २२

२ प्रारम्भिकतम मूर्तिया अकोटा (गुजरात) से मिली हैं।

३ कुंभारिया एव विमलवसही की कुछ नेमिनाथ मूर्तियो मे अम्बिका चतुर्भुजा भी है।

४ देवगढ, खजुराहो, ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर) एव राज्य सग्रहालय, लखनऊ

५ केवल दिगवर परम्परा के तान्त्रिक ग्रन्थ मे ही चतुर्भुजा एव अष्टभुजा अम्बिका का ध्यान किया गया है।

६ विमलवसही एव तारगा की दो मूर्तियो मे चतुर्भुजा अम्बिका के साथ पाश प्रदर्शित है।

७ खजुराहो, देवगढ एव राज्य सग्रहालय, लखनऊ

८ एक स्थानक मूर्ति तारगा के अजितनाथ मन्दिर पर है।

९ तारंगा, जालोर एव विमलवसही की तीन चतुर्भुज मूर्तियो मे अम्बिका के निरूपण मे रूपगत भिन्नता प्राप्त होती है। अन्य उदाहरणो मे अम्बिका के तीन हाथो मे आम्रलुम्बि और चौथे मे पुत्र हैं।

(२३) पार्श्व (या धरण) यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

पार्श्व (या धरण) जिन पार्श्वनाथ का यक्ष है। श्वेतांवर परम्परा मे यक्ष को पार्श्व[1] और दिगंबर परम्परा में धरण कहा गया है। दोनो परम्पराओ मे सर्पफणो के छत्र से युक्त चतुर्भुज यक्ष का वाहन कूर्म है। श्वेतांवर परम्परा मे पार्श्व को गजमुख वताया गया है।

श्वेतांवर परम्परा—निर्वाणकलिका मे गजमुख पार्श्व यक्ष का वाहन कूर्म है। सर्पफणो के छत्र से युक्त पार्श्व के दक्षिण करो में मातुलिंग एव उरग और वाम मे नकुल एव उरग वर्णित हैं।[2] अन्य ग्रन्थो मे भी सामान्यत इन्ही लक्षणो के उल्लेख हैं।[3] केवल दो ग्रन्थो मे दाहिने हाथ मे उरग के स्थान पर गदा के प्रदर्शन का निर्देश हैं।[4]

दिगवर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रहमे कूर्म पर आरूढ धरण के आयुधो का अनुल्लेख है।[5] *प्रतिष्ठासारोद्धार* मे सर्पफणो से शोभित धरण के दो ऊपरी हाथो मे सर्प और निचले हाथो मे नागपाश एव वरदमुद्रा उल्लिखित हैं।[6] **अपराजितपृच्छा** मे सर्परूप पार्श्व यक्ष को षड्भुज वताया गया है और उसके करो मे धनुष, वाण, भृण्डि, मुद्गर, फल एव वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[7]

यक्ष का नाम (धरणेन्द्र या धरणीधर) सम्भवत शेषनाग (नागराज) से प्रभावित है। शीर्षभाग मे सर्पछत्र एव हाथ मे सर्प का प्रदर्शन भी यही सम्भावना व्यक्त करता है। यक्ष के हाथ मे वासुकि के प्रदर्शन का निर्देश है जो हिन्दू परम्परा के अनुसार सर्पराज और काश्यप का पुत्र है। यक्ष के साथ कूर्मवाहन का प्रदर्शन सम्भवत कमठ (कूर्म) पर उसके प्रभुत्व का सूचक है, जो उसके स्वामी (पार्श्वनाथ) का शत्रु था।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर ग्रन्थ मे पाच सर्पफणो से आच्छादित चतुर्भुज यक्ष का वाहन कूर्म कहा गया है। यक्ष के ऊपरी हाथो मे सर्प और निचले मे अभय एव कटक मुद्राओ का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांवर ग्रन्थ में

---

१ **प्रवचनसारोद्धार** मे वामन नाम से उल्लेख है।

२ पार्श्वयक्ष गजमुखमुरगफणामण्डितशिरस श्यामवर्णं कूर्मवाहन चतुर्भुज वीजपूरकोरगयुतदक्षिणपाणि नकुलकाहियुतवामपाणि चेति। **निर्वाणकलिका** १८ २३

३ **त्रि०श०पु०च०** ९ ३ ३६२–६३, **मन्त्राधिराजकल्प** ३ ४७, **देवतामूर्तिप्रकरण** ७ ६२; **पार्श्वनाथचरित्र** (भावदेवसूरिप्रणीत) ७ ८२७–२८, **रूपमण्डन** ६ २०

४ मातुलिंगगदायुक्तौ विभ्राणो दक्षिणौ करौ।
वामौ नकुलसर्पांकौ कूर्माक- कुन्जरानन ॥
मूर्ध्नि फणिफणच्छत्रो यक्ष पार्श्वोऽसितद्युति। **पद्मानन्दमहाकाव्य**- परिशिष्ट–**पार्श्वनाथ** ९२–९३
द्रष्टव्य, **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७५

५ पार्श्वस्य धरणो यक्ष श्यामाग कूर्मवाहन। **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५ ६७

६ ऊर्ध्वद्विहस्तधृतवासुकिरुद्भटाध सव्यान्यपाणिफणिपाशवरप्रणता।
श्रीनागराजककुद धरणोभ्रनील कूर्मश्रितो भजतु वासुकिमौलिरिज्याम् ॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३ १५१
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७ २३, पृ० ३३८

७ पार्श्वो धनुर्वाण भृण्डि मुद्गरश्च फल वर।
सर्परूप श्यामवर्ण कर्तव्य- शान्तिमिच्छता ॥ **अपराजितपृच्छा** २२१ ५५

८ भट्टाचार्य, वी० सी०, पू०नि०, पृ० ११८

कूर्म पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष के करो मे कलश, पाश, अकुश एव मातुलिंग वर्णित हैं। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे कलश के स्थान पर पद्म (? उत्फुल्लघर) एव शीर्षभाग मे एक सर्पफण के छत्र के प्रदर्शन का उल्लेख है।[1]

मूर्ति-परम्परा

पार्श्व या धरण यक्ष के निरूपण मे केवल सर्पफणो[2] एव कभी-कभी हाथ मे सर्प के प्रदर्शन में ही ग्रन्थो के निर्देशों का पालन हुआ है। ल० नवी शती ई० मे यक्ष की मूर्तियो का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ।

(क) **स्वतन्त्र मूर्तियां**—पार्श्व यक्ष की स्वतन्त्र मूर्तिया (९ वी–१३ वी शती ई०) केवल ओसिया (महावीर मन्दिर), ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर) एव लूणवसही से मिली हैं। लूणवसही की मूर्ति मे यक्ष चतुर्भुज है और अन्य उदाहरणो मे द्विभुज है। ओसिया के महावीर मन्दिर (श्वेतावर, ल० ९ वी शती ई०) से पार्श्व की दो मूर्तिया मिली हैं। एक मूर्ति गूढमण्डप की पूर्वी भित्ति पर है जिसमे सात सर्पफणो के छत्र से युक्त यक्ष स्थानक-मुद्रा मे है और उसके सुरक्षित बायें हाथ मे पुष्प है। दूसरी मूर्ति अर्धमण्डप के स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। इसमे त्रिसर्पफणो से शोभित एव ललित-मुद्रा मे आसीन यक्ष के दाहिने हाथ का आयुध अस्पष्ट है, पर बायें मे सम्भवत. सर्प है। ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर (दिगवर, १० वी शती ई०) की मूर्ति[3] मे पाच सर्पफणो के छत्र से युक्त धरण पद्मासन पर त्रिभग मे खडा है। उसका दाहिना हाथ अभयमुद्रा मे है और बायें मे कमण्डलु है। लूणवसही (श्वेतावर, १३ वी शती ई० का पूर्वार्ध) की मूर्ति गूढमण्डप के दक्षिणी प्रवेश-द्वार पर है जिसमे तीन अवशिष्ट करो मे वरदाक्ष, सर्प एव सर्प प्रदर्शित हैं।

(ख) **जिन-संयुक्त मूर्तिया**—पार्श्वनाथ की मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी का अकन ल० दसवीं-ग्यारहवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ। ज्ञातव्य है कि दिगवर स्थलो पर पार्श्वनाथ की मूर्तियो मे सिंहासन या पीठिका के छोरो पर यक्ष-यक्षी का चित्रण नियमित नही था।[4] गुजरात और राजस्थान की सातवी से बारहवी शती ई० की श्वेतावर परम्परा की पार्श्वनाथ की मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं। अकोटा, ओसिया (१०१९ ई०) एव कुम्मारिया (पार्श्वनाथ मन्दिर, १२ वी शती ई०) की कुछ पार्श्वनाथ की मूर्तियो मे सर्वानुभूति एव अम्बिका के सिरो पर सर्पफणो के छत्र भी प्रदर्शित हैं जो पार्श्वनाथ का प्रभाव है। विमलवसही की देवकुलिका ४ (११८८ ई०) की अकेली मूर्ति मे पार्श्वनाथ के साथ पारम्परिक यक्ष निरूपित है। कूर्म पर आरूढ एव तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त चतुर्भुज पार्श्व गजमुख है और करो मे मोदक-पात्र, सर्प, सर्प एव धन का थैला[5] लिये है। एक हाथ मे मोदकपात्र का प्रदर्शन और यक्ष का गजमुख होना गणेश का प्रभाव है।

उत्तरप्रदेश एव मध्यप्रदेश के विभिन्न क्षेत्रो की पार्श्वनाथ की मूर्तियो मे भी यक्ष-यक्षी अकित हैं। देवगढ की तीस मूर्तियो में से केवल सात ही मे (१० वी-११ वी शती ई०) यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।[6] छह उदाहरणो मे द्विभुज यक्ष-यक्षी

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २१०

२ शीर्षभाग के सर्पफणो की सख्या (१, ३, ५, ७) कभी स्थिर नही हो सकी।

३ यह मूर्ति मण्डप के उत्तरी जंघा पर है।

४ दिगवर स्थलो की अधिकाश मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी के स्थान पर मूलनायक के पार्श्वों मे सर्पफणो के छत्रो से युक्त दो स्त्री-पुरुष आकृतिया उत्कीर्ण हैं, जो धरण और पद्मावती हैं। यह उस समय का अकन है जब कमठ के उपसर्ग से पार्श्वनाथ की रक्षा के लिए धरणेन्द्र पद्मावती के साथ देवलोक से पार्श्वनाथ के निकट आया था। ऐसी मूर्तियो मे धरण सामान्यत चामर (या घट) और पद्म (या फल) से युक्त है तथा पद्मावती के दोनो हाथो मे एक लम्बा छत्र प्रदर्शित है जिसका ऊपरी भाग पार्श्व के मस्तक के ऊपर है। यह चित्रण परम्परासम्मत है। कुछ मूर्तियो (विशेषत देवगढ) मे इन आकृतियो के साथ ही सिंहासन छोरो पर यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं।

५ यह नकुल भी हो सकता है।

६ अन्य उदाहरणो में सामान्यत चामरधारी धरणेन्द्र एवं छत्र या चामरधारिणी पद्मावती आमूर्तित है।

सामान्य लक्षणो वाले हैं ।[१] मन्दिर ९ की दसवी शती ई० की एक मूर्ति मे यक्ष-यक्षी तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त हैं । मन्दिर १२ के समीप की एक अरक्षित मूर्ति (११ वीं शती ई०) में एक सर्पफण के छत्र से युक्त यक्ष-यक्षी चतुर्भुज हैं । यक्ष के हाथो मे अभयमुद्रा, सर्प, पाश एव कलश हैं । इस मूर्ति के अतिरिक्त अन्य किसी उदाहरण मे देवगढ मे पार्श्व के साथ पारम्परिक यक्ष-यक्षी नही निरूपित हुए ।

खजुराहो की केवल चार मूर्तियो (११ वी-१२ वी शती ई०) मे यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं ।[२] स्थानीय सग्रहालय (के १००) की एक मूर्ति (११ वी शती ई०) मे पाच सर्पफणो से शोभित द्विभुज यक्ष फल (?) एव फल से युक्त है । पुरातात्विक सग्रहालय, खजुराहो की एक मूर्ति (१६१८, १२ वी शती ई०) मे सर्पफणो की छत्रावली से युक्त यक्ष नमस्कार-मुद्रा मे निरूपित है । स्थानीय सग्रहालय (के ५) की एक मूर्ति (११ वी शती ई०) मे चतुर्भुज यक्ष के दो अवशिष्ट करो मे पद्म एव फल हैं । स्थानीय सग्रहालय (के ६८) की एक अन्य मूर्ति मे पाच सर्पफणो के छत्र वाले चतुर्भुज यक्ष के करो मे अभयमुद्रा, शक्ति (?), सर्प एव कलश प्रदर्शित हैं । खजुराहो मे यद्यपि धरण का कोई निश्चित स्वरूप नही नियत हुआ, पर शीर्षभाग मे सर्पफणो के छत्र का चित्रण अन्य क्षेत्रो की अपेक्षा नियमित था । राज्य सग्रहालय, लखनऊ की पार्श्वनाथ की केवल चार ही मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी उत्कीर्णित हैं । नवी-दसवी शती ई० की तीन मूर्तियो मे द्विभुज यक्ष की दाहिनी भुजा मे फल और बायी मे धन का थैला हैं ।[३] ग्यारहवी शती ई० की चौथी मूर्ति (जे ७९४) मे पाच सर्पफणो वाले चतुर्भुज यक्ष के सुरक्षित दाहिने हाथो मे फल एवं पद्म प्रदर्शित हैं ।

दक्षिण भारत—उत्तर भारत के दिगबर स्थलो के समान ही दक्षिण भारत मे भी पार्श्वनाथ के सिंहासन के छोरो पर यक्ष-यक्षी का निरूपण लोकप्रिय नही था ।[४] दक्षिण कन्नड क्षेत्र की एक पार्श्वनाथ मूर्ति (१० वी-११ वी शती ई०) मे एक सर्पफण के छत्र से युक्त यक्ष चतुर्भुज है । यक्ष के तीन सुरक्षित करो मे गदा, कलश और अभयमुद्रा हैं ।[५] कन्नड शोध सस्थान सग्रहालय (एस० सी० ५३) की मूर्ति मे चतुर्भुज यक्ष के हाथो मे पद्म (?), पाश, परशु एव फल हैं ।[६] प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम, वम्बई मे दो स्वतन्त्र चतुर्भुज मूर्तिया हैं ।[७] एक उदाहरण मे तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त यक्ष कूर्म पर आरूढ है और उसके करो मे वरदमुद्रा, सर्प, सर्प एवं नागपाश प्रदर्शित हैं । तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त दूसरी मूर्ति (१२ वी शती ई०) मे यक्ष के हाथो मे सनाल पद्म, गदा, पाश (नाग ?) एव वरदमुद्रा हैं ।[८] यक्ष ललितमुद्रा में है ।

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत मे जैन परम्परा के विपरीत यक्ष का द्विभुज स्वरूप मे निरूपण ही विशेष लोकप्रिय था । केवल कुछ ही उदाहरणो मे यक्ष चतुर्भुज है ।[९] यक्ष की स्वतन्त्र मूर्तियो का उत्कीर्णन नवी शती ई०

---

१ इनके करो मे अभयमुद्रा (या गदा) एव कलश (या फल या धन का थैला) प्रदर्शित हैं ।

२ अन्य उदाहरणो मे धरण एव पद्मावती की क्रमश चामर एव छत्र (या चामर) से युक्त आकृतिया उत्कीर्ण हैं ।

३ जी ३१०, जे ८८२, ४० १२१

४ वादामी एव अयहोल की मूर्तियो मे दोनो पार्श्वों मे धरणेन्द्र और पद्मावती को क्रमश. नमस्कार-मुद्रा मे (या अभय-मुद्रा व्यक्त करते हुए) और छत्र धारण किये हुए दिखाया गया है । धरणेन्द्र सर्पफण के छत्र से रहित और पद्मावती उससे युक्त हैं ।

५ हाडवे, डब्ल्यू० एस०, 'नोट्स आन टू जैन मेटल इमेजेज', रूपम, अ० १७, पृ० ४८–४९

६ अन्निगेरी, ए० एम०, ए गाइड टू दि कन्नड रिसर्च इन्स्टिट्यूट म्यूजियम, धारवाड, १९५८, पृ० १९

७ संकलिया, एच० डी०, 'जैन यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', बु०डे०का०रि०इ०, ख० १, अ० २–४, पृ० १५७–५८, जै०क०स्था०, ख० ३, पृ० ५८३–८४

८ यह पाताल यक्ष की भी मूर्ति हो सकती है ।

९ चतुर्भुज मूर्तिया देवगढ़, खजुराहो, राज्य सग्रहालय, लखनऊ, विमलवसही एव लूणवसही से मिली हैं । दिगबर स्थलों पर चतुर्भुज यक्ष की अपेक्षाकृत अधिक मूर्तिया हैं ।

मे प्रारम्भ हुआ। यक्ष की प्रारम्भिक मूर्तिया ओसिया के महावीर मन्दिर से मिली है। पार्श्वनाथ की मूर्तियो में पारम्परिक यक्ष का चित्रण दसवी-ग्यारहवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ।[1] यक्ष के साथ कूर्मवाहन केवल एक ही मूर्ति (विमलवसही की देवकुलिका ४) मे उत्कीर्ण है। जिन-सयुक्त एवं स्वतन्त्र मूर्तियो मे यक्ष के साथ केवल सर्पफणो के छत्र और हाथ मे सर्प के प्रदर्शन में ही परम्परा का निर्वाह किया गया है। पुरातात्विक स्थलो पर मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से यक्ष का कोई स्वतन्त्र रूप भी नही निश्चित हुआ। केवल विमलवसही की देवकुलिका ४ की मूर्ति मे ही यक्ष के निरूपण मे पारम्परिक विशेषताए प्रदर्शित हैं।[2] एक उदाहरण के अतिरिक्त[3] श्वेतांवर स्थलो की अन्य सभी जिन-संयुक्त मूर्तियो मे यक्ष सर्वानुभूति है। पर दिगंवर स्थलो पर सामान्य लक्षणो वाले यक्ष के साथ ही कभी-कभी स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष भी निरूपित हैं। कई उदाहरणो मे सर्पफणो के छत्र वाले यक्ष के हाथ मे सर्प भी प्रदर्शित है।

(२३) पद्मावती यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

पद्मावती जिन पार्श्वनाथ की यक्षी है। दोनो परम्पराओ मे पद्मावती का वाहन कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट) है[4] तथा देवी के मुख्य आयुध पद्म, पाश एवं अकुश हैं।

श्वेतांवर परम्परा—निर्वाणकलिका मे चतुर्भुजा पद्मावती का वाहन कुर्कुट है और उसके दक्षिण करो मे पद्म, और पाश तथा वाम मे फल और अकुश वर्णित है।[5] समान लक्षणो का उल्लेख करने वाले अन्य सभी ग्रन्थो मे कुर्कुट के स्थान पर वाहन के रूप मे कुर्कुट-सर्प का उल्लेख है।[6] **मन्त्राधिराजकल्प** मे पद्मावती के मस्तक पर तीन सर्पफणो के छत्र के प्रदर्शन का निर्देश है।[7]

दिगंवर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे पद्मवाहना पद्मावती का चतुर्भुज, षड्भुज एव चतुर्विंशतिभुज रूपो मे ध्यान किया गया है।[8] चतुर्भुजा पद्मावती के तीन हाथो मे अकुश, अक्षसूत्र एव पद्म, तथा षड्भुजा यक्षी के करो मे पाश,

---

१ देवगढ, खजुराहो एव राज्य सग्रहालय, लखनऊ

२ मोदकपात्र के अतिरिक्त।

३ विमलवसही की देवकुलिका ४ की मूर्ति

४ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे वाहन पद्म है।

५ पद्मावती देवी कनकवर्णा कुर्कुटवाहना चतुर्भुजा पद्मपाशान्वितदक्षिणकरा फलाकुंशाधिष्ठित वामकरा चेति ॥ **निर्वाणकलिका** १८ २३

६ **त्रि०श०पु०च०** ९ ३ ३६४–६५, **पद्मानन्दमहाकाव्य** परिशिष्ट—**पार्श्वनाथ** ९३–९४, **पार्श्वनाथचरित्र** ७.८२९–३०, **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७७, **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.६३, **रूपमण्डन** ६ २१

७ **मन्त्राधिराजकल्प** ३ ६५

८ देवी पद्मावती नाम्ना रक्तवर्णा चतुर्भुजा।
पद्मासनाकुश धत्ते अक्षसूत्र च पकज।
अथवा षड्भुजा देवी चतुर्विंशति सद्भुजा॥
पाशासिकुतवालेन्दुगदामुशलसयुत्।
भुजाष्टक समाख्यात चतुर्विंशतिरुच्यते॥
शखासिचक्रवालेन्दु पद्मोत्पलशरासन।
पाशाकुश घट (वायु) वाण मुशलखेटक।
त्रिशूलंपरशु कुन्त भिण्डमाल फल गदा।
पत्रचपल्लव धत्ते वरदा धर्मवत्सला॥ **प्रतिष्ठासारसग्रह** ५ ६७–७१

खड्ग, शूल, अर्धचन्द्र (वालेन्दु), गदा एव मुसल वर्णित है। चतुर्विंशतिभुज यक्षी के करो मे शख, खड्ग, चक्र, अर्धचन्द्र (वालेन्दु), पद्म, उत्पल, धनुष (शरासन), शक्ति, पाश, अकुश, घण्टा, वाण, मुसल, खेटक, त्रिशूल, परशु, कुत, भिण्ड, माला, फल, गदा, पत्र, पल्लव एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[1] प्रतिष्ठासारोद्धार मे भी कुक्कुट-सर्प पर आरूढ एवं तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त यक्षी का सम्भवत चतुर्विंशतिभुज रूप मे ही ध्यान है। पद्म पर आसीन यक्षी के करो मे अकुश, पाश, शख, पद्म एव अक्षमाला आदि प्रदर्शित है।[2] प्रतिष्ठातिलकम्[3] मे भी सम्भवत चतुर्विंशतिभुज पद्मावती का ही ध्यान किया गया है। पद्मस्थ यक्षी के छह हाथो मे पाश आदि और शेष मे शख, खड्ग, अकुश, पद्म, अक्षमाला एव वरदमुद्रा आदि के प्रदर्शन का निर्देश है। ग्रन्थ मे वाहन का अनुल्लेख है। अपराजितपृच्छा मे चतुर्भुजा पद्मावती का वाहन कुक्कुट और करो के आयुध पाश, अकुश, पद्म एव वरदमुद्रा है।[4]

धरणेन्द्र (पाताल देव) की भार्या होने के कारण ही पद्मावती के साथ सर्प (कुक्कुट-सर्प एव सर्पफण का छत्र) को सम्बद्ध किया गया। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि पार्श्वनाथ का जन्म-जन्मान्तर का शत्रु कमठ दूसरे भव मे कुक्कुट-सर्प के रूप मे उत्पन्न हुआ था। पद्मावती के वाहन के रूप मे कुक्कुट-सर्प का उल्लेख सम्भवत. उसी कथा से प्रभावित और पार्श्वनाथ के शत्रु पर उसकी यक्षी (पद्मावती) के नियन्त्रण का सूचक है। यक्षी के नाम, पद्मा या पद्मावती को यक्षी की भुजा मे पद्म के प्रदर्शन से सम्बन्धित किया जा सकता है। पद्मावती को हिन्दू देवकुल की सर्प से सम्बद्ध लोक-देवी मनसा से भी सम्बद्ध किया जाता है। मनसा को पद्मा या पद्मावती नामो से भी सम्बोधित किया गया है।[5] पर जैन यक्षी की लाक्षणिक विशेषताए मनसा से पूर्णत भिन्न हैं। हिन्दू परम्परा मे शिव की शक्ति के रूप मे भी पद्मावती (या परा) का उल्लेख है। ऐसे स्वरूप मे नाग पर आरूढ एव नाग की माला से शोभित चतुर्भुजा पद्मावती त्रिनेत्र, अर्धचन्द्र से सुशोभित तथा करो मे माला, कुम्भ, कपाल एव नीरज से युक्त है।[6] ज्ञातव्य है कि नाग से सम्बद्ध जैन पद्मावती को दिगवर परम्परा मे पद्म, माला एव अर्धचन्द्र से युक्त वताया गया है। भैरव-पद्मावती कल्प मे यक्षी को त्रिनेत्र भी कहा गया है।

---

१ वी० सी० भट्टाचार्य ने प्रतिष्ठासारसंग्रह की आरा की पाण्डुलिपि के आधार पर वज्र एव शक्ति का उल्लेख किया है। द्रष्टव्य, भट्टाचार्य, वी० सी०, पू०नि०, पृ० १४४

२ येष्टु कुर्कुटसर्पगात्रिफणकोत्तसाद्विपोयात षट्
पाशादि सदसत्कृते च धृतशखास्पादिदो अष्टका।
ता शान्तामरुणा स्फुरच्छृणिसरोजन्माक्षव्यालाम्वरा
पद्मस्या नवहस्तकप्रभुनता यायज्मि पद्मावतीम्॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३ १७४

३ पाशाद्यन्वितषड्भुजारिजयदा ध्याता चतुर्विंशति।
शखास्यादियुतान्करास्तु दधती या क्रूरशान्त्यर्थदा॥
शान्त्यै साकुशवारिजाक्षमणिसद्दानैश्चतुर्भि करैर्युक्ता।
ता प्रयजामि पार्श्वविनता पद्मस्थपद्मावतीम्॥ प्रतिष्ठातिलकम् ७ २३, पृ० ३४७–४८

४ पाशाङ्कुशौ पद्मवरे रक्तवर्णा चतुर्भुजा।
पद्मासना कुक्कुटस्था ख्याता पद्मावतीतिच॥ अपराजितपृच्छा २२१ ३७

५ वनर्जी, जे० एन०, पू०नि०, पृ० ५६३

६ क नागाधीश्वरविष्टरा फणिफणोत्त सोरुरत्नावली-
भास्वद्देहलता दिवाकरनिभा नेत्रत्रयोद्भासिताम्।
मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्धचूडा परा
सर्वज्ञेश्वर भैरवाङ्कनिलया पद्मावती चिन्तये॥ मारकण्डेयपुराण : अध्याय ८६ ध्यानम्

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर ग्रन्थ मे पाच सर्पफणो के छत्र से शोभित चतुर्भुजा पद्मावती का वाहन हस है। यक्षी के ऊपरी हाथो मे कुठार एव कुलिश और निचले मे अभय एवं कटक मुद्राए वर्णित हैं।[1] **भैरव-पद्मावती कल्प** मे पद्म पर अवस्थित चतुर्भुजा पद्मा को त्रिनेत्र और हाथो मे पाश, फल, वरदमुद्रा एव सृणि से युक्त कहा गया है। पद्मावती को त्रिपुरा एव त्रिपुरभैरवी जैसे नामो से भी सम्बोधित किया गया है।[2] अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे कुक्कुट-सर्प पर आरूढ चतुर्भुजा यक्षी को त्रिलोचना वताया गया है और उसके हाथो मे सृणि, पाश, वरदमुद्रा एव पद्म का उल्लेख है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे सर्पफण से आच्छादित चतुर्भुजा एव त्रिलोचना यक्षी का वाहन सर्प तथा करो के आयुध पाश, अकुश, फल एव वरदमुद्रा हैं।[3] श्वेतावर ग्रन्थो के विवरण सामान्यत उत्तर भारतीय श्वेतावर परम्परा के विवरण से मेल खाते हैं।

मूर्ति-परम्परा

पद्मावती की प्राचीनतम मूर्तिया नवी-दसवी शती ई० की हैं। ये मूर्तिया ओसिया के महावीर एव ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिरो से मिली है। इनमे पद्मावती द्विभुजा है।[4] सभी क्षेत्रो की मूर्तियो मे सर्पफणो के छत्र से युक्त पद्मावती का वाहन सामान्यत कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट)[5] है और उसके करो मे सर्प, पाश, अंकुश एव पद्म प्रदर्शित हैं।

गुजरात-राजस्थान (क) स्वतन्त्र मूर्तिया—इस क्षेत्र मे ल० नवी शती ई० मे पद्मावती की स्वतन्त्र मूर्तियो का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ।[6] इस क्षेत्र की स्वतन्त्र मूर्तिया (९वी-१३वी शती ई०) ओसिया (महावीर मन्दिर), झालावाड (झालरापाटन), कुम्भारिया (नेमिनाथ मन्दिर), और आवू (विमलवसही एवं लूणवसही) से मिली हैं। ओसिया के महावीर मन्दिर की मूर्ति उत्तर भारत मे पद्मावती की प्राचीनतम मूर्ति है जो मन्दिर के मुखमण्डप के उत्तरी छज्जे पर उत्कीर्ण है। कुक्कुटसर्प पर विराजमान द्विभुजा पद्मावती के दाहिने हाथ मे सर्प और वायें मे फल हैं। अष्टभुजा पद्मावती की एक मूर्ति झालरापाटन (झालावाड, राजस्थान) के जैन मन्दिर (१०४३ ई०) के दक्षिणी अधिष्ठान पर है। ललितमुद्रा मे विराजमान यक्षी के मस्तक पर सात सर्पफणो का छत्र और करो मे वरदमुद्रा, वज्र, पद्मकलिका, कृपाण, खेटक, पद्म-कलिका, घण्टा एवं फल प्रदर्शित हैं।

वारहवी शती ई० की दो चतुर्भुज मूर्तिया कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर की पश्चिमी देवकुलिका की वाह्य भित्ति पर हैं (चित्र ५६)। दोनो उदाहरणो मे पद्मावती ललितमुद्रा मे भद्रासन पर विराजमान है और उसके आसन के समक्ष कुक्कुट-सर्प उत्कीर्ण है। एक मूर्ति मे यक्षी के मस्तक पर पाच सर्पफणो का छत्र भी प्रदर्शित है। हाथो मे वरदाक्ष, अकुश, पाश एव फल हैं। सर्पफण से रहित दूसरी मूर्ति मे यक्षी के करो मे पद्मकलिका, पाश, अकुश एवं फल हैं। विमलवसही के गूढमण्डप के दक्षिणी द्वार पर भी चतुर्भुजा पद्मावती की एक मूर्ति (१२ वी शती ई०) उत्कीर्ण है जिसमे कुक्कुट-सर्प पर आरूढ पद्मावती सनालपद्म, पाश, अकुश (?) एव फल से युक्त है। उपर्युक्त तीनो ही मूर्तियो के निरूपण मे

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २१०

२ पाशफलवरदगजवशकरणकरा पद्मविष्टरा पद्मा।
सा मा रक्षतु देवी त्रिलोचना रक्तपुष्पाभा॥
तोतला त्वरिता नित्या त्रिपुरा कामसाधिनी।
दिव्या नामानि पद्मायास्तथा त्रिपुरभैरवी॥ **भैरवपद्मावतीकल्प** (दीपार्णव से उद्धृत, पृ० ४३९)

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २१०

४ पद्मावती की वहुभुजी मूर्तियां देवगढ, शहडोल, वारभुजी गुफा एव झालरापाटन से मिली हैं।

५ कभी-कभी यक्षी को सर्प, पद्म और मकर पर भी आरूढ दिखाया गया है।

६ इस क्षेत्र मे पद्मावती की स्वतन्त्र मूर्तियां केवल श्वेतावर स्थलो से मिली हैं।

श्वेतावर परम्परा का निर्वाह किया गया है। लूणवसही के गूढमण्डप के दक्षिणी प्रवेश-द्वार के दहलीज पर चतुर्भुजा पद्मावती की एक छोटी मूर्ति उत्कीर्ण है। यक्षी का वाहन मकर है और उसके हाथो मे वरदाक्ष, सर्प, पाश एव फल प्रदर्शित हैं। मकर वाहन का प्रदर्शन परम्परासम्मत नही है, पर हाथो में सर्प एव पाश के प्रदर्शन के आधार पर देवी की पद्मावती से पहचान की जा सकती है। फिर दहलीज के दूसरे छोर पर पार्श्व यक्ष की मूर्ति भी उत्कीर्ण है। मकर वाहन का प्रदर्शन सम्भवत पार्श्व यक्ष के कूर्म वाहन से प्रभावित है।

विमलवसही की देवकुलिका ४१ के मण्डप के वितान पर षोडशभुजा पद्मावती की एक मूर्ति है।[1] सप्तसर्पफणों के छत्र से युक्त एव ललितमुद्रा मे विराजमान देवी के आसन के समक्ष नाग (वाहन) उत्कीर्ण है। देवी के पार्श्वों मे नागी की दो आकृतिया अंकित हैं। देवी के दो ऊपरी हाथो मे सर्प है, दो हाथ पार्श्व की नागी मूर्तियों के मस्तक पर हैं तथा शेष मे वरदमुद्रा, त्रिशूल-घण्टा, खड्ग, पाश, त्रिशूल, चक्र (छल्ला), खेटक, दण्ड, पद्मकलिका, वज्र, सर्प एव जलपात्र प्रदर्शित हैं।

(ख) जिन-सयुक्त मूर्तिया—इस क्षेत्र की पार्श्वनाथ की मूर्तियो मे यक्षी के रूप मे अम्बिका निरूपित है। केवल विमलवसही (देवकुलिका ४) एव ओसिया (वलानक) की पार्श्वनाथ की दो मूर्तियों (११ वी-१२ वी शती ई०) मे ही पारम्परिक यक्षी आमूर्तित है। विमलवसही की मूर्ति मे तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त चतुर्भुजा यक्षी कुक्कुट-सर्प पर आरूढ है और हाथो मे पद्म, पाश, अकुश एव फल धारण किये है। ओसिया की मूर्ति मे सात सर्पफणो के छत्र से युक्त यक्षी का वाहन सर्प है। द्विभुजा यक्षी की अवशिष्ट एक भुजा मे खड्ग है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश (क) स्वतन्त्र मूर्तिया—इस क्षेत्र की प्राचीनतम मूर्ति देवगढ के मन्दिर १२ (८६२ ई०) पर है। पार्श्वनाथ के साथ 'पद्मावती' नाम की चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है जिसके हाथो मे वरदमुद्रा, चक्राकार सनालपद्म, लेखनी पट्ट (या फलक) एव कलश प्रदर्शित हैं।[2] यक्षी का निरूपण परम्परासम्मत नही है। दसवी शती ई० की चार द्विभुजी मूर्तिया ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर से मिली है।[3] तीन मूर्तिया मण्डप के जघा पर उत्कीर्ण हैं। इनमे त्रिभंग म खडी यक्षी के मस्तक पर सर्पफणो के छत्र प्रदर्शित है। उत्तरी और दक्षिणी जघा की दो मूर्तियो मे यक्षी के करो मे व्याख्यान-मुद्रा-अक्षमाला एव जलपात्र हैं। पश्चिमी जघा की मूर्ति मे दाहिने हाथ मे पद्म है और वाया एक गदा पर स्थित है।[4] ज्ञातव्य है कि देवगढ एव खजुराहो की ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की मूर्तियो मे भी पद्मावती के साथ पद्म एव गदा प्रदर्शित हैं। मालादेवी मन्दिर के गर्भगृह की पश्चिमी भित्ति की मूर्ति मे तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त यक्षी के अवशिष्ट दाहिने हाथ में पद्म है। ल० दसवी शती ई० की एक चतुर्भुज मूर्ति त्रिपुरी के बालसागर सरोवर के मन्दिर में सुरक्षित है।[5] सात सर्पफणो के छत्र से युक्त पद्मवाहना पद्मावती के करो मे अभयमुद्रा, सनालपद्म, सनालपद्म एव कलश हैं। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दिगंबर स्थलो पर दसवी शती ई० तक पद्मावती के साथ केवल सर्पफणो के छत्र (३, ५ या ७) एव हाथ मे पद्म का प्रदर्शन ही नियमित हो सका था। यक्षी के साथ कुक्कुट-सर्प (वाहन) एव पाश और अकुश का प्रदर्शन ग्यारहवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ।

ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की दिगवर परम्परा की कई मूर्तिया देवगढ़, खजुराहो, राज्य सग्रहालय, लखनऊ एव शहडोल से ज्ञात हैं। इन स्थलो की मूर्तियो मे पद्मावती के मस्तक पर सर्पफणो के छत्र और करो मे पद्म, कलश, अंकुश,

---

१ देवी महाविद्या वैरोट्या भी हो सकती है। पद्मावती से पहचान के मुख्य आधार करो के आयुध एव शीर्षभाग मे सर्पफणो के छत्र के चित्रण हैं।

२ जि०इ०दे०, पृ० १०२, १०५, १०६

३ दिगवर ग्रन्थो मे द्विभुजा पद्मावती का अनुल्लेख है। पर दिगवर स्थलो पर द्विभुजा पद्मावती का निरूपण लोकप्रिय था।

४ गदा का निचला भाग अकुश की तरह निर्मित है।

५ शास्त्री, अजयमित्र, 'त्रिपुरी का जैन पुरातत्व', **जैन मिलन**, वर्ष १२, अ० २, पृ० ७१

पाश एव पुस्तक का प्रदर्शन लोकप्रिय था। वाहन का चित्रण केवल खजुराहो और देवगढ मे ही हुआ है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ मे पद्मावती की दो मूर्तियां हैं। इनमे पद्मावती चतुर्भुजा और ललितमुद्रा मे विराजमान है। एक मूर्ति (जी ३१६, ११ वी शती ई०) मे सात सर्पफणो के छत्र से युक्त पद्मावती पद्म पर आसीन है और उसके तीन सुरक्षित हाथो मे पद्म, पद्मकलिका एवं कलश हैं। उपासको, मालाधरो एव चामरधारिणो सेविकाओ से वेष्टित पद्मावती के शीर्षभाग मे तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त पार्श्वनाथ की छोटी मूर्ति उत्कीर्ण है। वाराणसी से मिली दूसरी मूर्ति (जी ७३) मे पद्मावती पाच सर्पफणो के छत्र एवं हाथो मे अभयमुद्रा, पद्मकलिका, पुस्तिका एव कलश से युक्त है।

खजुराहो मे चतुर्भुजा पद्मावती की तीन मूर्तिया (११ वी शती ई०) हैं। ये सभी मूर्तिया उत्तरंगो पर उत्कीर्ण हैं। आदिनाथ मन्दिर एव मन्दिर २२ की दो मूर्तियो मे पद्मावती के मस्तक पर पाच सर्पफणो के छत्र प्रदर्शित हैं। दोनो उदाहरणो मे वाहन सम्भवत कुक्कुट है। आदिनाथ मन्दिर की मूर्ति मे ललितमुद्रा मे विराजमान पद्मावती के करो मे अभयमुद्रा, पाश, पद्मकलिका एवं जलपात्र हैं। मन्दिर २२ की स्थानक मूर्ति मे यक्षी के दो सुरक्षित हाथो मे वरदमुद्रा एव पद्म हैं। जार्डिन सग्रहालय, खजुराहो (१४६७) की तीसरी मूर्ति मे ललितमुद्रा मे विराजमान पद्मावती सात सर्पफणो के छत्र से युक्त है और उसका वाहन कुक्कुट है (चित्र ५७)। यक्षी के तीन अवशिष्ट करो मे वरदमुद्रा, पाश एव अकुश प्रदर्शित हैं। अन्तिम मूर्ति के निरूपण मे अपराजितपृच्छा की परम्परा का निर्वाह किया गया है।

देवगढ से पद्मावती की द्विभुजी, चतुर्भुजी एव द्वादशभुजी मूर्तिया मिली हैं।[1] उल्लेखनीय है कि पद्मावती के निरूपण मे सर्वाधिक स्वरूपगत वैविध्य देवगढ की मूर्तियो मे ही प्राप्त होता है। चतुर्भुजी एव द्वादशभुजी मूर्तिया ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की और द्विभुजी मूर्तिया बारहवी शती ई० की हैं। द्विभुजा पद्मावती की दो मूर्तिया हैं, जो क्रमश मन्दिर १२ (दक्षिणी भाग) एव १६ के मानस्तम्भो पर उत्कीर्ण हैं। दोनो उदाहरणो मे यक्षी के मस्तक पर तीन सर्पफणो के छत्र हैं। एक मूर्ति मे पद्मावती वरदमुद्रा एव सनालपद्म और दूसरी मे पुष्प एव फल से युक्त है। पद्मावती की चतुर्भुजी मूर्तिया तीन हैं। इनमे ललितमुद्रा मे विराजमान पद्मावती पाच सर्पफणो के छत्र से युक्त है। मन्दिर १ के मानस्तम्भ (११ वी शती ई०) की मूर्ति मे कुक्कुट-सर्प पर आरूढ यक्षी के तीन अवशिष्ट करो मे धनुष, गदा एव पाश प्रदर्शित हैं। मन्दिर के समीप के दो अन्य मानस्तम्भो (१२ वी शती ई०) की मूर्तियो मे पद्मावती पद्मासन पर आसीन है और उसके हाथो मे वरदमुद्रा, पद्म, पद्म एवं जलपात्र हैं। एक उदाहरण मे यक्षी के मस्तक के ऊपर पाच सर्पफणो के छत्र वाली जिन मूर्ति भी उत्कीर्ण है। द्वादशभुजा पद्मावती की मूर्ति मन्दिर ११ के समक्ष के मानस्तम्भ (१०५९ ई०) पर बनी है। ललितमुद्रा मे आसीन पद्मावती का वाहन कुक्कुट-सर्प है। पाच सर्पफणो के छत्र से युक्त यक्षी के करो मे वरदमुद्रा, बाण, अकुश, सनालपद्म, शृंखला, दण्ड, छत्र, वज्र, सर्प, पाश, धनुष एव मातुलिंग प्रदर्शित हैं। देवगढ की मूर्तियो के अध्ययन से स्पष्ट है कि वहा दिगबर परम्परा के अनुरूप ही पद्मावती के साथ पद्म और कुक्कुट-सर्प दोनो को यक्षी के वाहन के रूप मे प्रदर्शित किया गया है। पद्मावती के शीर्षभाग मे सर्पफणो के छत्र (३ या ५) एव करो मे पद्म, गदा, पाश एव अकुश का प्रदर्शन भी लोकप्रिय था। यक्षी के आयुध सामान्यतः परम्परासम्मत हैं।

द्वादशभुजा पद्मावती की एक मूर्ति (११ वी शती ई०) शहडोल (म० प्र०) से भी मिली है। यह मूर्ति सम्प्रति ठाकुर साहब संग्रह, शहडोल मे है (चित्र ५५)।[2] पद्मावती के शीर्षभाग मे सात सर्पफणो के छत्र से युक्त पार्श्वनाथ की मूर्ति उत्कीर्ण है। किरीटमुकुट एव पाच सर्पफणो के छत्र से युक्त यक्षी पद्म पर ध्यानमुद्रा मे विराजमान है। आसन के नीचे कूर्मवाहन अकित है।[3] देवी के करो मे वरदमुद्रा, खड्ग, परशु, बाण, वज्र, चक्र (छल्ला), फलक, गदा, अकुश, धनुष, सर्प एव पद्म प्रदर्शित हैं। पार्श्वों मे दो नाग-नागी आकृतिया बनी हैं। मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र से मिली ल० दसवी-

---

१ द्विभुज एव द्वादशभुज स्वरूपो मे पद्मावती का अकन परम्परासम्मत नही है।

२ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र सग्रह ए ७ ५३

३ कूर्मवाहन का प्रदर्शन परम्परा विरुद्ध और सम्भवत. धरण यक्ष के कूर्मवाहन से प्रभावित है।

ग्यारहवीं शती ई० की एक चतुर्भुज पद्मावती मूर्ति (?) ब्रिटिश सग्रहालय, लन्दन मे है।[1] तीन सर्पफणों के छत्र वाली पद्मावती के हाथों मे खड्ग, सर्प, खेटक और पद्म हैं। शीर्षभाग मे छोटी जिन मूर्ति और चरणों के समीप सर्पवाहन तथा दो सेविकाए प्रदर्शित हैं।

(ख) जिन-सयुक्त मूर्तियां—पार्श्व (या धरण) यक्ष की मूर्तियो के अध्ययन के सन्दर्भ मे हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि पार्श्वनाथ की मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी का अकन नियमित नही था। अधिकाश उदाहरणो मे यक्षी के स्थान पर पार्श्वनाथ के समीप सर्पफणो के छत्र से युक्त एक स्त्री आकृति (पद्मावती) उत्कीर्ण है जिसके हाथ में लम्बा छत्र है। पार्श्वनाथ की मूर्तियो मे यक्षी सामान्यत द्विभुजा और सामान्य लक्षणो वाली है। ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की कुछ मूर्तियो मे चतुर्भुजा यक्षी भी निरूपित है। जिन-सयुक्त मूर्तियो मे पद्मावती के साथ वाहन नही उत्कीर्ण है। चतुर्भुज मूर्तियो मे शीर्षभाग मे सर्पफणो के छत्र और हाथ मे पद्म प्रदर्शित हैं। यक्षी के साथ अन्य पारम्परिक आयुध (पाश एव अकुश) नही प्रदर्शित हैं।

जिन-सयुक्त मूर्तियो मे सामान्य लक्षणो वाली द्विभुजा यक्षी के करो मे अभयमुद्रा (या वरदमुद्रा या पद्म) एवं फल (या कलश) प्रदर्शित हैं। खजुराहो एव देवगढ की कुछ मूर्तियो मे सामान्य लक्षणो वाली यक्षी के मस्तक पर सर्पफणो के छत्र भी देखे जा सकते हैं। राज्य सग्रहालय, लखनऊ की पार्श्वनाथ की एक मूर्ति (जे ७९४, ११ वी शती ई०) मे पीठिका के मध्य मे पाच सर्पफणो के छत्र वाली चतुर्भुजा पद्मावती निरूपित है। यक्षी के हाथो मे अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं कलश हैं। देवगढ के मन्दिर १२ के समीप की एक अरक्षित मूर्ति (११ वी शती ई०) मे तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त चतुर्भुजा यक्षी के दो ही हाथो के आयुध-अभयमुद्रा एव कलश-स्पष्ट हैं। खजुराहो के स्थानीय सग्रहालय की दो मूर्तियो (११ वी शती ई०) मे यक्षी चतुर्भुजा है। एक उदाहरण (के १००) मे सर्पफणो से युक्त यक्षी के दो अवशिष्ट हाथो मे अभयमुद्रा और पद्म हैं। दूसरी मूर्ति (के ६८) मे पाच सर्पफणो के छत्रवाली यक्षी ध्यानमुद्रा मे विराजमान है और उसके तीन सुरक्षित हाथो मे अभयमुद्रा, सर्प एव जलपात्र प्रदर्शित हैं।

बिहार-उड़ीसा-बगाल—ल० नवी-दसवी शती ई० की एक पद्मावती मूर्ति (?) नालन्दा (मठ सख्या ९) से मिली है और सम्प्रति नालन्दा सग्रहालय मे सुरक्षित है।[2] ललितमुद्रा मे पद्म पर विराजमान चतुर्भुजा देवी के मस्तक पर पाच सर्पफणो का छत्र और करो मे फल, खड्ग, परशु एव चिनमुद्रा-पद्म प्रदर्शित हैं। उड़ीसा के नवमुनि एव बारभुजी गुफाओं (११वी-१२वी शती ई०) मे पद्मावती की दो मूर्तिया हैं। नवमुनि गुफा की मूर्ति मे द्विभुजा यक्षी ललितमुद्रा में पद्म पर विराजमान है। जटामुकुट से शोभित यक्षी त्रिनेत्र है और उसके हाथो मे अभयमुद्रा एव पद्म प्रदर्शित हैं। यक्षी का निरूपण अपारम्परिक है। आसन के नीचे सम्भवत. कुक्कुट-सर्प उत्कीर्ण है।[3] बारभुजी गुफा की मूर्ति मे पाच सर्पफणो के छत्र से युक्त पद्मावती अष्टभुजा है। पद्म पर विराजमान यक्षी के दक्षिण करो मे वरदमुद्रा, बाण, खड्ग, चक्र (?) एव वाम मे धनुष, खेटक, सनालपद्म, सनालपद्म प्रदर्शित हैं।[4] यक्षी की मुख्य विशेषताएं (पद्मवाहन, सर्पफणो का छत्र एवं हाथ मे पद्म) परम्परासम्मत हैं।

दक्षिण भारत—पद्मावती दक्षिण भारत की तीन सर्वाधिक लोकप्रिय यक्षियो (अम्बिका, पद्मावती एव ज्वालामालिनी) में एक है। कर्नाटक मे पद्मावती सर्वाधिक लोकप्रिय थी।[5] कन्नड शोध सस्थान सग्रहालय की पार्श्वनाथ की मूर्ति मे चतुर्भुजा पद्मावती पद्म, पाश, गदा (या अकुश) एव फल से युक्त है। सग्रहालय मे चतुर्भुजा पद्मावती की ललितमुद्रा मे आसीन दो स्वतन्त्र मूर्तिया भी सुरक्षित हैं। एक मे (एम ८४) सर्पफण से मण्डित यक्षी का वाहन कुक्कुट-सर्प है। यक्षी के दो अवशिष्ट हाथो मे पाश एव फल हैं। दूसरी मूर्ति मे पद्मावती पाच सर्पफणो के छत्र से शोभित है और उसके हाथो मे

१ जै०क०स्था, ख० ३, पृ० ५५३
२ स्ट०जै०आ०, पृ० १७
३ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १२९
४ वही, पृ० १३३
५ देसाई, पी० बी०, पू०नि०, पृ० १०, १६३

फल, अंकुश, पाश एव पद्म प्रदर्शित हैं। यक्षी का वाहन हस है।[1] वादामी की गुफा ५ की दीवार की मूर्ति मे चतुर्भुजा पद्मावती (?) का वाहन सम्भवत हंस (या क्रौंच) है। यक्षी के करो मे अभयमुद्रा, अंकुश, पाश एव फल हैं।[2] कलुगुमलाई (तमिलनाडु) से भी चतुर्भुजा पद्मावती की एक मूर्ति (१०वी-११वी शती ई०) मिली है। इसमे सर्पफणो के छत्र से युक्त यक्षी के करो मे फल, सर्प, अकुश एवं पाश प्रदर्शित हैं।[3] कर्नाटक से मिली पद्मावती की तीन चतुर्भुजी मूर्तिया प्रिंस ऑव वेल्स संग्रहालय, बम्बई मे सुरक्षित हैं।[4] तीनो ही उदाहरणो मे एक सर्पफण से शोभित पद्मावती ललितमुद्रा मे विराजमान है। पहली मूर्ति मे यक्षी की तीन अवशिष्ट भुजाओ मे पद्म, पाश एव अकुश हैं। दूसरी मूर्ति की एक अवशिष्ट भुजा मे अंकुश है। तीसरी मूर्ति मे आसन के नीचे सम्भवत. कुक्कुट (या शुक) उत्कीर्ण है। यक्षी वरदमुद्रा, अकुश, पाश एव सर्प से युक्त है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत मे पद्मावती के साथ पाश, अकुश एव पद्म का प्रदर्शन लोकप्रिय था। शीर्षभाग मे सर्पफणो के छत्र एव वाहन के रूप मे कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट) का अकन विशेष लोकप्रिय नही था। कुछ मे हसवाहन भी उत्कीर्ण है।

विश्लेषण

विभिन्न क्षेत्रो की मूर्तियो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अम्बिका एवं चक्रेश्वरी के वाद उत्तर भारत में पद्मावती की ही सर्वाधिक मूर्तिया उत्कीर्ण हुईं। पद्मावती की स्वतन्त्र मूर्तियो का निरूपण ल० नवी शती ई० मे और जिन-सयुक्त मूर्तियो का चित्रण ल० दसवी शती ई० मे आरम्भ हुआ। पद्मावती के साथ वाहन (कुक्कुट-सर्प) और हाथ मे सर्प का प्रदर्शन ल० नवी शती ई० मे ही प्रारम्भ हो गया।[5] दसवी शती ई० तक यक्षी का द्विभुज रूप मे निरूपण ही लोकप्रिय था।[6] ग्यारहवी शती ई० मे यक्षी के चतुर्भुज रूप का निरूपण भी प्रारम्भ हुआ। जिन-संयुक्त मूर्तियो मे पद्मावती केवल द्विभुजा और चतुर्भुजा है, पर स्वतन्त्र मूर्तियो मे द्विभुज और चतुर्भुज के साथ-साथ पद्मावती का द्वादशभुज रूप भी मिलता है। जिन-सयुक्त मूर्तियो मे पद्मावती के साथ वाहन एव विशिष्ट आयुध (पद्म, सर्प,[7] पाश, अंकुश) केवल कुछ ही उदाहरणो मे प्रदर्शित हैं। दिगवर स्थलो पर पार्श्वनाथ के साथ या तो पद्मावती[8] या फिर सामान्य लक्षणो वाली यक्षी निरूपित है। पर श्वेतावर स्थलो पर दो उदाहरणो के अतिरिक्त अन्य सभी मे यक्षी के रूप मे अम्बिका आमूर्तित है। विमलवसही (देवकुलिका ४) एव ओसिया (महावीर मन्दिर का वलानक) की दो श्वेतावर मूर्तियो मे सर्पफणो के छत्रों वाली पारम्परिक यक्षी निरूपित है।

श्वेतावर स्थलो पर पद्मावती की केवल द्विभुजी एव चतुर्भुजी मूर्तिया उत्कीर्ण हुईं पर दिगवर स्थलो पर द्विभुजी एव चतुर्भुजी के साथ ही द्वादशभुजी मूर्तियां भी वनी। श्वेतावर स्थलो पर दिगवर स्थलो की अपेक्षा वाहन एव मुख्य आयुधो (पद्म, पाश, अकुश) के सन्दर्भ मे परम्परा का अधिक पालन किया गया है। तीन, पाच या सात सर्पफणो से शोभित यक्षी के साथ वाहन सामान्यत कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट) है।[9] दिगवर स्थलो पर परम्परा के अनुरूप यक्षी के दो हाथो मे पद्म का प्रदर्शन विशेष लोकप्रिय था।

---

१ अन्निगेरी, ए० एम०, पूर्वनि०, पृ० १९, २९
२ संकलिया, एच० डी०, पूर्वनि०, पृ० १६१
३ देसाई, पी० बी०, पूर्वनि०, पृ० ६५
४ सकलिया, एच० डी०, पूर्वनि०, पृ० १५८–५९
५ ओसिया के महावीर मन्दिर की मूर्ति मे ये विशेषताए प्रदर्शित हैं।
६ केवल देवगढ (मन्दिर १२) की ही मूर्ति मे पद्मावती चतुर्भुजा है।
७ ग्रन्थ मे पद्मावती की भुजा मे सर्प के प्रदर्शन के अनुल्लेख के वाद भी मूर्तियो मे सर्प का चित्रण लोकप्रिय था।
८ पद्मावती के साथ वाहन एवं अन्य पारम्परिक विशेषताए सामान्यत नही प्रदर्शित है।
९ खजुराहो

कुछ स्थलो की मूर्तियो मे पद्म, नाग, कूर्म और मकर को भी पद्मावती के वाहन के रूप मे दरशाया गया है।[1] परम्परा के अनुरूप यक्षी के करो मे पाश एव अकुश का प्रदर्शन मुख्यत देवगढ, खजुराहो, विमलवसही, कुम्भारिया एव कुछ अन्य स्थलो की ही मूर्तियो मे प्राप्त होता है। नागराज धरण से सम्बन्धित होने के कारण ही देवगढ, खजुराहो, शहडोल, ओसिया, विमलवसही एव लूणवसही की मूर्तियो मे पद्मावती के हाथ में सर्प प्रदर्शित किया गया।[2]

(२४) मातग यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

मातग जिन महावीर का यक्ष है। दोनो परम्पराओ मे मातग को द्विभुज और गजारूढ बताया गया है। दिगवर परम्परा मे मातग के मस्तक पर धर्मचक्र के प्रदर्शन का भी निर्देश है।

श्वेतावर परम्परा—निर्वाणकलिका मे गजारूढ मातग के हाथो मे नकुल एव बीजपूरक वर्णित हैं।[3] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही लक्षणो के उल्लेख हैं।[4]

दिगवर परम्परा—प्रतिष्ठासारसग्रह मे द्विभुज मातग के मस्तक पर धर्मचक्र के चित्रण का निर्देश है और उसका वाहन मुद्ग[5] बताया गया है।[6] यक्ष के करो मे वरदमुद्रा एव मातुलिंग वर्णित हैं।[7] समान आयुधो का उल्लेख करने वाले अन्य सभी ग्रन्थो मे मातग का वाहन गज है।[8]

यक्ष का गजवाहन उसके मातग (गज) नाम से प्रभावित हो सकता है। मस्तक पर धर्मचक्र का प्रदर्शन यक्ष के महावीर द्वारा पुनः स्थापित एव व्यवस्थित जैन धर्म एव सघ के रक्षक होने का सूचक हो सकता है।[9] गजवाहन एव हाथ मे नकुल का प्रदर्शन हिन्दू कुवेर का भी प्रभाव हो सकता है। एक ग्रन्थ मे मातग को यक्षराज भी कहा गया है, जो कुवेर का ही दूसरा नाम है।[10]

---

१ विमलवसही, राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जी ३१६), लूणवसही, त्रिपुरी, देवगढ, शहडोल एवं बारभुजी गुफा

२ झालरापाटन एव बारभुजी गुफा की मूर्तियो में भुजा मे सर्प नही प्रदर्शित है।

३ मातगयक्ष श्यामवर्णं गजवाहन द्विभुज दक्षिणे नकुल वामे बीजपूरकमिति। **निर्वाणकलिका** १८.२४

४ त्रि०श०पु०च० १०.५ ११, **पद्मानन्दमहाकाव्य: परिशिष्ट—महावीर** २४७, **मन्त्राधिराजकल्प** ३.४८, **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७५, **देवतामूर्तिप्रकरण** ७ ६४, **रूपमण्डन** ६ २२

५ एक प्रकार का समुद्री पक्षी या मूगा।

६ बी० सी० भट्टाचार्य ने **प्रतिष्ठासारसग्रह** की आरा की पाण्डुलिपि के आधार पर गजवाहन का उल्लेख किया है। द्रष्टव्य, भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि**, पृ० ११८

७ वर्धमान जिनेन्द्रस्य यक्षो मातगसज्ञक।
द्विभुजो मुद्गवर्णोसौ वरदो मुद्गवाहन ॥
मातुलिंग करे धत्ते धर्मचक्र च मस्तके। **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.७२–७३

८ मुद्गप्रभो मूर्धनि धर्मचक्र विभ्रत्फल वामकरेथयच्छन्।
वर करिस्थो हरिकेतुभक्तो मातंग यक्षोगतु तुष्टिमिष्टया ॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३ १५२
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७ २४, पृ० ३३८, **अपराजितपृच्छा** २२१ ५६

९ भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि०**, पृ० ११९

१० मातगो यक्षराट् च द्विरदकृतगति श्यामरुग् रातु सौख्यम् ॥
वर्द्धमानषट्त्रिंशिका (चतुरविजयमुनि प्रणीत)।
(**जैन स्तोत्र सन्दोह**, स० अमरविजय मुनि, खं० १, अहमदावाद, १९३२, पृ० ६६ से उद्धृत)।

दक्षिण भारतीय परम्परा—उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के विपरीत दक्षिण भारतीय दिगवर ग्रन्थ मे यक्ष को चतुर्भुज बताया गया है। गजारूढ यक्ष के ऊपरी हाथ आराधना की मुद्रा मे मुकुट के समीप और नीचे के हाथ अभय एवं एक अन्य मुद्रा मे वर्णित है। अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे मातग को षड्भुज और धर्मचक्र, कशा, पाश, वज्र, दण्ड एवं वरदमुद्रा से युक्त कहा गया है, वाहन का अनुल्लेख है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे उत्तर भारतीय दिगवर परम्परा के अनुरूप गजारूढ मातग द्विभुज है। शीर्षभाग मे धर्मचक्र से युक्त यक्ष के हाथो मे वरदमुद्रा एव मातुलिंग का उल्लेख है।[1]

मूर्ति-परम्परा

मातंग की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। जिन-सयुक्त मूर्तियो मे भी यक्ष के साथ पारम्परिक विशेषताएं नही प्रदर्शित हैं। महावीर की मूर्तियो मे द्विभुज यक्ष अधिकाशत सामान्य लक्षणो वाला है। केवल खजुराहो एव देवगढ की कुछ दिगवर मूर्तियो मे ही चतुर्भुज एव स्वतन्त्र लक्षणो वाला यक्ष निरूपित है। महावीर की मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी का निरूपण दसवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ। राज्य सग्रहालय, लखनऊ, ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर), खजुराहो, देवगढ़ एवं अन्य स्थलो की मूर्तियो मे सामान्य लक्षणो वाले द्विभुज यक्ष के करो मे अभयमुद्रा (या गदा) एव धन का थैला (या फल या कलश) प्रदर्शित हैं।[2] गुजरात और राजस्थान की श्वेतावर मूर्तियो मे सर्वानुभूति यक्ष निरूपित है। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर (११ वी शती ई०) की भ्रमिका के वितान पर महावीर के जीवनदृश्यो मे उनका यक्ष-यक्षी युगल भी आमूर्तित है। चतुर्भुज यक्ष का वाहन गज है और उसके करो मे वरदमुद्रा, पुस्तक, छत्रपद्म एव जलपात्र प्रदर्शित हैं। यह ब्रह्मशान्ति यक्ष की मूर्ति है जिसे महावीर के यक्ष के रूप मे निरूपित किया गया है।

दिगवर स्थलो की कुछ मूर्तियो मे महावीर के साथ स्वतन्त्र लक्षणो वाला यक्ष भी आमूर्तित है। देवगढ के मन्दिर ११ की एक मूर्ति (१०४८ ई०) मे चतुर्भुज यक्ष के तीन अवशिष्ट करो मे अभयमुद्रा, पद्म एव फल हैं। खजुराहो के मन्दिर २ की मूर्ति (१०९२ ई०) मे चतुर्भुज यक्ष का वाहन सम्भवतः सिंह है और उसके हाथो मे धन का थैला, शूल, पद्म (?) एव दण्ड हैं। खजुराहो के मन्दिर २१ की दीवार की मूर्ति (के २८/१, ११वी शती ई०) मे द्विभुज यक्ष का वाहन अज है। यक्ष के दक्षिण कर मे शक्ति है और वाया हाथ अज के शृग पर स्थित है। खजुराहो के स्थानीय सग्रहालय (के १७, ११वी शती ई०) की एक मूर्ति मे चतुर्भुज यक्ष का वाहन सम्भवत. सिंह है और उसके तीन सुरक्षित हाथो मे गदा, पद्म एवं धन का थैला हैं। भरतपुर (राजस्थान) से मिली और सम्प्रति राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (२७९) मे सुरक्षित मूर्ति (१००४ ई०) मे द्विभुज यक्ष का वाहन गज और एक अवशिष्ट भुजा मे धन का थैला हैं। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दिगवर स्थलो पर यक्ष का कोई स्वतन्त्र रूप नियत नही हो सका था।

दक्षिण भारत—वादामी (कर्नाटक) की गुफा ४ की ल० सातवी शती ई० की दो महावीर मूर्तियो मे गजारूढ़ यक्ष चतुर्भुज है और उसके करो मे अभयमुद्रा, गदा, पाश एवं खड्ग प्रदर्शित हैं।[3] एलोरा, अकोला एव हरीदास स्वाली सग्रह की महावीर मूर्तियो मे सर्वानुभूति यक्ष निरूपित है।[4]

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि, पृ० २११

२ खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की भित्ति की मूर्ति मे यक्ष के दोनो हाथो मे फल हैं।

३ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ए २१–६०, ए २१–६१

४ शाह, यू० पी०, 'जैन ब्रोन्जेज इन हरीदास स्वालीज कलेक्शन', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अं० ९, १९६४–६६, पृ० ४७–४९, डगलस, वी०, 'ए जैन ब्रोन्ज फ्राम दि डॅकन,' ओ० आर्ट, खं० ५, अं० १, पृ० १६२–६५

(२४) सिद्धायिका (या सिद्धायिनी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

सिद्धायिका (या सिद्धायिनी) जिन महावीर की यक्षी है। सिद्धायिका जैन देवकुल की चार प्रमुख यक्षियो (चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती, सिद्धायिका) मे एक है।[१] श्वेतावर परम्परा मे चतुर्भुजा यक्षी का वाहन सिह (या गज) और दिगंबर परम्परा में द्विभुजा यक्षी का वाहन सिह (या भद्रासन) वताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे सिहवाहना सिद्धायिका के दक्षिण करो मे पुस्तक एव अभयमुद्रा और वाम मे मातुलिग एव वाण उल्लिखित हैं।[२] कुछ ग्रन्थो मे वाण के स्थान पर वीणा का उल्लेख है।[३] **पद्मानन्दमहाकाव्य** मे यक्षी को गजवाहना वताया गया है।[४] आचारदिनकर मे वायें हाथो मे मातुलिंग एवं वीणा (या वाण) के स्थान पर पाश एव पद्म के प्रदर्शन का निर्देश है।[५] मन्त्राधिराजकल्प मे सिद्धायिका के षड्भुज रूप का ध्यान किया गया है। ग्रन्थ के अनुसार यक्षी करो मे पुस्तक, अभयमुद्रा, वरदमुद्रा, खरायुध, वीणा एव फल धारण किये हैं।[६]

दिगवर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे भद्रासन पर विराजमान द्विभुजा सिद्धायिनी के करो मे वरदमुद्रा और पुस्तक का वर्णन है।[७] प्रतिष्ठासारोद्धार मे भद्रासन पर विराजमान यक्षी का वाहन सिह वताया गया है।[८] अपराजितपृच्छा मे वरदमुद्रा के स्थान पर अभयमुद्रा का उल्लेख है।[९] दिगंबर परम्परा के एक तान्त्रिक ग्रन्थ विद्यानुशासन मे उल्लेख है

---

१ रूपमण्डन ६.२५–२६

२ सिद्धायिका हरितवर्णा सिंहवाहना चतुर्भुजा पुस्तकाभययुक्तदक्षिणकरा मातुलिंगवाणान्वितवामहस्ता चेति। निर्वाणकलिका १८.२४, द्रष्टव्य, देवतामूर्तिप्रकरण ७.६५, रूपमण्डन ६ २३

३ समातुलिंगवल्लक्यौ वामवाहू च विभ्रती।
पुस्तकाभयदौ चोभौ दधाना दक्षिणौभुजौ ॥ त्रि०श०पु०च० १०.५.१२–१३
द्रष्टव्य, प्रवचनसारोद्धार २४, पृ० ९४, पद्मानन्दमहाकाव्य: परिशिष्ट—महावीर २४८–४९। देवतामूर्तिप्रकरण में वाण का ही उल्लेख है।

४ पद्मानन्दमहाकाव्य· परिशिष्ट—महावीर २४८–४९

५ पाशाम्भोरुहराजिवामकरभाग सिद्धायिका । आचारदिनकर ३४, पृ० १७८

६ सिद्धायिका नवतमालदलालिनीलरुक्—
पुस्तिकाभयकरा (दा) नखरायुधाका।
वीणाफलाङ्कितभुजद्वितया हि
भव्यानव्याज्जिनेन्द्रपदपङ्कजवद्धभक्ति· ॥ मन्त्राधिराजकल्प ३.६६

७ सिद्धायिनी तथा देवी द्विभुजा कनकप्रभा।
वरदा पुस्तक धत्ते सुभद्रासनमाश्रिता ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५ ७३–७४

८ सिद्धायिका सप्तकरोच्छ्रितागजिनाश्रयांपुस्तकदानहस्ताम्।
श्रिता सुभद्रासनमत्र यज्ञे हेमद्युति सिंहगति यजेहम्। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१७८
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.२४, पृ० ३४८

९ द्विभुजा कनकाभा च पुस्तक चाभय तथा।
सिद्धायिका तु कर्तव्या भद्रासनसमन्विता ॥ अपराजितपृच्छा २२१.३८

कि वर्धमान की यक्षी का नाम कामचण्डालिनी भी है[1] जो निर्वस्त्र और चतुर्भुजा है। विभिन्न आभूषणो से सज्जित देवी के केश मुक्त हैं और उसके हाथो मे फल, कलश, दण्ड एवं डमरु दृष्टिगत होते हैं।

सिद्धायिका के निरूपण मे पुस्तक एव वीणा (श्वेतावर) का प्रदर्शन सरस्वती (वाग्देवी) का प्रभाव प्रतीत होता है। यक्षी का सिंहवाहन सम्भवत. महावीर के सिंह लाछन से ग्रहण किया गया है।[2]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगवर ग्रन्थ मे द्विभुजा यक्षी का वाहन हस है और उसके हाथो मे अभयमुद्रा एव मुद्रा (वरद ?) है। अज्ञातनाम श्वेतावर ग्रन्थ मे यक्षी द्वादशभुजा है और उसका वाहन गरुड है। उसके करो मे असि, फलक, पुष्प, शर, चाप, पाश, चक्र, दण्ड, अक्षसूत्र, वरदमुद्रा, नीलोत्पल एव अभयमुद्रा वर्णित हैं। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे यक्षी को द्विभुजा बताया गया है, पर आयुधो का अनुल्लेख है।[3]

मूर्ति-परम्परा

अम्बिका, चक्रेश्वरी एव पद्मावती की तुलना मे सिद्धायिका की स्वतन्त्र मूर्तियो की सख्या नगण्य है। मूर्त अकनो मे यक्षी का पारम्परिक और स्वतन्त्र स्वरूप दसवी-ग्यारहवी शती ई० मे अभिव्यक्त हुआ। जिन-सयुक्त मूर्तियो मे यक्षी अधिकाशत सामान्य लक्षणो वाली है। राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (२७९), कुम्भारिया (शान्तिनाथ मन्दिर), ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर), खजुराहो एव देवगढ की कुछ महावीर मूर्तियो मे स्वतन्त्र लक्षणो वाली यक्षी आमूर्तित है।

गुजरात-राजस्थान (क) स्वतन्त्र मूर्तियां—यू० पी० शाह ने श्वेतावर स्थलो से प्राप्त चतुर्भुजा सिद्धायिका की तीन स्वतन्त्र मूर्तियो (१२ वी शती ई०) का उल्लेख किया है।[4] सभी उदाहरणो मे श्वेतावर परम्परा के अनुरूप सिंह-वाहना सिद्धायिका पुस्तक एवं वीणा से युक्त है। विमलवसही के रंगमण्डप के स्तम्भ की मूर्ति मे सिंहवाहना यक्षी त्रिभग मे खड़ी है। यक्षी के तीन अवशिष्ट करो मे वरदमुद्रा, पुस्तक एव वीणा हैं। दूसरी मूर्ति कैम्बे के मन्दिर से मिली है। ललितमुद्रा में विराजमान सिंहवाहना यक्षी के हाथो मे अभयमुद्रा, पुस्तक, वीणा एव फल प्रदर्शित हैं। समान विवरणो वाली तीसरी मूर्ति प्रभासपाटण से प्राप्त हुई है।

(ख) **जिन-संयुक्त मूर्तियां**—इस क्षेत्र की दो महावीर मूर्तियो के अतिरिक्त अन्य सभी मे यक्षी के रूप मे अम्बिका निरूपित है। राजपूताना सग्रहालय, अजमेर की मूर्ति (२७९) मे द्विभुजा यक्षी का वाहन सिंह है और उसकी एक सुरक्षित भुजा मे खड्ग प्रदर्शित है। यहा उल्लेखनीय है कि दिगवर परम्परा के विपरीत सिंहवाहना सिद्धायिका के हाथ मे खड्ग का प्रदर्शन खजुराहो एव देवगढ की दिगवर मूर्तियो मे भी प्राप्त होता है। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के वितान की मूर्ति मे पक्षीवाहन वाली यक्षी चतुर्भुजा है और उसके हाथो मे वरदमुद्रा, सनालपद्म, सनालपद्म एव फल प्रदर्शित हैं। यक्षी का निरूपण निर्वाणी यक्षी या शान्तिदेवी से प्रभावित है।

---

१ वर्द्धमान जिनेन्द्रस्य यक्षी सिद्धायिका मता।
तद्देव्यपरनाम्ना च कामचण्डालिसञ्ज्ञका ॥
भूषिताभरणै: सर्वमुक्तकेशा दिगंबरी।
पातु मां कामचण्डाली कृष्णवर्णा चतुर्भुजा ॥
फलकाचनकलशकरा शाल्मलिदण्डोच्चडमरुयुग्मोपेता।
जपत (?) स्त्रिभुवनवद्या वश्या जगति श्रीकामचण्डाली ॥ **विद्यानुशासन**। शाह, यू० पी०, 'यक्षिणी ऑव दि ट्वेन्टी-फोर्थ जिन महावीर', ज०ओ०इं०, ख० २२, अ० १–२, पृ० ७७

२ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० १४६–४७, विस्तार के लिए द्रष्टव्य, तिवारी, एम० एन० पी०, 'दि आइ-कानोग्राफी ऑव यक्षी सिद्धायिका', ज०ए०सो०, ख० १५, अ० १–४, पृ० ९७–१०३

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २११–१२

४ शाह, यू० पी, पू०नि०, पृ० ७१

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—(क) स्वतन्त्र मूर्तियां—इस क्षेत्र से यक्षी की तीन मूर्तियां मिली हैं।[1] देवगढ के मन्दिर १२ (८६२ ई०) के सामूहिक चित्रण मे वर्धमान के साथ 'अपराजिता' नाम की सामान्य लक्षणो वाली द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है। यक्षी का दाहिना हाथ जानु पर है और वायें मे चामर या पद्म है।[2] खजुराहो के मन्दिर २४ के उत्तरंग (११ वी शती ई०) पर चतुर्भुजा यक्षी ललितमुद्रा मे आसीन है। सिंहवाहना यक्षी के करो मे वरदमुद्रा, खड्ग, खेटक एवं जलपात्र हैं। बिल्कुल समान लक्षणो वाली दूसरी मूर्ति देवगढ के मन्दिर ५ के उत्तरग (११ वी शती ई०) पर उत्कीर्ण है। उपर्युक्त दोनो मूर्तियो मे यक्षी का चतुर्भुज होना और उसके करो मे खड्ग एव खेटक का प्रदर्शन दिगवर परम्परा के विरुद्ध है। सिंहवाहना यक्षी के साथ खड्ग एव खेटक का प्रदर्शन १६ वी जैन महाविद्या महामानसी का भी प्रभाव हो सकता है।[3]

(ख) जिन-सयुक्त मूर्तिया—इस क्षेत्र मे महावीर की मूर्तियो मे ल० दसवी शती ई० मे यक्ष-यक्षी का अकन प्रारम्भ हुआ। अधिकाश उदाहरणो मे सामान्य लक्षणो वाली द्विभुजा यक्षी अभयमुद्रा (या पुष्प) एवं फल (या कलश) से युक्त है। मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, म० प्र०) की महावीर मूर्ति (१० वी शती ई०) मे द्विभुजा यक्षी के दोनों हाथो मे वीणा है।[4] देवगढ की छह महावीर मूर्तियो मे सामान्य लक्षणो वाली द्विभुजा यक्षी अभयमुद्रा (पुष्प) एव कलश (या फल) से युक्त है। साहू जैन सग्रहालय, देवगढ के चौवीसी जिन पट्ट (१२ वी शती ई०) की महावीर मूर्ति मे द्विभुजा यक्षी अभय-मुद्रा एव पुस्तक से युक्त है। पुस्तक का प्रदर्शन दिगवर परम्परा का पालन है। देवगढ के मन्दिर १ की मूर्ति (१० वीं शती ई०) मे चतुर्भुजा यक्षी के करो मे अभयमुद्रा, पद्मकलिका, पद्मकलिका एवं फल प्रदर्शित हैं। देवगढ के मन्दिर ११ की मूर्ति (१०४८ ई०) मे द्विभुजा यक्षी पद्मावती एव अम्बिका की विशेषताओ से युक्त है। तीन सर्पफणो के छत्र वाली यक्षी के हाथो मे फल एव बालक हैं। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि देवगढ़ मे सिद्धायिका का कोई स्वतन्त्र स्वरूप नियत नही हुआ।

खजुराहो की तीन महावीर मूर्तियो मे द्विभुजा यक्षी अभयमुद्रा एव फल (या पद्म) से युक्त है। खजुराहो के मन्दिर २ की मूर्ति मे सिंहवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करो मे फल, चक्र, पद्म एवं शख स्थित हैं। मन्दिर २१ की दीवार की मूर्ति मे भी सिंहवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके हाथों मे वरदमुद्रा, खड्ग, चक्र एव फल हैं। खजुराहो के स्थानीय सग्रहालय की तीसरी मूर्ति (के १७) मे भी चतुर्भुजा यक्षी का वाहन सिंह है और उसके तीन सुरक्षित हाथो मे चक्र (छल्ला), पद्म एव शख प्रदर्शित हैं। ग्यारहवी शती ई० की उपर्युक्त तीनो ही मूर्तियो मे यक्षी के निरूपण की एकरूपता से ऐसा आभास होता है कि खजुराहो मे चतुर्भुजा सिद्धायिका के एक स्वतन्त्र स्वरूप की कल्पना की गई। यक्षी के साथ वाहन (सिंह) तो पारम्परिक हैं, पर हाथो मे चक्र एवं शख का प्रदर्शन हिन्दू वैष्णवी से प्रभावित प्रतीत होता है।

बिहार-उडीसा-बगाल—इस क्षेत्र मे केवल बारभुजी गुफा (उडीसा) से ही यक्षी की एक मूर्ति मिली है (चित्र ५९)। महावीर के साथ विंशतिभुजा यक्षी निरूपित है। गजवाहना यक्षी के दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा, शूल, अक्षमाला, बाण, दण्ड (?), मुद्गर, हल, वज्र, चक्र एव खड्ग और वायें मे कलश, पुस्तक, फल (?), पद्म, घण्टा (?), धनुष, नागपाश एवं खेटक स्पष्ट हैं।[5] पुस्तक एव गजवाहन[6] का प्रदर्शन पारम्परिक है।

दक्षिण भारत—दक्षिण भारत मे यक्षी का न तो पारम्परिक स्वरूप मे अकन हुआ और न ही उसका कोई स्वतन्त्र स्वरूप निर्धारित हुआ। महावीर की मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी का निरूपण ल० सातवी शती ई० मे ही प्रारम्भ हो गया। बादामी

---

१ ये मूर्तिया खजुराहो एव देवगढ से मिली हैं। २ जि०इ०दे०, पृ० १०२, १०५

३ महाविद्या महामानसी का वाहन सिंह है और उसके करो मे वरद-(या अभय-) मुद्रा, खड्ग, कुण्डिका एव खेटक प्रदर्शित हैं।

४ स्मरणीय है कि सिद्धायिका की भुजा मे वीणा का उल्लेख श्वेतांबर परम्परा मे प्राप्त होता है।

५ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३३ दो वाम करो के आयुध स्पष्ट नही हैं।

६ गजवाहन का उल्लेख केवल श्वेतांबर परम्परा मे प्राप्त होता है।

गुफा को महावीर मूर्तियो मे चतुर्भुजा यक्षी के करो मे अभयमुद्रा, अकुश, पाश एव फल (या जलपात्र) प्रदर्शित हैं। वाहन की पहचान सम्भव नही है। करजा (अकोला, महाराष्ट्र) की एक महावीर मूर्ति (ल० ९वी शती ई०) मे चतुर्भुजा यक्षी पुष्प (?), पद्म, परशु एव फल से युक्त है। सेट्टिपोडव (मदुराई) की एक चतुर्भुजी मूर्ति मे केवल दो हाथो के ही आयुध स्पष्ट हैं, जो धनुष और वाण हैं। अन्य उदाहरणो मे यक्षी द्विभुजा है। द्विभुजा यक्षी के साथ कभी-कभी सिंहवाहन उत्कीर्ण है। हाथो मे पद्म एव फल (या पुस्तक) प्रदर्शित हैं।[1]

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत मे पारम्परिक एव स्वतन्त्र लक्षणोवाली सिद्धायिका की मूर्तिया दसवी से वारहवी शती ई० के मध्य उत्कीर्ण हुईं। उत्तर भारत मे सिद्धायिका का पूरी तरह पारम्परिक स्वरूप मे अकन केवल श्वेतावर स्थलो की तीन मूर्तियो मे ही दृष्टिगत होता है।[2] इनमे सिंहवाहना यक्षी के हाथो मे अभय-(या वरद-) मुद्रा, पुस्तक, वीणा एव फल प्रदर्शित हैं। दिगंवर स्थलो पर केवल सिंहवाहन के प्रदर्शन मे ही परम्परा का पालन किया गया है।[3] देवगढ़ एव वारभुजी गुफा की दो मूर्तियो मे दिगवर परम्परा के अनुरूप पुस्तक भी प्रदर्शित है। मालादेवी मन्दिर की मूर्ति मे यक्षी के साथ वीणा का प्रदर्शन श्वेतावर परम्परा का पालन है। अन्य आयुधो की दृष्टि से दिगवर स्थलो की सिद्धायिका की मूर्तिया परम्परासम्मत नही हैं। दिगंवर स्थलों[4] पर यक्षी का चतुर्भुज स्वरूप मे निरूपण और उसके करो में परम्परा से भिन्न आयुधो (खड्ग, खेटक, पद्म, चक्र, शख) का प्रदर्शन इस वात का सकेत देते हैं कि उन स्थलो पर चतुर्भुजा सिद्धायिका के निरूपण से सम्वन्धित ऐसी परम्परा प्रचलित थी, जो सम्प्रति हमे उपलब्ध नही है। सभी क्षेत्रो मे यक्षी का द्विभुज और चतुर्भुज रूपो में निरूपण ही लोकप्रिय था।[5]

●

---

१ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ७४, ७५, देसाई, पी० वी०, पू०नि०, पृ० ३८, ५६, ५७, सकलिया, एच० डी०, पू०नि०, पृ० १६१

२ ये मूर्तिया विमलवसही, कैम्वे एव प्रभासपाटण से मिली हैं।

३ केवल वारभुजी गुफा की मूर्ति में वाहन गज है।

४ खजुराहो एव देवगढ

५ केवल वारभुजी गुफा की मूर्ति मे ही यक्षी विंशतिभुज है।

सप्तम अध्याय

निष्कर्ष

जैन परम्परा मे उत्तर भारत के केवल कुछ ही शासको के जैन धर्म स्वीकार करने के उल्लेख हैं, जिनमे खारवेल, नागभट द्वितीय और कुमारपाल प्रमुख हैं। तथापि बारहवी शती ई० तक के अधिकाश राजवशो (पालो के अतिरिक्त) के शासको का जैन धर्म के प्रति दृष्टिकोण उदार था, जिसके दो मुख्य कारण थे; प्रथम, भारतीय शासकों की धर्मसहिष्णु नीति और दूसरा, जैन धर्म की व्यापारियो, व्यवसायियों एव सामान्य जनो के मध्य विशेष लोकप्रियता। इसी सम्बन्ध मे एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जैन धर्म और कला को शासको से अधिक व्यापारियो, व्यवसायियो एव सामान्य जनो का समर्थन और सहयोग मिला। मथुरा के कुषाणकालीन मूर्तिलेखो तथा ओसिया, खजुराहो, जालोर एव अन्य अनेक स्थलो के लेखो से इसकी पुष्टि होती है।

जैन कला, स्थापत्य एव प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से प्रतिहार, चन्देल और चौलुक्य राजवशो का शासन काल (८ वी-१२ वी शती ई०) विशेष महत्वपूर्ण है। इन राजवशो के समय मे गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के विस्तृत क्षेत्र मे अनेक जैन मन्दिर बने और प्रचुर सख्या मे मूर्तियो का निर्माण हुआ। इसी समय देवगढ़, खजुराहो, ओसिया, ग्यारसपुर, कुम्भारिया, आबू, जालोर, तारगा एव अन्य अनेक महत्वपूर्ण जैन कलाकेन्द्र पल्लवित और पुष्पित हुए। ल० आठवी से बारहवी शती ई० के मध्य जैन कला के प्रभूत विकास मे उपर्युक्त क्षेत्रो की सुदृढ़ आर्थिक पृष्ठभूमि का भी महत्व था। गुजरात के भडौंच, कैम्बे और सोमनाथ जैसे व्यापारिक महत्व के बन्दरगाहो, राजस्थान के पोरवाड, श्रीमाल, ओसवाल, मोढेरक जैसी व्यापारिक जैन जातियो एव मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश मे विदिशा, उज्जैन, मथुरा, कौशाम्बी, वाराणसी जैसे महत्वपूर्ण व्यापारिक स्थलो के कारण ही इन क्षेत्रो मे अनेक जैन मन्दिर एव विपुल सख्या मे मूर्तिया बनी।

पटना के समीप लोहानीपुर से मिली मौर्ययुगीन मूर्ति प्राचीनतम जिन मूर्ति है (चित्र २)। चौसा और मथुरा से शुग-कुषाण काल की जैन मूर्तियां मिली हैं। मथुरा से ल० १५० ई० पू० से ग्यारहवी शती ई० के मध्य की प्रभूत जैन मूर्तिया मिली हैं। ये मूर्तिया आरम्भ से मध्ययुग तक के प्रतिमाविज्ञान की विकास-शृखला को प्रदर्शित करती हैं। शुग-कुषाण काल मे मथुरा में सर्वप्रथम जिनो के वक्ष स्थल पर श्रीवत्स चिह्न का उत्कीर्णन और जिनो का ध्यानमुद्रा मे निरूपण प्रारम्भ हुआ। तीसरी से पहली शती ई० पू० की अन्य जिन मूर्तिया कायोत्सर्ग-मुद्रा मे निरूपित हैं। ज्ञातव्य है कि जिनो के निरूपण मे सर्वदा यही दो मुद्राए प्रयुक्त हुई हैं। मथुरा में कुषाणकाल मे ऋषभ, सम्भव, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व एवं महावीर की मूर्तिया, ऋषभ एव महावीर के जीवनदृश्य, आयागपट, जिन-चौमुखी तथा सरस्वती एव नैगमेषी की मूर्तिया उत्कीर्ण हुई (चित्र १२, १६, ३०, ३४, ३९, ६६)।

गुप्तकाल मे मथुरा एव चौसा के अतिरिक्त राजगिर, विदिशा, वाराणसी एव अकोटा से भी जैन मूर्तिया मिली हैं (चित्र ३५)। इस काल मे केवल जिनो की स्वतन्त्र एव जिन चौमुखी मूर्तिया ही उत्कीर्ण हुई। इनमे ऋषभ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, नेमि, पार्श्व एव महावीर का निरूपण है। श्वेतांबर जिन मूर्तिया (अकोटा, गुजरात) भी सर्वप्रथम इसी काल मे बनी (चित्र ३६)।

ल० दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की जैन प्रतिमाविज्ञान की प्रभूत ग्रन्थ एव शिल्प सामग्री प्राप्त होती है। सर्वाधिक जैन मन्दिर और फलत मूर्तिया भी दसवीं से बारहवी शती ई० के मध्य बनें। गुजरात और राजस्थान मे श्वेतांबर एव अन्य क्षेत्रो मे दिगंबर सम्प्रदाय की मूर्तियो की प्रधानता है। गुजरात और राजस्थान के श्वेतांबर जैन

मन्दिरो मे २४ देवकुलिकाओ को सयुक्त कर उनमे २४ जिनो की मूर्तिया स्थापित करने की परम्परा लोकप्रिय हुई। श्वेतांबर स्थलो की तुलना मे दिगबर स्थलो पर जिनो की अधिक मूर्तिया उत्कीर्ण हुई जिनमे स्वतन्त्र तथा द्वितीर्थी, त्रितीर्थी एव चौमुखी मूर्तिया हैं। तुलनात्मक दृष्टि से जिनो के निरूपण मे श्वेतांबर स्थलो पर एकरसता और दिगंबर स्थलो पर विविधता दृष्टिगत होती है। श्वेतांबर स्थलो पर जिन मूर्तियो के पीठिका-लेखो मे जिनो के नामोल्लेख तथा दिगबर स्थलो पर उनके लाछनो के अकन की परम्परा दृष्टिगत होती है। जिनो के जीवन-दृश्यो एव समवसरणो के अकन के उदाहरण केवल श्वेतांबर स्थलो पर ही सुलभ हैं। ये उदाहरण (११ वी-१३ वी शती ई०) ओसिया, कुम्भारिया, आबू (विमलवसही, लूणवसही) एवं जालोर से मिले हैं (चित्र १३, १४, २२, २९, ४०, ४१)।

श्वेतांबर स्थलो पर जिनो के बाद १६ महाविद्याओ और दिगबर स्थलो पर यक्ष-यक्षियो के चित्रण सर्वाधिक लोकप्रिय थे। १६ महाविद्याओ मे रोहिणी, वज्रांकुशी, वज्रश्रृंखला, अप्रतिचक्रा, अच्छुप्ता एव वैरोट्या की ही सर्वाधिक मूर्तिया मिली हैं। शान्तिदेवी, ब्रह्मशान्ति यक्ष, जीवन्तस्वामी महावीर, गणेश एव २४ जिनो के माता-पिता के सामूहिक अंकन (१० वीं-१२ वी शती ई०) भी श्वेतांबर स्थलो पर ही लोकप्रिय थे। सरस्वती, बलराम, कृष्ण, अष्टदिक्पाल, नवग्रह एवं क्षेत्रपाल आदि की मूर्तिया श्वेतांबर और दिगंबर दोनों ही स्थलो पर उत्कीर्ण हुई। श्वेतांबर स्थलो पर अनेक ऐसी देवियो की भी मूर्तिया दृष्टिगत होती हैं, जिनका जैन परम्परा मे अनुल्लेख है। इनमे हिन्दू शिवा और कौमारी तथा जैन सर्वानुभूति के लक्षणो के प्रभाववाली देवियो की मूर्तिया सबसे अधिक हैं।

जैन युगलो और राम-सीता तथा रोहिणी, मनोवेगा, गौरी, गान्धारी यक्षियो और गरुड यक्ष की मूर्तिया केवल दिगबर स्थलो से ही मिली हैं। दिगबर स्थलो से परम्परा विरुद्ध और परम्परा मे अवर्णित दोनो प्रकार की कुछ मूर्तिया मिली हैं। द्वितीर्थी, त्रितीर्थी जिन मूर्तियो का अंकन और दो उदाहरणो मे त्रितीर्थी मूर्तियो मे सरस्वती और बाहुबली का अकन, बाहुबली एवं अम्बिका की दो मूर्तियो (देवगढ एवं खजुराहो) मे यक्ष-यक्षी का अकन तथा ऋषभ की कुछ मूर्तियो मे पारम्परिक यक्ष-यक्षी के साथ ही अम्बिका, लक्ष्मी एव सरस्वती आदि का अंकन इस कोटि के कुछ प्रमुख उदाहरण है (चित्र ६०-६५, ७५)। श्वेतांबर और दिगबर स्थलो की शिल्प-सामग्री के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पुरुष देवताओ की मूर्तिया देवियों की तुलना में नगण्य हैं। जैन कला मे देवियो की विशेष लोकप्रियता तान्त्रिक प्रभाव का परिणाम हो सकती है।

पाचवी शती ई० के अन्त तक जैन देवकुल का मूलस्वरूप निर्धारित हो गया था, जिसमे २४ जिन, यक्ष और यक्षिया, विद्याए, सरस्वती, लक्ष्मी, कृष्ण, बलराम, राम, नैगमेषी एव अन्य शलाकापुरुष तथा कुछ और देवता सम्मिलित थे। इस काल तक जैन-देवकुल के सदस्यो के केवल नाम और कुछ सामान्य विशेषताए ही निर्धारित हुई। उनकी लाक्षणिक विशेषताओ के विस्तृत उल्लेख आठवी से बारहवी शती ई० के मध्य के जैन ग्रन्थो मे ही मिलते हैं। पूर्ण विकसित जैन देवकुल मे २४ जिनो एव अन्य शलाकापुरुषो सहित २४ यक्ष-यक्षी युगल, १६ विद्याए, दिक्पाल, नवग्रह, क्षेत्रपाल, गणेश, ब्रह्मशान्ति यक्ष, कपर्दि यक्ष, बाहुबली, ६४-योगिनी, शान्तिदेवी, जिनो के माता-पिता एव पचपरमेष्ठि आदि सम्मिलित हैं। श्वेतांबर और दिगबर सम्प्रदायो के ग्रन्थो मे जैन देवकुल का विकास बाह्य दृष्टि से समरूप है। केवल विभिन्न देवताओ के नामो एव लाक्षणिक विशेषताओ के सन्दर्भ मे ही दोनो परम्पराओ मे भिन्नता दृष्टिगत होती है। महावीर के गर्भापहरण, जीवन्तस्वामी महावीर की मूर्ति एव मल्लिनाथ के नारी तीर्थंकर होने के उल्लेख केवल श्वेतांबर ग्रन्थो मे ही प्राप्त होते हैं।

२४ जिनो की कल्पना जैन धर्म की धुरी है। ई० सन् के प्रारम्भ के पूर्व ही २४ जिनो की सूची निर्धारित हो गई थी। २४ जिनो की प्रारम्भिक सूचिया समवायांगसूत्र, भगवतीसूत्र, कल्पसूत्र एव पउमचरिय मे मिलती हैं। शिल्प मे जिन मूर्ति का उत्कीर्णन ल० तीसरी शती ई० पू० मे प्रारम्भ हुआ। कल्पसूत्र मे ऋषभ नेमि, पार्श्व और महावीर के जीवन-वृत्तो के विस्तार से उल्लेख हैं। परवर्ती ग्रन्थों मे भी इन्ही चार जिनो की सर्वाधिक विस्तार से चर्चा है। शिल्प में भी इन्हो जिनो का अकन सबसे पहले (कुषाणकाल मे) प्रारम्भ हुआ और विभिन्न स्थलो पर आगे भी इन्ही की

सर्वाधिक मूर्तिया उत्कीर्ण हुईं। मूर्तियो के आधार पर लोकप्रियता के क्रम मे ये जिन ऋषभ, पार्श्व, महावीर और नेमि हैं। यहा यह भी उल्लेखनीय है कि इन जिनो की लोकप्रियता के कारण ही उनके यक्ष-यक्षी युगलो को भी जैन परम्परा और शिल्प मे सर्वाधिक लोकप्रियता मिली। उपर्युक्त जिनो के वाद अजित, सम्भव, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, शान्ति एव मुनिसुव्रत की सर्वाधिक मूर्तिया वनी। अन्य जिनो की मूर्तिया सख्या की दृष्टि मे नगण्य हैं। तात्पर्य यह कि उत्तर भारत में २४ मे से केवल १० ही जिनो का अकन लोकप्रिय था। दक्षिण भारत मे पार्श्व और महावीर की सर्वाधिक मूर्तिया मिलती हैं।

जिन मूर्तियो मे सर्वप्रथम पार्श्व का लक्षण स्पष्ट हुआ। ल० दूसरी-पहली शती ई० पू० मे पार्श्व के साथ शीर्षभाग मे सात सर्पफणो के छत्र का प्रदर्शन किया गया। पार्श्व के वाद मथुरा एवं चौसा की पहली शती ई० की मूर्तियो मे ऋषभ के साथ जटाओ का प्रदर्शन हुआ। कुषाण काल मे ही मथुरा मे नेमि के साथ वलराम और कृष्ण का अंकन हुआ। इस प्रकार कुषाण काल तक ऋषभ, नेमि और पार्श्व के लक्षण निश्चित हुए। मथुरा मे कुषाण काल मे सम्भव, मुनिसुव्रत एव महावीर की भी मूर्तिया उत्कीर्ण हुईं, जिनकी पहचान पीठिका-लेखों मे उत्कीर्ण नामो के आधार पर की गई है। मथुरा मे ही कुषाण काल मे सर्वप्रथम जिन मूर्तियो मे सात प्रातिहार्यों, धर्मचक्र, मागलिक चिह्नो एव उपासको आदि का अकन हुआ।

गुप्तकाल मे जिनो के साथ सर्वप्रथम लाछनो, यक्ष-यक्षी युगलो एव अष्ट-प्रातिहार्यों का अंकन प्रारम्भ हुआ। राजगिर एव भारत कला भवन, वाराणसी की नेमि और महावीर की दो मूर्तियो मे पहली वार लाछन का, और अकोटा की ऋषभ की मूर्ति मे यक्ष-यक्षी (सर्वानुभूति एव अम्बिका) का चित्रण हुआ। गुप्त काल मे सिंहासन के छोरो एव परिकर मे छोटी जिन मूर्तियो का भी अकन प्रारम्भ हुआ। अकोटा की श्वेताम्बर जिन मूर्तियो मे पहली वार पीठिका के मध्य में धर्मचक्र के दोनो ओर दो मृगो का अकन किया गया जो सम्भवत बौद्ध कला का प्रभाव है।

ल० आठवी-नवी शती ई० मे २४ जिनो के स्वतन्त्र लाछनों की सूची वनी, जो **कहावली**, **प्रवचनसारोद्धार** एवं **तिलोयपण्णत्ति** मे सुरक्षित है। श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्पराओ मे सुपार्श्व, शीतल, अनन्त एवं अरनाथ के अतिरिक्त अन्य जिनो के लाछनो मे कोई भिन्नता नही है। मूर्तियो में सुपार्श्व तथा पार्श्व के साथ क्रमश· स्वस्तिक और सर्प लाछनो का अकन दुर्लभ है क्योकि पाच और सात सर्पफणो के छत्रो के प्रदर्शन के वाद जिनों की पहचान के लिए लाछनो का प्रदर्शन आवश्यक नही समझा गया। पर जटाओ से शोभित ऋषभ के साथ वृषभ लाछन का चित्रण नियमित था क्योंकि आठवी शती ई० के वाद के दिगम्बर स्थलो पर ऋषभ के साथ-साथ अन्य जिनो के साथ भी जटाए प्रदर्शित की गयी हैं।

ल० नवी-दसवी शती ई० तक मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से जिन मूर्तिया पूर्णत विकसित हो गईं। पूर्णविकसित जिन मूर्तियों मे लाछनो, यक्ष-यक्षी युगलो एव अष्ट-प्रातिहार्यों के साथ ही परिकर मे छोटी जिन मूर्तियों, नवग्रहो, गजाकृतियो, धर्मचक्र, विद्याओ एव अन्य आकृतियो का अंकन हुआ (चित्र ७)। सिंहासन के मध्य मे पद्म से युक्त शान्तिदेवी तथा गजो एव मृगो का निरूपण केवल श्वेताम्बर स्थलो पर लोकप्रिय था (चित्र २०, २१)। ग्यारहवी से तेरहवी शती ई० के मध्य श्वेताम्बर स्थलों पर ऋषभ, शान्ति, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व एव महावीर के जीवनदृश्यो का विशद अकन भी हुआ, जिसके उदाहरण ओसिया की देवकुलिकाओ, कुम्भारिया के शान्तिनाथ एव महावीर मन्दिरो, जालोर के पार्श्वनाथ मन्दिर और आबू के विमलवसही और लूणवसही से मिले हैं। इनमे जिनों के पंचकल्याणको (च्यवन, जन्म, दीक्षा, कैवल्य, निर्वाण) एवं कुछ अन्य महत्वपूर्ण घटनाओ को दरशाया गया है, जिनमे भरत और बाहुवली के युद्ध, शान्ति के पूर्वजन्म मे कपोत की प्राणरक्षा की कथा, नेमि के विवाह, मुनिसुव्रत के जीवन की अश्वाववोध और शकुनिका-विहार की कथाए तथा पार्श्व एवं महावीर के उपसर्ग प्रमुख हैं।

उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश के दिगम्बर स्थलो पर मध्ययुग मे नेमि के साथ वलराम और कृष्ण, पार्श्व के साथ सर्पफणों के छत्र वाले चामरधारी धरण एव छत्रधारिणी पद्मावती तथा जिन मूर्तियो के परिकर मे बाहुवली, जीवन्तस्वामी,

क्षेत्रपाल, सरस्वती, लक्ष्मी आदि के अकन विशेष लोकप्रिय थे (चित्र २७, २८)। विहार, उडीसा एव वगाल की जिन मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी युगलो, सिंहासन, धर्मचक्र, गजो, दुन्दुभिवादको आदि का अंकन लोकप्रिय नही था। ल० दसवी शती ई० मे जिन मूर्तियो के परिकर मे २३ या २४ छोटी जिन मूर्तियो का अंकन प्रारम्भ हुआ। वंगाल की छोटी जिन मूर्तिया अधिकाशत. लाछनो से युक्त हैं (चित्र ९)। जैन ग्रन्थो मे द्वितीर्थी एवं त्रितीर्थी जिन मूर्तियो के उल्लेख नही मिलते। पर दिगवर स्थलो पर, मुख्यत. देवगढ एव खजुराहो मे, नवी से वारहवी शती ई० के मध्य इनका उत्कीर्णन हुआ। इन मूर्तियो मे दो या तीन भिन्न जिनो को एक साथ निरूपित किया गया है।

जिन चौमुखी मूर्तियो का उत्कीर्णन पहली शती ई० मे मथुरा मे प्रारम्भ हुआ और आगे की शताब्दियो मे भी लोकप्रिय रहा (चित्र ६६–६९)। चौमुखी मूर्तियो मे चार दिशाओ मे चार ध्यानस्थ या कायोत्सर्ग जिन मूर्तिया उत्कीर्ण होती हैं। इन मूर्तियो को दो मुख्य वर्गों मे वाटा जा सकता है। पहले वर्ग मे वे मूर्तिया हैं जिनमे चारो ओर एक ही जिन की चार मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। इस वर्ग की मूर्तिया समवसरण की धारणा से प्रभावित हैं और ल० सातवी-आठवी शती ई० मे इनका निर्माण हुआ। दूसरे वर्ग की मूर्तियो मे चारो ओर चार अलग-अलग जिनो की चार मूर्तिया हैं। मथुरा की कुषाण कालीन चौमुखी मूर्तिया इसी वर्ग की है। मथुरा की कुषाण कालीन चौमुखी मूर्तियो के समान ही इस वर्ग की अधिकाश मूर्तियो मे केवल ऋषभ और पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। कुछ मूर्तियो मे अजित, सम्भव, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, नेमि, शान्ति एव महावीर भी निरूपित हैं। वगाल मे चारो जिनो के साथ लाछनो और देवगढ एव विमलवसही मे यक्ष-यक्षी युगलो का चित्रण प्राप्त होता हैं। ल० दसवी शती ई० में चतुर्विशति-जिन-पट्टो का निर्माण प्रारम्भ हुआ। ग्यारहवी शती ई० का एक विशिष्ट पट्ट देवगढ मे है।

भगवतीसूत्र, तत्त्वार्थसूत्र, अन्तगड्दसाओ एव **पउमचरिय** जैसे प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो मे यक्षो के प्रचुर उल्लेख हैं। इनमे माणिभद्र और पूर्णभद्र यक्षो और वहुपुत्रिका यक्षी की सर्वाधिक चर्चा है। जिनो से सश्लिष्ट प्राचीनतम यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं, जिनकी कल्पना प्राचीन परम्परा के माणिभद्र-पूर्णभद्र यक्षो और वहुपुत्रिका यक्षी से प्रभावित है।[1] ल० छठी शती ई० मे शिल्प मे जिनो के शासन और उपासक देवो के रूप मे यक्ष और यक्षी का निरूपण प्रारम्भ हुआ। यक्ष एवं यक्षी को जिन मूर्तियो के सिंहासन या पीठिका के क्रमश दायें और वायें छोरो पर अकित किया गया।

ल० छठी से नवी शती ई० तक के ग्रन्थो मे केवल यक्षराज (सर्वानुभूति), धरणेन्द्र, चक्रेश्वरी, अम्बिका एव पद्मावती की ही कुछ लाक्षणिक विशेषताओ के उल्लेख हैं। २४ जिनो के स्वतन्त्र यक्षी-यक्षी युगलो की सूची ल० आठवी-नवी शती ई० मे निर्धारित हुई। सबसे प्रारम्भ की सूचिया **कहावली, तिलोयपण्णत्ति** और **प्रवचनसारोद्धार** मे हैं। २४ यक्ष-यक्षी युगलो की स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेपताए ग्यारहवी-वारहवी शती ई० मे नियत हुईं जिनके उल्लेख **निर्वाण-कलिका, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** एवं **प्रतिष्ठासारसंग्रह** तथा अन्य कई ग्रन्थो मे हैं। श्वेतावर ग्रन्थों मे दिगवर परम्परा के कुछ पूर्व ही यक्ष और यक्षियो की लाक्षणिक विशेपताए निश्चित हो गयी थी। दोनो परम्पराओं मे यक्ष एव यक्षियो के नामो और उनकी लाक्षणिक विशेषताओ की दृष्टि से पर्याप्त भिन्नता दृष्टिगत होती है। दिगवर ग्रन्थो मे यक्ष और यक्षियो के नाम और उनकी लाक्षणिक विशेषताए श्वेतावर ग्रन्थो की अपेक्षा स्थिर और एकरूप हैं।

दोनो परम्पराओ की सूचियो मे मातग, यक्षेश्वर एव ईश्वर यक्षो तथा नरदत्ता, मानवी, अच्युता एव कुछ अन्य यक्षियो के नामोल्लेख एक से अधिक जिनो के साथ किये गये हैं। भृकुटि का यक्ष और यक्षी दोनो के रूप मे उल्लेख है। २४ यक्ष और यक्षियो की सूची मे से अधिकाश के नाम एव उनकी लाक्षणिक विशेषताए हिन्दू और कुछ उदाहरणो मे वौद्ध देवकुल से प्रभावित हैं। हिन्दू देवकुल से प्रभावित यक्ष-यक्षी युगल तीन भागो मे विभाज्य हैं। पहली कोटि मे ऐसे यक्ष-यक्षी युगल हैं जिनके मूल देवता आपस मे किसी प्रकार सम्बन्धित नही हैं। अधिकाश यक्ष-यक्षी युगल इसी वर्ग के हैं।

---

१ शाह, यू०पी०, 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इ०, ख० ३, अ० १, पृ० ६१–६२। सर्वानुभूति को मातग, गोमेध या कुवेर भी कहा गया है।

दूसरी कोटि मे ऐसे यक्ष-यक्षी युगल हैं जो मूलरूप मे हिन्दू देवकुल मे भी आपस मे सम्बन्धित हैं, जैसे श्रेयांशनाथ के ईश्वर एव गौरी यक्ष-यक्षी युगल। तीसरी कोटि मे ऐसे यक्ष-यक्षी युगल हैं जिनमे यक्ष एक और यक्षी दूसरे स्वतन्त्र सम्प्रदाय के देवता से प्रभावित हैं। ऋषभनाथ के गोमुख यक्ष एव चक्रेश्वरी यक्षी इसी कोटि के हैं, जो शिव और वैष्णवी से प्रभावित हैं, शिव और वैष्णवी क्रमश शैव एव वैष्णव धर्म के प्रतिनिधि देव हैं।

ल० छठी शती ई० मे सर्वप्रथम सर्वानुभूति एव अम्बिका को अकोटा मे मूर्त अभिव्यक्ति मिली। इसके वाद धरणेन्द्र और पद्मावती की मूर्तिया वनी और ल० दसवी शती ई० से अन्य यक्ष-यक्षियो की भी मूर्तियां वनने लगीं। ल० छठी शती ई० मे जिन मूर्तियो मे और ल० नवी शती ई० में स्वतन्त्र मूर्तियो के रूप मे यक्ष-यक्षियो का निरूपण प्रारम्भ हुआ।[1] ल० छठी से नवी शती ई० के मध्य की ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व एव कुछ अन्य जिनो की मूर्तियो मे सर्वानुभूति एव अम्बिका ही आमूर्तित हैं। ल० दसवी शती ई० से ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व एव महावीर के साथ सर्वानुभूति एव अम्बिका के स्थान पर पारम्परिक या स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी युगलो का निरूपण प्रारम्भ हुआ, जिसके मुख्य उदाहरण देवगढ, ग्यारसपुर, खजुराहो एव राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे हैं। इन स्थलो की दसवी शती ई० की मूर्तियो में ऋषभ और नेमि के साथ क्रमश. गोमुख-चक्रेश्वरी और सर्वानुभूति-अम्बिका तथा शान्ति, पार्श्व एवं महावीर के साथ स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं।

नवी शती ई० के वाद विहार, उडीसा और वगाल के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्रो की जिन मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी युगलो का नियमित अकन हुआ है। स्वतन्त्र अकनो मे यक्ष की तुलना मे यक्षियो के चित्रण अधिक लोकप्रिय थे। २४ यक्षियो के सामूहिक अकन के हमे तीन उदाहरण मिले हैं, पर २४ यक्षो के सामूहिक चित्रण का सम्भवत. कोई प्रयास ही नही किया गया। यक्षो की केवल द्विभुजी और चतुर्भुजी मूर्तिया वनीं, पर यक्षियो की दो से वीस भुजाओं तक की मूर्तियां मिली हैं।

यक्ष और यक्षियो की सर्वाधिक जिन-सयुक्त और स्वतन्त्र मूर्तिया उत्तरप्रदेश एव मध्यप्रदेश के दिगवर स्थलो पर उत्कीर्ण हुई। अत यक्ष एव यक्षियो के मूर्तिविज्ञानपरक विकास के अध्ययन की दृष्टि से इस क्षेत्र का विशेष महत्व है। इस क्षेत्र मे दसवीं से वारहवी शती ई० के मध्य ऋषभ, नेमि एव पार्श्व के साथ पारम्परिक, और सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, शान्ति एव महावीर के साथ स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी युगल निरूपित हुए। अन्य जिनो के यक्ष-यक्षी द्विभुज और सामान्य लक्षणो वाले हैं। इस क्षेत्र मे चक्रेश्वरी एव अम्बिका की सर्वाधिक मूर्तिया वनी (चित्र ४४–४६, ५०, ५१)। साथ ही रोहिणी, मनोवेगा, गौरी, गान्धारी, पद्मावती एव सिद्धायिका को भी कुछ मूर्तिया मिली हैं (चित्र ४७, ५५)। चक्रेश्वरी एव पद्मावती की मूर्तियो मे सर्वाधिक विकास दृष्टिगत होता है। यक्षो मे केवल सर्वानुभूति, गरुड (?) एवं धरणेन्द्र की ही कुछ स्वतन्त्र मूर्तिया मिली हैं (चित्र ४९)। इस क्षेत्र मे २४ यक्षियो के सामूहिक अकन के भी दो उदाहरण हैं जो देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एव पतियानदाई (अम्बिका मूर्ति, ११वी शती ई०) से मिले हैं (चित्र ५३)। देवगढ के उदाहरण मे अम्बिका के अतिरिक्त अन्य किसी यक्षी के साथ पारम्परिक विशेषताए नही प्रदर्शित हैं। देवगढ समूह की अधिकाश यक्षिया सामान्य लक्षणो वाली और समरूप, तथा कुछ अन्य जैन महाविद्याओ एव सरस्वती आदि के स्वरूपो से प्रभावित हैं।

गुजरात और राजस्थान मे अम्बिका की सर्वाधिक मूर्तिया वनी (चित्र ५४)। चक्रेश्वरी, पद्मावती एव सिद्धायिका की भी कुछ मूर्तिया मिली हैं (चित्र ५६)। यक्षो मे केवल गोमुख, वरुण (?), सर्वानुभूति एव पार्श्व की ही स्वतन्त्र मूर्तिया हैं (चित्र ४३)। सर्वानुभूति की मूर्तिया सर्वाधिक हैं। इस क्षेत्र मे छठी से वारहवीं शती ई० तक सभी जिनों के साथ एक ही यक्ष-यक्षी युगल, सर्वानुभूति एव अम्बिका, निरूपित हैं। केवल कुछ उदाहरणो मे ऋषभ, पार्श्व एव महावीर के साथ पारम्परिक या स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं।

---

१ केवल अकोटा से छठी शती ई० के अन्त की एक स्वतन्त्र अम्बिका मूर्ति मिली है।

बिहार, उडीसा एव बंगाल मे यक्ष-यक्षियो की मूर्तिया नगण्य है। केवल चक्रेश्वरी, अम्बिका एव पद्मावती (?) की कुछ स्वतन्त्र मूर्तिया मिली हैं। उड़ीसा की नवमुनि एव बारभुजी गुफाओ (११ वी-१२ वी शती ई०) मे क्रमश सात और चौवीस यक्षियो की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं (चित्र ५९)। दक्षिण भारत मे गोमुख, कुवेर, धरणेन्द्र एवं मातंग यक्षो तथा चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी, अम्बिका, पद्मावती एव सिद्धायिका यक्षियो की मूर्तिया बनी। यक्षियो मे ज्वालामालिनी, अम्बिका एव पद्मावती सर्वाधिक लोकप्रिय थी।

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो मे २४ जिनो सहित जिन ६३ शलाकापुरुषो के उल्लेख हैं, उनकी सूची सदैव स्थिर रही है। इस सूची मे २४ जिनो के अतिरिक्त १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव सम्मिलित हैं। जैन शिल्प मे २४ जिनो के अतिरिक्त अन्य शलाकापुरुषो मे से केवल बलराम, कृष्ण, राम और भरत की ही मूर्तिया मिलती हैं। बलराम और कृष्ण के अकन कुषाण युग मे तथा राम और भरत के अकन दसवी-बारहवी शती ई० मे हुए। श्रीलक्ष्मी और सरस्वती के उल्लेख प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो मे हैं। सरस्वती का अकन कुषाण युग मे और श्री लक्ष्मी का अकन दसवी शती ई० मे हुआ। जैन परम्परा मे इन्द्र का जिनो के प्रधान सेवक के रूप मे उल्लेख है और उसकी मूर्तिया ग्यारहवीं-बारहवी शती ई० मे बनी। प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो मे उल्लिखित नैगमेषी को कुषाण काल मे ही मूर्त अभिव्यक्ति मिली। शान्तिदेवी, गणेश, ब्रह्मशान्ति एव कपर्दि यक्षो के उल्लेख और उनकी मूर्तिया दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की हैं (चित्र ७७)।

जैन देवकुल मे जिनो एव यक्ष-यक्षियो के बाद सर्वाधिक प्रतिष्ठा विद्याओ को मिली। **स्थानागसूत्र, सूत्रकृताग, नायाधम्मकहाओ** और **पउमचरिय** जैसे प्रारम्भिक एव **हरिवशपुराण, वसुदेवहिण्डी** और **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** जैसे परवर्ती (छठी-१२ वी शती ई०) ग्रन्थो मे विद्याओ के अनेक उल्लेख हैं। जैन ग्रन्थो मे वर्णित अनेक विद्याओ मे से १६ विद्याओ को लेकर ल० नवी शती ई० मे १६ विद्याओ की एक सूची निर्धारित हुई। ल० नवी से बारहवी शती ई० के मध्य इन्ही १६ विद्याओ के ग्रन्थो मे प्रतिमालक्षण निर्धारित हुए और शिल्प मे मूर्तिया बनी। १६ विद्याओ की प्रारम्भिकतम सूचिया **तिजयपहुत्त** (९ वीं शती ई०), **सहितासार** (९३९ ई०) एवं **स्तुति चतुर्विशतिका** (ल० ९७३ ई०) मे हैं। बप्पभट्टिसूरि की **चतुर्विशतिका** (७४३–८३८ ई०) मे सर्वप्रथम १६ मे से १५ विद्याओ की लाक्षणिक विशेषताए निरूपित हुई। सभी १६ विद्याओ की लाक्षणिक विशेषताओ का निर्धारण सर्वप्रथम शोभनमुनि की **स्तुति चतुर्विशतिका** मे हुआ। विद्याओ की प्राचीनतम मूर्तिया ओसिया के महावीर मन्दिर (ल० ८ वी-९ वी शती ई०) से मिली हैं। नवी से तेरहवी शती ई० के मध्य गुजरात और राजस्थान के श्वेतांबर जैन मन्दिरो मे विद्याओ की अनेक मूर्तिया उत्कीर्ण हुईं। १६ विद्याओ के सामूहिक चित्रण के भी प्रयास किये गये जिसके चार उदाहरण क्रमश कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर (११ वी शती ई०) और आबू के विमलवसही (दो उदाहरण : रगमण्डप और देवकुलिका ४१, १२ वी शती ई०) एवं लूणवसही (रंगमण्डप, १२३० ई०) से मिले हैं (चित्र ७८)। दिगबर स्थलो पर विद्याओ के चित्रण का एकमात्र सम्भावित उदाहरण खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर की भित्ति पर है।

•

परिशिष्ट

परिशिष्ट–१

जिन-मूर्तिविज्ञान-तालिका

स०	जिन	लांछन	यक्ष	यक्षी
१	ऋषभनाथ (या आदिनाथ)	वृषभ	गोमुख	चक्रेश्वरी (श्वे०, दि०)[1], अप्रतिचक्रा (श्वे०)
२	अजितनाथ	गज	महायक्ष	अजिता (श्वे०), रोहिणी (दि०)
३	सम्भवनाथ	अश्व	त्रिमुख	दुरितारी (श्वे०), प्रज्ञप्ति (दि०)
४	अभिनन्दन	कपि	यक्षेश्वर (श्वे०, दि०), ईश्वर (श्वे०)	कालिका (श्वे०), वज्रशृंखला (दि०)
५	सुमतिनाथ	क्रौंच	तुम्बरु (श्वे०, दि०), तुम्बर (दि०)	महाकाली (श्वे०), पुरुषदत्ता, नरदत्ता (दि०), सम्मोहिनी (श्वे०)
६	पद्मप्रभ	पद्म	कुसुम (श्वे०), पुष्प (दि०)	अच्युता, मानसी (श्वे०), मनोवेगा (दि०)
७	सुपार्श्वनाथ	स्वस्तिक (श्वे०, दि०), नद्यावर्त (दि०)	मातग	शान्ता (श्वे०), काली (दि०)
८	चन्द्रप्रभ	शशि	विजय (श्वे०), श्याम (दि०)	भृकुटि, ज्वाला (श्वे०), ज्वालामालिनी, ज्वालिनी (दि०)
९	सुविधिनाथ (श्वे०), पुष्पदत (श्वे०, दि०)	मकर	अजित (श्वे०, दि०), जय	सुतारा (श्वे०), महाकाली (दि०)
१०	शीतलनाथ	श्रीवत्स (श्वे०,दि०) स्वस्तिक (दि०)	ब्रह्म	अशोका (श्वे०), मानवी (दि०)
११	श्रेयांशनाथ	खड्गी (गेंडा)	ईश्वर (श्वे०, दि०), यक्षराज, मनुज (श्वे०)	मानवी, श्रीवत्सा (श्वे०), गौरी (दि०)
१२	वासुपूज्य	महिष	कुमार	चण्डा, प्रचण्डा, अजिता, चन्द्रा (श्वे०), गान्धारी (दि०)
१३	विमलनाथ	वराह	षण्मुख (श्वे०, दि०), चतुर्मुख (दि०)	विदिता (श्वे०), वैरोटी (दि०)
१४	अनन्तनाथ	श्येनपक्षी (श्वे०), रीछ (दि०)	पाताल	अंकुशा (श्वे०), अनन्तमती (दि०)
१५	धर्मनाथ	वज्र	किन्नर	कन्दर्पा, पन्नगा (श्वे०), मानसी (दि०)
१६	शान्तिनाथ	मृग	गरुड	निर्वाणी (श्वे०), महामानसी (दि०)
१७	कुंथुनाथ	छाग	गन्धर्व	वला, अच्युता, गान्धारिणी (श्वे०), जया (दि०)

श्वे० = श्वेतांबर, दि० = दिगंबर

परिशिष्ट–२

यक्ष-यक्षी-मूर्तिविज्ञान-तालिका

(क) २४–यक्ष

स०	यक्ष	वाहन	भुजा–स०	आयुध	अन्य लक्षण
१	गोमुख–(क) श्वे०	गज (या वृषभ)	चार	वरदमुद्रा, अक्षमाला, मातुलिंग, पाश	गोमुख, पार्श्वों मे गज एव वृषभ का अकन
	(ख) दि०	वृषभ	चार	परशु, फल, अक्षमाला, वरदमुद्रा	शीर्षभाग मे धर्मचक्र
२	महायक्ष–(क) श्वे०	गज	आठ	वरदमुद्रा, मुद्गर, अक्षमाला, पाश (दक्षिण), मातुलिंग, अभयमुद्रा, अकुश, शक्ति (वाम)	चतुर्मुख
	(ख) दि०	गज	आठ	खड्ग (निस्त्रिंश), दण्ड, परशु, वरदमुद्रा (दक्षिण), चक्र, त्रिशूल, पद्म, अकुश (वाम)	चतुर्मुख
३	त्रिमुख–(क) श्वे०	मयूर (या सर्प)	छह	नकुल, गदा, अभयमुद्रा (दक्षिण); फल, सर्प, अक्षमाला (वाम)	त्रिमुख, त्रिनेत्र (या नवाक्ष)
	(ख) दि०	मयूर	छह	दण्ड, त्रिशूल, कटार (दक्षिण), चक्र, खड्ग, अंकुश (वाम)	त्रिमुख, त्रिनेत्र
४	(i) ईश्वर–श्वे०	गज	चार	फल, अक्षमाला, नकुल, अकुश	
	(ii) यक्षेश्वर–दि०	गज (या हस)	चार	सकपत्र (या वाण), खड्ग, कार्मुक, खेटक। सर्प, पाश, वज्र, अंकुश (अपराजितपृच्छा)	चतुरानन
५	तुम्वरु–(क) श्वे०	गरुड	चार	वरदमुद्रा, शक्ति, नाग (या गदा), पाश	
	(ख) दि०	गरुड	चार	सर्प, सर्प, वरदमुद्रा, फल	नागयज्ञोपवीत
६	कुसुम (या पुष्प)– (क) श्वे०	मृग (या मयूर या अश्व)	चार	फल, अभयमुद्रा, नकुल, अक्षमाला	
	(ख) दि०	मृग	दो या चार	(i) गदा, अक्षमाला (ii) शूल, मुद्रा, खेटक, अभयमुद्रा (या खेटक)	
७	मातग–(क) श्वे०	गज	चार	विल्वफल, पाश (या नागपाश), नकुल (या वज्र), अकुश	
	(ख) दि०	सिंह (या मेष)	दो	वज्र (या शूल), दण्ड। गदा, पाश (अपराजितपृच्छा)	
८	(i) विजय–श्वे०	हस	दो	चक्र (या खड्ग), मुद्गर	त्रिनेत्र
	(ii) श्याम–दि०	कपोत	चार	फल, अक्षमाला, परशु, वरदमुद्रा	त्रिनेत्र

सं० यक्ष	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
९ अजित–(क) श्वे०	कूर्म	चार	मातुलिंग, अक्षसूत्र (या अभयमुद्रा), नकुल, शूल (या अतुल रत्नराशि)	
(ख) दि०	कूर्म	चार	फल, अक्षसूत्र, शक्ति, वरदमुद्रा	
१० ब्रह्म–(क) श्वे०	पद्म	आठ या दस	मातुलिंग, मुद्गर, पाश, अभयमुद्रा या वरदमुद्रा (दक्षिण), नकुल, गदा, अकुश, अक्षसूत्र (वाम), मातुलिंग, मुद्गर, पाश, अभयमुद्रा, नकुल, गदा, अकुश, अक्षसूत्र, पाश, पद्म (आचारदिनकर)	त्रिनेत्र, चतुर्मुख
(ख) दि०	सरोज	आठ	वाण, खड्ग, वरदमुद्रा, धनुष, दण्ड, खेटक, परशु, वज्र	चतुर्मुख
११ ईश्वर–(क) श्वे०	वृषभ	चार	मातुलिंग, गदा, नकुल, अक्षसूत्र	त्रिनेत्र
(ख) दि०	वृषभ	चार	फल, अक्षसूत्र, त्रिशूल, दण्ड (या वरदमुद्रा)	त्रिनेत्र
१२ कुमार–(क) श्वे०	हस	चार	वीजपूरक, वाण (या वीणा), नकुल, धनुष	
(ख) दि०	हंस (या मयूर)	चार या छह	वरदमुद्रा, गदा, धनुष, फल (प्रतिष्ठासारोद्धार), वाण, गदा, वरदमुद्रा, धनुष, नकुल, मातुलिंग (प्रतिष्ठातिलकम्)	त्रिमुख या षण्मुख
१३ (I) षण्मुख–श्वे०	मयूर	वारह	फल, चक्र, वाण (या शक्ति), खड्ग, पाश, अक्षमाला, नकुल, चक्र, धनुष, फलक, अकुश, अभयमुद्रा	
(II) चतुर्मुख–दि०	मयूर	वारह	ऊपर के आठ हाथो मे परशु और शेष चार मे खड्ग, अक्षसूत्र, खेटक, दण्डमुद्रा	
१४ पाताल–(क) श्वे०	मकर	छह	पद्म, खड्ग, पाश, नकुल, फलक, अक्षसूत्र	त्रिमुख, त्रिनेत्र
(ख) दि०	मकर	छह	अकुश, शूल, पद्म, कषा, हल, फल। वज्र, अकुश, धनुष, वाण, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	त्रिमुख, शीर्षभाग मे त्रिसर्पफण
१५ किन्नर–(क) श्वे०	कूर्म	छह	वीजपूरक, गदा, अभयमुद्रा, नकुल, पद्म, अक्षमाला	त्रिमुख
(ख) दि०	मीन	छह	मुद्गर, अक्षमाला, वरदमुद्रा, चक्र, वज्र, अकुश, पाश, अकुश, धनुष, वाण, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	त्रिमुख

सं० यक्ष	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
१६ गरुड़–(क) श्वे०	वराह (या गज)	चार	वीजपूरक, पद्म, नकुल (या पाश), अक्षसूत्र	वराहमुख
(ख) दि०	वराह (या शुक)	चार	वज्र, चक्र, पद्म, फल। पाश, अकुश, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	
१७ गन्धर्व–(क) श्वे०	हस (या सिंह ?)	चार	वरदमुद्रा, पाश, मातुलिंग, अकुश	
(ख) दि०	पक्षी (या शुक)	चार	सर्प, पाश, वाण, धनुष, पद्म, अभयमुद्रा, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	
१८ (i) यक्षेन्द्र–श्वे०	शख (या वृषभ या शेष)	वारह	मातुलिंग, वाण (या कपाल), खड्ग, मुद्गर, पाश (या शूल), अभयमुद्रा, नकुल, धनुष, खेटक, शूल, अकुश, अक्षसूत्र	षण्मुख, त्रिनेत्र
(ii) खेन्द्र या यक्षेश–दि०	शख (या खर)	वारह या छह	वाण, पद्म, फल, माला, अक्षमाला, लीलामुद्रा, धनुष, वज्र, पाश, मुद्गर, अकुश, वरदमुद्रा। वज्र, चक्र, धनुष, वाण, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	षण्मुख, त्रिनेत्र
१९ कुवेर या यक्षेश–				
(क) श्वे०	गज	आठ	वरदमुद्रा, परशु, शूल, अभयमुद्रा, वीजपूरक, शक्ति, मुद्गर, अक्षसूत्र	चतुर्मुख, गरुडवदन (निर्वाणकलिका)
(ख) दि०	गज (या सिंह)	आठ या चार	फलक, धनुष, दण्ड, पद्म, खड्ग, वाण, पाश, वरदमुद्रा। पाश, अकुश, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	चतुर्मुख
२० वरुण–(क) श्वे०	वृषभ	आठ	मातुलिंग, गदा, वाण, शक्ति, नकुलक, पद्म (या अक्षमाला), धनुष, परशु	जटामुकुट, त्रिनेत्र, चतुर्मुख, द्वादशाक्ष (आचारदिनकर)
(ख) दि०	वृषभ	चार या छह	खेटक, खड्ग, फल, वरदमुद्रा। पाश, अकुश, कार्मुक, शर, उरग, वज्र (अपराजितपृच्छा)	जटामुकुट, त्रिनेत्र, अष्टानन
२१ भृकुटि–(क) श्वे०	वृषभ	आठ	मातुलिंग, शक्ति, मुद्गर, अभयमुद्रा, नकुल, परशु, वज्र, अक्षसूत्र	चतुर्मुख, त्रिनेत्र (द्वादशाक्ष-आचारदिनकर)
(ख) दि०	वृषभ	आठ	खेटक, खड्ग, धनुष, वाण, अकुश, पद्म, चक्र, वरदमुद्रा	चतुर्मुख
२२ गोमेध–(क) श्वे०	नर	छह	मातुलिंग, परशु, चक्र, नकुल, शूल, शक्ति	त्रिमुख, समीप ही अम्बिका के निरूपण का निर्देश (आचारदिनकर)

सं०	यक्ष	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
	(ख) दि०	पुष्प (या नर)	छह	मुद्‌गर (या द्रुघण), परशु, दण्ड, फल, वज्र, वरदमुद्रा। प्रतिष्ठातिलकम् मे द्रुघण के स्थान पर घन के प्रदर्शन का निर्देश है।	त्रिमुख
२३	(i) पार्श्व–श्वे०	कूर्म	चार	मातुलिंग, उरग (या गदा), नकुल, उरग	गजमुख, सर्पफणो के छत्र से युक्त
	(ii) धरण–दि०	कूर्म	चार या छह	नागपाश, सर्प, सर्प, वरदमुद्रा। धनुष, वाण, भृण्डि, मुद्‌गर, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	सर्पफणो के छत्र से युक्त
२४	मातग–(क) श्वे०	गज	दो	नकुल, वीजपूरक	
	(ख) दि०	गज	दो	वरदमुद्रा, मातुलिग	मस्तक पर धर्मचक्र

परिशिष्ट–२

यक्ष-यक्षी-मूर्तिविज्ञान-तालिका

(ख) २४–यक्षी

सं० यक्षी	वाहन	भुजास०	आयुध
१ चक्रेश्वरी (या अप्रति-चक्रा)–(क) श्वे०	गरुड	आठ या बारह	(i) वरदमुद्रा, बाण, चक्र, पाश (दक्षिण), धनुष, वज्र, चक्र, अकुश (वाम) (ii) आठ हाथो मे चक्र, शेष चार मे से दो मे वज्र और दो मे मातुलिंग, अभयमुद्रा
(ख) दि०	गरुड	चार या बारह	(i) दो मे चक्र और अन्य दो में मातुलिंग, वरदमुद्रा (ii) आठ हाथो में चक्र और शेष चार मे से दो मे वज्र और दो मे मातुलिंग और वरदमुद्रा (या अभयमुद्रा)
२ (i) अजिता या अजित-वला–श्वे०	लोहासन (या गाय)	चार	वरदमुद्रा, पाश, अंकुश, फल
(ii) रोहिणी–दि०	लोहासन	चार	वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, शख, चक्र
३ (i) दुरितारी–श्वे०	मेष (या मयूर या महिष)	चार	वरदमुद्रा, अक्षमाला, फल (या सर्प), अभयमुद्रा
(ii) प्रज्ञप्ति–दि०	पक्षी	छह	अर्द्धेन्दु, परशु, फल, वरदमुद्रा, खड्ग, इढी (या पिंडी)
४ (i) कालिका (या काली)–श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, पाश, सर्प, अंकुश
(ii) वज्रश्रृंखला–दि०	हस	चार	वरदमुद्रा, नागपाश, अक्षमाला, फल
५ (i) महाकाली–श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, पाश (या नागपाश), मातुलिंग, अकुश
(ii) पुरुषदत्ता (या नर-दत्ता)–दि०	गज	चार	वरदमुद्रा, चक्र, वज्र, फल
६ (i) अच्युता (या श्यामा या मानसी)–श्वे०	नर	चार	वरदमुद्रा, वीणा (या पाश या बाण), धनुष (या मातुलिंग), अभयमुद्रा (या अकुश)
(ii) मनोवेगा–दि०	अश्व	चार	वरदमुद्रा, खेटक, खड्ग, मातुलिंग
७ (i) शान्ता–श्वे०	गज	चार	वरदमुद्रा, अक्षमाला (मुक्तामाला), शूल (या त्रिशूल), अभयमुद्रा, वरदमुद्रा, अक्षमाला, पाश, अकुश (मन्त्राधिराजकल्प)
(ii) काली–दि०	वृषभ	चार	घण्टा, त्रिशूल (या शूल), फल, वरदमुद्रा

सं०	यक्षी	वाहन	भुजा सं०	आयुध
८	(i) भृकुटि (या ज्वाला)–श्वे०	वराह (या वराल या मराल या हंस)	चार	खड्ग, मुद्गर, फलक (या मातुलिंग), परशु
	(ii) ज्वालामालिनी-दि०	महिष	आठ	चक्र, धनुष, पाश (या नागपाश), चर्म (या फलक), त्रिशूल (या शूल), वाण, मत्स्य, खड्ग
९	(i) सुतारा (या चाण्डालिका)–श्वे०	वृषभ	चार	वरदमुद्रा, अक्षमाला, कलश, अंकुश
	(ii) महाकाली–दि०	कूर्म	चार	वज्र, मुद्गर (या गदा), फल (या अभयमुद्रा), वरदमुद्रा
१०	(i) अशोका (या गोमेधिका)–श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, पाश (या नागपाश), फल, अंकुश
	(ii) मानवी–दि०	शूकर (नाग)	चार	फल, वरदमुद्रा, झष, पाश
११	(i) मानवी (या श्रीवत्सा)–श्वे०	सिंह	चार	वरदमुद्रा, मुद्गर (या पाश), कलश (या वज्र या नकुल), अंकुश (या अक्षसूत्र)
	(ii) गौरी–दि०	मृग	चार	मुद्गर (या पाश), अब्ज, कलश (या अंकुश), वरदमुद्रा
१२	(i) चण्डा (या प्रचण्डा या अजिता)–श्वे०	अश्व	चार	वरदमुद्रा, शक्ति, पुष्प (या पाश), गदा
	(ii) गान्धारी–दि०	पद्म (या मकर)	चार या दो	मुसल, पद्म, वरदमुद्रा, पद्म। पद्म, फल (अपराजितपृच्छा)
१३	(i) विदिता–श्वे०	पद्म	चार	वाण, पाश, धनुष, सर्प
	(ii) वैरोट्या (या वैरोटी)–दि०	सर्प (या व्योमयान)	चार या छह	सर्प, सर्प, धनुष, वाण। दो में वरदमुद्रा, शेष मे खड्ग, खेटक, कार्मुक, शर (अपराजितपृच्छा)
१४	(i) अंकुशा–श्वे०	पद्म	चार या दो	खड्ग, पाश, खेटक, अंकुश। फलक, अंकुश (पद्मानन्दमहाकाव्य)
	(ii) अनन्तमती–दि०	हंस	चार	धनुष, वाण, फल, वरदमुद्रा
१५	(i) कन्दर्पा (या पन्नगा)–श्वे०	मत्स्य	चार	उत्पल, अंकुश, पद्म, अभयमुद्रा
	(ii) मानसी–दि०	व्याघ्र	छह	दो मे पद्म और शेष मे धनुप, वरदमुद्रा, अंकुश, वाण। त्रिशूल, पाश, चक्र, डमरु, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)

सं०	यक्षी	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
१६	(i) निर्वाणी–श्वे०	पद्म	चार	पुस्तक, उत्पल, कमण्डलु, पद्म (या वरदमुद्रा)	
	(ii) महामानसी–दि०	मयूर (या गरुड)	चार	फल, सर्प (या इढि या खड्ग ?), चक्र, वरदमुद्रा बाण, धनुष, वज्र, चक्र (अपराजितपृच्छा)	
१७	(i) बला–श्वे०	मयूर	चार	बीजपूरक, शूल (या त्रिशूल), मुषुण्ढि (या पद्म), पद्म	
	(ii) जया–दि०	शूकर	चार या छह	शंख, खड्ग, चक्र, वरदमुद्रा वज्र, चक्र, पाश, अंकुश, फल, वरद-मुद्रा (अपराजितपृच्छा)	
१८	(i) धारणी (या काली)–श्वे०	पद्म	चार	मातुलिंग, उत्पल, पाश (या पद्म), अक्षसूत्र	
	(ii) तारावती (या विजया)–दि०	हंस (या सिंह)	चार	सर्प, वज्र, मृग (या चक्र), वरदमुद्रा (या फल)	
१९	(i) वैरोट्या–श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, अक्षसूत्र, मातुलिंग, शक्ति	
	(ii) अपराजिता–दि०	शरभ	चार	फल, खड्ग, खेटक, वरदमुद्रा	
२०	(i) नरदत्ता–श्वे०	भद्रासन (या सिंह)	चार	वरदमुद्रा, अक्षसूत्र, बीजपूरक, कुम्भ (या शूल या त्रिशूल)	
	(ii) बहुरूपिणी–दि०	कालानाग	चार या दो	खेटक, खड्ग, फल, वरदमुद्रा खड्ग, खेटक (अपराजितपृच्छा)	
२१	(i) गान्धारी (या मालिनी)–श्वे०	हंस	चार या आठ	वरदमुद्रा, खड्ग, बीजपूरक, कुम्भ (या शूल या फलक) अक्षमाला, वज्र, परशु, नकुल, वरद-मुद्रा, खड्ग, खेटक, मातुलिंग (देवतामूर्तिप्रकरण)	
	(ii) चामुण्डा (या कुसुम-मालिनी)–दि०	मकर (या मर्कट)	चार या आठ	दण्ड, खेटक, अक्षमाला, खड्ग शूल, खड्ग, मुद्गर, पाश, वज्र, चक्र, डमरु, अक्षमाला (अपराजितपृच्छा)	
२२	अम्बिका (या कुष्माण्डी या आम्रा-देवी)–(क) श्वे०	सिंह	चार	मातुलिंग (या आम्रलुम्बि), पाश, पुत्र, अंकुश	एक पुत्र समीप ही निरूपित होगा

सं०	यक्षी	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
	(ख) दि०	सिंह	दो	आम्रलुम्बि, पुत्र । फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	दूसरा पुत्र आम्र-वृक्ष की छाया में अवस्थित यक्षी के समीप होगा
२३	पद्मावती-(क) श्वे०	कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट)	चार	पद्म, पाश, फल, अकुश	शीर्षभाग मे त्रिसर्पफणछत्र
	(ख) दि०	पद्म (या कुक्कुट-सर्प या कुक्कुट)	चार, छह, चौबीस	(i) अकुश, अक्षसूत्र (या पाश), पद्म, वरदमुद्रा (ii) पाश, खड्ग, शूल, अर्धचन्द्र, गदा, मुसल (iii) शख, खड्ग, चक्र, अर्धचन्द्र, पद्म, उत्पल, धनुष, शक्ति, पाश, अकुश, घण्टा, वाण, मुसल, खेटक, त्रिशूल, परशु, कुन्त, भिण्ड, माला, फल, गदा, पत्र, पल्लव, वरदमुद्रा	शीर्षभाग मे तीन सर्पफणो का छत्र
२४	(i) सिद्धायिका–श्वे०	सिंह (या गज)	चार या छह	पुस्तक, अभयमुद्रा, मातुलिंग (या पाश), वाण (या वीणा या पद्म) । पुस्तक, अभयमुद्रा, वरदमुद्रा, खरायुध, वीणा, फल (मन्त्राधिराजकल्प)	
	(ii) सिद्धायिनी–दि०	भद्रासन (या सिंह)	दो	वरदमुद्रा (या अभयमुद्रा), पुस्तक	

परिशिष्ट–३

महाविद्या-मूर्तिविज्ञान-तालिका

सं० महाविद्या	वाहन	भुजा-सं०	आयुध
१ रोहिणी–(क) श्वे०	गाय	चार	शर, चाप, शख, अक्षमाला
(ख) दि०	पद्म	चार	शख (या शूल), पद्म, फल, कलश (या वरदमुद्रा)
२ प्रज्ञप्ति–(क) श्वे०	मयूर	चार	वरदमुद्रा, शक्ति, मातुलिंग, शक्ति (निर्वाणकलिका); त्रिशूल, दण्ड, अभयमुद्रा, फल (मन्त्राधिराजकल्प)
(ख) दि०	अश्व	चार	चक्र, खड्ग, शख, वरदमुद्रा
३ वज्रशृखला–(क) श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, दो हाथो मे शृखला, पद्म (या गदा)
(ख) दि०	पद्म (या गज)	चार	शृखला, शंख, पद्म, फल
४ वज्राकुशा–(क) श्वे०	गज	चार	वरदमुद्रा, वज्र, फल, अंकुश (निर्वाणकलिका); खड्ग, वज्र, खेटक, शूल (आचारदिनकर); फल, अक्षमाला, अकुश, त्रिशूल (मन्त्राधिराजकल्प)
(ख) दि०	पुष्पयान (या गज)	चार	अकुश, पद्म, फल, वज्र
५ अप्रतिचक्रा या चक्रेश्वरी–श्वे०	गरुड	चार	चारो हाथो मे चक्र प्रदर्शित होगा
जाबूनदा–दि०	मयूर	चार	खड्ग, शूल, पद्म, फल
६ नरदत्ता (या पुरुषदत्ता)– (क) श्वे०	महिष (या पद्म)	चार	वरदमुद्रा (या अभयमुद्रा), खड्ग, खेटक, फल
(ख) दि०	चक्रवाक (कलहस)	चार	वज्र, पद्म, शख, फल
७ काली या कालिका– (क) श्वे०	पद्म	चार	अक्षमाला, गदा, वज्र, अभयमुद्रा (निर्वाणकलिका); त्रिशूल, अक्षमाला, वरदमुद्रा, गदा (मन्त्राधिराजकल्प)
(ख) दि०	मृग	चार	मुसल, खड्ग, पद्म, फल
८ महाकाली–(क) श्वे०	मानव	चार	वज्र (या पद्म), फल (या अभयमुद्रा), घण्टा, अक्षमाला
(ख) दि०	शरभ (अष्टापदपशु)	चार	शर, कार्मुक, असि, फल
९ गौरी–(क) श्वे०	गोधा (या वृषभ)	चार	वरदमुद्रा, मुसल (या दण्ड), अक्षमाला, पद्म
(ख) दि०	गोधा	हाथो की स० का अनुल्लेख	मूर्तिओ मे केवल पद्म के प्रदर्शन का निर्देश है।
१० गान्धारी–(क) श्वे०	पद्म	चार	वज्र (या त्रिशूल), मुसल (या दण्ड), अभयमुद्रा, वरदमुद्रा
(ख) दि०	कूर्म	चार	हाथो मे केवल चक्र और खड्ग का उल्लेख है।

सं०	महाविद्या	वाहन	भुजा-सं०	आयुध
११	(ı) सर्वास्त्रमहाज्वाला या ज्वाला–श्वे०	शूकर (या कलहस या विल्ली)	चार	दो हाथो मे ज्वाला, या चारो हाथो मे सर्प
	(ıı) ज्वालामालिनी–दि०	महिष	आठ	धनुष, खड्ग, वाण (या चक्र), फलक आदि। देवी ज्वाला से युक्त है।
१२	मानवी–(क) श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, पाश, अक्षमाला, वृक्ष (विटप)
	(ख) दि०	शूकर	चार	मत्स्य, त्रिशूल, खड्ग, एक भुजा की सामग्री का अनुल्लेख है
१३	(ı) वैरोट्या–श्वे०	सर्प (या गरुड या सिंह)	चार	सर्प, खड्ग, खेटक, सर्प (या वरदमुद्रा)
	(ıı) वैरोटी–दि०	सिंह	चार	करो मे केवल सर्प के प्रदर्शन का उल्लेख है
१४	(ı) अच्छुप्ता–श्वे०	अश्व	चार	शर, चाप, खड्ग, खेटक
	(ıı) अच्युता–दि०	अश्व	चार	ग्रन्थो मे केवल खड्ग और वज्र धारण करने के उल्लेख हैं।
१५	मानसी–(क) श्वे०	हस (या सिंह)	चार	वरदमुद्रा, वज्र, अक्षमाला, वज्र (या त्रिशूल)
	(ख) दि०	सर्प	हाथो की संख्या का अनुल्लेख है	दो हाथों के नमस्कार-मुद्रा मे होने का उल्लेख है।
१६	महामानसी–(क) श्वे०	सिंह (या मकर)	चार	खड्ग, खेटक, जलपात्र, रत्न (या वरद-या-अभय-मुद्रा)
	(ख) दि०	हस	चार	देवी के हाथ प्रणाम-मुद्रा मे होंगे (प्रतिष्ठासारसग्रह); वरदमुद्रा, अक्षमाला, अंकुश, पुष्पहार (प्रतिष्ठासारोद्धार एव प्रतिष्ठातिलकम्)

परिशिष्ट–४

पारिभाषिक शब्दो की व्याख्या

अभयमुद्रा : सरक्षण या अभयदान की सूचक एक हस्तमुद्रा जिसमे दाहिने हाथ की खुली हथेली दर्शक की ओर प्रदर्शित होती है।

अष्ट-महाप्रातिहार्य अशोक वृक्ष, दिव्य-ध्वनि, सुरपुष्पवृष्टि, त्रिछत्र, सिंहासन, चामरधर, प्रभामण्डल एव देव-दुन्दुभि।

अष्टमागलिक चिह्न . स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, दर्पण एव मत्स्य (या मत्स्य-युग्म)। श्वेतावर और दिगवर परम्परा की सूचियो मे कुछ भिन्नता दृष्टिगत होती है।

आयागपट : जिनो (अर्हतो) के पूजन के निमित्त स्थापित वर्गाकार प्रस्तर पट्ट जिसे लेखो मे आयागपट या पूजाशिला पट कहा गया है। इन पर जिनो की मानव मूर्तियों और प्रतीकों का साथ-साथ अकन हुआ है।

उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी : जैन कालचक्र का विभाजन। प्रत्येक युग में २४ जिनो की कल्पना की गई है। उत्सर्पिणी धर्म एव सस्कृति के विकास का और अवसर्पिणी अवसान या ह्रास का युग है। वर्तमान युग अवसर्पिणी युग है।

उपसर्ग . पूर्व जन्मो की वैरी एवं दुष्ट आत्माओ तथा देवताओं द्वारा जिनों की तपस्या मे उपस्थित विघ्न।

कायोत्सर्ग-मुद्रा या खड्गासन . जिनो के निरूपण से सम्बन्धित मुद्रा जिसमे समभग मे खडे जिन की दोनों भुजाए लबवत् घुटनो तक प्रसारित होती हैं। दोनो चरण एक दूसरे से और हाथ शरीर से सटे होने के स्थान पर थोड़ा अलग होते हैं।

जिन : शाब्दिक अर्थ विजेता, अर्थात् जिसने कर्म और वासना पर विजय प्राप्त कर लिया हो। जिन को ही तीर्थंकर भी कहा गया। जैन देवकुल के प्रमुख आराध्य देव।

जिन-चौमुखी या प्रतिमा-सर्वतोभद्रिका : वह प्रतिमा जो सभी ओर से शुभ या मगलकारी है। इसमें एक ही शिलाखण्ड मे चारो ओर चार जिन प्रतिमाए ध्यानमुद्रा या कायोत्सर्ग मे निरूपित होती हैं।

जिन-चौवीसी या चतुर्विशति-जिन-पट्ट : २४ जिनो की मूर्तियो से युक्त पट्ट; या मूलनायक के परिकर मे लाछन-युक्त या लाछन-विहीन अन्य २३ जिनों की लघु मूर्तियो से युक्त जिन-चौवीसी।

जीवन्तस्वामी महावीर : वस्त्राभूषणो से सज्जित महावीर की तपस्यारत कायोत्सर्ग मूर्ति। महावीर के जीवन-काल मे निर्मित होने के कारण जीवन्तस्वामी या जीवितस्वामी सज्ञा। दिगवर परम्परा मे इसका अनुल्लेख है। अन्य जिनों के जीवन्तस्वामी स्वरूप की भी कल्पना की गई।

तीर्थंकर : कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् साधु-साध्वियो एव श्रावक-श्राविकाओ के सम्मिलित चतुर्विध तीर्थ की स्थापना के कारण जिनो को तीर्थंकर कहा गया।

त्रितीर्थी-जिन-मूर्ति : इन मूर्तियों मे तीन जिनो को साथ-साथ निरूपित किया गया। प्रत्येक जिन अष्ट-प्रातिहार्यों, यक्ष-यक्षी युगल एवं अन्य सामान्य विशेषताओं से युक्त हैं। कुछ मे वाहुवली और सरस्वती भी आमूर्तित हैं। जैन परम्परा मे इन मूर्तियो का अनुल्लेख है।

देवताओं के चतुर्वर्ग : भवनवासी (एक स्थल पर निवास करने वाले), व्यंतर या वाणमन्तर (भ्रमणशील), ्ति (आकाशीय-नक्षत्र से सम्बन्धित) एव वैमानिक या विमानवासी (स्वर्ग के देवता)।

द्वितीर्थी-जिन-मूर्ति : इन मूर्तियो मे दो जिनो को साथ-साथ निरूपित किया गया। प्रत्येक जिन अष्ट-प्रातिहार्यों, यक्ष-यक्षी युगल और अन्य सामान्य विशेषताओ से युक्त हैं। जैन परम्परा मे इन मूर्तियो का अनुल्लेख है।

ध्यानमुद्रा या पर्यंकासन या पद्मासन या सिद्धासन . जिनो के दोनो पैर मोडकर (पद्मासन) बैठने की मुद्रा जिसमे खुली हुई हथेलिया गोद मे (बायी के ऊपर दाहिनी) रखी होती हैं।

नदीश्वर द्वीप . जैन लोकविद्या का आठवा और अन्तिम महाद्वीप, जो देवताओ का आनन्द स्थल है। यहा ५२ शाश्वत् जिनालय हैं।

पचकल्याणक : प्रत्येक जिन के जीवन की पाच प्रमुख घटनाए-च्यवन, जन्म, दीक्षा, कैवल्य (ज्ञान) और निर्वाण (मोक्ष)।

पंचपरमेष्ठि : अर्हत् (या जिन), सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। प्रथम दो मुक्त आत्माए है। अर्हत् शरीरधारी हैं। पर सिद्ध निराकार हैं।

परिकर . जिन-मूर्ति के साथ की अन्य पार्श्ववर्ती या सहायक आकृतिया।

बिंब प्रतिमा या मूर्ति।

मांगलिक स्वप्न : सख्या १४ या १६। श्वेतांबर सूची-गज, वृषभ, सिंह, श्रीदेवी (या महालक्ष्मी या पद्मा), पुष्पहार, चद्रमा, सूर्य, सिंहध्वज-दण्ड, पूर्णकुम्भ, पद्म सरोवर, क्षीरसमुद्र, देवविमान, रत्नराशि और निर्धूम अग्नि। दिगंबर सूची मे सिंहध्वज-दण्ड के स्थान पर नागेन्द्रभवन का उल्लेख है तथा मत्स्य-युगल और सिंहासन को सम्मिलित कर शुभ स्वप्नो की सख्या १६ बताई गई है।

मूलनायक : मुख्य स्थान पर स्थापित प्रधान जिन-मूर्ति।

ललितमुद्रा या ललितासन या अर्धपर्यंकासन : जैन मूर्तियो मे सर्वाधिक प्रयुक्त विश्राम का एक आसन जिसमे एक पैर मोडकर पीठिका पर रखा होता है और दूसरा पीठिका से नीचे लटकता है।

लाछन : जिनो से सम्बन्धित विशिष्ट लक्षण जिनके आधार पर जिनो की पहचान सम्भव होती है।

वरदमुद्रा . वर प्रदान करने को सूचक हस्त-मुद्रा जिसमे दाहिने हाथ की खुली हथेली बाहर की ओर प्रदर्शित होती है और उगलिया नीचे की ओर झुकी होती है।

शलाकापुरुष : ऐसी महान आत्माए जिनका मोक्ष प्राप्त करना निश्चित है। जैन परम्परा मे इनकी सख्या ६३ है। २४ जिनो के अतिरिक्त इसमे १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव सम्मिलित हैं।

शासनदेवता या यक्ष-यक्षी : जिन प्रतिमाओ के साथ सयुक्त रूप से अकित देवो मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण। जैन परम्परा में प्रत्येक जिन के साथ एक यक्ष-यक्षी युगल की कल्पना की गई जो सम्बन्धित जिन के चतुर्विध सघ के शासक एव रक्षक देव हैं।

समवसरण : देवनिर्मित सभा जहा केवल-ज्ञान के पश्चात् प्रत्येक जिन अपना प्रथम उपदेश देते हैं और देवता, मनुष्य एव पशु जगत के सदस्य आपसी कटुता भूलकर उसका श्रवण करते हैं। तीन प्राचीरो तथा प्रत्येक प्राचीर मे चार प्रवेश-द्वारो वाले इस भवन मे सबसे ऊपर पूर्वाभिमुख जिन की ध्यानस्थ मूर्ति बनी होती है।

सहस्रकूट जिनालय : पिरामिड के आकार की एक मन्दिर अनुकृति जिस पर एक सहस्र या अनेक लघु जिन आकृतियां बनी होती हैं।

●

सन्दर्भ-सूची

(क) मूल ग्रंथ-सूची

अंगविज्जा, स० मुनिपुण्यविजय, प्राकृत ग्रन्थ परिषद् १, वनारस, १९५७

अंतगड्‌दसाओ, स० पी० एल० वैद्य, पूना, १९३२, अनु० एल० डी० वर्नेट, वाराणसी, १९७३ (पु० मु०)

अपराजितपृच्छा (भुवनदेव कृत), स० पोपटभाई अंबाशंकर माकड, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, खण्ड ११५, वडौदा, १९५०

अभिधान-चिन्तामणि (हेमचंद्रकृत), सं० हरगोविन्द दास वेचरदास तथा मुनि जिनविजय, भावनगर, भाग १, १९१४, भाग २, १९१९

आचारदिनकर (वर्धमानसूरिकृत), ववई, भाग २, १९२३

आचारांगसूत्र, अनु० एच० जैकोबी, सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, खण्ड २२, भाग १, (आक्सफोर्ड, १८८४), दिल्ली, १९७३ (पु० मु०)

आदिपुराण (जिनसेनकृत), स० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्ति देवी जैन ग्रन्थमाला, सस्कृत ग्रन्थ सख्या ८, वाराणसी, १९६३

आवश्यकचूर्णि (जिनदासगणि महत्तर कृत), रतलाम, खण्ड १, १९२८, खण्ड २, १९२९

आवश्यकसूत्र (भद्रवाहुकृत), मलयगिरि सूरि की टीका सहित, भाग १, आगमोदय समिति ग्रन्थ ५६, ववई, १९२८, भाग २, आगमोदय समिति ग्रन्थ ६०, सूरत, १९३२, भाग ३, देवचंदलाल भाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रन्थ ८५, सूरत, १९३६

उत्तराध्ययनसूत्र, अनु० एच जैकोबी, सेक्रेड वुक्स ऑव दि ईस्ट, खण्ड ४५, भाग २, (आक्सफोर्ड, १८९५), दिल्ली, १९७३ (पु० मु०), स० रतनलाल दोशी, सैलन (म० प्र०)

उवासगदसाओ, स० पी० एल० वैद्य, पूना, १९३०

कल्पसूत्र (भद्रवाहुकृत), अनु० एच० जैकोवी, सेक्रेड वुक्स ऑव दि ईस्ट, खण्ड २२, भाग १ (आक्सफोर्ड, १८८४), दिल्ली, १९७३ (पु० मु०), स० देवेन्द्र मुनि शास्त्री, शिवान, १९६८

कुमारपालचरित (जयसिंहसूरि कृत), निर्णय सागर प्रेस, ववई, १९२६

चतुर्विंशतिका (वप्पभट्टिसूरि कृत), अनु० एच० आर० कापडिया, वंबई, १९२६

चन्द्रप्रभचरित्र (वीरनन्दि कृत), स० अमृतलाल शास्त्री, शोलापुर, १९७१

जैन स्तोत्र सन्दोह, स० अमरविजय मुनि, खण्ड १, अहमदावाद, १९३२

तत्त्वार्थसूत्र (उमास्वाति कृत), स० सुखलाल सघवी, वनारस, १९५२

तिलकमजरी-कथा (धनपाल कृत), स० भवदत्त शास्त्री तथा काशीनाथ पाण्डुरंग परव, काव्यमाला ८५, ववई, १९०३

तिलोयपण्णत्ति (यतिवृषभ कृत), स० आदिनाथ उपाध्ये तथा हीरालाल जैन, जीवराज जैन ग्रन्थमाला १, शोलापुर, १९४३

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (हेमचन्द्रकृत), अनु० हेलेन एम० जानसन, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, वडौदा, खण्ड १ (१९३१), खण्ड २ (१९३७), खण्ड ३ (१९४९), खण्ड ४ (१९५४), खण्ड ५ (१९६२), खण्ड ६ (१९६२)

दसवेयालिय सुत्त, स० इ० ल्यूमन, अहमदावाद, १९३२

देवतामूर्तिप्रकरण, सं० उपेन्द्र मोहन साख्यतीर्थ, मंस्कृत सिरीज १२, कलकत्ता, १९३६

नायावम्मकहाओ, स० एन० वी० वैद्य, पूना, १९४०

निर्वाणकलिका (पादलिप्तसूरि कृत), स० मोहनलाल भगवानदास, मुनि श्रीमोहनलालजी जैन ग्रन्यमाला ५, ववई, १९२६

नेमिनाथ चरित (गुणविजयसूरि कृत), निर्णयसागर प्रेस, ववई

पउमचरियम (विमलसूरि कृत), भाग १, सं० एच० जैकोवी, अनु० शातिलाल एम० वोरा, प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी सिरीज ६, वाराणसी, १९६२

पद्मपुराण (रविषेण कृत), भाग १, सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, सस्कृत ग्रथाक २०, वाराणसी, १९५८

पद्मानन्दमहाकाव्य या चतुर्विशति जिन चरित्र (अमरचन्द्रसूरि कृत), पाण्डुलिपि, लाल भाई दलपत भाई भारतीय संस्कृत विद्या मदिर, अहमदावाद

पार्श्वनाथ चरित्र (भवदेवसूरि कृत), स० हरगोविन्द दास तथा वेचर दास, वाराणसी, १९११

पासनाह चरिउ (पद्मकीर्ति कृत), सं० प्रफुल्लकुमार मोदी, प्राकृत ग्रन्थ सोसाइटी, सख्या ८, वाराणसी, १९६५

प्रतिष्ठातिलकम् (नेमिचंद्र कृत), शोलापुर

प्रतिष्ठापर्वन, अनु० जे० हार्टेल, लीपिज, १९०८

प्रतिष्ठापाठ सटीक (जयसेन कृत), अनु० हीराचन्द नेमिचन्द दोशी, शोलापुर, १९२५

प्रतिष्ठासारसंग्रह (वसुनन्दि कृत), पाण्डुलिपि, लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृत विद्या मन्दिर, अहमदावाद

प्रतिष्ठासारोद्धार (आशाधर कृत), स० मनोहरलाल शास्त्री, ववई, १९१७ (वि० स० १९७४)

प्रवन्धचिन्तामणि (मेरुतुंग कृत), भाग १, स० जिनविजय मुनि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला १, शान्तिनिकेतन (वगाल), १९३३

प्रभावक चरित (प्रभाचद्र कृत), स० जिनविजय मुनि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला १३, कलकत्ता, १९४०

प्रवचनसारोद्धार (नेमिचद्रसूरि कृत), सिद्धसेनसूरि की टीका सहित, अनु० हीरालाल हसराज, देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार संख्या ५८, वंवई, १९२८

बृहत्सहिता (वराहमिहिर कृत), स० ए० झा, वाराणसी, १९५९

भगवतीसूत्र (गणधर सुधर्मस्वामी कृत), स० घेवरचद भाटिया, शैलान, १९६६

मंत्राधिराजकल्प (सागरचन्दसूरि कृत), पाण्डुलिपि, लालभाई दलपत भाई भारतीय संस्कृत विद्या मन्दिर, अहमदावाद

मल्लिनाथ चरित्र (विनयचद्रसूरि कृत), स० हरगोविन्ददास तथा वेचरदास, यशोविजय जैन ग्रन्थमाला २९, वाराणसी

महापुराण (पुष्पदत कृत), स० पी० एल० वैद्य, मानिकचंद दिगवर जैन ग्रन्थमाला ४२, ववई, १९४१

महावीर चरितम (गुणचद्रसूरि कृत), देवचद लालभाई जैन सिरीज ७५, ववई, १९२९

मानसार, ख० ३, अनु० प्रसन्न कुमार आचार्य, इलाहावाद

रूपमण्डन (सूत्रधार मण्डन कृत), स० वलराम श्रीवास्तव, वाराणसी, वि० स० २०२१

वसुदेवहिण्डी (सघदास कृत), खण्ड १, स० मुनि श्रीपुण्यविजय, आत्मानन्द जैन ग्रथमाला ८०, भावनगर, १९३०

वास्तुविद्या (विश्वकर्मा कृत), दीपार्णव (स० प्रभाशकर ओघडभाई सोमपुरा, पालिताणा, १९६०) का २२ वा अध्याय

वास्तुसार प्रकरण (ठक्कुर फेरू कृत), अनु० भगवानदास जैन, जैन विविध ग्रन्थमाला, जयपुर, १९३६

विविधतीर्थकल्प (जिनप्रभसूरि कृत), स० मुनि श्री जिनविजय, सिंघी जैन ग्रंथमाला १०, कलकत्ता-बंबई, १९३४

शान्तिनाथ महाकाव्य (मुनिभद्रसूरि कृत), स० हरगोविन्ददास तथा बेचरदास, यशोविजय जैन ग्रन्थमाला २०, बनारस, १९४६

समराइच्चकहा (हरिभद्रसूरि कृत), स० एच० जैकोबी, कलकत्ता, १९२६

समवायागसूत्र, अनु० घासीलाल जी, राजकोट, १९६२, स० कन्हैयालाल, दिल्ली, १९६६

स्तुति चतुर्विंशतिका या शोभन स्तुति (शोभनसूरि कृत), सं० एच० आर० कापडिया, बंबई, १९२७

स्थानागसूत्र, स० घासीलाल जी, राजकोट, १९६४

हरिवशपुराण (जिनसेन कृत), स० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रंथाक २७, वाराणसी, १९६२

(ख) आधुनिक ग्रंथ-एव-लेख-सूची

अग्रवाल, आर० सी०,

(१) 'जोधपुर सग्रहालय की कुछ अज्ञात जैन धातु मूर्तिया', जैन एण्टि०, ख० २२, अं० १, जून १९५५ पृ० ८–१०

(२) 'सम इन्टरेस्टिग स्कल्पचर्स ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका फ्राम मारवाड', इ०हि०क्वा०, ख० ३२, अं० ४, दिसबर १९५६, पृ० ४३४–३८

(३) 'सम इन्टरेस्टिग स्कल्पचर्स ऑव यक्षज ऐण्ड कुबेर फ्राम राजस्थान', इ०हि०क्वा०, ख० ३३, अ० ३, सितबर १९५७, पृ० २००–०७

(४) 'एन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी फ्राम राजस्थान', अ०ला०बु०, ख० २२, भाग १–२, मई १९५८, पृ० ३२–३४

(५) 'गाडेस अम्बिका इन दि स्कल्पचर्स ऑव राजस्थान', क्वा०ज०मि०सो०, ख ४९, अं० २, जुलाई १९५८, पृ० ८७–९१

(६) 'न्यूली डिस्कवर्ड स्कल्पचर्स फ्राम विदिशा', ज०ओ०इ०, खं० १८, अं० ३, मार्च १९६९, पृ० २५२-५३

अग्रवाल, पी० के०,

'दि ट्रिपल यक्ष स्टेचू फ्राम राजघाट', छवि, वाराणसी, १९७१, पृ० ३४०–४२

अग्रवाल, वी० एस०,

(१) 'दि प्रेसाइडिंग डीटी ऑव चाइल्ड वर्थ अमग्स्ट दि ऐन्श्यण्ट जैनज', जैन एण्टि०, ख० २, अ० ४, मार्च १९३७, पृ० ७५–७९

(२) 'सम ब्राह्मैनिकल डीटीज इन जैन रेलिजस आर्ट', जैन एण्टि०, ख० ३, अ० ४, मार्च १९३८, पृ०८३-९२

(३) 'सम आइकानोग्राफिक टर्म्स फ्राम जैन इन्स्क्रिप्शन्स', जैन एण्टि, ख० ५, १९३९–४०, पृ० ४३–४७

(४) 'ए फ्रैगमेण्टरी स्कल्प्चर ऑव नेमिनाथ इन दि लखनऊ म्यूजियम', जैन एण्टि०, ख० ८, अ० २, दिसबर १९४२, पृ० ४५-४९

(५) 'मथुरा आयागपट्टज', ज०यू०पी०हि०सो०, ख० १६, भाग १, १९४३, पृ० ५८–६१
(६) 'दि नेटिविटी सीन आन ए जैन रिलीफ फ्राम मथुरा', जैन एण्टि०, ख० १०, १९४४–४५, पृ० १–४
(७) 'ए नोट आन दि गाड नैगमेष', ज०यू०पी०हि०सो०, ख० २०, भाग १–२, १९४७, पृ० ६८–७३
(८) 'केटलाग ऑव दि मथुरा म्यूज़ियम', ज०यू०पी०हि०सो०, खं० २३, भाग १-२, १९५०, पृ० ३५-१४७
(९) इण्डियन आर्ट, भाग १, वाराणसी, १९६५

अन्निगेरी, ए० एम०,

ए गाइड टू दि कन्नड़ रिसर्च इन्स्टिट्यूट म्यूज़ियम, धारवाड, १९५८

अमर, गोपीलाल,

'पतियानदाइ का गुप्तकालीन जैन मन्दिर', अनेकान्त, ख० १९, अ० ६, फरवरी १९६७, पृ० ३४०–४६

अय्यगर, कृष्णस्वामी,

'दि वप्पभट्टिचरित ऐण्ड दि अर्ली हिस्ट्री ऑव दि गुर्जर एम्पायर', ज०बा०ब्रां०रा०ए०सो०, न्यू सिरीज, ख० ३, अ० १–२, १९२७, पृ० १०१–३३

आढ्या, जी० एल०,

अर्ली इण्डियन ईकनॉमिक्स (सरका २०० बी० सी०–३०० ए० डी०), बवई, १९६६

आल्तेकर, ए० एस०,

'ईकनॉमिक कण्डीशन', दि वाकाटक गुप्त एज (स० आर० सी० मजूमदार तथा ए० एस० आल्तेकर), दिल्ली, १९६७, पृ० ३५५–६२

उन्नियन, एन० जी०,

'रेलिक्स ऑव जैनिजम–आलतूर', ज०इं०हि०, ख० ४४, भाग १, ख० १३०, अप्रैल १९६६, पृ० ५३७-४३

उपाध्याय, एस० सी०,

'ए नोट आन सम मेडिवल इन्स्क्राइब्ड जैन मेटल इमेजेज़ इन दि आर्किअलाजिकल सेक्सन, प्रिंस ऑव वेल्स म्यूज़ियम, बाम्बे', ज०गु०रि०सो०, ख० १, अ० ४, पृ० १५८–६१

उपाध्याय, वासुदेव,

(१) दि सोशियो-रेलिजस कण्डीशन ऑव नार्थ इण्डिया (७००–१२०० ए० डी०), वाराणसी, १९६४
(२) 'मिश्रित जैन प्रतिमाए', जैन एण्टि०, ख० २५, अं० १, जुलाई १९६७, पृ० ४०–४६

एण्डरसन, जे०,

केटलाग ऐण्ड हैण्डबुक टू दि आर्किअलाजिकल कलेक्शन इन दि इण्डियन म्यूज़ियम, कलकत्ता, भाग १, कलकत्ता, १८८३

कनिंघम, ए०,

आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया रिपोर्ट, वर्ष १८६२–६५, खं० १–२, वाराणसी, १९७२ (पु० मु०), वर्ष १८७१–७२, ख० ३, वाराणसी, १९६६ (पु० मु०)

कापडिया, एच० आर०,

हिस्ट्री ऑव दि केनानिकल लिट्रेचर ऑव दि जैनज़, बवई, १९४१

कीलहार्न, एफ०,

'आन ए जैन स्टैचू इन दि हार्निमन म्यूज़ियम', ज०रा०ए०सो०, १८९८, पृ० १०१–०२

कुमारस्वामी, ए० के०,

(१) 'नोट्स आन जैन आर्ट', जर्नल इण्डियन आर्ट ऐण्ट इण्डस्ट्री, ख० १६, अं० १२०, लन्दन, १९१४, पृ० ८१–९७

(२) केटलाग ऑव दि इण्डियन कलेक्शन्स इन दि म्यूज़ियम ऑव फाइन आर्टस, वोस्टन-जैन पेंटिंग, भाग ४. वोस्टन, १९२४

(३) यक्षज, (वाशिंगटन, १९२८), दिल्ली, १९७१ (पु० मु०)

(४) इण्ट्रोडक्शन टू इण्डियन आर्ट, दिल्ली, १९६९ (पु० मु०)

कुरेशी, मुहम्मद हमीद,

(१) लिस्ट ऑव ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्राविन्स ऑव विहार ऐण्ड उडीसा, आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, न्यू इम्पिरियल सिरीज, ख० ५१, कलकत्ता, १९३१

(२) राजगिर, भारतीय पुरातत्व विभाग, दिल्ली, १९६०

कृष्ण देव,

(१) 'दि टेम्पल्स ऑव खजुराहो इन सेन्ट्रल इण्डिया', एशि०इ०, अ० १५, १९५९, पृ० ४३–६५

(२) 'मालादेवी टेम्पल् ऐट ग्यारसपुर', म०जै०वि०गो०जु०वा०, ववई, १९६८, पृ० २६०–६९

(३) टेम्पल्स आव नार्थ इण्डिया, नई दिल्ली, १९६९

क्लाट, जोहान्स,

'नोट्स आन ऐन इन्स्क्राइब्ड स्टैचू ऑव पार्श्वनाथ', इण्डि० एण्टि०, ख० २३, जुलाई १८९४, पृ० १८३

गर्ग, आर० एस०,

'मालवा के जैन प्राच्यावशेष', जै०सि०भा०, ख० २४, अ० १, दिसम्बर १९६४, पृ० ५३–६३

गागुली, एम०,

हैण्डवुक टू दि स्कल्पचर्स इन दि म्यूज़ियम ऑव दि वगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता, १९२२

गागुली, कल्याण कुमार,

(१) 'जैन इमेजेज इन वगाल', इण्डि० क०, ख० ६, जुलाई १९३९-अप्रैल १९४०, पृ० १३७–४०

(२) 'सम सिम्वालिक रिप्रेजेन्टेशन्स इन अर्ली जैन आर्ट', जैन जर्नल, ख० १, अ० १, जुलाई १९६६, पृ० ३१–३६

गाड्रे, ए० एस०,

'सेवेन व्रोन्जेज इन दि वडौदा स्टेट म्यूज़ियम', वु०व०म्यू०, ख० १, भाग २, १९४४, पृ० ४७–५२

गुप्त, एस० पी० तथा शर्मा, वी० एन०,

'गधावल और जैन मूर्तिया', अनेकान्त, ख० १९, अ० १–२, अप्रैल-जून १९६६, पृ० १२९–३०

[illegible]ल०,

दि पटना म्यूजियम केटलाग ऑव दि एन्टिक्विटीज, पटना, १९६५

गुप्ते, आर० एस० तथा महाजन, वी० डी०,

अजन्ता, एलोरा ऐण्ड औरंगाबाद केव्स, बंबई, १९६२

गोपाल, एल०,

दि ईकनॉमिक लाईफ ऑव नार्दर्न इण्डिया (सरका ए० डी० ७००–१२००), वाराणसी, १९६५,

घटगे, ए० एम०,

(१) 'पार्श्वज हिस्टारिसिटी रीकन्सिडर्ड', प्रो०ट्रां०ओ०का०, १३ वा अधिवेशन, नागपुर यूनिवर्सिटी, अक्तूबर १९४६, नागपुर, १९५१, पृ० ३९५–९७

(२) 'जैनिजम', दि एज ऑव इम्पिरियल यूनिटी (स० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बबई, १९६० (पु० मु०), पृ० ४११–२५

(३) 'जैनिजम', दि क्लासिकल एज (स० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बबई, १९६२ (पु० मु०), पृ० ४०८–१८

घोष, अमलानंद (संपादक),

जैन कला एव स्थापत्य (३ खण्ड), भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, १९७५

घोषाल, यू० एन०,

(१) 'ईकनॉमिक लाईफ', दि एज ऑव इम्पिरियल कन्नौज (स० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बबई, १९५५, पृ० ३९९–४०८

(२) 'ईकनॉमिक लाईफ', दि स्ट्रगल फार एम्पायर (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बंबई, १९५७, पृ० ५१७–२१

चक्रवर्ती, एस० एन,

'नोट आन ऐन इन्स्क्राइब्ड ब्रोन्ज जैन इमेज इन दि प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अ०३, १९५२–५३ (१९५४), पृ० ४०–४२

चदा, आर० पी०,

(१) 'इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५–२६, पृ० १५१–५४

(२) 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', आ०स०इ०ऐ०रि०, १९२५–२६, पृ० १२१–२७

(३) 'दि श्वेतावर ऐण्ड दिगवर इमेजेज ऑव दि जैनज', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५–२६, पृ० १७६–८२

(४) 'सिन्ध फाइव थाऊजण्ड इयर्स एगो', माडर्न रिव्यू, ख० ५२, अ० २, अगस्त १९३२, पृ० १५१–६०

(५) मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर इन दि ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन, १९३६

चद्र, जगदीश,

'जैन आगम साहित्य मे यक्ष', जैन एण्टि०, ख० ७, अ० २, दिसम्बर १९४१, पृ० ९७–१०४

चद्र, प्रमोद,

स्टोन स्कल्पचर इन दि एलाहाबाद म्यूजियम, बंबई, १९७०

चद्र, मोती,

सार्थवाह, पटना, १९५३

चौधरी, रवीन्द्रनाथ,

(१) 'आर्किअलाजिकल सर्वे रिपोर्ट ऑव बाकुडा डिस्ट्रिक्ट', माडर्न रिव्यू, ख० ८६, अं० १, जुलाई १९४९, पृ० २११–१२

(२) 'धरपत टेम्पल्', माडर्न रिव्यू, ख० ८८, अं० ४, अक्तूबर १९५०, पृ० २९६–९८

चौधरी, गुलाबचद्र,

पालिटिकल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेज (सरका ६५० ए० डी० टू १३०० ए० डी०), अमृतसर, १९६३

जयन्तविजय, मुनिश्री,

होली आबू (अनु० यू० पी० शाह), भावनगर, १९५४

जानसन, एच० एम०,

'श्वेतावर जैन आइकानोग्राफी', इण्डि०एण्टि, ख० ५६, १९२७, पृ० २३–२६

जायसवाल, के० पी०,

(१) 'जैन इमेज ऑव मौर्य पिरियड', ज०वि०उ०रि०सो०, खं० २३, भाग १, १९३७, पृ० १३०–३२

(२) 'ओल्डेस्ट जैन इमेजेज डिस्कवर्ड', जैन एण्टि०, ख० ३, अ० १, जून १९३७, पृ० १७–१८

ज़ेनास, ई० तथा ऑवोयर, जे०,

खजुराहो, हेग, १९६०

जैन, कामताप्रसाद,

(१) 'जैन मूर्तिया', जैन एण्टि०, ख० २, अं० १, १९३५, पृ० ६–१७

(२) 'दि एण्टिक्विटी ऑव जैनिजम इन साऊथ इण्डिया', इण्डि०क०, खं० ४, अप्रैल १९३८, पृ० ५१२-१६

(३) 'मोहनजोदडो एन्टिक्विटीज ऐण्ड जैनिजम', जैन एण्टि०, ख० १४, अ० १, जुलाई १९४८, पृ० १-७

(४) 'शासनदेवी अम्बिका और उनकी मान्यता का रहस्य', जैन एण्टि, खं० २०, अं० १, जून १९५४, पृ० २८–४१

(५) 'दि स्टैचू ऑव पद्मप्रभ ऐट ऊर्दमऊ', वा०अहिं०, ख० १३, अ० ९, सितम्बर १९६३, पृ० १९१–९२

जैन, के० सी०,

जैनिजम इन राजस्थान, शोलापुर, १९६३

जैन, छोटेलाल,

जैन बिबलिआग्रफी, कलकत्ता, १९४५

जैन, जे० सी०,

लाईफ इन ऐन्शण्ट इण्डिया · ऐज डेपिक्टेड इन दि जैन केनन्स, बम्बई, १९४७

जैन, ज्योतिप्रसाद,

(१) 'जैन एन्टिक्विटीज इन दि हैदराबाद स्टेट', जैन एण्टि०, खं० १९, अ० २, दिसम्बर १९५३, पृ० १२-१७

(२) 'देवगढ और उसका कला वैभव', जैन एण्टि, ख० २१, अ० १, जून १९५५, पृ० ११–२२

(३) 'आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्स्टीन्थ तीर्थंकर', बा०ऑहि०, ख०९, अ०९, सितम्बर १९५९, पृ०२७८-७९
(४) दि जैन सोर्सेज ऑव दि हिस्ट्री ऑव ऐन्शण्ट इण्डिया (१०० बी० सी०-ए० डी० ९००), दिल्ली, १९६४
(५) 'जेनिसिस ऑव जैन लिट्रेचर ऐण्ड दि सरस्वती मूवमेण्ट', स०पु०प०, अ० ९, जून १९७२, पृ० ३०-३३

जैन, नीरज,

(१) 'नवागढ एक महत्वपूर्ण मध्ययुगीन जैन तीर्थ', अनेकान्त, वर्ष १५, अं० ६, फरवरी १९६३, पृ० २७७–७८
(२) 'पतियानदाई मन्दिर की मूर्ति और चौवीस जिन शासनदेविया', अनेकान्त, वर्ष १६, अ० ३, अगस्त १९६३, पृ० ९९–१०३
(३) 'ग्वालियर के पुरातत्व सग्रहालय की जैन मूर्तिया', अनेकान्त, वप १५, अ० ५, दिसम्वर १९६३, पृ० २१४–१६
(४) 'तुलसी सग्रहालय, रामवन का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १६, अ० ६, फरवरी १९६४, पृ० २७९–८०
(५) 'वजरंगगढ़ का विशद जिनालय', अनेकान्त, वर्ष १८, अ० २, जून १९६५, पृ० ६५–६६
(६) 'अतिशय क्षेत्र अहार', अनेकान्त, वर्ष १८, अ० ४, अक्तूवर १९६५, पृ० १७७–७९
(७) 'अहार का शान्तिनाथ सग्रहालय', अनेकान्त, वर्ष १८, अ० ५, दिसम्बर १९६५, पृ० २२१–२२

जैन, वनारसीदास,

'जैनिजम इन दि पजाव', सरूप भारती : डॉ० लक्ष्मण सरूप स्मृति अक (स जगन्नाथ अग्रवाल तथा भीमदेव शास्त्री), विश्वेश्वरानन्द इण्डोलाजिकल सिरीज ६, होशियारपुर, १९५४, पृ० २३८–४७

जैन, वाल्चद्र,

(१) 'महाकौशल का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १७, अं० ३, अगस्त १९६४, पृ० १३१–३३
(२) 'जैन प्रतिमालक्षण', अनेकान्त, वर्ष १९, अं० ३, अगस्त १९६६, पृ० २०४–१३
(३) 'घुवेला सग्रहालय के जैन मूर्ति लेख', अनेकान्त, वर्ष १९, अ० ४, अक्तूवर १९६६, पृ० २४४–४५
(४) 'जैन ब्रोन्जेज़ फ्राम राजनपुर खिनखिनी', ज०इ०म्यू०, ख० ११, १९५५, पृ० १५–२०
(५) जैन प्रतिमाविज्ञान, जवलपुर, १९७४

जैन, भागचन्द्र,

देवगढ की जैन कला, नयी दिल्ली, १९७४

जैन, शशिकान्त,

'सम कामन एलिमेण्ट्स इन दि जैन ऐण्ड हिन्दू पैन्थिआन्स-I-यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', जैन एण्टि०, ख० १८, अ० २, दिसम्वर १९५२, पृ० ३२–३५, खं० १९, अ० १, जून १९५३, पृ० २१–२३

जैन, हीरालाल,

(१) जै०शि०स० (स०), भाग १, माणिकचन्द्र दिगंवर जैन ग्रन्थमाला २८, वम्बई, १९२८
(२) 'जैनिजम', दि स्ट्रगल फार एम्पायर (स० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), वम्बई, १९६० (पु० मु०), पृ० ४२७–३५
(३) भारतीय सस्कृति में जैन धर्म का योगदान, भोपाल, १९६२

जैनी, जे० एल०,

'सम नोट्स ऑन दि दिगबर जैन आइकानोग्राफी', इण्डि०एण्टि०, ख०३२, दिसम्बर १९०४, पृ० ३३०-३२

जोशी, अर्जुन,

(१) 'ए यूनीक इमेज ऑव ऋषम फ्राम पोट्टासिंगीदी', उ०हि०रि०ज०, ख०१०, अ०३, १९६१, पृ०७४-७६

(२) 'फर्दर लाइट ऑन दि रिमेन्स ऐट पोट्टासिंगीदी', उ०हि०रि०ज०, ख०१०, अं०४, १९६२, पृ०३०-३२

जोशी, एन० पी०,

(१) 'यूस ऑव आस्पिशस सिम्बल्स इन दि कुषाण आर्ट ऐट मथुरा', डॉ० मिराशी फेलिसिटेशन वाल्यूम (स० जी० टी० देशपाण्डे आदि), नागपुर, १९६५, पृ० ३११–१७

(२) मथुरा स्कल्पचर्स, मथुरा, १९६६

जोहरापुरकर, विद्याधर (स०),

जै०शि०सं०, माणिकचद्र दिगंबर जैन ग्रन्थमाला, भाग ४, वाराणसी, १९६४, भाग ५, दिल्ली, १९७१

झा, शक्तिधर,

'हिन्दू डीटीज इन दि जैन पुराणज', डा० शातकारी मुकर्जी फेलिसिटेशन वाल्यूम (स० वी० पी० सिन्हा आदि) चौखम्वा सस्कृत स्टडीज खण्ड ६९, वाराणसी, १९६९, पृ० ४५८–६५

टाड, जेम्स,

एन्नाल्स ऐण्ड एन्टिक्विटीज ऑव राजस्थान, ख० २, लन्दन, १९५७

ठाकुर, उपेन्द्र,

'ए हिस्टारिकल सर्वे ऑव जैनिजम इन नार्थ विहार', ज०बि०रि०सो०, ख० ४५, भाग १–४, जनवरी-दिसम्बर १९५९, पृ० १८८–२०३

ठाकुर, एस० आर०,

केटलाग ऑव स्कल्पचर्स इन दि आर्किअलाजिकल म्यूजियम, ग्वालियर, लश्कर

डगलस, वी०,

'ए जैन ब्रोन्ज फ्राम दि डॅकन', ओ०आर्ट, ख० ५, अ० १ (न्यू सिरीज), १९५९, पृ० १६२–६५

डे, सुधीन,

(१) 'टू यूनीक इन्स्क्राइब्ड जैन स्कल्पचर्स', जैन जर्नल, ख० ५, अ० १, जुलाई १९७०, पृ० २४–२६

(२) 'चौमुख—ए सिम्बालिक जैन आर्ट', जैन जर्नल, ख० ६, अं० १, जुलाई १९७१, पृ० २७–३०

ढाकी, एम० ए०,

(१) 'सम अर्ली जैन टेम्पल्स इन वेस्टर्न इण्डिया', म०जै०वि०गो०जु०वा०, वबई, १९६८, पृ० २९०–३४७

(२) 'विमलवसही की डेट की समस्या' (गुजराती), स्वाध्याय, ख० ९, अं० ३, पृ० ३४९–६४

तिवारी, एम० एन० पी०,

(१) 'भारत कला भवन का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष २४, अ० २, जून १९७१, पृ० ५१–५२, ५८,

(२) 'ए नोट आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ए तीर्थंकर इमेज ऐट भारत कला भवन, वाराणसी', जैन जर्नल, खं० ६, अं० १, जुलाई १९७१, पृ० ४१–४३

(३) 'खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर की रथिकाओ मे जैन देविया', अनेकान्त, वर्ष २४, अं० ४, अक्तूबर १९७१, पृ० १८३–८४

(४) 'खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर के प्रवेश-द्वार की मूर्तिया', अनेकान्त, वर्ष २४, अं० ५, दिसंबर १९७१, पृ० २१८–२१

(५) 'खजुराहो के जैन मन्दिरो के डोर-लिंटल्स पर उत्कीर्ण जैन देविया', अनेकान्त, वर्ष २४, अ० ६, फरवरी १९७२, पृ० २५१–५४

(६) 'उत्तर भारत मे जैन यक्षी चक्रेश्वरी की मूर्तिगत अवतारणा', अनेकान्त, वर्ष २५, अ० १, मार्च-अप्रैल १९७२, पृ० ३५–४०

(७) 'कुम्भारिया के सम्भवनाथ मन्दिर की जैन देविया', अनेकान्त, वर्ष २५, अं० ३, जुलाई-अगस्त १९७२, पृ० १०१–०३

(८) 'चन्द्रावती का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष २५, अ० ४, सितबर-अक्तूबर १९७२, पृ० १४५–४७

(९) 'रिप्रेजेन्टेशन ऑव सरस्वती इन जैन स्कल्पचर्स ऑव खजुराहो', ज०गु०रि०सो०, खं० ३४, अ० ४, अक्तूबर १९७२, पृ० ३०७–१२

(१०) 'ए ब्रीफ सर्वे ऑव दि आइकानोग्राफिक डेटा ऐट कुम्भारिया, नार्थ गुजरात', सबोधि, ख० २, अ० १, अप्रैल १९७३, पृ० ७–१४

(११) 'ए नोट आन ऐन इमेज ऑव राम ऐण्ड सीता आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल, खजुराहो, जैन जर्नल, ख० ८, अ० १, जुलाई १९७३, पृ० ३०–३२

(१२) 'ए नोट आन सम बाहुबली इमेजेज़ फ्राम नार्थ इण्डिया,' ईस्ट वे०, ख० २३, अ० ३–४, सितम्बर-दिसम्बर १९७३, पृ० ३४७–५३

(१३) 'ऐन अन्पब्लिश्ड इमेज ऑव नेमिनाथ फ्राम देवगढ', जैन जर्नल, ख० ८, अ० २, अक्तूबर १९७३, पृ० ८४–८५

(१४) 'दि आइकानोग्राफी ऑव दि इमेजेज़ ऑव सम्भवनाथ ऐट खजुराहो', ज०गु०रि०सो०, ख० ३५, अ० ४, अक्तूबर १९७३, पृ० ३–९

(१५) 'दि आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज ऐज रिप्रेजेण्टेड इन दि सीलिंग ऑव दि शान्तिनाथ टेम्पल, कुम्भारिया', सबोधि, ख० २, अ० ३, अक्तूबर १९७३, पृ० १५-२२

(१६) 'ओसिया से प्राप्त जीवन्तस्वामी की अप्रकाशित मूर्तिया', विश्वभारती, ख० १४, अ० ३, अक्तूबर-दिसम्बर १९७३, पृ० २१५–१८

(१७) 'उत्तर भारत मे जैन यक्षी पद्मावती का प्रतिमानिरूपण', अनेकान्त, वर्ष २७, अक २, अगस्त १९७४, पृ० ३४–४१

(१८) 'ए यूनीक इमेज ऑव ऋषभनाथ ऐट आर्किअलाजिकल म्यूज़ियम, खजुराहो', ज०ओ०इ०, ख० २४, अ० १–२, सितम्बर-दिसम्बर १९७४, पृ० २४७–४९

(१९) 'इमेजेज़ ऑव अम्बिका आन दि जैन टेम्पल्स ऐट खजुराहो', ज०ओ०इं०, ख० २४, अं० १–२, सितम्बर-दिसम्बर १९७४, पृ० २४३–४६

(२०) 'ए नोट आन ऐन इमेज ऑव ऋषभनाथ इन दि स्टेट म्यूज़ियम, लखनऊ', ज०गु०रि०सो०, ख० ३६, अ० ४, अक्तूबर १९७४, पृ० १७–२०

(२१) 'उत्तर भारत मे जैन यक्षी अम्बिका का प्रतिमानिरूपण', सबोधि, ख० ३, अ० २–३, दिसम्बर १९७४, पृ० २७–४४

(२२) 'ए यूनीक त्रि-तीर्थिक जिन इमेज फ्राम देवगढ', ललित कला, अ० १७, १९७४, पृ० ४१–४२

(२३) 'सम अनपब्लिश्ड जैन स्कल्पचर्स ऑव गणेश फ्राम वेस्टर्न इण्डिया', जैन जर्नल, ख० ९, अ० ३, जनवरी १९७५, पृ० ९०–९२

(२४) 'ऐन अनपब्लिश्ड जिन इमेज इन दि भारत कला भवन, वाराणसी', वि०इ०ज०, ख० १३, अ० १–२, मार्च-सितम्बर १९७५, पृ० ३७३–७५

(२५) 'दि जिन इमेजेज ऑव खजुराहो विद् स्पेशल रेफरेन्स टू अजितनाथ', जैन जर्नल, ख० १०, अं० १, जुलाई १९७५, पृ० २२–२५

(२६) 'जैन यक्ष गोमुख का प्रतिमानिरूपण', श्रमण, वर्ष २७, अ० ९, जुलाई १९७६, पृ० २९–३६

(२७) 'दि आइकानोग्राफी ऑव यक्षी सिद्धायिका', ज०ए०सो०, ख० १५, अ० १–४, १९७३ (मई १९७७), पृ० ९७–१०३

(२८) 'जिन इमेजेज इन दि आर्किअलाजिकल म्यूजियम, खजुराहो', महावीर ऐण्ड हिज टीचिंग्स, (स० ए०एन० उपाध्ये आदि), भगवान् महावीर २५०० वा निर्वाण महोत्सव समिति, बवई, १९७७, पृ० ४०९–२८

त्रिपाठी, एल० के०,

(१) एवोल्यूशन ऑव टेम्पल् आर्किटेक्चर इन नार्दर्न इण्डिया, पी–एच्० डी० की अप्रकाशित थीसिस, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, १९६८

(२) 'दि एराटिक स्कल्पचर्स ऑव खजुराहो ऐण्ड देयर प्रावेबल एक्सप्लानेशन', भारती, अ० ३, १९५९–६०, पृ० ८२–१०४

दत्त, कालीदास,

(१) 'दि एन्टिक्विटीज ऑव खारी', ऐनुअल रिपोर्ट, वारेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, १९२८–२९, पृ० १–११

(२) 'सम अर्ली आर्किअलाजिकल फाइन्ड्स ऑव दि सुन्दरवन', माडर्न रिव्यू, ख० ११४, अं० १, जुलाई १९६३, पृ० ३९–४४

दत्त, जी० एस०,

'दि आर्ट ऑव बंगाल', माडर्न रिव्यू, ख० ५१, अ० ५, पृ० ५१९–२९

दयाल, आर०पी०,

'इम्पार्टेण्ट स्कल्पचर्स ऐडेड टू दि प्राविन्शियल म्यूजियम लखनऊ', ज०यू०पी०हि०सो०, ख० ७, भाग २, नवम्बर १९३४, पृ० ७०–७४

दश, एम० पी०,

'जैन एन्टिक्विटीज फ्राम चरपा', उ०हि०रि०ज०, ख० ११, अ० १, १९६२, पृ० ५०–५३

दि वे ऑव बुद्ध पब्लिकेशन डिविजन, गवर्नमेण्ट ऑव इण्डिया, दिल्ली

दीक्षित, एस० के०,

ए गाइड टू दि स्टेट म्यूजियम धुबेला (नवगांव), विन्ध्यप्रदेश, नवगाव, १९५६

दीक्षित, के० एन०,

'सिक्स स्कल्पचर्स फ्राम महोवा', मे०आ०स०इ०, अ० ८, कलकत्ता, १९२१, पृ० १–४

देवकर, वी० एल०,

(१) 'द्व रीसेन्टली एक्वायर्ड जैन ब्रोन्जेज इन दि बडौदा म्यूजियम', बु०म्यू०पि०गै०, ख० १४, १९६२, पृ० ३७–३८

(२) 'ए जैन तीर्थंकर इमेज रीसेन्टली एक्वायर्ड बाइ दि बडौदा म्यूजियम', बु०म्यू०पि०गै०, ख० १९, १९६५–६६, पृ० ३५–३६

देशपाण्डे, एम० एन०,

'कृष्ण लिजेण्ड इन दि जैन केनानिकल लिट्रेचर', **जैन एन्टि०**, ख० १०, अ० १, जून १९४४, पृ० २५–३१

देसाई, पी० वी०,

(१) **जैनिजम इन साऊथ इण्डिया ऐण्ड सम जैन एपिग्राफ्स**, जीवराज जैन ग्रन्थमाला ६, शोलापुर, १९६३

(२) 'यक्षी इमेजेज इन साऊथ इण्डियन जैनिजम', **डॉ० मिराशी फेलिसिटेशन वाल्यूम**, (स० जी०टी० देशपाण्डे आदि), नागपुर, १९६५, पृ० ३४४–४८

दोशी, वेचरदास,

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १, वाराणसी, १९६६

नाहटा, अगरचन्द,

(१) 'तालघर मे प्राप्त १६० जिन प्रतिमाए', **अनेकान्त**, वर्ष १९, अं० १–२, १९६६, (अप्रैल-जून), पृ० ८१–८३

(२) 'भारतीय वास्तुशास्त्र मे जैन प्रतिमा सम्बन्धी ज्ञातव्य', **अनेकान्त**, वर्ष २०, अ० ५, दिसम्बर १९६७, पृ० २०७–१५

नाहटा, भंवरलाल,

'तालागुडी की जैन प्रतिमा', **जैन जगत**, वर्ष १३, अ०९–११, दिसम्बर १९५९-फरवरी १९६०, पृ०६०-६१

नाहर, पी०सी०,

(१) **जैन इन्स्क्रिप्शन्स**, भाग १, जैन विविध साहित्य शास्त्रमाला ८, कलकत्ता, १९१८

(२) 'नोट्स आन द्व जैन इमेजेज फ्राम साऊथ इण्डिया', **इण्डि०क०**, ख० १, अ० १–४, जुलाई १९३४-अप्रैल १९३५, पृ० १२७–२८

निगम, एम० एल०,

(१) 'इम्पैक्ट ऑव जैनिजम ऑन मथुरा आर्ट', **ज०यू०पी०हि०सो०** (न्यू सिरीज), खं० १०, भाग १, १९६१, पृ० ७–१२

(२) 'ग्लिम्पसेस ऑव जैनिजम थ्रू आर्किअलाजी इन उत्तर प्रदेश', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बवई, १९६८, पृ० २१३–२०

पाटिल, डी० आर०,

दि एन्टिक्वेरियन रिमेन्स इन बिहार, हिस्टारिकल रिसर्च सिरीज ४, पटना, १९६३

पुरी, बी० एन०,

(१) **दि हिस्ट्री ऑव दि गुर्जर-प्रतिहारज**, बवई, १९५७

(२) 'जैनिजम इन मथुरा इन दि अर्ली सेन्चुरीज ऑव दि क्रिश्चियन एरा', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बवई, १९६८, पृ० १५६–६१

पुसाल्कर, ए० डी०,

'जैनिजम', दि एज ऑव इम्पिरियल कन्नौज (स० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), वंबई, १९६४, पृ० २८८-९६

प्रसाद, एच० के०,

'जैन ब्रोन्जेज़ इन दि पटना म्यूज़ियम', म०जै०वि०गो०जु०वा०, ववई, १९६८, पृ० २७५-८९

प्रसाद, त्रिवेणी,

'जैन प्रतिमाविधान', जैन एण्टि०, ख० ४, अ० १, जून १९३७, पृ० १६-२३

प्रेमी, नाथूराम,

जैन साहित्य और इतिहास, ववई, १९५६

फ्लीट, जे० एफ०,

कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम, खं० ३, वाराणसी, १९६३ (पु०मु०)

वनर्जी, आर० डी०,

ईस्टर्न इण्डियन स्कूल ऑव मेडिवल स्कल्पचर, दिल्ली, १९३३

वनर्जी, ए०,

(१) 'टू जैन इमेजेज़', ज०बि०उ०रि०सो०, ख० २८, भाग १, १९४२, पृ० ४४

(२) 'जैन एन्टिक्विटीज इन राजगिर', इ०हि०क्वा०, ख० २५, अ० ३, सितम्बर १९४९, पृ० २०५-१०

(३) 'ट्रेसेज ऑव जैनिजम इन वगाल', ज०यू०पी०हि०सो०, ख० २३, भाग १-२, १९५०, पृ० १६४-६८

(४) 'जैन आर्ट थ्रू दि एजेज', आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ (स० सतकारि मुखर्जी आदि), कलकत्ता, १९६१, पृ० १६७-९०

वनर्जी, जे० एन०,

(१) 'जैन इमेजेज़', दि हिस्ट्री ऑव वगाल (स० आर० सी० मजूमदार), ख० १, ढाका, १९४३, पृ० ४६४-६५

(२) दि डीवेलपमेण्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, कलकत्ता, १९५६

(३) 'जैन आईकन्स', दि एज ऑव इम्पिरियल यूनिटी (स० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), ववई, १९६०, पृ० ४२५-३१

(४) 'आइकानोग्राफी', दि क्लासिकल एज (स० आर० सी मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), ववई, १९६२, पृ० ४१८-१९

(५) 'आइकानोग्राफी', दि एज ऑव इम्पिरियल कन्नौज (स० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), ववई, १९६४, पृ० २९६-३००

वनर्जी, प्रियतोष,

'ए नोट ऑन दि वरशिप ऑव इमेजेज इन जैनिजम (सरका २०० वी० सी०-२०० ए० डी०), ज०वि०रि०सो०, खं० ३६, भाग १-२, १९५०, पृ० ५७-६५

वनर्जी-शास्त्री, ए०,

'मौर्यन स्कल्पचर्स फ्राम लोहानीपुर, पटना', ज०वि०उ०रि०सो०, ख० २६, भाग २, जून १९४०, पृ० १२०–२४

वर्जेस, जे०,

'दिगवर जैन आइकानोग्राफी', इण्डि०एण्टि०, ख० ३२, १९०३, पृ० ४५९–६४

वाजपेयी, के० डी०,

(१) 'जैन इमेज ऑव सरस्वती इन दि लखनऊ म्यूजियम', जैन एण्टि, खं० ११, अ० २, जनवरी १९४६, पृ० १–४

(२) 'न्यू जैन इमेजेज इन दि मथुरा म्यूजियम', जैन एण्टि, ख० १३, अ० २, जनवरी १९४८, पृ० १०-११

(३) 'सम न्यू मथुरा फाइन्ड्स', ज०यू०पी०हि०सो०, ख० २१, भाग १–२, १९४८, पृ० ११७–३०

(४) 'पार्श्वनाथ किले के जैन अवशेष', चन्दावाई अभिनन्दन ग्रन्थ (स० श्रीमती सुशीला सुल्तान सिंह जैन आदि), आरा, १९५४, पृ० ३८८–८९

(५) 'मध्यप्रदेश की प्राचीन जैन कला', अनेकान्त, वर्ष १७, अ० ३, अगस्त १९६४, पृ० ९८–९९, वर्ष २८, १९७५, पृ० ११५–१६

वाल सुब्रह्मण्यम, एस० आर० तथा राजू०, वी० वी०,

'जैन वेस्टिजेज़ इन दि पुडुकोट्टा स्टेट', क्वा०ज०मै०स्टे०, ख० २४, अ० ३, जनवरी १९३४, पृ० २११–१५

वैरेट, डगलस,

(१) 'ए ग्रुप ऑव व्रोन्जेज़ फ्राम दि डॅकन', ललित कला, अ० ३–४, १९५६–५७, पृ० ३९–४५

(२) 'ए जैन व्रोन्ज फ्राम दि डॅकन', ओ०आर्ट, ख० ५, अ० १ (न्यू सिरीज), १९५९, पृ० १६२–६५

व्राउन, डब्ल्यू० एन०,

ए डेस्क्रिप्टिव ऐण्ड इलस्ट्रेटेड केटलाग ऑव मिनियेचर पेण्टिंग्स ऑव दि जैन कल्पसूत्र, वाशिंगटन, १९३४

व्राउन, पर्सी,

इण्डियन आर्किटेक्चर (बुद्धिस्ट ऐण्ड हिन्दू पिरियड्स), बवई, १९७१ (पु० मु०)

व्रुन, क्लाज़,

(१) 'दि फिगर ऑव दि टू लोअर रिलिफ्स आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल् ऐट खजुराहो', आचार्य श्रीविजयवल्लभ सूरि स्मारक ग्रन्थ (स० मोतीचन्द्र आदि), वंबई, १९५६, पृ० ७–३५

(२) 'आइकानोग्राफी ऑव दि लास्ट तीर्थंकर महावीर', जैनयुग, वर्ष १, अप्रैल १९५८, पृ० ३६–३७

(३) 'जैन तीर्थज इन मध्य देश दुदही', जैनयुग, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० २९–३३

(४) 'जैन तीर्थज इन मध्य देश : चादपुर', जैनयुग, वर्ष २, अप्रैल १९५९, पृ० ६७–७०

(५) दि जिन इमेजेज़ ऑव देवगढ, लिडेन, १९६९

व्यूह्लर, जी०,

(१) 'दि दिगवर जैनज', इण्डि०एण्टि०, ख० ७, १८७८, पृ० २८–२९

(२) 'न्यू जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', एपि०इण्डि०, ख० १, कलकत्ता, १८९२, पृ० ३७१–९३

(३) 'फर्दर जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', एपि०इण्डि०, ख० १, कलकत्ता, १८९२, पृ० ३९३–९७

(४) 'फर्दर जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', एपि०इण्डि०, ख० २ (कलकत्ता, १८९४), दिल्ली, १९७० (पु० मु०), पृ० १९५–२१२
(५) 'स्पेसिमेन्स ऑव जैन स्कल्पचर्स फ्राम मथुरा', एपि०इण्डि०, ख० २ (कलकत्ता, १८९४), दिल्ली, १९७० (पु० मु०), पृ० ३११–२३
(६) आन दि इण्डियन सेक्ट ऑव दि जैनज, लन्दन, १९०३

ब्लाक, टी०,
सप्लेमेण्ट्री केटलाग ऑव दि आर्किअलाजिकल सेक्शन ऑव दि इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, १९११

भट्टाचार्य, ए० के०,
(१) 'सिम्बालिजम ऐण्ड इमेज वरशिप इन जैनिजम', जैन एण्टि०, ख० १५, अ० १, जून १९४९, पृ०१-६
(२) 'आइकानोग्राफी ऑव सम माइनर डीटीज इन जैनिजम', इ०हि०क्वा०, खं० २९, अ० ४, दिसम्बर १९५३, पृ० ३३२–३९
(३) 'जैन आइकानोग्राफी', आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रंथ (स० सतकारि मुखर्जी आदि), कलकत्ता, १९६१, पृ० १९१–२००

भट्टाचार्य, बी०,
'जैन आइकानोग्राफी', जैनाचार्य श्री आत्मानन्द जन्म शताब्दी स्मारक ग्रंथ (स० मोहनलाल दलीचन्द देसाई), बंबई, १९३६, पृ० ११४–२१

भट्टाचार्य, बी० सी०,
दि जैन आइकानोग्राफी, लाहौर, १९३९

भट्टाचार्य, बेनायतोश,
दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकानोग्राफी, कलकत्ता, १९६८

भट्टाचार्य, यू० सी०,
'गोमुख यक्ष', ज०यू०पी०हि०सो, ख० ५, भाग २ (न्यू सिरीज), १९५७, पृ०८–९

भण्डारकर, डी० आर०,
(१) 'जैन आइकानोग्राफी', आ०स०इ०ऐ०रि, १९०५–०६, कलकत्ता, १९०८, पृ० १४१–४९
(२) 'जैन आइकानोग्राफी-समवसरण', इण्डि०एण्टि०, ख० ४०, मई १९११, पृ० १२५–३०
(३) 'दि टेम्पल्स ऑव ओसिया', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९०८–०९, कलकत्ता, १९१२, पृ० १००–१५

मजमूदार, एम० आर०,
(१) कल्चरल हिस्ट्री ऑव गुजरात, बंबई, १९६५
(२) 'ट्रीटमेण्ट ऑव गाडेस इन जैन ऐण्ड ब्राह्मनिकल पिक्टोरियल आर्ट', जैनयुग, दिसंबर १९५८, पृ० २२–२९
(३) क्रोनोलाजी ऑव गुजरात : हिस्टारिकल ऐण्ड कल्चरल, भाग १, बडौदा, १९६०

मजूमदार, आर० सी०,
'जैनिजम इन ऐन्शण्ट बंगाल', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बंबई, १९६८, पृ० १३०–३८

मजूमदार, ए० के०,

चौलुक्याज ऑव गुजरात, बंबई, १९५६

मार्शल, जॉन,

मोहनजोदडो ऐण्ड दि इण्डस सिविलिजेशन, खड १, लन्दन, १९३१

मित्र, कालीपद,

(१) 'नोट्स ऑन टू जैन इमेमेज', ज०वि०उ०रि०सो०, ख० २८, भाग २, १९४२, पृ० १९८–२०७

(२) 'आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ऐन इमेज', इ०हि०क्वा०, ख० १८, अ० ३, सितंबर १९४२, पृ० २६१–६६

मित्रा, देवला,

(१) 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बाकुडा, वेस्ट बंगाल', ज०ए०सो०बं०, ख० २४, अं० २, १९५८ (१९६०), पृ० १३१–३४

(२) 'आइकानोग्राफिक नोट्स', ज०ए०सो०, खं० १, अ० १, १९५९, पृ० ३७–३९

(३) 'शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, ख० १, अ० २, १९५९, पृ० १२७–३३

मिराशी, वी० वी०,

कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम, ख० ४, भाग १, ऊटकमण्ड, १९५५

मेहता, एन० सी,

'ए मेडिवल जैन इमेज ऑव अजितनाथ—१०५३ ए० डी०', इण्डि०एण्टि०, ख० ५६, १९२७, पृ० ७२-७४

मैती, एस० के०,

ईकनॉमिक लाईफ ऑव नार्दर्न इण्डिया इन दि गुप्त पिरियड (सरका ए० डी० ३००–५५०), कलकत्ता, १९५७

यादव, झिनकू,

समराइच्चकहा : एक सांस्कृतिक अध्ययन, वाराणसी, १९७७

रमन, के० वी०,

'जैन वेस्टिजेज अराऊण्ड मद्रास', क्वा०ज०मि०सो, खं० ४९, अ० २, जुलाई १९५८, पृ० १०४–०७

रामचन्द्रन, टी० एन०,

(१) तिरूपरूत्तिकुणरम ऐण्ड इट्स टेम्पल्स, बु०म०ग०म्यू०न्यू०सि०, ख० १, भाग ३, मद्रास, १९३४

(२) जैन मान्युमेण्ट्स ऐण्ड प्लेसेज ऑव फर्स्ट क्लास इम्पार्टेन्स, कलकत्ता, १९४४

(३) 'हरप्पा ऐण्ड जैनिजम' (अनु० जयभगवान), अनेकान्त, वर्ष १४, जनवरी १९५७, पृ० १५७–६१

रायचौधरी, पी० सी०,

जैनिजम इन विहार, पटना, १९५६

राव, एस० आर०,

'जैन ब्रोन्जेज फ्राम लिल्वादेव', ज०ई०म्यू०, खं० ११, १९५५, पृ० ३०–३३

राव, एस० एच०,

'जैनिजम इन दि डॅकन', ज०इ०हि०, ख० २६, भाग १–३, १९४८, पृ० ४५–४९

राव, टी० ए० गोपीनाथ,

एलिमेण्ट्स ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, ख० १, भाग २, दिल्ली, १९७१ (पु०मु०)

राव, वी० वी० कृष्ण,

'जैनिजम इन आन्ध्रदेश', ज०आ०हि०रि०सो०, ख० १२, पृ० १८५–९६

राव, वाई० वी०,

'जैन स्टॅचूज इन आन्ध्र', ज०आं०हि०रि०सो०, ख० २९, भाग ३–४, जनवरी-जुलाई १९६४, पृ० १९

रे, निहाररजन,

मौर्य ऐण्ड शुंग आर्ट, कलकत्ता, १९६५

रोलैण्ड, वेन्जामिन,

दि आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर ऑव इण्डिया - बुद्धिस्ट-हिन्दू-जैन, लन्दन, १९५३

लालवानी, गणेश (स०),

जैन जर्नल (महावीर जयती स्पेशल नवर), खं० ३, अं० ४, अप्रैल १९६९

ल्यूजे-डे-ल्यू, जे० ई० वान,

दि सीथियन पिरियड, लिडेन, १९४९

वत्स, एम० एस०,

'ए नोट ऑन द्व इमेजेज फ्राम वनीपार महाराज ऐण्ड वैजनाथ', आ०स०इ०ऐ०रि०, १९२९-३० पृ०२२७-२८

विजयमूर्ति (स०),

जै०शि०सं०, माणिकचद्र दिगंबर जैन ग्रथमाला, भाग २, वबई, १९५२, भाग ३, बंबई, १९५७

विण्टरनित्ज, एम०,

ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिट्रेचर, ख० २ (वुद्धिस्ट ऐण्ड जैन लिट्रेचर), कलकत्ता, १९३३

विरजी, कृष्णकुमारी जे०,

ऐन्शण्ट हिस्ट्री ऑव सौराष्ट्र, वबई, १९५२

वेंकटरमन, के० आर०,

'दि जैनज इन दि पुडुकोट्टा स्टेट', जैन एण्टि०, ख० ३, अ० ४, मार्च १९३८, पृ० १०३–०६

वैशाखीय, महेन्द्रकुमार,

'कृष्ण इन दि जैन केनन्', भारतीय विद्या, ख० ८ (न्यू सिरीज), अ० ९–१०, सितवर-अक्टूवर १९४६, पृ० १२३-३१

वोगेल, जे० पीएच्०,

कैटलाग ऑव दि आर्किअलाजिकल म्यूजियम ऐट मथुरा, इलाहावाद, १९१०

शर्मा, आर० सी०,

(१) 'दि अर्ली फेज ऑव जैन आइकानोग्राफी', जैन एण्टि०, ख० २३, अ० २, जुलाई १९६५, पृ० ३२-३८
(२) 'जैन स्कल्पचर्स ऑव दि गुप्त एज इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बंबई, १९६८, पृ० १४३–५५
(३) 'आर्ट डेटा इन रायपसेणिय', सं०पु०प०, अ० ९, जून १९७२, पृ० ३८-४४

शर्मा, दशरथ,

(१) अर्ली चौहान डाइनेस्टिज, दिल्ली, १९५९
(२) राजस्थान थ्रू दि एजेज, ख० १, बीकानेर, १९६६

शर्मा, बृजनारायण,

सोशल लाईफ इन नार्दर्न इण्डिया, दिल्ली, १९६६

शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ,

(१) 'तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की प्रस्तर प्रतिमा', अनेकान्त, वर्ष १८, अ० ४, अक्तूबर १९६५, पृ० १५७
(२) 'अनपब्लिश्ड जैन ब्रोन्जेज इन दि नेशनल म्यूज़ियम', ज०ओ०इ०, ख० १९, अ० ३, मार्च १९७०, पृ० २७५–७८
(३) सोशल ऐण्ड कल्चरल हिस्ट्री आव नार्दर्न इण्डिया, दिल्ली १९७२
(४) जैन प्रतिमाएं, दिल्ली, १९७९

शास्त्री, अजय मित्र,

(१) इण्डिया ऐज सीन इन दि बृहत्संहिता ऑव वराहमिहिर, दिल्ली, १९६९
(२) 'त्रिपुरी का जैन पुरातत्व', जैन मिलन, वर्ष १२, अ० २, दिसंबर १९७०, पृ० ६९–७२
(३) त्रिपुरी, भोपाल, १९७१

शास्त्री, परमानन्द जैन,

'मध्यभारत का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १९, अ० १–२, अप्रैल–जून १९६६, पृ० ५४–६९

शास्त्री, हीरानन्द,

'सम रिसेन्टलि ऐडेड स्कल्पचर्स इन दि प्राविन्शियल म्यूज़ियम, लखनऊ', मे०आ०स०इं०, अ०११, कलकत्ता, १९२२, पृ० १–१५

शाह, सी० जे०,

जैनिजम इन नार्थ इण्डिया : ८०० बी० सी०–ए० डी० ५२६, लन्दन, १९३२

शाह, यू० पी०,

(१) 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका', ज०यू०बां०, ख० ९, १९४०–४१, पृ० १४७–६९
(२) 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस सरस्वती', ज०यू०बां०, ख० १० (न्यू सिरीज), सितम्बर १९४१, पृ० १९५–२१८
(३) 'जैन स्कल्पचर्स इन दि बड़ौदा म्यूज़ियम', बु०ब०म्यू०, खं० १, भाग २, फरवरी–जुलाई १९४४, पृ० २७–३०

(४) 'सुपरनेचुरल वीइंग्स इन दि जैन तन्त्रज', आचार्य ध्रुव स्मारक ग्रन्थ (सं० आर० सी० पारिख आदि), भाग ३, अहमदाबाद, १९४६, पृ० ६७–६८
(५) 'आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० १५, १९४७, पृ० ११४–७७
(६) 'एज ऑव डिफरेन्शियेशन ऑव दिगंबर ऐण्ड श्वेतांवर इमेजेज ऐण्ड दि अलिएस्ट नोन श्वेतांवर ब्रोन्जेज़', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इ०, अ० १, १९५०–५१ (१९५२), पृ० ३०–४०
(७) 'ए यूनीक जैन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी', ज०ओ०इ०, ख० १, अं० १, सितम्बर १९५१ (१९५२), पृ० ७२–७९
(८) 'साइड्लाइट्स आन दि लाईफ-टाइम सेण्डलवुड इमेज ऑव महावीर', ज०ओ०इ०, ख० १, अ० ४, जून १९५२, पृ० ३५८–६८
(९) 'ऐन्शियन्ट स्कल्पचर्स फ्राम गुजरात ऐण्ड सौराष्ट्र', ज०इ०म्यू०, ख० ८, १९५२, पृ० ४९–५७
(१०) 'श्रीजीवन्तस्वामी' (गुजराती), जै०स०प्र०, वर्ष १७, अ० ५–६, १९५२, पृ० ९८–१०९
(११) 'हरिनैगमेषिन्', ज०इं०सो०ओ०आ०, ख० १९, १९५२–५३, पृ० १९–४१
(१२) 'ऐन अर्ली ब्रोन्ज इमेज ऑव पार्श्वनाथ इन दि प्रिंस ऑव वेल्स म्यूज़ियम, बंबई', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अ० ३, १९५२–५३ (१९५४), पृ० ६३–६५
(१३) 'जैन स्कल्पचर्स फ्राम लाडोल', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अ० ३, १९५२–५३ (१९५४), पृ० ६६–७३
(१४) 'सेवेन ब्रोन्जेज फ्राम लिल्वा-देवा', बु०व०म्यू०, ख०९, भाग १-२, अप्रैल १९५२-मार्च १९५३ (१९५५), पृ० ४३–५१
(१५) 'फारेन एलिमेण्ट्स इन जैन लिट्रेचर', इ०हि०क्वा०, खं० २९, अ०३, सितम्बर १९५३, पृ०२६०-६५
(१६) 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इ०, ख० ३, अं० १, सितम्बर १९५३, पृ० ५४–७१
(१७) 'बाहुबली ए यूनीक ब्रोन्ज इन दि म्यूजियम', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इ०, अ०४, १९५३–५४, पृ०३२-३९
(१८) 'मोर इमेजेज ऑव जीवन्तस्वामी', ज०इ०म्यू०, ख० ११, १९५५, पृ० ४९–५०
(१९) स्टडीज इन जैन आर्ट, बनारस, १९५५
(२०) 'ब्रोन्ज होर्ड फ्राम वसन्तगढ़', ललितकला, अ० १–२, अप्रैल १९५५-मार्च १९५६, पृ० ५५–६५
(२१) 'पेरेण्ट्स ऑव दि तीर्थंकरज', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इ०, अ० ५, १९५५–५७, पृ० २४–३२
(२२) 'ए रेयर स्कल्पचर ऑव मल्लिनाथ', आचार्य विजयवल्लभ सूरि स्मृति ग्रन्थ (स०मोतीचन्द्र आदि), बंबई, १९५६, पृ० १२८
(२३) 'ब्रह्मशांति ऐण्ड कपर्दि यक्षज', ज०एम०एस०यू०ब०, ख० ७, अं० १, मार्च १९५८, पृ० ५९–७२
(२४) अकोटा ब्रोन्जेज, बंबई, १९५९
(२५) 'जैन स्टोरीज इन स्टोन इन दि दिलवाडा टेम्पल, माउण्ट आबू', जैन युग, सितम्बर १९५९, पृ० ३८–४०
(२६) 'इण्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज इन जैन वरशिप', प्रो०ट्रां०ओ०कां०, २० वा अधिवेशन, भुवनेश्वर, अक्तूबर १९५९, पूना, १९६१, पृ० १४१–५२
(२७) 'जैन ब्रोन्जेज़ फ्राम कैम्बे', ललित कला, अ० १३, पृ० ३१–३४
(२८) 'ऐन ओल्ड जैन इमेज फ्राम खेड्ब्रह्मा (नार्थ गुजरात)', ज०ओ०इं०, ख० १०, अ० १, सितम्बर १९६०, पृ० ६१–६३

(२९) 'जैन ब्रोन्जेज़ इन हरीदास स्वालीज कलेक्शन', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इ०, अ० ९, १९६४–६६, पृ० ४७–४९
(३०) 'ए जैन ब्रोन्ज़ फ्राम जेसलमेर, राजस्थान', ज०इ०सो०ओ०आ० (स्पेशल नवर), १९६५–६६, मार्च १९६६, पृ० २५–२६
(३१) 'ए जैन मेटल इमेज फ्राम सूरत', ज०इ०सो०ओ०आ० (स्पेशल नवर), १९६५–६६, मार्च १९६६, पृ० ३
(३२) 'टू जैन ब्रोन्जेज़ फ्राम अहमदावाद', ज०ओ०इ०, ख० १५, अ० ३–४, मार्च-जून १९६६, पृ० ४६३-६४
(३३) 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', ज०ओ०ई०, ख० २०, अ० ३, मार्च १९७१, पृ० २८०–३११
(३४) 'ए फ्यू जैन इमेजेज इन दि भारत कलाभवन, वाराणसी', छवि, वाराणसी, १९७१, पृ० २३३–३४
(३५) 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', स०पु०प०, अ० ९, जून १९७२, पृ० १–१४
(३६) 'यक्षिणी ऑव दि ट्वेन्टी-फोर्थ जिन महावीर', ज०ओ०इ०, ख० २२, अ० १–२, सितम्बर-दिसम्बर १९७२, पृ० ७०–७८

शाह, यू० पी० तथा मेहुवा, आर० एन,
'ए फ्यू अर्ली स्कल्पचर्स फ्राम गुजरात', ज०ओ०इ०, ख० १, १९५१–५२, पृ० १६०–६४

श्रीवास्तव, वी० एन०,
'सम इन्टरेस्टिंग जैन स्कल्पचर्स इन दि स्टेट म्यूज़ियम, लखनऊ', स०पु०प०, अ० ९, जून १९७२, पृ० ४५–५२

श्रीवास्तव, वी० एस०,
केटलाग ऐण्ड गाईड टू गंगा गोल्डेन जुबिली म्यूज़ियम, बीकानेर, बवई, १९६१

सकलिया, एच० डी०,
(१) 'दि अर्लिएस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड', ज०रा०ए०सो०, जुलाई १९३८, पृ० ४२६–३०
(२) 'ऐन अनयूज़ुअल फार्म ऑव ए जैन गाडेस', जैन एण्टि०, ख० ४, अ० ३, दिसम्बर १९३८, पृ० ८५-८८
(३) 'जैन आइकानोग्राफी', न्यू इण्डियन एण्टिक्वेरी, ख० २, १९३९–४०, पृ० ४९७–५२०
(४) 'जैन यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', बु०ड०का०रि०इ०, ख० १, अ० २–४, १९४०, पृ० १५७–६८
(५) 'दि सो-काल्ड बुद्धिस्ट इमेजेज फ्राम दि बडौदा स्टेट', बु०ड०का०रि०इ०, ख० १, अं० २–४, १९४०, पृ० १८५–८८
(६) 'दि स्टोरी इन स्टोन ऑव दि ग्रेट रिनन्शियेशन ऑव नेमिनाथ', इ०हि०क्वा०, ख० १६, १९४०–४१, पृ० ३१४–१७
(७) 'जैन मान्युमेण्ट्स फ्राम देवगढ', ज०इ०सो०ओ०आ०, ख० ९, १९४१, पृ० ९७–१०४
(८) दि आर्किअलाजी ऑव गुजरात, बवई, १९४१
(९) 'दिगवर जैन तीर्थंकर फ्राम माहेश्वर ऐण्ड नेवासा', आचार्य विजयवल्लभ सूरि स्मारक ग्रंथ (सं० मोतीचद्र आदि), बवई, १९५६, पृ० ११९–२०

सरकार, डी० सी०,
सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, ख० १, कलकत्ता, १९६५

सरकार, शिवशंकर,

'आन सम जैन इमेजेज फ्राम बंगाल', माडर्न रिव्यू, ख० १०६, अ० २, अगस्त १९५९, पृ० १३०–३१

सहानी, रायबहादुर दयाराम,

(१) केटलाग ऑव दि म्यूजियम ऑव आर्किअलाजी ऐट सारनाथ, कलकत्ता, १९१४
(२) 'ए नोट आन टू ब्रास इमेजेज', ज०यू०पी०हि०सो०, ख० २, भाग २, मई १९२१, पृ० ६८–७१

सिंह, जे० पी०,

आस्पेक्ट्स ऑव अर्ली जैनिजम, वाराणसी, १९७२

सिक्दार, जे० सी०,

स्टडीज इन दि भगवतीसूत्र, मुजफ्फरपुर, १९६४

सुन्दरम, टी० एस०,

'जैन ब्रोन्जेज फ्राम पुडुकोट्टई', ललित कला, अ० १–२, १९५५–५६, पृ० ७९

सोमपुरा, कांतिलाल फूलचंद,

(१) दि स्ट्रक्चरल टेम्पल्स ऑव गुजरात, अहमदाबाद, १९६८
(२) 'दि आर्किटेक्चरल ट्रीटमेण्ट ऑव दि अजितनाथ टेम्पल् ऐट तारगा', विद्या, ख० १४, अ० २, अगस्त १९७१, पृ० ५०–७७

स्टिवेन्सन, एस०,

दि हार्ट ऑव जैनिजम, आक्सफोर्ड, १९१५

स्मिथ, वी० ए०,

दि जैन स्तूप ऐण्ड अदर एन्टिक्विटीज ऑव मथुरा, वाराणसी, १९६९ (पु० मु०)

स्मिथ, वी० ए० तथा ब्लैक, एफ० सी०,

'आब्जरवेशन आन सम चन्देल एन्टिक्विटीज', ज०ए०सो०ब०, ख० ५८, अ० ४, १८७९, पृ० २८५–९६

हस्तीमल,

जैन धर्म का मौलिक इतिहास, ख० १, इतिहास समिति प्रकाशन ३, जयपुर, १९७१

चित्र-सूची

चित्र-संख्या

२९ : नेमिनाथ के जीवनदृश्य, शांतिनाथ मन्दिर, कुमारिया (बनासकाठा, गुजरात), ११वीं शती, पृ० १२१–२२
३० : पार्श्वनाथ, कंकालीटीला (मथुरा, उ० प्र०), ल० पहली-दूसरी शती ई०, राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ३९)
३१ : पार्श्वनाथ, मन्दिर १२ (चहारदीवारी), देवगढ (ललितपुर, उ० प्र०), ११वीं शती, पृ० १२९
३२ : पार्श्वनाथ, मन्दिर ६, देवगढ (ललितपुर, उ० प्र०), १०वी शती, पृ० १२९
३३ · पार्श्वनाथ, राजस्थान, ११वी-१२वी शती, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली (३९.२०२), पृ० १२८
३४ : महावीर, कंकालीटीला, (मथुरा, उ० प्र०), कुषाण काल, राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ५३), पृ० १३६
३५ · महावीर, वाराणसी (उ० प्र०), ल० छठी शती, भारत कला भवन, वाराणसी (१६१), पृ० १३७
३६ जीवन्तस्वामी महावीर, अकोटा (बडौदा, गुजरात), ल० छठी शती, बडौदा संग्रहालय, पृ० १३७
३७ . जीवन्तस्वामी महावीर, ओसिया (जोधपुर, राजस्थान), तोरण, ११वी शती
३८ महावीर, मन्दिर १२ के समीप, देवगढ (ललितपुर, उ० प्र०), ल० ११वी शती, पृ० १३८
३९ · महावीर के जीवनदृश्य (गर्भापहरण), कंकालीटीला, (मथुरा, उ० प्र०), पहली शती, राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे० ६२६), पृ० १३९
४० : महावीर के जीवनदृश्य, महावीर मन्दिर, कुमारिया (बनासकाठा, गुजरात), ११वी शती, पृ० १३९–४२
४१ . महावीर के जीवनदृश्य, शांतिनाथ मन्दिर, कुमारिया (बनासकाठा, गुजरात), ११वीं शती, पृ० १४२–४३
४२ जिन मूर्तिया, खजुराहो (छतरपुर, म० प्र०), ल० १०वी-११वीं शती, शांतिनाथ संग्रहालय, खजुराहो (के ४–७)
४३ : गोमुख, हथमा (राजस्थान), ल० १०वी शती, राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (२७०), पृ० १६३
४४ : चक्रेश्वरी, मथुरा (उ० प्र०), १०वी शती, पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (डी ६), पृ० १६८
४५ : चक्रेश्वरी, मन्दिर ११ के समीप का स्तंभ, देवगढ (ललितपुर, उ०प्र०), ११वी शती, पृ० १७०
४६ : चक्रेश्वरी, देवगढ़ (ललितपुर, उ० प्र०), ११वी शती, साहू जैन संग्रहालय, देवगढ, पृ० १७०
४७ : रोहिणी, मन्दिर ११ के समीप का स्तंभ, देवगढ़ (ललितपुर, उ० प्र०), ११वी शती, पृ० १७५
४८ : सुमालिनी यक्षी (चंद्रप्रभ), मन्दिर १२, देवगढ (ललितपुर, उ० प्र०), ८६२ ई०, पृ० १८८–८९
४९ : सर्वानुभूति (कुबेर), देवगढ (ललितपुर, उ० प्र०), १०वी शती, पृ० २२१
५० : अम्बिका, पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (डी ७), नवीं शती, पृ० २२६–२७
५१ . अम्बिका, मन्दिर १२, देवगढ़ (ललितपुर, उ० प्र०), १०वी शती, पृ० २२६
५२ : अम्बिका, एलोरा (औरंगाबाद, महाराष्ट्र), ल० १०वी शती, पृ० २३०
५३ . अम्बिका, पतियानदाई मन्दिर (सतना, म० प्र०) ११वीं शती, इलाहाबाद संग्रहालय (२९३), पृ० १६१
५४ : अम्बिका, विमलवसही, आबू (सिरोही, राजस्थान), १२वी शती, पृ० २२६
५५ : पद्मावती, शहडोल (म० प्र०), ११वी शती, ठाकुर साहब संग्रह, शहडोल, पृ० २३९
५६ : पद्मावती, नेमिनाथ मन्दिर (पश्चिमी देवकुलिका), कुमारिया (बनासकाठा, गुजरात), १२वी शती, पृ० २३७
५७ . उत्तरंग, यक्षिया (अम्बिका, चक्रेश्वरी, पद्मावती) तथा नवग्रह, खजुराहो (छतरपुर, म० प्र०), ११वी शती, जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो (१४६७), पृ० १६९,२३९
५८ : ऋषभनाथ एवं अम्बिका, खण्डगिरि (पुरी, उडीसा), ल० १०वी-११वी शती
५९ पार्श्वनाथ एवं महावीर और शासनदेविया, बारभुजी गुफा, खण्डगिरि, (पुरी, उडीसा), ल० ११वीं-१२वीं शती,
६० : ऋषभनाथ और महावीर, द्वितीर्थी-मूर्ति, खण्डगिरि (पुरी, उडीसा), ल० १०वी-११वी शती, ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन (९९), पृ० १४५
६१ : द्वितीर्थी-जिन-मूर्तिया, खजुराहो (छतरपुर, म० प्र०), ल० ११वी शती, शांतिनाथ संग्रहालय, खजुराहो, पृ० १४५
६२ : विमलनाथ एवं कुंथुनाथ, द्वितीर्थी-मूर्ति, मन्दिर १, देवगढ़ (ललितपुर, उ० प्र०), ११वी शती, पृ० १४५–४६
६३ . द्वितीर्थी-जिन-मूर्ति, मन्दिर ३, खजुराहो (छतरपुर, म० प्र०), ल० ११ वी शती, पृ० १४५

आभार-प्रदर्शन

(चित्र सख्या १३, १७–२०, २२, २४–२६, २९, ३३, ४३, ४४, ५०, ५३–५५, ५७, ६७, ६९, ७१, ७२ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, रामनगर, वाराणसी, चित्र सख्या १–३, ५, ६, ९–१२, २३, ३०, ३८, ३९, ५२; ५८–६०, ६८, ७३ जैन जर्नल, कलकत्ता, चित्र सख्या २१, ३५ भारत कला भवन, वाराणसी एव चित्र संख्या ७९ एल० डी० इन्स्टिट्यूट, अहमदावाद के सौजन्य से साभार।)

●

LIST OF ILLUSTRATIONS

11. Jina Rsabhanātha (Ist), sky-clad and standing in *kāyotsarga-mudrā* with *prātihāryas,* bull cognizance and tiny Jina figures, Sanka (Purulia, Bengal), *ca* 10th-11th century A. D.

12. Narrative Panel, from the life of Jina Rsabhanātha (Ist) Dance of Nīlāñjanā (the divine dancer), the cause of the renunciation of Rsabhanātha, Kankālī Tīlā (Mathura, U P), *ca.* first century A D, State Museum, Lucknow (J 354)

13 Narratives, from the life of Jina Ṛsabhanātha (Ist), showing *pañcakalyāṇakas* (*cyavana*-coming on earth, *janma*—birth, *dīksā*—renunciation, *jñāna*-omniscience and *nirvāṇa*-emancipation) and some other important events, and also the figures of *yaksa-yakṣī* pair, ceiling of Mahāvīra Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A D

14 Narratives, from the life of Jina Ṛsabhanātha (Ist), exhibiting *pañcakalyāṇakas*, scene of fight between Bharata and Bāhubalī, and Gomukha *yakṣa* and Cakreśvarī *yakṣī*, ceiling of Śāntinātha Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A D

15 Jina Ajitanātha (2nd), seated in *dhyāna-mudrā* with elephant cognizance, *yakṣa-yakṣī* pair *aṣta-mahāprātihāryas,* Temple No 12 (enclosure wall), Deogarh (Lalitpur, U P), *ca.* 10th-11th century A D.

16 Sambhavanātha (3rd), seated in *dhyāna-mudrā* on a *simhāsana* (lion-throne), Kankālī Tīlā (Mathura, U. P), Kusāna Period—126 A D, State Museum, Lucknow (J 19) The name of the Jina is inscribed in the pedestal inscription

17. Jina Candraprabha (8th), seated in *dhyāna-mudrd* with crescent cognizance, *yakṣa-yaksī* pair and *aṣta-mahāprātihāryas,* Kauśāmbī (Allahabad, U P), ninth century A D, Allahabad Museum (295)

18 Jina Vimalanātha (13th) sky-clad and standing in *kāyotsarga-mudrā* with boar as cognizance and flywhisk bearers as attendants, Varanasi (U P.), *ca* ninth century A D., Sarnath Museum, Varanasi (236)

19. Jina Śāntinātha (16th), seated in *dhyāna-mudrā* and joined by two sky-clad Jinas standing in *kāyotsarga-mudrā*, Pabhosā (Allahabad, U. P), 11th century A D, Allahabad Museum (533) The *mūlanāyaka* is shown with deer *lāñchana, yakṣa-yakṣī* pair, *asta-mahāprātihāryas* and small Jina figures

20 Jina Śāntinātha (16th), standing in *kāyotsarga-mudrā* and wearing a *dhotī* (Śvetāmbara) and accompanied by cortege of *aṣṭa-mahāprātihāryas*, Śāntidevī, Mahāvidyās, *yaksa-yakṣī* pair and *dharmacakra* (flanked by two deers), Pārśvanātha Temple (*Gūḍhamanḍapa*), Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 1119-20 A D

21 Cauvīsī of Jina Śāntinātha (16th), seated in *dhyāna-mudrā* with tiny figures of 23 Jinas and *yakṣa-yakṣī* pair, Western India, 1510 A D, Bharat Kala Bhavan, Varanasi (21733). The name of the Jina is inscribed in the inscription

22 Narratives, from the lives of Sāntinātha (16th-right half) and Neminātha (22nd-left half) Jinas, showing the usual *pañcakalyāṇakas*, the scenes of trial of strength between Krsna and Neminātha (in which Nemi emerged victor), and the marriage and consequent renunciation of Neminātha, ceiling of Mahāvīra Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A D

23 Jina Mallinātha (19th), seated in meditation, Unnao (U P), 11th century A D, State Museum, Lucknow (J 885) The figure is the product of the Śvetāmbara sect in asmuch as the Jina here is rendered as female which is in conformity with the Śvetāmbara tradition

24 Jina Munisuvrata (20th), standing in *kāyotsarga-mudrā* and wearing a *dhotī* (Śvetāmbara), tortoise emblem on pedestal, Western India, 11th century A. D, Government Central Museum, Jaipur

25 Jina Neminātha (22nd), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* on a *siṁhāsana* with the figures of Balarāma and Kṛṣna Vāsudeva (the cousin brothers of Neminātha) and Jinas (3), Mathura (U P), *ca* fourth century A D, State Museum, Lucknow (J 121)

26 Jina Neminātha (22nd), seated in meditation on a *siṁhāsana* with *asta-mahāprātihāryas* and *yakṣa-yakṣī* pair (*yakṣī* being Ambikā, traditionally associated with Neminātha), the latter being carved below the *siṁhāsana, Rājghāt* (Varanasi, U P), *ca* seventh century A D, Bharat Kala Bhavan, Varanasi (212)

27 Jina Neminātha (22nd), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with *asta-mahāprātihāryas* and *yakṣa-yakṣī* pair and also accompanied by two-armed Balarāma and four-armed Kṛsna Vāsudeva on two flanks, Temple No 2, Deogarh (Lalitpur, U. P), 10th century A D

28. Jina Neminātha (22nd), standing in *kāyotsarga-mudrā* and wearing a *dhotī* (Śvetāmbara) with *prātihāryas,* tiny Jina figures and four-armed Balarāma and Krsna Vāsudeva, Mathura (? U P), 11th century A D, State Museum, Lucknow (66 53) The lower portion of the image is, however, damaged

29 Narratives, from the life of Jina Neminātha (22nd), portraying usual *pañcakalyāṇakas* along with scenes from his marriage and also showing the temple of his *yakṣī* Ambikā, ceiling of Śāntinātha Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A D

30 Jina Pārśvanātha (23rd), seated in meditation with sevenheaded snake canopy overhead, Kankālī Tīlā (Mathura, U. P.), *ca* Ist-2nd century A D, State Museum, Lucknow (J39)

31 Jina Pārśvanātha (23rd), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with sevenheaded snake canopy overhead and *kukkuṭa-sarpa* (cognizance) on the pedestal, Temple No 12 (enclosure wall), Deogarh (Lalitpur, U P.), 11th century A D

32. Jina Pārśvanātha (23rd), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with two snakes flanking the Jina, Temple No. 6, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 10th century A. D.

45 Cakreśvarī, *yakṣī* of Ṛṣabhanātha (1st), seated in *lalitāsana, garuḍa vāhana* (human), 10-armed, showing *varada-mudrā*, arrow, mace, sword, disc, disc, shield, thunderbolt, bow and conch, Temple No 11 *(Mānastambha)*, Deogarh (Lalitpur, U P), 11th century A. D.

46 Cakreśvarī, *yakṣī* of Ṛṣabhanātha (1st), seated in *lalita*-pose, *garuḍa* mount (human), 20-armed, showing discs in two upper hands, disc, sword, quiver (?), *mudgara*, disc, mace, rosary, axe, thunderbolt, bell, shield, staff with flag, conch, bow, disc, snake, spear and disc, Deogarh (Lalitpur, U P), 11th century A D, Sāhū Jaina Museum, Deogarh

47 Rohiṇī, *yakṣī* of Ajitanātha (2nd), seated in *lalita*-pose, cow as conveyance, 8-armed, bears *varada-mudra*, goad, arrow, disc, noose, bow, spear and fruit, Temple No 11 (*Mānastambha*), Deogarh (Lalitpur, U P), 11th century A D

48 Sumālinī, *yakṣī* of Candraprabha (8th), standing, lion vehicle, 4-armed, carries sword, *abhaya-mudrā*, shield and thigh-posture, Temple No 12, Deogarh (Lalitpur, U. P), 862 A D

49 Sarvānubhūti (or Kubera), *yakṣa* of Neminātha (22nd), seated in *lalitāsana*, 2-armed, holds fruit and purse (made of mongoose-skin), Deogarh (Lalitpur, U P), 10th century A D

50 Ambikā, *yakṣī* of Neminātha (22nd), seated in *lalita*-pose, lion *vāhana*, 2-armed, bears *abhaya-mudrā* and a child, Provenance not known, ninth century A D, Archaeological Museum, Mathura (D7) The figures of Jina, Ganeśa, Kubera, Balarāma, Kṛṣṇa Vāsudeva, *aṣṭa-mātṛkās* and second son are also rendered

51 Ambikā, *yakṣī* of Neminātha (22nd), standing, lion as conveyance, 2-armed, holds a bunch of mangoes and a child (clasping in the lap), nearby second son, Temple No 12, Deogarh (Lalitpur, U P), 10th century A D

52 Ambikā, *yakṣī* of Neminātha (22nd), seated in *lalita-mudrā*, lion vehicle, 2-armed, one surviving hand supports a child seated in lap, Ellora (Aurangabad, Maharashtra), *ca* 10th century A D

53 Ambikā, *yakṣī* of Neminātha (22nd), standing, lion vehicle, 4-armed, all the hands being damaged, two sons on two sides, tiny figures of Jinas (nude) and 23 *yakṣīs* in *parikara*, Patiāndāī Temple, Satna (M P), 11th century A D, Allahabad Museum (293) The 23 *yakṣī* figures of the *parikara* are 4-armed and their respective names are inscribed under their figures However, the names of the *yakṣīs* in some cases are not in conformity with the lists available in Digambara texts, The image is unique in the sense that all the 24 *yakṣīs* of Jaina pantheon have been carved at one place,

54. Ambikā, *yakṣī* of Neminātha (22nd), seated in *lalitāsana*, lion mount, 4-armed, holds bunches of mangoes in three hands while with one she supports a child (clasped in the lap), second son standing nearby and branch of mango tree overhead, Vimala Vasahī, Ābū (Sirohi, Rajasthan), 12th century A D

55. Padmāvatī, *yakṣī* of Pārśvanātha (23rd), seated cross-legged, *kūrma vāhana*, fiveheaded cobra overhead, 12-armed, bears *varada-mudrā*, sword, axe, arrow, thunderbolt, disc (ring), shield, mace, goad, bow, snake and lotus, *nāga-nāgī*-figures on two flanks and the figure of Pārśvanātha with sevenheaded snake canopy over the head of Padmāvatī, Shahdol (M P.), 11th century A D , Thakur Sahib Collection, Shahdol

56 Padmāvatī, *yakṣī* of Pārsvanātha (23rd), seated in *lalitāsana, kukkuta-sarpa* as *vāhana*, fiveheaded snake canopy overhead, 4-armed, holds *varadākṣa*, goad, noose and fruit, Neminātha Temple (western *Devakulikā*), Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 12th century A D

57 Door-lintel, showing the figures of 4-armed (from left) Ambikā, Cakreśvarī and Padmāvatī *yaksīs*, all seated in *lalitāsana*, and 2-armed Navagrahas, Khajurāho (Chatarpur, M P), 11th century A D , Jardin Museum, Khajurāho (1467). Ambikā with lion vehicle shows rolled lotuses in upper hands, while in two lower hands, she carries a bunch of mangoes and a child Cakreśvarī rides a *garuḍa* (human) and holds *varada-mudrā*, mace, disc and conch (mutilated) Padmāvatī, shaded by sevenheaded snake canopy, rides a *kukkuta* and bears in three surviving hands *varada-mudrā*, noose and goad

58 Jina Rsabhanātha (Ist), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with tall *jatā-mukuta*, bull cognizance and usual *prātihāryas* and 2-armed Ambikā standing at right extremity, Khaṇḍagiri (Puri, Orissa), *ca* 10th-11th century A D

59 Jina Pārśvanātha (23rd-with sevenheaded cobra overhead) and Mahāvīra (24th-with lion cognizance), both seated in *dhyāna-mudrā* with their respective *yaksīs* (Padmāvatī and Siddhāyikā), Bārabhujī Gumphā, Khndagiri (Puri, Orissa), *ca* 11th-12th century A D

60 *Dvitīrthī* Jina Image, showing Ṛsabhanātha (Ist) and Mahāvīra (24th) with bull and lion cognizances and standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with usual *prātihāryas*, Khandagiri (Puri, Orissa), *ca* 10th-11th century A D , British Museum, London (99).

61. *Dvitīrthī* Jina Images, without emblems but with usual *aṣta-mahāprātihāryas*, tiny Jina figures and *yaksa-yakṣī* pairs, Jinas standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā*, Khajurāho (Chatarpur, M P), *ca* 11th century A D , Śāntinātha Museum, Khajurāho

62 *Dvitīrthī* Jina Image, exhibiting Vimalanātha (13th) and Kunthunātha (17th) with their respective cognizances, boar and goat, and *prātihāryas*, standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā*, Temple No 1, Deogarh (Lalitpur, U. P), 11th century A D

63 *Dvitīrthī* Jina Image, portraying Jinas as standing sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* without cognizances but with usual *aṣta-mahāprātihāryas*, and diminutive Jina figures, Temple No 3, Khajurāho (Chatarpur, M. P.) *ca*. 11th century A D

64 *Tritīrthī* Jina Image, exhibiting Neminātha (22nd), seated in meditation in the centre, with Sarvānubhūti *yakṣa* and Ambikā *yakṣī* at throne and Pārśvanātha (23rd-with sevenheaded snake canopy) and Supārśvanātha (7th-with fiveheaded cobra hoods overhead) on right and left flanks, Temple No 29 (*śikhara*), Deogarh (Lalitpur, U P.), *ca* 10th century A D. The flanking Jinas are, however, standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* All the Jinas are provided with usual *aṣta-prātihāryas*

65 *Tritīrthī* Image, portraying two Jinas (Ajitanātha-2nd and Sambhavanātha-3rd) and Sarasvatī (the goddess of learning and music), Temple No. 1, Deogarh (Lalitpur, U P), 11th century A D The Jinas are standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with usual *asta-prātihāryas* and cognizances (elephant and horse) Sarasvatī (4-armed) stands in *tribhanga* with peacock *vāhana* and carries *varada-mudrā*, rosary, lotus and manuscript

66 Jina-*Caumukhī (Pratimā-Sarvatobhadrikā)*, an image auspicious from all sides, portraying four Jinas standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* on four sides, Kankālī Tīlā (Mathura, U. P), Kuṣāna Period, State Museum, Lucknow Of the four, only two Jinas are identifiable on the strength of identifying marks, they are Rṣabhanātha (Ist—with hanging hair-locks) and Pārsvanātha (23rd—with sevenheaded snake canopy)

67 Jina-*Caumukhī*, exhibiting four Jinas seated in meditation on four sides with usual *aṣta-prātihāryas* and *yaksa-yakṣī* pairs and its top being modelled after the *śikhara* of a North Indian Temple (*Devakulikā*), Ahar (Tikamgarh, M P), *ca* 11th century A D, Dhubela Museum (32)

68 Jina-*Caumukhī*, in the form of *Devakulikā* (small shrine) and portraying four Jinas standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* and identifiable with Rsabhanātha (Ist), Śāntinātha (16th), Kunthunātha (17th) and Mahāvīra (24th) on account of bull, deer, goat and lion emblems, Pakbirā (Purulia, Bengal), *ca* 11th century A D.

69 *Caumukhī*, Jinālaya (*Sarvatobhadrikā* Shrine), showing four principal Jinas seated in *dhyāna-mudrā* with usual *aṣta-prātihāryas* and *yaksa-yakṣī* pairs, Indor (Guna, M. P), 11th century A D A number of small Jinas, Ācāryas and tutelary couples (with child in lap) are also depicted all around

70 Bharata Cakravartin, standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with some of the *prātihāryas* (triple parasol, drum-beater, hovering *mālādharas*) and conventional nine treasures (*navanidhis*-in the form of nine vases topped by the figure of Kubera) and fourteen jewels (*ratnas-cakra, chatra*, thunderbolt, sword, elephant, horse etc), Temple No 2, Deogarh (Lalitpur, U P), 11th century A D

71 Bāhubalī (or Gommaṭeśvara), the second son of first Jina Ṛṣabhanātha, standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with the rising creepers entwining round legs and hands, Śrvanabelgolā (Hassan, Karnataka), *ca* ninth century A D, Prince of Wales Museum, Bombay (105) According to Jaina Works, Bāhubalī obtained *kevala-jñāna* (omniscience) through rigorous austerities and stood in *kāyotsarga-mudrā* for one whole year and during

the course of his *tapas* snakes, lizards and scorpions crept on his body and meandering vines entwined round his hands and legs, which all suggest the deep meditation of Bāhubalī and also that he remained immune to his surroundings

72 Bāhubalī, standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with *mādhavī* creepers and also the figures of deer, snakes, mice, scorpions and a dog carved nearby, Cave 32 (Indra Sabhā), Ellora (Aurangabad, Maharashtra), *ca* ninth century A. D Bāhubalī is flanked by the figures of two *Vidyādharīs,* who according to Digambara Purānas removed the entwining creepers from the body of Bāhubalī Besides, the figure of a devotee (probably his elder brother Bharata Cakravartin), the *chatra,* hovering *mālādharas* and a drum-beater are also carved

73 Bāhubalī Gommateśvara (57 ft), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with climbing plant fastened round his thighs and hands, and ant-hills, carved nearby, with snakes issuing out of them, Śravanabeḷgolā (Hassan, Karnataka), *ca* 983 A. D The half-shut eyes of Bāhubalī suggest deep meditation and inward look The nudity of the figure indicates the absolute renunciation of a *kevalin,* and the stiff erectness of posture firm determination and self-control. The face has a benign smile, serenity and contemplative gaze James Fergusson observes · "Nothing grander or more imposing exists anywhere out of Egypt, and, even there, no known statue surpasses it in height"—(*History of Indian and Eastern Architecture,* London, 1910, p. 72) The image was got prepared by Cāmundarāya, the minister of the Ganga King Rācamalla IV (974-984 A D)

74. Bāhubalī, standing as nude in *kāyotsarga-mudrā* with *asta-prātihāryas,* devotees, climbing plant (entwining legs and hands), lizards, snakes, scorpions (creeping on leg) and a royal figure (probably Bharata Cakravartin), sitting on left, Temple No 2, Deogarh (Lalitpur, U P), 11th century A. D

75 *Tritīrthī* Image, showing Bāhubalī with two Jinas, namely, Śitalanātha (10th) and Abhinandana (4th), all standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* and accompanied by usual cortege of *aṣta-prātihāryas,* adorers, and meandering vines entwining round the hands and legs of Bāhubalī, Temple No 2, Deogarh (Lalitpur, U P), 11th Century A D.

76. Sarasvatī, seated in *lalita*-pose, peacock *vāhana,* 4-armed, holds *varada-mudrā,* lotus, *vīṇā* and manuscript, Neminātha Temple (Western *Devakulikā*), Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 12th century A D

77 Ganeśa, elephant-headed, pot-bellied, seated in *lalitāsana, mūṣaka vāhana,* 4-armed, bears tusk, axe, long-stalked lotus and pot filled with sweetballs (*modaka-pātra*), Neminātha Temple (*adhiṣthāna*), Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 12th century A D

78 Sixteen Jaina Mahāvidyās (only 12 are} seen in the figure), all possessing four hands and seated in *lalitāsana* with distinguishing attributes, *Bhramikā* ceiling of Śāntinātha Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A D-

79 Exterior wall, showing figures of Mahāvidyās, *yakṣas* and *yaksīs,* Ajitanātha Temple, Tārangā (Mehasana, Gujarat), 12th century A D

शब्दानुक्रमणिका[1]

[1] शब्दानुक्रमणिका मे केवल मूलपाठ के ही सन्दर्भों को सम्मिलित किया गया है।

चित्र १ हड़प्पा से प्राप्त मूर्ति

चित्र २ जिन, लोहानीपुर (विहार), ल० तीसरी शती ई० पू०
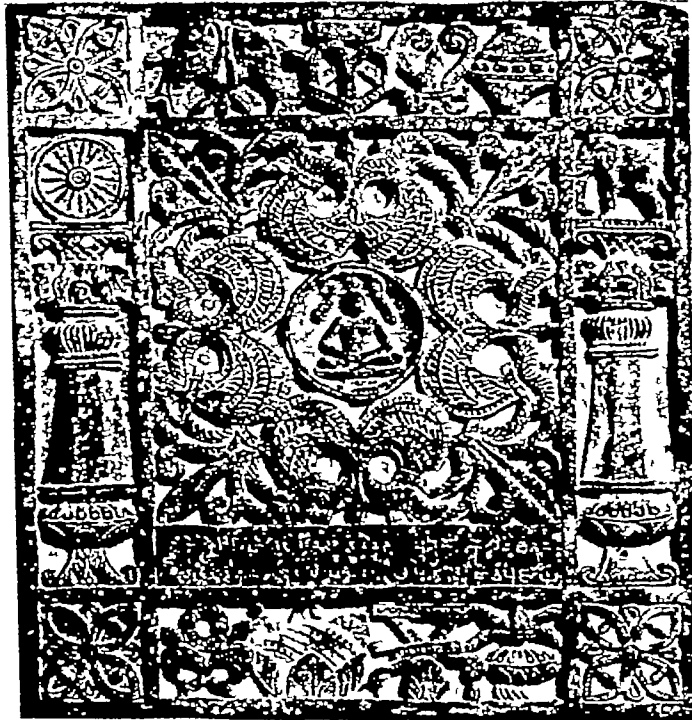
चित्र ३ आयागपट, मथुरा (उ० प्र०), ल० पहली शती
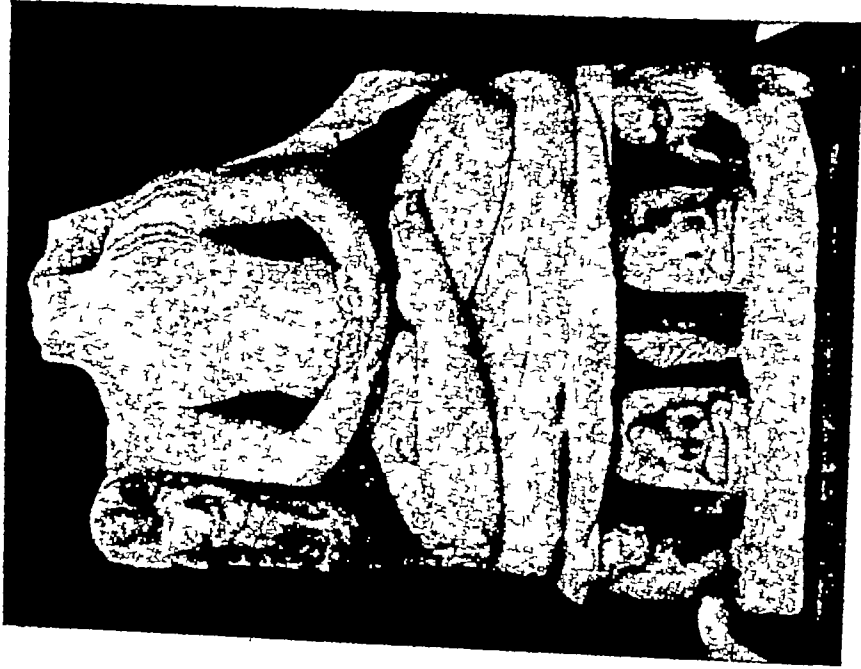
चित्र ४ ऋषभनाथ, मथुरा (उ०प्र०), ल० पाचवी शती
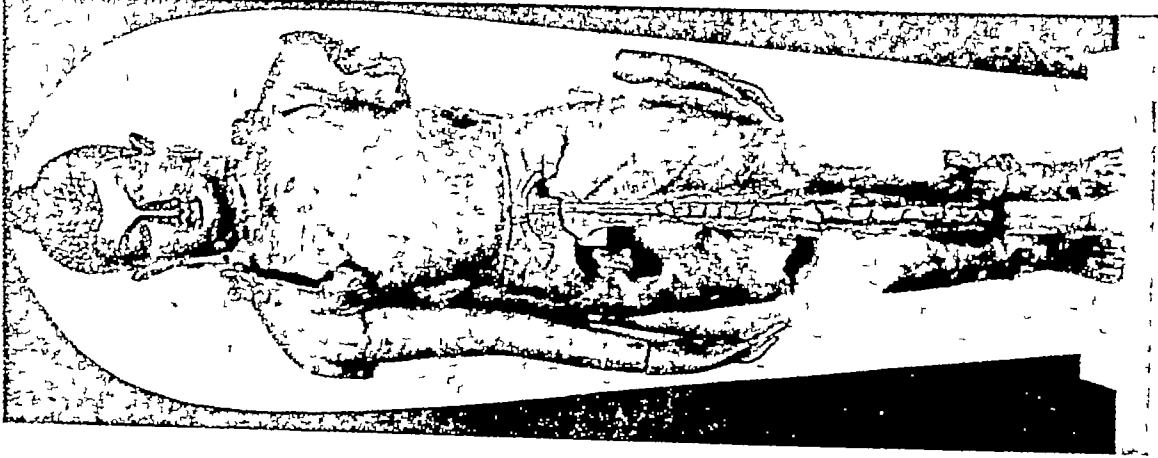
चित्र ५ ऋषभनाथ, अकोटा (गुजरात)
ल० पाचवी शती

चित्र ६ ऋषभनाथ, कोसम (उ० प्र०)
ल० नवी-दसवी शती

चित्र ९

चित्र ७

चित्र ८

७ ऋषभनाथ, उरई (उ० प्र०), ल० १०वी-११वीं शती
८ ऋषभनाथ, मदिर १, देवगढ (उ० प्र०), ल० ११वी शती
९ ऋषभनाथ चौवीसी, सुरोहर (बांगलादेश), ल० १०वी शती

चित्र १० ऋषभनाथ, भेलोवा (बांगलादेश)
ल० ११वीं शती

चित्र ११ ऋषभनाथ, सक (बंगाल)
ल० १०वीं-११वीं शती

चित्र १२ ऋषभनाथ-जीवनदृश्य (नीलांजना का नृत्य), मथुरा (उ० प्र०), ल० पहली शती
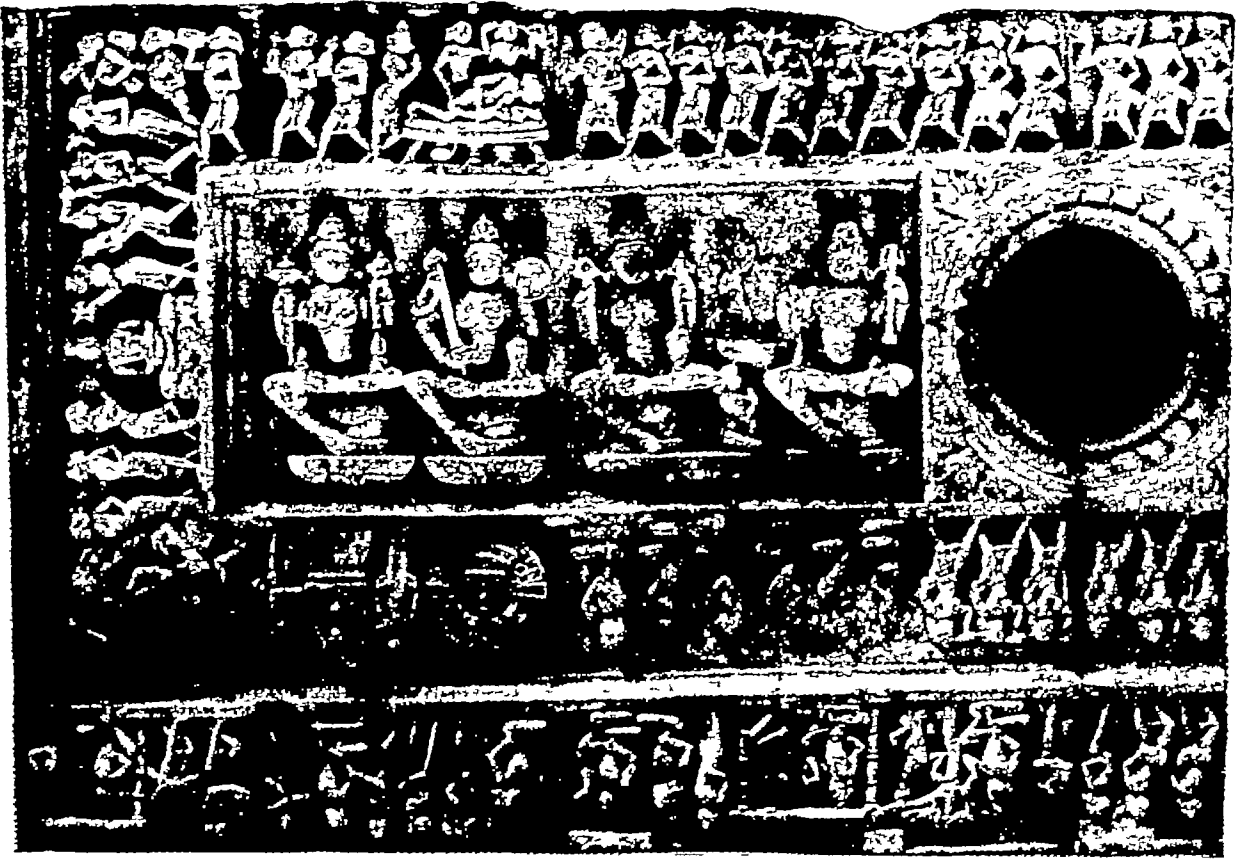
चित्र १३   ऋषभनाथ-जीवनदृश्य, महावीर मदिर, कुभारिया (गुजरात), ११वी शती
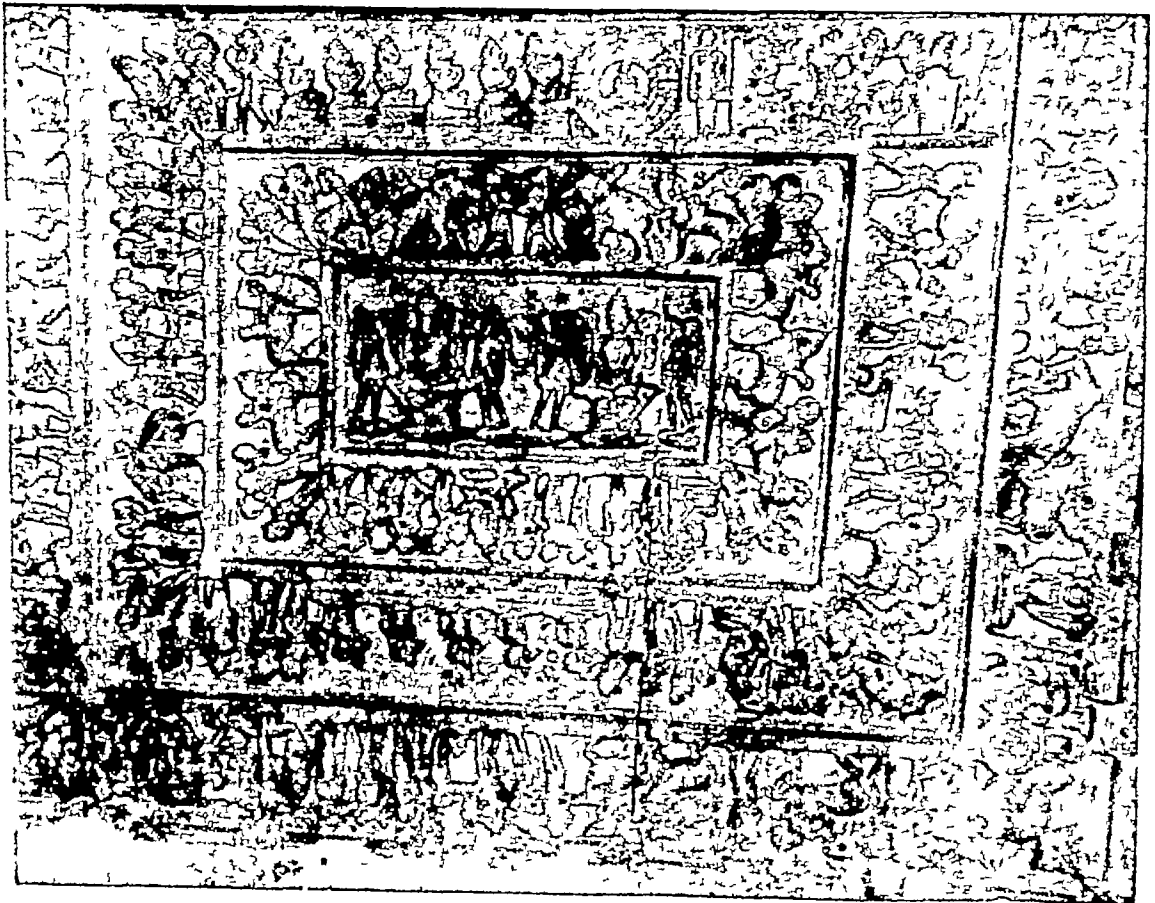
चित्र १४   ऋषभनाथ-जीवनदृश्य, शातिनाथ मदिर, कुभारिया (गुजरात), ११वी शती
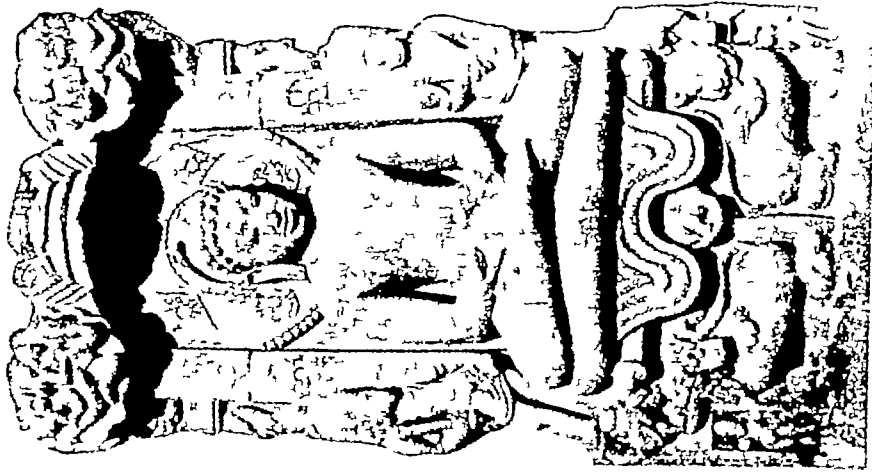
चित्र १५ अजितनाथ, मदिर १२ (चहारदीवारी), देवगढ (उ० प्र०), ल० १०वी-११वी शती
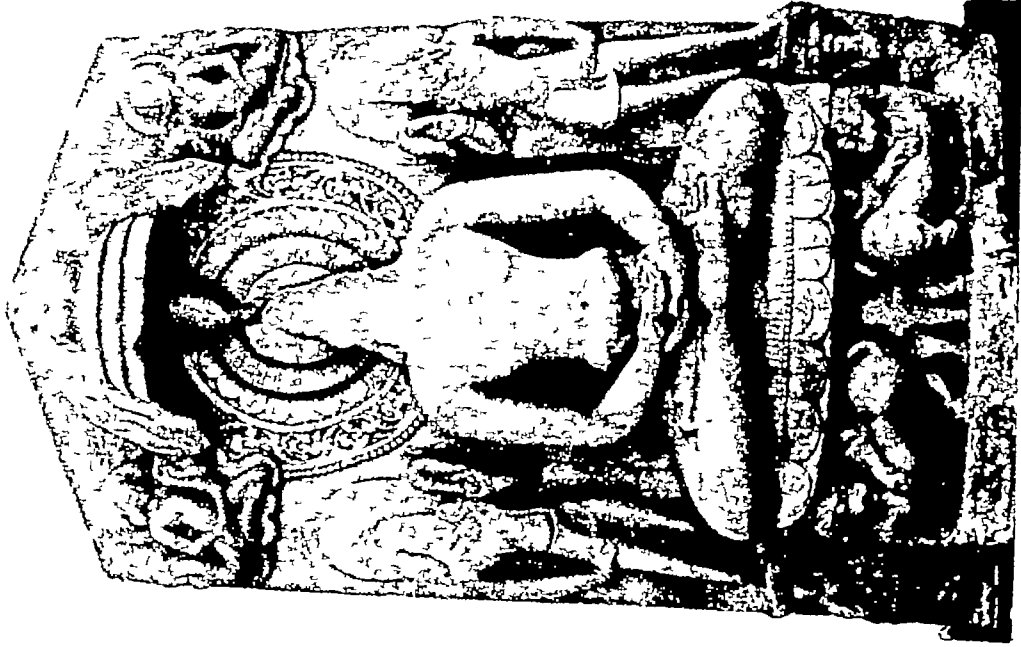
चित्र १७ चद्रप्रभ, कौशाम्बी (उ० प्र०), नवी शती
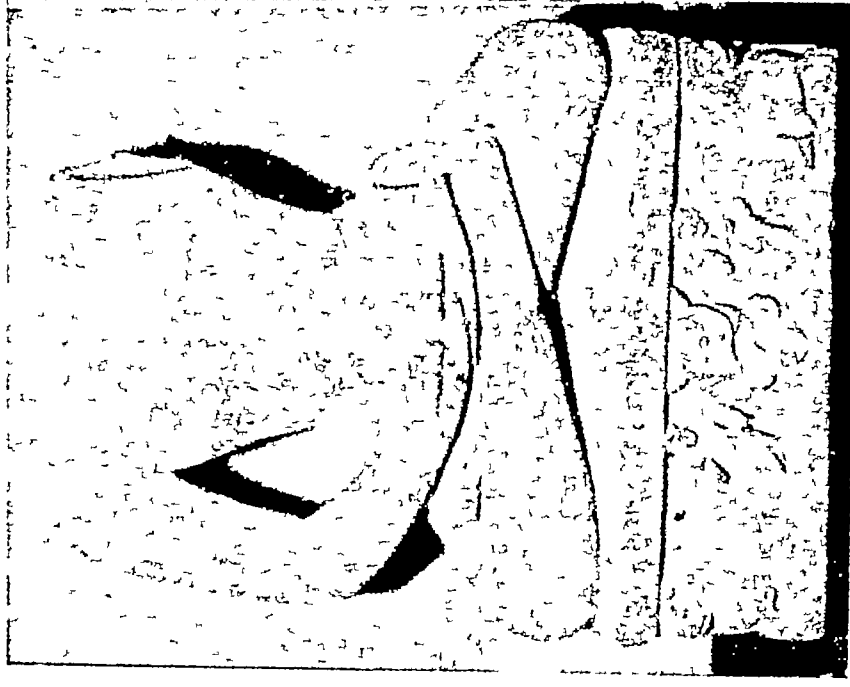
चित्र १६ सभवनाथ, मथुरा (उ० प्र०), १२६ ई०
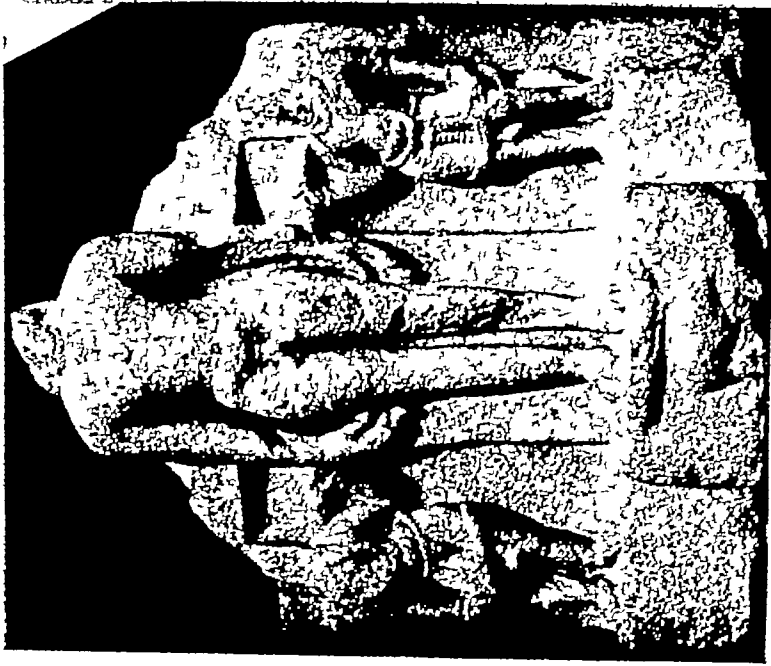
चित्र १८ विमलनाथ, वाराणसी (उ० प्र०), ल० नवी शती
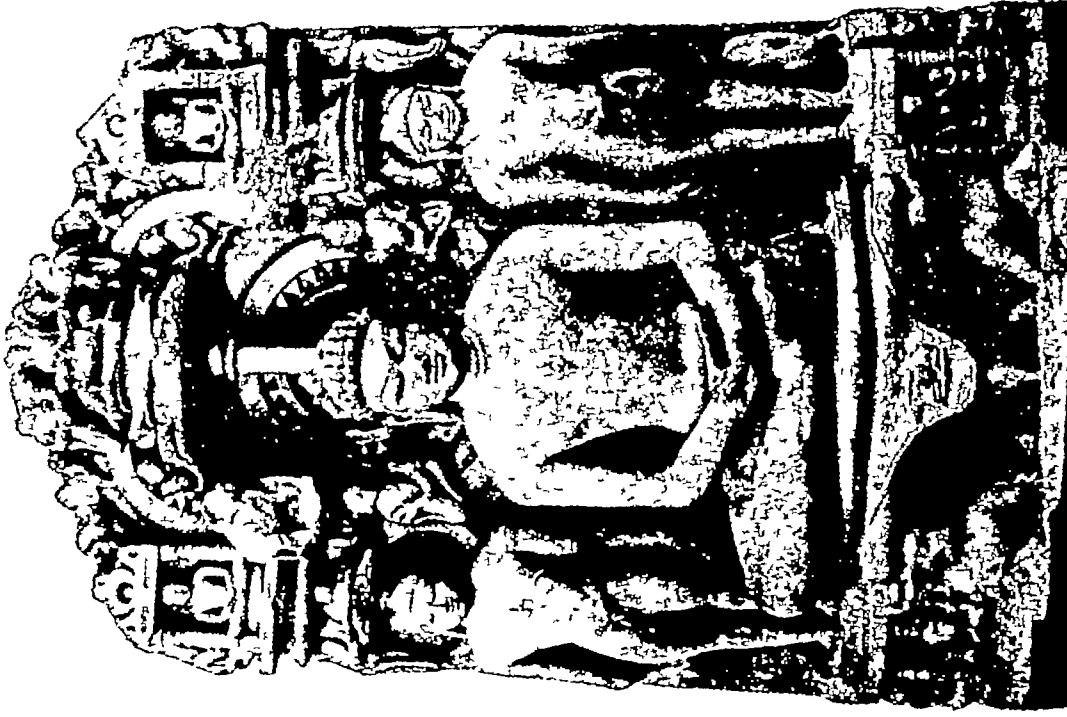
चित्र १९ शातिनाथ, पभोसा (उ० प्र०), ११वी शती
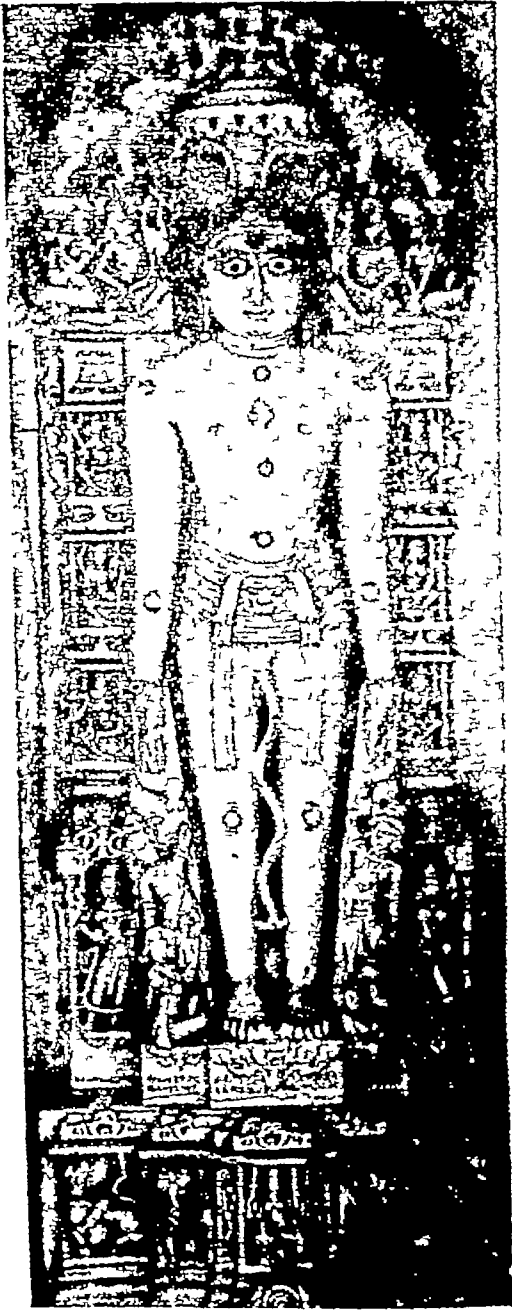
चित्र २० शातिनाथ, पार्श्वनाथ मदिर, कुभारिया (गुजरात), १११९-२० ई०
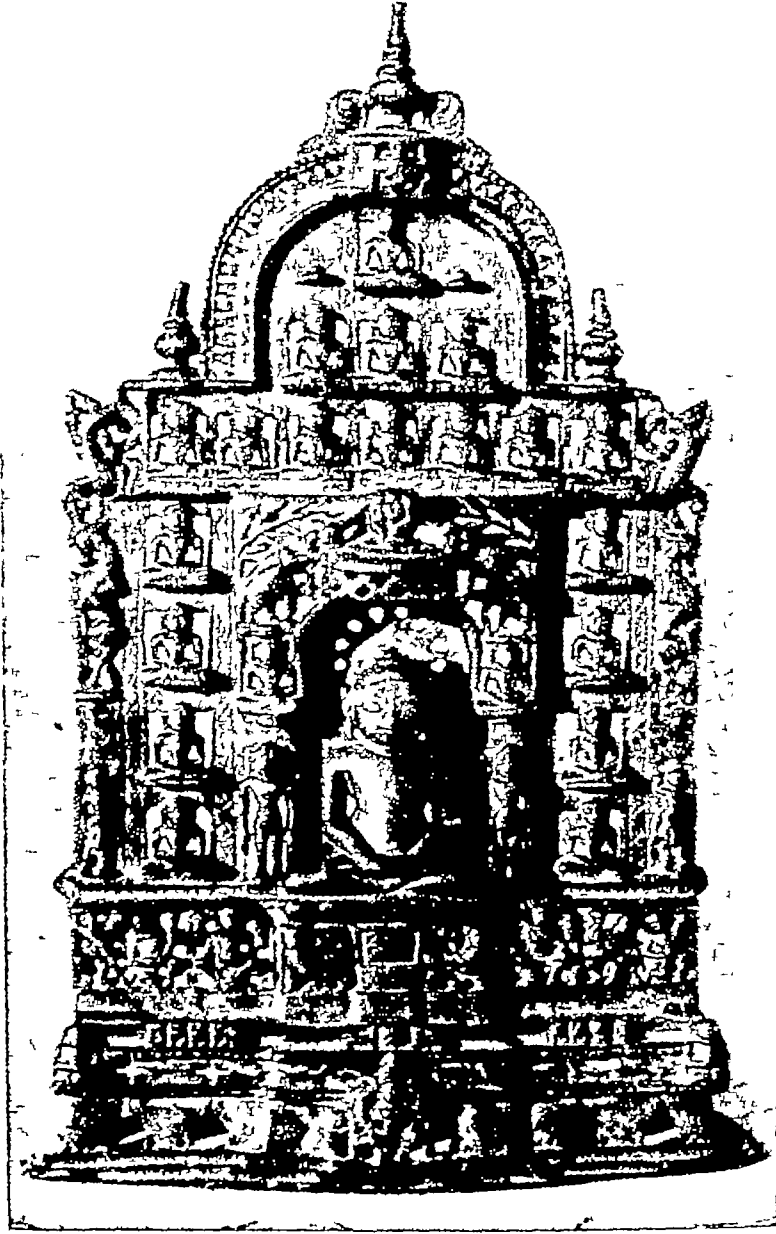
चित्र २१ शातिनाथ चौवीसी, पश्चिमी भारत, १५१० ई०
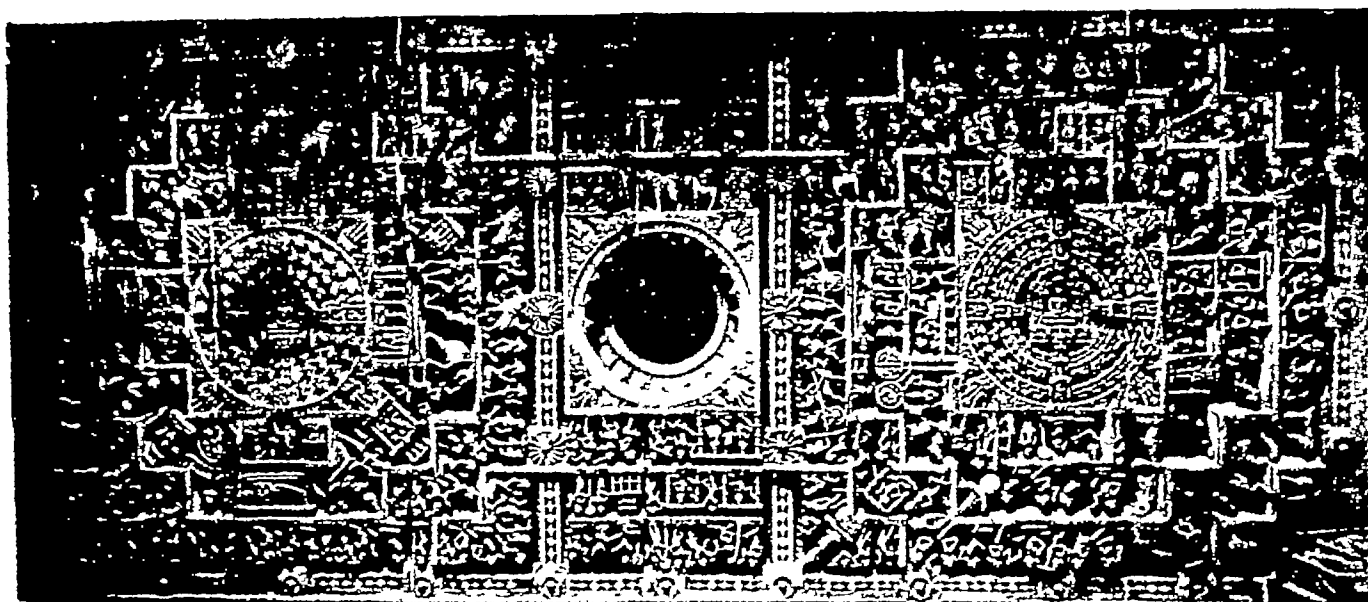
चित्र २२ शान्तिनाथ और नेमिनाथ के जीवनदृश्य, महावीर मंदिर, कुमारिया (गुजरात), ११वीं शती
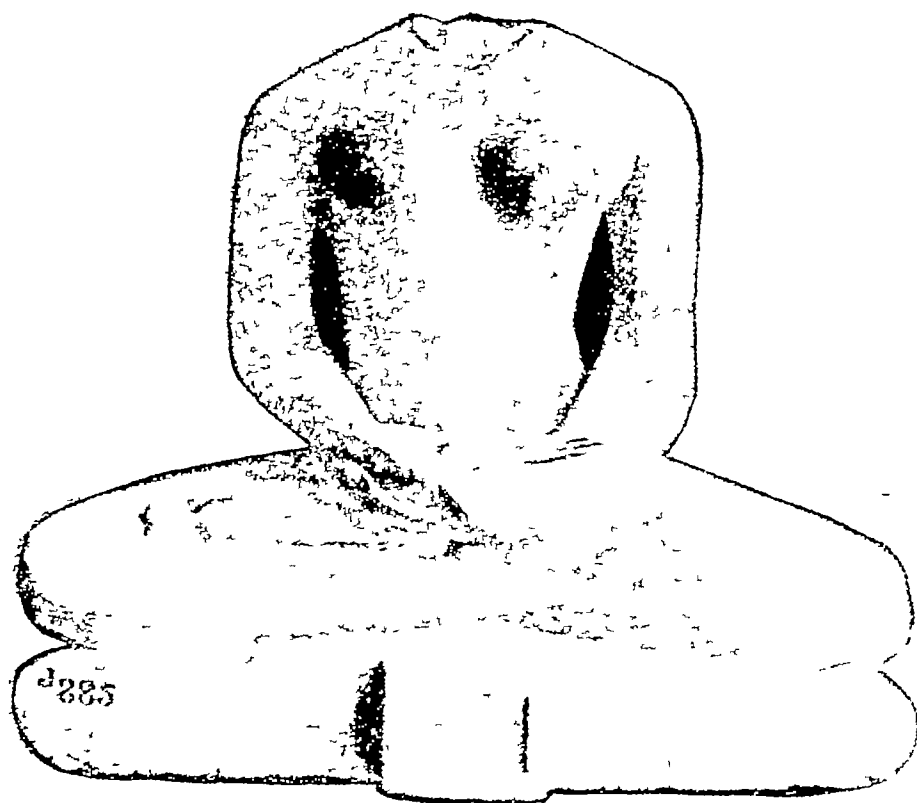
चित्र २३ मल्लिनाथ, उन्नाव (उ० प्र०), ११वीं शती
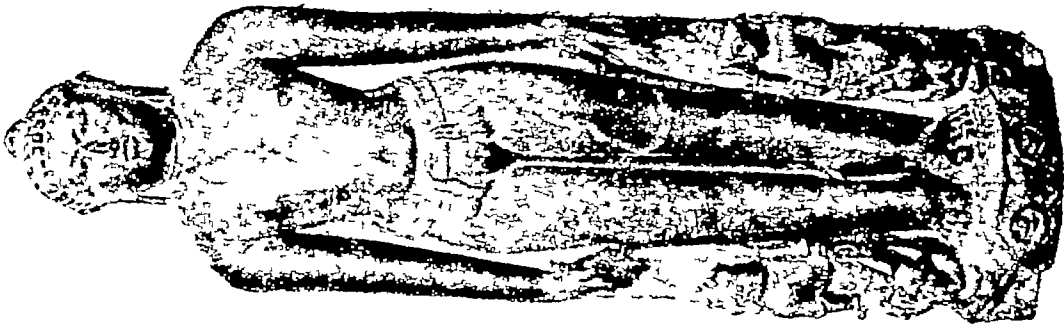
चित्र २४ मुनिसुव्रत, पश्चिमी भारत, ११वीं शती
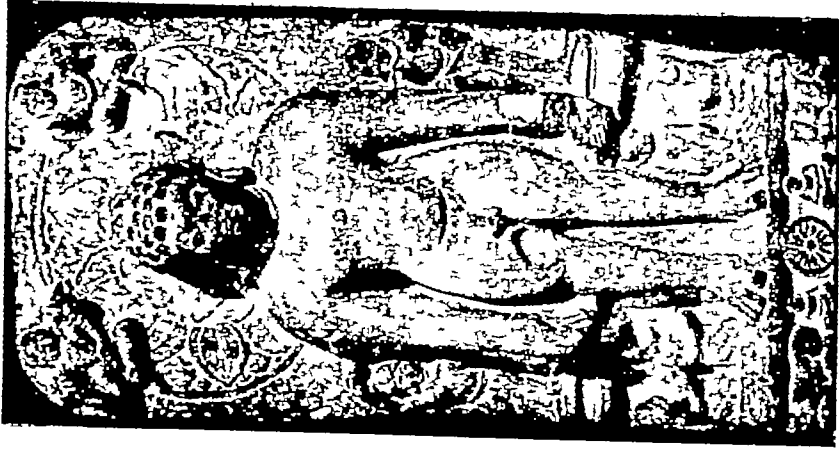
चित्र २५ नेमिनाथ, मथुरा (उ०प्र०), ल० चौथी शती
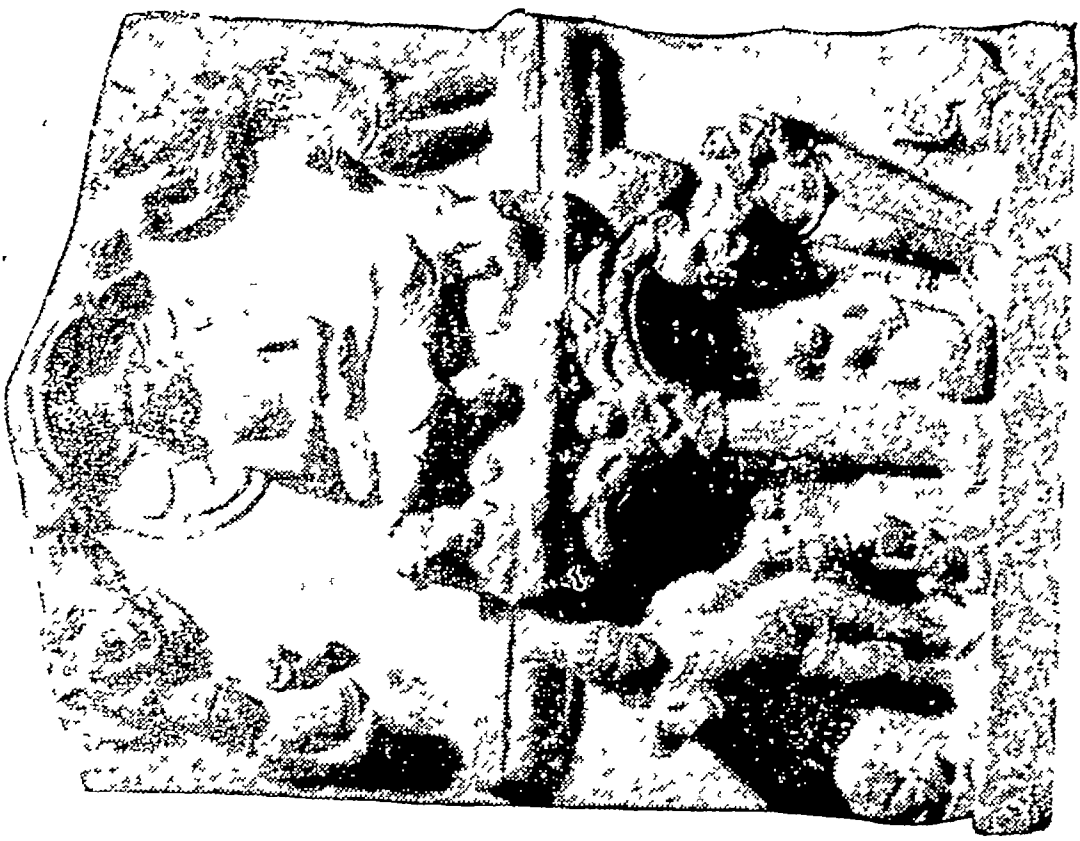
चित्र २६ नेमिनाथ, राजघाट (उ० प्र०), ल० सातवीं शती

चित्र २७ नेमिनाथ, मंदिर २, देवगढ (उ० प्र०), १०वीं शती
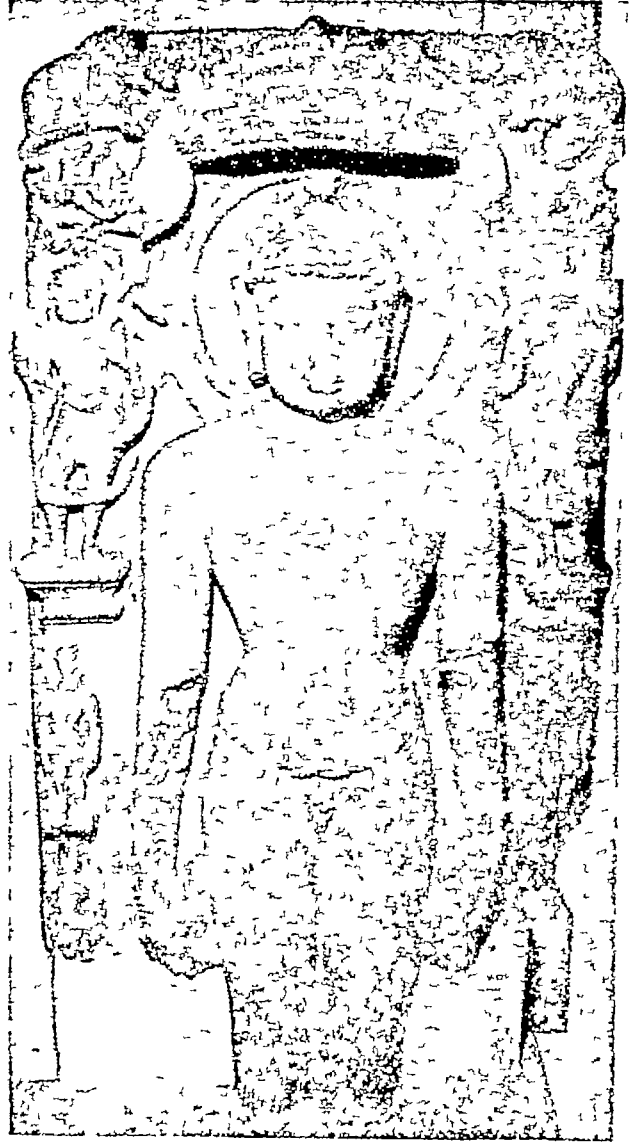
चित्र २८ नेमिनाथ, मथुरा (?उ० प्र०), ११वी शती
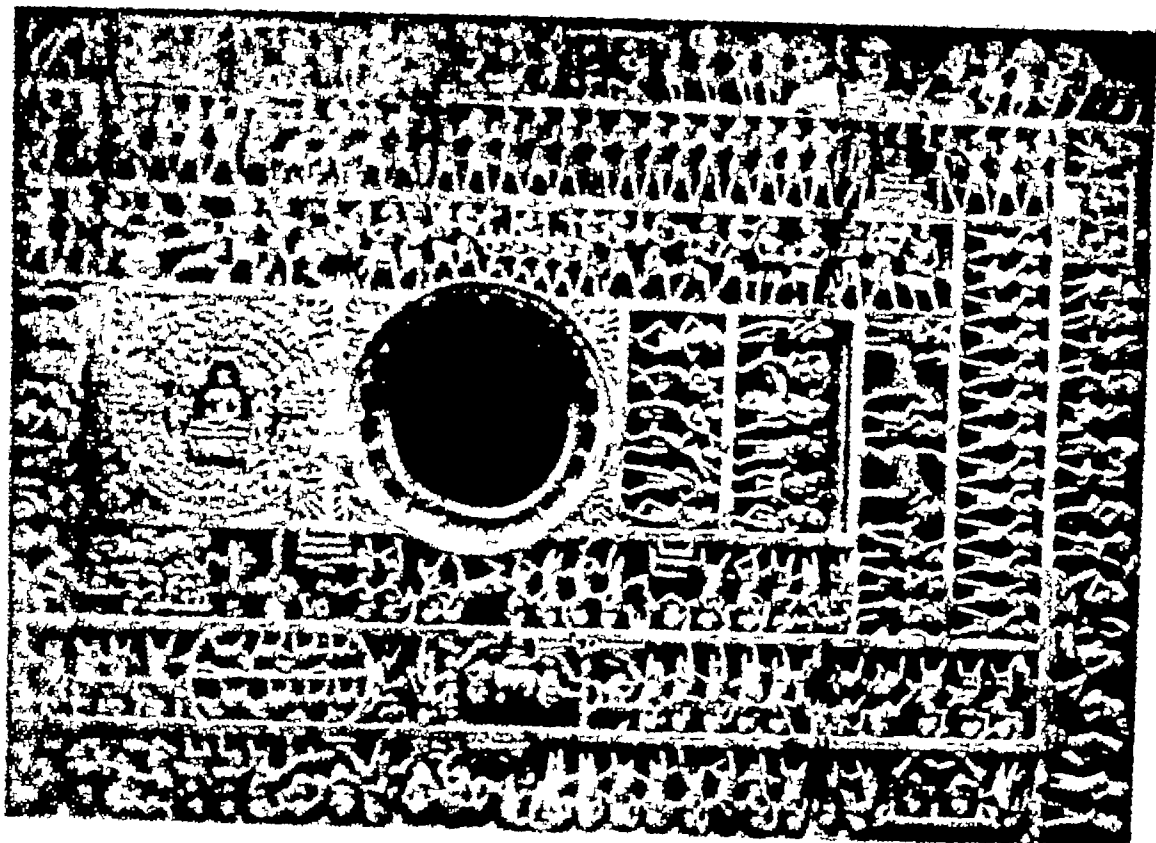
चित्र २९ नेमिनाथ-जीवनदृश्य, शांतिनाथ मंदिर, कुंभारिया (गुजरात), ११वीं शती

चित्र ३१ पार्श्वनाथ, मंदिर १२ (चहारदीवारी), देवगढ़ (उ० प्र०), ११वीं शती

चित्र ३२

चित्र ३४

चित्र ३३
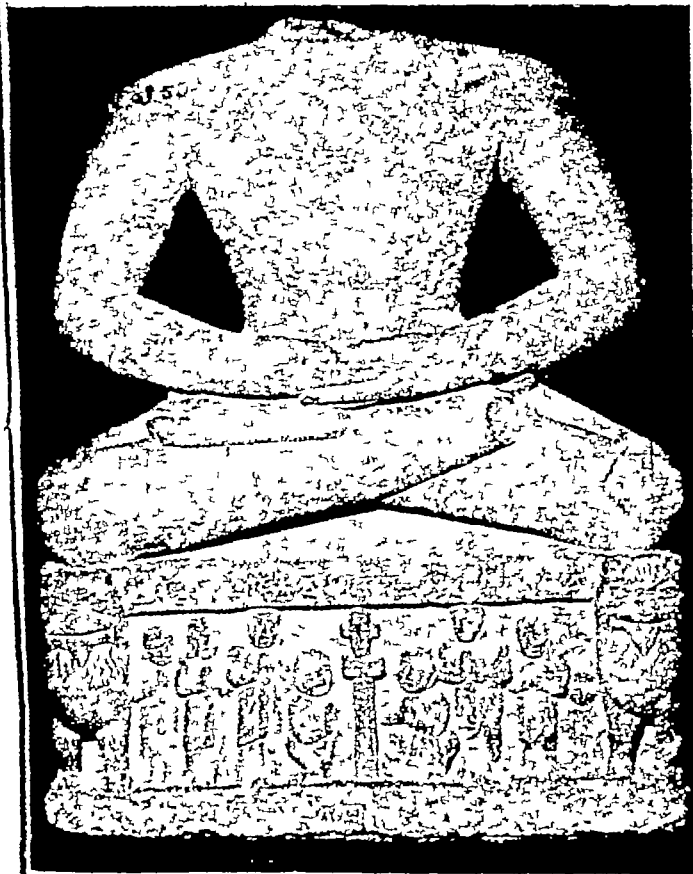
३२ पार्श्वनाथ, मदिर ६, देवगढ (उ०प्र०), १०वी शती

३३ पार्श्वनाथ, राष्ट्रीय सग्रहालय, दिल्ली, ११वी-१२वी शती

३४ महावीर, मथुरा (उ० प्र०), कुषाणकाल

चित्र ३५
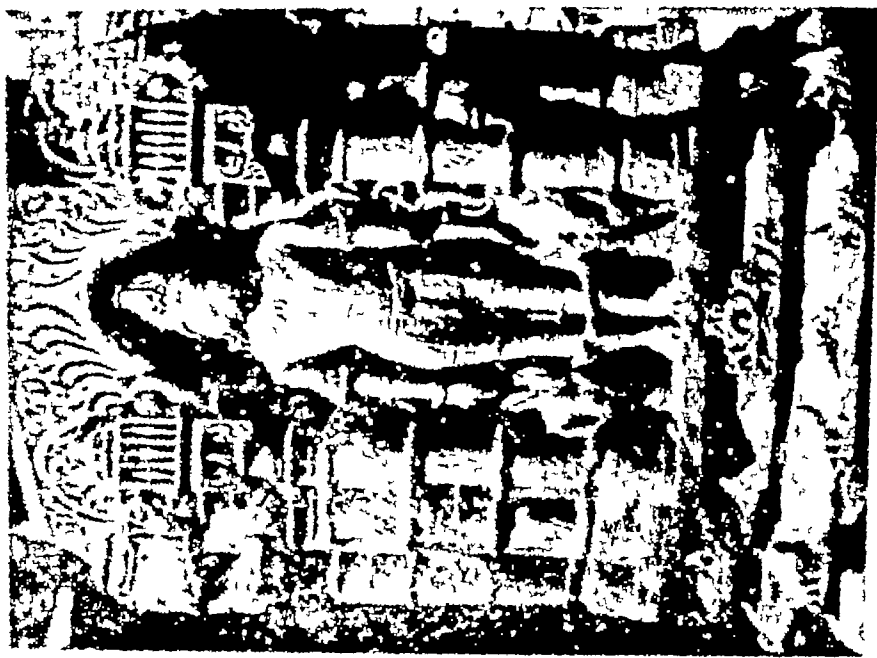
चित्र ३७ जीवन्तस्वामी महावीर, ओसिया (राजस्थान), ११वीं शती
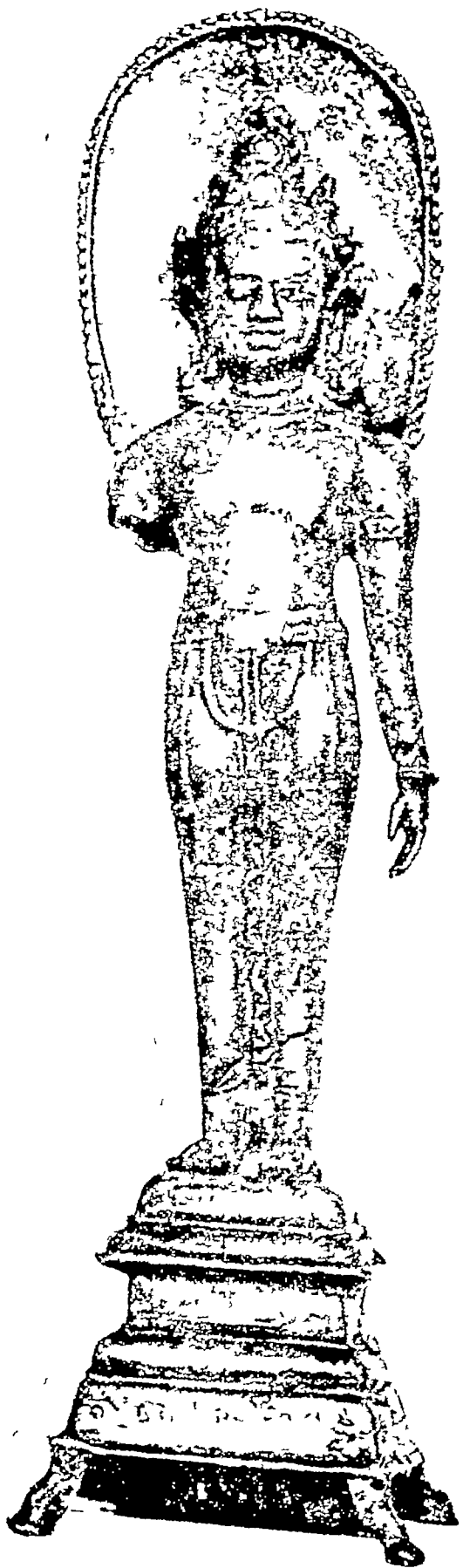
चित्र ३६ जीवन्त स्वामी महावीर, अकोटा (गुजरात), ल० छठी शती

चित्र ३८ महावीर, मन्दिर १२, देवगढ (उ० प्र०), ल० ११वीं शती
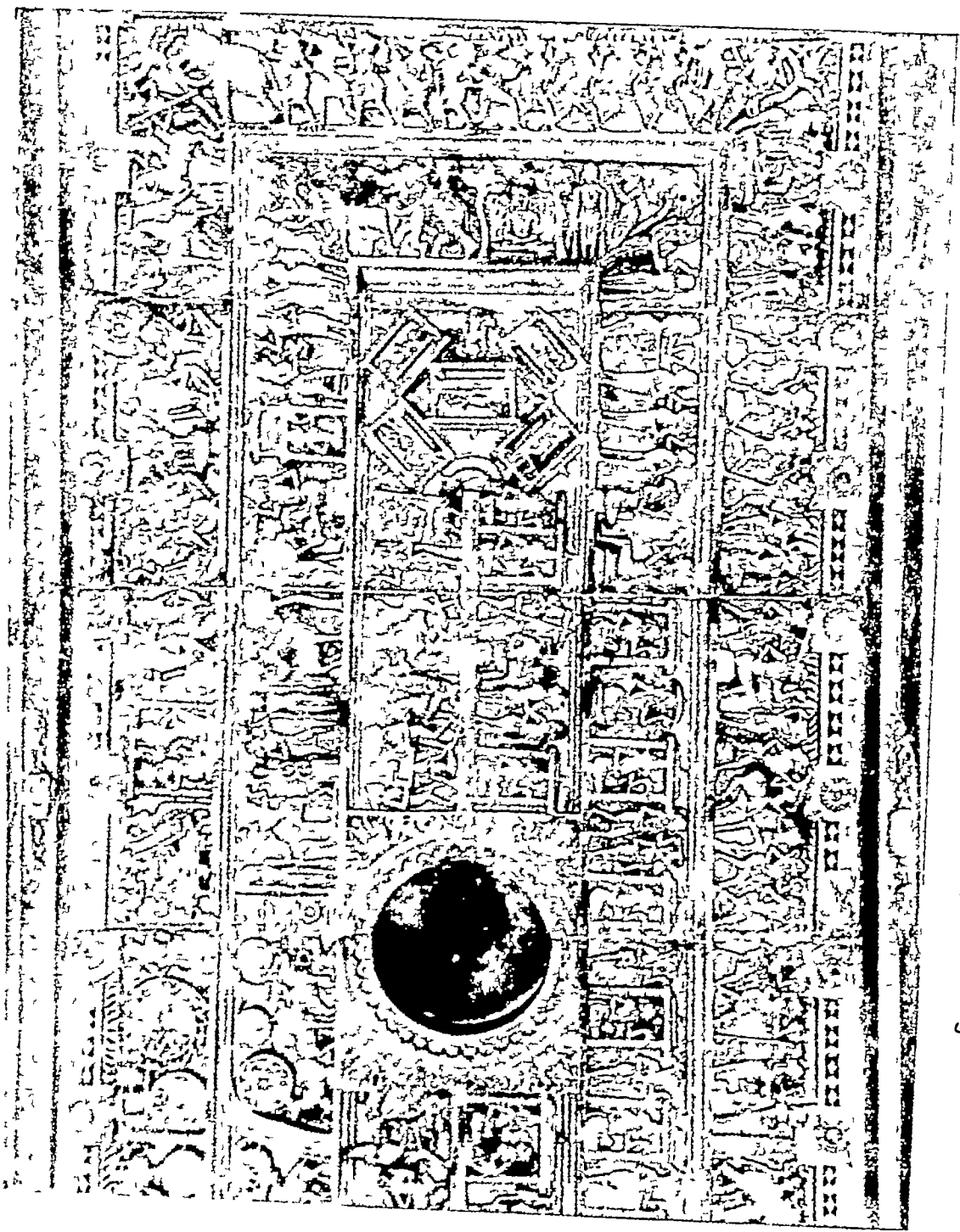
चित्र ४० महावीर-जीवनदृश्य, महावीर मंदिर, कुंभारिया (गुजरात), ११वीं शती

चित्र ३९ महावीर-जीवनदृश्य, (गर्भापहरण), मथुरा (उ० प्र०), पहली शती
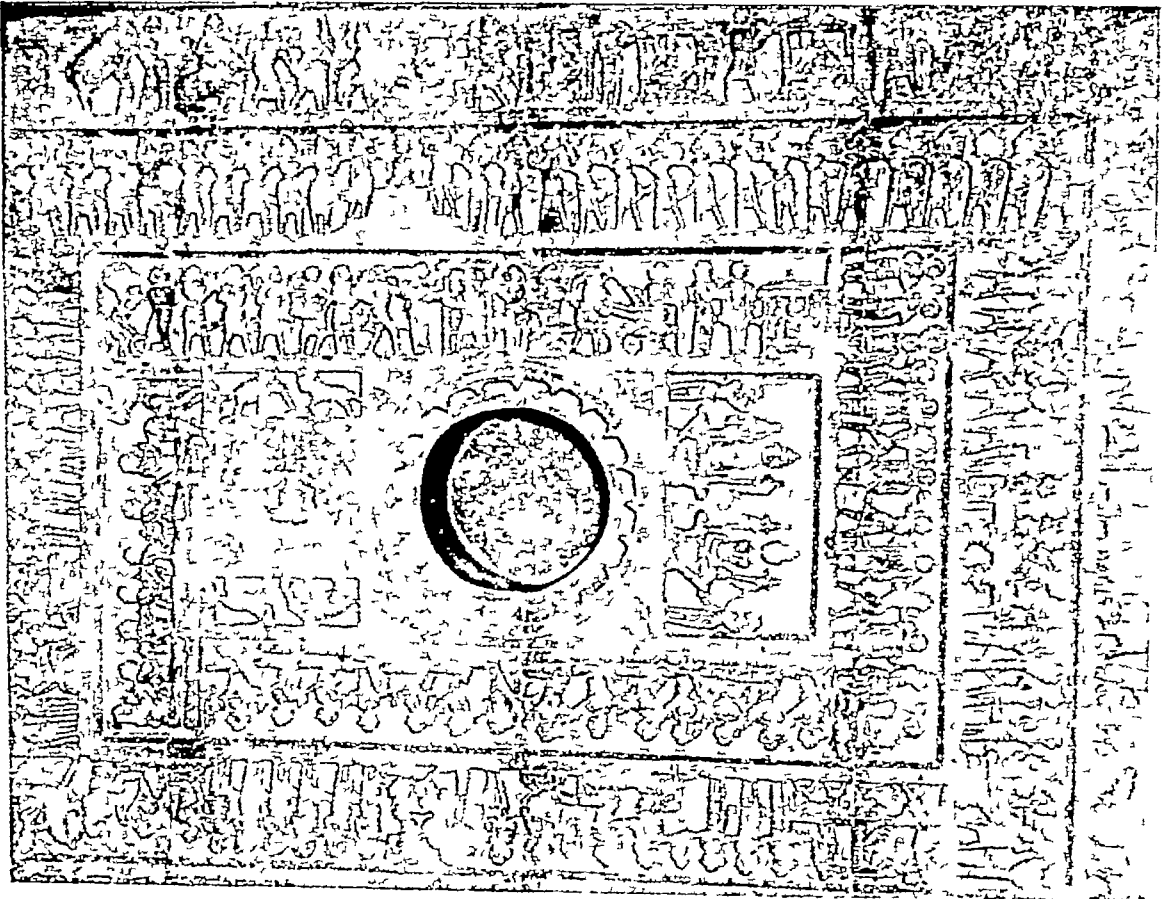
चित्र ४१ महावीर-जीवनदृश्य, शातिनाथ मदिर, कुभारिया (गुजरात), ११वी शती
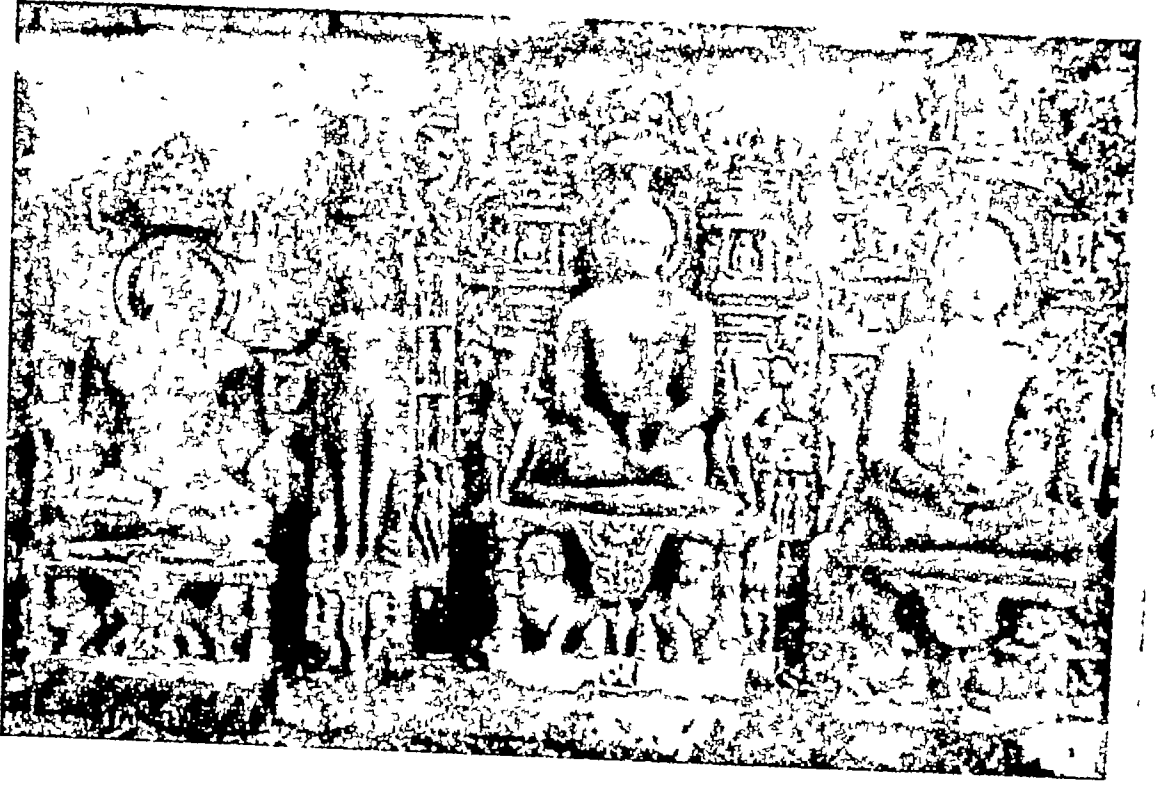
चित्र ४२ जिन-मूर्तिया, खजुराहो (म०प्र०), ल० १०वी-११वी शती
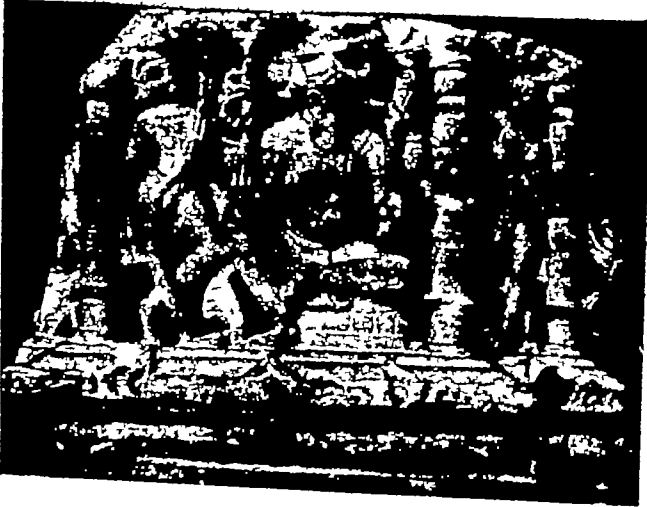
चित्र ४३ गोमुख, हथमा (राजस्थान), ल० १०वी शती

चित्र ४४ चक्रेश्वरी, मथुरा (उ० प्र०)
१०वी शती

चित्र ४६
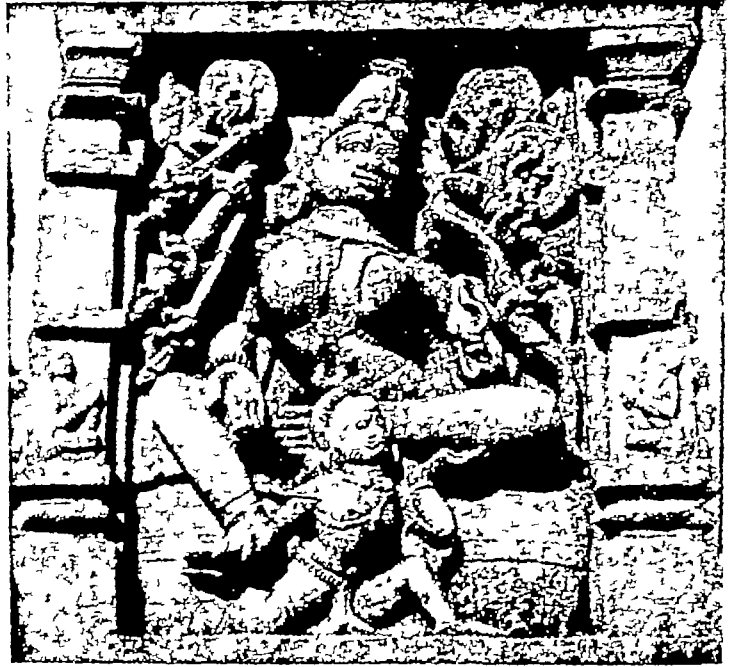
चित्र ४५

४५ चक्रेश्वरी, मंदिर ११, देवगढ (उ० प्र०) ११वी शती

४६ चक्रेश्वरी, देवगढ (उ० प्र०), ११वी शती

४७ गोहिणी, मदिर ११, देवगढ (उ० प्र०) ११वी शती

चित्र ४७

चित्र ४८

चित्र ४९

४८ सुमालिनी यक्षी (चन्द्रप्रभ), मंदिर १२, देवगढ़ (उ० प्र०), ८६२ ई०

४९ [illegible] देवगढ़ (उ० प्र०), १०वीं शती

५० अंबिका पुरातत्त्व संग्रहालय मथुरा, ९वीं शती

चित्र ५१ अबिका, मदिर १२, देवगढ (उ०प्र०) १०वी शती

चित्र ५२ अबिका, एलोरा (महाराष्ट्र), ल० १०वी शती

चित्र ५३ अंबिका, सतना (म० प्र०), ११वीं शती

चित्र ५४ अंबिका, विमलवसही, आबू (राजस्थान), १२वीं शती
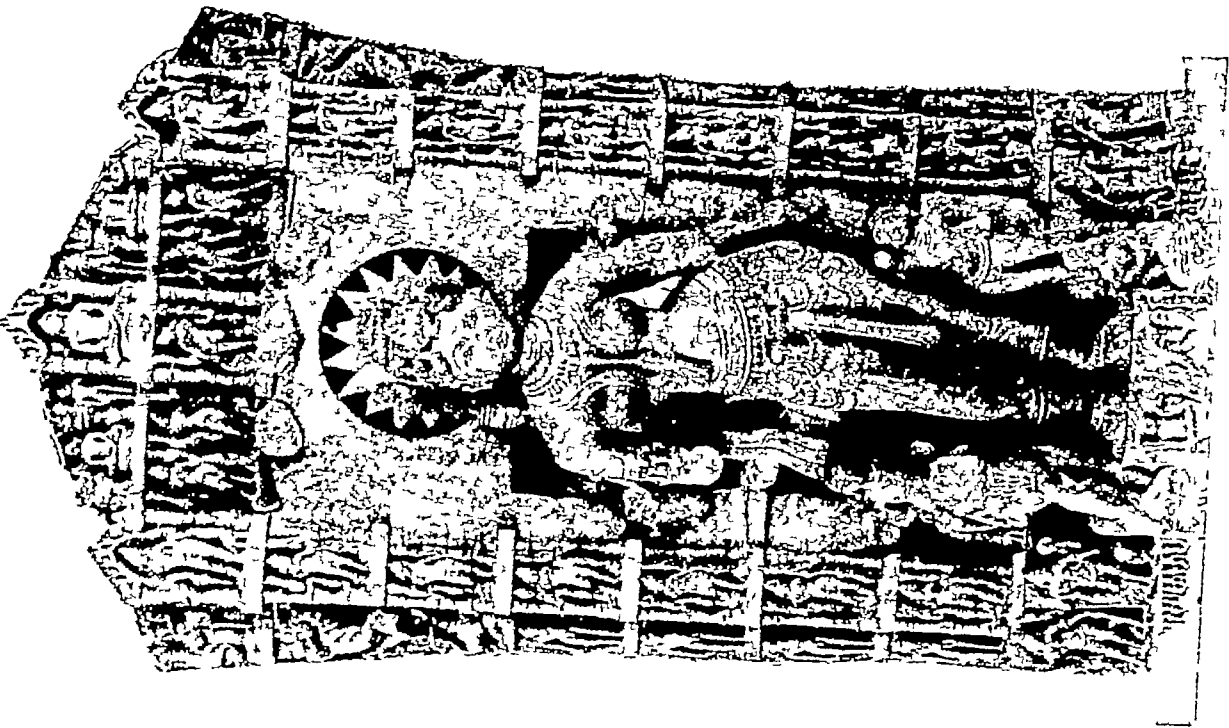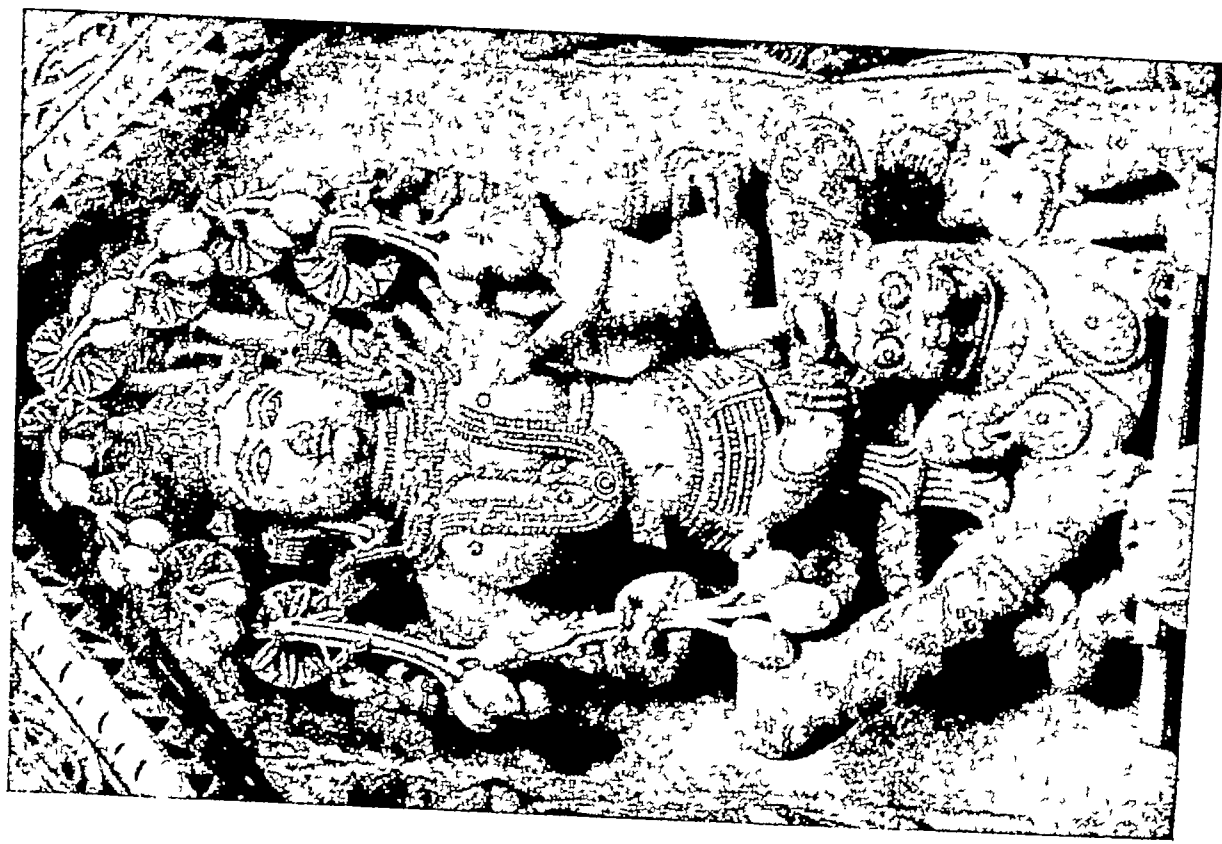
चित्र ५५   पद्मावती, शहडोल (म० प्र०), ११वी शती

चित्र ५६   पद्मावती, नेमिनाथ मदिर (देवकुलिका), कुभारिया (गुजरात), १२वी शती
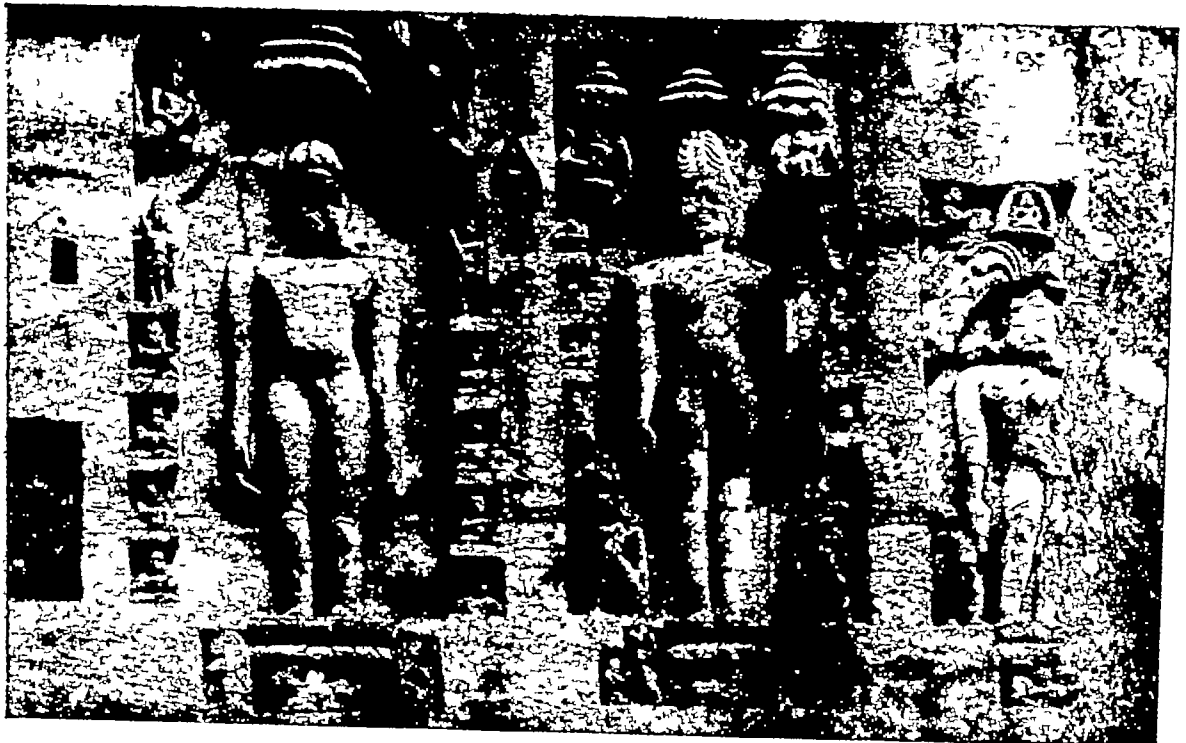
चित्र ५८   ऋषभनाथ एव अविका, खण्डगिरि (उडीसा), ल० १०वी-११वी शती

चित्र ५९ पार्श्वनाथ एव महावीर और शासनदेवियाँ, खण्डगिरि (उडीसा)
ल० ११वी-१२वी शती

चित्र ६२ द्वितीर्थी मूर्ति-विमलनाथ एव कुंथुनाथ,
मदिर १, देवगढ (उ० प्र०), ११वी शती
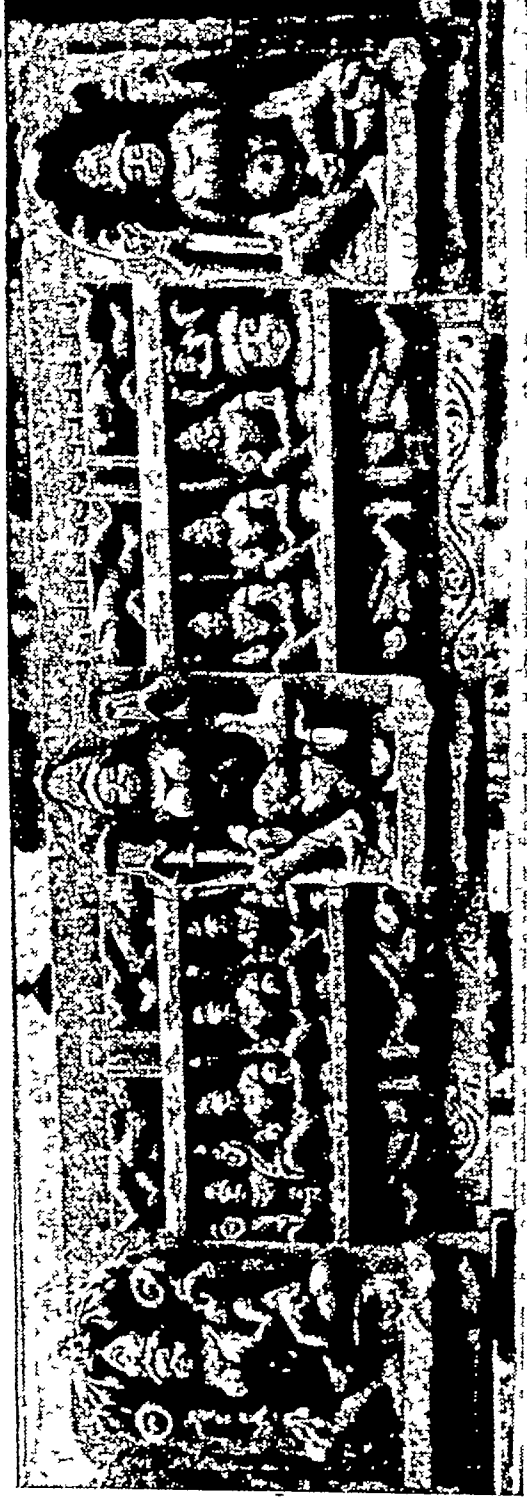
चित्र ५७   यक्षिया एव नवग्रह, उत्तरग, खजुराहो (म० प्र०), ११वी शती
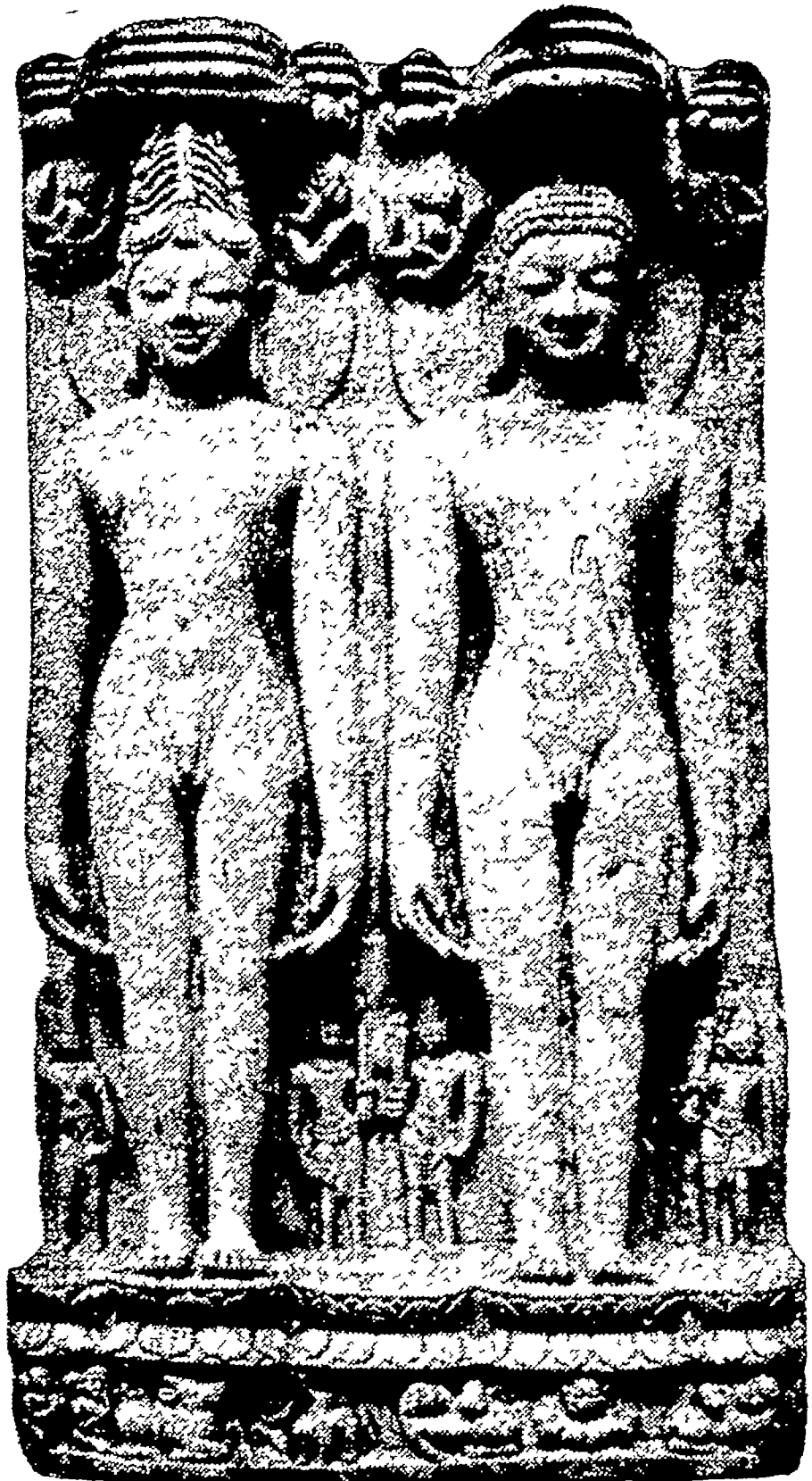
चित्र ६० द्वितीर्थी मूर्ति-ऋषभनाथ और महावीर, खण्डगिरि (उडीसा)
ल० १०वी-११वीं शती
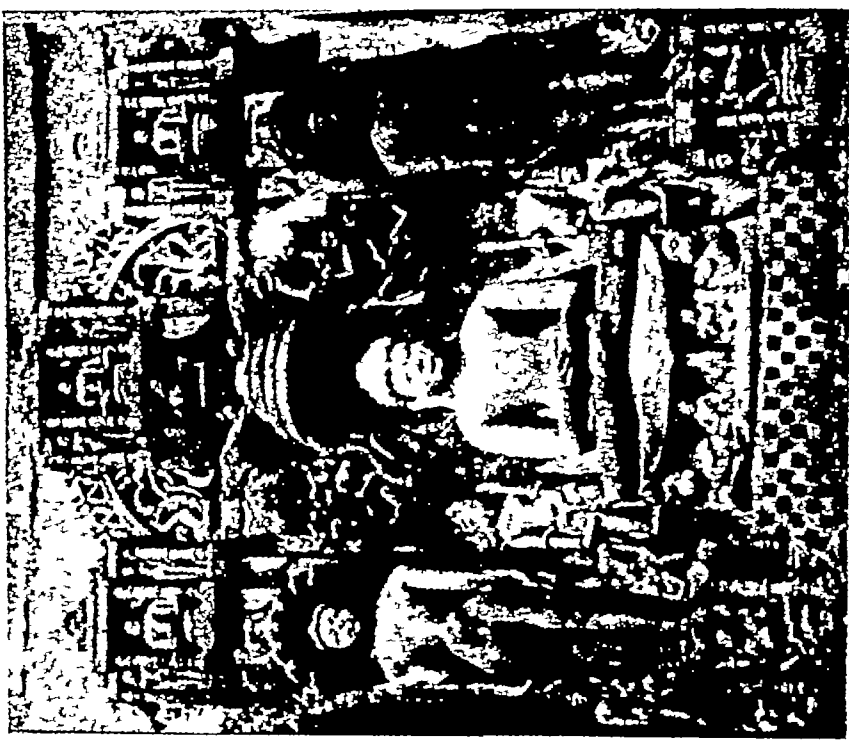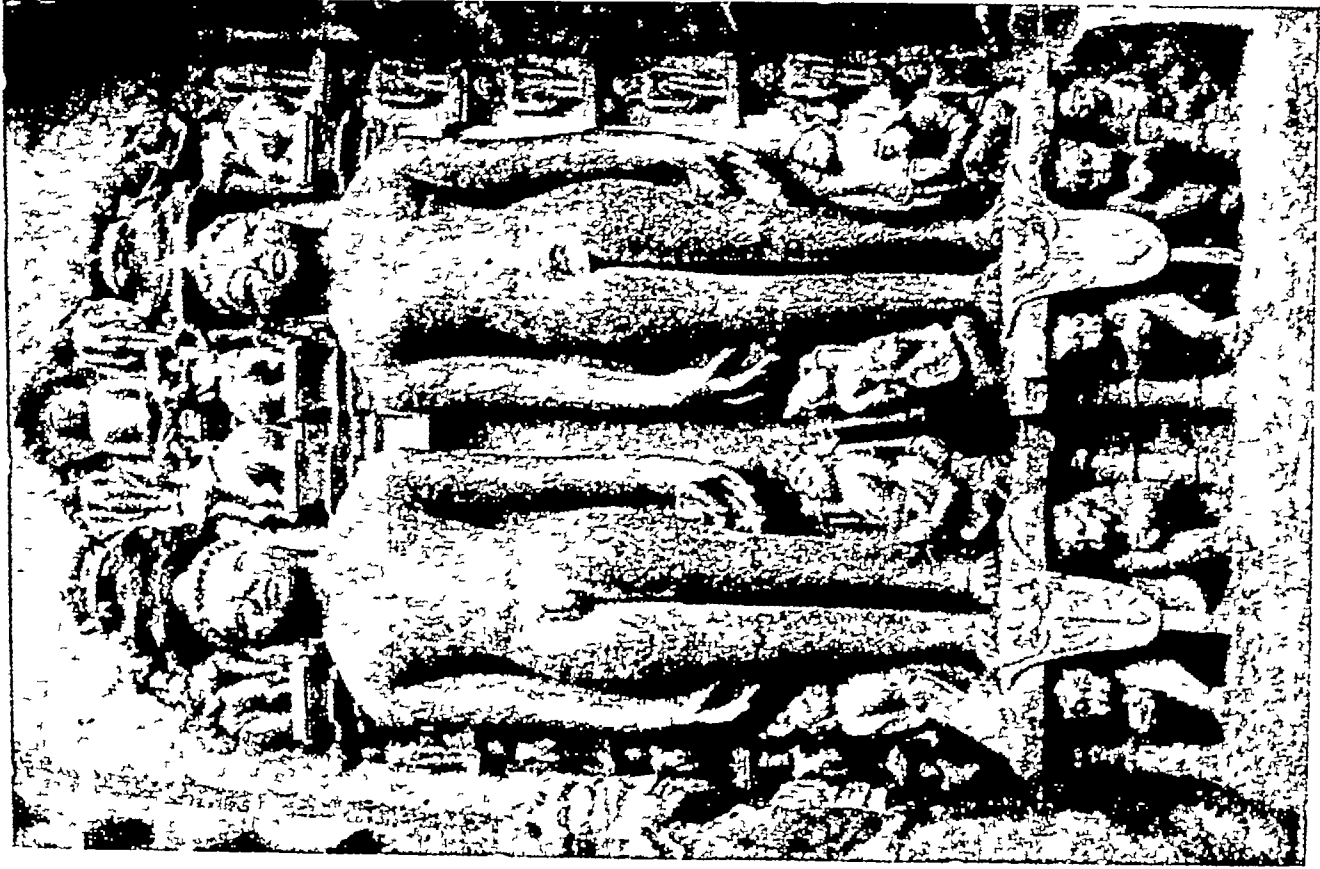
चित्र ६४ त्रितीर्थी जिन मूर्ति, मंदिर २९, देवगढ (उ०प्र०), ल० १०वी शती
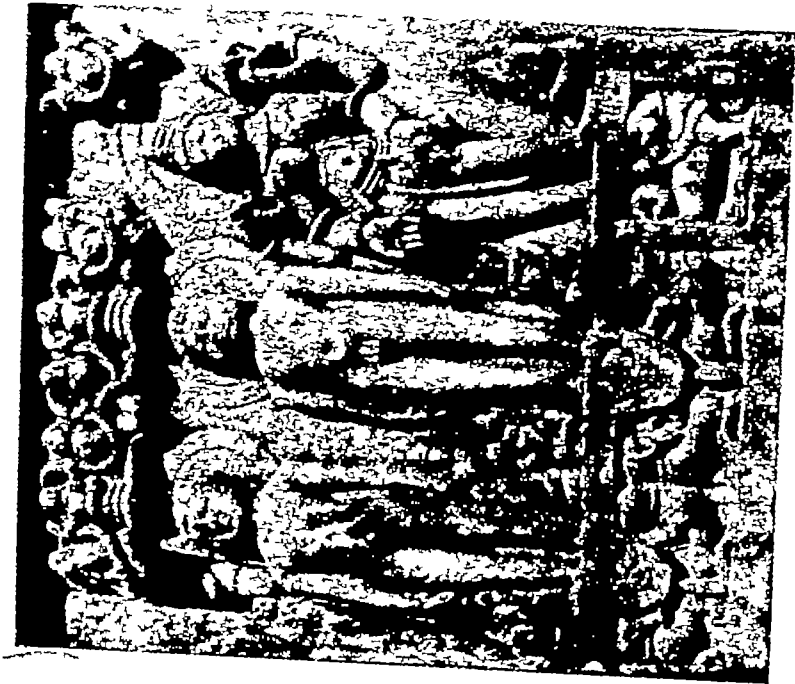
चित्र ६५ त्रितीर्थी मूर्ति-सरस्वती एव जिन, मदिर १, देवगढ (उ० प्र०), ११वी शती
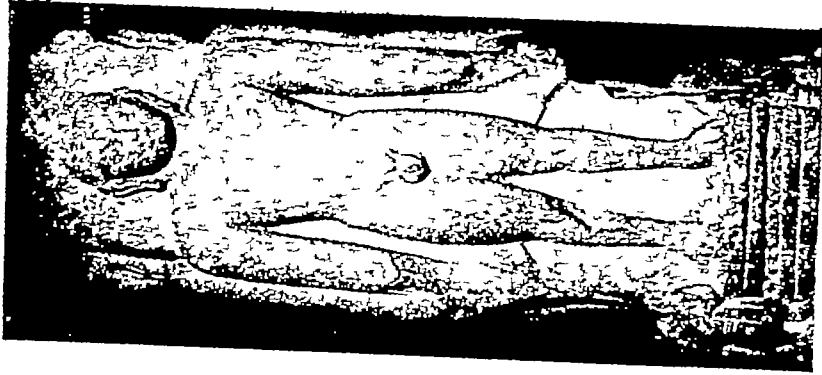
चित्र ६६ जिन चौमुखी, मथुरा (उ० प्र०), कुषाणकाल
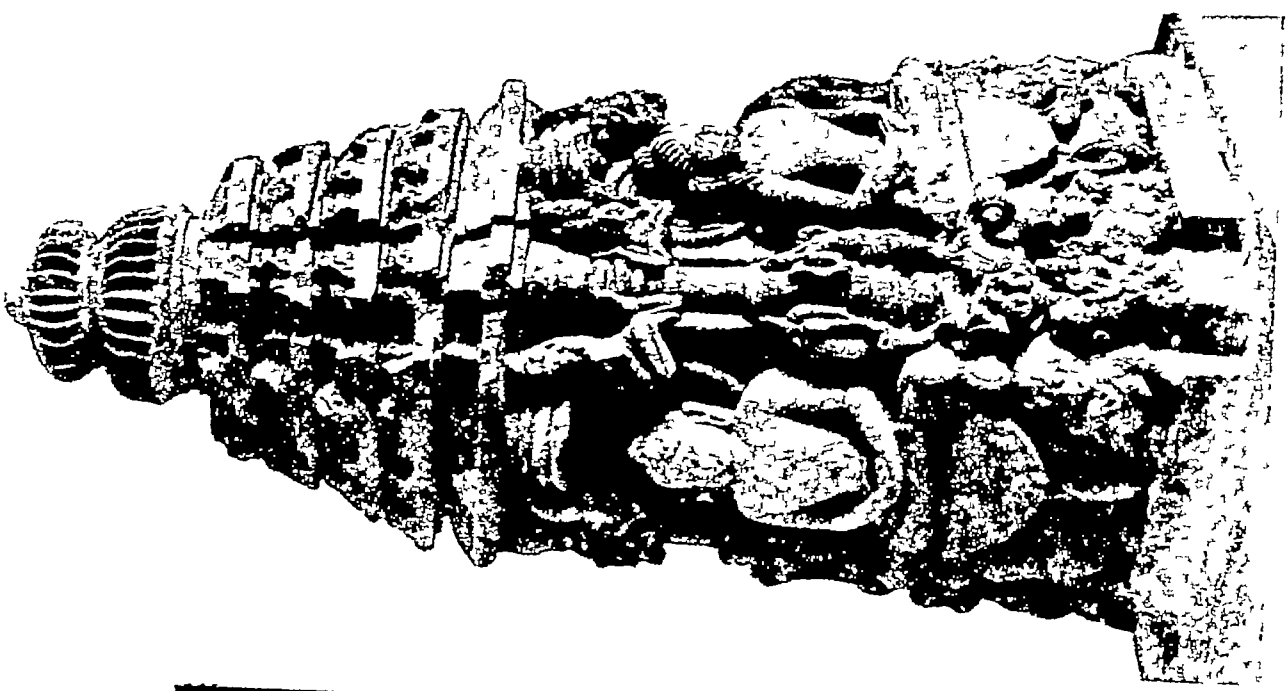
चित्र ६७ जिन चौमुखी, अहाड (म० प्र०) ल० ११वी शती
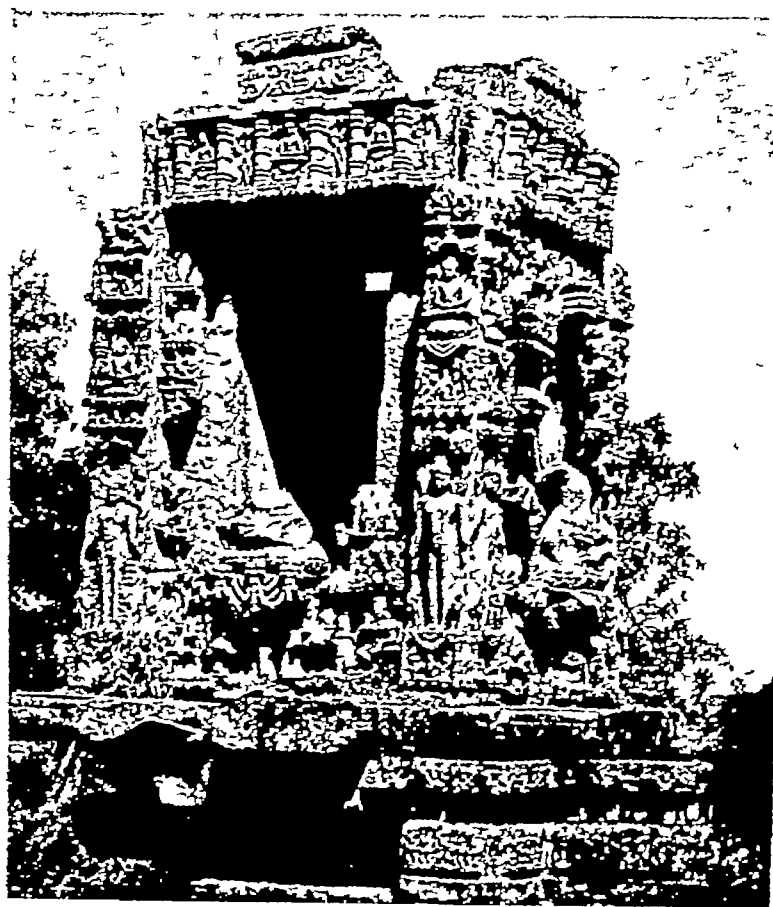
चित्र ६९ चौमुखी जिनालय, इन्दौर (म० प्र०), ११वी शती

चित्र ६८ जिन चौमुखी, पक्बीरा (बंगाल)
ल० ११वीं शती
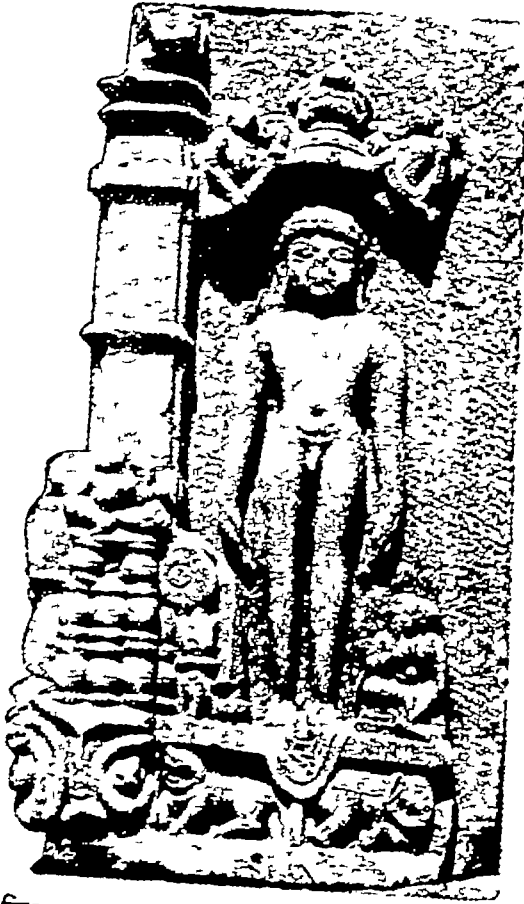
चित्र ७० भरत चक्रवर्ती, मंदिर २, देवगढ़
(उ० प्र०), ११वीं शती
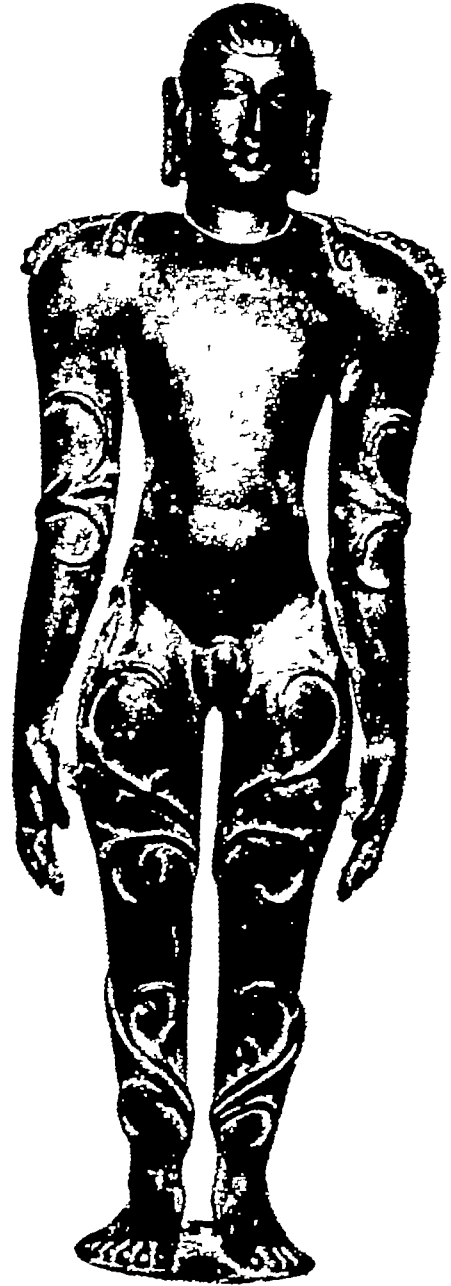
चित्र ७१ बाहुबली, श्रवणबेलगोला
(कर्नाटक), ल० नवीं शती
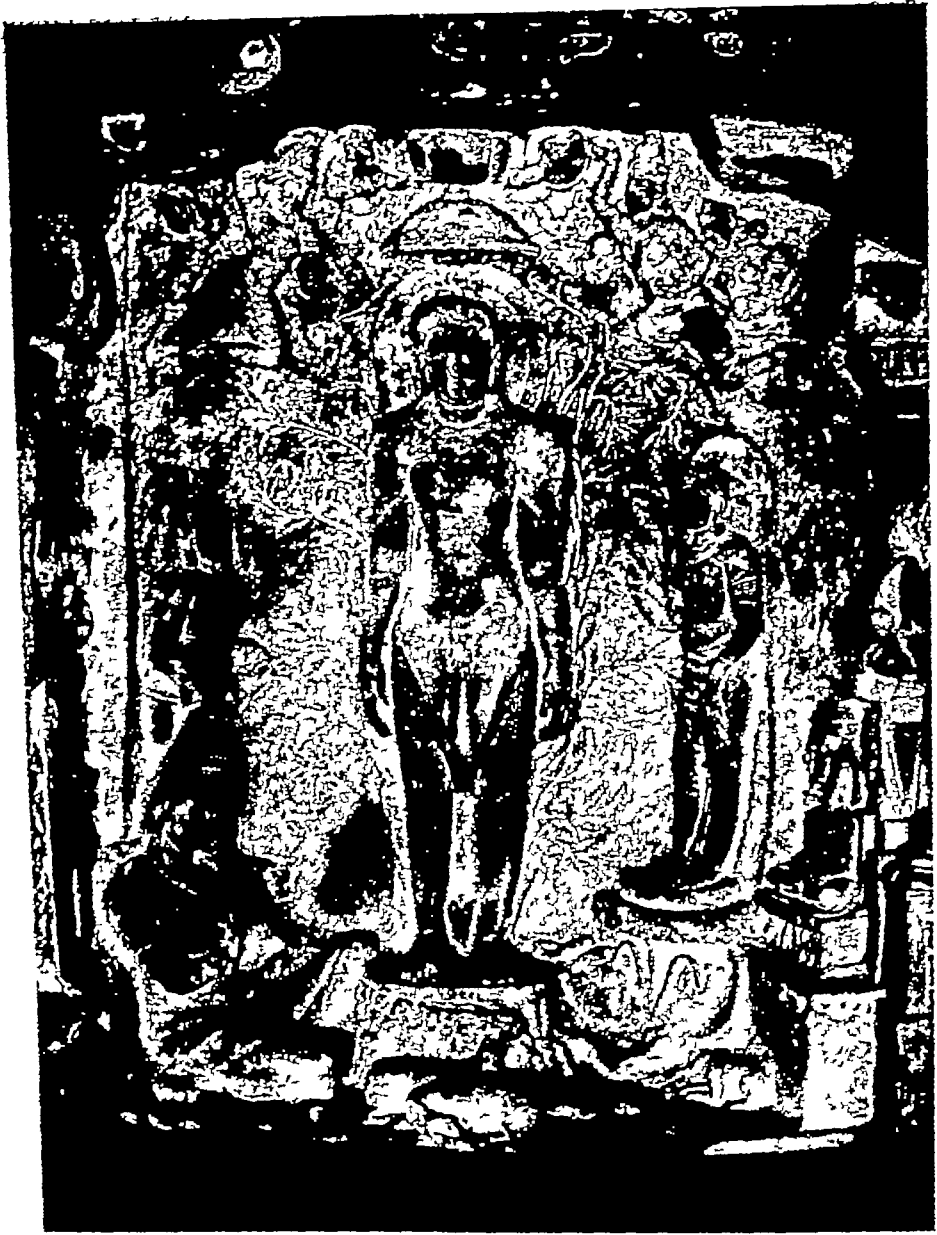
चित्र ७२ बाहुबली, गुफा ३२, एलोरा (महाराष्ट्र), ल० नवीं शती
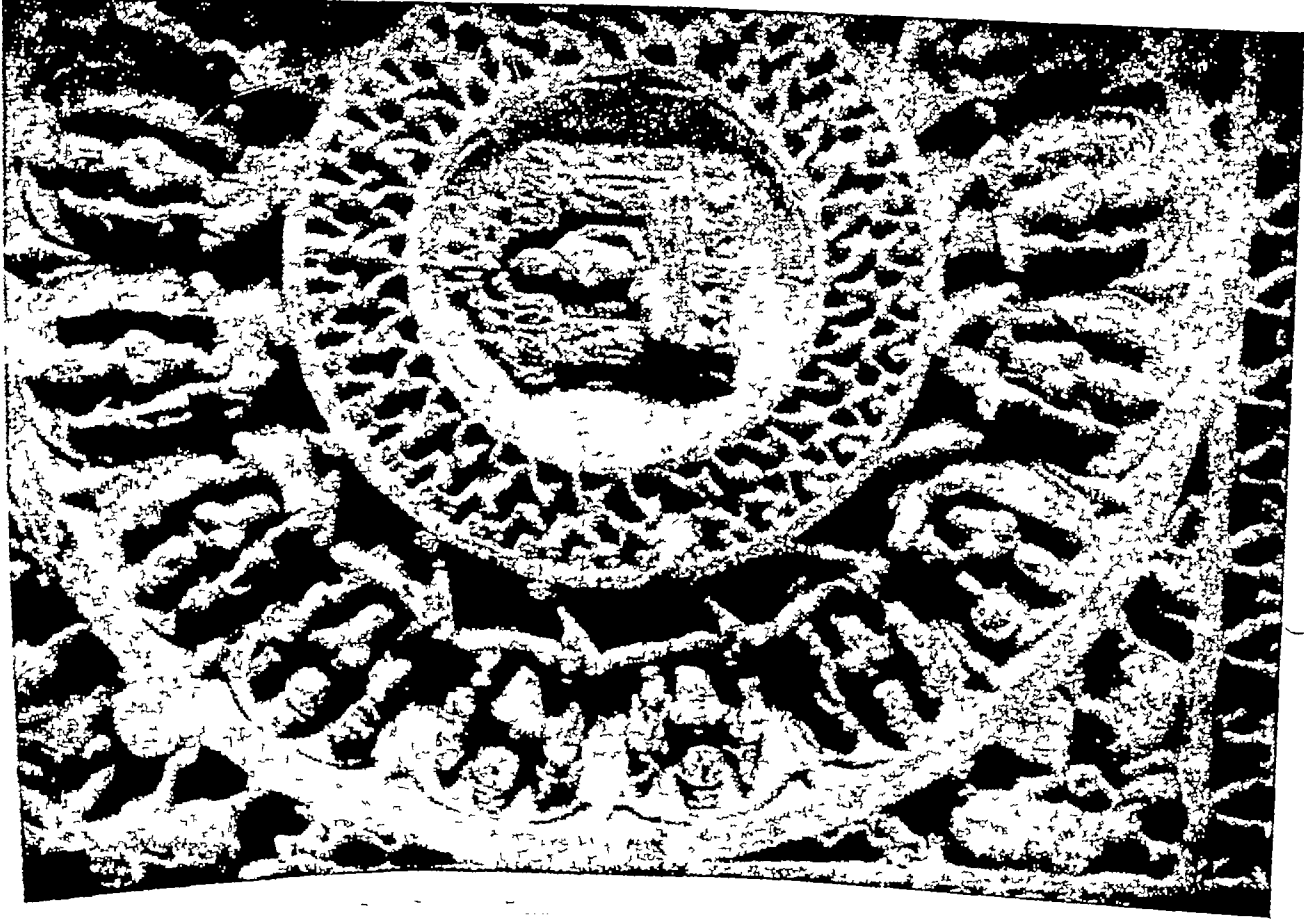
चित्र ७८ सोलह महाविद्याए, शातिनाथ मदिर, कुमारिया (गुजरात), ११वी शती
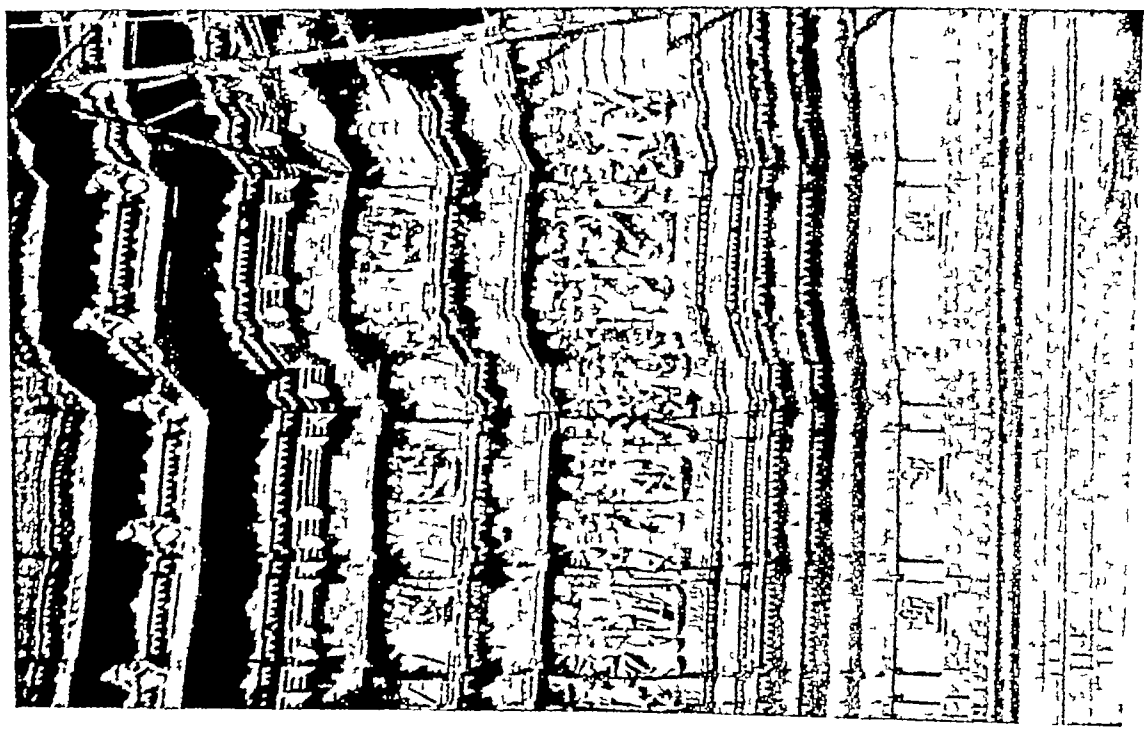
चित्र ७९ वाह्यभित्ति, अजितनाथ मदिर, तारगा (गुजरात) १२वी शती

चित्र ७३ बाहुबली गोम्मटेश्वर, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
ल० ९८३ ई०

चित्र ७४ बाहुबली, मंदिर २, देवगढ़ (उ०प्र०), ११वीं शती
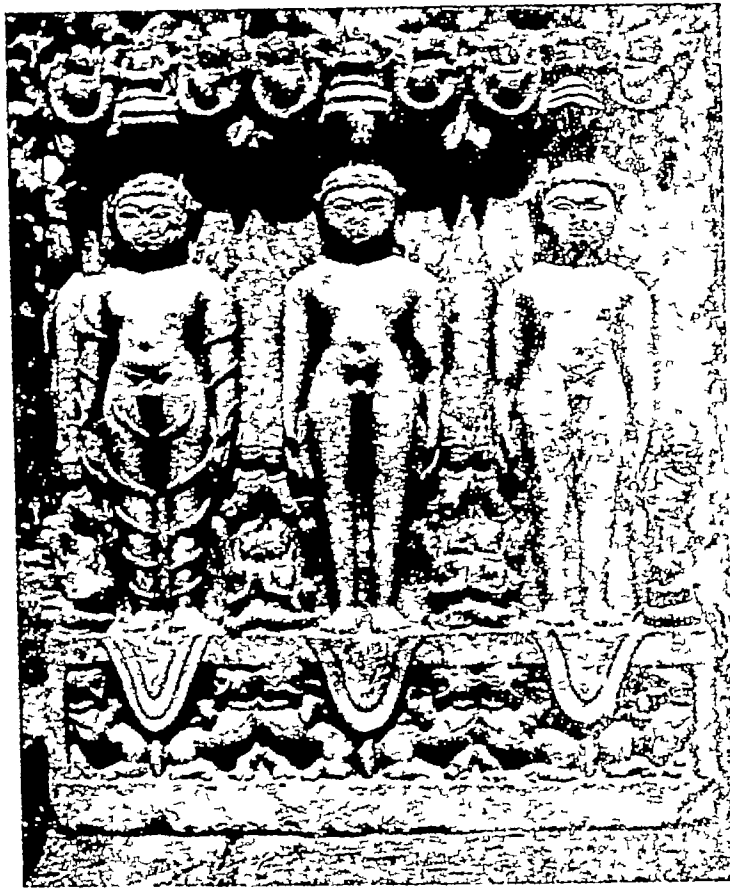
चित्र ७५ त्रितीर्थी मूर्ति-बाहुबली एव जिन, मदिर २, देवगढ (उ० प्र०), ११वी शती

चित्र ७६ सरस्वती, नेमिनाथ मदिर (देवकुलिका), कुभारिया (गुजरात) १२वी शती

चित्र ७७ गणेश, नेमिनाथ मदिर, कुभारिया (गुजरात), १२वी शती